भगवती-जोड़

जयाचार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवती-जोड़

जयाचार्य निर्वाण शताब्दी के अवसर पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जय वाङ्मय : ग्रन्थ १४

भगवती-जोड़

खण्ड १

प्रवाचक
युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी

प्रधान संपादक
युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ

जैन विश्व भारती
लाडनूं (राजस्थान)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादन/अनुवाद

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशक :
जैन विश्व भारती
लाडनूं (राजस्थान)

अर्थ-सौजन्य :
जयाचार्य निर्वाण शताब्दी समारोह समिति

प्रबन्ध-सम्पादक
श्रीचन्द रामपुरिया
अध्यक्ष, जैन विश्व भारती
लाडनूं (राजस्थान)

प्रथम संस्करण : १९८१

मूल्य : १०० रुपये

मुद्रक :
भारती प्रिण्टर्स
दिल्ली-३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

जयाचार्य निर्वाण-शताब्दी समारोह के इस पावन अवसर पर जैन विश्व भारती की ओर से जय वाङ्मय के चतुर्दश ग्रन्थ 'भगवती-जोड़' को जनता के हाथों में सौंपते हुए हमारा हृदय हर्षोत्फुल्ल हो रहा है।

श्रीमज्जयाचार्य का जन्म-नाम जीतमलजी था। आपने अपनी कृतियों में अपना उपनाम 'जय' रखा, इसलिए आप जयाचार्य के नाम से प्रख्यात हुए। आप श्वेताम्बर तेरापंथ धर्म-संघ के चतुर्थ आचार्य थे।

श्रीमज्जयाचार्य की जन्मभूमि मारवाड़ का रोयट ग्राम था। आपका जन्म सं० १८६० की आश्विन शुक्ला १४ की रात्रिवेला में हुआ था। आप ओसवाल थे। गोत्र से गोलछा थे। आपके पिताश्री का नाम आईदानजी गोलेछा और मातुश्री का नाम कलूजी था। आप तीन भाई थे। दो बड़े भाइयों का नाम सरूपचन्दजी और भीमराजजी था।

आपके ज्येष्ठ भ्राता सरूपचन्दजी ने सं० १८६६ की पौष शु० ६ के दिन साधु-जीवन ग्रहण किया। आपने उसी वर्ष माघ कृष्णा ७ के दिन प्रव्रज्या ग्रहण की। दूसरे बड़े भाई भीमराजजी की दीक्षा आपके बाद फाल्गुन कृष्णा ११ के दिन सम्पन्न हुई और उसी दिन माता कलूजी ने भी दीक्षा ग्रहण की। इस तरह सं० १८६६ पौष शुक्ला ८ एवं फाल्गुन कृष्णा १२ की पौने दो माह की अवधि में माता सहित तीनों भाई द्वितीय आचार्यश्री भारमलजी के शासन-काल में दीक्षित हुए।

साधु-जीवन ग्रहण करने के समय जयाचार्य नौ वर्ष के थे। दीक्षा के बाद आप शिक्षा के लिए मुनि हेमराजजी को सौंपे गए। वे ही आपके विद्या-गुरु रहे। आगे जाकर आप एक महान् आध्यात्मिक योगी, विश्रुत इतिहास-सर्जक, विचक्षण साहित्य-स्रष्टा एवं सहज प्रतिभा-सम्पन्न कवि सिद्ध हुए।

सं० १९०८ माघ कृष्णा १४ के दिन तृतीय आचार्य ऋषिराय का छोटी रावलिया में देहान्त हुआ। आप चतुर्थ आचार्य हुए।

आचार्य ऋषिराय के देवलोक होने का समाचार माघ सु० ८ के दिन बीदासर पहुंचा, जहां युवाचार्य जीतमलजी विराज रहे थे। सं० १९०८ माघ सुदी १५ को प्रातःकाल पुष्य नक्षत्र के समय आप पदासीन हुए और बड़े हर्ष के साथ पट्टोत्सव मनाया गया। आचार्य ऋषिराय ने ६७ साधुओं एवं १४३ साध्वियों की धरोहर छोड़ी।

आपने श्वेताम्बर तेरापंथ धर्म-संघ के चतुर्थ आचार्य पद को ३० वर्षों तक सुशोभित किया। आपका निर्वाण सं० १९३८ की भाद्र कृष्णा १२ के दिन जयपुर में हुआ। सं० २०३८ भाद्र कृष्णा ११ के दिन आपको निर्वाण प्राप्त हुए १०० वर्ष पूरे हुए हैं।

जयाचार्य बड़े कुशल संघ-व्यवस्थापक और दूरदर्शी आचार्य थे। आपके आचार्यत्व काल में संघ का बहुविध विकास हुआ।

श्रीमज्जयाचार्य ने अपने जीवन-काल में लगभग ३½ लाख ग्रन्थ-प्रमाण साहित्य की रचना की। आपकी साहित्यिक रुचि बहुविध थी। तेरापंथ धर्म-संघ के संस्थापक आदि-आचार्य श्रीमद् भिक्षु के बाद आपकी साहित्य-साधना बेजोड़ है। आप महान् तत्त्वज्ञानी थे। जन्मजात कुशल इतिहास-लेखक थे। सजीव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्मरणात्मक जीवन-चरित्र लिखने की आपकी प्रवीणता अनोखी थी। आपकी कृतियों का सौष्ठव, गांभीर्य एवं संगीतमयता—ये सब मनोमुग्धकारी हैं।

'भगवई' अंग-ग्रंथों में सबसे विशाल अंग है। विषयों की दृष्टि से वह एक महान् उदधि है। जयाचार्य ने इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आगम-ग्रंथ का भी राजस्थानी भाषा में गीतिकाबद्ध पद्यानुवाद किया। यह राजस्थानी साहित्य का सबसे बड़ा ग्रंथ माना गया है। इसमें मूल के साथ टीका-ग्रंथों का भी अनुवाद है और वार्तिक के रूप में अपने मंतव्यों को बड़ी स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया है। इसमें विभिन्न लय में ग्रथित ५०१ ढालें तथा कुछ अन्तर ढालें हैं। ४१ ढालें केवल दोहों में हैं। ग्रन्थ में ३९२ रागिनियां प्रयुक्त हैं।

साहित्य की बहुविध दिशाओं में आगम-ग्रंथों पर आपने जो कार्य किया, वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्राकृत आगमों को राजस्थानी जनता के लिए सुबोध करने की दृष्टि से उन्होंने उनका राजस्थानी पद्यानुवाद किया, जो सुमधुर रागिनियों में ग्रथित है।

प्रथम आचारांग की जोड़, निशीथ की जोड़, ज्ञाता की जोड़, उत्तराध्ययन की जोड़, अनुयोगद्वार की जोड़, पन्नवणा की जोड़, संजया की जोड़, नियंठा की जोड़—ये कृतियां इस दिशा में उनके विस्तृत कार्य का परिचय देती हैं।

इसमें ४९९३ दोहे, २२२५४ गाथाएं, ६५५२ सोरठे, ४३१ विभिन्न छंद, १८८४ प्राकृत, संस्कृत पद्य तथा पर्याय आदि ७४४९ पद्य-परिमाण ११९० गीतिकाएं, ९३२९ पद्य-परिमाण ४०४ यंत्रचित्र आदि हैं। इसका अनुष्टुप् पद्य-परिमाण ग्रंथाग्र ६०९०६ है।

प्रस्तुत प्रकाशन 'भगवती-जोड़' उक्त कृति के चार शतकों को समाविष्ट करता हुआ उसका प्रथम खण्ड है।

मूल राजस्थानी कृति के साथ सम्बन्धित आगम पाठ और टीका की व्याख्या गाथाओं के समकक्ष में दे दी गई हैं, जिससे पाठकों को समझने की सहूलियत के साथ-साथ मूल कृति के विशेष मंतव्य की जानकारी भी हो सकेगी।

इस ग्रंथ का कार्य वाचक युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी के तत्त्वावधान में हुआ और साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी ने उनका पूरा-पूरा हाथ बंटाया और आचार्यश्री के शब्दों में ही घोर परिश्रम किया है।

इसका सम्पादकीय प्रधान सम्पादक युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ द्वारा प्रस्तुत है।

ऐसे ग्रंथ-रत्न को प्रकाशित करते हुए जैन विश्व भारती अपने को अत्यन्त गौरवान्वित अनुभव कर रही है।

श्री जयाचार्य जैसे पुनीत पुरुष की निर्वाण शताब्दी के अवसर पर जय वाङ्मय एवं तत् सम्बन्धित अन्य महत्वपूर्ण साहित्य प्रकाशित करने की विशाल योजना जैन विश्व भारती के सम्मुख है और हमें पूरा विश्वास है कि आप सबके सहयोग से यह संस्था उसे पूरा कर पाएगी।

श्री जयाचार्य निर्वाण शताब्दी समारोह के उपलक्ष्य में मित्र परिषद्, कलकत्ता ने जैन विश्व भारती प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना हेतु दो लाख रुपयों की राशि प्रदान करने की कृपा की है। उक्त मुद्रणालय जैन विश्व भारती को साहित्य-प्रकाशन के क्षेत्र में द्रुतगति से बढ़ने में सहायक होगा। इस अवसर पर हम मित्र परिषद् के पदाधिकारियों एवं सदस्यों के प्रति हार्दिक धन्यवाद ज्ञापन करते हैं।

श्री जयाचार्य निर्वाण शताब्दी समारोह समिति को भी उनके आर्थिक सौजन्य के लिए हम अनेक धन्यवाद ज्ञापित करते हैं।

लाडनूं (राज०),
सितम्बर, १९८१

श्रीचन्द रामपुरिया
अध्यक्ष, जैन विश्व भारती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

जयाचार्य में मति, बुद्धि और प्रज्ञा की त्रिवेणी प्रवाहित थी। केवल मनन और केवल बुद्धि यथार्थता का स्पर्श करती है, पर उसके पार तक नहीं पहुंच पाती। पार-दर्शन का माध्यम है अन्तर्दृष्टि या प्रज्ञा। जयाचार्य ने अपनी प्रज्ञा से सत्य का अनुभव किया और उसे वाङ्मय में नियोजित किया। उनकी अन्तर्-भाषा है प्रज्ञा और बाहर की भाषा है राजस्थानी। उन्होंने बहुत लिखा। सत्य को बहुत अभिव्यक्ति दी। कोई भी व्यक्ति जितना जानता है, जितना देखता है, उतना उसे अभिव्यक्त नहीं कर पाता। अनुभूति और अभिव्यक्ति—ये दो स्तर भिन्न-भिन्न हैं। जयाचार्य की अनुभूति प्रबल थी, इसलिए अभिव्यक्ति में भी प्रबलता आ गई। अब तक उनकी वाणी बहुत कम प्रकाश में आई थी। वह केवल हस्तलिपियों के भंडार में सुरक्षित पड़ी थी। वह जन-जन तक पहुंच सके, ऐसी व्यवस्था नहीं हो सकी। हम उपादान और निमित्त—दोनों में विश्वास करते हैं। उपादान होने पर भी यदि निमित्त न मिले तो क्रियान्विति नहीं हो सकती। जयाचार्य की निर्वाण-शताब्दी एक निमित्त बना उनके साहित्य को जनता तक पहुंचने का।

लगभग तीन दशकों से हमारे धर्मसंघ में साहित्य की अजस्र धारा बही है। उसमें चार बड़े कार्य संपन्न हुए हैं—

१. आगम साहित्य का सम्पादन
२. तेरापंथ द्विशताब्दी का साहित्य
३. कालूगणी की जन्म शताब्दी का साहित्य
४. जयाचार्य का साहित्य

आचार्यश्री तुलसी के सुदीर्घ शासनकाल में मेरुदंड जैसे कार्य सम्पन्न हुए और हो रहे हैं। आचार्यश्री प्रेरणा के स्रोत हैं। वे नए-नए आयाम उद्घाटित करना चाहते हैं। ये सारे कार्य अधिकांशतया साधु-साध्वियों के श्रम से सम्पन्न हुए हैं। किंचित् मात्रा में गृहस्थ विद्वानों का भी योग रहा है। हमारा साधु-साध्वी समाज अध्ययननिष्ठ होने के साथ-साथ अनुशासननिष्ठ और श्रमनिष्ठ भी है। यही हमारे कार्य की सुविधा है। इस सुविधा के अभाव में ये सारे श्रमसाध्य सम्पादन के कार्य अल्प अवधि में सम्पन्न नहीं किये जा सकते थे।

जयाचार्य के साहित्य सम्पादन का कार्य बहुत बड़ा है। उनके साहित्य की सूची काफी बड़ी है—

१. जयाचार्य-वाङ्मय

चयनिका

१. जय अनुशासन (हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती)

साधना

२. आराधना

साहित्य

३. उपदेशरत्नकथाकोश (अनुमानित दस खण्ड)
४. आख्यान-संग्रह (दो खण्ड)
५. संस्मरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन-वृत्त

६. तेरापंथ के तीन आचार्य

इतिहास

७. कीर्ति गाथा
८. अमर गाथा (दो खण्ड)

विधि (Law)

९. तेरापंथ : मर्यादा और व्यवस्था

आगम-भाष्य

१०. उत्तराध्ययन की जोड़
११. आचारांग की जोड़
१२. आचारांग को टब्बो
१३. ज्ञाता की जोड़
१४. भगवती को जोड़ (अनुमानित आठ खण्ड)
१५. आगम : प्रकीर्ण बिन्दु

तत्त्व-दर्शन

१६. तत्त्व-चर्चा
१७. चर्चा-रत्नमाला
१८. भिक्खु कृत हुंडी की जोड़ (भिक्खु कृत हुंडी सहित)
१९. भ्रम-विध्वंसनम्
२०. प्रश्नोत्तर तत्त्वबोध (वृहत्)
२१. जिनाज्ञामुखमंडन, कुमतिविहंडन
२२. सन्देहविषौषधि, प्रश्नोत्तरसार्द्धशतक
२३. तत्त्व-चर्चापिटक
२४. भिक्षु ग्रन्थ : आगम समन्वय

न्याय, व्याकरण, काव्य

२५. न्याय, व्याकरण और काव्य

२. जयाचार्य के जीवन और साहित्य से सम्बद्ध ग्रन्थ

जीवन-वृत्त

२६. प्रज्ञापुरुष जयाचार्य
२७. जय-सुजश
२८. श्रद्धांजलि-संस्मरण

साहित्य-समीक्षा

२९. जयाचार्य साहित्य मूल्यांकन

जयाचार्य स्मृति ग्रन्थ

३०. आगम-मंथन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधना

३१. लोचन और आत्मालोचन

जीवनवृत्त

३२. चित्रावली

३. आचार्य भिक्षु और तेरापंथ से सम्बद्ध ग्रन्थ

जीवन-वृत्त

३३. आचार्य भिक्षु : जीवन-कथा

३४. आचार्य भिक्षु : धर्म-परिवार

इतिहास

३५. शासन-समुद्र

तत्त्व-दर्शन

३६. जय तत्त्वबोध

ये सब मिलकर ३६ ग्रन्थ हो जाते हैं। इतना बड़ा कार्य बहुत थोड़े वर्षों में सम्पादित और कुछ मात्रा में अनूदित होकर प्रस्तुत हो रहा है। यह श्रमनिष्ठा का एक निदर्शन है। जयाचार्य के ग्रन्थों के मूलपाठ शोधन में सबसे अधिक श्रम आचार्यश्री ने किया है। नाना प्रकार की संघीय प्रवृत्तियों और साहित्यिक रचनाओं में संलग्न एक आचार्य अपने पूर्वज आचार्य के साहित्य-सम्पादन में इतने श्रम और शक्ति का नियोजन करे, यह कृतज्ञता और श्रद्धा का महान् निदर्शन है।

प्रस्तुत रचना एक महाग्रन्थ है। इसके सम्पादन का कार्य भी गुरुतर है। इस गुरुतर कार्य को आचार्य-प्रवर ने गुरुतम बना दिया। जयाचार्य ने मूलपाठ तथा वृत्ति के जिन स्थलों का अनुवाद किया, उन सबकी जोड (पद्यानुवाद) के सामने नियोजित करने से ग्रन्थ की उपयोगिता बढ़ी, पर साथ-साथ सम्पादन कार्य की जटिलता भी बढ़ी।

प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना में जयाचार्य ने बहुत परिश्रम किया था। उनके परिश्रम में हाथ बंटाया था साध्वीप्रमुखा गुलाबसती ने। इसके सम्पादन में आचार्यप्रवर ने भी कम परिश्रम नहीं किया है। पाठ-शोधन से लेकर सम्पादन की सारी प्रकृतियों और प्रवृत्तियों के दायित्व का निर्वाह किया है। इस कार्य में हाथ बंटाया साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी ने। उन्होंने अत्यधिक समय और शक्ति का नियोजन कर इसे गति दी और दीर्घकाल साध्य कार्य को अल्पकाल साध्य बना दिया। इस महान ग्रंथ को 'सम्पादन के कीर्तिमान' के रूप में उपलब्ध कर साहित्यिक और दार्शनिक जगत् में हमारा धर्मसंघ गौरव-मंडित होगा और चिरकाल तक आचार्यप्रवर एवं साध्वीप्रमुखा के काम का मूल्यांकन करता रहेगा। इस सम्पादन में अन्य साध्वियों—कल्पलताजी, जिनप्रभाजी का भी योगदान रहा है। उनका उल्लेख साध्वीप्रमुखा की सम्पादकीय टिप्पणी में किया गया है। संदर्भ की खोज में मुनि हीरालालजी तथा प्रस्तावना लेखन में मुनि श्रीचन्दजी का सहयोग रहा है।

प्रकाशन-कार्य में प्रबन्ध-सम्पादक श्रीचन्दजी रामपुरिया तथा उनके सहयोगी जनों का पूरा श्रम लगा है।

अनेक उंगलियों के समन्वय से समन्वित होकर अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण एक महान् ग्रन्थ जनता के हाथों में आ रहा है, यह हम सबके लिए उल्लास और गौरव का विषय है।

अणुव्रत भवन, नई दिल्ली
१ अगस्त, १९८१

—युवाचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादन का इतिवृत्त

आगम साहित्य का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है भगवती, जो विआहपण्णत्ति या व्याख्याप्रज्ञप्ति के नाम से भी पहचाना जाता है। यह एक बृहत्तम आकर ग्रन्थ है। आकार में यह सब आगमों से बृहत् है, उसी प्रकार इसका प्रतिपाद्य भी सर्वाधिक बहु-आयामी है। भगवती के व्याख्या-ग्रन्थों में वृत्ति, टब्बा, चूर्णि, यन्त्र, जोड आदि कई उल्लेखनीय व्याख्याएं हैं। वृत्ति मुद्रित है और उसकी प्रतियां सुलभ हैं। टब्बा, चूर्णि और यन्त्र उपलब्ध हैं, पर मुद्रित नहीं हैं, इसलिए सहज सुलभ नहीं है। भगवती-जोड की हस्तलिखित प्रतियां तेरापन्थ धर्मसंघ के पुस्तक-भंडार में सुरक्षित हैं।

भगवती-जोड़ के रचयिता हैं तेरापंथ धर्मसंघ के चतुर्थ आचार्य श्रीमद् जयाचार्य। उन्होंने अपने जीवन में साहित्य की जो अजस्र धारा बहाई, विरल साहित्यकार ही बहा सकते हैं। उनकी साहित्यिक चेतना का मूल केन्द्र राजस्थानी भाषा रहा है। उन्होंने साढ़े तीन लाख पद्य-परिमाण साहित्य का सृजन कर राजस्थानी साहित्य को समृद्ध ही नहीं बनाया, एक कीर्तिमान स्थापित कर दिया।

जयाचार्य की साहित्यिक कृतियों में 'भगवती-जोड़' सर्वाधिक बड़ी कृति है। भगवती सूत्र का राजस्थानी भाषा में पद्यानुवाद कोई सरल काम नहीं है, पर जयाचार्य ने उसे जिस सहजता से सम्पादित किया है, आश्चर्य का विषय है। लगभग सोलह हजार ग्रन्थाग्र वाले भगवती सूत्र को उन्होंने साठ हजार पद्यों में विश्लेषित कर भगवती सूत्र के मूल प्रतिपाद्य को तो सुबोध बनाया ही, यत्र-तत्र आलोच्य विषयों पर छोटी-बड़ी समीक्षाएं लिखकर हर विषय को स्पष्ट और संगतिपूर्ण बनाने का प्रयास किया। जिन तथ्यों के सम्बन्ध में वृत्तिकार के साथ उनकी सहमति नहीं थी, उसका उन्होंने स्पष्ट उल्लेख किया और असहमत पक्ष पर तर्क प्रस्तुत कर अपने मन्तव्य का प्रतिपादन किया है। कुल मिलाकर भगवती-जोड़ एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसकी तुलना में कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं आ सकता।

आचार्यवर के सान्निध्य में जयाचार्य के साहित्य पर काम करने की दृष्टि से गोष्ठियां चलीं। काम का विभाजन हुआ। अनेक साधु-साध्वियों और विद्वानों को कार्य-भार सौंपा गया। मैं उस समय 'भगवती' का हिन्दी अनुवाद कर रही थी। इस दृष्टि से मुझे भगवती का काम सौंपा गया। क्या काम करना है? कैसे करना है? इस सम्बन्ध में उस समय कुछ निर्णय नहीं हुआ। कुछ समय बाद आचार्यश्री ने कहा---"भगवती-जोड़ का सम्पादन करना है।" इस निर्देश के बाद मैंने एक दिन भगवती-जोड़ की हस्तलिखित प्रति देखी, काम दुरूह लगा। इस सम्बन्ध में आचार्यवर से निवेदन किया तो आपने कहा—यह काम तुम मेरे साथ बैठकर करना। मेरी समस्या समाप्त हो गई।

द्वितीय ज्येष्ठ कृष्ण नवमी वि० सं० २०३७ को प्रवचन सम्पन्न होने के बाद 'भगवती-जोड़' का वाचन शुरू किया। उस दिन आचार्यश्री और युवाचार्यश्री दोनों का युगपत् सान्निध्य प्राप्त हुआ। वाचन शुरू करने के साथ ही आचार्यवर ने चिन्तन दिया---जोड़ जिस रूप में है, उसी रूप में वह जनता के हाथों में पहुंचेगी तो अधिक उपयोगी नहीं हो सकेगी। जोड़ के सामने आगम और वृत्ति के उन स्थलों को, जिनके आधार पर जोड़ की गई है, उद्धृत कर दिया जाए तो विद्वज्जगत् में इसकी उपयोगिता बहुगुणित हो सकती है। अभी हम प्रथम शतक को इस रूप में प्रस्तुत कर देख लें कि यह काम कैसा होता है। आचार्यश्री का यह चिन्तन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युवाचार्यश्री को बहुत अच्छा लगा। उसी समय उस दृष्टि से कार्य प्रारम्भ कर दिया।

इस कार्य में सबसे पहला काम था 'जैन विश्व भारती' द्वारा अधिगृहीत भगवती-जोड़ की शुद्धता को प्रमाणित करना। इसके लिए भी आचार्यवर का सान्निध्य अपेक्षित था। क्योंकि इस प्रकार की कृतियों का अध्ययन न होने के कारण स्वतन्त्र काम करने में पग-पग पर अवरोध संभावित था। आचार्यवर ने अनुग्रह किया और अधिगृहीत ग्रन्थ को मिलाने के लिए अपना पूरा समय दिया। उस समय मेरे सामने केवल एक फाइल थी और आचार्यश्री के आसपास अंगसुत्ताणि भाग २, भगवती की वृत्ति, केशर भगवती, पंचांगी भगवती आदि कई प्रतियां थीं। जहां कहीं तथ्य स्पष्ट नहीं होते, आचार्यश्री मूल आगम और वृत्ति को सामने रखकर उस स्थल में संशोधन कर देते। आचार्य की मर्यादा आचार्य के हाथ में, यह तेरापंथ धर्मसंघ के संविधान का निर्देशक तत्त्व है। इसी के आधार पर आचार्य की कृतियां भी भावी आचार्यों की अपनी कृतियां बन जाती हैं। इस बात को ध्यान में रखकर आचार्यश्री ने पचासों स्थलों पर शब्दों और मात्राओं की दृष्टि से पद्यों में परिवर्तन किया। परिवर्तन करते समय आचार्यवर के मुंह से सहज श्रद्धा और विनम्रता के साथ शब्द निकलते--जयाचार्य की हर रचना पूर्ण है, अपूर्व है और अनाग्रहबुद्धि से संदृब्ध है। फिर भी हम अपनी ओर से जयाचार्य की किंचित् भी आशातना न करते हुए, उनकी दृष्टि का अतिक्रमण न करते हुए शुद्ध भाव से यत्र-तत्र अपेक्षित परिवर्तन करते हैं, इसके लिए संभवतः वे हमें अपनी अनुमति दे रहे हैं।" कितना उदार और ऋजु दृष्टिकोण है आचार्यप्रवर का।

आषाढ़ शुक्ला सप्तमी को प्रथम शतक का काम पूरा हुआ। तयांलीस दिन का समय काफी लम्बा समय होता है, पर आचार्यश्री दिन-भर कई कामों में संलग्न रहते थे। समय के अनुपात को देखते हुए काम अच्छा हुआ। एक शतक का व्यवस्थित काम देखकर आचार्यवर ने दूसरे शतक को भी उसी रूप में सम्पादित करने का निर्णय ले लिया। श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को दूसरे शतक का काम प्रारम्भ किया और भाद्र शुक्ला तृतीया को पूरा हो गया। इस बार बीच-बीच में कुछ अवरोध भी आ गए। काम की गति को देखते हुए काफी समय की अपेक्षा थी, पर आचार्यवर ने संकल्प कर लिया कि संवत्सरी से पहले-पहले काम पूरा करना है। अतिरिक्त परिश्रम कर आचार्यवर ने तृतीया तक काम पूरा कर दिया।

भगवती-जोड़ प्रकाशन की पहली शृंखला में दो ही शतक के मुद्रण का चिन्तन था। इस दृष्टि से जोड़ का काम पूरा हो गया। 'जैन विश्व भारती' की ओर से उसके अधिग्रहण का काम भी चातुर्मास की सम्पन्नता तक पूरा हो गया। अधिगृहीत प्रति को मिलाने का काम साध्वियों से करवा लिया।

आचार्यवर के जयपुर प्रवास काल में जयाचार्य निर्वाण समिति की एक गोष्ठी हुई। साहित्य विभाग की मांग थी कि मुद्रण की पहली शृंखला में आने वाले ग्रन्थों की पांडुलिपियां अविलम्ब मिल जानी चाहिए। भगवती-जोड़ की पांडुलिपि अन्तिम रूप से देखकर देने का प्रसंग आया तो ज्ञात हुआ कि उसमें कई स्थलों पर जोड़ का संवादी पाठ पूरा व्यवस्थित नहीं है। एक बार फिर आचार्यवर के सान्निध्य में उसका पूरा पारायण किया और मूल तथा वृत्ति का पाठ विभक्त कर उसे जोड़ का संवादी बनाया। यत्र-तत्र पाद-टिप्पण लिखने की अपेक्षा अनुभव हुई, वे आचार्यश्री और युवाचार्यश्री लिखाते रहे।

प्रथम दो शतक के फर्मे मुद्रित होकर आने लगे। तीन सौ सवा तीन सौ पृष्ठ की सामग्री का अनुमान लगाया गया। पुस्तक के आकार को देखते हुए पृष्ठ कुछ कम लगे। अगले दो शतकों को इसी प्रकार सम्पादित करने का चिन्तन आया और आचार्यवर ने अपनी स्वीकृति दे दी। ये शतक कुछ छोटे भी थे, और प्रेस वालों की ओर से शीघ्रता की मांग भी थी। दिन-रात में सात-सात घंटा इस काम में लगाया और ग्यारह दिनों में काम पूरा हो गया।

भगवती-जोड़ के प्रथम चार शतकों के सम्पादन में आचार्यवर का पूरा समय और श्रम लगा। यदि आचार्यश्री इतना अनुग्रह नहीं करते तो भगवती-जोड़ को इस रूप में मुद्रण के योग्य बनाना संभव नहीं था। आचार्यश्री की निर्मल प्रज्ञा में सैद्धान्तिक ज्ञान की जितनी गहराई है, व्यावहारिक ज्ञान और भाषा-ज्ञान भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उतना ही विशद है। इसके साथ भगवती-जोड़ में प्राचीन रागिनियों का भी बहुत उपयोग हुआ। केवल चार शतकों में ७१ रागिनियां हैं। उनका बोध न हो तो भी काम में कठिनाई उपस्थित होती है। आचार्यवर का रागिनी-बोध भी अपने-आप में पूर्ण है। इसलिए आपके सान्निध्य में काम करने से यह बाधा भी निरस्त हो गई। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि आचार्यश्री इस काम में इतनी रुचि नहीं लेते तो इस ग्रन्थ का सम्पादन मेरे वश की बात नहीं थी। इन सब कार्यों के साथ अन्तिम रूप से प्रूफ-निरीक्षण के कार्य में भी आचार्यवर ने अपना पूरा समय लगाया। ऐसा नहीं होता तो इस ग्रन्थ में कुछ ऐसी भूलें रह जातीं, जिन्हें पकड़ना भी कठिन था और उसके अभाव में सम्बन्धित सन्दर्भ का सम्यक् अर्थ-बोध भी नहीं हो पाता।

भगवती-जोड़ की पहली शृंखला में चार शतकों का सम्पादन हो पाया है। प्रथम शतक में उनतीस गीत हैं, दूसरे शतक में सतरह गीत हैं, तीसरे शतक में छब्बीस गीत हैं और चौथा शतक बहुत छोटा है--उसमें केवल एक गीत है। चारों शतकों की संयुक्त संख्या तिहत्तर है।

जयाचार्य के पद्य-साहित्य को सम्पादित करने के सन्दर्भ में आचार्यवर द्वारा कुछ मानक निश्चित किए गए, वे इस प्रकार हैं--

१. ढाल, दोहों और सोरठों की संख्या एक।

२. क्रमांक पद्यों की आदि में लगाए जाएं।

३. ढाल की लय नीचे पादटिप्पण में दी जाए।

४. वार्तिका के बाद चालू ढाल की लय या दोहों, सोरठों को पुनरुक्त करने की अपेक्षा नहीं है।

५. ढाल का 'ध्रुवपद' पहले लिया जाए। जहां एक ढाल में कई ध्रुवपद आ गए, वहां उनको उस पद्य की आदि में ले लिया जाए अथवा उनको कोष्ठक में रखा जा सकता है।

६. रागिनी में आने वाले हो, जी, कांई, रे, लाल, प्रभुजी आदि शब्दों को प्रायः ध्रुवपद और एक पद्य में प्रतीक रूप में रखकर शेष स्थानों से हटा दिया जाए। जहां कहीं सन्देह उत्पन्न होने की स्थिति है, वहां गोयम, प्रभुजी आदि शब्दों को पूर्ण या अपूर्ण रूप में रखा जा सकता है।

उपर्युक्त मानकों के अतिरिक्त भगवती-जोड़ में जो विशेष क्रम रखा गया है, उसकी सूचना के बिना पाठक असमंजस में आ सकता है। इस दृष्टि से कुछ आवश्यक सूचनाएं संकलित कर दी गई हैं--

१. भगवती की जोड़ के समानान्तर अंगसुत्ताणि भाग २ का पाठ उद्धृत किया गया है।

२. यत्र-तत्र जोड़ संक्षिप्त पाठ के आधार पर है और अंगसुत्ताणि में पाठ पूरा किया हुआ है, वहां पाद-टिप्पण में दिए गए संक्षिप्त पाठों का उपयोग किया गया है।

३. कहीं अंगसुत्ताणि के पाद-टिप्पण में विस्तृत वाचना का पाठ लिया गया है और मूल में संक्षिप्त पाठ रखा है। ऐसे प्रसंग में, जहाँ जोड़ विस्तृत वाचना के आधार पर है, पाद-टिप्पण का पाठ उद्धृत किया गया है।

४. पाद-टिप्पण के पाठों में प्रमाण उन्हीं सूत्रों का दिया गया है, जिनके वे पाद-टिप्पण हैं।

५. सूत्र-संख्या का प्रमाण प्रायः वहां दिया गया है, जहां सूत्र पूरे होते हैं। पर कहीं-कहीं सूत्र के बीच में टीका या बड़ी समीक्षा के कारण लम्बा अन्तराल प्रतीत हुआ, वहां सूत्र के खंडित पाठ पर भी प्रमाण दिया गया है।

६. जयाचार्य की स्वतन्त्र समीक्षाओं को उद्धरण-चिह्नों में बांधकर उसके नीचे कोष्ठक में (ज० स०) लिखा गया है, जिसका अर्थ है—जयाचार्य की समीक्षा।

७. जोड़ के पारिभाषिक शब्दों और विशेष संज्ञावाचक नामों को परिशिष्ट में दिया गया है।

८. इस ग्रन्थ में कुछ सांकेतिक शब्दों का प्रयोग किया गया है, जैसे—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श० शतक
उ० उद्देशक
ढा० ढाल
वा० वार्तिका
वृ०-प० वृत्ति-पत्र

सम्पादन और मुद्रण के मध्य का एक काम है 'प्रूफ-निरीक्षण'। सामान्यतः हर प्रेस में प्रूफ-निरीक्षकों की व्यवस्था होती है, पर भगवती-जोड़ के प्रूफ-निरीक्षण का काम हमने अपने हाथ में रखा; क्योंकि जोड़ की भाषा राजस्थानी है और उसके सामने मूल पाठ और वृत्ति पाठ आने से प्राकृत और संस्कृत भाषाएं भी इसमें आ गई। पाद-टिप्पण हिन्दी भाषा में लिखे गए हैं। इस दृष्टि से प्रूफ-निरीक्षक को राजस्थानी, हिन्दी, प्राकृत और संस्कृत—इन चार भाषाओं का जानकार होना आवश्यक था।

एक बार प्रूफ देखने मात्र से पूरा संशोधन हो जाए, यह संभव नहीं था। समय कम था और काम जल्दी पूरा करना था। इस दृष्टि से साध्वी जिनप्रभाजी और साध्वी कल्पलताजी ने भी कठिन परिश्रम किया। साध्वी जिनप्रभाजी ने तो अपने अन्य काम गौण कर सारा समय इसी काम में लगा दिया। इनके अतिरिक्त साध्वी सूरजकुमारीजी (थैलासर), सोमलताजी, विमलप्रज्ञाजी, चित्रलेखाजी, शारदाश्रीजी आदि साध्वियों के श्रम-सीकरों का भी इसमें यथासंभव उपयोग हुआ है। इनके इस श्रम-दान को प्रज्ञापुरुष जयाचार्य के प्रति इनकी विनम्र श्रद्धाञ्जलि के रूप में स्वीकृत करना ही अधिक उपयुक्त रहेगा।

प्रज्ञापुरुष जयाचार्य ने अपनी साहित्यिक चेतना से तेरापंथ धर्मसंघ में साहित्य की नई विधाओं का प्रयोग कर अपनी भावी पीढ़ी का पथ प्रशस्त कर दिया। उनकी निर्वाण-शताब्दी के पुण्य अवसर पर उनको एक महान् साहित्यकार के रूप में उजागर करने वाले उनके साहित्य से संपृक्त होने में मुझे सात्विक गौरव का अनुभव हो रहा है। उनकी साहित्यिक चेतना को अन्तहीन नमन।

परम श्रद्धास्पद आचार्यवर के सान्निध्य में बैठकर उनके अमोघ मार्गदर्शन में मैं अपनी साहित्यिक यात्रा निर्बाध रूप से करती रहूं, यही मुझे अभीष्ट है।

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

भगवान महावीर की वाणी का संकलन अंग सूत्रों में मिलता है। वे बारह हैं। इस समय बारहवां अंग—दृष्टिवाद उपलब्ध नहीं है। शेष ग्यारह अंगों में पांचवां अंग सबसे बड़ा अंग है। उसका नाम है—व्याख्याप्रज्ञप्ति और भगवती।

वर्तमान में भगवती नाम अधिक प्रचलित है। प्रस्तुत आगम में ३६ हजार प्रश्नों के व्याकरण उपलब्ध थे। वर्तमान आकार में वे सब उपलब्ध नहीं हैं, फिर भी सैकड़ों-सैकड़ों प्रश्नों के व्याकरण आज भी उपलब्ध हैं। तत्त्व-विद्या और दार्शनिक दृष्टि से यह अनुपम ग्रन्थ है। जीव-विज्ञान, परमाणु-विज्ञान, सृष्टि-विद्या, रहस्यवाद, अध्यात्म-विद्या आदि अनेक दृष्टिकोणों से इसका गंभीर अध्ययन, अन्वेषण और अनुसंधान अपेक्षित है।

विभाग और अवान्तर विभाग

समवायांग और नंदीसूत्र के अनुसार प्रस्तुत आगम के सौ से अधिक अध्ययन, दस हजार उद्देशक और दस हजार समुद्देशक हैं।[1] इसका वर्तमान आकार उक्त विवरण से भिन्न है। वर्तमान में इसके एक सौ अड़तीस शत या शतक और उन्नीस सौ पच्चीस उद्देशक मिलते हैं। प्रथम बत्तीस शतक स्वतंत्र हैं। तेतीस से उनचालीस तक के सात शतक बारह-बारह शतकों के समवाय हैं। चालीसवां शतक इक्कीस शतकों का समवाय है। इकचालीसवां शतक स्वतंत्र है। कुल मिलाकर एक सौ अड़तीस शतक होते हैं। उनमें इकचालीस मुख्य और शेष अवान्तर शतक हैं। शतकों में उद्देशक तथा अक्षर परिणाम इस प्रकार हैं—

शतक	उद्देशक	अक्षर परिमाण	शतक	उद्देशक	अक्षर परिणाम
१	१०	३३८४१	१२	१०	३२८०८
२	१०	२३८१८	१३	१०	२१९१४
३	१०	३६७०२	१४	१०	१६०३३
४	१०	७५३	१५	×	३९८१२
५	१०	२५६९१	१६	१४	१५९३९
६	१०	१८६५२	१७	१७	८४१२
७	१०	२४९३५	१८	१०	२२४४३
८	१०	४८५३४	१९	१०	८०२७
९	३४	४५८५९	२०	१०	१९८७१
१०	३४	९९०७	२१	८०	१६३०
११	०२	३२३३८	२२	६०	१०६८

१. समवाओ, सूत्र ९३ : नंदी सू० ८५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३	५०	७१५	३३ (१२)	१२४	३०८६
२४	२४	३६६२६	३४ (१२)	१२४	८६६४
२५	१२	४५१०३	३५ (१२)	१३२	४१८१
२६	११	४४५५	३६ (१२)	१३२	७३१
२७	११	१६०	३७ (१२)	१३२	११५
२८	११	६६४	३८ (१२)	१३२	८७
२६	११	१०२७	३६ (१२)	१३२	१३६
३०	११	४७६४	४० (२१)	२३१	२७३४
३१	२८	२३४४	४१	१६६	३५१६
३२	२८	३६३	कुल १३८	१६२३	६ १८,२२४

व्याख्या ग्रन्थ

भगवती के दो प्राचीन व्याख्या ग्रन्थ मिलते हैं—चूर्णि और वृत्ति। चूर्णि अभी मुद्रित नहीं है। वह हस्तलिखित मिलती है, उसकी पत्र संख्या ८० है। उसका ग्रन्थमान ३५६० श्लोक परिमाण है। उसके प्रारंभ में मंगलाचरण नहीं है और अन्त में प्रशस्ति नहीं है। रचनाकार और रचनाकाल का कोई उल्लेख नहीं है। चूर्णि की भाषा प्राकृत-प्रधान है। इसे प्राकृत-प्रधान चूर्णियों—नंदिचूर्णि, अनुयोगद्वारचूर्णि, दशवैकालिक-चूर्णि, आचारांगचूर्णि, सूत्रकृतांगचूर्णि और जीतकल्पचूर्णि की कोटि में रखा जाता है।

वृत्ति—इसके रचनाकार हैं अभयदेव सूरि। उनका अस्तित्व काल वि० सं० (१०७५ से ११५०) माना जाता है। इसका रचना काल वि० सं० ११२८ है। रचना स्थल है अणहिलपाटन। इसका ग्रन्थमान अठारह हजार छह सौ सोलह (१८६१६) श्लोक परिमाण है। इसकी भाषा संस्कृत है। वृत्तिकार ने अपने से पूर्ववर्त्ती टीका और चूर्णि का उल्लेख किया है।[1] उनके सामने चूर्णि और टीका दोनों रहे हैं। उन्होंने टीकाकार के लिए मूल टीकाकृत और टीकाकार शब्द का प्रयोग किया है।[2]

आधुनिक व्याख्याएं

प्रस्तुत आगम की एक गद्यात्मक व्याख्या मिलती है। उसका नाम है टब्बा (स्तवक) वह वृत्ति के आधार पर किया हुआ संक्षिप्त विवरण है। जयाचार्य ने धर्मसी कृत यंत्र का बार-बार उल्लेख किया है।

भगवती सूत्र की सबसे बड़ी व्याख्या है—भगवती की जोड़। इसके कर्ता हैं श्रीमद् जयाचार्य, तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य। इसकी भाषा है राजस्थानी। यह पद्यात्मक व्याख्या है, इसलिए इसे जोड़ कहा जाता है। भगवती की जोड़—इसका अर्थ है भगवती की पद्यात्मक व्याख्या। आचार्यवर ने पंच परमेष्ठी तथा अपने आचार्यों को नमस्कार कर प्रस्तुत जोड़ की रचना का संकल्प किया है—

ऊं पंच परमेष्ठि नमि, भिक्षु भारीमाल।
नृपति-इंदु प्रणमी रचूं, भगवइ जोड़ विशाल[3] ॥१॥

---

१. भगवतीवृत्ति पत्र १ श्लोक ३ :

एतट्टीका-चूर्णी-जीवाभिगमादिवृत्तिलेशांश्च।
संयोज्य पञ्चमाङ्गं विवृणोमि विशेषतः किञ्चित् ॥

२. (क) भगवतीवृत्ति पत्र १२

मूलटीकाकृता तु 'उच्छ्रदसरीरसंखित्तविउलतेयलेस्स' त्ति कर्मधारयं कृत्वा व्याख्यातमिति।

(ख) भगवतीवृत्ति पत्र ६८

टीकाकार व्याख्यातम्।

३. भगवती-जोड़ ग० १ उ० १ ढा० १।१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस रचना में उन्होंने अपने आगम-ज्ञान का पूरा उपयोग किया है। पांच सौ एक गीतिकाओं में निबद्ध इस जोड़ का आकार ही विशाल नहीं है, इसका प्रकार भी विशाल है।

जयाचार्य ने इसकी रचना में अभयदेवसूरि की वृत्ति, टब्बा, धर्मसिंह मुनि के यंत्र को आधार बनाया था। सबसे अधिक आधार उन्होंने आगम सूत्रों का लिया। प्रस्तुत रचना का अध्ययन तीन दृष्टिकोणों से करना हमें इष्ट है—

(१) सहायक ग्रन्थ और भगवती की जोड़।

(२) आगम सूत्र और भगवती की जोड़।

(३) जयाचार्य का स्वतंत्र दृष्टिकोण और भगवती की जोड़।

प्रस्तुत रचना को समझने से पूर्व रचनाकार को समझना बहुत जरूरी है।

जयाचार्य विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी के एक महान् जैन आचार्य हैं। वे तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य और आचार्य भिक्षु के महान् भाष्यकार हैं। वे बहुश्रुत हैं। संस्कृत और प्राकृत के अनेक ग्रन्थों के अध्येता हैं। अध्ययन से भी अधिक उनकी प्रतिभा है। वे अपनी प्रतिभा से नए अर्थ खोजते हैं और अनेक विरोधाभासों का परिहार करते हैं। उनका प्रमुख विषय है—आगम मन्थन और आगम दोहन। आगमों के विषय में मन्थन और दोहन करने वाले विरल आचार्यों में विरलतर हैं जयाचार्य।

प्रस्तुत रचना उन जयाचार्य की लेखनी से प्रसूत है। इस कार्य में उन्हें लेखनी और सरस्वती दोनों का उत्तम प्रसाद मिला है।

द्रव्यलिपि वन्दनीय नहीं है

भगवती सूत्र के प्रारंभ में नमस्कार की शृंखला में 'नमो बंभीए लिवीए' पाठ मिलता है। वृत्तिकार ने इसका अर्थ 'ब्राह्मी लिपि को नमस्कार' किया है। जयाचार्य ने इसका अर्थ 'ऋषभ को नमस्कार' किया है। भगवान ऋषभ ब्राह्मी लिपि के प्रवर्तक थे एवंभूत नय की दृष्टि से लिपिकर्त्ता को भी लिपि कहा जा सकता है। इसके समर्थन में आचार्यवर ने प्रस्थक का उदाहरण प्रस्तुत किया है। प्रस्थक के अर्थ को जानने वाला व्यक्ति प्रस्थक कहलाता है, वैसे ही ब्राह्मी लिपि को जानने वाले व्यक्ति को ब्राह्मी लिपि कहा जा सकता है। जिसके द्वारा प्रस्थक निष्पन्न होता है उसे प्रस्थक कहा जाता है, वैसे ही जिसके द्वारा ब्राह्मी लिपि प्रवर्तित है उसे ब्राह्मी लिपि कहा जा सकता है।

ब्राह्मी लिपि का अभिधात्मक अर्थ ब्राह्मी लिपि हो सकता है किन्तु सर्वत्र केवल अभिधा से ही काम नहीं चलता। किसी भी वाक्य का अर्थ करते समय पौर्वापर्य परंपरा और प्रसंग का ध्यान रखना होता है। लिपि और भाषा ये ज्ञान के साधन हैं, इसलिए इनके दो रूप बन जाते हैं—द्रव्यलिपि और भावलिपि। द्रव्य-भाषा और भावभाषा। जयाचार्य की स्थापना है कि द्रव्यलिपि अचेतन है, इसलिए वह नमस्कार के योग्य नहीं है। इस स्थापना का उन्होंने सयुक्तिक समर्थन किया है—

१. नमो बंभीए लिवीए, लिपि कर्त्ता नाभेय।
चरण सहित धुर जिन लिपिक, अर्थ धर्मसी एह॥

२. पाथा ना कर्त्ता भणी, पाथौ कहिये ताहि।
एवंभूत नय नैं मते, अनुयोगदुवार रे मांहि॥

३. अथवा लिपि ते भावलिपि जे मुनि नैं आधार।
नमस्कार छै तेहनैं, एहवूं दीसै सार॥

४. तीर्थ नाम जिम सूत्र नो, ते संघ नैं आधार।
तिण सूं संघ नैं तीर्थ कह्यूं, तिम भावे लिपि सार॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. वृत्तिकार द्रव्यलिपि कही, ते लिपि छै गुणशून्य।
नमस्कार तेहनै करी, ते तो बात जबून्य॥
६. द्रव्य निक्षेपो गुण-रहित, वंदन योग्य न ताम।
समवायंगे देख लो, द्रव्य भाव जिन नाम॥
७. भरत एरवत क्षेत्र नां, अनागत जिनराय।
चउवीसी नां नाम गिण, वंदे पाठ न ताय॥
८. वलि एरवत क्षेत्र नी, चउवीसी वर्त्तमान।
ठांम-ठांम वंदे कह्यो, ए गुण-सहित सुजान॥
९. वर्त्तमान चउवीसी ए, भरत क्षेत्र नीं ताहि।
ठांम-ठांम वंदे कह्यो, जीवो लोगस्स मांहि॥
१०. ते माटे द्रव्यलिपि भणी, द्रव्य सूत्र नैं सोय।
नमस्कार किम कीजियै, हिये विमासी जोय॥
११. वृत्तिकार द्रव्यलिपि भणी, थाप्यो छै नमस्कार।
सूत्र थकी मिलतो नथी, ते अर्थ अवधार॥[1]

इसी प्रकार जयाचार्य ने 'नमो सुयस्स' इस पाठ पर भी अपनी समीक्षा प्रस्तुत की है। श्रुत के भी दो प्रकार होते हैं—द्रव्यश्रुत और भावश्रुत। शब्द की आकृति और उसका उच्चारण ये दोनों द्रव्यश्रुत हैं। शब्द से होने वाला अर्थ-बोध भावश्रुत है। पारिभाषिक शब्दावली में शब्द की आकृति या लिपि को संज्ञाक्षर, उसके उच्चारण को व्यंजनाक्षर और उससे होने वाले अर्थ-बोध को लब्ध्यक्षर कहा जाता है।[2] लिपि और उच्चारण ये दोनों ज्ञान के निमित्त होते हैं। जयाचार्य निमित्तों को नमस्कार करने के पक्ष में नहीं हैं। उनकी दृष्टि में भावलिपि और भावश्रुत ही नमस्करणीय है। उन्होंने लिपि और श्रुत का भेद अपनी दृष्टि से किया है। लिपि शब्द देशश्रुत वाले संयमी का सूचक है और श्रुत शब्द सर्वश्रुत वाले संयमी का सूचक है[3]—

नमोश्रुत ते भावश्रुत, चरण युक्त श्रुतवंत।
लिपि शब्दे तो देशश्रुत, इहां सर्व श्रुतमंत॥

इस विषय की वार्तिका में उन्होंने विस्तार से चर्चा की है।[4]

मंगल-सूत्र

प्रस्तुत आगम के प्रारंभ में नमस्कार महामंत्र, ब्राह्मीलिपि को नमस्कार और श्रुत को नमस्कार—ये तीन मंगल-सूत्र मिलते हैं। आगम रचनाकाल में ग्रंथ के प्रारंभ में मंगल-विन्यास करने की पद्धति नहीं थी। यह पद्धति आगम रचना के उत्तर काल में प्रारंभ हुई। अभयदेवसूरि ने स्वयं एक प्रश्न उपस्थित किया है—अधिकृत शास्त्र स्वयं मंगल है फिर मंगल-विन्यास का क्या प्रजोजन? इससे अनवस्था दोष प्राप्त होगा। इस प्रश्न के उत्तर में टीकाकार ने लिखा है—यह तर्क सही है, फिर भी शिष्य मति को मंगलमय बनाने तथा शिष्ट-समय परिपालन के लिए शास्त्र के प्रारंभ में मंगल-विन्यास किया गया है।[5] टीकाकार ने यदि ऐतिहासिक

१. भगवती जोड़ श० १ उ० १ ढा० १।१६६-१७६
२. नंदी सूत्र, ५६-५६
३. भगवती-जोड़ श० १ उ० १ ढा० १।१६०
४. भगवती-जोड़ श० १ उ० १ ढा० १।१६० से आगे की वार्तिका।
५. भगवतीवृत्ति पत्र ५
ननु अधिकृतशास्त्रस्यैव मंगलत्वात् किं मंगलेन ?
अनवस्थादिदोषप्राप्तेः, सत्यं, किन्तु शिष्यमतिमंगलपरिग्रहार्थं मंगलोपादानं शिष्टसमयपरिपालनाय वेत्युक्तमेवेति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टि से विचार किया होता तो स्वयं द्वारा प्रस्तुत प्रश्न का समाधान दूसरा ही होता। तीनों मंगलसूत्र रचनाकालिक नहीं हैं, वे उत्तरकाल में जुड़े हैं, इसीलिए चूर्णि और मूल टीका में इनकी व्याख्या नहीं मिलती। अभयदेवसूरि ने स्वयं लिखा है— वृत्तिकार ने पूर्व व्याख्यात नमस्कार आदि ग्रन्थ की व्याख्या नहीं की है, उनके सामने इसका कोई कारण रहा है।[1] अभयदेवसूरि ने उस कारण को स्पष्ट नहीं किया है, किन्तु वह कारण उनके इस वाक्य में स्पष्ट है कि अधिकृत-शास्त्र स्वयं मंगल है, फिर उसके लिए नमस्कार मंगल का कोई प्रयोजन नहीं है।

जयाचार्य ने अभयदेवसूरि के मत का अनुवाद मात्र किया है, उसकी कोई समीक्षा नहीं की है।[2]

नमस्कारादिक ताहि, रचना पूर्व कही तिका।
मूल वृत्ति रै मांहि, न कही किण कारण थकी॥
ब्राह्मीलिपि नमस्कार, मूल वृत्ति में ना कीयो।
तास न्याय जे सार, बुद्धिवंत हिये विचारजो॥

प्रस्तुत आगम पांचवां अंग है। उपलब्ध ग्यारह अंगों में प्रस्तुत आगम को छोड़कर किसी भी अंग सूत्र के प्रारंभ में नमस्कार मंगल उपलब्ध नहीं है।

सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एव मक्खायं (आयारो १।१।१)
बुज्झेज्ज तिउट्टेज्जा, बंधणं परिजाणिया। (सूयगडो १।१।१)
सुयं मे आउसं ! तेणं भगवता एवमक्खायं। (ठाणं १।१)
सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं। (समवाओ १।१)
तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था। (नायाधम्मकहाओ १।१।१)
तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नाम नयरी होत्था। (उवासगदसाओ १।१)
तेणं कालेणं तेणं समएणं चम्पा नामं नयरी। पुण्णभद्दे चेइए (अंतगडदसाओ १।१)
तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। (अणुत्तरोववाइयदसाओ १।१)
जंबू ! इणमो अण्हय-संवर-विणिच्छयं पवयणस्स निस्संदं। (पण्हावागरणाइं १।१)
तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था। (विवागसुयं १।१।१)

आचारांग आदि अंगों के प्रारंभ सूत्रों का अध्ययन करने पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि केवल प्रस्तुत अंग के प्रारंभ में ही नमस्कार मंगल का विन्यास क्यों ? इसका उत्तर पाना कठिन नहीं है। रचनाकाल में प्रस्तुत आगम का प्रारंभ भी "तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था" इस वाक्य से होता था किन्तु लिपिकारों द्वारा लिखित नमस्कार मंगल मूलसूत्र के साथ जुड़ गए और उन्हें मौलिक अंग मान लिया गया।

अनुवाद

प्रस्तुत ग्रन्थ अनुवाद ग्रन्थ है। जयाचार्य ने मूल पाठ का अनुवाद किया है, साथ-साथ अभयदेवसूरि कृत वृत्ति के मुख्य-मुख्य अंशों का भी अनुवाद किया है।

इस दृष्टि से प्रस्तुत ग्रन्थ भगवती सूत्र तथा उसकी टीका इन दोनों का अनुवाद ग्रन्थ है। इसमें वृत्ति की व्याख्या बहुत सरलता के साथ प्रस्तुत हुई है। उदाहरण के लिए कुछेक स्थल द्रष्टव्य हैं—

१. मूल पाठ—संखित्तविउलतेयलेसे

वृत्ति—संक्षिप्ता—शरीरान्तर्लीनत्वेन ह्रस्वतां गता विपुलाविस्तीर्णा अनेक योजनप्रमाणक्षेत्राश्रित-

१. भगवतीवृत्ति, पत्र ७
अयं च प्राग् व्याख्यातो नमस्कारादिको ग्रन्थो वृत्तिकृता न व्याख्यातः कुतोपि कारणादिति।
२. भगवती-जोड़ श० १ उ० १ ढा० १।१६१,१६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्तुदहनसमर्थत्वात् तेजोलेश्या— विशिष्टतपोजन्यलब्धि विशेषप्रभवा तेजोज्वाला यस्य[1] स तथा।

अनुवाद

बहु योजन क्षेत्र रै मांहि, वस्तु दहन समर्थ कहिवाइ।
एहवी विपुल तेजोलेश्या ज्वाला, विशिष्ट तप करि ऊपनी विशाला॥
ते संक्षेपी तनु अंतर कीनी, आ तो ह्रस्व पणै करि लीनी।[2]

२. मूल पाठ—णिच्चं कुसुमिय-माइय-लवइय-थवइय।

अनुवाद

फूल्या थका ते रहै सदा, मयुर्या ते पुष्प उपन्न।
अंकुरवत् पल्लव ऊपना, थवइ पुष्प डोडा जन्न॥
गुल्म लता समूह ऊपनों, गुच्छा ते पत्र समूह।
वृक्षां नीं सम श्रेणि तिहां, बे-बे तरु एकठा रूह॥[3]

३. मूलपाठ—विणमिय, पणमिय

वृत्ति—'विणमिय' त्ति विशेषेण पुष्पफलभरेण नमितमितिकृत्वा विनमितं 'पणमिय' त्ति तेनैव नमयितु मारब्धत्वात् प्रणमितम्।[4]

अनुवाद

विशेष फल-फूल करी नम्या, आरंभ्या नमवा तेह।
भारे करी गाढा नम्या, सोभायमान है जेह॥[5]

मूल पाठ—णच्चासन्ने णातिदूरे सुस्सूसमाणे

अनुवाद

नहीं अति ही टूंकडा, वली नहीं अति दूर।
प्रभु वच सुणवा नीं, इच्छा धरता सनूर॥[6]

जयाचार्य ने पद्यानुवाद के साथ-साथ टीका के कुछ विशेष अंशों का गद्यानुवाद भी किया है। वह 'वार्त्तिका' इस शीर्षक के अन्तर्गत उपलब्ध है। समीक्षणीय विषयों के लिए भी उन्होंने गद्यमय वार्तिकाएं लिखी हैं। उदाहरण के लिए 'चलमाणे चलिए' इस सूत्र की वार्तिका द्रष्टव्य है।[7] प्रस्तुत सूत्र का अनुवाद भी उल्लेखनीय है। उसमें विषय बहुत ही सरल और सरस रूप में चर्चित हुआ है—

ते पहिले समये, चलवा लागो जेह।
तसुं चल्युं कहीजै, नय वचने करि एह॥
पट उत्पत्ति काले, प्रथम तंतु प्रवेश।
पट उपनो कहीजै, ए छै पट नों देश॥

१. भगवतीवृत्ति पत्र १२।
२. भगवती-जोड़ श० १ उ० १ ढा० २।६२-६३
३. ,, श० १ उ० १ ढा० ६।५३,५४
४. भगवतीवृत्ति पत्र ३७
५. भगवती-जोड़ श० १ उ० १ ढाल ६।५५
६. भगवती-जोड़ श० १ उ० १ ढा० ३।४५
७. ,, ,, श० १ उ० १ ढाल ३।३० के पश्चात्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इम पहिलै समयै, चल्युं कर्म नूं अंग।
तसुं चल्यु न कहै तो, सर्व अचलन प्रसंग ।।
इक अंत समय में, चल्यूं कहीजै सोय।
तो अपर समय ते, निष्फल तसुं मत जोय ।।
जे पहिले समयै, चलवा लागो तेह।
जे चल्युं कहीजै, उत्तर समय न चलेह ।।
धुर समय चल्युं कह्यां, उदय आवलिका मांय।
सर्व समये चल्युं क्षय, ए धुर प्रश्न कहाय ।।[1]

अनुवाद का अर्थ केवल शब्दान्तर या भाषान्तर ही नहीं होता। उसका अर्थ है मूल में प्रतिपादित विषय का सरस, सरल और सुबोध भाषा में प्रस्तुतीकरण। जयाचार्य ने उक्त अर्थ को सार्थकता दी है। उनके अनुवाद में काव्यात्मकता, लयबद्धता, अर्थाभिव्यक्ति की स्पष्टता---ये सारी विशेषताएं उपलब्ध होती हैं। वृत्तिकार ने भगवती की तुलना जयकुंजर से की है। अनुवादकार ने टीका के उस अंश को काव्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। निदर्शन के लिए कुछ गाथाएं पढ़ें---

जयकुंजर गज जिम जयवंतो, समय भगवती सखर सोहंतो।
पंचम अंग भगवती पवरं, द्वितीय नाम आख्यो तसु अवरं।
सरस विआहपण्णत्ति सारं, जयकुंजर गज जिम जयकारं ।।जय०।।
ललित मनोहर जे पद केरी, पद्धति रचना पंक्ति सुहेरी।
पंडित जन मन रंजन प्यारो, प्राज्ञ रिझावणहार प्रचारो ।।जय०।।
अव्यय फुन उपसर्ग निपातं, ए त्रिहुंनोज स्वरूप सुजातं।
प्रादिक उपसर्ग चादि निपातं, प्रादिक चादिक अव्यय ख्यातं[2] ।।जय०।।

ललित पदावलि और वाक्य-विन्यास की दृष्टि से यह पूरा प्रकरण (२४वीं गाथा तक) पठनीय है। जयाचार्य ने राजस्थानी भाषा को तत्त्व-दर्शन की एक अमूल्य रत्नराशि प्रदान की है। उन्होंने केवल भगवती सूत्र का ही अनुवाद नहीं किया है, वृत्तिकार द्वारा विहित व्याख्यान अंशों का भी अनुवाद किया है और अपनी ओर से कुछ नए समाधान भी उसमें जोड़े हैं। उदाहरण के लिए वायुकाय की श्वासोच्छ्वास का प्रकरण प्रस्तुत किया जा सकता है। दूसरे शतक के आठवें सूत्र का प्रतिपाद्य है---वायुकाय वायुकाय को श्वास-उच्छ्वास के रूप में ग्रहण करता है। सूत्रपाठ और अनुवाद एक साथ पठनीय है---

मूलपाठ	अनुवाद
वाउयाए णं भंते वाउयाए चेव आणमंति वा ? पाणमंति वा ? ऊससंति वा ? नीससंति वा ! हंता गोयमा ! वाउयाए णं वाउयाए चेव आणमंति वा पाणमंति वा, ऊससंति वा, नीससंति वा।[3]	हे भदन्त ! जे वायुकाय ? छै, वायुकाय नैं जोयो रे। उस्सास अनैं निःसास लेवै छै, हंता जिन वच होयो रे ।।[4]

१. भगवती-जोड़ श० १ उ० १ ढा० ३।६५-७०
२. भगवती-जोड़ श० १ उ० १ ढाल १।४-६
३. भगवती शतक २।८
४. भगवती जोड़ शतक २ उ० १ ढाल ३०।१८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृत्तिपाठ	अनुवाद
कि वायुकायिकानामप्युच्छ्वासादिना वायुनैव भवितव्यमुतान्येन केनापि पृथिव्यादीनामिव तद्विलक्षणेन ।[1]	वृत्तिकार कहै एम रे, पृथ्वी पृथ्वी रूप छै। उश्वासादिक तेम रे, वायु रूप छै तेहना ।। इम अप तेउ काय रे, पृथ्वी नी परै जाणवा। पिण वायुकाय अधिकाय रे, तेहनी वात विचित्र छै ।।[2]
फुल्लुप्पलकमलकोमुलुम्मिलियम्मि	दल उत्पल पंकज तणां, कमल कहितां मृगनेन ए विहुं मृदु मिलिया तिकै, थया विकसित रवि उदयेन ।[3]
अहपंडुरे पभाए, रत्तासोयप्पकासे किंसुय सुयमुहगंजद्ध रागसरिसे कमलागरसंडबोहए ।	रात्रि गयां प्रभात समयै, रवि ऊगै आकाश। रक्त अशोक प्रकाश करिकै, फूल केसू नों जास ।। शुक मुख अर्द्ध गुंजा जिसो, लाल सूर्य सुप्रमोद। कमलागर द्रहादिक नै विषै, करै नलिनिषंड नो बोध ।।[4]
उट्ठियम्मिसूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते ।	सहस्र-किरण दिनकर इसो, तेज करी नै जान। जाज्वलमान सुदीपतो, उदय छतै असमान ।[5]

जयाचार्य का आगमिक अध्ययन बहुत विस्तृत था। वे समीक्षणीय स्थलों में आगम को उद्धृत करते हैं वहां पाठक आश्चर्य चकित रह जाता है।

समीक्षात्मक दृष्टि

जयाचार्य ने अपनी व्याख्या में मूल पाठ के अस्पष्ट अर्थ को स्पष्ट किया है। अनेक स्थलों पर वृत्तिकार के मत को उद्धृत किया है। जहां वृत्तिकार का मत समीक्षणीय लगा वहां उसकी समीक्षा की है। प्रथम शतक के एक सूत्र में हिंसा और अहिंसा का विचार उपलब्ध है।[6] असंयमी जीव अविरति की अपेक्षा आत्म-हिंसक और पर-हिंसक दोनों होते हैं अहिंसक नहीं होते। संयमी मुनि शत्रु योग की अपेक्षा न आत्म-हिंसक होते हैं और न पर-हिंसक, किन्तु अहिंसक होते हैं।

वृत्तिकार ने एक विशेष सूचना दी है कि सूक्ष्म एकेन्द्रिय आदि जीव प्रत्यक्षतः आत्म-हिंसक और पर-हिंसक नहीं होते, फिर भी अविरति की दृष्टि से वे हिंसक हैं। अविरति से निवृत्त मुनि के द्वारा सावधानी बरतते हुए भी अनिवार्य हिंसा हो जाती है, फिर भी वे हिंसक नहीं होते। जयाचार्य ने वृत्तिकार के इस मत को अनूदित किया है।[7] इसमें उन्हें कोई समीक्षणीय अंश नहीं लगा, इसलिए इसकी कोई समीक्षा नहीं की है—

वृत्तिकार इहां इम कह्यो, सूक्ष्म एकेंद्री ताय।
त्याग नहीं हिंसा तणा आत्मारंभादि थाय ।।
मुनि रै त्याग हिंसा तणा, यत्नवंत श्रुत बुद्ध।
जीव तणी ह्वै विराधना, निर्जर फल चित सुद्ध ।।[8]

---

१. भगवती वृत्ति-पत्र ११०
२. भगवती-जोड़ शतक २ उ० १ ढाल० ३०।१६, २०
३. भगवती-जोड़ श० २ उ० १ ढा० ३८।४५
४. भगवती-जोड़ श० २ उ० १ ढा० ३८।४६, ४७
५. भगवती-जोड़ श० २ उ० १ ढा० ३८।४८
६. भगवती १।३४
७. भगवती-वृत्ति, पत्र ३२
८. भगवती-जोड़ श० १ उ० १ ढा० ५।१२, १३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयमासंयमी

जीव तीन प्रकार के होते हैं—असंयमी, संयमासंयमी और संयमी। प्रस्तुत सूत्र में संयमासंयमी के विषय में कोई चर्चा उपलब्ध नहीं है। वृत्तिकार ने भी इस विषय में कोई चर्चा नहीं की है। जयाचार्य ने इस प्रश्न को उपस्थित कर उसका समाधान किया है। उनके अनुसार संयमासंयमी पांचवें गुणस्थान का अधिकारी होता है। वह छट्ठे और सातवें गुणस्थान के अधिकारी संयमी की श्रेणी में नहीं जा सकता। उसके पूर्व विरति नहीं है, अतः अविरति की दृष्टि से वह असंयमी की श्रेणी में जा सकता है—

तिण अर्थे गौतम ! इम आख्या, आत्म पर उभयारंभा के भाख्या।
केइ अणारंभा सुखकार, हिवै न्याय कहै जय सार॥
संसारी ना किया दोय भेद, संजती असंजती सुवेद।
संजतासंजती कियो नांख्यो, हिवै श्रावक किण मांहे आयो॥
संजती ना वे भेद सुतत्थ, प्रमत्त संजती नैं अप्रमत्त।
प्रमत्त संजती छठो गुणठाणो, अप्रमत्त सातमा थी जाणो॥
यां में तो श्रावक नहीं आवै, पंचमे गुण श्रावक पावै।
अविरत आश्री असंजती मांय, इण रो जाणैं समदृष्टि न्याय॥
सर्व संसारी ना सुविचार, दोय भेद किया जगतार॥
तीजो भेद इहां कियो नाहि, तिण सूं अविरत आश्री असंजती मांहि॥[1]

मुनि में छहों लेश्याओं का अस्तित्व

वृत्तिकार ने मुनि में कृष्ण, नील और कापोत—इन तीन अप्रशस्त भाव-लेश्याओं का निषेध किया है।[2] जयाचार्य ने वृत्तिकार के इस मत की आलोचना की है और मुनि में अप्रशस्त भाव-लेश्याओं का अस्तित्व सिद्ध किया है। उसमें भगवती के अतिरिक्त प्रज्ञापना, प्रज्ञापना वृत्ति, औपपातिक, दशवैकालिक आदि अनेक ग्रन्थों का उपयोग किया है। एक सौ सतरह पद्यों (५।२४-१४०) में की गई विस्तृत समीक्षा सूक्ष्म दृष्टि से मननीय है।

श्रमण और माहण

भगवती में श्रमण और माहण का एक साथ अनेक बार प्रयोग मिलता है। गर्भगत जीव के प्रकरण में तथारूप श्रमण और माहण का प्रयोग मिलता है। वृत्तिकार ने माहण का अर्थ स्थूल हिंसा आदि का त्याग करने वाला किया है।[3] जयाचार्य ने इस अर्थ को असंगत बतलाया है। इस प्रसंग में अनेक सूत्रों की चूर्णियों और टीकाओं में मिलने वाले आगम विरोधी प्रसंगों का उल्लेख किया है। श्रमण के साथ होने वाला माहण शब्द का प्रयोग मुनि के अर्थ में ही होता है। इस स्थापना की पुष्टि में जयाचार्य ने अनेक आगमों के साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं। इस प्रसंग में उन्होंने एक निष्कर्ष निकाला है कि चूर्णि और वृत्ति आदि की आगम-विरोधी व्याख्या को प्रमाण नहीं माना जा सकता—

---

१. भगवती-जोड़ श० १ उ० १ ढा० ५।१६-१८

२. भगवती-वृत्ति पत्र ३३, कृष्णादिषु हि अप्रशस्तभावलेश्यासु संयतत्वं नास्ति, यच्चोच्यते—"पुव्वपडिवण्णओ पुण अन्नयरीए उ लेसाए" त्ति तद्द्रव्यलेश्यां प्रतीत्येति मन्तव्यम्।

३. भगवती वृत्ति पत्र ८६,९०
'माहणस्स' त्ति मा हन इत्येवमादिशति स्वयं स्थूलप्राणातिपातादिनिवृत्तत्वाद्यः स माहन अथवा ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यस्य देशतः सद्भावाद् ब्राह्मणो देश विरतः तस्य वा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृत्ति विषै सूतर थकी, अणमिलती जे होय।
किम मानीजै तेहनैं, हियै विमासी जोय॥[1]

इस लम्बी समीक्षा में जयाचार्य ने अनेक आगम से असंगत प्रकरणों का संकलन किया है। उदाहरण स्वरूप—

१. सजीव नमक खाना

तदेवं परैः समनुज्ञातं समनुसृष्टं सत्प्रासुकं करणवशादप्रासुकं वा भुञ्जीत पिबेद् वा।

(आयारो टीका, पत्र ३२४)

२. कारण में अधःकर्मी आहार लेना

प्राणिभिः रसजादिभिः 'पनकैः' उल्लीजीवैः संसक्तं 'बीजैः' गोधूमादिभिः 'हरितैः' दूर्वाङ्कुरादिभिः 'उन्मिश्रं' शबलीभूतं तथा शीतोदकेन वा 'अवसिक्तम्' आर्द्रीकृतं 'रजसा वा' सचित्तेन 'परिघर्षितं' ति परिगुण्डितं कियद् वा वक्ष्यति ? 'तथाप्रकारम्' एवंजातीयमशुद्धमशनादि चतुर्विधमप्याहारं 'परहस्ते' दातृहस्ते परपात्रे वा स्थितम् 'अप्रासुकं' सचित्तम् 'अनेषणीयम्' आधाकर्मादि दोषदुष्टम् 'इति' एवं मन्यमानः 'स' भावभिक्षुः सत्यपि लाभे न प्रतिगृह्णीयादित्युत्सर्गतः अपवादतस्तु द्रव्यादि ज्ञात्वा प्रतिगृह्णीयात्।

(आचारांग टीका, पत्र २९२)

३. आम चूसना

वितियपदमणप्पज्झे, भुंजे अविकोविए व अप्पज्झे
जाणते वा वि पुणो, गिलाण अद्धाण ओमे वा। (निशीथ भाष्य ४६९५)

चूर्णि—खित्तादिगो अणप्पज्झो वा भुंजति, सेहो अविकोवियत्तणओ अजाणंतो, रोगोवसमणिमित्तं वेज्जुवदेसितो गिलाणो वा भुंजे, अद्धाणोमेसु वा असंथरंता भुंजंता विसुद्धा।

४. लोह आदि धातुओं को धमना

धमंत-फूमंतस्स संजम-छक्काय विराहणा। राउले वा मूइज्जइ तत्थ बंधणातिआ य दोसा। सुवण्णं वा कारविज्जति, लोहादि वा कुट्टंतस्स आयविराहणा वा, तेहिं वा घेप्पेज्ज (२२९२) जम्हा एते दोषा तम्हा णो करेति, णो धरेति, णो पिणद्धति।

कारणेकारे—वितियपदमणप्पज्झे, अप्पज्झे वा वि दुविध तेइच्छे। अभिओग असिव, दुब्भिक्ख-मादिसु जा जहिं जतणा। (२२९४)

रायाभियोगेण मेहुणट्ठे वा करेज्ज। बलामोडीए वा कारविज्जति, दुब्भिक्खे वा असंथरंतो सयं करेज्ज (निशीथ भाष्य २२९२,२२९४)

५. रात्रि भोजन

निक्कारणिमाऽणुवदेसिगा य लग्गंतऽणुदिय अत्थमिते।
गच्छा विणिग्गता वि हु, लग्गे जति ते करेज्जेवं॥

(बृहत्कल्पसूत्र भाष्य ५८२९)

वृत्ति—निष्कारणिका द्रवन्तो अनुपदेशाहिण्डका अविधिनिर्गता श्वानुदितेऽस्तमिते वा यदि गृह्णन्ति भुञ्जते वा ततः पूर्वोक्तप्रायश्चित्ते लगन्ति। ये तु कारणिका द्रवन्त उपदेशाहिण्डका गच्छगताश्च ते कारणे

१, भगवती-जोड़ श० १ उ० ७ ढा० २२।४५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यतनया गृह्णाना भुञ्जानाश्च शुद्धाः ।

चूर्णि— कारणिया असिवादिसु अहवा उवधिकारणा लेवस्स वा बहुगुणं वा गच्छे आयरियादी आगाढे ऐतेहिं कारणेहिं कारणिया गेण्हंता य भुंजंता य शुद्धा । (बृहत्कल्प चूर्णि उद्देशक ५ पत्र २०८)

प्रस्तुत ग्रन्थ में समीक्षा के अनेक प्रकरण हैं। यहां कुछेक उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। समीक्षा प्रकरणों की पूरी सूची समग्र ग्रन्थ की बृहत् प्रस्तावना में उपलब्ध हो सकेगी।

अर्थभेद और पाठान्तर

जयाचार्य ने भगवती सूत्र का पद्यानुवाद किया, उस समय पाठ संशोधन की प्रणाली प्रचलित नहीं थी। हस्तलिखित आदर्शों में अनेक प्रकार के पाठ उपलब्ध थे। चूर्णिकार और वृत्तिकार ने पाठान्तरों का संकलन किया था। जयाचार्य ने उन पाठान्तरों की चर्चा की है। वृत्ति संक्षिप्त है। उसमें प्रत्येक पाठ की व्याख्या उपलब्ध नहीं है, इसलिए हस्तलिखित आदर्श में जैसा पाठ मिला वैसा ही ग्रहण कर उसका अर्थ किया गया। उदाहरण के लिए भगवती-जोड़ पृ० १०२ का पाद-टिप्पण १ द्रष्टव्य है।

भगवती-जोड़ में 'लंगुवन' का उल्लेख किया गया है, यह उल्लेख वृत्ति में नहीं है। जयाचार्य के सामने जो भगवती का हस्तलिखित आदर्श था, उसमें यह पाठ मिला और उसका उन्होंने उल्लेख किया—

अलसी कुसुंबा नों बन वलि, धवला सरसव नों बन्न।
बंधु जीव फूल दोपहरिया, वलि लंगु-वन सोभन्न ॥[1]

जयाचार्य ने पाठ-संशोधन की आवश्यकता अनुभव की। उन्होंने स्पष्ट संकेत किया है कि इस विवादास्पद का निर्णय अनेक प्रतियों का अवलोकन कर किया जाए- - पन्नवणा १५ पदे केयक परत में पांचूं इन्द्रिय नी विषय जघन्य आंगुल नैं असंख्यातमैं भाग कही, अनैं केयक परत में चक्षु इन्द्री नी विषय जघन्य अंगुल नैं संख्यातमैं भाग कही, ते घणी परतां देख निर्णय कीजो।[2]

राजस्थानी भाषा को जयाचार्य का अवदान

राजस्थानी का शब्द-भंडार बहुत समृद्ध है। उसकी समृद्धि में जयाचार्य का बहुत बड़ा अवदान है। उन्होंने प्राकृत के सैकड़ों-सैकड़ों शब्दों का राजस्थानीकरण किया। उनमें शब्दों को मृदु बनाने की विशिष्ट कला थी। अर्धमागधी के लिए राजस्थानी में 'अधमागधी' शब्द जितना संगत है उतना 'अर्ध मागधी' नहीं है।[3] प्रस्तुत रचना में प्राकृत, संस्कृत दोनों के शब्द राजस्थानी में प्रयुक्त किए गए। उदाहरणस्वरूप—चरित्त और चरित्र, संवुड और संवृत। इस दृष्टिकोण से यह पूरा ग्रन्थ पठनीय है।

प्रस्तुत रचना पद्यात्मक और तुकान्त है। गीतिका की लय और तुक का निर्वाह करने के लिए शब्दों की यथोचित कांट-छांट भी की गई है, उनका अपभ्रंशीकरण भी किया गया है। उदाहरण के लिए इकार, स्थित, अध्येन, गुणठाण, जघन, दुप्रयोग आदि शब्द उद्धृत किए जा सकते हैं। 'इकार वाक्यालंकार'—इस पद में लय की दृष्टि से इव कार के स्थान में इकार का प्रयोग किया गया है। यह प्राकृत का अनुसरण है। प्राकृत में छंदोभंग नहीं किया जा सकता, किन्तु वर्ण का लोप किया जा सकता है। दशवैकालिक के प्रथम अध्ययन (१।३) में 'एमेए' का प्रयोग मिलता है। उसमें छंद की दृष्टि से वकार का लोप किया गया है— एवमेए एमेए। राजस्थानी में ऐसे शब्दों का बहुत प्रचलन है। एक वार का संक्षिप्त रूप 'एकर' प्रयोग में आता है।

---

१. भगवती-जोड़ श० १ उ० २ ढा० ६।५२
२. भगवती-जोड़ श० २ उ० ४ ढा० ३६।२४७
३. देखें—ग्रंथ और ग्रंथकार।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुलाक नियंठा नी स्थित, जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त ।[1]

यहां स्थिति के अर्थ में 'स्थित्त' शब्द का प्रयोग तुक मिलाने के लिए किया गया है। इसी प्रकार निम्नलिखित शब्द प्रयुक्त हैं--

अध्ययन	—	अध्येन
गुणस्थान		गुणठाण
जघन्य		जघन
दुष्प्रयोग		दुप्रयोग
षष्ठितंत्र		साठतंत्र
मध्यम		मज्झम मज्झिम
भक्तपान		भात-पाणी

ग्रन्थ और ग्रन्थकार

जयाचार्य ने प्रस्तुत सूत्र के अनुवाद में अनेक आगमों तथा ग्रन्थों का प्रयोग किया है। उनमें औपपातिक और प्रज्ञापना ये दो प्रमुख हैं। भगवती सूत्र में विस्तृत वर्णन के लिए बार-बार औपपातिक सूत्र देखने का निर्देश है। जयाचार्य ने निर्दिष्ट संक्षिप्त पाठ का कहीं-कहीं कुछ विस्तार भी किया है--

धर्मकथा भणवी इहां उववाई रे मांय।
एह तणो विस्तार छै, तेम इहां कहिवाय॥
देवै श्री जिन देशना, अमृतवाणी ऐन।
आर्य अनार्य सांभली चित में पामै चेन॥
चित मांहि चैन अत्यंत पामै शरद नव घन सारिखो।
गंभीर मधुर क्रोंच दुंदुभि, पवर रव स्वर पारिखो॥
भाषा भली अधमागधी फुन वाणि योजनगामिनी।
पणतीस गुण करि परवरी, भव्य सर्व नै हितकामिनी[2]॥

भगवती वृत्ति प्रमुख आधार रही है। धर्मसीह कृत यंत्र का अनेक बार उल्लेख मिलता है।[3] वियट्टभोइ

---

१. भगवती-जोड़ श० १ उ० १ ढा० ५।१३२
२. भगवती-जोड़ श० २ उ० १ ढा० ३५।३८।४१
३. भगवती-जोड़ श० १ उ० १ ढा० १।१६६
नमो बंभीए लिविए, लिपि कर्त्ता नात्रेय।
चरण सहित धुर जिन लिपिक, अर्थ धर्मसी एह॥१
भगवती-जोड़ श० १ उ० ३ ढा० १२।२४
अर्थ कियो धर्मसीह, मिथ्यात्वी ए परमादी।
अशुभ जोगी पिण तेह, समदृष्टि कंख न बाधी॥२
भगवती-जोड़ श० १ उ० ३ ढा० १३।५
तर अंतरा तो अरथ कियो धर्मसी ताय।
केतलुंक ते मांहिलु, कहियै छै वर न्याय॥३
भगवती-जोड़ श० १ उ० ३ ढा० १४।२२
ए सर्व अर्थ आख्यो टीका सूं, उवट्ठाएज्जा आद।
ए च्यारूं आलावा नो अर्थ धर्मसी, कीधूं धर अहलाद॥४
भगवत-जोड़ श० १ उ० ३ ढा० १४।३४
ए च्यारूं आलावा नो अर्थ धर्मसी कीधो ते कहूंयूं एह।
अपक्रम नो इज प्रश्न गौतम हिवै पूछै प्रेम धरेह॥५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के अर्थ में दौलतरामजी कृत अर्थ का भी उल्लेख मिलता है।[1]

समीक्षा के प्रकरण में रायपसेणइय की वृत्ति, सूत्रकृतांग, आचारांग वृत्ति, निशीथ चूर्णि, व्यवहार-वृत्ति, आवश्यकनिर्युक्ति, बृहत्कल्पवृत्ति, बृहत्कल्पचूर्णि, पार्श्वचन्द्र सूरि कृत आचारांग स्तबक, उत्तराध्ययन, स्थानांग, धर्मसीहकृत भगवती यंत्र, लूंका की हुंडी– इन ग्रन्थों का अपनी स्थापना की पुष्टि के लिए प्रयोग किया है।[2] सूत्रकृतांग की दीपिका का भी उल्लेख मिलता है।[3]

भगवती-जोड़ के अध्ययन से जयाचार्य के सतत स्वाध्यायशील और बहुश्रुत व्यक्तित्व का साक्षात्कार हो जाता है।

विनम्रता और श्रद्धा

जयाचार्य की प्रत्येक रचना में विनम्रता और श्रद्धा का स्पष्ट दर्शन होता है। प्रस्तुत रचना में भी स्थान-स्थान पर उनका साक्षात्कार होता है। बलिकर्म पद की समीक्षा के उपसंहार में आचार्यवर ने अनाग्रह की भाषा में लिखा है—

स्नान विशेषण सोय, वा पूजी गृह देवता।
उभय अर्थ अवलोय, सत्य सर्वज्ञ वदै तिको॥[4]

प्रस्तुत रचना में जयाचार्य ने जिस पद्धति का उपयोग किया उसका पूरा विवरण उन्होंने ग्रन्थ के उपसंहार में दिया है। इसमें दूसरों का कितना योग है और रचनाकार का स्वयं का कितना योग है, उसका स्पष्ट उल्लेख किया है। अंत में अपनी विनम्रता प्रदर्शित करते हुए लिखा है—मैंने अपनी दृष्टि से न्याय और युक्ति की योजना की है। यदि उसमें कुछ असंगत और अयुक्त लिखा गया हो तो उसमें मेरा कोई आग्रह नहीं है। ज्ञानी जो कहें वह मुझे मान्य होगा, मेरे लिए प्रमाण होगा। और भविष्य में कोई प्रबल पण्डित हो वह आगम-मन्थन के आधार पर मेरी रचना में कोई सत्य से विपरीत कथन हो, उसका संशोधन कर सकता है। मेरी ओर से उससे यह विनम्र अनुरोध है। यदि कोई वचन यथार्थ के विपरीत तथा संदिग्ध लिखा गया हो तो उसके लिए मैं प्रायश्चित्त करता हूं।

प्रस्तुत रचना के उपसंहार में जयाचार्य द्वारा किया गया आत्म-निवेदन सत्य-शोधक की भावना का शाश्वत प्रवचन है। वह उन्हीं की भाषा में प्रस्तुत है—

१. ए जोड भगवती नीं रची, सूत्र वृत्ति संपेख।
टबो धर्मसी यंत्र फुन, अवलोकी सुविसेख॥

भगवती-जोड़ ज० १ उ० ३ ढा० १३-११७

अर्थ तेर अंतर तणो, धर्मसीह कियो जेह।
किलकोइक त्यां माहिलो, आख्यो छै इहां तेह॥६

भगवती-जोड़ ज० १ उ० ६ ढा० १८।२४

द्रव्य प्रदेश अनै पज्जवा वली, ए त्रिहु पद नों जेह।
अर्थ धर्मसीह कीधो छै तिको, सांभलजो चित देह॥७

भगवती-जोड़ ज० १ उ० ६ ढा० १६।१२

जीवा कम्मपइट्ठिया लाख्यो, एतो टीका में अर्थ बतायो।
हिवै कहै धर्मसी वायो॥८

१. भगवती-जोड़ ज० २ उ० १ ढा० ३३।६

त्रियट्टभोट तो अर्थ वदीतो रे, दौलतरामजी कीयो इण रीतो रे।
निवर्त्या भोम श्री घर प्रीतो॥६

२. भगवती-जोड़ ज० १ उ० ८ ढा० २२।२८-११६

३. भगवती-जोड़ ज० २ उ० ५ ढा० ४१।६६

४. भगवती-जोड़ ज० २ उ० ५ ढा० ८३।४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. अन्य सिद्धान्त तणा वलि, न्याय मेल्या इण ठाम।
वलि केइक निज बुद्धि थकी, अर्थ कह्या अभिराम॥
३. अर्थ कियो फुन शब्द नों, ते पिण मिलतो जाण।
विस्तारयो किहां अल्प नों, किहां संकोची बाण॥
४. किहां वैराग्य बधायवा, उपदेश्यो अधिकाय।
किहांइक चोज लगाय नैं, व्याख्यानादि कहाय॥
५. किहां कह्यो तुक मेलवा, किहां अनुमाने लेह।
किहां बहु वच त्यां इक वचन, संग्रह्या शब्देह॥
६. किहांइक भांगा बुद्धि थकी, केइक यंत्र बणाय।
सूत्र तणो अनुसार ले, आख्या छै अधिकाय॥
७. गमा णाणत्ता संजया, वलि नियंठा न्हाल।
सूक्ष्म चरचा में वलि, मेल्या न्याय विशाल॥
८. इत्यादिक इण जोड़ में, दाख्यो मिलतो जाण।
अणमिलतो जु आयो हुवै, ज्ञानी वदै ते प्रमाण॥
९. वलि कोइक पंडित प्रबल ह्वै, आगम देख्व उदार।
जे विरुद्ध वचन ह्वै सूत्र थी, ते काढ़े दीजो वार॥
१०. विण उपयोगे विरुद्ध वचन, जे आयो हुवै अजाण।
अहो त्रिलोकीनाथजी, तमु म्हारै नहीं ताण॥
११. म्हैं तो म्हारी बुद्धि थकी, आख्यो छै सुद्ध जाण।
श्रद्धा न्याय सिद्धांत ना, दाख्या शुद्ध पिछाण॥
१२. पिण छद्मस्थ पणा थकी, कहियै वारंवार।
प्रभु सिकारै अर्थ प्रति, तेहिज छै तंतसार॥
१३. अणमिलतो जु आयो हुवै, मिश्र आयो ह्वै कोय।
संका सहित आयो हुवै, तो मिच्छामी दुक्कडं मोय॥

जयाचार्य ने अपने पूर्वज आचार्यों के प्रति स्थान-स्थान पर श्रद्धा प्रदर्शित की है। गीतिकाओं के अंत में

"भिक्खु भारीमाल ऋषिराय प्रसादै, जय-जश संपति सारो।"

यह उनका स्थायी स्वर है। सत्य की विनम्र साधना और श्रद्धा से परिपूर्ण प्रस्तुत कृति ज्ञान और भाव की आराधना की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण उपहार है।

आचार्य तुलसी
युवाचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

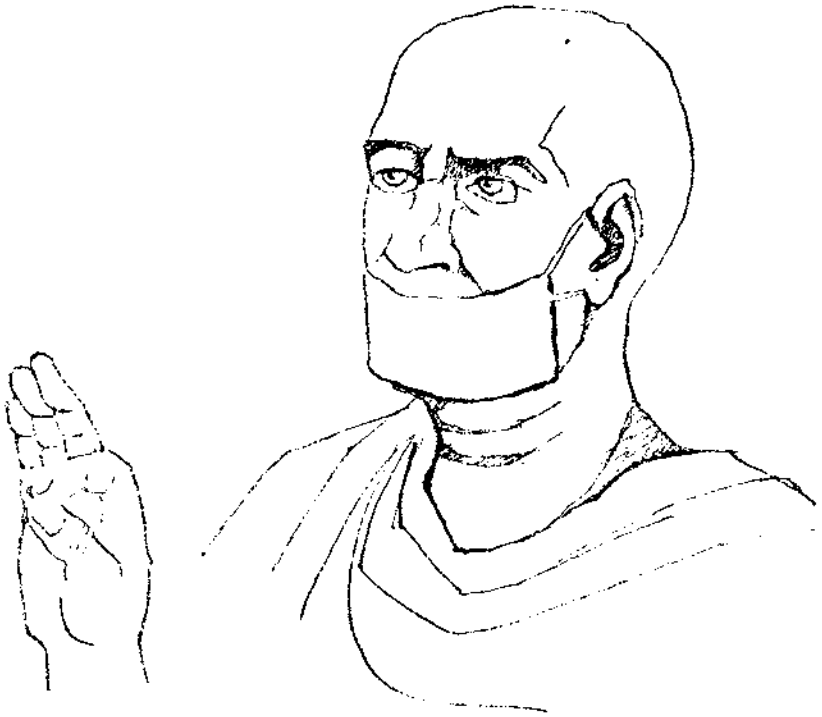

प्रज्ञापुरुष जयाचार्य

साढ़े तीन लाख पद्य-परिमाण साहित्य के कीर्तिमान रचनाकार तेरापंथ के परम यशस्वी चतुर्थ आचार्य।

जन्म : वि० सं० १८६० आसोज शुक्ला चतुर्दशी
दीक्षा : वि० सं० १८६६ फाल्गुण कृष्णा द्वादशी
अग्रणी : वि० सं० १८८१ पौष शुक्ला द्वादशी
युवाचार्य पद : वि० सं० १८९४ आषाढ़
आचार्य पद : वि० सं० १९०८ माघ शुक्ला पूर्णिमा
निर्वाण : वि० सं० १९३८ भाद्रपद कृष्णा द्वादशी
निर्वाण-शताब्दी : वि० सं० २०३७-३८ माघ शुक्ला सप्तमी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवती-जोड़

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपोद्घात

ढाल : १

दूहा

१. ॐ पंच परमेष्ठि नमि, भिक्षू भारीमाल।
नृपति-इंदु प्रणमी रचूं[1], 'भगवइ-जोड' विशाल॥

२. इक सय अड़तीं शतक महु, वड़ा शतक इकताल।
उगणीसौ पणवीस वर, निमल उदेशा न्हाल॥

३. एकतीसमा शतक ना, अष्टवीस उद्देश।
मतांतरे गुणतीस कहै, जाणै बहुश्रुत रेस[2]॥

*जय-कुंजर गज जिम जयवंतो, समय भगवती सखर सोहंतो। (ध्रुपदं)

४. पंचम अंग भगवती पवरं, द्वितिय नाम आख्यो तसु अवरं।
सरस 'विवाहपण्णत्ति' सारं, जय-कुंजर गज जिम जयकारं॥

५. ललित मनोहर जे पद केरी, पद्धति रचना पंक्ति सुहेरी।
पंडित-जन मन-रंजन प्यारी, प्राज्ञ रिझावणहार प्रचारी॥

६. अव्यय फुन उपसर्ग निपातं, ए त्रिहुं नो ज स्वरूप सुजातं।
प्रादिक उपसर्ग चादि निपातं, प्राऽऽदिक चाऽऽदिक अव्यय ख्यातं॥

४. 'विवाहपन्नत्ति' त्तिसञ्ज्ञितस्य पञ्चमाङ्गस्य समुन्नत-जयकुञ्जरस्येव (व्याख्याप्रज्ञप्ति वृ०-प० १)

५. ललितपदपद्धतिप्रबुद्धजनमनोरञ्जकस्य (वृ०-प० १)

६. उपसर्गनिपाताव्ययस्वरूपस्य (वृ०-प० १)

---

१. भगवती-जोड़ के रचना-काल के प्रारंभ की सूचना देने वाला एक सोरठा उपलब्ध है—

उगणीसे उगणीस, विद नवमी आसू गुरू।
भगवइ-जोड जगीस, जय गणपति कीधी सुरू॥

२. भगवती के एक सौ अड़तीस शतक हैं। इनमें इकतीसवें शतक के अट्ठाईस उद्देशक हैं। जयाचार्य ने किसी अन्य अभिमत से इस शतक के उनतीस उद्देशक होने का निर्देश दिया है, पर यह अभिमत किसका है? इस संबंध में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है। भगवती की वृत्ति में भी ऐसा कोई संकेत नहीं है। संभव है जयाचार्य को प्राप्त किसी प्रति, टब्बे या चूर्णि में उनतीस उद्देशकों का निर्देश रहा होगा।

*लय—वनमाला ए निसुणो जामं
सो ही सयाणो अवसर साधं
यह ढाल उक्त दोनों रागिनियों में गाई जा सकती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(व्याकरण-विमर्श)

वा०—प्र परा अप सम अनु अव निस् निर् दुस् दुर् अभि वि अधि इत्यादिक ए प्र आदि देई नैं उपसर्ग कहिए। च वा अह एवं नूनं स्वस्ति अस्ति इत्यादिक ए च आदि देई नैं निपात कहिए। अनैं वलि प्र प्रमुख उपसर्ग वलि च प्रमुख निपात ए बिहुं नैं अव्यय संज्ञा कहिए।

७. हस्ती पक्षे एम सलहियै, उपसर्ग तेह उपद्रव कहियै।
तेह निपात हुये पिण वारू, अव्यय अक्षय रूप सुचारू॥

८. घन उदार रव ए सूत्रे छै, हस्ती पक्षे हिव कहिये छै। — ८. घनोदारशब्दस्य (वृ०-प० १)
घन ते मेघ तणी पर सारं, ध्वनि गंभीर शब्द सुखकारं॥

९. सूत्र विभक्ति लिंग करि युक्तं, हस्ती पक्षे तसु इम उक्तं। — ९. लिङ्गविभक्तियुक्तस्य (वृ०-प० १)
पुरुष-चिह्न रचना करि सहितं, एह अर्थ पंडित-जन ग्रहितं॥

१०. भगवति सूत्रं सद् आख्यातं, लक्षण पिण रूडा अवदातं। — १०. सदाख्यातस्य सल्लक्षणस्य (वृ०-प० १)
गज पक्षे पिण प्रसिद्ध कहियै, रूडा-रूडा लक्षण लहियै॥

११. एह भगवती देव-अधिष्ठित, ते गणधर श्रुतदेवत सेवित। — ११. देवताधिष्ठितस्य (वृ०-प० १)
गज पक्षे देवांशी कहियै, सुरवर पिण तसु सेव सलहियै॥

१२. सुवर्णमंडित समय उद्देश, वर अक्षर सोभित सुविशेष। — १२. सुवर्णमण्डितोद्देशकस्य (वृ०-प०१)
जय-कुंजर गज पक्षे जाणी, शिरोभाग अति प्रशस्त माणी॥

१३. अद्भुत चरित्र नानाविध लेहं, छत्तीस सहस्र प्रश्न श्रुतदेहं। — १३. नानाविधाद्भुतप्रवरचरितस्य (वृ०-प० १)
चिहुं अनुयोग रूप चिहुं चरणं, कहियै छै हिव तास विवरणं॥

गीतक-छंद

१४. वर प्रथम जे द्रव्यानुयोगज द्वितिय-अंगादिक विषै।
फुन चरण नैं करणानुयोगज प्रथम अंगादिक अखै॥

१५. गणितानुयोगज तेह चंदपण्णत्ति प्रमुख विषै वही।
फुन तुर्य धर्मकथानुयोगज सूत्र ज्ञातादिक सही[1]॥

१६. अनुयोग ते व्याख्यान ए चिहुं, पंचमांग विषै कह्या।
पद च्यार जय-कुंजर तणैं वर सखर ही सोभे रह्या॥

१७. *ज्ञान चरित्र रूप बे नयनं, जय-कुंजर थी चित लहै चयनं। — १७. ज्ञानचरणनयननयुगलस्य।
द्रव्यास्तिक पर्यायास्तिक ही, बे नय रूप दंत मूशल ही॥ द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकनयद्वितयदन्तमुशलस्य। (वृ०-प० १)

१८. वर निश्चय नय फुन व्यवहारं, बे नय रूप सखर सुविचारं। — १८. निश्चयव्यवहारनयसमुन्नतकुम्भद्वयस्य। (वृ०-प० १)
उन्नत उच्च कुंभस्थल दोय, जय-कुंजर-गज नैं अवलोय॥

---

१. मध्यकाल में आगमों के संदर्भ में अनुयोग संबंधी मान्यता के अनुसार सूत्रकृतांग को द्रव्यानुयोग में और ज्ञाताधर्मकथा को धर्मकथानुयोग में रखा गया है, किन्तु चूर्णि-काल तक यह मंतव्य प्रचलित नहीं हुआ था। दशवैकालिक के चूर्णिकार स्थविर अगस्त्यसिंह के अनुसार अनुयोगों का वर्गीकरण इस प्रकार है—
चरणकरणानुयोग—कालिकश्रुत आदि, धर्मकथानुयोग—ऋषिभाषित आदि, गणितानुयोग—सूर्यप्रज्ञप्ति आदि, द्रव्यानुयोग—दृष्टिवाद (द० चू० पृ० २)

*लय—वनमाला ए निसुणी जामैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. प्रारंभ वचन तणी रचना जे, वर महाशुंडा दंड विराजे।
निगमन वचन जिको संहरियै, तेह अतुच्छ पुच्छ उच्चरियै॥

१९. प्रस्तावनावचनरचनाप्रकाण्डशुण्डादण्डस्य।
निगमनवचनातुच्छपुच्छस्य। (वृ०-प० १)

२०. कालादिक जे अष्ट प्रकार, प्रवचन समय तणा उपचार।
आख्या ज्ञान तणा आचार[1], एह रूप परिकर परिवार॥

२०. कालाद्यष्टप्रकारप्रवचनोपचारचारुपरिकरस्य। (वृ०-प० १)

२१. उत्सर्ग फुन अपवाद विचार, सूत्र विषै विहुं आज्ञा सार।
सम्यक् प्रकार उछलता सोय, वीर घंटा मोटी ए दोय॥

२१. उत्सर्गापवादसमुच्छलदतुच्छघण्टायुगलघोषस्य। (वृ०-प० १)

२२. यश नुं पडह तास पडछंद, तेणे करि पूर्या सुखकंद।
एहवो जे दिशि नो चक्रवाल, जय-कुंजर गज नैं सुविशाल॥

२२. यशःपटहपटुप्रतिरवापूर्णदिक्चक्रवालस्य। (वृ०-प० १)

२३. स्याद्वाद कहितां अवलोय, स्यादस्ति स्यात् नास्ति जोय।
ए जिनवाणी रूप प्रसिद्धो, निर्मल अंकुश करि वश कीधो॥

२३. स्याद्वादविशदांकुशवशीकृतस्य। (वृ०-प० १)

२४. विविध हेतु ते शस्त्र विख्यात, रिपु बल अविरति नैं मिथ्यात।
तेह दलण नैं अर्थ समाज, प्रेर्यो महावीर महाराज॥

२४. विविधहेतुहेतिसमूहसमन्वितस्य मिथ्यात्वाज्ञानाविरमणलक्षणरिपुबलदलनाय। श्रीमन्महावीरमहाराजेन नियुक्तस्य। (वृ०-प० १)

२५. सेनापति छै तेह समान, गछनायक निज बुद्धि करि जान।
जय-कुंजर गज नैं सज्ज कीधो, अथवा रचियो तेण प्रबोधो॥

२५. बलनियुक्तककलगणनायकमतिप्रकल्पितस्य। (वृ०-प० १)

२६. प्रवर जोध मुनि पीड रहीतं, आरोहण नैं अर्थ वदीतं।
वांछित वस्तु साधन समरथ, नाड्यां अर्थ रूप ए अवितथ॥

२६. मुनियोधैरनाबाधमधिगमाय पूर्वमुनिशिल्पिकल्पितयोर्बहुप्रवरगुणत्वेऽपि ह्रस्वतया महतामेव वाञ्छितवस्तुसाधनसमर्थयोर्वृत्तिचूर्णिनाडिकयोः। (वृ०-प० १, २)

२७. अन्य वली जीवाभिगमादि, विवरण विविध रूप संवादि।
दोरां ना जे लेश अमूल, तास मिलाप करी महाझूल॥

२७. तदन्येषां च जीवाभिगमादिविविधविवरणदवरकलेशानां संघट्टनेन बृहत्तरा। (वृ०-प० २)

२८. एहवूं जे वर महा उपगारी, हस्ती नूं नायक हितकारी।
तास हुकम थी रचना चारू, सुधर्म स्वाम रची ए वारू॥

२९. तसु अनुसार अम्हे पिण एह, जोड रूप करियै गुणगेह।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादं, 'जय-जश' पभणै धर अहलादं॥

दूहा

३०. विआहपण्णत्ति[2] विविध अति, प्रचुर अर्थ जीवादि।
अभिविधि वा मर्याद करि, ज्ञेय अखिल संवादि॥

३०. आ—अभिविधिना—कथञ्चिन्निखिलज्ञेयव्याप्त्या मर्यादया वा। (वृ०-प० २)

---

१. नि० भा० गा० ८
काले विणए बहुमाणे उवहाणे तहा अणिण्हवणे।
वंजण-अत्थ-तदुभए अट्ठविहो णाणमायारो॥

२. प्रस्तुत ग्रंथ का नाम विआहपण्णत्ति है। वृत्तिकार ने इस शब्द की व्याख्या कई प्रकार से की है। व्याख्या के आधार पर इसके सात नाम हो जाते हैं—
१. विआहपण्णत्ति—(व्याख्या-प्रज्ञप्ति)
२. व्याख्या-प्रज्ञाप्ति
३. व्याख्या-प्रज्ञाप्ति
४. विवाह-प्रज्ञप्ति
५. विवाह-प्रज्ञाप्ति
६. विबाध-प्रज्ञाप्ति
७. विबाध-प्रज्ञप्ति
इसका दूसरा प्रचलित नाम है—भगवती। जयाचार्य ने वृत्ति के अनुसार जोड की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१. परस्परासंकीर्ण जे, लक्षण नो अभिधान।
ख्या कहितां आखै प्रभू, गौतमादि हित जान।।

३२. वीर प्रते गौतम प्रमुख, पूछ्या प्रश्न सुहाय।
प्रतिपादन उत्तर अख्या, ते व्याख्या कहिवाय।।

३३. प्रज्ञाप्यंते परूपियै, वीर सुधर्म प्रति जान।
सुधर्म जंबू शिष्य प्रति, अमल अर्थ सुविधान।।

३४. एह अर्थ जेहनै विषै, तेह तणुं ए नाम।
व्याख्याप्रज्ञप्ति[1] कह्यु, पंचम अंग सुधाम।।

वा०—वि कहितां विविध जीव अजीवादिक अति ही प्रचुर पदार्थ ना विषय, आ—अभिविधिना किण ही अपेक्षा करिकै संपूर्ण ज्ञेय जाणवा योग्य पदार्थ व्याप्तपणै करी, अथवा आङ्—मर्यादा करिकै परस्पर मांहोमाहि असंकीर्ण लक्षण नो जे अभिधान—कथन तेहनै, ख्यानानि कहितां भगवंत श्री महावीरे गौतमादिक विनीत शिष्यां प्रते कह्या—एतलै गौतमादिक ना जूआ-जूआ प्रश्नित पदार्थ तेहनैं, प्रतिपादनानि कहितां प्रत्युत्तर कह्या ते व्याख्या कहियै। प्रज्ञाप्यंते कहितां परूपियै श्री भगवंत सुधर्म प्रते अनै सुधर्म स्वामी जंबू प्रते ए वार्त्ता छै जेहनैं विषै ते व्याख्याप्रज्ञप्ति कहियै।

३५. अथवा विविधपणैं करी, तथा विशेष करेह।
आख्यायंत कहियै जिके, व्याख्या कहियै तेह।।

३६. कथन योग्य वस्तु प्रते, 'प्रज्ञाप्यन्ते' इह।
परूपियै जेहनैं विषै, व्याख्याप्रज्ञप्तीह ।।

वा०—विविध पणे करी नाना प्रकार पणे करी अथवा विशेषे करी 'आख्यायन्ते' कहितां कहियै इति व्याख्या—कहिवा योग्य पदार्थ, प्रज्ञाप्यन्ते कहितां परूपियै जे सूत्र नै विषे ते 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' कहियै।।

३७. अथवा 'व्याख्यानां' तिको, अर्थ कहिण नुं ईह।
प्रज्ञप्ति अति ज्ञान ज्यां, व्याख्याप्रज्ञप्तीह ।।

वा०—अथवा 'व्याख्यानां' कहितां अर्थकहिवा नुं, प्र—अति ही, ज्ञप्ति—ज्ञान छै जेहनै विषै ते 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' कहियै।।

---

१. 'विआहपण्णत्ति' शब्द दो पदों का समस्त रूप है। प्रथम पद में विआह शब्द है, वह वि-आ-ख्या इन तीन अक्षरों से बना हुआ है। वि का अर्थ है जीव-अजीव आदि विविध पदार्थ।

आङ् उपसर्ग का प्रयोग अभिविधि और मर्यादा दोनों अर्थों में हुआ है। अभिविधि का अर्थ है—किसी अपेक्षा से संपूर्ण ज्ञेय पदार्थों का ग्रहण और मर्यादा का अर्थ है—परस्पर असंकीर्ण लक्षणों का कथन, ख्या का अर्थ है—प्रतिपादन।

जीव-अजीव आदि विविध पदार्थों का अभिविधि और मर्यादा के द्वारा प्रतिपादन करने का नाम है—व्याख्या। इसमें गणधर गौतम आदि द्वारा उपस्थित किए गए प्रश्नों का प्रज्ञापन—प्ररूपण किया जाता है इसलिए इसका नाम व्याख्याप्रज्ञप्ति है।

३१, ३२. परस्परासंकीर्णलक्षणाभिधानरूपया ख्यानानि—भगवतो महावीरस्य गौतमादिविनेयान् प्रति प्रश्नितपदार्थप्रतिपादनानि व्याख्यास्ताः। (वृ०-प० २)

३३. प्रज्ञाप्यन्ते—प्ररूप्यन्ते भगवता सुधर्म्मस्वामिना जम्बूनामानमभि यस्याम्। (वृ०-प० २)

वा०—विविधा जीवाजीवादिप्रचुरतरपदार्थविषया: आ— अभिविधिना—कथञ्चिन्निखिलज्ञेयव्याप्त्या मर्यादया वा— परस्परासंकीर्णलक्षणाभिधानरूपया ख्यानानि—भगवतो महावीरस्य गौतमादिविनेयान् प्रति प्रश्नितपदार्थप्रतिपादनानि व्याख्यास्ताः प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते भगवता सुधर्म्मस्वामिना जम्बूनामानमभि यस्याम्।। (वृ०-प० २)

३५, ३६. अथवा विविधतया विशेषेण वा आख्यायन्त इति व्याख्याः—अभिलाप्यपदार्थवृत्तयस्ताः प्रज्ञाप्यन्ते यस्याम्। (वृ०-प० २)

३७. अथवा व्याख्यानाम्—अर्थप्रतिपादनानां प्रकृष्टाः ज्ञप्तयो ज्ञानानि यस्यां सा व्याख्याप्रज्ञप्तिः। (वृ०-प० २)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गीतक-छंद

३८. व्याख्या अनैं प्रज्ञा ए विहुं नी आप्ति प्राप्ति निर्मली ।
वर जेह तणाज समीप थी तमुं व्याख्याप्रज्ञाप्ति भली ।।

वा०—अथवा 'व्याख्याया' कहितां अर्थ कहिवा नी अनैं प्रज्ञा—बुद्धि नीं, ते प्रज्ञा केहनैं कहियै ? व्याख्या नो हेतुभूत बोध नैं प्रज्ञा कहियै । एतले व्याख्या नी अनैं प्रज्ञा नीं आप्ति—प्राप्ति जेहना समीप थकी, ते 'व्याख्याप्रज्ञाप्ति' कहियै । एतले जे भगवंत थकी अर्थ कहिवा नी अनैं बुद्धि नी तत् हेतुभूत बोध नी आप्तिः—प्राप्ति गणधर देव नैं हुई तिका व्याख्या-प्रज्ञाप्ति कहियै ।

वा०—अथवा व्याख्यायाः—अर्थकथनस्य प्रज्ञायाश्च—तद्हेतुभूतबोधस्य व्याख्यासु वा प्रज्ञाया आप्तिः—प्राप्तिः यस्याः सकाशादसौ व्याख्याप्रज्ञाप्तिः । (वृ०-प० २)

३९. व्याख्या अनैं प्रज्ञा ए विहुं नु आत्तिः ग्रहिवूं जे सही ।
वर जेह तणां समीप थी तमुं व्याख्याप्रज्ञात्तिः कही ।।

वा०—अथवा व्याख्या अनैं प्रज्ञा ए विहुं नुं आत्तिः कहितां ग्रहिवूं जेहना समीप थकी, ते व्याख्याप्रज्ञात्तिः कहियै ।

३९. अथवा व्याख्यायाः—अर्थकथनस्य प्रज्ञायाश्च—तद्हेतुभूतबोधस्य प्रज्ञाया आत्तिः आदानं यस्याः सकाशादसौ व्याख्याप्रज्ञात्तिः । (वृ०-प० २)

४०. व्याख्या विषै प्रज्ञा प्रभू नीं तेह थी प्राप्ति वही ।
गणधर तणैं ह्वै जेहनो ए व्याख्याप्रज्ञाप्ति कही ।।

वा०—अथवा व्याख्या नैं विषै प्रज्ञा छै जेहनी एहवा भगवंत, तेह थकी गणधर नैं हुइ आप्तिः—प्राप्ति जे सूत्र नी ते 'व्याख्याप्रज्ञाप्ति' वा व्याख्याप्रज्ञात्ति कहियै ।

४०. व्याख्याप्रज्ञाद्वा—भगवतः सकाशादाप्तिरात्तिर्वा गणधरस्य यस्याः सा तथा । (वृ०-प० २)

दूहा

४१. तथा 'विवाहा' विविध जे, अथवा विशिष्ट जेह ।
अर्थ तणाज प्रवाह जे, वा नय-प्रवाह तेह ।।

४२. प्रज्ञाप्यन्त परूपियै, जे वर सूत्र विषेह ।
नाम विवाहपण्णत्ति तमु, कहियै गुणमणि-गेह ।।

४१, ४२. अथवा विवाहा—विविधा विशिष्टा वार्थप्रवाहा नयप्रवाहा वा प्रज्ञाप्यन्ते—प्ररूप्यन्ते प्रबोध्यन्ते वा यस्याम् । (वृ०-प० २)

वा०—विवाहा—विविध, अनेक प्रकार ना अर्थ ना प्रवाह अथवा विशिष्ट अर्थ ना प्रवाह अथवा नय ना प्रवाह, प्रज्ञाप्यन्ते कहितां परूपियै अथवा 'प्रबोध्यंते' कहितां जाणियैं जेहनैं विषै ते विवाहपण्णत्ति कहियै ।

४३. तथा विवाहा जे भला, विशिष्ट ही संतान ।
प्रज्ञा लहिइं जेहनी, विवाहप्रज्ञाप्ति जान ।।

वा०—विवाहा—विशिष्ट भला जे संतान प्रजा, आप्यंते कहितां पामियैं जेहनी ते विवाहप्रज्ञाप्तिः ।

४३. विवाहा वा—विशिष्टसन्तानाः प्रज्ञा आप्यन्ते यस्याः चासौ विवाहप्रज्ञाप्तिः । (वृ०-प० २)

४४. तथा विबाध अबाधिता, प्रमाण करि के जेह ।
प्रज्ञा लहिइं जेहनी, विबाधप्रज्ञाप्ति तेह ।।

वा०—अथवा विबाधा—प्रमाण करि कै अबाधित अपरिमित प्रजा पामियैं जेहनी तिको विबाधप्रज्ञाप्तिः ।

वा०—विबाधा वा प्रमाणाबाधिताः प्रज्ञा आप्यन्ते यस्याः चासौ विबाधप्रज्ञाप्तिः । (वृ०-प० २)

४५. अथवा विविध प्रकार ना, अर्थ कह्या तमुं जोय ।
प्रज्ञप्ति सुपरूपणा, विवाहपण्णत्ति होय ।।

४६. तथा विबाध अबाधिता, अर्थ तणी अभिराम ।
प्रज्ञप्ति सुपरूपणा, विबाधपण्णत्ति नाम ।

४७. अनैं भगवती नाम पिण, पूज्य पणैं करि ख्यात ।
द्वितीय नाम ए तेहनुं, प्रवर प्रसिद्ध सुजात ।।

४७. भगवतीत्यपि पूज्यत्वेनाभिधीयते । (वृ०-प० २)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४८. शास्त्रकार नैं फुन जिके, विघ्न-विनासन काज।
विनयवंत शिष्य नैं बलि, प्रवर्त्तन सुख स्हाज॥

४९. अथवा फुन जे शिष्ट-जन-समय समाचरणाय।
मंगल वाच्य मनोहरू, प्रयोजने कहिवाय[1]॥

५०. कारण सकल कल्याण नों, अधिकृत शास्त्र उदार।
श्रेयभूत नैं विघ्न नों, संभव हुवै तिवार॥

५१. ते उपशमनज अर्थ ही, द्रव्य मंगल द्रोवादि।
ते तज मंगल भाव प्रति, उपादेय संवादि॥

५२. द्रव्य मंगल कीधै छतै, विघ्न मिटै वा नांय।
भाव मंगल निश्चै करी, विघ्न-विनासक थाय॥

५३. भाव मंगल फुन तप प्रमुख, भिन्न बहु विध पिण जेह।
परमेष्ठी पंचक प्रते, नमस्कार रूपेह॥

५४. उपादेय सुविशेष ए, परमेष्ठी मंगलीक।
लोकोत्तम सुख सरण फुन, चिहुं चिहुं कह्या सधीक॥

५५. तसु नमस्कार ओलख करै, सहु अघ तणों विणास।
सर्व विघ्न उपशम तणों, हेतु ए सुखरास॥

५६. इह कारण थी पंच पद, सहु श्रुत-खंध नैं आदि।
अंगीकार करिवूं अछै, अभ्यंतरपणैं संवादि[2]॥

५७. ते माटै इहां पिण धुरे, परमेष्ठिक जे पंच।
नमस्कार करिवूं तसु, दिखाडियै ते संच॥

४८, ४९. शास्त्रकारास्तु विघ्नविनायकोपशमननिमित्तं विनेयजनप्रवर्त्तनाय च (मङ्गलं) शिष्टजनसमयसमाचरणाय वा मङ्गलाभिधेयप्रयोजनसम्बन्धानुदाहरन्ति। (वृ०-प० २)

५०, ५१. तत्र च सकलकल्याणकारणतयाऽधिकृतशास्त्रस्य श्रेयोभूतत्वेन विघ्नः संभवतीति तदुपशमनाय मङ्गलान्तरव्यपोहेन भावमङ्गलमुपादेयं। (वृ०-प० २)

५२. मङ्गलान्तरस्यानैकान्तिकत्वादनात्यन्तिकत्वाच्च, भावमङ्गलस्य तु तद्विपरीततयाऽभिलषितार्थसाधनसमर्थत्वेन पूज्यत्वात्। (वृ०-प० २)

५३. भावमङ्गलस्य च तपःप्रभृतिभेदभिन्नत्वेनानेकविधत्वेऽपि परमेष्ठिपञ्चकनमस्काररूपं विशेषेणोपादेयं।

५४. परमेष्ठिनां मङ्गलत्वलोकोत्तमत्वशरण्यत्वाभिधानात्, आह च "चत्तारि मंगल" मित्यादि। (वृ०-प० २)

५५. तन्नमस्कारस्य च सर्वपापप्रणाशकत्वेन सर्वविघ्नोपशमहेतुत्वात्। (वृ०-प० २)

५६. अत एवायं समस्तश्रुतस्कन्धानामादावुपादीयते, अतएव चायं तेषामभ्यन्तरतयाऽभिधीयते। (वृ०-प० २)

५७. अतः शास्त्रस्यादावेव परमेष्ठिपञ्चकनमस्कारमुपदर्शयन्नाह। (वृ०-प० २)

---

१. शास्त्रकार ने विघ्न हेतुओं का उपशमन करने के लिए, शिष्यों की शास्त्र में प्रवृत्ति कराने के लिए और शिष्ट-जन-सम्मत पद्धति का निर्वाह करने के लिए मंगल, अभिधेय, प्रयोजन और सम्बन्ध को प्रस्तुत किया है।

२. नमस्कार-महामंत्र सब विघ्नों का उपशामक है। इसलिए सब शास्त्रों की आदि में इसका ग्रहण किया जाता है, इसीलिए यह सब शास्त्रों के अन्तर्निहित कहलाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम शतक

णमो अरहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं

दूहा

५८. परमेष्ठी पंचक 'नमो-अरिहंताणं' आद।
तास अर्थ कहियै अछै, सुणज्यो धर आह्लाद॥

५९. नमो निपात हि पद अछै, द्रव्य अनै फुन भाव।
संकोचन नों अर्थ जसुं, आगल कहियै साव॥

६०. कर पद शिर पंचांग नत, सुप्रणिधानज रूप।
सुसमाहित एकाग्र हो, नमस्कार तद्रूप॥

६१. नमस्कार अरहंत[1] नैं, इंद्रादिक नैं जेह।
पूजण योग्यज छै प्रभु, नमस्कार रूपेह॥

५८. नमो अरहंताणं। (श० १।१)

५९. तत्र नम इति नैपातिकं पदं द्रव्यभावसङ्कोचार्थम्।
(वृ०-प० ३)

६०. करचरणमस्तकसुप्रणिधानरूपो नमस्कारो भवतीत्यर्थः। (वृ०-प० ३)

६१. 'अर्हद्भ्यः' अमरवरविनिर्मिताशोकादिमहाप्रातिहार्यरूपां पूजामर्हन्तीत्यर्हन्तः। (वृ०-प० ३)

---

१. णमो अरहंताणं में जो अरहंत शब्द है, वृत्तिकार ने उसकी व्याख्या कई प्रकार से की है। वृत्तिकार द्वारा व्याख्यात अर्थ की दृष्टि से अरहंत शब्द के पांच रूप बनते हैं—
(१) अर्हत्। (३) अरथान्त। (५) अर्हयत्।
(२) अरहोऽन्तर। (४) अरहंत।
वृत्तिकार को उपलब्ध पाठान्तर के अनुसार इसके दो रूप ये भी हैं—
अरिहंत और अरुहंत।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६२. नमस्कार नैं जोग जे, फुन सत्कारज जोग।
सिद्धि-गमन नैं जोग वलि, अर्हत नाम अरोग॥

६३. अथवा अविद्यमान रह, एकांतरूपज देश।
अंत तिको मध्य गिरि- गुफा प्रमुख सर्व जाणेस॥

६४. समस्त वस्तु-स्तोमगत, प्रच्छन्न नहिं छै जास।
एहवा अरहोन्तर[1] भणी, नमस्कार सुप्रकाश॥

६५. अथवा अविद्यमान रथ, स्पंदन[2] चलण कुसूत।
सकल परिग्रह ममत्व ही, ए उपलक्षणभूत॥

६६. फुन वलि अंत विनाश जे, जरा प्रमुख नहिं जास।
ते अरथांत भणी हुओ, नमस्कार विधि तास॥

वा०—अविद्यमान छै रथ कहितां स्पंदन, चलण लक्षण जेहनों, उपलक्षण भूत सकल परिग्रह नहीं छै जेहनैं, अनैं अंत कहितां विनाश, उपलक्षण भूत जरादि नहीं छै जेहनैं ए तीर्थंकर नीं अपेक्षाय, ते अरथांत भणी, अथवा अंत कहितां तेहना ज्ञानादिक नों विनाश नहीं ते अरथांत भणी, ए सर्व केवली नीं अपेक्षाय।

६७. अथवा किण ही वस्तु में, आसक्त—गृद्ध न होय।
क्षीण-राग छै ते भणी, नमस्कार तसु जोय॥

वा०—अथवा अरहंताणं ते किणही वस्तु नैं विषै पिण आसक्तिभाव न पामैं क्षीण राग पणा थकी अगच्छद्भ्यः अप्राप्नुवद्भ्यः ते अरहंत नैं।

६८. अथवा अति रागादि ना, हेतुभूत संवादि।
मनोज्ञ नैं अमनोज्ञ ही, विषय जिके शब्दादि॥

६९. तसु संयोग मिलै अपि, निज स्वभाव न तजेह।
वीतराग छै ते भणी, नमस्कार तसु लेह॥

वा०—अरहयद्भ्यः—प्रकृष्ट रागादि हेतुभूत मनोज्ञ-अमनोज्ञ, सुंदर-असुंदर विषय शब्दादिक नों संयोग मिल्यै छतै पिण वीतरागपणुं आदि जे निज स्वभाव, तेहनैं छांडै नहीं ते अर्हयद्भ्यः॥

यतनी

७०. पाठांतर अरिहंताणं, अष्ट कर्म रूप अरि जाणं।
तिण में च्यार कर्म अरि हणिया, तिण सूं नमस्कार करि थुणिया॥

---

१. जिनसे कोई पदार्थ प्रच्छन्न नहीं है और जिनके किसी प्रकार का व्यवधान नहीं है वे अरहोऽन्तर हैं।

२. प्राचीन प्रतियों में पकार और यकार का लेखन एक समान मिलता है। प्रस्तुत पद में जो स्पन्दन शब्द है वह अर्थ की दृष्टि से स्यन्दन होना चाहिए। संभव है, जयाचार्य को उपलब्ध प्रति में स्पन्दन शब्द हो, पर अभयदेवसूरि ने यहां स्यन्दन शब्द मानकर उसकी व्याख्या की है—"अविद्यमानो रथः स्यन्दनः सकलपरिग्रहोपलक्षणभूतः" जिनके पास रथ नहीं है, उपलक्षण से किसी प्रकार का परिग्रह नहीं है, वे अरथान्त हैं।

६२. अरिहंति वंदणनमंसणाणि अरिहंति पूयसक्कारं।
सिद्धिगमणं च अरहा, अरहंता तेण वुच्चंति॥
(वृ०-प० ३)

६३, ६४. अविद्यमानं वा रहः—एकान्तरूपो देशः अन्तश्च—मध्यं गिरिगुहादीनां सर्ववेदितया समस्तवस्तुस्तोमगत-प्रच्छन्नत्वस्याभावेन येषां ते अरहोऽन्तरः अतस्तेभ्योऽरहोऽन्तर्भ्यः। (वृ०-प० ३)

६५, ६६. अथवा—अविद्यमानो रथः—स्यन्दनः सकलपरिग्रहोपलक्षणभूतोऽन्तश्च—विनाशो जराद्युपलक्षणभूतो येषां ते अरथान्ता अतस्तेभ्यः। (वृ०-प० ३)

६७. अथवा 'अरहंताणं' ति क्वचिदप्यासक्तिमगच्छद्भ्यः क्षीणरागत्वात्। (वृ०-प० ३)

६८, ६९. अथवा अरहयद्भ्यः—प्रकृष्टरागादिहेतुभूतमनोज्ञेतरविषयसंपर्केऽपि वीतरागत्वादिकं स्व स्वभावमत्यजद्भ्य इत्यर्थः। (वृ०-प० ३)

७०. 'अरिहंताणं' ति पाठान्तरं, तत्र कर्मारिहन्तृभ्यः, आहच—
"अट्ठविहंपि य कम्मं अरिभूयं होइ सयलजीवाणं।
तं कम्ममरिं हंता, अरिहंता तेण वुच्चंति॥"
(वृ०-प० ३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७१. अरुहंताणं पिण जोय, पाठांतर वर अवलोय।
तत्र अरुह नहिं उपजंत, क्षीण कर्म बीज थी मंत।।

७२. बीज दग्ध छतै ज्यूं अत्यंत, अंकूर प्रगट नहिं हुंत।
तिम दग्ध क्रिया कर्म-बीज, भव-अंकूर उगै नहींज।।

७१, ७२. 'अरुहंताण' मित्यपि पाठान्तरं, तत्र 'अरोहद्भ्यः' अनुपजायमानेभ्यः, क्षीणकर्मबीजत्वात्, आह च—
"दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं, प्रादुर्भवति नांकुरः।
कर्मबीजे तथा दग्धे, न रोहति भवांकुरः।।"
(वृ०-प० ३)

७३. नमस्कार करिवा नै योग्य, वर्त्तै छै ए सुप्रयोग्य।
किण कारण ए कहिवाय, तसुं आगल सुणियै न्याय।।

७४. भव भ्रमण भीम वन भारी, भयवंत जीवां नैं विचारी।
अनुपम वर आनंद रूप, शिव पद पुर पंथ अनूप।।

७५. ते देखाडण निज स्वयमेव, परम उपगारी अरिहंत देव।
तिण कारण थी सुविधान, नमस्कार करिवा योग्य जाण।।

७३-७५. नमस्करणीयता चैषां भीमभवगहनभ्रमणभीतभूतानामनुपमानन्दरूपपरमपदपुरपथप्रदर्शकत्वेन परमोपकारित्वादिति। (वृ०-प० ३)

दूहा

७६. नमस्कार थावो वलि, सिद्ध भणी सुखकार।
श्रोता शब्दारथ सुणो, अमल चित्त अवधार।।

७६. नमो सिद्धाणं (श० १।१)

गीतक-छंद

७७. सित् बद्ध जे आठ कर्म इंधन, दीप्त जाज्वलमान ही।
वर शुक्ल ध्यान सुअनल करि, ध्मा दग्ध कृत गुणखान ही।।

७८. निरुक्तविधि करि आखियै, सित ध्मात शब्द सुस्थान ही।
वर सिद्ध शब्दज नीपनो, इम वृत्तिकार वखान ही।।

७७, ७८. सितं—बद्धमष्टप्रकारं कर्मेन्धनं ध्मातं—दग्धं जाज्वल्यमानशुक्लध्यानानलेन यैस्ते निरुक्तविधिना सिद्धाः। (वृ०-प० ३)

बा०—सितं कहितां बंध्या जे आठ कर्म रूप ईंधण तेहनैं, ध्मात कहितां दझाव्या जाज्वलमान शुक्ल ध्यान रूपणी अग्ने करी नैं। एहवा जे सिद्ध मुक्ति नैं विषै विराजमान छै तेह भणी नमस्कार थाओ। निरुक्त ते पदभंजन, ते निरुक्त विधि करिके सित अनै ध्मात ए बिहुं शब्द नां स्थानक नैं विषै सिद्ध इसो शब्द नीपनों।

७९. अथवा षिधु गति अर्थ में, इह वचन थी महिमानिलुं।
संसार में नावै इसी, सिधपुरी गमन कर्यूं भलुं।।

७९. अथवा 'षिधु गतौ' इति वचनात् सेधन्ति स्म—अपुनरावृत्त्या निर्वृतिपुरीमगच्छन्। (वृ०-प० ३)

बा०—षिधृ धातु गति अर्थ नै विषै छै, इण वचन थकी संसार में आवै नहीं एहवी निर्वृति पुरी ते सिद्धपुरी में गया, ते भणी तेह सिद्ध नैं मांहरो नमस्कार थाओ।

सोरठा

८०. 'षिधु' संराद्धौ जाण, निष्ठित संपूरण अरथ।
थया तास पहिछाण, सिद्ध कहीजै तेहनैं।।

८०. 'षिधु संराद्धौ' इति वचनात् सिद्ध्यन्ति स्म निष्ठितार्था भवन्ति स्म।

बा०—षिधु धातु संराद्ध ते फल-निष्पन्न अर्थ नै विषै हुई ते भणी सिद्ध कहितां संपूर्ण अर्थ थया ए फल नीपना।

८१. षिधूञ् धातु शास्त्रेह, देणहार शिक्षा तणा।
फुन मंगल अर्थेह, न्याय कहूं हिव बिहुं तणो।।

८२. सिद्ध पूर्व भव मांय, शिक्षा ना दायक हुंता।
शास्त्र अर्थ सुखदाय, कहियै छै इह कारणे।।

८१-८३. 'षिधूञ् शास्त्रे माङ्गल्ये च' इतिवचनात् सेधन्ति स्म—शासितारोऽभूवन् माङ्गल्यरूपतां चानुभवन्ति स्मेति सिद्धाः। (वृ०-प० ३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८३. ते फुन मंगल रूप, जेह भाव प्रति अनुभवै।
शिव सुख लह्या अनूप, मंगलीक ए अर्थ छै।।

वा०—षिधु धातु शास्त्र अर्थ कै विषै अनै मंगल अर्थ कै विषै। शास्त्रे कहितां शिक्षा ना देणहार पूर्व भव नै विषै थया अनै ते भाव मंगलरूपपणां प्रते अनुभवे इति सिद्धाः।

८४. तथा सिद्ध नित्य जान, काल अनागत नै विषै।
अंत रहित पहिछाण, नित्य शास्वता सिद्ध इम।।

वा०—अथवा सिद्ध कहितां नित्य अपर्यवसानस्थितिकपणां थकी अथवा प्रख्यात—प्रसिद्ध उपलब्ध गुणसंदोहपणां थकी।

८४. और वा०—अथवा सिद्धाः—नित्याः, अपर्यवसानस्थितिकत्वात्, प्रख्याता वा भव्यैरुपलब्धगुणसंदोहत्वात्। (वृ०-प० ३)

गीतक-छंद

८५. जिह दग्ध कीधा जे पुराणा कर्म बंध्या जेहनैं।
शिव रूप मन्दिर-मस्तके अथवा गमन छै तेहनैं।।

८६. फुन ख्यात अनुशास्तार वा जे निष्ठितार्था छै सही।
मंगल तणा कर्त्ताज मुझ नैं, सिद्ध ते थावो वही।।

८५, ८६. "ध्मातं सितं येन पुराणकर्म्म,
यो वा गतो निर्वृतिसौधमूर्ध्नि।
ख्यातोऽनुशास्ता परिनिष्ठितार्थो,
यः सोऽस्तु सिद्धः कृतमङ्गलो मे। (वृ०-प० ३)

सोरठा

८७. ते सिद्धां नैं सोय, नमस्कार भल भाव सूं।
करिवा योग्य सुहोय, कारण ते कहियै हिवै।।

८७. अतस्तेभ्यो नमः (वृ०-प० ३)

गीतक-छंद

८८. अविनाशि छै तसुं ज्ञान दर्शन सुख वीर्य आदिक सही।
वर तेह गुण युक्तज करी स्व विषय नैं ज विषै वही।।

८९. अति ही प्रमोद उपायवे भव्य जीव नैं अतिशय करी।
उपकार नां हेतूपणां थी नमस्कार विधि आचरी।।

वा०—[एहवा सिद्धां नैं नमस्कार करिवा हुंती] जेहनो नाश न थाय एहवो ज्ञान दर्शण सुख वीर्यादिक गुणयुक्त पणैं करी नैं स्व विषय प्रमोद ना प्रकर्ष उपजायवै करी भव्य जीवों नैं अत्यन्त उपगार ना हेतुपणां थी ते सिद्धां नैं मांहरो नमस्कार थावो।

८८, ८९. नमस्करणीयता चैषामविप्रणाशिज्ञानदर्शनसुखवीर्यादिगुणयुक्ततया स्वविषयप्रमोदप्रकर्षोत्पादनेन भव्यानामतीवोपकारहेतुत्वादिति। (वृ०-प० ३)

दूहा

९०. नमस्कार थावो वलि, आचारज नैं आम।
शब्दारथ एहनौं सखर, उच्चरियै अभिराम।।

९०. नमो आयरियाणं। (श० १/१)

९१. *आ मर्याद करेह, गुरु नी विषय सुलेह। आछेलाल!
विनय रूप करि सेवियै।।

९१, ९२. आ—मर्यादया तद्विषयविनयरूपया चर्यन्ते—सेव्यन्ते जिनशासनार्थोपदेशकतया तदाकाङ्क्षिभिरित्याचार्याः। (वृ०-प० ३)

*लय—आछेलाल...

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९२. जिनशासन नो जेह, अर्थ उपदेश वांछेह । आछेलाल ।
तसुं अर्थ उपदेश देवियै[1] ।।

वा०—सूत्रार्थ ना जाण, औदार्यादि गुण युक्त, गच्छ नैं विषै मेढीभूत, गच्छ नीं चिंता करी विप्रमुक्त, अर्थ नां दायक एहवा आचार्य ।

९३. अथवा ज्ञानादि आचार, पंच प्रकार विचार, नीकेलाल ।
आ मर्यादा करी धरै ।।

वा०—[1]ज्ञानाचार [2]दर्शनाचार [3]चारित्राचार [4]तपाचार [5]वीर्याचार ए पांच आचार मर्यादा करि कै सेवै ।

९४. अथवा आचार विहार, तेह विषै सुविचार । प्यारेलाल ।
निपुण, चतुर गुण आदरै ।।

९५ ते पंच आचार उदार, पोतै आचरवा थी सार ।
परूपवा थी पिछाणियै ।।

९६. देखाडवा थी देख, निपुण घणां सुविशेष ।
एहवा आचारज जाणियै ।।

९७. तथा आ ईषत् ऊणो ताय, चार — कल्प कहिवाय ।
तेह आचारा जाणियै ।।

९८. युक्त अयुक्त विभाग, तास निरूपण माग ।
निपुण, विनेया शिष्य माणियै ।।

९९. एहवा सुविनीत सीस विषेह, शास्त्रार्थ वर देह ।
सुद्ध उपदेश देवे करी ।।

१००. इण हेतु थी ताय, आचार्य कहिवाय ।
तसुं नमस्कार थावो वरी ।।

वा०—आ कहितां ईषत् ऊणो अपरिपूर्ण, चार कहितां कल्प ते आचारा—शिष्य । इण कारण थकी ते शिष्य नैं विषै यथावत् शास्त्र नां अर्थ नैं उपदेशकपणैं करी ते आचार्य कहियै । एतलै सर्व सावज्ज रा त्यागी छै तो पिण प्रमत्त गुणठाणैं चूकवा रो ठिकाणो, कल्प—आचार में खामी पड़ै तिण सूं ऊणो चार—कल्प कह्यो ते साधु नैं सुद्ध उपदेश देवे करी सावधान करै ते आचार्य कहियै ।

गीतक-छंद

१०१. वर पंच जे आचार नां उपदेश ना दायक गणी ।
उपकारिका छै ते भणी ए नमण योग्या गण-धणी ।।

दूहा

१०२. नमस्कार थावो वली, उपाध्याय नैं सार ।
एह शब्द नों अर्थ इम, आगल कहूं उदार ।।

---

१. जिन प्रवचन के अर्थ का उपदेश देने के कारण उपदेश सुनने के इच्छुक शिष्यों द्वारा आ—गुरु के प्रति उचित विनय रूप से, चर्यन्ते—सेवा की जाती है जिनकी, वे आचार्य होते हैं ।

वा०—सुत्तत्थविऊ लक्खणजुत्तो गच्छस्स मेढिभूओ य ।
गणतत्तिविप्पमुक्को अत्थं वाएइ आयरिओ ।।
(बृ०-प० ३)

९३. अथवा आचारो- -ज्ञानाचारादिः पञ्चधा ।
(बृ०-प० ३)

९४-९६. आ— मर्यादया वा चारो—विहारः आचारस्तत्र साधवः स्वयंकरणात् प्रभाषणात् प्रदर्शनाच्चेत्याचार्याः, आह च—

"पंचविहं आयारं आयरमाणा तहा पयासंता ।
आयारं दंसंता आयरिया तेण वुच्चंति ।।"
(बृ०-प० ३, ४)

९७-१००. अथवा आ- -ईषद् अपरिपूर्णा इत्यर्थः, चारा—हेरिका ये ते आचाराः, चारकल्पा इत्यर्थः । युक्तायुक्तविभागनिरूपणनिपुणा विनेयाः अतस्तेषु साधवो यथावच्छास्त्रार्थोपदेशकतया इत्याचार्या अतस्तेभ्यः ।
(बृ०-प० ४)

१०१. नमस्यता चैषामाचारोपदेशकतयोपकारित्वात्
(बृ०-प० ४)

१०२. नमो उवज्झायाणं । (श० १/१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

१०३. उप जे समीप आय, करै अध्ययन जेह थकी।
ते उपाध्याय कहिवाय, धातु 'इङ् अध्ययन' में॥

वा०—उप कहितां जेहनैं समीपै आवी नै अधीयते कहितां पढियै ते उपाध्याय। इङ् धातु अध्ययन नैं विषै छै ते माटै।

१०४. उप जे समीप आय, जाणैं अधिकज जे थकी।
ते उपाध्याय कहिवाय, धातु 'इण् गति' अर्थ में॥

वा०—गति अर्थ नैं विषै जे धातु ज्ञानार्थ हुवै।

१०५. उप जे समीप आय, स्मरण करैज जेह थकी।
ते उपाध्याय कहिवाय, धातु 'इक् स्मरण' विषै॥

१०६. सूत्र थकी सुविचार, श्री जिन प्रवचन जे थकी।
चितवियै जे सार, स्मरण अर्थ विषै तिको॥

१०७. द्वादशांग जिन ख्यात, गणधर - देवे गूंथिया।
ते उपदिसै सुजात, उपाध्याय छै जे भणी॥

१०८. उपाधि समीप सोय, तसु समीप करि जे प्रवर।
आय लाभ जसु होय, उपाध्याय कहियै तसु[1]॥

वा०—उपाधानं— उपाधि नाम संनिधि नों छै, संनिधि नों अर्थ समीपवाची छै। ते उपाधि—समीपै करी अथवा उपाधि—समीप नैं विषै आय—सूत्र नों लाभ जेहनैं ते उपाध्याय कहियै।

१०९. अथवा उपाधि जोय, नाम विशेषण नों इहां।
प्रस्ताव थी अवलोय, सोभनीक वस्तु जिका[2]॥

११०. प्रशस्त वर्णन योग्य, तेहनों आय सुलाभ जे।
जेह थकी सुप्रयोग, उपाध्याय कहियै तसु॥

वा०—इहां उपाधि नाम विशेषण नों कह्यो प्रस्ताव थकी सोभन ते वर्णन योग्य पदार्थ तेहनु आय कहितां लाभ जे उपाधि थकी हुई ते माटै तेहनैं उपाध्याय कहियै।

१११. अथवा उपाधिहीज, संनिधि समीप हींज छै।
आय इष्टफल चीज, दैव-जनित करि जाणवूं[3]॥

११२. बहु आय इष्टफल तेह, तेहनों समूह छै जेहनैं।
ते इक हेतुपणेह, उपाध्याय कहियै तसु॥

१. 'उपाधानं उपाधिः सन्निधिः सामीप्यम्' जिनके सामीप्य से आय—श्रुत का लाभ होता है, वे उपाध्याय होते हैं।

२. उपाधीनां विशेषणानां आयः लाभः—जिनसे अच्छी-अच्छी उपाधियों का लाभ मिलता है वे उपाध्याय हैं।

३. उपाधिरेव आयम्—उपाध्यायः, उपाधि—जिनका सान्निध्य ही आय—इष्टफल है, वे उपाध्याय कहलाते हैं। देवजनित अनेक इष्टफलों का समूह भी एक आय शब्द से कहा गया है।

१०३. उप—समीपमागत्याधीयते 'इङ् अध्ययने' इति वचनात् पठ्यते। (वृ०-प० ४)

१०४. 'इण् गता' वितिवचनाद्वा अधि—आधिक्येन गम्यते। (वृ०-प० ४)

१०५, १०६. 'इक् स्मरणे' इति वचनाद्वा स्मर्यते सूत्रतो जिनप्रवचनं येभ्यस्ते उपाध्यायाः। (वृ०-प० ४)

१०७. बारसंगो जिणक्खाओ, सज्झाओ कहिओ बुहे।
तं उवइसंति जम्हा, उवज्झाया तेण वुच्चंति॥
(वृ०-प० ४)

१०८. अथवा उपाधानमुपाधिः—संनिधिस्तेनोपाधिना उपाधौ वा आयो लाभः श्रुतस्य। (वृ०-प० ४)

१०९, ११०. येषामुपाधीनां वा—विशेषणानां प्रक्रमाच्छोभनानामायो—लाभो येभ्यः। (वृ०-प० ४)

१११, ११२. अथवा उपाधिरेव संनिधिरेव आयम्—इष्टफलं दैवजनिततत्वेन अयानाम्—इष्टफलानां समूहस्तदेकहेतुत्वाद्येषाम्। (वृ०-प० ४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—उपाधि कहितां संनिधिहीज आय कहितां इष्टफल ते वांछित फल देव जनितपणें करी घणां आय नुं ते घणां इष्टफल नूं समूह ते एक हेतु पणा थकी जेहनैं ते उपाध्याय। एतलै स्वाध्यायादि घणां शुभ अनुष्ठान समाचर्या तेह थी अत्यन्त घणां कर्म निर्जर्या, घणां पुन्य बंध्या, तेह थी देवता सेवा करै ते देव सानिध्य पणें करी आय कहितां घणां इष्टफल वांछितफल ते उपाध्याय नैं संनिधिहीज छै ते माटै एहनै उपाध्याय कहियै।

११३. तथा आधि मन-पीड, तसुं आय लाभ आध्याय ते।
उपहत जिण गुणहीर, उपाध्याय कहियै तसुं ॥

११३. अथवा आधीनां—मनःपीडानामायो—लाभ आध्यायः। (वृ०-प० ४)

वा०—आधि कहितां मन नी पीडा तेहनो आय कहितां लाभ ते आध्याय कहिये। ते आध्याय नैं मन की पीडा नैं उपहत कहितां हणी जिणे ते उपाध्याय कहिये। इहां उप शब्दे करी उपहत जाणवो।

११४. अथवा अधी नों आय, कुबुद्धि तणा जे लाभ नैं।
उपहत ते उपाध्याय, नञः कुत्सार्थपणां थकी ॥

११४. अधियां वा—नञः कुत्सार्थत्वात् कुबुद्धीनामायोऽध्यायः। (वृ०-प० ४)

वा०—इहां अधी नैं विषै अकार ते कुत्सार्थ—भूंडा अर्थ नैं विषै, धी कहितां बुद्धि तेहनों आय कहितां लाभ ते अध्याय। एतलै कुबुद्धि नों लाभ ते अध्याय। तेहनैं उपहत कहितां हणी जेणे ते उपाध्याय।

११५. फुन दुर्ध्यान कहाय, तसुं आय लाभ अध्याय नैं।
उपहत ते उपाध्याय, नञः कुत्सार्थपणां थकी ॥

११५. 'ध्यै चिन्तायाम्' इत्यस्य धातोः प्रयोगान्नञः कुत्सार्थत्वादेव च दुर्ध्यानं वाऽध्यायः।
उपहत आध्यायः अध्यायो वा यैस्ते उपाध्यायाः। (वृ०-प० ४)

वा०—इहां ध्यै धातु चिंता अर्थ नैं विषै, इण धातु ना प्रयोग थकी अनैं नञः कुत्सार्थ पणां थकीज हुवै खोटा ध्यान नों लाभ, ते अध्याय, ते अध्याय नैं उपहत कहितां हण्यो जेणे ते उपाध्याय, एतले खोटा ध्यान ना लाभ नैं हण्यो जेणे ते उपाध्याय कहियै।

गीतक-छंद

११६. सुध संप्रदाय थकीज आयो समय अध्यापन करी।
वर विनय कारज नैं विषै प्रवर्त्तवै करि हित धरी ॥
११७. वर भव्य नैं उपकारका ए ते भणी इम जाणियै।
नमस्कार सुकरण योग्यज तूर्य पद पहिछाणियै ॥

११६, ११७. नमस्यता चैषां सुसंप्रदायायातजिनवचनाध्यापनतो विनयेन भव्यानामुपकारित्वादिति। (वृ०-प० ४)

दूहा

११८. नमस्कार थावो वलि, पांचूं अंग नमाय।
सर्व साधु छै तेहनैं, तास अर्थ कहिवाय ॥

११८. नमो सव्वसाहूणं। (श० १/१)

११९. ज्ञानादिक शक्ती करी, साधै मोक्ष प्रतेह।
साधू कहियै तेहनै, भावे मुनि गुण-गेह ॥
१२०. तथा सर्व जीवां विषै, समता प्रति ध्यावेह।
एह निरुक्ति-न्याय थी, साधू कहियै तेह ॥

११९, २०. साधयन्ति ज्ञानादिशक्तिभिर्मोक्षमिति साधवः, समतां वा सर्वभूतेषु ध्यायन्तीति निरुक्तिन्यायात्साधवः। (वृ०-प० ४)

वा०—निव्वाणसाहए जोए, जम्हा साहेंति साहुणो।
समा य सव्वभूएसु, तम्हा ते भावसाहुणो ॥
(वृ०-प० ४)

वा०—निर्वाण साधक जोग ज्ञानादिक प्रते साधै जे भणी ते साधु, च पुनः सर्वभूत नैं विषै सम कहितां तुल्यतापणा प्रति साधै ते भाव साधु कहियै।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

१२१. तथा सहायक सोय, संजमकारी नैं प्रति।
धारै जे अवलोय, निरुक्त थी साधू तिके।।

१२१. साहायकं वा संयमकारिणां धारयन्तीति साधवः निरुक्तेरेव। (वृ०-प० ४)

१२२. फुन ते सर्व पिछाण, चारित्त-सामायक प्रमुख।
एह विशेषण जाण, प्रमत्त आदि गुणठाण जे।।

१२३. अथवा पुलाक आदि, प्रतिमाकल्पिक साधु जे।
जिनकल्पिक संवादि, यथालंदकल्पिक वलि।।

१२२-२८. सर्वे च ते सामायिकादिविशेषणाः प्रमत्तादयः पुलाकादयो वा जिनकल्पिकप्रतिमाकल्पिकयथालन्दकल्पिकपरिहारविशुद्धिकल्पिकस्थविरकल्पिकस्थितकल्पिकास्थितकल्पिकस्थितास्थितकल्पिककल्पातीतभेदाः प्रत्येकबुद्धस्वयम्बुद्धबुद्धबोधितभेदाः भारतादिभेदाः सुषमदुष्षमादिविशेषिता वा साधवः सर्वसाधवः। (वृ०-प० ४)

१२४. काल थकी ए जोय, गच्छ विषै जिनकल्पि नों।
विशेष ए अवलोय, यथालन्दकल्पिक इसौ।।

१२५. कर नीं रेखा ताहि, सूकै इतरो काल पिण।
अभिग्रह विण रहै नाहिं, यथालन्दकल्पिक तिको।।

१२६. फुन परिहारविशुद्ध, वलि स्थविरकल्पिक मुनि।
स्थितकल्पिक वर वृद्ध, अस्थितकल्पिक संजती।।

१२७. कल्पातीत सुभेद, स्वयंबुद्ध प्रत्येकबुद्ध।
बुद्धबोधित सवेद, मुनि भरतादिक क्षेत्र नां।।

१२८. सुसमदुस्समा आदि, कह्या विशेषित मुनि तथा।
साधु सर्व संवादि, परम महाव्रतधारका।।

१२९. फुन सहु ग्रहिवै तेह, सगला मुनि गुणवंत नैं।
नमण योग्य भावेह, अविशेष छै तेह में।।

१२९. सर्वग्रहणं च सर्वेषां गुणवतामविशेषनमनीयताप्रतिपादनार्थम्। (वृ०-प० ४)

१३०. सर्व शब्द ए माण, अर्हत् आदिज पद कह्या।
तेह विषै पिण जाण, न्याय सामान्यपणां थको।।

१३०. इदं चार्हदादिपदेष्वपि बोद्धव्यं, न्यायस्य समानत्वादिति। (वृ०-प० ४)

दूहा

१३१. तथा सर्व जीवां भणी, हितकारक ते सार्व।
सार्व तेहिज साधु बलि, गाल्या तेणे गार्व।।

१३१. अथवा—सर्वेभ्यो जीवेभ्यो हिताः सार्वास्ते च ते साधवश्च। (वृ०-प० ४)

वा०—सव्वसाहूणं ए सर्वशब्द अर्हत् आदि पद नैं विषै पिण जाणवो—नमो सव्व अरहंताणं, नमो सव्व सिद्धाणं, नमो सव्व आयरियाणं, नमो सव्व उवज्झायाणं इम अरिहंतादिक पद नैं विषै पिण सर्व शब्द जाणवो। जे साधू में सर्व शब्द कह्यो ते न्याय नैं सामान्यत्वात् कहितां सरीखा पणां थकी अर्हतादिक में सर्व शब्द जाणवो।

इहां सर्व जीव नैं हितकारक साधु छै ते भणी साधु नैं सार्व कह्या। सार्व तेहिज साधु, सार्व-साधु इहां कर्मधारय समास।

१३२. तथा सार्व अर्हत् कह्या, तेहनां साधू तंत।
पिण बुद्धादिक ना नहीं, साव - साधु गुणवंत।।

१३२. सार्वस्य वा—अर्हतो न तु बुद्धादेः साधवः सार्वसाधवः। (वृ०-प० ४)

वा०—सर्व जीवां नैं हितकारी ते सार्व शब्द अर्हत् नैं कहियै। ते अर्हत् ना साधु पिण बुद्धादिक ना नथी, ते माटै सार्व साधु कह्या।

१३३. तथा सर्व सुभ जोग प्रति, साधै करै सुजोग।
सर्व साधु कहियै तसुं, अमल चित्त उपयोग।।

१३३. सर्वान् वा शुभयोगान् साधयन्ति—कुर्वन्ति। (वृ०-प० ४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३४. तथा सार्व अर्हंत प्रतै, साधै सार्व मुसाधु।
तसुं आज्ञा करिवा थकी, अर्हंत वच आराधु॥

वा०—इहां पिण सर्व जीव नैं हितकारक अर्हंत छै ते भणी अर्हंत नैं सार्व कह्या, ते सार्व अर्हंत नैं साधै तेहनी आज्ञा पालवा थकी आराधै ते सार्व साधु।

१३५. तथा सार्व अर्हंत प्रतै, प्रतिष्ठापै स्थापंत।
दुर्नय नैं तजवा थकी, सर्व साधु गुणवंत॥

वा०—इहां पिण सर्व जीव नैं हितकारक अर्हंत छै ते भणी सार्व नाम अर्हंत नो कह्यो ते सार्व अर्हंत नैं स्थापै, दुर्नय नैं तजिवे करी ते सार्व साधु कहियै।

१३६. तथा श्रवण नैं योग्य वच, ते श्रव्य वाक्य विषेह।
साधु कहियै निपुण जे, श्रव्य साधु ते लेह।

वा०—इहां सत्र नो अर्थ कह्यू श्रव्य, ते श्रवण योग्य सुणवा योग्य वचन नैं विषै साधु कहियै निपुण, तेहनै श्रव्य साधु कहियै।

१३७. अथवा सव्य अनुकूल जिके, कार्य तास विषेह।
साधु कहितां निपुण जे, सव्य साधु छै तेह॥

वा०—इहां सव्व नो अर्थ सव्य ते अनुकूल कार्य जे छै तेहनें विषै साधु कहितां निपुण ते सव्य साधु।

१३८. इह कारण थी ते भणी, नमस्कार सुध रीत।
नमो सव्वसाहू तणो, ए वर अर्थ वदीत॥

वा०—'णमो लोए सव्वसाहूणं' एहवो पाठान्तर कहि देखाय छै। एम वृत्तिकारे कह्यु। एहनों अर्थ वृत्ति नैं आधार थी कहियै छै।

१३९. तिहां सर्व जे शब्द नैं, देश थकी अर्थ ताय।
सर्वपणा में पिण हुवै, तेह इहां न गिणाय॥

वा०—सर्व शब्द रा दोय भेद छै—सर्व अर्थवाची, देश अर्थवाची। तिहां देश अर्थवाची सर्व शब्द कहिणें सूं एक गण ना साधु ग्रहण करियै अनै सर्व अर्थ वाची सर्व शब्दे अढाई द्वीप ना साधु ग्रहण करियै।

१४०. सर्व शब्द वाची इहां, सर्व शब्द छै एह।
सर्व थकी देखाडवा, अर्थे एम कहेह॥

१४१. लोए कहितां लोक जे, मनुष्य लोक रै मांय।
सर्व साधु छै तेहनैं, नमस्कार शिर नाय॥

गीतक-छंद

१४२. शिव-मग सहाय्य करण करि, उपकारका मुनि ते भणी।
तसुं नमस्कारज करण योग्या, मन वचन क्रमणा[1] थुणी॥

१४३. सुध चरण कृत असहाय मुझ प्रति वर सहायक छै मुणी।
ए कारणे करि सर्व मुनि प्रति नमस्कारज विधि भणी॥

वा०—मोक्षमार्ग सहाय करिवै करी उपकारिपणा थकी संयम करता नैं मुझ असहाय नैं सहायपणा प्रति करै, इण कारण करिके हूं सर्व साधु नैं नमस्कार करूं छूं।

१. कर्म (क्रिया) से।

१३४. सार्वान् वा—अर्हंतः साधयन्ति तदाज्ञाकरणादाराधयन्ति। (वृ०-प० ४)

१३५. प्रतिष्ठापयन्ति वा दुर्नयनिराकरणादिति सर्वसाधवः सार्वसाधवो वा। (वृ०-प० ४)

१३६. अथवा—श्रव्येषु—श्रवणार्हेषु वाक्येषु।

१३७. अथवा सव्यानि—दक्षिणान्यनुकूलानि यानि कार्याणि तेषु साधवो—निपुणाः श्रव्यसाधवः। (वृ० प० ४)

वा०—णमो लोए सव्वसाहूणं ति क्वचित् पाठः।

१४०. तत्र सर्वशब्दस्य देशसर्वतायामपि दर्शनादपरिशेषसर्वतोपदर्शनार्थमुच्यते। (वृ०-प० ४)

१४१. लोके मनुष्यलोके न तु गच्छादौ ये सर्वसाधवस्तेभ्यो नम इति। (वृ०-प० ४)

१४२, १४३. एषां च नमनीयता मोक्षमार्गसाहाय्यकरणेनोपकारित्वात् आह च—

"असहाए सहायत्तं करेति मे संयमं करेंतस्स।
एएण कारणेणं णमामिऽहं सव्वसाहूणं॥"
(वृ०-प० ४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूहा

१४४. नमस्कार संक्षेप करि, जो कीजै जिहवार।
सिद्ध अनै साधू प्रति, करिवूं युक्त उदार।।

१४४. ननु यद्ययं संक्षेपेण नमस्कारस्तदा सिद्धसाधूनामेव युक्तः। (वृ०-प० ४)

१४५. सिद्ध साधु ग्रहिवै करि, अन्य जे अर्हत आदि।
तेहनों पिण जे ग्रहण ह्वै, ते पिण मुनि संवादि।।

१४६. अर्हत् आदि अछै तिके, मुनिपणुं नहिं त्यजंत।
संक्षेपे सिध मुनि नम्यां, ए पिण सहु[1] आवंत।।

१४५, १४६. तद्ग्रहणेऽन्येषामप्यर्हदादीनां ग्रहणात्, यतोऽर्हदादयो न साधुत्वं व्यभिचरन्ति। (वृ०-प० ४, ५)

१४७. अथ विस्तर करि जो नमैं, तो ऋषभादि जिवार।
नाम समुच्चरवै करी, नमवूं धर अति प्यार।।

१४७. अथ विस्तरेण तदा ऋषभादिव्यक्तिसमुच्चारणतोऽसौ वाच्यः स्यादिति।

१४८. गुरु भाषै—ए इम नहीं, जिह कारण थी जेह।
समुच्चय साधु मात्र प्रति, नमस्कार कीधेह।।

१४९. अर्हतादि जे जू जूआ, नमण तणुं फल जोय।
समुच्चय सिध साधु नम्यां, ते फल जबर न होय।।

१४८, १४९. नैवं, यतो न साधुमात्रनमस्कारेऽर्हदादिनमस्कारफलमवाप्यते। (वृ०-प० ५)

१५०. समुच्चय जे मनु मात्र नैं, नमस्कार कीधेह।
नृपादि नैं नमस्कार नूं, फल नीं पर छै एह।।

१५०. मनुष्यमात्रनमस्कारे राजादिनमस्कारफलवदिति। (वृ०-प० ५)

१५१. समुच्चय साधु भणी नमैं, नमैं जू जूआ कोय।
एक सरीखो फल नहीं, नय ववहारे जोय।।

१५२. इम समुच्चय साधू नमैं, कोइक अर्हत् आद।
नाम जू जूआ ले नमैं, समफल तसुं किम साध?।।

१५३. करिवूं नमण विशेष थी, नाम जू जूआ लेह।
अर्हत आदि अनंत छै, वाक्य अशक्य कहेह।।

१५३. कर्त्तव्यो विशेषतोऽसौ, प्रतिव्यक्ति तु नासौ वाच्योऽशक्यत्वादेवेति। (वृ०-प० ५)

१५४. प्रधान न्याय अंगीकरी, करिवूं जो नमस्कार।
तो अनुक्रम सिद्ध आदि नैं, नमवूं प्रथम उदार।।

१५५. कारज करिवा योग्य जे, कीधा सगला सिद्ध।
सर्व प्रधानपणां थकी, नमवूं प्रथम समृद्ध।।

१५४, १५५. ननु यथाप्रधानन्यायमङ्गीकृत्य सिद्धादिरानुपूर्वी युक्ताऽत्र, सिद्धानां सर्वथा कृतकृत्यत्वेन सर्वप्रधानत्वात्। (वृ०-प० ५)

१५६. गुरु भाषै—ए इम नहीं, अर्हत उपदेशेह।
वर सिद्धां प्रति जाणियै, सम्यक् प्रकारपणेह।।

१५७. तीर्थ प्रवर्त्तन करि वली, अर्हत ही सुश्रेण।
अत्यंत उपकारक थकी, तसुं धुर नमण क्रमेण।।

१५६, १५७. नैवम्, अर्हदुपदेशेन सिद्धानां ज्ञायमानत्वादर्हतामेव च तीर्थप्रवर्त्तनेनात्यन्तोपकारित्वादित्यर्हदादिरेव सा। (वृ०-प० ५)

१५८. जो इम छै तो क्रम हुइं, आचार्यादि उदार।
किणहिक काले केवली, हुवै विच्छेद जिवार।।

१५९. गणपति ना उपदेश करि, अर्हत आदि प्रतेह।
सम्यक् प्रकारे जाणियै, तसुं धुर नमवूं लेह।।

१६०. इह कारण थी गणपति, लेह भविक नैं हीज।
अत्यंत उपकारी अछै, तसुं धुर नमण कहीज।।

१५८-१६०. नन्वेवमाचार्यादिः सा प्राप्नोति, क्वचित्काले आचार्येभ्यः सकाशादर्हदादीनां ज्ञायमानत्वात्, अतएव च तेषामेवात्यन्तोपकारित्वात्।

---

१. अर्हत् आदि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६१. गुरु भाषै—ए इम नहीं, अर्हत् नीं पर ताहि।
आचारज उपदेश प्रति, देवा सामर्थ्य नाहिं॥

१६२. अर्हत ना उपदेश थी, गणपति दै उपदेश।
पिण स्व-वस थी नहि दियै, जे छद्मस्थ अशेष।

१६३. अर्हत ना उपदेश थी, आचार्यादिक जेह।
अर्थ प्रते जाणै कहै, देश अर्थ प्रति तेह॥

१६४. केवलज्ञानी छै तिके, परमार्थे करि तेह।
सर्व अर्थ जाणैं सही, स्व आधीनपणेह॥

१६५. भावे तीर्थंकर तणी, परषद रूप पिछाण।
आचार्यादिक संत सहु, जिन मुख आगल जाण॥

१६६. तिण सूं धुर आचार्य नै, नमण करी नैं ताहि।
पछै नमैं अरिहंत नै, अयुक्त ते जग मांहि॥

१६७. धुर परषद् प्रति नमण कर, पाछै प्रणमै राय।
लोक विषै पिण एहवी, रीति न दीसै काय॥

१६८. इह कारण थी आदि में, अर्हत नैज उदार।
नमस्कार ते युक्त छै, पंच पदां नैं सार॥

वा०—इम प्रथम परमेष्ठि नैं नमस्कार करी नैं, हिवै लोक नैं अत्यंत उपकारी श्रुतज्ञान तेहनों जे देश भावे लिपि छै ते भावे लिपि नैं नमस्कार, अथवा लिपि ना कर्त्ता ऋषभदेव, तेहनैं नमस्कार करिवूं ते कहै छै।

१६९. नमो बंभीए लिवीए, लिपि-कर्त्ता नाभेय।
चरण-सहित धुर जिन लिपिक, अर्थ धर्मसी एह[1]॥

१७०. पाथा ना कर्त्ता भणी, पाथी कहियै ताहि।
एवंभूतनय नैं मते, अनुयोगदुवार रै मांहि[2]॥

१७१ अथवा लिपिते भावलिपि, जे मुनि नैं आधार।
नमस्कार छै तेहनैं, एहवूं दीसै सार॥

१७२. तीर्थ नाम जिम सूत्र नों, ते संघ नैं आधार।
तिण सूं संघनैं तीर्थ कह्यूं, तिम भावे लिपि सार॥

१७३. वृत्तिकार द्रव्य लिपि कही, ते लिपि छै गुण-शून्य।
नमस्कार तेहनैं करी, ते तो वात जबून्य[3]॥

१६१-१६३. नैवम्, आचार्याणामुपदेशदानसामर्थ्यमर्हदुपदेशत एव, न हि स्वतन्त्रा आचार्यादय उपदेशतोऽर्थज्ञापकत्वं प्रतिपद्यन्ते। (वृ०-प० ५)

१६४. अतोऽर्हन्त एव परमार्थेन सर्वार्थज्ञापकाः। (वृ०-प० ५)

१६५, १६६. तथा अर्हत्परिषद्रूपा एवाचार्यादयोऽतस्तान् नमस्कृत्यार्हन्नमस्करणमयुक्तम्। (वृ०-प० ५)

१६७. 'ण य कोइवि परिसाए पणमित्ता पणवए रन्नोत्ति' (वृ०-प० ५)

१६९. नमो बंभीए लिवीए। (श० १।२)

---

१. टीकाकार ने यहां ब्राह्मी लिपि को नमस्कार किया है, पर जयाचार्य ने अपनी स्वतंत्र तर्क-शक्ति का उपयोग कर 'ब्राह्मी लिपि' इस शब्द से लिपि कर्त्ता नाभेय—ऋषभदेव का ग्रहण कर उन्हीं को नमस्कार किया है।

२. तीन शब्द नय—शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत नय के अनुसार प्रस्थक के अर्थाधिकार को जानने वाला व्यक्ति प्रस्थक कहलाता है अथवा जिसके द्वारा प्रस्थकाधिकार को जानने वाले के उपयोग—चैतन्य-व्यापार से प्रस्थक निष्पन्न होता है, वह प्रस्थक कहलाता है। [अनुयोगद्वार सूत्र ५५५]

३. निकृष्ट।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७४. द्रव्य निक्षेपो गुण-रहित, वंदन योग्य न नाम।
समवायंगे देख लो, द्रव्य भाव जिन नाम॥

१७५. भरत एरवत क्षेत्र नां, अनागत जिनराय।
चउवीसी नां नाम पिण, वंदे पाठ न नाय॥

१७६. वलि एरवत क्षेत्र नीं, चउवीसी वर्त्तमान।
ठांम ठांम वंदे कह्यो, ए गुण-सहित सुजान॥

१७७. वर्त्तमान चउवीसी ए, भरत क्षेत्र नीं ताहि।
ठांम ठांम वंदे कह्यो, जोवो लोगस्स मांहि॥

१७८. ते माटै द्रव्य लिपि भणी, द्रव्य सूत्र नैं सोय।
नमस्कार किम कीजियै, हिये विमासी जोय॥

१७९. वृत्तिकार द्रव्य लिपि भणी, थाप्यो छै नमस्कार।
सूत्र थकी मिलतो नथी, तेह अर्थ अवधार[1]॥

वा०—तथा पाना में जे लिख्या ते अक्षर---आकार वंदनीक मानै तो अठारह लिपि[2] मध्ये जेतला पुस्तक लिख्या ते सर्व संज्ञाक्षर वंदनीक थास्यै। कुराण, पुराण, वेद, जोतिष, वैदक, विकथा, वार्ता, मंत्र, यंत्र, तंत्र, कोक, सामुद्रक २६ पापश्रुत अक्षर-स्थापना माटै सर्व वंदनीक थास्यै। जेहनैं श्री वीतराग पापश्रुत कह्या छै। पिण द्रव्य लिपि वांदै, तेहनैं ते वंदनीक थास्यै, तेहनैं वांदता किम नथी? पापश्रुत किम कहो छो? विचारी जोयजो। श्रीमान् ऋषभ जिन निज पुत्री ब्राह्मी नैं दक्षिण हस्त करिके अष्टादश लिपि देखाड़ी ते माटै ब्राह्मी लिपि कही।

इहां शिष्य प्रेरणा करै छै—ननु अधिकृत शास्त्रहीज मंगलीक छै, ते मंगलपणा थकी नवा मंगल करिकै स्यूं प्रयोजन? कीधां नुं जे करिवूं तेहनैं अनवस्थादि दोष प्राप्ति हुवै ते माटै—जद गुरु कहै सत्य, किंतु शिष्य नीं मति नैं मंगल ग्रहण नैं अर्थे नवा मंगल नों उपादान। वली शिष्ट आचार पालण नैं अर्थे।[3]

इहां वलि ए शास्त्र नां अभिधेय आदि सामान्य करिकै तो 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' इण नामैं करिकै हीज कह्या। इण हेतु थकी तेनुं वली कहिवूं अपेक्षित नहीं।

वा०—लिपिः---पुस्तकादावक्षरविन्यासः सा चाष्टादशप्रकाराऽपि श्रीमन्नाभेयजिनेन स्वसुतायां ब्राह्मीनामिकायां दर्शिता ततो ब्राह्मीत्यभिधीयते, आह च---नेहं लिवीविहाणं जिणेण बंभीइ दाहिणकरेणं इत्यतो ब्राह्मीलिपिस्वरूपविशेषणं लिपेरिति।

ननु अधिकृतशास्त्रस्यैव मंगलत्वात् किं मंगलेन? अनवस्थादिदोषप्राप्तेः, सत्यं, किन्तु शिष्यमतिमंगलपरिग्रहार्थं मंगलोपादानं शिष्टसमयपरिपालनाय वेत्युक्तमेवेति।

अभिधेयादयः पुनरस्य सामान्येन व्याख्याप्रज्ञप्तिरिति नाम्नैवोक्ता इति ते पुनर्नोच्यन्ते तत एव श्रोतृ-

१. टीकाकार अभयदेवसूरि का अभिमत है कि इस युग के व्यक्ति श्रुतज्ञान से ही लाभान्वित हो सकते हैं। श्रुतज्ञान के दो रूप हैं---द्रव्यश्रुत और भावश्रुत। इनमें मूल तत्त्व भावश्रुत ही है, पर वह द्रव्यश्रुत हेतुक है, इसलिए उन्होंने संज्ञाक्षर-रूप द्रव्यश्रुत को नमस्कार किया है।

२. लिपि का अर्थ है पुस्तक आदि में अक्षर-विन्यास। इस युग के प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभ ने अपनी पुत्री ब्राह्मी को सर्वप्रथम लिपि का बोध दिया, इसलिए वह ब्राह्मी लिपि के नाम से प्रसिद्ध हो गई। उस ब्राह्मी लिपि के अठारह प्रकार हैं---ब्राह्मी, यवनानिका, दोषपूरिका, खरोष्टिका, खरसाहिया, प्रभाराजिका, उच्चतरिका, अक्षरपुष्टिका, भोगवती, वैनयिकी, निह्नविका, अंकलिपि, गणितलिपि, गन्धर्वलिपि, आदर्शलिपि, माहेश्वरी, द्राविड़ी और पौलिन्दी।

(समवाओ १८।५)

३. शिष्य को मंगल की प्रतीति कराने के लिए और शिष्ट जनसम्मत व्यवहार का पालन करने के लिए यहां मंगल का उपादान है, यह पहले कहा जा चुका है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्याप्रज्ञप्ति ए नाम संभलवा थीज श्रोता एमां प्रवृत्त हुवै अनै एमनै इष्टफल की सिद्धि हुवै। तिण प्रकार करिकै इण ग्रंथ नैं विषै भगवान् अर्थ थी कहिवा योग्य अरथ—अभिधेय कह्या, ते सांभलवा वाला नै अनंतर अनै परंपर ए बे फल हुवै। तिहां अनन्तर फल ते साक्षात् फल तेहनी परूपणा अनै तेहनों जाणपणो ए तो अनंतर फल कह्यो। अनै परंपर फल ते मोक्ष। ते मोक्ष नुं फल ए ग्रंथ नैं विषै भगवंत ना वचन छै ते थकीज मोक्ष नां फल नीं सिद्धि। आप्त ते भगवान् साक्षात अथवा परंपरा करिकै मोक्ष नां अंग नहीं है तो तेहनों प्रतिपादन करै ज नहीं। अनाप्तपणा नां प्रसंग थकी। आप्तपणा नां अभाव नां प्रसंग थकी।[1]

ते इम ए शास्त्र एक श्रुतस्कंध रूप (१), तेहनां एक सय अड़तीस अध्ययन (२), दस हजार उद्देशा (३), ३६ हजार प्रश्न परिमाण (४), २ लाख ८८ हजार प्रमाण पद-राशि (५)—ए पांच विशेषण वालो भगवती शास्त्र तिणरै मंगलादिक च्यारे ही दिखाया।

अथ प्रथम शतक—(अध्ययन), तेहना दश उद्देशा हुवै। उद्देशा एटले ते अध्ययन ना विभाग छै- -उपधान-विधि (तप-विशेष) करिकै शिष्य नैं आचार्य उद्देशियै- 'एतलुं अध्ययन नुं विभाग तूं भण', इम उद्देशियै तेहीज उद्देशगा। वलि तेनै प्रतै सुखै धारवा अनै संभारिवादिक नैं निमित्ते एमना आदि-आदि संग्रहणी गाथा कहै छै। राजगृह इत्यादि...

प्रवृत्त्यादीष्टफलसिद्धेः, तथाहि—इह भगवतोऽर्थव्याख्या अभिधेयतया उक्ता; तासां च प्रज्ञापना बोधो वाऽनन्तरफलं, परम्परफलं तु मोक्षः, स चास्याऽऽप्तवचनत्वादेव फलतया सिद्धो, न ह्याप्तः साक्षात् पारम्पर्येण वा यन्न मोक्षांगं तत्प्रतिपादयितुमुत्सहते अनाप्तत्वप्रसंगात्, तथाऽयमेव सम्बन्धो यदुतास्येदं शास्त्रस्येदं प्रयोजनमिति।

तदेयमस्य शास्त्रस्यैकश्रुतस्कन्धरूपस्य सातिरेकाध्ययनशतस्वभावस्य उद्देशकदशसहस्री (१००००) प्रमाणस्य षट्त्रिंशत्प्रश्नसहस्र (३६०००) परिमाणस्य अष्टाशीतिसहस्राधिकलक्षद्वय (२८८०००) प्रमाणपदराशेर्मंगलादीनि दर्शितानि।

अथ प्रथमे शते ग्रन्थान्तरपरिभाषयाध्ययने दशोद्देशका भवन्ति, उद्देशकाश्च- अध्ययनार्थदेशाभिधायिनोऽध्ययनविभागाः, उद्दिश्यन्ते—उपधानविधिना शिष्यस्याचार्येण यथा—एतावन्तमध्ययनभागमधीष्वेत्येवमुद्देशास्त एवोद्देशकाः, तांश्च सुखधरणस्मरणादिनिमित्तमाद्याभिधेयाभिधानद्वारेण संग्रहीतुमिमां गाथामाह— (वृत्ति-प० ५)

यद्यपि आगल कहिस्यै ते दश उद्देशा नैं विषै अर्थ कह्या ते जाणै छतै ए गाथा सों अर्थ तो स्वयमेव जाणियै तो पिण बाल नैं सुखै जाणवा नैं अर्थे ए कहियै छै- —

१८०. रायगिहे कहितां छतां, नगर राजगृह मांहि।
प्रथम उद्देशक नों अरथ, वीर देखाड्यो ताहि॥

१८०. रायगिहेत्ति

१८१. चलण विषय उद्देश धुर, चलमाणे इत्यादि।
अर्थ तणा निर्णय कृते, प्रश्नोत्तर संवादि॥

१८१. 'चलण' त्ति चलनविषयः प्रथमोद्देशकः 'चलमाणे चलिए' इत्याद्यर्थनिर्णयार्थः। (वृ०-प० ५)

१८२. द्वितीय उद्देशक दुख विषय, जीव अहो भगवत।
स्वयं-कृत दुख वेदियै, इत्यादि प्रश्न उदंत॥

१८२. 'दुक्खे' त्ति दुःखविषयो द्वितीयः 'जीवो' भदन्त। स्वयंकृतं दुःखं वेदयतीत्यादिप्रश्ननिर्णयार्थः। (वृ०-पत्र ६)

१८३. कंख-पओसे कांक्ष ते, मिथ्या मोह उदयेह।
वांछा अन्य-अन्य मत तणी, जीव परिणामज एह॥

१८३. 'कंखपओसे' त्ति कांक्षा—मिथ्यात्वमोहनीयोदयसमुत्थोऽन्यान्यदर्शनग्रहरूपो जीवपरिणामः।
(वृ०-प० ६)

१. यहां भगवान् ने व्याख्याप्रज्ञप्ति—अर्थ की व्याख्या का प्ररूपण अभिधेय के रूप में किया है। उसका अनन्तर फल है—अर्थ की प्रज्ञापना और बोध। और उसका परंपर फल है—मोक्ष। वह मोक्ष रूप फल व्याख्या-प्रज्ञप्ति के आप्त-वचन होने के कारण ही है, क्योंकि आप्त पुरुष उस तत्त्व का प्रतिपादन नहीं करते जो साक्षात् या परम्परा से मोक्ष का अंग न हो। अन्यथा उनके अनाप्त होने का प्रसंग उपस्थित हो जाता है। यहां वाच्य-वाचकभाव सम्बन्ध है। इस प्रकार आप्त वचन और उसका फल मोक्ष—इनका सम्बन्ध द्योतित करना ही इस शास्त्र का प्रयोजन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८४. तेहिज प्रकृष्ट दोष जे, जीव प्रदूषण तेह।
कांक्षा-प्रदोष[1] तसु कह्यूं, तास विषय पभणेह॥

१८५. जीव अहो भगवंत जी, कांक्षा मोहनी कर्म।
कीधूं इत्यादिक अर्थ, निर्णय तृतीय सुधर्म॥

१८६. चतुर्थ कर्म-प्रकृति नुं, कितली पुढवी ख्यात।
इत्यादिक जे अर्थ नुं, निर्णय पंचम आत॥

१८७. जावंते प्रभु जेतला, अवकाशांतर थीज।
ऊगंतो रवि प्रमुख ही, षष्टमुद्देश कहीज॥

१८८. नारक हे भगवंत जी! नरक विषेज निहाल।
ऊपजतां इत्यादि जे, सप्तमुद्देशक भाल॥

१८९ अष्टम एकांत बाल नुं, जीव गुरु किम होय।
चलणादि अन्य तीर्थ मत, दशम उद्देशे जोय॥

१८४. स एव प्रकृष्टो दोषो—जीवदूषणं कांक्षाप्रदोषस्तद्विषयस्तृतीयः। (वृ०-प० ६)

१८५. 'जीवेन भदन्त! कांक्षामोहनीयं कर्म कृतमित्याद्यर्थनिर्णयार्थः ३, (वृ०-प० ६)

१८६. प्रकृतयः—कर्मभेदाश्चतुर्थोद्देशकस्यार्थः, कति भदन्त! कर्मप्रकृतयः? इत्यादिश्चासौ ४, 'पुढवीओ' त्ति रत्नप्रभादिपृथिव्यः पञ्चमे वाच्याः। (वृ०-प० ६)

१८७. 'जावंते' त्ति यावच्छब्दोपलक्षितः षष्ठः 'यावतो भदन्त! अवकाशान्तरात्सूर्यः' इत्यादिसूत्रश्चासौ ६, (वृ०-प० ६)

१८८. 'नेरइए' त्ति नैरयिकशब्दोपलक्षितः सप्तमः 'नैरयिको भदन्त! निरये उत्पद्यमानः' इत्यादि च तत्सूत्रं ७। (वृ०-प० ६)

१८९. 'बाले' त्ति बालशब्दोपलक्षितोऽष्टमः एकान्तबालो भदन्त! मनुष्य इत्यादिसूत्रश्चासौ ८, 'गुरुए' त्ति गुरुकविषयो नवमः कथं भदन्त! जीवा गुरुकत्वमागच्छन्ति? 'चलणाओ' त्ति बहुवचननिर्देशाच्चलनाद्यादशमोद्देशकस्यार्थाः। (वृ०-प० ६)

वा०—'अन्ययूथिका भदन्त! एवमाख्यान्ति—चलद् अचलितमित्यादीति' प्रथमशतोद्देशकसंग्रहणिगाथार्थः तदेवं शास्त्रोद्देशे कृतमंगलादिकृत्योऽपि प्रथमशतस्यादौ विशेषतो मंगलमाह— (वृ०-प० ६)

१९०. नमो सुयस्स (श० १।३)

वा०—चलमाणे अचलिए चलवा लागो तेहनैं चलियो न कहिणो इत्यादिक अन्यतीर्थिक नां मत नीं वक्तव्यता गौतम पूछै दशमा उद्देशा नैं विषै—ए प्रथम शतक ना दश उद्देशां नीं संग्रहणी गाथा नों अर्थ कह्यो ते इम शास्त्र उद्देश नैं विषै मंगलादि कार्य कीधो तो पिण प्रथम शतक नां आदि नैं विषै विशेष थी मंगल कहै छै—

१९०. नमोथुत ते भावश्रुत, चरणयुक्त श्रुतवंत।
लिपि शब्दे तो देशश्रुत, इहां सर्व श्रुतमंत[2]॥

वा०—इहां कोई कहै श्रुतज्ञान नैं नमस्कार कीधै तेहनैं विषै भाव लिपि पिण आय गई, तो पूर्वे भाव लिपि नैं नमस्कार कीधो तेहनों स्यूं कारण? 'नमो बंभीए लिवीए' अनैं 'नमो सुयस्स' ए बे पद किम कह्या? तेहनों उत्तर—दशवैकालिक अध्येन ८।४० में कह्यो 'कुम्मोव्व अल्लीणपलीण गुत्तो'—काछवा नीं परै आल्लीण ते ईषत् गुप्त, प्रलीन ते प्रकृष्टलीन—घणुं गुप्त। इहां बे पद कह्या। तथा दशवैकालिक अध्ययन ४ कह्यो—पृथ्वीकाय ऊपर 'न आलिहेज्जा' कहितां थोड़ो सो अथवा एक बार लिखै नहीं, 'न विलिहेज्जा' कहितां बहु बार लिखै

१. जीव को दूषित करने वाला प्रकृष्ट दोष कांक्षा-प्रदोष है।

२. नमो बंभीए लिवीए और नमो सुयस्स—इन दोनों पाठों का जयाचार्य ने अपनी तार्किक बुद्धि से समन्वय किया है। उनके अनुसार लिपि और श्रुत दोनों ही भावश्रुत हैं। 'ब्राह्मी लिपि' शब्द देशतः भावश्रुत और श्रुत शब्द से सर्वतः भावश्रुत का ज्ञापक है। यहां प्रश्न उठ सकता है कि ब्राह्मी लिपि और श्रुत दोनों ही भावश्रुत के प्रतीक हैं, तो फिर दो पृथक् सूत्र बनाए ही क्यों? इस प्रश्न के समाधान में दोनों शब्दों की सार्थकता ज्ञापित करने के लिए जयाचार्य ने दशवैकालिक, उत्तराध्ययन बृहत्कल्प आदि आगमों के अनेक उद्धरण काम में लिये हैं। (देखें १।१९० की वार्त्तिका)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं। इहां पिण बे पद कह्या। तथा उत्तराध्येन अ० १।२१ 'आलवंते लवंते वा न निसिएज्ज कयाइवि' गुरुइं आलवंते कहितां एक वार बोलाव्यो वा---अथवा लवंते वा कहितां वार वार बोलाव्यो तो शिष्य बैठो रहै नहीं। इहां पिण बे पद कह्या। तथा उत्तराध्येन अ० ११।५ 'नासीले न विसीले' नासीले कहितां सर्वथा चारित्र नीं विराधना नथी, विसीले कहितां देश थकी चारित्र नीं विराधना नथी। इहां पिण देश अनैं सर्व ए बे पद कह्या। तथा बृहत्कल्प उ० ३ बोल २१ अंतरघर नैं विषै साधु नैं न कल्पै निद्दाइत्तए वा कहितां थोड़ी नींद लेवी, पयलाइत्तए वा कहितां विशेष ऊंघवो। इहां पिण बे पद कह्या। इत्यादिक अनेक ठामें बे-बे पद कह्या। तिम इहां पिण बे पद जाणवा।

लिपि शब्दे भाव लिपि ते देश थकी श्रुत ज्ञान। अनैं नमो सुयस्स ते सर्व-श्रुत ज्ञान कह्यो तथा लिपि ना कर्त्ता ऋषभदेव नैं लिपिक कहिये। ते चारित्रयुक्त प्रथम जिन नैं नमस्कार।

इहां वृत्तिकार कह्यु अरिहंत पिण तीर्थ नैं नमस्कार करै ते अर्थ सूत्र सूं मिलतो नथी। वलि जे कहै छद्मस्थ तीर्थंकर साधु नैं नमस्कार नथी करै तो केवल उपना पछै तीर्थ नैं नमस्कार किम करै। तथा आचारांग श्रु०२ अ०१५।३२ में सिद्धां नैं नमस्कार करी महावीर स्वामी दीक्षा लीधी एहवूं कह्युं, पिण तीर्थ नैं नमस्कार करी दीक्षा लीधी एहवूं नथी कह्युं। छदमस्थपणैं दीक्षा लेतां तथा लियां पछै सिद्धां नैं नमस्कार करै पण तीर्थ नैं न करै, तिमहीज केवल ऊपनां पछै सिद्धां नैं नमस्कार करै पिण तीर्थ नैं न करै, न्याय विचारी जोइज्यो।[1]

इम प्रथम शतक ना दश उद्देशां नैं विषै कहिवा योग्य जे अर्थ ते लेश थकी पूर्वे देखाड्यो हिवै 'यथोद्देशं निर्देशः' इण न्याय आश्रयी नैं पहिलां प्रथम उद्देशक नां अर्थ विस्तार थकी कहिवा प्रथम उद्देशकार्थ विस्तार नैं गुरु परंपरागत संबंध देखाड़ते छते भगवान् सुधर्म्म स्वामी जंबू स्वामी प्रति इम कहै छै---'तेणं कालेणं तेणं समएणं' इत्यादि। अथ किण प्रकार करिकै इम जाणियै—सुधर्म्म स्वामी जंबू स्वामी नैं लक्ष्य करी नैं ए ग्रन्थ नी रचना कीधी? सुधर्म्म स्वामी नीं वाचना नों अनुवर्तीज ए ग्रन्थ छै, ते माटै। कह्यो पिण छै---

तीर्थ गणधर सुधर्मा थी ज चाल्यो, शेष गणधरों नीं परम्परा नथी चाली। सुधर्म स्वामी रै जंबू स्वामीहीज प्रधान शिष्य, इण कारण थकी ते जंबू प्रति आश्रयी नैं ए वाचना नी प्रवृत्ति करी। तथा छठा अंग नैं विषै एहवो उपोद्घात

एवं तावत्प्रथमशतोद्देशकाभिधेयार्थलेशः प्राग्दर्शितः, ततश्च 'यथोद्देशं निर्देश' इति न्यायमाश्रित्यादितः प्रथमोद्देशकार्थप्रपञ्चो वाच्यः, तस्य च गुरुपर्वक्रमलक्षणं सम्बन्धमुपदर्शयन् भगवान् सुधर्म्मस्वामी जम्बूस्वामिनमाश्रित्येदमाह। अथ कथमिदमवसीयते---यदुत सुधर्मस्वामीजम्बूस्वामिनमभि सम्बन्धग्रन्थमुक्तवानिति? उच्यते, सुधर्म्मस्वामिवाचनाया एवानुवृत्तत्वात्, आहच---'तित्थं च सुहम्माओ निरवच्चा गणहरा सेसा' सुधर्म्मस्वामिनश्च जम्बूस्वाम्येव प्रधानः शिष्योऽतस्तमाश्रित्येयं वाचना प्रवृत्तेति, तथा षष्ठांगे उपोद्घात एवं दृश्यते---यथा किल सुधर्म्मस्वामिनं प्रति जम्बूनामा प्राह---"जइ

---

१. वृत्तिकार ने इस संदर्भ में एक प्रश्न उठाया है- मंगल के लिए इष्ट देवता को नमस्कार होता है। श्रुत इष्ट देवता नहीं है, इस स्थिति में उसे नमस्कार क्यों?

वृत्तिकार के अनुसार इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है- श्रुत इष्ट देवता ही है, क्योंकि अर्हतों ने भी उसे नमस्कार किया है सिद्धों की भांति। अर्हत् श्रुत को नमस्कार करते हैं, इस तथ्य की पुष्टि 'नमस्तीर्थाय' इस वाक्य से होती है। यहां तीर्थ का अर्थ श्रुत है, क्योंकि वह संसार-सागर से पार पहुंचने का असाधारण कारण है। श्रुत का आधार होने से ही संघ को तीर्थ शब्द से अभिहित किया गया है। अर्हत् मंगल के लिए सिद्धों को नमस्कार करते ही हैं। इस प्रकार वृत्तिकार ने श्रुत को इष्ट देवता के रूप में प्रमाणित किया है और अर्हत् के द्वारा भी तीर्थ को नमस्कार करवाया है। जयाचार्य वृत्तिकार के इस मत से अपनी असहमति व्यक्त करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छै—भंते ! जो पांचमा अंग विवाहपण्णत्ति नों श्रमण भगवान् महावीरे ए अर्थ कह्यु तो छठा अंग नों भंते ! स्यूं अर्थ प्ररुपियो ?

ते इम इहां पिण सुधर्मा स्वामी जंबू नाम थकीज उपोद्घात अवश्य कह्यु एम जणाय छै। वलि ए उपोद्घात-ग्रंथ मूल टीकाकार समस्त शास्त्र आश्रयी नैं कह्यो पिण अम्हे प्रथम उद्देशक आश्रयी नैं कहियै छै। शतक-शतक प्रति उद्देशक-उद्देशक प्रति उपोद्घात नैं इण शास्त्र नैं विषै अनेक प्रकार कहिवा थकी।

सोरठा

१९१. नमस्कारादिक ताहि, रचना पूर्व कही तिका।
मूल-वृत्ति रै मांहि, न कहि किण कारण थकी[1] ॥

१९२. ब्राह्मी लिपि नमस्कार, मूल वृत्ति में ना कियो।
तास न्याय जे सार, बुद्धिवंत हिये विचारजो ॥

वा०— तेणं कालेणं ति। ते इति प्राकृत शैली ना वश थकी सप्तमी विभक्ति नो एकवचन हुई। अनैं संस्कृते सप्तमी नैं एकवचने तस्मिन् हुई। णं शब्द छै तिको वाक्यालंकार नैं अर्थे जाणवो। काले कहितां अधिकृत अवसर्प्पिणी चतुर्थ अरा रूप विभाग लक्षण नैं विषै। तेणं समएणं ति ते समय—जे समय भगवान् धर्म-कथा कहिता हुता, एतलै काल नो हीज विशिष्ट विभाग, तेहनैं समय कहियै।

अथवा तेणं कालेणं तेणं समएणं ए च्यारूं स्थानके तीजी विभक्ति नो एक-वचन हीज हुई। तेन कालेन पूर्वोक्त ते काल हेतुभूत करिकै तेन समयेन पूर्वोक्त ते समय हेतुभूत करिकै हीज रायगिहे नाम नगरे—कहितां राजगृह नामे नगर, इहां एकार प्रथमा विभक्ति नूं एकवचन, पिण सप्तमी नों एक वचन नहीं। जिम 'कयरे आगच्छइ दित्तरूवे' इत्यादिवत्। ते भणी राजगृहं नाम नगरं। होत्था कहितां हुतो। ननु हिवड़ां पिण ते नगर छै। एतलै सुधर्म स्वामी ने वाचना—दान काले पिण ते नगर छै। इण कारण थकी ते नगर हुतो इम किम कह्यु? एहनो उत्तर—वर्णक ग्रंथोक्त राजगृह जेहवो विभूतियुक्त हुतो तेहवो सुधर्म स्वामी जंबू प्रति वाचनादान काले नथी। अवसर्प्पिणी नां भाव थकी—काल नैं ते सुभ भाव नीं हानि नां भाव थकी। ते माटे राजगृह नाम नगर हुतो एहवूं कह्यूं। वण्णओ कहितां इण स्थानके नगर नूं वर्णक कहिवूं। ग्रंथ नां विस्तार रा भय थकी मूल पाठ मां वर्णक लिख्यो नथी। ते इम—रिद्धत्थिमियसमिद्धे...

णं भंते ! पंचमस्स अंगस्स विवाहपन्नत्तीए समणेणं भगवया महावीरेणं अयमट्ठे पन्नत्ते, छट्ठस्स णं भंते ! के अट्ठे पन्नत्ते त्ति।

तत एवमिहापि सुधर्मैव जम्बूनामानं प्रत्युपोद्घात-मवश्यमभिहितवानित्यवसीयत इति। अयं चोपोद्घात-ग्रंथो मूलटीकाकृता समस्तं शास्त्रमाश्रित्य व्याख्यातोऽ-प्यस्माभिः प्रथमोद्देशकमाश्रित्य व्याख्यास्यते। प्रतिशतं प्रत्युद्देशकमुपोद्घातस्वेह शास्त्रेऽनेकधाभिधानादिति।

(वृ०-प० ६, ७)

१९१. अयं च प्राग् व्याख्यातो नमस्कारादिको ग्रन्थो वृत्ति-कृता न व्याख्यातः कुतोऽपि कारणादिति।

(वृ०-प० ७)

वा०— ते इति—प्राकृतशैलीवशात्तस्मिन् यत्र तन्नगर-मासीत्, णंकारोऽवाक्यालङ्कारार्थो 'काले' अधिकृतावसर्प्पिणीचतुर्थविभागलक्षण इति, 'तेणं' ति तस्मिन् यत्रासौ भगवान् धर्मकथामकरोत् 'समए णं' ति समये कालस्यैव विशिष्ट विभागे।

अथवा तृतीयैवेयं, ततस्तेन कालेन हेतुभूतेन तेन समयेन हेतुभूतेनैव 'रायगिहे' त्ति एकारः प्रथमैकवचन-प्रभवः 'कयरे आगच्छइ दित्तरूवे' इत्यादाविव, ततश्च राजगृहं नाम नगरं 'होत्थ' त्ति अभवत्। ननु विदानीमपि तन्नगरमस्तीत्यतः कथमुक्तमभवदिति? उच्यते, वर्णक-ग्रन्थोक्तविभूतियुक्तं तदैवाभवत् न तु सुधर्मस्वामिनो वाचनादानकाले, अवसर्पिणीत्वात्कालस्य तदीयशुभ-भावानां हानिभावात्। 'वन्नओ' त्ति इह स्थानके नगर-वर्णको वाच्यः, ग्रन्थगौरवभयादिह तस्यालिखितत्वात्, स चैवम्—"रिद्धत्थिमियसमिद्धे।

---

१. भगवती सूत्र की वर्तमान टीका अभयदेवसूरि की है। टीकाकार अभयदेवसूरि कह रहे हैं कि इस प्राग् व्याख्यात नमस्कार आदिक ग्रन्थ—

णमो अरहंताणं...
णमो बंभीए लिवीए
णमो सुयस्स

की मूल टीकाकार ने व्याख्या नहीं की है। इसका कारण अज्ञात है। संभव है, उक्त पाठ इस ग्रन्थ में मूलतः नहीं थे। प्रथम टीकाकार के समय तक भी वे नहीं थे। बाद में प्रक्षिप्त हुए हैं। यह प्रक्षेप कब हुआ और वे मूल टीकाकार कौन थे? इनका नाम अज्ञात है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रिद्ध ते पुर-भवनादि करिकै वढ्यो-चढ्यो, स्थिमिय कहितां स्थिर, स्वचक्र परचक्रादि भयवर्जितपणा थकी। समिद्ध कहितां समृद्ध—धन-धान्यादि विभूति-युक्त-पणा थकी। पमुइयजणजाणवए। पमुइय कहितां प्रमोदवंत—हरषवंत प्रमोद-कारण वस्तु ना सद्भाव थकी। जण कहितां जन नगर ना वसवा वाला लोक अनैं जाणवए कहितां जनपद—देश के विषै ऊपनां ते जानपदा देश नैं विषै रहै तिकै लोक, एतलै नगरवासी लोक पिण प्रमोदवंत हरषवंत लोक छै। अनैं देश वासी लोक पिण ते राजगृह नैं विषै आया छतां प्रमोदवंत हरषवंत हुवै। इत्यादिक वर्णक उववाई सूत्र थकी जाणवूं। [सू० १]

ऋद्धं—पुरभवनादिभिर्वृद्धं स्तिमितं—स्थिरं स्वचक्रपरचक्रादिभयवर्जितत्वात् समृद्धं—धनधान्यादिविभूतियुक्तत्वात्, ततः पदत्रयस्य कर्मधारयः, पमुइयजणजाणवए' प्रमुदिता—हृष्टाः प्रमोदकारणवस्तूनां सद्भावाज्जनाः—नगरवास्तव्यलोका जानपदाश्च—जनपदभवास्तत्रायाताः सन्तो यत्र तत् प्रमुदितजनजानपदमित्यादिरौपपातिकात् सव्याख्यानोऽत्र दृश्यः। (वृ०-प०७)

*नमो प्रभू महावीरं, नमो शासन-तिलक सधीरं।
तन मन करि तसु वचन आराध्यां, अविचल शिव-सुख सीरं।गुणिजन।
नमो प्रभू महावीरं।(ध्रुपदं)

१९३. तिण कालै तिण समयै हुंतो, नगर राजगृह नामं।
प्रथम उपांगे चम्पा-वर्णक, तिम कहिवूं अभिरामं॥

१९३. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था—वण्णओ। (श० १।४)

१९४. नगर राजगृह थकोज बाहर, उत्तर पूर्व विषे हो।
दिशि ते गगन-मंडल नो भाग ज ते दिग्भाग सुलेहो॥

१९५. अथवा जे दिग् रूप गगन-मंडल ना भाग विषेहो।
कूण ईशाणे गुणसिल नामे, चैत्य हुंतो शुभ रेहो॥

१९४, १९५. तस्स णं रायगिहस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे गुणसिलए नामं चेइए होत्था। (श० १।५)

'दिसीभाए' त्ति दिशां भागो दिग्रूपो वा भागो गगनमण्डलस्य दिग्भागस्तत्र। (वृ० प० ७)

१९६. तेह नगर नों श्रेणिक राजा, राज करै वर रीत।
तास चेलणा राणी जाणी, आपस में अति प्रीतं॥

१९६. सेणिए राया, चिल्लणा देवी। (श० १।६)

१९७. तिण कालै तिण समय विषै जे, श्रमण तपस्वी साचा।
वा सोभन मन सहितज वर्त्तै, समन प्रभूजी जाचा॥

१९७. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे श्राम्यति—तपस्यतीति श्रमणः, अथवा सह शोभनेन मनसा वर्त्तत इति समनाः। (वृ०-प० ७)

१९८. अथवा सं कहितां जे मिलतो[1], अणति - भाखै जेहो।
वा सहुभून विषे सम वर्त्तै, समण कहीजै तेहो[2]॥

१९८. संगतं वा यथा भवत्येवमणति—भाषते, समो वा सर्वभूतेषु सन् अणति—अनेकार्थत्वाद्धातूनां प्रवर्त्तत इति समणः।

१९९. ऐश्वर्यादियुक्त पूज्य प्रभु, तिण कारण भगवानं।
दुर्जय अंतर्-रिपु हणवा थी, महावीर अभिधानं॥

१९९-२०१. भगवं महावीरे
भगवान्—ऐश्वर्यादियुक्तः पूज्य इत्यर्थः, 'महावीरे' त्ति वीरः 'सूर वीर विक्रान्ताविं' ति वचनात् रिपुनिराकरणतो विक्रान्तः, स च चक्रवर्त्यादिरपि स्यादतो विशेष्यते महांश्चासौ दुर्जयान्तररिपुतिरस्करणाद्वीरश्चेतिमहावीरः। (वृ०-प० ७)

सोरठा

२००. वीर धातु इम लेह, पराक्रम अर्थे हुवं।
अरि हणवा थी तेह, चक्रवर्त्यादिक पिण हुवै॥

*लय—बीस विहरमाण

१. संगत।

२. यहां टीकाकार ने 'समण' शब्द के संस्कृत में तीन रूप बनाकर उसकी व्याख्या की है। जयाचार्य ने भी उन्हीं तीनों रूपों—श्रमण, समन और समण को अपनी व्याख्या का आधार बनाया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०१. तिण कारण थी नाम, करो विशेषणवद इहां।
महावीर प्रभु नाम, दुर्जय अंतर-रिपु-दलण ।।

२०२. भय भैरव उवसग्ग, परिसह तेहथी अचल प्रभु।
सुर-कृत नाम उदग्ग, गुण-निष्पन्न महावीर ए ।।

२०२. एतच्च देवैर्भगवतो गौणं नाम कृतं, यदाह—
अयले भयभेरवाणं खंतिखमे परिसहोवसग्गाणं।
देवेहिं से नामं कयं समणे भगवं महावीरेत्ति।
(वृ० प० ७,८)

२०३. *वर श्रुत धर्म आचारंगादिक, आदि प्रथम थी ख्यातं।
अर्थ प्रणायकपणै करी नैं, आदिकरे आख्यातं ।।

२०३, २०४. आइगरे
आदौ—प्रथमतः श्रुतधर्मम्—आचारादिग्रन्थात्मकं करोति—तदर्थप्रणायकत्वेन प्रणयतीत्येवंशील आदिकरः, आदिकरत्वाच्चासौ किंविध ? इत्याह—
(वृ०-प० ८)

सोरठा

२०४. आदि करण नुं शील, अर्थ थको प्रभु नों कह्यूं।
फुन किंविध संमील, आगल कहिये छै तिको ।।

२०५. *तीर्थ प्रवचन श्रुत नैं कहियै, ते संघ तणैं आधारं।
तास करण नों शील प्रभु नों, तित्थकरे जिन सारं ।।

२०५. तित्थगरे
तीर्थ—प्रवचनं तदव्यतिरेकाच्चेह संघस्तीर्थं तत्करण-शीलत्वात्तीर्थंकरः। (वृ०-प० ८)

वा०—आगम ३ प्रकारे कह्या—सूत्रागम १, अर्थागम २, तदुभयागम ३, ते आगम नैं तीर्थ कहीजै, केम ? तरै छै संसार-सागर जेह थी, ते तीर्थ—प्रवचन, सूत्रागम। सूत्रागम रूप तीर्थ तो गणधर देव नां गूंथ्या छै। अनैं अर्थागम रूप तीर्थ तीर्थंकर भाषित छै। 'अत्थं भासइ अरहा सुत्तं गथइ गणहरा निउणं।' इण वचन थकी अर्थागम रूप तीर्थ ना करणहार तीर्थंकर जाणवा। ते संघ थी जुदो नथी। ते माटै संघ नैं तीर्थ कह्यो। ते करिवा नूं शील छै जेहनुं ते भणी महावीर नैं तीर्थंकर कह्या। अनैं महावीरदेव नैं तीर्थंकरपणुं अन्य उपदेशपूर्वक न वर्त्तै, इण कारण थकी आगल कहै छै—

वा०—तीर्थंकरत्वं चास्य नान्योपदेशपूर्वकमित्यत आह—
(वृ०-प० ८)

२०६. *आतम करी स्वयमेव स्वामजी, अन्य उपदेशे नाहीं।
सम्यक् वस्तु रहिस जाणवैं, सहसंबुद्ध कहाई ।।

२०६. सहसंबुद्धे
सह—आत्मनैव सार्द्धमन्योपदेशत इत्यर्थः, सम्यग्—यथावद्, बुद्धो—हेयोपादेयोपेक्षणीयवस्तुतत्त्वं विदितवानिति सहसंबुद्धः। (वृ०-प० ८)

सोरठा

२०७. सहसंबुद्धपणुं ख्यात, प्राकृत पुरुष थका न प्रभु।
पुरुषोत्तम भावात्, इण कारण कहियै हिवै ।।

२०७. सहसंबुद्धत्वं चास्य न प्राकृतस्यसतः, पुरुषोत्तमत्वादित्यत आह—
(वृ०-प० ८)

२०८. *पुरुषां में ते-ते रूपादिक गुण करि सखर सुहाया।
अतिसय करि उत्कृष्ट सर्व थी, पुरिसोत्तम जिनराया ।।

२०८. पुरिसुत्तमे
पुरुषाणां मध्ये तेन तेन रूपादिनाऽतिशयेनोद्भूतत्वादूर्ध्ववर्त्तित्वादुत्तमः पुरुषोत्तमः। (वृ०-प० ८)

सोरठा

२०९. अथ पुरुषोत्तम भाव, सिंहादि त्रिण ओपम करि।
समर्थन करता साव, कहियै छै ते सांभलो ।।

२०९. अथ पुरुषोत्तमत्वमेवास्य सिंहाद्युपमानत्रयेण समर्थयन्नाह—

*लय—बीस विहरमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१०. *सींह जिसो तसुं सींह कहीजै, पुरुष-सींह इव तामं।
पुरुष-सींह कहियै इण कारण, पुरुष रूप सींह स्वामं॥

सोरठा

२११. जग में जन आख्यात, पराक्रम जे सिंघ विषै।
अति ही प्रकृष्ट ख्यात, शौर्ये प्रभु उपमान इम॥

२१२. पराक्रम अधिकेह, बालपणें पिण अरि अमर।
अधिक वधारी देह, डरायवा लागो तदा॥

२१३. तो पिण डरिया नांय, वज्र कठिन जिम मुष्टि करि।
कीधूं प्रहार काय, सुर तनुं संकोच्यूं कुब्ज जिम॥

२१४. *वर प्रधान पुंडरीक धवल फुन, सहस्रपत्र रमणीकं।
पुरुष तिके वर पुंडरीक जिम, पुरुष-प्रवर पुंडरीकं॥

गीतक-छंद

२१५. वर धवल भावज प्रभु तणुं सहु अशुभ मेल रहीत थी।
फुन सर्व शुभ अनुभाव करिकै शुद्ध भाव सहीत थी॥

२१६. वा भक्तिवंतज पुरुष नैं पुंडरीक छत्र तणी परै।
संताप-आतप मेटवै फुन विभूपाकारण सिरै[1]॥

२१७. *पुरुष हीज वर गंध गज ए, जिम गंध हस्तो गंधेन।
सकल अन्य गज भाजै तिमहिज, ईति प्रमुख टिकै न॥

सोरठा

२१८. प्रभु विचरै जिण देश, दुर्भिक्ष पर-चक्र फुन डमर[2]।
न्हासे विघ्न अशेष, पुरुष प्रवर गंध गज प्रभु॥

२१९. *इण कारण ए त्रिण ओपम थी, पुरुषोत्तम प्रभु एहो।
केवल पुरुष विषैज न उत्तम, उत्तम लोक विषेहो॥

सोरठा

२२०. उत्तम लोक विषेह, नाथपणा थी स्वामजी।
इण कारण थो एह, आगल कहियै छै हिवै॥

२२१. *सन्नि भव्य लोक ना नाथज, लोक-नाथ कहिवाया।
नाथपणो ते योगक्षेम ना, करणहार जिनराया॥

२१०. पुरिससीहे
सिंह इव सिंहः पुरुषश्चासौ सिंहश्चेति पुरुषसिंहः।
(वृ०-प० ८)

२११-२१३. लोकेन हि सिंहे शौर्यमतिप्रकृष्टमभ्युपगतमतः शौर्ये स उपमानं कृतः, शौर्यं तु भगवतो बाल्ये प्रस्थनीकदेवेन भाप्यमानस्याप्यभीतत्वात् कुलिशकठिनमुष्टिप्रहारप्रहतिप्रवर्द्धमानामरशरीरकुब्जताकरणाच्चेति।
(वृ०-प० ८)

२१४. पुरिसवरपोंडरीए
वरपुण्डरीकं—प्रधानधवलसहस्रपत्रं पुरुष एव वरपुण्डरीकमिवेति पुरुषवरपुण्डरीकं। (वृ०-प० ८)

२१५. धवलत्वं चास्य भगवतः सर्वाशुभमलीमसरहितत्वात् सर्वैश्च शुभानुभावैः शुद्धत्वात्। (वृ०-प० ८)

२१६. अथवा पुरुषाणां—तत्सेवकजीवानां वरपुण्डरीकमिव—वरच्छत्रमिव यः सन्तापातपनिवारणसमर्थत्वात् भूषाकारणत्वाच्च स पुरुषवरपुण्डरीकमिति। (वृ०-प० ८)

२१७. पुरिसवरगंधहत्थी
पुरुष एव वरगन्धहस्ती पुरुषवरगन्धहस्ती, यथा गन्धहस्तिनो गन्धेनापि समस्तेतरहस्तिनो भज्यन्ते।
(वृ०-प० ८)

२१८. भगवतस्तद्देशविहरणेन ईति-परचक्रदुर्भिक्षडमरमरकादीनि दुरितानि नश्यन्तीति पुरुषवरगंधहस्तीत्युच्यते। (वृ०-प० ८)

२१९, २२०. लोगुत्तमे
इत्यत उपमात्रयात्पुरुषोत्तमोऽसौ। न चायं पुरुषोत्तम एव, किन्तु लोकस्याप्युत्तमो, लोकनाथत्वाद्।
(वृ०-प० ८)

२२१. लोगनाहे
लोकस्य-—सञ्ज्ञिभव्यलोकस्य नाथः—प्रभुर्लोकनाथः, नाथत्वं च योगक्षेमकारित्वं। (वृ०-प० ८)

*लय—बीस विहरमाण

१. श्रेष्ठ।
२. राष्ट्र का भीतरी या बाह्य विप्लव।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

२२२. सम्यक् दर्शन आदि, अणपामी वस्तू तणो।
मेलण योग संवादि, प्रवर पमाडै 'जोग' ते ।।

२२३. लाधा जे ज्ञानादि, रक्षा करवी तेहनी।
कहियै 'क्षेम' संवादि, इह विध आख्यूं वृत्ति में ।।

२२२, २२३. तच्चास्याप्राप्तस्य सम्यग्दर्शनादेर्योगकरणेन लब्धस्य च परिपालनेनेति। (वृ०-प० ८)

वा०—इहां वृत्ति में सन्नी पंचेंद्रिय नैं योग-क्षेम करिवूं तेहनैं नाथ कह्यूं। विशिष्टपणैं ए नाथ जाणवूं। अनैं उत्तराध्येन अध्येन २०।३५ कह्यूं—

ततोहं नाहो जाओ, अप्पणो य परस्स य।
सव्वेसिं चेव भूयाणं, तसाणं थावराण य ।।

इहां कह्यो दीक्षा लियां पछै हूं आपणी आत्मा नों अनैं पर आत्मा नों अनैं सर्व जीव त्रस स्थावर नों नाथ थयो। ते कोई जीव नैं दुख न दियै, भय न उपजावै ते माटै नाथ कह्यो।

२२४. लोकनाथ नों भाव, यथा अवस्थित सकल वस्तु-।
स्तोम दीपन थी साव, इण कारण थो हिव कहूं ।।

२२४. लोकनाथत्वं च यथाऽवस्थितसमस्तवस्तुस्तोमप्रदीपनादेवेत्यत आह। (वृ०-प० ८)

२२५ *लोक विशिष्ट तिरिखनर सुर नैं, अंतर्-तिमिर अंधारो।
निराकरण करि अति प्रकाशकारी, दीपक जिम प्रभु सारो ।।

२२५. लोगपदीवे
लोकस्य—विशिष्टतिर्यग्नरामररूपस्याऽऽन्तरतिमिरनिराकरणेन प्रकृष्टप्रकाशकारित्वात्प्रदीप इव प्रदीपः। (वृ०-प० ८)

सोरठा

२२६. एह विशेषण जोय, दृष्ट लोक प्रति आश्रयी।
देखण योग्यज लोय, तेह आश्रयी हिव कहै ।।

२२६. इदं विशेषणं द्रष्टृलोकमाश्रित्योक्तम्, अथ दृश्यं लोकमाश्रित्याह— (वृ०-प० ८)

२२७. *लोकालोक सर्व वस्तु नैं, रवि-मंडल जिम जेहो।
निखिल भाव अवभासन समरथ, लोक-प्रद्योत करेहो ।।

२२७. लोगपज्जोयगरे
२२७. और वा०— लोकस्य—लोक्यत इति लोकः अनया व्युत्पत्त्या लोकालोकस्वरूपस्य समस्तवस्तुस्तोम स्वभावस्याखण्डमार्त्तण्डमण्डलमिव निखिलभावस्वभावावभाससमर्थकेवलालोकपूर्वकप्रवचनप्रभापटलप्रवर्त्तनेन प्रद्योतं—प्रकाशं करोतीत्येवंशीलो लोकप्रद्योतकरः। (वृ०-प० ८)

वा०—केवल-आलोकपूर्वक प्रवचन-प्रभा-पटल प्रवर्त्तवै करी प्रद्योत—प्रकाश करै एहवो शील, ते लोकप्रद्योतकर।

सोरठा

२२८. उक्त विशेषण एह, रवि हरि शिव ब्रह्मा प्रमुख।
ह्वै तसुं तीर्थपतेह, कवण विशेषज एहनूं ।।

२२९. इम आसंक विषेह, जिन विशेष अभिधान नैं।
अर्थे आगल जेह, कहियै छै ते सांभलो ।।

२२८,२२९. उक्तविशेषणोपेतश्च मिहिरहरिहरहिरण्यगर्भादिरपि तत्तीर्थिकमतेन भवतीति कोऽस्य विशेष इत्याशङ्कायां तद्विशेषाभिधानायाह— (वृ०-प० ८)

२३०. *प्राण विणासण रसिक अनैं जे, उपसर्गकारी प्राणी।
तेह भणी पिण प्रभु भय न दियै, अभयदए पहिछाणी ।।

२३०. अभयदए
न भयं दयते—ददाति प्राणापहरणरसिकेऽप्युपसर्गकारिणि प्राणिनीत्यभयदयः। (वृ०-प० ८)

*लय—बीस बिहरमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३१. अथवा सर्व प्राणी संबंधित, भय नीं जे परिहारी।
दया अनुकंपा जेहनें छै ते, 'अभयदए' अवधारो ॥

२३१. अभया वा सर्वप्राणिभयपरिहारवती दया—अनुकम्पा यस्य सोऽभयदयः। (वृ०-प० ८)

सोरठा

२३२. हरि हर रवि ब्रह्मादि, अभय तणां दायक नहीं।
प्रभु नें विषै संवादि, एह विशेष कह्यो इहां ॥

२३२. हरिहरमिहिरादयस्तु नैवमिति विशेषः। (वृ०-प० ८)

२३३. विण अपराधी जेह, अपराधी नें विण प्रभु।
अनर्थ परिहार करेह, केवल एहिज गुण नथी ॥

२३४. अर्थ प्राप्ति पिण तास, करै इसो देखाड़तो।
आगल जे गुणरास, कहियै छै ते सांभलो ॥

२३३, २३४. न केवलमसावपकारिणां तदन्येषां वाऽनर्थपरिहारमात्रं करोति अपि त्वर्थप्राप्तिमपि करोतीति दर्शयन्नाह— (वृ०-प० ८)

२३५. *चक्खू जिम चक्खू श्रुतज्ञानज, अर्थ शुभाशुभ भाग।
उपदर्शक थी दायक प्रभुजी, चक्खुदए सुभाग ॥

२३५. चक्खुदए
चक्षुरिव चक्षुः—श्रुतज्ञानं शुभाशुभार्थविभागोपदर्शकत्वात्। (वृ०-प० ८)

सोरठा

२३६. नर जे चक्षुवंत, नित्य श्रुतज्ञानज नेत्र करि।
पेखै भाव अनंत, उपादेय फुन हेय प्रति ॥

२३६. "चक्षुष्मन्तस्त एवेह ये श्रुतज्ञानचक्षुषा।
सम्यक् सदैव पश्यन्ति, भावान् हेयेतरान्नराः ॥
(वृ०-प० ८)

२३७. जे श्रुतज्ञान सहीत, नेत्रवंत ते जाणवा।
वर श्रुतज्ञान रहीत, अंध तुल्य ते जीव छै ॥

२३८. ते माटै श्रुतज्ञान, चक्षू जिम चक्षू अछै।
तसुं दायक वर्द्धमान, चक्षुदय तिण कारणै ॥

गीतक-छंद

२३९. जिम लोक में कांतार गत नुं, तस्करे धन लूंटिया।
फुन चोर तेहिज पुरुष नां, विहुं नेत्र बांधी नें गया ॥

२४०. वर नयन तास उघाड़वै करि, चक्षु प्रति इम दे करी।
देखाड़वै फुन अछव वांछित हुवै उपकारक वरी।

२३९,२४०. यथा हि लोके कान्तारगतानां चौरैर्विलुप्तधनानां बद्धचक्षुषां चक्षुरुद्घाटनेन चक्षुर्दत्त्वा वाञ्छितमार्गदर्शनेनोपकारी भवति, (वृ० प० ८,९)

२४१. इम एह पिण संसार अटवी विषै जीव रह्या सही।
रागादि तस्कर तेहनुं फुन, धर्म-धन लूटयूं वही ॥

२४२. मिथ्यात्व रूप कुवासना करि, तेह पुरुष तणा वली।
आच्छादिता वर ज्ञान-लोचन, शुद्ध श्रद्धा निर्दली ॥

२४३. तसुं दर्श मोह कुवासना प्रति दूर करिवै करि भलुं।
वर शुद्ध श्रद्धा ज्ञान चक्षु आपवै करि गुणनिलुं ॥

२४४. वर मग्ग वांछित प्रति देखाडै तेह आगल आखियै।
मग्गदए पाठ सुहामणो तसुं अर्थ इह विध भाखियै ॥

२४१-२४४. एवमयमपि संसारारण्यवर्त्तिनां रागादिचौरविलुप्तधर्मधनानां कुवासनाऽऽच्छादितसज्ज्ञानलोचनानां तदपनयनेन श्रुतचक्षुर्दत्त्वा निर्वाणमार्गं यच्छन्नुपकारीति दर्शयन्नाह— (वृ०-प० ९)

२४४. मग्गदए

*लय—बीस विहरमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४५. *मारग ज्ञान दर्शन नैं चारित्र, परम पद पुर पंथं।
तास दायक ते माटै कहियै, मग्गदये भगवंतं ॥

२४५. 'मग्गदए' त्ति, मार्ग—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकं परमपदपुरपथं दयत इति मार्गदयः। (वृ०-प० ६)

सोरठा

२४६ जिम जन लोक मझार, चक्षु उद्घाटन करी।
फुन जे मारग सार, तेह प्रते देखाड़ नैं॥

२४७. तस्कर विलुप्त जोय, ते जन प्रतेज निरुपद्रव।
स्थान पमाड़ै सोय, हुवै परम उपकारको॥

२४८. इम ए पिण अवधार, ज्ञान चक्षु शिव-मग दई।
स्थान पोंहचाडे सार, कहियै छै ते सांभलो॥

२४६-२४८. यथा हि लोके चक्षुरुद्घाटनं मार्गदर्शनं च कृत्वा चौरादिविलुप्तान् निरुपद्रवं स्थानं प्रापयन् परमोपकारी भवतीत्येवमयमपीति दर्शयन्नाह— (वृ०-प० ६)

२४६. *नानाविध उपद्रव प्राप्त जीव नै, शरण जु रक्षा-स्थानं।
ते परमार्थ थकी निर्वाणज, तसु दायक वर्धमानं॥

२४६. सरणदए
सरणं—त्राणं नानाविधोपद्रवोपद्रुतानां तद्रक्षास्थानं, तच्च परमार्थतो निर्व्वाणं तद्दयत इति शरणदयः। (वृ०-प० ६)

सोरठा

२५०. शरणदायकपणुं तास, धर्मदेशना करि तिको।
इह कारण थी जास, आगल कहियै छै हिवै॥

२५०. शरणदायकत्वं चास्य धर्मदेशनयैवेत्यत आह— (वृ०-प० ६)

२५१. *द्विविध धर्म—प्रथम श्रुत सम्यक्त्व, द्वितिय चारित्र गुणहीरं।
तास दिखाडणहार प्रभू जी, धर्म्मदेशक महावीरं॥

२५१. धम्मदेसए
धर्म—श्रुतचारित्रात्मकं देशयतीति धर्म्मदेशकः। (वृ०-प० ६)

२५२ धम्मदए पाठांतरं कहियै, चारित्र रूपज धर्म।
तास दायक तिण कारण कहियै, धर्म्मदये सुख शर्म॥

२५२. 'धम्मदये' त्ति पाठान्तरं, तत्र च धर्म्म—चारित्ररूपं दयत इति धर्म्मदयः। (वृ०-प० ६)

२५३. धर्म्मदेशना मात्र करी पिण, धम्मदेशक कहिवाय।
इह कारण थी आगल कहियै, ते सुणजो चित ल्याय॥

२५३. धर्मदेशनामात्रेणापि धर्मदेशक उच्यत इत्यत आह— (वृ०-प० ६)

२५४. धर्म्म-रथ प्रवर्त्तकपणैं करि, सारथि जिम सोभाया।
धर्म्म-सारथि कहियै प्रभु नै, जश्वंता जिनराया॥

२५४. धम्मसारही
धर्म्मरथस्य प्रवर्त्तकत्वेन सारथिरिव धर्मसारथिः, (वृ०-प० ६)

सोरठा

२५५. रथ नुं सारथि जेम, रथ रथिक फुन अश्व प्रति।
रक्षा करै सुप्रेम, एम धर्म्म-सारथि प्रभु॥

२५६. चरित्त धर्म्म अंग ख्यात, संयमात्म प्रवचन प्रवर।
रक्षण उपदेशात्, धर्म-सारथि ह्वै प्रभु॥

२५५, २५६. यथा रथस्य सारथी रथं रथिकमश्वांश्च रक्षति एवं भगवान् चारित्रधर्माङ्गानां—संयमात्मप्रवचनाख्यानां रक्षणोपदेशाद्धर्मसारथिर्भवतीति। (वृ०-प० ६)

२५७. तीर्थान्तरीय मतेह, धर्म-सारथि अन्य पिण हुवै।
इह कारण थी एह, विशेषकरतुं हिव कहै॥

२५७. तीर्थान्तरीयमतेनान्येऽपि धर्मसारथयः सन्तीति विशेषयन्नाह— (वृ०-प० ६)

*लय—बीस बिहरमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५८. *धर्म विषै वर चातुरंत जे, चक्रवर्त्ती जिनराया।
चक्रवर्त्ती जिम वीर प्रभूजी, अतिसय करि सोभाया ।।

२५८. धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी

सोरठा

२५९. त्रिण दिशि समुद्र अंत, चूलहेमवन्त लग उत्तर।
ए चिहुं महि पर्यंत, स्वामीपणैंज चातुरंत ।।

२६०. एहवो चक्रो जेह, चातुरंत चक्रवर्ति ते।
वर प्रधान छै एह, अन्य नृपति थी अति अधिक ।।

२६१. धर्म विषै वर धीर, धर्म - परूपक शेष में;
अतिशय अधिकज वीर, चातुरंत चक्रवर्ति इम ।।

२६२. अथवा धर्मज ताय, वर प्रधान छै जेहनुं।
अन्य चक्र अपेक्षाय, कह्यूं धर्मवर ते भणी ।।

२६३. अथवा धर्मज एह, वर प्रधान महावीर नुं।
कपिलादिक नुं जेह, धर्म-चक्र नीं पेक्षया ।।

२५९-२६२. त्रयः समुद्राश्चतुर्थश्च हिमवान् एते चत्वारोऽन्ताः —पृथिव्यन्ताः एतेषु स्वामितया भवतीति चातुरन्तः स चासौ चक्रवर्त्ती च चातुरन्तचक्रवर्त्ती वरश्चासौ चातुरन्तचक्रवर्त्ती च वरचातुरन्तचक्रवर्त्ती—राजातिशयः, धर्मविषये वरचातुरन्तचक्रवर्त्ती धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्त्ती। (वृ०-प० ६)

२६३. अथवा धर्म एव वरमितरचक्रापेक्षया कपिलादिधर्मचक्रापेक्षया वा। (वृ०-प० ६)

२६४. शिव मग ज्ञानादेह, भेदे करि विभाग चिहुं।
निर्णय जेह विषेह, चातुरंत छै ते भणी ।।

वा०—ज्ञान, दर्शण, चारित्र, तप अथवा दान, शील, तप, भावना ए च्यार मोक्ष मारग नों अंत कहितां निर्णय निश्चय छै जेहनै विषै ते चतुरंत, तेहिज चातुरंत । आपणा तीर्थ नैं विषै आदि में ए चिहुं शिव-मग परूपणा थकी ।

वा०—चतुरन्तं—दानादिभेदेन चतुर्विभागम्।

२६५. अथवा गति जे च्यार, नारकादि छै तेहनां।
अंतकारक अवधार, चातुरंत छै ते भणी ।।

२६५. चतसृणां वा नरनारकादिगतीनामन्तकारित्वाच्चतुरन्तं तदेव चातुरन्तं। (वृ०-प० ६)

२६६. जे फुन चक्र संमील, भावे अरि छेदण थकी।
तिण करि वर्त्तन शील, जेहनुं जे छै चक्रवर्ति ।।

२६६. यच्चक्रं भावारातिच्छेदात् तेन वर्त्तितुं शीलं यस्य स तथा। (वृ०-प० ६)

२६७. कह्या विशेषण एह, धर्मदेशकादिकपणुं ।
प्रकृष्ट ज्ञानादेह, योगे करि ह्वै ते कहै ।।

२६७. एतच्च धर्मदेशकत्वादिविशेषणकदम्बकं प्रकृष्टज्ञानादियोगे सति भवतीत्याह— (वृ०-प० ६)

२६८. *अप्रतिहत कटकुटी आदि करी, अथवा अविसंवादं।
प्रवर ज्ञान दर्शण ते केवल, तणुं धारक आह्लादं ।।

२६८. अप्पडिहयवरनाणदंसणधरे

वा०—अप्रतिहते—कटकुट्यादिभिरस्खलिते अविसंवादके वा अत एव क्षायिकत्वाद्वा वरे—प्रधाने ज्ञानदर्शने केवलाख्ये विशेषसामान्यबोधात्मके धारयति यः स तथा। (वृ०-प० ६)

वा०—अप्रतिहत कहितां हणाइं नही, खलावै नहीं, कट ते चटाई करी, अनै कुटी ते भीत प्रमुखे करी ते अप्रतिहत कहियै। अथवा अविसंवाद वाणी छै जेहनी इण कारण थकीज। अथवा क्षायिकपणा थकी वर प्रधान केवलज्ञान, केवलदर्शन [केवलज्ञान विशेष अवबोधात्मक, केवलदर्शन ते सामान्य अवबोधात्मक] धारण करै जे ते अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनधरै कहियै।

सोरठा

२६९. छद्मवान् पिण एह, प्रवर ज्ञान संपति सहित।
केइयक लोक विषेह, अंगीकार करियै अछै ।।

२६९. छद्मवानप्येवंविधसंवेदनसंपदुपेतः कैश्चिदभ्युपगम्यते। (वृ०-प० ६)

*लय—बीस विहरमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७०. मिथ्या उपदेशात्, उपकारी नहि ह्वै तिकै।
आगल हिव अवदात, कहियै छै निश्छद्मता।।

२७१. अथवा गृह नें जन्न, अप्रतिहत भित्त्यादि करि।
ज्ञान दर्शन संपन्न, उत्तर तेहनों आखियै।।

२७२. आवरण अभाव थीज, अप्रतिहत ज्ञानी प्रभू।
देखाड़त एहीज, कहियै छै ते सांभलो।।

२७३. *अपगत निवृत्त दूर गयो छै, छद्मस्थ भावज जास।
अथवा दूर गयो जसु आवरण, व्यावृत्त-छद्म विमास।।

सोरठा

२७४. छद्म अभावज जास, उपनों ते रागादि नां।
जीपण थकी प्रकास, इह कारण थी हिव कहै।।

२७५. *जीतै निराकरै छै प्रभूजी, राग - द्वेषादि रूपं।
शत्रु प्रते हणै निण कारण, कहियै जिन' जग भूपं।।

सोरठा

२७६. रागादि जय जान, उपाय ते जीपण तणुं।
पूर्वक ज्ञान सुध्यान, इह हेतु थी हिव कहै।।

२७७. *जे छद्मस्थ संबंधी धुर चिहुं ज्ञान छतां वर ध्यानी।
रागादिक जीपी लह्यूं केवल, ज्ञायक' जाण सुज्ञानी।।

*लय—बीस विहरमाण

१. सामान्यतः जिन शब्द वीतराग (राग-द्वेष के विजेता) का वाचक है। टीकाकार की व्याख्या से इसी अर्थ को अभिव्यक्ति मिलती है और जयाचार्य ने भी अपनी 'जोड़' में टीका को ही अनूदित किया है। किन्तु सन्दर्भ की दृष्टि से यहां जिन शब्द वीतराग का नहीं, ज्ञानी का वाचक होना चाहिए। क्योंकि इससे आगे दो-दो शब्दों के युगलों की व्याख्या है। बुद्ध और बोधक, मुक्त और मोचक, तीर्ण और तारक—ये शब्द स्व और पर से सम्बन्धित हैं। इसी प्रकार यहां—जिन और ज्ञायक शब्द भी स्व और पर से अनुबंधित होने चाहिए। इन दोनों शब्दों को संयुक्त मानने से राग-द्वेष विजेता अर्थ की यहां संगति नहीं बैठती।

जिन शब्द का ज्ञानी अर्थ में प्रयोग असम्मत भी नहीं है। स्थानांग सूत्र में तीन प्रकार के जिन की चर्चा है—तओ जिणा पण्णत्ता, तंजहा—ओहिणाण-जिणे, मणपज्जवणाणजिणे, केवलणाणजिणे। [ठाणं ३।५१२]

अवधिज्ञान जिन, मनःपर्यवज्ञान जिन और केवलज्ञान जिन—उक्त संदर्भ के आधार पर जिणे शब्द ज्ञान और जाणए शब्द ज्ञायक का द्योतक होना चाहिए।

२. वृत्तिकार ने ज्ञायक शब्द की व्याख्या छाद्मस्थिक ज्ञान के आधार पर करते हुए लिखा है—'जानाति छाद्मस्थिकज्ञानचतुष्टयेनेति ज्ञायकः'। (वृ०-प० ६) किन्तु

२७०. स च मिथ्योपदेशित्वान्नोपकारी भवतीति निश्छद्मता-प्रतिपादनायाऽऽह— (वृ०-प० ६)

२७१. अथवा—कथमस्याप्रतिहतसंवेदनत्वं संपन्नम्? अत्रोच्यते। (वृ०-प० ६)

२७२. आवरणाभावाद्, एनमेवास्याऽऽवेदयन्नाह— (वृ०-प० ६)

२७३. वियट्टछउमे
व्यावृत्त—निवृत्तमपगतं छद्म—शठत्वमावरणं वा यस्यासौ व्यावृत्तछद्मा। (वृ०-प० ६)

२७४. छद्माभावश्चास्य रागादिजयाज्जात इत्यत आह— (वृ०-प० ६)

२७५. जिणे
जयति—निराकरोति रागद्वेषादिरूपानरातीनिति-जिनः। (वृ०-प० ६)

२७६. रागादिजयश्चास्य रागादिस्वरूपतज्जयोपायज्ञानपूर्वक एव भवतीत्येतदस्याह— (वृ०-प० ६)

२७७. जाणए—
जानाति छाद्मस्थिकज्ञानचतुष्टयेनेति ज्ञायकः। (वृ०-प० ६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

२७८. ज्ञायक इह वचनेह, निज स्वार्थ संपत्ति प्रवर।
केवलज्ञान अछेह, तास उपायज आखियो ।।

२७९. अधुना वली तदर्थ, स्वार्थ संपत्ति पूर्वकं।
संपादक पर अर्थ, चतुर विशेषण करि कहै ।।

२७८. ज्ञायक इत्यनेनास्य स्वार्थसंपत्त्युपाय उक्तः।
(वृ०-प० ९)

२७९. अधुना तु स्वार्थसंपत्तिपूर्वकं परार्थसंपादकत्वं विशेषण-चतुष्टयेनाह— (वृ०-प० ९)

२८०. *जीव अजीवादिक प्रति जाण्या, बुद्ध कह्या इण न्याय।
तथा बोधए अन्य भणी पिण, तत्त्व प्रते ओलखाय ।।

२८०. बुद्धे बोहए
'बुद्धे' त्ति, बुद्धो जीवादितत्त्वं बुद्धवान् तथा 'बोहए' 'त्ति जीवादितत्त्वस्य परेषां बोधयिता। (वृ०-प० ९)

२८१. बाह्य अभ्यंतर ग्रंथ बंधन करि, मूकाणा महावीरं।
मुत्ते पाठ कह्यो इण कारण, मुक्तवान् गुण - हीरं ।।

२८१. मुत्ते
मुक्तो बाह्याभ्यन्तरग्रन्थिबन्धनेनमुक्तत्वात्।
(वृ०-प० ९)

२८२. तथा मोयए अन्य तणा जे, कर्म-बंधन दुखदाया।
तेह थकी मूकावण हारा, जयवंता जिनराया ।।

२८२. मोयए
तथा 'मोयए' त्ति परेषां कर्म्मबन्धनान्मोचयिता।
(वृ०-प० ९)

सोरठा

२८३. मुक्त अवस्था सिद्ध, तेह आश्रयी ने हिवै।
प्रवर विशेषण ऋद्ध, कहियै छै ते सांभलो ।।

२८३. अथ मुक्तावस्थामाश्रित्य विशेषणान्याह—
(वृ०-प० ९)

२८४. *वस्तु-समूह सर्व छै जेहना, ज्ञान विशेष करेहं।
ज्ञायकपणै सर्व प्रति जाणं, सर्वज्ञ सिद्ध कहेहं ।।

२८४. सव्वण्णू सव्वदरिसी
सर्वस्य वस्तुस्तोमस्य विशेषरूपतया ज्ञायकत्वेन सर्वज्ञः। (वृ०-प० ९)

२८५. दर्शन ते सामान्य रूप करि, सर्व वस्तु ना सोयो।
देखणहारा सिद्ध अछै ते, सर्वदर्शी अवलोयो ।।

२८५. सामान्यरूपतया पुनः सर्वदर्शी। (वृ०-प० ९)

वा०—अथवा भगवंत देह-मुक्त थाय तो पिण अन्य दर्शन मान्य मुक्त पुरुषवत् भविष्य जड़ता वाला नथी।

वा०—न तु मुक्तावस्थायां दर्शनान्तराभिमतपुरुष-वद्भविष्यज्जडत्वम्। (वृ०-प० ४)

सोरठा

२८६. ए बे पद आख्यात, ते किहांइक दीसै नहीं।
सिद्ध तणुं अवदात, बलि कहियै ते सांभलो ।।

२८६. एतच्च पदद्वयं क्वचिन्न दृश्यत इति। (वृ०-प० ९)

२८७. *सर्व अबाधा रहितपणा थी, शिव कहितां दुख नांही।
अचल-स्वाभाविक प्रायोगिक ए, चलन हेतु ज्यां नांही ।।

२८७. सिवमयलं
'शिवं' सर्वाबाधारहितत्वाद् 'अचलं' स्वाभाविक-प्रायोगिकचलनहेत्वभावात्। (वृ०-प० ९)

जयाचार्य ने राग-द्वेष पर विजय प्राप्त कर केवलज्ञान प्राप्त करने वाले को ज्ञायक कहा है। अर्थ की दृष्टि से यह व्याख्या उचित प्रतीत होती है, क्योंकि ज्ञायक विशेषण से पहले अप्पडिहयवरणाणदंसणधरे पाठ आ चुका है। अप्रतिहत ज्ञान और दर्शन केवलज्ञान और केवल दर्शन के वाचक हैं। ऐसी स्थिति में वृत्तिकार का अभिमत विचारणीय है।

*लय—बीस विहरमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८८. अरुज कह्या ते रोग रहित सिद्ध, तास निबंधन जोई।
तन मन तणां अभाव थकी ए, इमा सिद्ध अवलोई॥

२८८. अरुयं
अरुजम् अविद्यमानरोगं तन्निबन्धनशरीरमनसोरभावात्। (वृ०-प० ६, १०)

२८९. अनंत पदार्थ विषये वस्तु-ज्ञान स्वरूप पणेहं।
द्रव्य अनंता जाणें, तिण सूं सिद्ध अनन्त कहेह॥

२८९. अणंतं
अनन्तम् अनन्तार्थविषयज्ञानस्वरूपत्वात्। (वृ०-प० १०)

२९०. अक्षय सादि अनंत स्थितिक थी, सिद्ध सदा अविनाश।
अथवा अक्षत परिपूर्ण छै, चन्द्रमडल जिम जास॥

२९०. अक्खयं
अक्षयम् अनाशं साद्यपर्यवसितस्थितिकत्वात् अक्षतं वा परिपूर्णत्वात्पौर्णमासीचन्द्रमण्डलवत्। (वृ०-प० १०)

२९१. अन्य भणी अणपीड़ाकारी, दुख उपजावै नांही।
गहवा सिद्ध हुवै तिण कारण, अव्याबाध कहाई॥

२९१. अव्वाबाहं
अव्याबाधं परेषामपीडाकारित्वात् (वृ०-प० १०)

२९२. वलि संसार विषै नहिं आवै[1], सिद्धि गति प्रशस्त नाम।
स्थिर स्थानक छै त्यां जावा ना, अभिलाषी प्रभु ताम॥

२९२. 'अपुणरावत्तियं' ति कर्मबीजाभावाद् भवावतारररहितं सिद्धिगतिनामधेयं ठाणं संपाविउकामे (वृ०-प० १०)

वा०—सिद्ध—निष्ठितार्थ हुवै, जे गति नैं विषै ते सिद्धि गति। एतलै सकल ही अर्थ सिद्ध थया—नीपना, कोई कार्य करणो बाकी रह्यो नहीं, ते सिद्धि गति। तेहीज नामधेयं कहितां प्रशस्त नाम जेहनो ते, तथा ठाणंति कहितां अस्थिरपणा नुं कारण कर्म, तेहना अभावे करि सदा अवस्थित ते स्थिरपणें रहिवुं हुवै ते स्थान, ए कर्म-मुक्त जीव एतलै सिद्ध नुं स्वरूप अथवा लोकाग्र नो स्वरूप। हिवै लोकाग्र भाग तो आकाश रूप छै तो तेह में शिवादि विशेषण घटै नहीं तो पिण आधेय धर्म नों आधार मां अध्यारोप करवा थी ते विशेषण लोकाग्र ना घटाव्या छै।

जावा नुं मन, पिण ते स्थानक पाम्या नथी। ते स्थानक पांम्या पछी अकरणपणैं करी वांछित अर्थ नैं परूपणा नां अभाव थकी। ते माटै पामवा नां अभिलाषी इम कहियै।[2]

वा०—सिध्यन्ति—निष्ठितार्था भवन्ति यस्यां सा सिद्धिः सा चासौ गम्यमानत्वाद् गतिश्च सिद्धिगतिस्तदेव नामधेयं- प्रशस्तं नाम यस्य तत्तथा, 'ठाणं' ति तिष्ठति—अनवस्थाननिबन्धनकर्माभावेन सदाऽवस्थितो भवति यत्र तत्स्थानं, क्षीणकर्मणो जीवस्य स्वरूपं लोकाग्रं वा, जीवस्वरूपविशेषणानि तु लोकाग्रस्याऽऽधेयधर्मणामाधारेऽध्यारोपादवसेयानि, संपाविउकामे त्ति यातुमनाः, न तु तत्प्राप्तः, तत्प्राप्तस्याकरणत्वेन विवक्षितार्थानां प्ररूपणाऽसम्भवात्, प्राप्तुकाम इति च यदुच्यते तदुपचारात्। (वृ०-प० १०)

२९३. यावत् समोसरण है त्यां लग, भगवत्-वर्णक वारू।
प्रथम उपांगे प्रभु तनु-वर्णक, कहियै इह विध चारू॥

२९३. 'जाव समोसरणं' ति तावद्भगवद्वर्णको वाच्यो यावत्समवसरणं—समवसरण-वर्णक इति।
(वृ०-प० १०)

गीतक-छंद

२९४. भुज मोचको जे रत्ननूंज विशेष फुन भृंग कीट ही।
नीली विकारज फुन मषी वलि भ्रमर-गण सुप्रहृष्ट ही॥

२९४, २९५. स च भगवद्वर्णक एवम्—"भुयमोयगभिंगनेलकज्जलपहट्ठभमरगणनिद्धनिकुरुंबनिचियकुंचियपयाहिणावत्तमुद्धसिरए" भुजमोचको—रत्नविशेषः

१. अंगसुत्ताणि भाग २ में अपुणरावत्तयं पाठ नहीं है, वृत्ति में भी इस पाठ को कोष्ठकान्तर्गत लिया गया है। संभव है किसी वाचना में यह पाठ रहा हो।
२. सिद्धि गति प्राप्त होने पर जीव अकरण हो जाता है। उस समय विवक्षित अर्थ की प्ररूपणा नहीं हो सकती। इसलिए अर्हत् को संप्राप्तुकामा कहा है। प्राप्तुकामा—सिद्धि गति पाने के इच्छुक, यह भी औपचारिक वचन है। क्योंकि वास्तव में तो अर्हत् केवली निरभिलाष ही होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९५. एहनी परै निद्ध कृष्णच्छाय-समूह सघन सुहामणा।
कुंडलीभूत प्रदक्षिणावर्त्त शिरोजा रलियामणा॥

भृङ्गः—कीटविशेषोऽङ्गारविशेषोवा नैलं—नीलीविकारः, कज्जलं—मषी, प्रहृष्टभ्रमरगणः—प्रतीतः एत इव स्निग्धः—कृष्णच्छायो निकुरम्बः—समूहो येषां ते तथा ते च ते निचिताश्च—निबिडाः कुञ्चिताश्च—कुण्डलीभूताः प्रदक्षिणावर्त्ताश्च मूर्द्धनि शिरोजा यस्य स तथा। (वृ०-प० १०)

सोरठा

२९६. इम शिर ना जे केश, तसु वर्णक नैं आदि दे।
तनु-वर्णक जे शेष, अंत चरण-वर्णक कह्यूं॥

२९६. एवं शिरोजवर्णकादिः "रत्तुप्पलपत्तमउयसुकुमालकोमलतले" इति पादतलवर्णकान्तः शरीरवर्णको भागवतो वाच्यः। (वृ०-प० १०)

गीतक-छंद

२९७. वर रक्त उत्पल पत्रवत् जे कमलदलवत् मृदु भला।
सुकुमाल मध्ये जेह कोमल चरणतल महिमानिला॥

२९७. रक्तं—लोहितम् उत्पलपत्रवत्—कमलदलवत् मृदुकम्—अस्तब्धं सुकुमालानां मध्ये कोमलं च तलं—पादतलं यस्य स तथा। (वृ०-प० १०)

२९८. इक सहस्र नैं वर अष्ट लक्षण पुरुष तीर्थंकर तणा।
तसु धरणहार उदार सार ज, नग नगर आदिक घणा॥
२९९. आकाशगत चक्रे करी आकाशगत छत्रे करी।
आकाशगत फुन चामरे करि सोभती अधिकी सिरी॥
३००. आकाशगत फुन फटिकमय वर पायपीठ सहीत ही।
चारु सींहासण, धर्मध्वज प्रभु आगलै चालै वही॥

२९८-३००. अट्ठसहस्सवरपुरिसलक्खणधरे आगासगएणं चक्केणं आगासगएणं छत्तेणं आगासगयाहिं चामराहिं आगासफलिहामएणं सपायपीढेणं सीहासणेणं धम्मज्झएणं पुरओ पकड्ढिज्जमाणेणं। (वृ०-प० १०)

यतनी

३०१. चउदश सहस्र श्रमण अति चारु, अज्जा सहस्र छत्तीस उदारु।
सद्धि कहितां तास संघात, ऐ तो महावीर जगनाथ॥

३०१. चउदसहिं समणसाहस्सीहिं छत्तीसाए अज्जियासाहस्सीहिं सद्धिं। (वृ०-प० १०)

सोरठा

३०२. सद्धि कहितां सोय, विद्यमान पिण तेहनैं।
तास संघाते होय, इह कारण थी हिव कहै॥

३०२. तेषां विद्यमानतयाऽपि सार्द्धमिति स्यादत उच्यते। (वृ०-प० १०)

यतनी

३०३. संपरिवुडे सोय, परिकर थी अवलोय।
ते साधु साध्वी संयुक्त, प्रभु विहार करतां उक्त॥

३०३. संपरिवुडेत्ति संपरिवृतः—परिकरित इति। (वृ०-प० १०)

गीतक-छंद

३०४. पूर्वानुपूर्वी चालता पिण पश्चानुपूर्वी नहीं।
वलि ग्राम तसु अनुग्राम केइ गमन करता प्रभु सही॥
३०५. फुन सुख सुखे करि विचरता प्रभु नगर राजगृह जिहां।
जिहां चैत्य गुणसिल तिहां आवै स्वाम आवी नैं तिहां॥
३०६. वर यथायोग्यज अवग्रह प्रतिग्रहै ग्रहण करी सही।
तप संजमे करि आतमा प्रतिभावता विचरै सही॥

३०४-३०६. पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव रायगिहे नगरे जेणेव गुणसिलए चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। (१।७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०७. फुन समवसरणक तणुं वर्णक तेह इह विध जाणियैं।
वर वृत्ति थी संक्षेप करि कहियैं तिको दिल आणियैं॥

३०८. तपस्वी श्रमण भगवंत ना बहु अंतेवासी शिष्य भला।
उग्रकुल ना ऊपना वर चरण-धारक गुणनिला॥

३०९. इत्यादि जे मुनि प्रमुख वर्णक इहां तेहिज जाणवूं।
सुर चतुर्विध प्रभु पास आवही वर्णक तास वखाणवूं॥

३१०. *प्रभु वंदवा परषद निकली, धर्म कह्यो जिन धीरं।
पाछो वली परषदा सुणनैं, स्वाम वयण सुख सीरं॥

वा०—परिसा णिग्गया इति राजगृह नगर थकी राजादिक लोग भगवंत नैं वंदन अर्थे नीकल्या ते निर्गम इम—

तए णं रायगिहे णगरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु-बहु जणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ...एवं खलु देवाणुप्पिया समणे भगवं महावीरे इह गुणसिलए चेइए अहापडिरूवं उग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तं सेयं खलु तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं नामगोयस्सवि सवणयाए किमंग पुण वंदण णमंसणयाएत्ति कट्टु बहवे उग्गा उग्गपुत्ता इत्यादिक कहिवो, ज्यां लग भगवंत प्रते नमस्कार करै पर्युपासना करै। इम राजा-निर्गम। वलि अन्तःपुर-निर्गम। वली ते पर्युपासना उववाई नी परै कहिवूं।

धम्मो कहिओत्ति—धर्म कथा इहां भगवंत नी कहिवी तिका इम—तएणं समणे भगवं महावीरे सेणियस्स रण्णो चिल्लणापमुहाणं देवीणं तीसे य महइ-महालियाए परिसाए, इसिपरिसाए, मुणिपरिसाए, जइपरिसाए, देवपरिसाए, अणेगसयाए, अणेगसयवंदाए, अणेगसयवंदपरियालाए, ओहबले, अइबले, महब्बले, अपरिमियबलविरियतेयमाहप्पकंतिजुत्ते सारदनवथणियमहुर-गंभीरकोंचणिग्घोसदुंदुभिस्सरे, उरेवित्थडाए, कंठेवट्टियाए, सिरेसमाइण्णाए, अगरलाए, अमम्मणाए सव्वक्खरसण्णिवाइयाए, पुण्णरत्ताए, सव्वभासाणुगामिणीए, सरस्सईए, जोयणणीहारिणा सरेणं, अद्धमागहीए भासाए भासइ—अरिहा धम्मं परिकहेति। तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं अगलियाए धम्मं आइक्खइ सावि य णं अद्धमागही भासा तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं अप्पणो सभासाए परिणामेणं परिणमइ तं जहा—अत्थिलोए अत्थि अलोए एवं जीवा अजीवा बंधे मोक्खे इत्यादि। तथा जह नरगा गम्मंती जे णिरया जा य वेयणा णरए सारीर-माणसाइं दुक्खाइं तिरिक्खजोणीए इत्यादि।

पडिगया परिसत्ति लोक स्वस्थान गया, पाछो जावणो ते परषदा नो इम कहिवो—तए णं सा महइमहालिया महच्च परिसा महति महती आलप्रत्यय नैं स्वार्थिकपणा थकी अतिशय थकी अतिशय घणी भारी मोटी परषदा प्रशस्त पणैं प्रधान परषदा अथवा महा अर्च्चा, भली पूजा नैं ते महा अर्च्चा परिषद् इति। समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा जाव हियया उट्ठाए उट्ठेइ उट्ठित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेति वंदति णमंसति वंदित्ता णमंसित्ता अत्थेगतिया मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया अत्थेगतिया पंचाणुव्वयं सत्त सिक्खावयं दुवालसविहं गिहि-

३०७-३०९. समवसरणवर्णके च 'समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे समणा भगवंतो अप्पेगइया उग्गपव्वइया' इत्यादि साध्वादिवर्णको वाच्यः, तथाऽसुरकुमाराः शेषभवनपतयो व्यन्तरा ज्योतिष्का वैमानिका देवा (देव्य) श्च भगवतः समीपमागच्छन्तो वर्णयितव्याः। (वृ०-प० १०)

३१०. परिसा निग्गया। धम्मो कहिओ। पडिगया परिसा। (श० १।८)

वा—'परिसा निग्गय' त्ति राजगृहाद्राजादिलोको भगवतो वन्दनार्थं निर्गतः। तन्निर्गमश्चैवं—तए णं...

इत्यादिर्वाच्यो यावद्भगवन्तं नमस्यन्ति पर्युपासते चेति, एवं राजनिर्गमोऽन्तःपुरनिर्गमश्च तत्पर्युपासना चौपपातिकवद्वाच्या। (वृ०-प० १०, ११)

'धम्मो कहिओ' त्ति, धर्मकथेह भगवतो वाच्या। (वृ०-प० ११)

*लय—बीस विहरमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धम्मं पडिवण्णा अवसेसा णं परिसा समणं भगवं महावीरं वंदंति णमंसंति वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—सुयक्खाए ते भंते ! णिग्गंथे पावयणे एवं सुपण्णत्ते सुभासिए सुविणीए सुभाविए अणुत्तरे ते भंते ! णिग्गंथे पावयणे धम्मे णं आइक्खमाणा तुब्भे उवसमं आइक्खह उवसमं आइक्खमाणा विवेगं आइक्खह विवेगं आइक्खमाणा वेरमणं आइक्खह वेरमणं आइक्खमाणा अकरणं पावाणं कम्माणं आइक्खह णत्थि णं अण्णे केइ समणे वा माहणे वा जे एरिसं धम्ममाइक्खित्तए किमंग पुण इत्तो उत्तरतरं एवं वदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया ।

३११. *प्रथम ढाल प्रभु वच सुन भारी, पहुंती परिषद निज पद सारी ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादं, 'जय-जश' संपति अव्याबाधं ।
जय जय वर्द्धमान जगतारी, आख्या वयण अमूल्य उदारी ।।

ढाल : २

दूहा

१. तिण कालै नें तिण समै, श्रमण तणो सुविचार ।
भगवंत श्री महावीर नों, जेष्ठ-प्रथम शिष्य सार ।।

१, २. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी

तेन कालेन तेन समयेन श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य 'जेट्ठे' त्ति प्रथमः 'अंतेवासि' त्ति शिष्यः । अनेन पदद्वयेन तस्य सकलसंद्यनायकत्वमाह—
(वृ०-प० ११)

सोरठा

२. जेष्ठ शीस कहिवेह, सकल संघ नायकपणुं ।
तेहनुं आख्यूं एह, हिव कहियै छै नाम तसुं ।।

*वीरजी के शिष्य प्यारे ।
जग प्यारो, शासण-सिणगारो, स्वामी हद प्यारो ।।ध्रुपदं।।

३. ओ तो इंद्रभूति प्रसिद्धो, नाम मात पिता नो दीधो ।।

३. इंदभूती नामं

इन्द्रभूतिरिति मातापितृकृतनामधेयः ।
(वृ०-प० ११)

दूहा

४. इंद्रभूति नामें करी, तृतिया विभक्ति स्थान ।
विभक्ति ना परिणाम थी, नामं पाठ पिछान[1] ।।

४. 'नामं' ति विभक्तिपरिणामान्नाम्नेत्यर्थः ।
(वृ०-प० ११)

सोरठा

५. अंतेवासी ख्यात, ते तो श्रावक पिण हुवै ।
इह कारण अवदात, आगल कहियै छै हिवै ।।

५. अन्तेवासी किल विवक्षया श्रावकोऽपि स्यादित्यत आह—
(वृ०-प० ११)

---

*लय—वनमाला ए निसुणी जामें

*लय—ज्यांरे सोभै केसरिया साड़ी

१. यहां व्याकरण के अनुसार 'नाम्ना इन्द्रभूतिः' तृतीया विभक्ति होनी चाहिए । पर विभक्ति का विपरिणाम होने से तृतीया विभक्ति के स्थान पर 'इंदभूती नामं अणगारे' इस पद में प्रथमा विभक्ति का प्रयोग हुआ है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*वीरजी के शिष्य नीको।
विनय-तहनो को त्रिभुवन जश टीको ॥ (ध्रुपदं)

६. एहनै नहीं छै गृह ते अगारो, तिण सूं आख्या जसुं अणगारो ॥

६. अणगारे
नास्यागारं विद्यत इत्यनगारः। (वृ०-प० ११)

सोरठा

७. फुन ए तो सुविचार, निदनीक जे गोत्र पिण।
हुवै तास अवधार, इह कारण थी हिव कहै ॥

७. अयं चावगीतगोत्रोऽपि स्यादित्यत आह—(वृ०-प० ११)

८. *गौतम गोत्रे करी ने सहीतो, तिण सूं गौतम नाम वदीतो ॥

८. गोयमसगोत्ते णं

दूहा

९. फुन ते कालज योग्य तनु-मान तणी अपेक्षाय।
न्यूनाधिक पिण देह ह्वै, इह कारण हिव आय ॥

९. अयं च तत्कालोचितदेहमानापेक्षया न्यूनाधिकदेहोऽपि स्यादिति आह— (वृ०-प० ११)

१०. *ऊंची सप्त हस्त देह जाणी, आ तो उत्सेध आंगुल माणी ॥

१०. सत्तुस्सेहे

सोरठा

११. आख्यो ए तनु-मान, ते तो लक्षण-हीण पिण।
हुवै कदाचित् जान, इह कारण थी हिव कहै ॥

११. अयं च लक्षणहीनोऽपि स्यादित्यत आह—
(वृ०-प० ११)

१२. *समचउरंस संठाण सुनेह, तिण करि अवस्थित रह्यूं जेह ॥

१२. समचउरंससंठाणसंठिए

गीतक-छंद

१३. तनु नाभि नैं ऊपर वली जे अधस्तन हेठै वरी।
वर पुरुष ना जे सकल लक्षण सहित अवयव तिण करी ॥
१४. सम शब्द अर्थज तुल्य कहियै, विषमता न लहीजियै।
चतुरस्र प्रवर प्रधान तेहिज समचतुरस्र कहीजियै ॥

१३,१४. समचउरंससंठाणसंठिए' त्ति, समं नाभेरुपरि अधश्च सकलपुरुषलक्षणोपेतावयवतया तुल्यं तच्च तच्चतुरस्रं च—प्रधानं समचतुरस्रम्। (वृ०-प० ११)

वा०—एतलै नाभि नैं ऊपर अनै हेठै सकल पुरुष नां लक्षण सहित अवयवपणैं करी, सम कहितां तुल्य छै जे चतुरस्र—प्रधान लक्षण ते समचतुरस्र एतलै नाभि नैं ऊपर जेतला लक्षण सहित अवयव तेतला लक्षणे सहित अवयव नाभि नैं हेठै पिण, एहवूं अर्थ जणाय छै। वलि बहुश्रुत विचारी कहै ते सत्य।

१५. अथवा समा तनु तणा लक्षण उक्त परिमाणे करी।
अविसंवादिता चतुर अस्रज समचतुरस्र कह्यूं फिरी ॥
१६. फुन अन्य ते इहां चतुर दिशि-विभाग उपलक्षित भला।
तनु तणां अवयव छे समा ए द्वितिय अर्थ सुनिर्मला ॥

१५. अथवा—समाः—शरीरलक्षणोक्तप्रमाणाविसंवादिन्य-श्चतस्रोऽस्रयो यस्य तत्समचतुरस्रम्। (वृ०-प० ११)
१६. अस्रयस्त्विह चतुर्दिग्विभागोपलक्षिताः शरीरावयवा इति। (वृ०-प० ११)

*लय—ज्यारै सोभै केसरिया साड़ी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. फुन अन्य गणपति इम कहै सम तेह ऊणाधिक नहीं।
च्यारूं अंसज जे विषै ते समचतुरंस कह्यूं सही ।।

१८. पर्यंक आसन बैसता नैं उभय जानू अंतरं।
आसन तणैं जु निलाड अंतर ए द्वितीयो उच्चरं ।।

१९. फुन स्कंध दक्षिण वाम जानू अंतरो ए तीसरो।
वलि स्कंध वामज जानु दक्षिण अंतरो चउथो खरो ।।

२०. फुन अन्य गणपति इम कहै विस्तार नैं ऊंचा पणैं।
समपणा थी सम चतुर असंज दाखिया ए तनु तणैं ।।

२१. संस्थान ते आकार कहियै तिण करी संस्थित रह्यूं।
समचतुरंस - संस्थान संस्थित इहां गौतम नैं कह्यूं ।।

सोरठा

२२. एहवूं जे संस्थान, हीन संघयणी नों अपि।
हुवै कदाचित् जान, इह कारण थी हिव कहै ।।

२३. *त्यारो वज्रऋषभनाराचो संघयण अस्थि-संचय सु साचो ।।

दूहा

२४. वज्र कहीजै कीलिका, ऋषभ कहीजै पट्ट।
ऊपर बंधन विहुं तरफ, सो नाराच मर्कट्ट ।।

सोरठा

२५. वज्र कीलिका उक्त, कीलित कठ संपुट तणी।
ओपम सामर्थ्य युक्त, वज्र कहीजै एहनैं ।।

२६. ऋषभ लोहादिक मांहि, पट्ट बद्ध कठ संपुट तणी।
ओपम सामर्थ्य ताहि, ऋषभ कहीजै एहनैं ।।

२७. वज्रऋषभ छै तेह, नाराच कहियै उभय थी।
मर्कट बद्ध बंधेह, कठ संपुट ओपम समर्थ ।।

२८. वज्रऋषभ नाराच, संघयण अस्थि - संचय।
विशेष एह सुवाच, उत्तम सामर्थ्य योग थी ।।

२९. एहवा संघयण मान, निदनीक जे वर्ण पिण।
हुवै कदाचित् जान, ते कारण थी हिव कहै ।।

३०. *ओ तो सुवर्ण नो लव सारो, ते तो कसवटी घसियै तिवारो ।।

३१. तिण री रेखा नों लक्षण जाणों, तथा कमल नां केसरा पिछाणो ।।

३२. तेह सरीखो गोरो वर्ण जास्यं, ओ तो शरीर तणों सुप्रकाशं ।।

*लय—ज्यारै सोभै केसरिया साड़ी

१७. अन्ये त्वाहुः—समा—अन्यूनाधिकाः चतस्रोऽप्यस्रयो यत्र तत्समचतुरस्रम्। (वृ०-प० ११)

१८, १९. अस्रयश्च पर्यङ्कासनोपविष्टस्य जानुनोरन्तरम् आसनस्य ललाटोपरिभागस्य चान्तरं दक्षिणस्कन्धस्य वामजानुनश्चान्तरं वामस्कन्धस्य दक्षिणजानुनश्चान्तरमिति। (वृ०-प० ११)

२०. अन्ये त्वाहुः विस्तारोत्सेधयोः समत्वात् समचतुरस्रं। (वृ०-प० ११)

२१. तच्च तत् संस्थानं च—आकारः समचतुरस्रसंस्थानं तेन संस्थितो—व्यवस्थितो यः स तथा। (वृ०-प० ११, १२)

२२. अयं च हीनसंहननोऽपि स्यादित्यत आह— (वृ०-प० १२)

२३. वज्जरिसभनारायसंघयणे
इह संहननम्—अस्थिसञ्चयविशेषः। (वृ०-प० १२)

२४. रिसहो य होइ पट्टो वज्जं पुण कीलियं वियाणाहि।
उभओ मक्कडबंधो नारायं तं वियाणाहि ।। (वृ०-प० १२)

२५. तत्र वज्रं च तत् कीलिकाकीलितकाष्ठसंपुटोपमसामर्थ्ययुक्तत्वात्। (वृ०-प० १२)

२६. ऋषभश्च लोहादिमयपट्टबद्धकाष्ठसंपुटोपमसामर्थ्यान्वितत्वाद्। (वृ०-प० १२)

२७, २८. वज्रर्षभः स चासौ नाराचं च उभयतो मर्कटबन्धनिबद्धकाष्ठसंपुटोपमसामर्थ्योपेतत्वाद् वज्रर्षभनाराचं तत् संहननम्—अस्थिसञ्चयविशेषोऽनुपमसामर्थ्ययोगाद् यस्यासौ वज्रर्षभनाराचसंहननः। (वृ०-प० १२)

२९. अयं च निन्द्यवर्णोऽपि स्यादित्यत आह—(वृ०-प० १२)

३०. कणगपुलगनिघसपम्हगोरे

३१, ३२. कनकस्य—सुवर्णस्य 'पुलगं' ति यः पुलको—लवस्तस्य यो निकषः—कषपट्टके रेखालक्षणः, तथा 'पम्ह' त्ति—पद्मपक्ष्माणि- -केशराणि तद्वद्गौरो यः सः। (वृ०-प० १२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३. वृद्ध-व्याख्या—सुवर्ण नों जेह, पिण लोहादिक नों न तेह ।।
३४. पुलक कहितां जे सारो, तसुं वर्ण अत्यंत उदारो ।।
३५. तेह प्रधान सुविशेखा, निघस कहितां जे रेखा ।।
३६. पम्ह कहितां बहलपणुं तासं, तेह सरीखो गोरो वर्ण जासं ।।
३७. अथवा सुवर्ण नों जाणी, पुलक गाल्यां बिंदु माणी ।।
३८. निकष कहितां वर्ण जे तासं, तेह सरीखो तनु नों उजासं ।।
३९. पम्ह कहितां पद्म पिछाणी, प्रस्ताव थी केसरा जाणी ।।
४०. तिण सूं गौर पद्मवत् कहियै, पीत वर्ण पिण गौर उच्चरियै ।।

३३-३६. वृद्धव्याख्या तु—कनकस्य न लोहादे र्यः पुलकः सारो वर्णातिशयस्तत्प्रधानो यो निकषो—रेखा तस्य यत्पक्ष्म—बहलत्वं तद्वद्गौरो यः सः । (वृ०-प० १२)

३७-४०. अथवा—कनकस्य यः पुलको—द्रुतत्वे सति बिन्दुस्तस्य निकषो—वर्णतः सदृशो यः स तथा 'पम्ह' त्ति पद्मं तस्य चेह प्रस्तावात्केशराणि गृह्यन्ते ततः पद्मवद्गौरो यः सः । (वृ०-प० १२)

सोरठा

४१. फुन ए तो अवलोय, विशिष्ट तप करि रहित पिण ।
हुवै कदाचित् सोय, इह कारण थी हिव कहै ।।

४१. अयं च विशिष्टचरणरहितोऽपि स्यादित्यत आह— (वृ०-प० १२)

४२. *उग्र तप अनशनादिक ताय, पुरुष सामान्य चिंतव्यूं न जाय ।।

४२, ४३. उग्गतवे
उग्रम्—अप्रधृष्यं, तपः—अनशनादि यस्य स उग्रतपाः, यदन्येनप्राकृतपुंसा न शक्यते चिन्तयितुमपि तद्विधेन तपसा युक्त इत्यर्थः । (वृ०-प० १२)

सोरठा

४३. दुष्ट दृष्टि करि जोय, तसुं सन्मुख अवलोकवा ।
समर्थ नहीं छै कोय, इह कारण ए उग्र-तप ।।

गीतक-छंद

४४. फुन दीप्त जाज्वलमान कहियै, अग्नि नी पर ए सही ।
वन गहन कर्म सुदहन समरथपणै करि कै ज्वलित ही ।।
४५. धर्म्म ध्यानादिक प्रवर ही जेह गौतम नुं वही ।
इह कारणे करि दीप्त-तप ए आखियो सूत्रे सही ।।

४४, ४५. दित्ततवे
दीप्तं—जाज्वल्यमानदहन इव कर्म्मवनगहनदहनसमर्थतया ज्वलितं तपो—धर्मध्यानादिर्यस्य सः । (वृ०-प० १२)

४६. *तप तप्त ते कर्म तपावै, तप रूप आतम पिण भावै ।।
४७. अन्य सूं जिम फर्सणी नावै, इम गौतम कर्म तपावै ।।

४६. तत्ततवे
४६, ४७. तप्तं तपो येनासौ तप्ततपाः, एवं हि तेन तप्तपस्तप्तं येन कर्माणि संताप्य तेन तपसा स्वात्माऽपि तपोरूपः संतापितो यतोऽन्यस्यास्पृश्यमिव जातमिति । (वृ०-प० १२)

४८. महा तप ते वांछा दोष रहीतं, प्रशस्तपणैं करि प्रीतं ।।

४८. महातवे
आशंसादोषरहितत्वात्प्रशस्ततपाः । (वृ०-प० १२)

४९. तप उग्रादि पूर्व आख्यातं, ते विशिष्ट करिवा थी जातं ।।
५०. पासे रह्या नैं भय उपजेह, तिण सूं उराल—भीम कहेह ।।

४९. ओराले
४९, ५०. भीम उग्रादिविशेषणविशिष्टतपःकरणात्पार्श्वस्थानामल्पसत्त्वानां भयानक इत्यर्थः । (वृ०-प० १२)

५१. वलं अन्य आचार्य कहै वानं, उराले उदार — प्रधानं ।।
५२. परिसह इंद्रियादि रिपु-गण जोरो, नाश करण निर्दय ते घोरो ।।

५१. अन्येत्वाहुः—'ओराले, त्ति उदारः—प्रधानः ।
५२. घोरे
घोरः अतिनिर्घृणः परीषहेन्द्रियादिरिपुगणविनाशमाश्रित्य निर्दय इत्यर्थः । (वृ०-प० १२)

*लय—ज्यारें सोभं केसरिया साड़ी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३. वलि अन्य आचार्य कहै वाणी, घोर—आत्म-निरपेक्ष पिछाणी ।।
५४. अन्य जन दुरनुचर घोर, मूल गुणादि सुजोर ।।

५५. एहवा घोर गुणे करि सहीतं, ए तो गौतम स्वाम वदीतं ।।
५६. घोर तप करि आतम धामी, तिण सूं घोर तपस्वी स्वामी ।।

५७. अल्प सत्व जीव नैं ताहि, घोर दुरनुचर कहिवाहि ।।
५८. एहवा ब्रह्मचर्य नैं विषेह, जसु वसिवा नुं शील सुलेह ।।
५९. तिण सुं घोरबंभचेरवासी, एहवा इंद्रभूति मुख-रासी ।।

६०. संस्कार स्नानादि तज्यूं धीरं, तिण सूं उच्छूढ—उज्झित शरीरं ।।

६१. बहु योजन क्षेत्र रै मांहि, वस्तु दहन समर्थ कहिवाइ ।।
६२. एहवी विपुल तेजोलेश्या ज्वाला, विशिष्ट तप करि ऊपनी विशाला ।।
६३. ते संक्षेपी तनु अंतर कीनी, आ तो ह्रस्वपणैं करि लीनी ।।

६४. ज्यारै चउदश पूर्व कहीजै, पोतै हीज रचित सलहीजै ।।
६५. चउदशपुव्वी इण वचनेह, श्रुतकेवली पिण कहेह ।।

सोरठा

६६. चउदश पूरव धार, अवधि मनपज्जव रहित पिण ।
हुवै कोई अणगार, इण कारण थी हिव कहै ।।

६७. *वर केवल वरजी वदीतो, स्वामी च्यार ज्ञान करि सहीतो ।।

सोरठा

६८. कह्या विशेषण बेह, तेह युक्त पिण कोइक मुनि ।
समग्र श्रुत विषयेह, व्यापक ज्ञानी नहिं हुवै ।।
६९. चउद पूर्व ना जाण, छट्ठाणवडिया[1] ह्वै अछै ।
तिण कारण पहिछाण, आगल कहियै छै हिवै ।।

५३. अन्ये त्वात्मनिरपेक्षं घोरमाहुः । (वृ०-प० १२)
५४. घोरगुणे
घोरा—अन्यैर्दुरनुचरा गुणा—मूलगुणादयो यस्य सः ।
(वृ०-प० १२)
५६. घोरतवस्सी
घोरैस्तपोभिस्तपस्वीत्यर्थः । (वृ०-प० १२)
५७-५९. घोरबंभचेरवासी
घोरं—दारुणमल्पसत्त्वैर्दुरनुचरत्वाद्यद्ब्रह्मचर्यं तत्र वस्तुं शीलं यस्य सः ।
(वृ०-प० १२)
६०. उच्छूढसरीरे
उच्छूढम् उज्झितमिवोज्झितं शरीरं येन तत्संस्कार-त्यागात्सः । (वृ०-प० १२)
६१-६३. संखित्तविउलतेयलेस्से
संक्षिप्ता—शरीरान्तर्लीनत्वेन ह्रस्वतां गता, विपुला—विस्तीर्णा अनेकयोजनप्रमाणक्षेत्राश्रितवस्तुदहनसमर्थ-त्वात्तेजोलेश्या—विशिष्टतपोजन्यलब्धिविशेषप्रभवा तेजोज्वाला यस्य सः । (वृ०-प० १२)
६४, ६५. चोद्दसपुव्वी
चतुर्दश पूर्वाणि विद्यन्ते यस्य तेनैव तेषां रचितत्वादसौ चतुर्दशपूर्वी, अनेन तस्य श्रुतकेवलितामाह ।
६६. स च अवधिज्ञानादिविकलोऽपि स्यादत आह—
(वृ०-प० १२)
६७. चउनाणोवगए
केवलज्ञानवर्जज्ञानचतुष्कसमन्वित इत्यर्थः ।
(वृ०-प० १२)
६८, ६९. उक्तविशेषणद्वययुक्तोऽपि कश्चिन्न समग्रश्रुत-विषयव्यापिज्ञानो भवति चतुर्दशपूर्वविदां षट्स्थानक-पतिततत्वेन श्रवणादित्यत आह— (वृ०-प० १२)

*लय—ज्यारैं सोभै केसरिया साड़ी

१. छट्ठाणवडिया का अर्थ है—गुणों की न्यूनाधिकता से छह स्थानकों में विभाजन। यहां चतुर्दश पूर्वधर मुनियों के ज्ञान में रहने वाले अन्तर का संकेत है। वे छह स्थानक ये हैं—संख्यात-भाग, असंख्यात-भाग, अनन्त-भाग, संख्यात-गुण, असंख्यात-गुण और अनन्त-गुण हीन या अधिक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७०. *जाण्या सर्व अक्षर ना संजोग, ए प्रथम अर्थ सुप्रयोग ।।
७१. अथवा श्रवणसुखकारी वर्ण तास, मिलता अति ही बदवानुं शील जास ।।

७०. सव्वक्खरसन्निवाती
७०, ७१. सर्वे च तेऽक्षरसन्निपाताश्च—तत्संयोगाः सर्वेषां वाऽक्षराणां सन्निपाताः सर्वाक्षरसन्निपातास्ते यस्य ज्ञेयतया सन्ति स सर्वाक्षरसन्निपाती, श्रव्याणि वा—श्रवणसुखकारीणि अक्षराणि साङ्गत्येन नितरां वदितुं शीलमस्येति श्रव्याक्षरसंनिवादी ।
(वृ०-प० १२, १३)

७२. वीर नो महा सुविनीत, त्यारै पूर्ण प्रभुजी सूं प्रीत ।।
७२. स चैवंगुणविशिष्टो भगवान् विनयराशिरिव ।
(वृ०-प० १३)

७३. दूजी ढाल गौतम गुण दाख्या, ए तो सूत्र वृत्ति करि आख्या ।।
७४. भिक्षु भारीमाल ऋषिराया, सुख 'जय-जश' हरष सवाया ।।

ढाल : ३

दूहा

१. श्रमण भगवंत महावीर तैं, नहिं अति दूर नजीक ।
ऊर्द्ध जानुनी अधःमुख, उकडू आसण ठीक ।।
१. समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते उड्ढंजाणू अहोसिरे

२. ध्यान रूप कोठे रह्या, धर्म शुक्ल वृत्ति मांहि ।
संजम तप करि आतमा, भावित विचरै ताहि ।।
२. झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ । (श० १।६)
ध्यानं—धर्म्यं शुक्लं वा तदेव कोष्ठः—कुशूलो ध्यानकोष्ठस्तमुपगतः । (वृ०-प० १३)

३. संजम ते संवर करी, तप ते द्वादश भेद ।
उभय अंग ए मोक्ष ना, प्रवर प्रधान संवेद ।।
३-५. 'संजमेणं' ति संवरेण 'तवस' त्ति अनशनादिना, संयम-तपोग्रहणं चानयोः प्रधानमोक्षांगत्वख्यापनार्थं, प्रधानत्वं च संयमस्य नवकर्मानुपादानहेतुत्वेन तपसश्च पुराणकर्मनिर्जरणहेतुत्वेन, भवति चाभिनवकर्मानुपादानात् पुराणकर्मक्षपणाच्च सकलकर्मक्षयलक्षणो मोक्ष इति, 'अप्पाणं भावेमाणे विहरइ' त्ति, आत्मानं वासयंस्तिष्ठतीत्यर्थः । (वृ०-प० १३)

४. संजम सूं नव कर्म नूं, ऊपजवू नहिं थाय ।
कर्म पुराणा तप करी, निर्जरिवूं सुखदाय ।।

५. संजम तप ए उभय थी, सकल कर्म क्षय हुंत ।
तिण करि आतम भावता, गौतम मुनि विचरंत ।।

६. ध्यान रूप कोठा विषै, रह्या पछै तिह वार ।
णं वाक्यालंकार छै, से कहितां तसुं सार ।।
६. तते णं से
'ततः' ध्यानकोष्ठोपगतविहरणानन्तरं णमिति वाक्यालङ्कारार्थः 'स' इति प्रस्तुतपरामर्शार्थः । (वृ०-प० १३)

७. विशेष अवधारण अरथ, कहियै आगल जान ।
भगवंत गौतम ज्ञानवंत, जशवंत महिमावान ।।
७. भगवं गोयमे
तस्य तु सामान्योक्तस्य विशेषावधारणार्थमाह—
(वृ०-प० १३)

८. जाता प्रवर्त्ती छै श्रद्धा, ते इच्छा सुविमास ।
वक्ष्यमाण जे अर्थ वर, तत्व-ज्ञान प्रति जास ।।
८. जायसड्ढे
तत्र जाता—प्रवृत्ता श्रद्धा—इच्छा वक्ष्यमाणार्थतत्त्वज्ञानं प्रति यस्यासौ जातश्रद्धः । (वृ०-प० १३)

*लय—ज्यारै सोभै केसरिया साड़ो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. तथा जात जे प्रवर्त्यो, संशय जेहनै सोय।
तिको जातसंशय कह्यूं, ए द्वितिय विशेषण जोय॥

वा०—संशय जे अनवधारित अर्थ-ज्ञान ते संशय, इम ते भगवंत गौतम नैं जात कहितां प्रवर्त्यो—भगवंत महावीर 'चलमाणे चलिए' इत्यादिक सूत्र नैं विषै चलवा लागो जे अर्थ तेहनैं चल्यो कह्यो। तिहां वलि जेहीज चलवा लागो तेहिज चल्यो इसो कह्यो। तेह थकी एकार्थ ए विहुं कह्या चलवा लागो ए वर्त्तमान काल विषय, अनैं चल्यो ए अतीत काल विषय। एह थकी इहां संशय नाम जेहीज अर्थ वर्त्तमान तेहीज अतीत किम हुवै? वर्त्तमान अतीत ए विहुं काल ना विरुद्ध पणा थकी।

९. जायसंसए
तथा जातः संशयो यस्य स जातसंशयः। (वृ०-प० १३)

वा०—संशयस्तु अनवधारितार्थ ज्ञानं, स चैवं तस्य भगवतो जातः—भगवता हि महावीरेण 'चलमाणे चलिए' इत्यादौ सूत्रे चलन्नर्थश्चलितो निर्दिष्टः, तत्र च य एव चलन् स एव चलित इत्युक्तः, ततश्चैकार्थविषयावेतौ निर्देशौ, चलन्निति च वर्त्तमानकालविषयः चलित इति चातीतकालविषयः, अतोऽत्र संशयः—कथं नाम य एवार्थो वर्त्तमानः स एवातीतो भवति? विरुद्धत्वादनयोः कालयोरिति। (वृ०-प० १३)

१०. तथा जात जे प्रवर्त्यो, कोतूहल जसुं जेह।
जात-कोउहलं ए कह्यूं, तृतिय विशेषण एह॥
११. कोतूहल औत्सुक्य जे, ते इह रीत कहेह।
चलणादिक पद नों प्रवर, स्यूं प्रभु उत्तर देह?॥

१०, ११. जायकोउहल्ले
तथा जातं कुतूहलं यस्य स जातकुतूहलो, जातौत्सुक्य इत्यर्थः, कथमेतान् पदार्थान् भगवान् प्रज्ञापयिष्यतीति। (वृ०-प० १३)

१२. जे पूर्वे नहि ऊपनी, ते श्रद्धा जसुं होय।
उत्पन्नश्रद्ध कह्यो तसुं, तुर्य विशेषण जोय॥

१२. उप्पन्नसड्ढे।
उत्पन्ना—प्रागभूता सती भूता श्रद्धा यस्य स उत्पन्नश्रद्धः। (वृ०-प० १३)

१३. जातश्रद्ध आख्यां पछै, उत्पन्नश्रद्ध कि ख्यात।
प्रवृत्तश्रद्ध पणैं करी, उत्पन्नश्रद्धपणुं आत॥
१४. श्रद्धा उपजियां विना, प्रवर्तवूं नहि थात।
जातश्रद्ध आख्यां पछै, किम उत्पन्न आख्यात?॥
१५. हेतूपणुं दिखाड़वा, आख्यूं उत्पन्नश्रद्ध।
कथं प्रवृत्तश्रद्ध ए? जे उत्पन्नश्रद्ध लद्ध॥

१३. अथ जातश्रद्ध इत्येतावदेवास्तु किमर्थमुत्पन्नश्रद्ध इत्यभिधीयते?
१४. प्रवृत्तश्रद्धत्वेनैवोत्पन्नश्रद्धत्वस्य लब्धत्वात् न ह्यनुत्पन्ना श्रद्धा प्रवर्त्तत इति।
१५. हेतुत्वप्रदर्शनार्थं, तथाहि—कथं प्रवृत्तश्रद्ध उच्यते? यत उत्पन्नश्रद्ध इति।

वा०—अथ जातश्रद्ध इति एतला माहेंज उत्पन्नश्रद्धपणुं थयुं, किण अर्थे उत्पन्नश्रद्ध इसो कहियै? प्रवृत्तश्रद्धपणैं करीज उत्पन्नश्रद्धपणुं लब्धपणा थकी। ऊपज्यां विना श्रद्धा प्रवर्त्त नहीं इति। इहां उत्तर कहै छै—हेतुपणां नैं दिखाड़वा अर्थ, तथा कथं प्रवृत्तश्रद्ध कहियै। जे कारण थकी पूर्व उत्पन्नश्रद्ध ते प्रवृत्तश्रद्ध इम हेतु दिखाडवा अर्थ कहियै।[1]

१. टीकाकार ने जातश्रद्ध और उत्पन्नश्रद्ध इन दो शब्दों के प्रयोग की सार्थकता बताते हुए संस्कृत-श्लोक के दो चरण उद्धृत किए हैं—

प्रवृत्तदीपामप्रवृत्तभास्करां ।
प्रकाशचन्द्रां बुबुधे विभावरीं॥

जिसमें दीपक प्रवृत्त हैं—जल रहे हैं और सूर्य अप्रवृत्त है—उगा नहीं है। यहां एक बात कहने से दूसरी बात स्वतः गम्य होती थी। पर अप्रवृत्त-भास्कर इस पद का हेतु के रूप में उपयोग करने के लिए प्रवृत्त-दीप इस पद का ग्रहण आवश्यक हो गया है।

इसी प्रकार जातश्रद्ध कहने से उत्पन्नश्रद्ध अपने आप आ जाता है। जो उत्पन्न ही नहीं है वह जात-प्रवृत्त कैसे हो सकता है? किन्तु यहां उत्पन्नश्रद्ध पद के हेतुत्व को उपदर्शित करने के लिए जातश्रद्ध और उत्पन्नश्रद्ध इन दो शब्दों का ग्रहण किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. उत्पन्न संसय छै जसु, उत्पन्न - संसय तेह।
एह विशेषण पांचवों, न्याय पूर्ववत् लेह ।।

१६. उप्पन्नसंसए

१७. उत्पन्न कोतूहल जसु, उत्पन्न - कोतुहल तेह।
एह विशेषण छट्ठवों, न्याय पूर्ववत् लेह ।।

१७. उप्पन्नकोउहल्ले

१८. संजाता अति प्रवृत्त ही, श्रद्धा—इच्छा जास।
सजातश्रद्ध ए सप्तमूं, कह्यूं विशेषण तास ।।

१८. संजायसड्ढे

१९. संजात अति ही प्रवर्त्यूं, संसय जेहनैं सोय।
संजाय - संसय अष्टमूं, एह विशेषण होय ।।

१९. संजायसंसए

२०. संजात अति ही प्रवर्त्यूं, कोतूहल जस जान।
संजात - कोतूहल तिको, ए नवम विशेषण मान ।।

२०. संजायकोउहल्ले

२१. समुत्पन्ना अति ऊपनी, श्रद्धा—इच्छा जास।
समुत्पन्न-श्रद्ध तसु कह्यो, दशम विशेषण तास ।।

२१. समुप्पन्नसड्ढे

२२. समुत्पन्न अति ऊपनों, संसय जेहनैं तेह।
समुत्पन्न - संसय तिको, एकादशम कहेह ।।

२२. समुप्पन्नसंसए

२३. समुत्पन्न अति ऊपनों, कोतूहल जसु चित्त।
तेह समुत्पन्न - कोतूहल, ए द्वादशम कथित्त ।।

२३. समुप्पन्नकोउहल्ले

२४. संजात-सड्ढे आदि त्रिण, समुत्पन्न - सड्ढे आदि।
ए पिण त्रिण पद नैं विषै, वच सं प्रकर्षादि ।।

२५. कह्या विशेषण दोय दश, गौतम तणाज एह।
सहु पद विषै विभक्ति है, प्रथमा इक वचनेह ।।

२६. अन्य आचारज इम कहै, जायसड्ढ इत्यादि।
एह विशेषण वार नूं, इह विध कहै संवादि ।।

२६-२९. अन्ये तु 'जायसड्ढे' इत्यादि विशेषणद्वादशकमेवं व्याख्यान्ति—जाता श्रद्धा यस्य प्रष्टुं स जातश्रद्धः, किमिति जातश्रद्धः ? इत्यत आह- -यस्माज्जातसंशयः, इदं वस्त्वेवं स्यादेवं वेति, अथ जातसंशयोऽपि कथमित्यत आह-— (वृ०-प० १४)

२७. जाता श्रद्धा जेहनैं, पूछण तणी पिछाण।
तिको जात-श्रद्ध सुद्ध आखियो, ते जात-श्रद्ध स्यूं जाण ?।।

२८. इह कारण थी हिव कहै, जेह थकी अवलोय।
जात-संशयो, वस्तु ए इम ह्वै वा इम होय ।।

२९. जात-संशय पिण तिको, किण प्रकार करि थाय ?
इह कारण थी हिव कहै, सांभलज्यो चित ल्याय ।।

३०. जेहथी जात - कुतूहले, चलमाणे चलितादि।
किण प्रकार करि अर्थ ए, हूं जाणिस संवादि ?।।

३०. यस्माज्जातकुतूहलः कथं नामास्यार्थमवभोत्स्ये ?
(वृ०-प० १४)

३१. वलि विशेषण तीन ए, जात-श्रद्ध अवलोय।
जात-संशय, कोतूहल, अवग्रह आश्री जोय ।।

३१-३४. एतच्च विशेषणत्रयमवग्रहापेक्षया द्रष्टव्यम्, एवमुत्पन्नसंजातसमुत्पन्नश्रद्धत्वादय ईहापायधारणाभेदेन वाच्याः। (वृ०-प० १४)

३२. उप्पन्न - श्रद्ध संशय- उप्पन्न कोतूहल-उत्पन्न।
ईहा तणी अपेक्षया, ए त्रिहुं कह्या वचन्न ।।

३३. संजाय - सड्ढे संसय, कोतूहल संजात।
अपाय तणी अपेक्षया, ए वच त्रिहुं आख्यात ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४. समुत्पन्न श्रद्धा पुनः, संशय समुत्पन्न।
समुत्पन्न-कोतुहल तिहुं, है धारणा वचन्न ॥

३५. अन्य आचारज इम कहै, जातश्रद्धत्वादेह।
कह्या अपेक्षा करि इहां, पद तीनूंई एह ॥

३६. उत्पन्नश्रद्ध इत्यादि पद, तुल्य ए अर्थ होय।
वांछितार्थ प्रकर्ष वृत्ति- प्रतिपादन अवलोय ॥

३७. स्तुतीमुख करि नै इहां, ग्रंथकृता आख्यात।
वलि पुनरुक्त न दोष इम, निसुणो तस अवदात[1] ॥

३८. वक्ता हर्ष भयादि करि, आक्षिप्त-मन स्तुति निंद।
वार वार पद जे कहै, पुनरुक्त दोष न मंद ॥

३९. समुच्चय द्वादश बोल ए, सूत्रे आख्या सार।
अधिक अर्थ दाख्यो इहां, वृत्ति थकी विस्तार ॥

४०. हिवै भगवंत गौतम तिके, ऊठै ऊठी[2] धीर।
जिहां दिशिभाग विषै अछै, श्रमण भगवंत महावीर ॥

४१. तिहां आवै आवी करी, तिण काल तणी अपेक्षाय।
वर्त्तमान छै ते भणी, कहो वर्त्तमान क्रिया ताय ॥

४२. *जिन श्रमण तपस्वी, भगवंत ऐश्वर्यवान।
जस महिमावंत ज्ञानवंत, महावीर प्रति जान ॥

दूहा

४३. तिक्खुत्तो तिण वारज, दक्षिण कर थी आरंभ।
पयाहिणं प्रदक्षिण करै, करी गुणअंभ ॥

३५-३७. अन्ये त्वाहुः—जातश्रद्धत्वाद्यपेक्षयोत्पन्नश्रद्धत्वादयः समानार्था विवक्षितार्थस्य प्रकर्षवृत्तिप्रतिपादनाय स्तुतिमुखेन ग्रन्थकृतोक्ताः। (वृ०-प० १४)

३८. वक्ता हर्षभयादिभिराक्षिप्तमनाः स्तुवंस्तथा निन्दन्।
यत्पदमसकृद् ब्रूते तत्पुनरुक्तं न दोषाय ॥
(वृ०-प० १४)

४०. उट्ठाए उट्ठेति, उट्ठेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे

४१. तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
तस्मिन्नेव दिग्भागे उपागच्छति, तत्कालापेक्षया वर्तमानत्वादागमनक्रियाया वर्तमानविभक्त्या निर्देशः कृतः। (वृ०-प० १४)

४२. समणं भगवं महावीरं

४३. तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं, करेइ, करेत्ता। 'तिक्खुत्तो' त्ति त्रीन् वारान्। (वृ०-प० १४)

---

१. कुछ आचार्यों के अभिमत में जातश्रद्ध आदि पद एक अपेक्षा से उत्पन्नश्रद्ध आदि पदों के समानार्थक हैं। किन्तु विवक्षित अर्थ का प्रकर्ष दिखलाने के लिए ग्रन्थकार ने प्रशस्ति के रूप में इन पदों का प्रयोग किया है। यह प्रयोग पुनरुक्त होने पर भी दोष नहीं है क्योंकि—

वक्ता हर्षभयादिभिराक्षिप्तमनाः स्तुवंस्तथा निन्दन्।
यत्पदमसकृत् ब्रूते तत्पुनरुक्तं न दोषाय ॥

हर्ष, भय आदि से विक्षिप्त होकर बोलने वाला अथवा स्तुति या निन्दा करने वाला एक ही पद का बार-बार उच्चारण करता है। उसका वह पुनर्वचन दोष नहीं माना जाता। क्योंकि यह स्वाभाविकता है।

२. उत्थानं उत्था अर्थात् उठने की क्रिया। यहां उट्ठेति क्रिया को उट्ठाए शब्द से विशेषित किया गया है। इस विशेषण-प्रयोग का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए टीकाकार ने कहा है—'उट्ठेइ' इतना कहने से क्रिया के प्रारंभ होने की ही प्रतीति होती है। इसका व्यवच्छेद करने के लिए, पूर्णतः उठ गए इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए उट्ठाए शब्द का प्रयोग है। उत्थानं उत्था—ऊर्ध्ववर्तन इत्यर्थः तथा उत्थया, उत्तिष्ठति ऊर्ध्वो भवति।

*लय—नमूं ए अनन्त चौवीसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४४. वंदै वचस्तुति करै, काय करी नमस्कार।
वंदी नै मुनिवर वली, नमस्कार करि सार॥

४५. *नहीं अति ही ढूंकडा[1], वली नहीं अति दूर।
प्रभु वच सुणवा नीं, इच्छा धरता सनूर॥

४६. नमस्कार[2] करंता, श्री जिन सन्मुख सार।
अति विनय करी नैं, वे कर स्थाप निलाड॥

४७. जिन सेवा करता, ए सुणवा नीं विद्ध[3]।
आगल कहिस्यै ते, बोल्या वयण प्रसिद्ध॥

४८. से नूणं भंते, से कहितां ते ख्यात।
चलवा लागो ते, चल्यूं कह्यूं जगनाथ॥

४९. णूणं इम अर्थे, तिहां तिहां अवलोय।
एह तणुं एम जे, व्याख्यातपणा थी जोय॥

५०. अथवा से शब्दज, मागध देश प्रसिद्ध।
अथ शब्द अर्थ में, वर्त्तै एह समृद्ध॥

५१. अथ शब्द वली जे, वाक्य उपन्यासार्थ।
परिप्रश्नार्थो वा, प्रारंभ नै प्रश्नार्थ॥

५२. भंते! गुरु आमंत्रण, हे भदंत! गुणगेह।
हे कल्याणरूपज! हे सुख-स्वरूप! वा लेह॥

५३. प्राकृत शैली करि, भव संसार नूं जाण।
अंत हेतुपणा थी, वा भयांत पहिछाण॥

५४. अथवा जे भय ना, अंत हेतु थी एह।
तसुं भयांत कहियै, प्राकृत शैली करेह॥

५५. तेहनैं आमंत्रण, हे भयांत! गुण-हीर।
अथवा तसुं कहियै, हे भयांत! अति धीर॥

५६. अथवा हे भान्! ज्ञानादि करि दीप्यमान।
भा धातु कहियै, दीप्त अर्थ में जान॥

५७. हे भ्राजमान! वा, दीप्यमान दीपेह।
भ्राजृ धातू ते, दीप्ति अर्थ विपेह॥

४४. वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता

४५. णच्चासन्ने णातिदूरे सुस्सूसमाणे

४६. णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलियडे

४७. पज्जुवासमाणे एवं वयासी— (श० १।१०)

४८, ४९. से णूणं
'से' इति तद् यदुक्तं पूर्वैः 'चलच्चलित' मित्यादि 'णूणं' ति एवमर्थे, तत्र तत्रास्यैवं व्याख्यातत्वात्।
(वृ०-प० १४)

५०, ५१. अथवा 'से' इति शब्दो मागधदेशीप्रसिद्धोऽथशब्दार्थे वर्त्तते अथशब्दस्तु वाक्योपन्यासार्थः परिप्रश्नार्थो वा।
(वृ०-प० १४)

५२-५७. भंते!
'भंते' त्ति गुरोरामन्त्रणं, ततश्च हे भदन्त!—कल्याण-रूप! सुखरूप! इति वा, प्राकृतशैल्या वा भवस्य—संसारस्य भयस्य वा—भीतेरन्तहेतुत्वाद्भवान्तो भयान्तो वा तस्यामन्त्रणं हे भवान्त! हे भयान्त! वा, भान् वा—ज्ञानादिभिर्दीप्यमान! 'भा दीप्तौ' इति वचनात्, भ्राजमान! वा—दीप्यमान। 'भ्राजृ दीप्तौ' इति वचनात्। (वृ०-प० १४, १५)

*लय—नमूं ए अनन्त चौबीसी

१. निकट।

२. 'णमंसमाणे' टीकाकार ने इस पाठ की व्याख्या नहीं की है। संभव है उनके सामने जो प्रति रही है, उसमें यह पाठ नहीं है।

३. तत्त्वावबोध के लिए गुरु के पास किस प्रकार बैठकर सुनना चाहिए? इस सम्बन्ध में टीकाकार ने एक पद्य उद्धृत करते हुए कहा है—
निद्दा विगहा परिवज्जिएहिं गुत्तेहिं पंजलिउडेहिं।
भत्तिबहुमाणपुव्वं उवउत्तेहिं सुणेयव्वं॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०- इहां तेणं कालेणं इत्यादिक आदि थकी आरंभी नै भंते शब्द-पर्यंत ग्रंथ भगवंत सुधर्म्म स्वामी पंचम अंग ना प्रथम शतक ना प्रथम उद्देशक नो संबंध अर्थ कह्यो। अथ इण संबंध करिकै आयुं पंचमांग प्रथम शतक ना प्रथम उद्देशक नुं ए आदि सूत्र 'चलमाणे चलिए' इत्यादि।

५८. हिव आदि सूत्र कहै, चलमाणे चलिए तेम।
तिहां वृत्तिकार कह्यू, अन्य पद नाण्या केम ?॥

५९. धर्म अर्थ काम मोक्ष, पुरुषार्थ है च्यार।
मुख्य मोक्ष चिहुं में, तसुं अरि बंध विचार॥

६०. ए कर्म बंध नो, क्षय विषय अवलोय।
अनुक्रमे कह्यू ए, चलमाणे प्रमुख सु जोय॥

६१. तिण सूं धुर आण्यो, चलमाणे सुविचार।
हिव गौतम पूछै, प्रथम प्रश्न नव सार॥

६२. चलवा लागो, ते चल्यूं कहीजै स्वाम।
स्थिति ना क्षय सेती, उदय आवतो ताम॥

६३. असंखेज्ज समय नो, चलन काल कहिवाय।
आदि मध्य अनै अंत, उदय आवलिका मांय॥

६४. कर्म पुद्गल केरा, इक इक समये जोय।
स्कंध अनन्त-प्रदेशिक, चलै अनंता सोय॥

६५. ते पहिलै समयै, चलवा लागो जेह।
तसुं चल्यूं कहीजै, नय वचने करि एह॥

६६. पट उत्पत्ति काले, प्रथम तंतु-प्रवेश।
पट उपनो कहीजै, ए छै पट नों देश॥

६७. इम पहिलै समयै, चल्युं कर्म नूं अंग।
तसुं चल्युं न कहै तो, सर्व अचलन प्रसंग॥

६८. इक अंत समय में, चल्यूं कहीजै सोय।
तो अपर समय ते, निष्फल तसुं मत जोय॥

६९. जे पहिले समये, चलवा लागो तेह।
जे चल्युं कहीजै, उत्तर समय न चलेह॥

७०. धुर समय चल्युं कह्यां, उदय आवलिका मांय।
सर्व समयै चल्यूं क्षय, ए धुर प्रश्न कहाय॥

वा०—चलमाणे इत्यादि- तिहां चलमाणे कहितां चलवा लागो कर्म ते, चलिए कहितां चलियो। चलवा लागो—ते स्थिति ना क्षय थकी उदय आवतो विपाक, ते भोगववा रे सन्मुख थानो जे कर्म इति। ते अवसर नै विषै ते कर्म चल्युं- उदय थयुं इम कहियै। चलनकाल—उदय आवलिका प्रमाण काल, तेहनै उदय आवलिका काल कहियै। ते उदय आवलिका रूप काल नै असंखेज्ज समय-पणांथी आदि, मध्य, अंतपणु वर्त्तै। अनै कर्म पुद्गल पिण जे अनंत प्रदेशिया स्कंध

वा०—अयं च आदित आरभ्य 'भंते' त्ति पर्यन्तो ग्रन्थो भगवता सुधर्म्मस्वामिना पञ्चमांगस्य प्रथमशतकस्य प्रथमोद्देशकस्य सम्बन्धार्थमभिहितः। अथानेन सम्बन्धेनायातस्य पञ्चमांगप्रथमशतकप्रथमोद्देशकस्येदमादिसूत्रम्—'चलमाणे चलिए' इत्यादि। (वृ०-प० १५)

५८. चलमाणे चलिए ?
अथ केनाभिप्रायेण भगवता...अर्थानुकथनं कुर्वतैवमर्थवाचकं सूत्रमुपन्यस्तं, नान्यानीति ? (वृ०-प० १५)

५९. इह चतुर्षु पुरुषार्थेषु मोक्षाख्यः पुरुषार्थो मुख्यः... तद्विपक्षश्च बन्धः। (वृ०-प० १५)

६०. तेषां तु कर्मणां प्रक्षयेऽयमनुक्रम उक्तः। (वृ०-प० १५)

६२, ६३. 'चलमाणे' त्ति चलत्- -स्थितिक्षयादुदयमागच्छद्, चलनकालो हि उदयावलिका, तस्य च कालस्यासङ्ख्येयसमयत्वादादिमध्यान्तयोगित्वम्। (वृ०-प० १५)

६४, ६५. कर्मपुद्गलानामप्यनन्ताः स्कन्धा अनन्तप्रदेशाः ततश्च ते क्रमेण प्रतिसमयमेव चलन्ति, तत्र योऽसावाद्यश्चलनसमयस्तस्मिंश्चलदेव तच्चलितमुच्यते।
(वृ०-प० १५)

६६. यथा पट उत्पद्यमानकाले प्रथमतन्तुप्रवेशे उत्पद्यमान एवोत्पन्नो भवति। (वृ०-प० १५)

६७. आदिमसमयात्प्रभृति चलदेव कर्म...न चलितं स्यात्तदा... सर्वदैवाचलनप्रसंगः। (वृ०-प० १५)

६९, ७०. यच्च तस्मिंश्चलितं तच्चोत्तरेषु समयेषु न चलति, यदि तु तेष्वपि तदेवाद्यं चलनं भवेत्तदा तस्मिन्नेव चलने सर्वेषामुदयावलिकाचलनसमयानां क्षयः स्यात्।
(वृ०-प० १५)

वा०—'चलमाणे' इत्यादि तत्र 'चलमाणे' त्ति चलत्—स्थितिक्षयादुदयमागच्छद् विपाकाभिमुखीभवद्यत्कर्मेति प्रकरणगम्यं तच्चलितम्—उदितमिति व्यपदिश्यते, चलनकालो हि उदयावलिका, तस्य च कालस्यासङ्ख्येयसमयत्वादादिमध्यान्तयोगित्वं, कर्मपुद्गलानामप्यनन्ताः स्कन्धा अनन्तप्रदेशाः ततश्च ते क्रमेण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनन्ता। ते अनन्त प्रदेशिया अनन्ता स्कंध। अनुक्रम करिकै समय समय प्रति चलै छै। तिहां जिकै ए आदि चलन समय तेहनै विषै चलवा लागो कर्म तिकोहीज चलियो कहिये। वली ते वर्त्तमान छतो अतीत किम हुवै? इति इहां उत्तर कहै छै—

जिम पट उत्पद्यमान काले प्रथम तंतु प्रवेश नै विषै ऊपजवा लागो हीज ऊपज्यो इसो हुवै छै। उत्पद्यमानपणुं ते पट नैं प्रथम तंतु प्रवेश काल थकी प्रारंभी नैं पट उपजै इति। इम व्यपदेश देखवा थकी प्रसिद्ध हीज। वली ऊपजवापणो युक्ति करिकै प्रसाधियै। जे भणी तिण प्रकार करिकै उत्पत्ति क्रिया काल हीज प्रथम तंतु प्रवेश नै विषै ए पट ऊपनों, जो वली नहीं ऊपनों हुवै तदा तिवारे तेहनीं क्रिया नों व्यर्थपणो थासी, निष्फलपणा थकी। ऊपजवा योग्य वस्तु नों जे उपजायवो—प्रगट करिवो तेहीज अर्थ—प्रयोजन जे क्रिया नों ते उत्पाद्य उत्पादनार्था क्रिया हुई। वली जिम प्रथम क्रिया क्षण कै विषै ए पट ऊपनों नहीं, तिम उत्तर क्षण नैं विषै पिण अणऊपनों हीज ए पट प्राप्त हुवै। जे भणी उत्तर क्षण क्रिया नो स्व विषय स्वरूप विशेष कवण छै? जिण कारण करी जे पट प्रथम समय न ऊपनों ते पट उत्तर समय करिकै किम ऊपजावै? अपितु न उपजावै। इण कारण थकी सर्व कालहीज अनुत्पत्तिः प्रसंगः। अनैं अंत्य तंतु प्रवेशकाल नैं विषै पट नीं उत्पत्ति दीठी ते देखवा थकी। इण कारण थकी प्रथम तंतु प्रवेश काल हीज पट नूं किंचित् ऊपनूं, जेतलूं ऊपनूं ते वली उत्तर क्रिया करिकै न उपजाविये, जो पूर्वे ऊपनों तेहीज वलि उपजावै तिवारै ते पट नों पूर्व ऊपनों जे एक देश तेहनी उत्पादन क्रिया नो अनैं काल नों क्षय हुई। जो पूर्व ऊपनो अंश ते निरपेक्ष अनेरी क्रिया हुई। ते उत्तर अंश द्वितीयादि समय अंश नुं अनुक्रमण युक्त पावै। अन्यथा नहीं।

जिम पट ऊपजवा लागो तेहीज ऊपनों। तिण प्रकार करिकै हीज असंखेज्ज समय परिमाणपणां थकी। उदय आवलिका ना आदि समय थकी प्रारंभी चलवा लागो तिको हिज कर्म चल्युं कहियै। ते किम? जे भणी जो ते कर्म चलन रै सन्मुख थयुं उदय आवलिका नूं आदि समय हीज न चल्युं हुवै तिवारै ते आदि समय नैं विषै चलन समय नूं व्यर्थपणुं हुवै, तिहां अचलितपणां थकी। अनैं जिम प्रथम समये न चल्युं, तिम द्वितीयादिक समय नैं विषै पिण न चलै। ते जमाल्यादिक मत नैं विषै स्व विषय स्वरूप विशेष, जिण कारण करिकै जे कर्म प्रथम समय न चल्युं ते कर्म उत्तर समय नैं विषै किम चलै। अपितु न चलै। इण कारण थकी। सर्वदा अचलन प्रसंग, अंत्य समय नैं विषै स्थिति थकी कर्म नूं चलिवूं हुवै। परिमितपणैं करी। कर्म नुं अभाव अंगीकार करिवा थकी। इण कारण आवलिका काल ना आदि समय नैं विषैहीज किंचित् चल्युं। अनैं जे कर्म आवलिका काल ना आदि समय नैं विषै चल्युं वली ते कर्म द्वितीयादि उत्तर समय नैं विषै न चलै, वली जो उत्तर समय नैं विषै पिण तेहीज आदि चलन हुवै, तिवारै तेहनैं विषै हीज चलन छतै सर्व उदय-आवलिका चलन समय नों क्षय हुवै। जे भणी ते आदि समय चलन नीं निरपेक्ष अन्य समय चलन हुवै तिवारै उत्तर समय चलन अनुक्रमण जुड़ै अन्यथा नहीं। ते इम चलवा लागो तिको पिण ते कर्म चल्युं हुवै इति।

७१. *उदीरवा मांड्यो, तास उदीर्यो कहीजै।
हिव उदीरणा नों लक्षण, इम सदहीजै॥

*लय—नमूं ए अनन्त चौबीसी

प्रतिसमयमेव चलन्ति, तत्र योऽसावाद्यश्चलनसमयस्तस्मिंश्चलदेव तच्चलितमुच्यते, कथं पुनस्तद्वर्त्तमानं सदतीतं भवतीति? अत्रोच्यते—

यथा पट उत्पद्यमानकाले प्रथमतन्तुप्रवेशे उत्पद्यमान एवोत्पन्नो भवतीति, उत्पद्यमानत्वं च तस्य प्रथमतन्तुप्रवेशकालादारभ्य पट उत्पद्यते इत्येवं व्यपदेशदर्शनात् प्रसिद्धमेव, उत्पन्नत्वं तूपपत्त्या प्रसाध्यते, तथाहि—उत्पत्तिक्रियाकाल एव प्रथमतन्तुप्रवेशेऽसावुत्पन्नः, यदि पुनर्नोत्पन्नोऽभविष्यत्तदा तस्याः क्रियाया वैयर्थ्यमभविष्यत्, निष्फलत्वाद्, उत्पाद्योत्पादनार्था हि क्रियाः भवन्ति, यथा च प्रथमे क्रियाक्षणे नासावुत्पन्नस्तथोत्तरेष्वपि क्षणेष्वनुत्पन्न एवासौ प्राप्नोति, को ह्युत्तरक्षणक्रियाणामात्मनि रूपविशेषो? येन प्रथमया नोत्पन्नस्तदुत्तराभिस्तूत्पाद्यते, अतः सर्वदैवानुत्पत्तिप्रसंगः, दृष्टा चोत्पत्तिः, अन्त्यतन्तुप्रवेशे पटस्य दर्शनाद्, अतः प्रथमतन्तुप्रवेशकाल एव किञ्चिदुत्पन्नं पटस्य, यावच्चोत्पन्नं न तदुत्तरक्रिययोत्पाद्यते, यदि पुनरुत्पाद्येत तदा तदेकदेशोत्पादन एव क्रियाणां कालानां च क्षयः स्यात्, यदि हि तदंशोत्पादननिरपेक्षा अन्याः क्रिया भवन्ति तदोत्तरांशानुक्रमणं युज्यते नान्यथा।

तदेवं यथा पट उत्पद्यमान एवोत्पन्नस्तथैवासङ्घातसमयपरिमाणत्वादुदयावलिकाया आदिसमयात्प्रभृति चलदेव कर्म्म चलितं, कथं? यतो यदि हि तत्कर्म चलनाभिमुखीभूतमुदयावलिकाया आदिसमय एव न चलितं स्यात्तदा तस्याद्यस्य चलनसमयस्य वैयर्थ्यं स्यात् तत्राचलितत्वात्, यथा च तस्मिन् समये न चलितं तथा द्वितीयादिसमयेष्वपि न चलेत्, को हि तेषामात्मनि रूपविशेषो? येन प्रथमसमये न चलितमुत्तरेषु चलतीति, अतः सर्वदैवाचलनप्रसंगः, अस्ति चान्त्यसमये चलनं, स्थितेः परिमितत्वेन कर्माभावाभ्युपगमाद्, अत आवलिकाकालादिसमय एव किञ्चिच्चलितं, यच्च तस्मिंश्चलितं तच्चोत्तरेषु समयेषु न चलति, यदि तु तेष्वपि तदेवाद्यं चलनं भवेत्तदा तस्मिन्नेव चलने सर्वेषामुदयावलिकाचलनसमयानां क्षयः स्यात्, यदि हि तत्समयचलननिरपेक्षाण्यन्यसमयचलनानि भवन्ति तदोत्तरचलनानुक्रमणं युज्येत नान्यथा, तदेवं चलदपि तत्कर्म चलितं भवतीति। (वृ०-प० १५)

७१. उदीरिज्जमाणे उदीरिए?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७२. कर्म उदय न आव्यो, ते घणै आगमियै काल।
भोगविवो होस्यै, कर्म दलिक ते न्हाल॥

७३. विशिष्ट अध्यवसाय करि, उदय आणै कर्म-राश।
असंखेज्ज समयवर्ती, कहीजै उदीरणा तास॥

७४. उदीरवा मांड्यो, प्रथम समये राश।
तसुं उदीर्यूं कहीजै, पट दृष्टांत विमास॥

वा०—उदीरिज्जमाणे—उदीरणा कहितां जे कर्म्म उदय आव्यो नथी, घणै आगमिये कालै वेदीजसै, पिण ते कर्म उदीरणा करिकै उदय आविवा जोग्य छै तेह कर्म्म नो शुभाध्यवसाय लक्षण करणे आकर्षी उदय आणियै, ते उदीरणा। ते असंख्यात हीज समय वर्तै। तिणै उदीरणाए प्रथम समय उदीरिवा मांड्यो कर्म्म पूर्वोक्त पट दृष्टांते करी उदीरिओ कहिवाइं।

७२-७४. उदीरणा नाम उदयाप्राप्तं चिरेणाऽऽगामिना कालेन यद्वेदयितव्यं कर्मदलिकं तस्य विशिष्टाध्यवसायलक्षणेन करणेनाकृष्योदये प्रक्षेपणं सा चासंख्येयसमयवर्त्तिनी तया चपुनरुदीरणया उदीरणाप्रथमसमय एवोदीर्यमाणं कर्म्म पूर्वोक्तपटदृष्टान्तेनोदीरितं भवति।
(वृ०-प० १५, १६)

७५. *वेदवूं भोगविवूं, उदय आव्यो कर्म जेह।
तथा उदीरणा करि, उदय आणै कर्म तेह॥

७६. ते असंख समय लग, आदि समय तसुं लीजै।
जे वेदवा मांड्यू, वेद्यूं तास कहीजै॥

वा०—वेदनं कहितां कर्म नुं भोगविवूं, ते वेदनीं स्थिति नां क्षय थकी उदय आयां कर्म नैं अथवा उदीरणा करिवै करी उदय आण्या कर्म नों वेदवूं हुवै ते वेदना काल ना असंख्यात समयपणा थकी प्रथम समय वेदवा लागो ते वेद्यो कहियै।

७५, ७६. वेदिज्जमाणे वेदिए?
वेदनं—कर्मणो भोगः, अनुभव इत्यर्थः, तच्च वेदनं स्थितिक्षयादुदयप्राप्तस्य कर्मण उदीरणाकरणेन वोदयमुपनीतस्य भवति, तस्य च वेदनाकालस्यासंख्येयसमयत्वादाद्यसमये वेद्यमानमेव वेदितं भवति।
(वृ०-प० १६)

७७. प्रकर्षे हीणो, पडवा लागो ताय।
तसुं हीणो पडियो, प्रथम समय कहिवाय॥

७७. पहिज्जमाणे पहीणे?

सोरठा

७८. जीव प्रदेश-संघात, भिन्यूं कर्म छै तेहनूं।
तेहथी पडिवूं थात, ए पिण समय असंख लग॥

७९. ए पिण धुर समयेह, तजवा लागूं कर्म ते।
तज्यूं कहीजै तेह, प्रहीयमान प्रहीण ते॥

८०. *जे छेदवा मांड्यूं, छेद्यूं तास वदंत।
कर्म दीर्घ काल स्थिति, थोड़ो काल करंत॥

८१. अपवर्त्तन नामज करण विशेष करेह।
ते पिण जे छेदवूं, समय असंखिज्ज लेह॥

८२. तसुं आदि समय में, स्थिती थकी अवलोय।
छिज्जमाण कर्म ते, छेद्यूं कहियै जोय॥

८३. जे भेदवा मांड्यूं, भेद्यूं कहीजै तास।
रस नीं अपेक्षाए, शुभ अशुभ कर्म-राश॥

७८, ७९. प्रहाणंतु—जीवप्रदेशैः सह संश्लिष्टस्य कर्मणस्तेभ्यः पतनम्, एतदप्यसंख्येयसमयपरिमाणमेव, तस्य तु प्रहाणस्यादिसमये प्रहीयमाणं कर्म प्रहीणं स्यादिति।
(वृ०-प० १६)

८०-८२. छिज्जमाणे छिण्णे?
छेदनं तु—कर्मणो दीर्घकालानां स्थितीनां ह्रस्वताकरणं, तच्चापवर्तनाभिधानेन करणविशेषेण करोति, तदपि च छेदनमसंख्येयसमयमेव, तस्य त्वादिसमये स्थितितस्तच्छिद्यमानं कर्म्म छिन्नमिति। (वृ०-प० १६)

८३-८५. भिज्जमाणे भिण्णे?
भेदस्तु—कर्म्मणः शुभस्याशुभस्य वा तीव्ररसस्यापवर्त्तना-

*नमूं ए अनन्त चौबीसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८४. तीव्र रस नैं मंद करै, अपवर्त्तन - करणेन ।
मंद रस नैं तीव्र करै, करण - उद्वर्त्तेन ।।

करणेन मन्दताकरणं, मन्दस्य चोद्वर्त्तनाकरणेन तीव्रताकरणं, सोऽपि चासंख्येयसमय एव, ततश्च तदाद्यसमये रसतो भिद्यमानं कर्म भिन्नमिति । (वृ०-प० १६)

८५. ते पिण जे भेदवूं, समय असंखिज्ज जन्त ।
धुर समय रस थकी, भिज्जमाण कर्म भिन्न ।।

८६. दहिवा मांड्यूं ते, दह्यूं कहीजै सोय ।
कर्म रूप काष्ठ नैं, ध्यान अग्नि करि जोय ।।

८६. दज्झमाणे दड्ढे ?
८६-८६. दाहस्तु—कर्म्मदलिकदारूणां ध्यानाग्निना तद्रूपापनयनमकर्म्मत्वजननमित्यर्थः, यथा हि काष्ठस्याग्निना दग्धस्य काष्ठरूपापनयनं भस्मात्मना च भवनं दाहस्तथा कर्म्मणोऽपीति, तस्याप्यन्तर्मुहूर्त्तवर्त्तित्वेनासंख्येयसमयस्यादिसमये दह्यमानं कर्म दग्धमिति ।
(वृ०-प० १६)

सोरठा

८७. कर्म दलिक कठ जेह, ध्यानाग्नि करि दाह तसुं ।
कर्म-दल भस्म करेह, अकर्मपणुं समुप्पजै ।।

८८. जिम दारुक नैं जेह, अग्नि करी नैं बालियां ।
काष्ठ रूप न रहेह, भस्म रूप ह्वै दाह ते ।।

८९. तिम कर्म नों पिण दाह, अंतर्मुहूर्त्तपणै करी ।
समय असंखिज्ज आह, दज्झमाण दग्ध धुर समय ।।

९०. *मरवा मांड्यूं ते, मर्यूं कहीजै जेह ।
ए आयु कर्म नां, पुद्गल नों क्षय एह ।।

९०, ९१. मिज्जमाणे मए ?
म्रियमाणमायुः कर्म्ममृतमिति व्यपदिश्यते, मरणं ह्यायुः पुद्गलानां क्षयः तच्चासङ्ख्येयसमयवर्त्ति भवति, तस्य च जन्मनः प्रथमसमयादारभ्यावीचिकमरणेनानुक्षणं मरणस्य भावान्म्रियमाणं मृतमिति । (वृ०-प० १६)

९१. धुर समय जन्म थी, आवीचीमरण अपेक्षाय ।
समय समय मरंतो, म्रियमाणे मृत न्याय ।।

९२. निर्जरिवा लागो, निर्जर्यूं ते थयुं क्षीन ।
ए जीव प्रदेश थी, कर्म बेगला कीन ।।

९२, ९३. निज्जरिज्जमाणे निज्जिण्णे ?
निर्जीर्यमाणं—नितरामपुनर्भावेन क्षीयमाणं कर्म निर्जीर्ण—क्षीणमिति व्यपदिश्यते, निर्जरणस्यासंख्येयसमयभावित्वेन तत्प्रथम समय एव पटनिष्पत्तिदृष्टान्तेन निर्जीर्णत्वस्योपपद्यमानत्वादिति, पटदृष्टान्तश्च सर्वपदेषु सभावनिको वाच्यः । (वृ०-प० १६)

९३. असंखेज्ज समयवर्त्ति, पट दृष्टांते ताय ।
ए बोल नवूं ही, सगलै कहिवो न्याय ।।

९४. तदेवमेतान्नव प्रश्नान् गौतमेन भगवता भगवान् महावीरः पृष्टः । (वृ०-प० १६)

९४. ए गौतम स्वामी, वीर प्रतै धर प्रेम ।
नव प्रश्न पूछ्या, तिहां वृत्तिकार कह्यूं एम ।।

९५. अथ कस्माद् भगवन्तं गौतमः पृच्छति ? विरचितद्वादशाङ्गतया विदितसकलश्रुतविषयत्वेन निखिलसंशयातीतत्वेन च सर्वज्ञकल्पत्वात्तस्य । (वृ०-प० १६)

९५. द्वादश अंग विरचित, सर्व श्रुत ना जाण ।
सर्वज्ञ तुल्य ए, किम पूछ्या गुणखाण ।।

९६. उक्तगुणत्वेऽपि छद्मस्थतयाऽनाभोगसम्भवात् ।
(वृ०-प० १६)

९६. गुणवंत इसा पिण, छद्मस्थपणां नैं योग ।
अजाणपणां नों, संभव तास प्रयोग ।।

९७. यस्माज्ज्ञानावरणं ज्ञानवरणप्रकृति कर्म इति, अथवा जानत एव तस्य प्रश्नः संभवति । (वृ०-प० १६)

९७. ज्ञानावरणी नों, प्रकृति उदय सुजोय ।
तथा जाणता पिण केइ, प्रश्न पूछै सोय ।।

*लय—नमूं अनन्त चौबीसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९८. तथा अजाण लोक नैं, समझावण वर नीत।
शिष्यां नैं निज वच नीं, उपजावण परतीत॥

९८, ९९. अज्ञलोकबोधनार्थं शिष्याणां वा स्ववचसि प्रत्ययोत्पादनार्थं सूत्ररचनाकल्पसंपादनार्थं वेति।
(वृ०-प० १६)

९९. तथा सूत्र नी रचना, निपजावा संपेख।
श्री गौतम प्रभु नैं, पूछ्या प्रश्न अनेक॥

१००. जिन उत्तर दे इम, हंता गोयमा! वाण।
हंत कोमलामंत्रण, दीर्घ मागध देशी जाण॥

१००. हंता गोयमा! हन्तेति कोमलामन्त्रणार्थः, दीर्घत्वं च मागधदेशीप्रभवमुभयत्रापि। (वृ०-प० १६)

१०१. चलमाणे चलिए, इत्यादि प्रत्युच्चार।
जिम गौतम पूछ्यो, तिम हिज उत्तम सार॥

१०१. चलमाणे चलिए... [श० १।११]
चलमाणे इत्यादेः प्रत्युच्चारणं तु चलदेव चलितमित्यादीनां स्वानुमतत्वप्रदर्शनार्थम्। (वृ०-प० १६)

१०२. वृत्तिकार कह्यो वलि, वृद्धा इम आखंत।
हंत शब्द तणो अर्थ, इमहिज एह सुतंत॥

१०२, १०३. वृद्धाः पुनराहुः—'हंता गोयमा' इत्यत्र 'हन्ते' ति एवमेतदिति अभ्युपगमवचनः, यदनुमतं तत्प्रदर्शनार्थं। (वृ०-प० १६)

१०३. अंगीकार नैं अर्थे, हंत शब्द कहिवाण।
पछै जिन नव पद कह्या, आज्ञा अर्थे जाण॥

१०४. ए नवूंइ पदां नों, कर्म तणैं अधिकार।
प्रश्न नैं उत्तर, आख्या अधिक उदार॥

१०४. एवमेतानि नव पदानि कर्माधिकृत्य वर्त्तमानातीतकालसामानाधिकरण्यजिज्ञासया पृष्टानि निर्णीतानि च। (वृ०-प० १६)

१०५. वलि गौतम पूछै, नव पद हे भगवंत!
मांहोमांहि एकार्थक, स्यूं तुल्य अर्थ कहंत?॥

१०५, १०६. एए णं भंते! नव पदा किं एगट्ठा नाणाघोसा नाणावंजणा?

१०६. णाणा - घोसा ते, घोष नाना प्रकार।
णाणा - वंजणा ते, अक्षर जुजुआ सार?॥

१०७. उदाहु पाठ ते, विकल्प अर्थ निपात।
अथवा नव पद नों, जूजूओ अर्थ विख्यात?॥

१०७, १०८. उदाहु नाणट्ठा नाणाघोसा नाणावंजणा?

१०८. जूजूआ घोष छै, अक्षर नाना प्रकार।
तिहां वृत्तिकार इम, कही चौभंगी सार॥

१०९. केइ एक - अर्थ है, व्यंजन पिण छै एक।
जिम क्षीरं क्षीरं, इत्यादिक सुविशेख॥

१०९. तत्र कानिचिदेकार्थानि एकव्यञ्जनानि यथा क्षीरं क्षीरमित्यादीनि। (वृ०-प० १७)

११०. तथा एक-अर्थ पिण, जुजुआ व्यंजन जाण।
जिम क्षीर अनैं पय, इत्यादिक पहिछाण॥

११०. तथाऽन्यानि एकार्थानि नानाव्यञ्जनानि यथा क्षीरं पय इत्यादीनि। (वृ०-प० १७)

१११. तथा अनेक अर्थ पिण, व्यंजन एक विचार।
गाय भैंस आक नों, क्षीर चतुर! अवधार।

१११. तथाऽन्यान्यनेकार्थान्येकव्यञ्जनानि यथाऽर्कगव्यमाहिषाणि क्षीराणि। (वृ०-प० १७)

११२. तथा अनेक अर्थ वलि, जुजूआ व्यंजन जाण।
जिम घट पट नैं स्तंभ, कुंभ प्रमुख पहिछाण॥

११२. तथाऽन्यानि नानार्थानि नानाव्यञ्जनानि यथाघटपटलकुटादीनि। (वृ०-प० १७)

११३. इहां गौतम प्रश्न, पूछ्यो तिण में ताहि।
दूजो नैं चौथो, भांगो पाठ रै मांहि॥

११३. तदेवं चतुर्भंगीसंभवेऽपि द्वितीयचतुर्थभंगकौ प्रश्नसूत्रे गृहीतौ। (वृ०-प० १७)

११४. चलनादिक चिहुं पद, दूजै भांगै देख।
छिन्नमाणादि पंच पद, चौथै भांगै पेख॥

११४. चलनादीनि चत्वारि पदान्याश्रित्य द्वितीयः, छिद्यमानादीनि तु पञ्च पदान्याश्रित्य चतुर्थ इति। (वृ०-प० १७)

११५. प्रभु उत्तर दे इम, सांभल गौतम शीस।
चलवा लागो ते, कहीजै चल्यूं जगीस॥

११५-११८. गोयमा! चलमाणे चलिए, उदीरिज्जमाणे उदीरिए, वेदिज्जमाणे वेदिए, पहिज्जमाणे पहीणे—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११६. उदीरवा मांड्यो, तास उदीरयो कहीजै।
वेदवा मांड्यो जे, वेद्यो तास वदीजै॥

११७. हीणो थावा मांड्युं, हीण थयुं कहिवाय।
ए पद च्यारूंई, एक अर्थ मांहोमांय॥

११८. णाणा घोसा ते, घोष जूजूआ जाण।
वलि नाना व्यंजन, जूजूआ अक्षर पिछाण॥

११९. उप्पन्नपक्खस्स[1], उत्पन्न ते उत्पाद।
तसुं पक्ष अंगीकृत, पर्याय अर्थ इक साध॥

१२०. अथवा ए च्यारूंइ, अंतर्मुहूर्त्त भादि।
तुल्य काल छै ते भणी, एक अर्थ विधि आदि॥

१२१. उत्पाद नाम ते, वर पर्याय विशिष्ट।
केवल उपजवूं, तेहिज ए इहां इष्ट॥

१२२. कर्म - चिंताधिकारे, कर्म-क्षये फल दोय।
इक केवलज्ञानं, द्वितिय मोक्ष पद जोय॥

१२३. तिहां ए च्यारूं पद, केवल नों उत्पाद।
तेह वेला आश्री, एक अर्थ वर साध॥

१२४. जीव कदेय न पायो, केवलज्ञान - पर्याय।
ते भणी मुख्य ए, तिण अर्थे विधि वाय॥

१२५. ते केवल ज्ञान नों, ऊपजवो - सुपर्याय।
अंगीकार कियो इहां, हिवै चिहुं एकार्थ न्याय॥

१२६. अनुक्रम तेहनुं इम, कर्म चल्युं जे जांण।
तेहिज उदय आव्यूं, तेहिज वेद्यूं थयुं हांण॥

एए णं चत्तारि पदा एगट्ठा णाणाघोसा णाणावंजणा।

११९. उप्पण्णपक्खस्स
उत्पन्नपक्षेण---उत्पादांगीकारेण---उत्पादाख्यं पर्यायं परिगृह्य एकार्थान्येतान्युच्यन्ते। (वृ०-प० १७)

१२०. अथवा सर्वेषामेषामुत्पादमाश्रित्यैकार्थकारित्वादेकान्तर्मुहूर्त्तमध्यभावित्वेन तुल्यकालत्वाच्चैकार्थिकत्वमिति भावः। (वृ०-प० १७)

१२१. न पुनरुत्पादाख्यः पर्यायो विशिष्टः केवलोत्पाद एव। (वृ०-प० १७)

१२२. कर्मचिन्तायां कर्मणः प्रहाणेः फलद्वयं केवलज्ञानमोक्षप्राप्ती। (वृ०-प० १७)

१२३. तदेतानि पदानि केवलोत्पादविषयत्वादेकार्थान्युक्तानि। (वृ०-प० १७)

१२४, १२५. यस्मात् केवलज्ञानपर्यायो जीवेन न कदाचिदपि प्राप्तपूर्वः यस्माच्च प्रधानस्ततस्तदर्थ एव पुरुषप्रयासः, तस्मात्स एव केवलज्ञानोत्पत्तिपर्यायोऽभ्युपगतः। (वृ०-प० १७)

१२६. एषां च पदानामेकार्थानामपि सतामयमर्थः सामर्थ्यप्रापितक्रमः, यदुत---पूर्वं तच्चलति---उदेतीत्यर्थः, उदितं च वेद्यते, अनुभूयत इत्यर्थः। (वृ०-प० १७)

१. 'चलमाणे चलिए' इस पाठ से गौतम ने भगवान् महावीर के सामने नौ प्रश्न उपस्थित किए हैं। इन नौ प्रश्नों में प्रथम चार पदों को भिन्नार्थक माना गया है, शेष पांच पदों को एकार्थक। जबकि एक दृष्टि से ये सभी एक ही अर्थ के वाहक हो सकते हैं, अथवा सर्वथा भिन्न-भिन्न अर्थबोध दे सकते हैं। यहां जो दो विभाग किए हैं, वे एक विशेष विवक्षा से किए हैं। उस विवक्षा के अनुसार दो प्रकार की पर्यायें होती हैं—उत्पाद पर्याय और व्यय पर्याय। प्रथम चार पद उत्पाद पर्याय की अपेक्षा से हैं। इनमें केवलज्ञान की उत्पत्ति को लक्ष्य किया गया है। कर्मों के चलित, उदीरित और वेदित होकर हीन होने से ही केवलज्ञान की उत्पत्ति होती है। जो कर्म चलित हुआ उसी की उदीरणा होगी उसी का वेदन होगा और वही क्षीण होगा। इसलिए ये सब शब्द समानार्थक हैं।

अग्रिम पांच पद—छेदन, भेदन, दहन, मरण और निर्जरण हैं। इनका प्रतिपादन व्यय पक्ष की अपेक्षा से है। उत्पाद पक्ष का सम्बन्ध केवलज्ञान से है और व्ययपक्ष का मोक्ष से। इसमें कर्मों के छेदन, भेदन आदि से जो अवस्था प्राप्त होती है वह मोक्ष से पहले की अवस्था है इसीलिए इन पांचों पदों को भिन्न-भिन्न अर्थों का वाचक माना गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२७. तिण कारण चिउं पद, एक अर्थ कहिवाय।
हिव शेष पंच पद, निसुणो तेहनो न्याय॥

१२८. छेदवा मांड्यूं जे, छेद्यो तास कहीजै।
भेदवा मांड्यूं जे, भेद्यो तास वदीजै॥
१२९. दहिवा मांड्यूं जे, दह्यूं कहीजै तास।
मरवा मांड्यूं जे, मरचो कहीजै जास॥
१३०. निर्जरिवा मांड्यूं, निर्जर्यूं तेक हिवाय।
ए पंच पदां नां, नाना अर्थ सुथाय॥
१३१. वलि घोष उदात्तादि, ते पिण जुजुआ जोय।
व्यंजन अक्षर पिण, जुआ जुआ अवलोय॥
१३२. विगयपक्खस्स , विगम ते वस्तु-विनाश।
ते अन्य अवस्था-पक्ष अंगीकृत तास॥
१३३. जीव कदेय न पायो, सर्व कर्म नो अभाव।
ते विगत नास इहां, कर्म चिंता प्रस्ताव॥
१३४. तिण सूं उपादेय अति, ए पांचू अभिराम।
अर्थ जुदा जुदा ते, कहियै हिव सुख धाम॥
१३५. छिज्जमाण ते छेद्यूं, स्थिति - बंध अपेक्षाय।
सजोगी जिन अंते, जोग निरोध कराय॥
१३६. नाम गोत्र वेदनी, तीनू कर्म नी तास।
प्रकृति जे बंधी, दीर्घकाल कर्म-राश॥
१३७. अपवर्त्तन - करण करि, अंतर्मुहूर्त्त प्रमाण।
स्थिति अल्प करै ते, ए छिज्जमान छिन्न जाण॥
१३८. भिद्यमाण ते भेद्यूं, अनुभाग-बंध अपेक्षाय।
तेहीज केवली, जोग निरोध कराय॥
१३९. स्थिति-घात करै जद, तिणहिज काले जोय।
रस-घात पिण करता, तास मान अवलोय॥
१४०. ते रस-घात निकेवल, स्थिति खंड तें जाण।
अनंत गुण अधिका, न्याय हिया में आण॥
१४१. तिण कारण आख्यो, रस - घात करणेन।
पूरव पद सेती, भिन्न अर्थ पद येन॥
१४२. दह्यमानं दग्धं, प्रदेश-बंध अपेक्षाय।
अनंत प्रदेशिक, खंध अनंता ताय॥
१४३. तनु कर्मरूप आपादन—परिणति जोय।
ते प्रदेश-बंध कर्म, अजोगी रै पिण होय॥
१४४. पंच ह्रस्व अक्षर, उच्चारण काल प्रमाण।
असंखेज्ज समय करि, गुण-श्रेणि रचना जाण॥

१२७. चत्वारि चलनादीनि पदान्येकार्थिकानीत्युक्ते शेषाण्यनेकार्थिकानीति सामर्थ्यादवगतमपि सुखावबोधया साक्षात्प्रतिपादयितुमाह— (वृ०-प० १७)
१२८-१३०. छिज्जमाणे छिण्णे, भिज्जमाणे भिण्णे, दज्झमाणे दड्ढे, मिज्जमाणे मए, निज्जरिज्जमाणे निज्जिण्णे— एए णं पंच पदा नाणट्ठा नाणाघोसा नाणावंजणा

१२३. विगयपक्खस्स (श० १।१२)
१३२-१३४. विगयपक्खस्सत्ति, विगतं विगमो --वस्तुनोऽवस्थान्तरापेक्षया विनाशः, स एव पक्षो—वस्तुधर्मः... विगतत्वं च्विहाणेषकर्माभावोऽभिमतो, जीवेन तस्याप्राप्तपूर्वतयाऽत्यन्तमुपादेयत्वात्। (वृ०-प० १८)

१३५-१३७. छिद्यमानं छिन्नमित्येतत्पदं स्थितिबन्धार्थकं, यतः सयोगिकेवली अन्तकाले योगनिरोधं कर्तुकामो वेदनीयनामगोत्राख्यानां तिसृणां प्रकृतीनां दीर्घकालस्थितिकानां सर्वापवर्तनयाऽन्तर्मौहूर्तिकं स्थितिपरिमाणं करोति। (वृ०-प० १७)

१३८-१४१. तथा भिद्यमानं भिन्न' मित्येतत्पदमनुभागबन्धार्थकं, तत्र चायस्मिन् काले स्थितिघातं करोति तस्मिन्नेव काले रसघातमपि करोति, केवलं रसघातः स्थितिखण्डकेभ्यः क्रमप्रवृत्तेभ्योऽनन्तगुणाभ्यधिकः, अतोऽनेन रसघातकरणेन पूर्वस्माद् भिन्नार्थपदं भवति। (वृ०-प० १७)

१४२-१४८. 'दह्यमानं दग्ध' मित्येतत्पदं प्रदेशबन्धार्थकं, प्रदेशबन्धस्त्वनन्तानन्तप्रदेशानां स्कन्धानां कर्मत्वापादनं, तस्य च प्रदेशबन्धकर्मणः सत्कानां पञ्चह्रस्वाक्षरोच्चारणकालपरिमाणयाऽसङ्ख्यातसमयया गुणश्रेणीरचनया पूर्वरचितानां शैलेश्यवस्थाभावि-समुच्छिन्नक्रियध्यानाग्निना प्रथमसमयादारभ्य यावदन्त्यसमयस्तावत्प्रतिसमयं क्रमेणासंख्येयगुणवृद्धानां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४५. एहवी पूर्व रचित नैं, शैलेशि अवस्था भावि।
समुछिन्नक्रिय वर, ध्यान अग्नि करि सावि॥

१४६. प्रथम समय थी मांडी, अंत समय लग ताह।
प्रति समय असंख-गुण वृद्ध, कर्म दल दाह॥

१४७. तिण सूं दहन अर्थ करि, ए पिण पद पहिछाण।
पूरव पद सेती, भिन्न अर्थ पद जाण॥

१४८. बले अन्य स्थानके, दाह अन्यथा आख्यो।
शिव चिताधिकारे, कर्म विषै इहां दाख्यो॥

१४९. म्रियमाण मृत ए, आयु कर्म अपेक्षाय।
आयु पुद्गल नों, समय समय क्षय थाय॥

१५०. तिण सूं मरण अर्थ कर, ए पिण पद पहिछाण।
पूरव पद सेती, भिन्न अर्थ पद जाण॥

१५१. कर्म रहै जिहां लग, आयु बले जीवंत।
ते कर्म क्षय कीधां, मरण वचन उचरंत॥

१५२. विशिष्ट ईज इहां, मरण कियो अंगीकार।
संसार विषै जीव, मुओ अनंती वार॥

१५३. बलि मरण न होवै, सर्व कर्म क्षय साथ।
शिव हेतुभूत ए, वळ्यो पद विख्यात॥

१५४. निर्जरिवा लागो, निर्जर्यूं ए पद न्याय।
सहु कर्म क्षय आश्री, फेर उदै नहिं आय॥

१५५. जीव कदेय न पायो, सर्व कर्म नों नास।
तिण सूं पूर्व पद सूं, भिन्न अर्थ ए तास॥

१५६. हिव एहीज नव पद, विशेष थी सुविचार।
नाना अर्थ छै पिण, इहां सामान्य प्रकार॥

१५७. छिद्यमान पदे स्थिति-खंड विगम कहिवाय।
भिद्यमान पदे अनुभाव भेद विगमाय॥

१५८. दह्यमान पदे बलि, अकर्मपणै विगमाव।
म्रियमाण पदे फुन, विगम आयु नों अभाव॥

१५९. निर्जरिज्जमाण पद, सर्व कर्म नों अभाव।
ए पिण विगमपणो इम, ए विगतपक्ष नो न्याव॥

१६०. बले अन्य आचारज, चलणादि नव पद प्राय।
सामान्यपणै कहै, न कहै कर्म अपेक्षाय॥

१६१. कहै सूत्र विषै तो, कर्म तणां नहि नाम।
तसुं कर्म अपेक्षया, एकांत न कहै ताम॥

१६२. चलमाणे चलिए, चलन अस्थिरपणुं आद।
पर्याय करि नैं, वस्तु नों उत्पाद॥

कर्मपुद्गलानां दहनं-दाहः, अनेन च दहनार्थेनेदं पूर्वस्मात्पदाद् भिन्नार्थपदं भवति, दाहश्चान्यत्रान्यथा रूढोऽपीह मोक्षचिन्ताऽधिकारान्मोक्षसाधन उक्त-लक्षणकर्मविषय एव ग्राह्य इति। (वृ०-प० १७, १८)

१४९-१५३. 'म्रियमाणं मृत' मित्येतत्पदमायुःकर्म्मविषयं, यत आयुष्कपुद्गलानां प्रतिसमयं क्षयो मरणम्, अनेन च मरणार्थेन पूर्वपदेभ्यो भिन्नार्थत्वाद् भिन्नार्थं पदं भवति। तथा 'म्रियमाण मृत' मित्यनेनायुः कर्मैवोक्तं, यतः कर्मैव तिष्ठज्जीवतीत्युच्यते, कर्मैव च जीवादपगच्छत् म्रियत इत्युच्यते, तच्च मरणं सामान्येनोक्तमपि विशिष्टमेवाभ्युपगन्तव्यं, यतः संसारवर्त्तीनि मरणानि अनेकशोऽनुभूतानि, इह पुनः पदेऽनुभवमरणमन्त्यं सर्वकर्म्मक्षयसहचरितमपवर्गहेतुभूतं विवक्षितमिति। (वृ०-प० १८)

१५४, १५५. तथा 'निर्जीर्यमाणं निर्जीर्ण' मित्येतत्पदं सर्वकर्माभावविषयं, यतः सर्वकर्मनिर्जरणं न कदाचिदप्यनुभूतपूर्वं जीवेनेति, अतोऽनेन सर्वकर्माभावरूपनिर्जरणार्थेन पूर्वपदेभ्यो भिन्नार्थत्वाद् भिन्नार्थं पदं भवति। (वृ०-प० १८)

१५६. अथैतानि पदानि विशेषतो नानार्थान्यपि सन्ति सामान्यतः कस्य पक्षस्याभिधायकतया प्रवृत्तानि। (वृ०-प० १८)

१५७-१५९. छिद्यमानपदे हि स्थितिखण्डनं विगम उक्तः, भिद्यमानपदे त्वनुभावभेदो विगमः, दह्यमानपदे त्वकर्मताभवनं विगमः, म्रियमाणपदे पुनरायुःकर्माभावो विगमः, निर्जीयमाणपदे त्वशेषकर्माभावो विगमः उक्तः, तदेवमेतानि विगतपक्षस्य प्रतिपादकानीत्युच्यन्ते। (वृ०-प० १८)

१६०. अन्ये तु कर्मेतिपदस्य सूत्रेऽनभिधानाच्चलनादिपदानि सामान्येन व्याख्यान्ति, न कर्मापेक्षयैव। (वृ०प०१९)

१६२. 'चलमाणे चलिए' त्ति, इह चलनम्—अस्थिरत्वपर्यायेण वस्तुन उत्पादः। (वृ० प० १८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६३. उदीरिए उदीरवो, स्थिर नों प्रेरवो ताम।
ते पिण चलवोइज, कहियै पर्याय नाम॥

१६४. वेइज्जमाण कंपमान, एजृ कंपने साध।
व्येजन पिण कंपवो, तद्रूप अपेक्षा उत्पाद॥

१६५. पहिज्जमाण ते, पडिवो तेह प्रहीण।
ते पिण चलवोइज, एक अर्थ चिहुं लीण॥

१६६. गति अर्थ चिहुं नों, चलणपणां नों पर्याय।
तिण करिकै उप्पन्न- पक्ष लक्षण मांहोमांय॥

१६७. छेद, भेद, दाह, मरण, निर्जरिवो ए पंच।
अकर्म अर्थ पिण, भिन्न अर्थपणुं संच॥

१६८. कुहाडादिक करिकै, लतादि विषयच्छेद।
बाणादिक करिकै, शरीरादिक नों भेद॥

१६९. बलि अग्नि करीनै, दार्वादि दाह पिछाण।
मरण प्राण - त्याग ते, निर्जर थाय पुराण॥

१७०. विगय - पक्ष ते, भिन्न अर्थ प्रत्यक्ष।
सामान्य थकी ए, विगत विनाश तसुं पक्ष॥

१७१. ए न्याय वृत्ति थी, आख्यो म्हे अधिकार।
नव पद सूत्रे तो, छै संक्षेप उदार॥

१७२. वर नव पद वर्णन, तीजी ढाल रसाल।
भिक्षु भारीमाल नृप, 'जय-जश' संपति न्हाल॥

१६३. 'उदीरिज्जमाणे उदीरिएत्ति' इहोदीरणं स्थिरस्य सतः प्रेरणं, तदपि चलनमेव। (वृ०-प० १८)

१६४. 'वेइज्जमाणे वेइएत्ति' व्येजमानं कम्पमानं व्येजितं कम्पितम्, 'एजृकम्पने' इति वचनात्, व्येजनमपि तद्रूपापेक्षयोत्पाद एव। (वृ०-प० १८)

१६५, १६६. 'पहिज्जमाणे पहीणे' त्ति 'प्रहीयमाणं' प्रभ्रश्यत् परिपतदित्यर्थः 'प्रहीणं' प्रभ्रष्टं परिपतितमित्यर्थः, इहापि प्रहाणं चलनमेव, चलनादीनां चैकार्थत्वं सर्वेषां गत्यर्थत्वात्। 'उप्पन्नपक्खस्स' त्ति चलत्वादिना पर्यायेणोत्पन्नत्वलक्षणपक्षस्याभिधायकान्येतानीति। (वृ०-प० १८)

१६७-१६९. छेदभेददाहमरणनिर्जरणान्यकर्मार्थान्यपि व्याख्येयानि, तद्व्याख्यानं च प्रतीतमेव, भिन्नार्थता पुनरेषामेवं—कुठारादिना लतादिविषयश्चछेदः, तोमरादिना शरीरादिविषयोभेदः, अग्निना दार्वादिविषयो दाहः, मरणं तु प्राणत्यागः, निर्जरा तु अतिपुराणीभवनमिति। (वृ०-प० १९)

१७०. 'विगयपक्खस्स' त्ति भिन्नार्थान्यपि सामान्यतो विनाशाभिधायकान्येतानीत्यर्थः। (वृ०-प० १९)

ढाल : ४

१. धुर बे प्रश्नोत्तर, मोक्ष चिताइं जगीस।
मोक्ष जीव भणी ह्वै, जीव दंडक चउवीस॥

२. तिहां नरकादिक नीं, स्थिति प्रमुख पहिछाण।
वर प्रश्न सूउत्तर, साभलजो सुविहाण॥

१, २. इह आद्ये प्रश्नोत्तरसूत्रद्वये मोक्षतत्त्वं चिन्तितं, मोक्षः पुनर्जीवस्य, जीवाश्च नारकादयश्चतुर्विंशतिविधाः... तत्र नारकांस्तावत् स्थित्यादिभिश्चिन्तयन्नाह— (वृ०-प० १९)

दूहा

३. हे भदंत ! पूज्य ! नरक नीं, किता काल नीं ताम।
स्थिति समुच्चय सातूं तणी ? पूछै गौतम स्वाम॥

४. वीर कहै सुण गोयमा ! दश सहंस वर्ष जघन।
स्थिति सागर तेतीस नी, उत्कृष्टपणै कथन॥

५. हे भदंत ! जीव नरक ना, किता काल सूं जान।
आण-प्राण लेवै अछै, उसास-निश्वास मान ?॥

३, ४. नेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। (श० १।१३)

५. नेरइया णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा ? पाणमंति वा ? ऊससंति वा ? णीससंति वा ? (श० १।१४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. आण ते सास ऊंचो लियै, प्राण अधो निश्वास।
अन प्राणने धातु है, मकार आगम तास॥

७. अन्य आचारज इम कहै, आण-प्राण ए ग्राह्य।
अभितर क्रिया कही, उसास-निश्वास बाह्य॥

८. जिम उसास पद में कह्यो, प्रश्न-उत्तर वच गद्य।
तिण प्रकार कहिवो सहु, पन्नवण - सप्तम-पद्य॥

९. उत्तर पन्नवण में इसो, अंतर रहित विमास।
आण-प्राण ले नेरिया, वलि उसास-निःश्वास॥

१०. पुनरुच्चारण वीर जिन, शिष्य वच आदर हेत।
गुरु आदर दीधे छते, शिष्य संतोष समेत॥

११. प्रश्न श्रवण रुचि वृद्धि ह्वै, गुरु-वच ह्वै आदेय।
भवि-उपकार सुतीर्थ वृद्धि, इम वृत्तिकार कहेय॥

१२. आहार प्रश्न हिव तेहनों, नेरइया हे भगवंत!
आहार तणा अर्थी अछै?, आहार वंछा उपजंत?॥

१३. पन्नवणपद अठवीस में, प्रथम उदेशे पेख।
आहार तणों अधिकार तिम, इहां कहिवो सुविशेख॥

१४. संग्रह अर्थे गाहा इहां, संग्रहणी सुविचार।
स्थिति उसास पूर्वे कह्या, ते पिण ग्रह्या उदार॥

१५. स्थिति उसास तो आखिया, तृतिय आहार अधिकार।
आभोग नै अणाभोग नों, कह्यो घणो विस्तार॥

१६. किं वाऽऽहारेति तिको, किं स्वरूप ले आहार?
द्रव्य क्षेत्र काल भाव थी, ए चोथो अधिकार॥

१७. सर्व थकी? ए पंचमो, सहु प्रदेश करि पेख।
इहां पिण छै विस्तार बहु, पन्नवणा थी देख॥

---

१. विआहपण्णत्ति (भगवती) गणधरकृत है। इसीलिए आगमों के वर्गीकरण में यह अंग आगम में आता है। 'पन्नवणा' उपांग है, इसलिए वह स्थविरों की रचना है। काल-क्रम की दृष्टि से गणधर स्थविरों से पूर्ववर्ती हैं, इसलिए विआहपण्णत्ति का ग्रन्थन पहले हुआ है। ऐसी स्थिति में प्रस्तुत आगम में 'पन्नवणा' सूत्र के लिए समर्पण नहीं होना चाहिए। पूर्व रचित सूत्र में उत्तरकालवर्ती सूत्र के समर्पण की कोई संगति नहीं है। पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह विपर्यास रचनाकाल का नहीं, लेखनकाल का है। संभव है, ग्रन्थ के विस्मृत अंशों के संकलन और लेखनकाल में 'पन्नवणा' पहले लिखा गया हो और विआहपण्णत्ति बाद में। संक्षेपीकरण की दृष्टि से पूर्व-लिखित आगम का संकेत अस्वाभाविक नहीं है। अथवा इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि मूलतः भगवती संक्षिप्त थी। संक्षिप्त प्रकरणों की पूर्णता के लिए उस विषय में अन्य आगमों में जहां जो सामग्री उपलब्ध हुई, उसे भगवती के साथ संयोजित करने के लिए पन्नवणा, औपपातिक आदि की भोलावण दे दी गई।

६. 'आणमंति' त्ति आनन्ति 'अन प्राणने' इति धातुपाठात् मकारस्यागमिकत्वात्। (वृ०-प० १६)

७. अन्ये त्वाहुः—'आनन्ति वा प्राणन्ति वा' इत्यनेनाध्यात्मक्रिया परिगृह्यते, 'उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा' इत्यनेन च बाह्येति। (वृ०-प० १६)

८. 'जहा ऊसासपए' त्ति, एतस्य प्रश्नस्य निर्वचनं यथा उच्छ्वासपदे प्रज्ञापनायाः सप्तमपदे तथा वाच्यं। (वृ०-प० १६)

९. 'गोयमा! सययं संतयामेव आणमंति वा पाणमंति वा ऊससन्ति वा नीससंति वा'। (पन्नवणा ७।१)

१०, ११. आनमन्तीत्यादेः पुनरुच्चारणं शिष्यवचने आदरोपदर्शनार्थं, गुरुभिरादियमाणवचना हि शिष्याः सन्तोषवन्तो भवन्ति, तथा च पौनःपुन्येन प्रश्नश्रवणार्थनिर्णयादिषु घटन्ते, लोके चादेयवचना भवन्ति, तथा च भव्योपकारस्तीर्थाभिवृद्धिश्चेति। (वृ०-प० २०)

१२. अथ तेषामेवाहारं प्रश्नयन्नाह— (वृ०-प० २०)
नेरइया णं भंते! आहारट्ठी। (श० १।१५)

१३. जहा पण्णवणाए पढमए आहारुद्देसए तहा भाणियव्वं— (१।१५)

१५-१९. ठिइ उस्सासाहारे, किं वाऽऽहारेंति सव्वओ वावि?
कतिभागं सव्वाणि व? कीस व भुज्जो परिणमंति?
(श० १।१५ संगहणी-गाहा)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. वलि कति भाग ? छठो प्रश्न, तेहनो कहूं विचार।
नारकी जे पुद्गल ग्रहै, आहारपणै अवधार॥

१९. ग्रहण काल पाछै तिको, उत्तर काले जेह।
कितो भाग जे आहार नों, आहारै आस्वादेह॥

२०. जिन कहै उत्तर काल में, असंख्यातमो भाग[1]।
आहारै इहां वृत्तिकार कह्यं, निसुणो धर अनुराग॥

२१. केयक इहां आखै इसो, गाय प्रमुख अवलोय।
प्रथम ग्रास मोटो ग्रहै, तिम केयक नों जोय॥

२२. पुद्गल आहार पणै ग्रह्यां, तसुं असंख भाग आहारंत।
अन्य पुद्गल अलगा पड़ै, केइक एम कहंत॥

२३. अन्य आचारज इम कहै, ऋजुसूत्र नय तैं होय।
असंख भाग आहारै अछै, तनुपणै परिणमै जोय॥

२४. गाय प्रमुख मोटो ग्रहै, प्रथम ग्रास जिम पेष।
ग्रह्या, तनु नहिं परिणम्या, नहिं वंछ्या ते शेष॥

२५. सरीरपणें जे परिणम्या, त्यां में पिण तत् जेह।
विशिष्ट आहार कार्ये ग्रह्यं, सुद्ध ऋजुसूत्रे तेह॥

२६. वलि अन्य आचारज इम कहै, असंख भाग आहारंत।
शरीरपणें जे परिणमै, तनुपणें शेष न हुंत॥

२७. असंख भाग जे परिणमै, आहारै कहीजै तास।
वर जिन वच प्रतीत सूं, अधिक न कहीजै जास॥

---

१. नारक जीव जो आहार ग्रहण करता है, उसका कितना भाग आहार रूप में परिणत होता है और कितना भाग व्यर्थ जाता है? इस प्रश्न के समाधान में वृत्तिकार ने तीन प्रकार की मान्यताओं का संकलन किया है।

प्रथम मान्यता के अनुसार गौ आदि पशु आहार ग्रहण करते हैं तो पहला ग्रास बहुत बड़ा लेते हैं। उसमें से अधिक भाग नीचे गिर जाता है और बहुत थोड़ा भाग वे खा पाते हैं। प्रथम गौ-ग्रास की भांति नैरयिक जीव भी जो आहार ग्रहण करते हैं, उसका असंख्यातवां भाग ही आहार रूप में उपयोग में ले पाते हैं।

दूसरा अभिमत ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा से व्याख्यात है। ऋजुसूत्र नय शुद्ध नय है। यह नय नैरयिक जीवों द्वारा प्रथम गौ-ग्रास की भांति आहृत और शरीर रूप में परिणत आहार को गृहीत या परिणत आहार नहीं मानता। किन्तु उसमें भी जो विशिष्ट कार्यकारी आहार है, मात्र उतने आहार को आहार रूप में परिणत मानता है।

तीसरे अभिमत के अनुसार जो आहार किया जाता है, उसका बहुत कम भाग शरीर रूप में परिणत होता है। शेष सारा आहार मल-मूत्र आदि के रूप में विसर्जित हो जाता है। इसलिए नैरयिक जीव गृहीत आहार के असंख्यातवें भाग को ही आहार रूप में परिणत करते हैं।

२१, २२. इत्यत्र केचिद्व्याचक्षते—गवादिप्रथमबृहद्ग्रास-ग्रहण इव कांश्चिद् गृहीतासङ्ख्येयभागमात्रान् पुद्गलानाहारयन्ति तदन्ये तु पतन्तीति। (वृ०-प० २२)

२३-२५. अन्ये त्वाचक्षते—ऋजुसूत्रनयदर्शनात्स्वशरीरतया परिणतानामसङ्ख्येयभागमाहारयन्ति, ऋजुसूत्रो हि गवादिप्रथमबृहद्ग्रासग्रहण इव गृहीतानां शरीरत्वेनापरिणतानामाहारतां नेच्छति, शरीरतया परिणतानामपि केषाञ्चिदेव विशिष्टाहारकार्यकारिणां तामभ्युपगच्छति, शुद्धनयत्वात्तस्येति। (वृ०-प० २२)

२६. अन्ये पुनरित्थमभिदधति—'असंखेज्जइभागमाहारेंति' त्ति शरीरतया परिणमन्ति, शेषास्तु किट्टीभूय मनुष्याभ्यवहृताहारवन्मलीभवन्ति, न शरीरत्वेन परिणमन्तीत्यर्थः। (वृ०-प० २२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८. आहारपणै ग्रह्या तेहनो, भाग अनंतमो जोय।
रस-इंद्रिय द्वारे करी, रस आस्वादन होय॥

२८. 'अणंतभागं आसाइंति' त्ति आहारतया गृहीतानामनन्त-भागमास्वादयन्ति, तद्रसादीन् रसनादीन्द्रियद्वारेणो-पलभन्ते इत्यर्थः। (वृ०-प० २२)

२९. तिण सुं भाग असंख्यातमो शरीरपणै परिणमंत।
आसादै भाग अनंतमो, इम वृत्तिकार कहंत॥

३०. रस इंद्रि ग्रहण आयां बिना, तनुपणै परिणमै बाध।
तिण सुं असंख भाग परिणमै, अनंत भाग आस्वाद॥

३१. सप्तम प्रश्न जे नारकी, आहारपणै परिणमंत।
सहु पुद्गल ते आहरै, कै नहिं सर्व आहारंत?॥

३२. जिन कहै ते सहु आहरै, विशिष्ट परिणम जोग।
तेहिज पुद्गल इहां ग्रह्या, उज्झित - शेष अयोग॥

३२. इह विशिष्टग्रहणगृहीता आहारपरिणामयोग्या एव ग्राह्याः, उज्झितशेषा इत्यर्थः। (वृ०-प० २२)

३३. अन्यथा पूर्वापर इहां, थावै सूत्र विरुद्ध।
टीकाकार कह्यो इसो, तेह अर्थ छै सुद्ध॥

३३. अन्यथा पूर्वापरसूत्रयोर्विरोधः स्यात्। (वृ०-प० २२)

३४. सूत्रे भाष्यूं तेहनीं, चालणा करवी नांहि।
दृष्टि प्रधान करी कथ्यूं, एम कह्यूं वृत्ति मांहि॥

३४. 'जं जह सुत्ते भणियं तहेव जइ तं वियालणा नत्थि।
किं कालियाणुओगो दिट्ठो दिट्ठिप्पहाणेहिं?(वृ०-प० २२)

३५. अष्टम प्रश्ने किणपणै, परिणमै आहार तदर्थ।
पंचेंद्रिय अनिष्टपणै, ए संग्रहणी-गाहा अर्थ॥

३६. वलि वृत्तिकार कहै इसो, संग्रहणी - गाहा जाण।
किणहिक परत मांहेज छै, न कही सर्व ठिकाण॥

३६. इदं च सङ्ग्रहणिगाथाविवरणसूत्रम् क्वचित् सूत्रपुस्तक एव दृश्यत इति। (वृ०-प० २३)

३७. आहार तणा अधिकार थी, प्रश्न च्यार हिव पेख।
पूछै गोयम गणहरू, सांभलजो सुविशेख॥

३७. अथ नैरयिकाऽऽहाराधिकारात्तद्विषयमेव प्रश्नचतुष्टय-माह— (वृ०-प० २३)

*जिन-वच वारूजी रे। (ध्रुपदं)

३८. हे भगवंत! नारकी नै स्यूं, पूरव काल पिछाणो जी रे।
पुद्गल खंध ग्रह्या आहर्या ते, परिणम्या तनु सह जाणो रे?॥

३९. तथा गये काल ग्रह्या आहरिया, वर्त्तमान वलि कालो।
आहारिज्जमाण ग्रहै आहरै ते, पुद्गल परणम्या न्हालो?॥

४०. तथा पूर्व काले न आहरिया, ग्रहस्ये अनागत कालो।
ते पुद्गल खंध परणम्या कहियै, तीजो प्रश्न निहालो?॥

४१. तथा पूर्व काले न संग्रह्या, अनागत पिण कालो।
संग्रहस्यै नहिं जे पुद्गल-खंध, ते परणम्या सुविशालो?॥

३८-४१. नेरइयाणं भंते! पुव्वाहारिया पोग्गला परिणया? आहारिया आहारिज्जमाणा पोग्गला परिणया? अणाहारिया आहारिज्जिस्समाणा पोग्गला परिणया? अणाहारिया अणाहारिज्जिस्समाणा पोग्गला परिणया?

४२. जिन कहै हे गौतम! जे नारक पूर्व काल पिछाणो।
पुद्गल-खंध ग्रह्या आहर्या ते, पूर्व परणम्या जाणो॥

४३. पूर्व संग्रह्या हिवडां संग्रहै, परणम्या परणमै जानो।
पूर्वे ग्रह्या ते पूर्व परणम्या, ग्रहै परणमै वर्त्तमानो॥

४२-४५. गोयमा! नेरइयाणं पुव्वाहारिया पोग्गला परिणया। आहारिया आहारिज्जमाणा पोग्गला परिणया, परिणमंति य। अणाहारिया आहारिज्जिस्स-माणा पोग्गला णो परिणया, परिणमिस्संति। अणाहा-

*लय—सयणां थइयै जी रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४४. पूर्व न ग्रह्या अनागत ग्रहस्यै, न ग्रह्या परणम्या नांही।
अनागत ग्रहस्यै जे पुद्गल, ते परणमस्यै त्यांही ॥
४५. पूर्व काल ग्रह्या नहिं पुद्गल, अनागत नहिं ग्रहस्यै।
पूर्व काले नहिं परिणमिया, अनागत नहि परिणमस्यै ॥

दूहा

४६. तनु पुद्गल परिणाम तैं, तास चयादिक होय।
ते देखाडण अर्थ हिव, प्रश्न करै अवलोय ॥

४७. *हे भगवंत ! नारकी नैं स्यूं, पूर्व काल पिछाणो।
पुद्गल-खंध ग्रह्या आहर्या तें, तनु चय थया सुजाणो ?॥

४८. जहा परिणया तहा चियावि, एवं चिया उवचिया।
उदीरिता वेदिता णिज्जिण्णा, इम पाठ भलावण किया ॥

४९. किणहि परत में पाठ सहु ए, आख्या करि विस्तारो।
वृत्तिकार कहै भर्म न करिवो, सर्वत्र तुल्य विचारो ॥

५०. चिता—शरीर विषै चय पाम्या, उपचित ते इम जाणो।
बहु प्रदेश शरीर विषै जे, वलि चय थया पिछाणो ॥

५१. उदीरणा—ते स्वभाव थी तो, कर्म उदै नवि आया।
करण-विशेष करी उदै आणी, वेदै तास कहाया ॥

५२. वेदिता—निज रस विपाक करिकै, समय-समय प्रति वेदै।
निर्जीर्णा ते चेतन तैं कर्म दूर थयां नहिं खेदै ॥

५३. परिणम्या चिया उवचिया उदीर्या, वेद्या नैं निर्जरिया।
इक-इक पद में चिहुं विध पुद्गल, ए अर्थ गाथा नुं धरिया ॥

दूहा

५४. पुद्गल ना अधिकार थी, आगल सूत्र अठार।
पूछै गोयम गणहरू, वीर प्रते सुविचार ॥

५५. *हे भगवंत ! नरक जीवां रै, पुद्गल किते प्रकारै।
भेद लहै रस तीव्र मंद कर, मंद तीव्रता धारै[1] ?॥

रिया अणाहारिज्जिस्समाणा पोग्गला णो परिणया, णो परिणमिस्संति। (श० १।१६)

४६. शरीरसंपर्कलक्षणपरिणामात्पुद्गलानां चयादयो भवन्तीति तद्दर्शनार्थं प्रश्नयन्नाह— (वृ०-प० २४)

४७, ४८. नेरइयाणं भंते ! पुव्वाहारिया पोग्गला चिया ? पुच्छा— जहा परिणया तहा चियावि। (श० १।१७)
एवं—उवचिया, उदीरिया, वेइया, निज्जिण्णा।
(श० १।१८)

४९. इह च पुस्तकेषु वाचनाभेदो दृश्यते तत्र न संमोहः कार्यः, सर्ववाभिधेयस्य तुल्यत्वात्। (वृ०-प० २४)

५०. 'चिताः' शरीरे चयं गताः 'उपचिताः' पुनर्बहुशः प्रदेशसामीप्येन शरीरे चिता एवेति। (वृ०-प० २४)

५१. उदीरितास्तु स्वभावतोऽनुदितान् पुद्गलानुदयप्राप्ते कर्मदलिके करणविशेषेण प्रक्षिप्य यान् वेदयते।
(वृ०-प० २४)

५२. 'वेदिताः' स्वेन रसविपाकेन प्रतिसमयमनुभूयमानाः अपरिसमाप्ताशेषानुभावा इति। (वृ०-प० २४)

५३. परिणय चिया उवचिया उदीरिया वेया य निज्जिण्णा।
एक्केक्कम्मि पदम्मि, चउव्विहा पोग्गला होंति ॥
(श० १।१८ संगहणी-गाहा)

५४. पुद्गलाधिकारादेवेमामष्टादशसूत्रीमाह—
(वृ०-प० २४)

५५, ५६. नेरइया णं भंते ! कइविहा पोग्गला भिज्जंति ?
गोयमा ! कम्मदव्ववग्गणमहिकिच्च दुविहा पोग्गला भिज्जंति, तं जहा—अणू चेव, बादरा चेव।
(श० १।१९)

*लय—सयणां थइयै जी रे

१. मूलपाठ में शब्द है 'भिज्जंति'। भिज्जंति का अर्थ है—भिन्नता होना। अपवर्तन और उद्वर्तन करण के द्वारा तीव्र रस वाले पुद्गल मन्द रस में परिवर्तित कर दिए जाते हैं और मन्द रस वाले तीव्र रस में परिवर्तित कर दिए जाते हैं। परिवर्तन के द्वारा अनुभाग रस में जो भिन्नता होती है, उसी की अपेक्षा से यहां भिज्जंति का अर्थ 'भेद लहै' किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६. वीर कहै—कर्म द्रव्य वर्गणा, ते आश्री कहिवायो।
द्विविध पुद्गल सूक्ष्म बादर, भिज्जंति—भेद पायो॥

५७. औदारिकादिक में कर्म ते, सूक्ष्म द्रव्य कहिवाया।
तिण कर्मां में सूक्ष्म मंद रस, स्थूल तीव्र रस आया॥

५८. हे भगवंत! नरक जीवां रै, पुद्गल कितै प्रकारो।
चय उपचय पामै छै प्रभुजी! हिव जिन कहै उदारो॥

५९. आहार द्रव्य नी वर्गणा आश्री, पुद्गल दोय प्रकारो।
शरीरे चय उपचय होवै छै, सूक्ष्म बादर धारो॥

६०. हे भगवंत! नरक जीवां रै, पुद्गल कितै प्रकारो।
उदीरणा होवै ते कहियै? हिव जिन कहै उदारो॥

६१. कर्म द्रव्य नीं वर्गणा आश्री, द्विविध पुद्गल केरी।
सूक्ष्म बादर कर्म तणीं ते, करै उदीरणा प्रेरी॥

६२. शेष बोल पिण इमहिज भणवा, वेदे निर्जरे जाणी[1]।
सूक्ष्म अल्पदलिक कर्म कहियै, बादर बहु-दल माणी॥

६३. हिव त्रिहुं काल अपेक्षा सूत्रे, अपवर्त्तन[2] नों न्यायो।
अध्यवसाय विशेष कर्म-स्थिति, दीर्घ अल्प करायो॥

६४. उपलक्षण थी उद्वर्त्तन—करणे, अल्प स्थिति दीर्घ करंतो।
किया करै करसी नेरइया, इम त्रिहुं काल कहंतो॥

६५. संक्रमणं ते अध्यवसाय करि, जे कर्म प्रकृति ते मांह्यो।
परस्परे संचारिवूं ते, ए उत्तर प्रकृति नै न्यायो॥

६६. जीव अमूर्त्त तो ए प्रकृति, किम संक्रमवो थायो।
अध्यवसाय प्रयोग वीर्य करि, वृत्तिकार कहिवायो॥

६७. अथवा पुन्य भोगवतां विच में, अशुभ उदै कोइ आयो।
इम शुभ मांहै अशुभ संक्रमै, पिण पुन्य नो पाप न थायो॥

---

१. पचपनवें से लेकर बहोत्तरवें पद्य तक अर्थात् भिज्जंति से लेकर निज्जरेंति तक जो पाठ है उसका प्रतिपादन केवल वर्तमान काल की विवक्षा से किया गया है। तिहोत्तरवें पद्य में प्रतिपादित अपवर्तन, संक्रमण निधत्त और निकाचन—इन पदों में तीनों काल की विवक्षा है। उस विवक्षा से ही मूल आगम में तीनों कालों का ग्रहण किया गया है।

२. उक्त सूत्र में अपवर्तन का ग्रहण है, उद्वर्तन का नहीं। पर जहां अपवर्तन है—कर्मों की स्थिति में अल्पता आती है, वहां दीर्घता भी स्वाभाविक है। इसलिए अपवर्तन का ग्रहण होने से उद्वर्तन का ग्रहण स्वतः हो जाता है।

'भिज्जंति' त्ति तीव्रमन्दमध्यतयाऽनुभागभेदेन भेदवन्तो भवन्ति, उद्वर्त्तनकरणापवर्त्तनकरणाभ्यां मन्दरसास्तीव्ररसाः तीव्ररसास्तु मन्दरसा भवन्तीत्यर्थः। (वृ०-प० २४)

५७. यत औदारिकादिद्रव्याणां मध्ये कर्मद्रव्याण्येव सूक्ष्माणीति। (वृ०-प० २५)

५८, ५९. नेरइया णं भंते! कइविहा पोग्गला चिज्जंति? गोयमा! आहारदव्ववग्गणमहिकिच्च दुविहा पोग्गला चिज्जंति, तं जहा—अणू चेव, बादरा चेव। (श० १।२०)
एवं उवचिज्जंति। (श० १।२१)

६०, ६१. नेरइया णं भंते! कइविहे पोग्गले उदीरेंति? गोयमा! कम्मदव्ववग्गणमहिकिच्च दुविहे पोग्गले उदीरेंति, तं जहा—अणू चेव, बादरा चेव। (श० १/२२)

६२. सेसावि एवं चेव भाणियव्वा—वेदेंति, निज्जरेंति। (श० १/२३)

६३. एवं—ओयट्टेंसु, ओयट्टेंति, ओयट्टिस्संति।
संकामिंसु, संकामेंति, संकामिस्संति।
निहत्तिंसु, निहत्तेंति, निहत्तिस्संति।
निकाएंसु, निकायंति, निकाइस्संति। (श० १/२४)

६३, ६४. इहापवर्त्तनं कर्मणां स्थित्यादेरध्यवसायविशेषेण हीनताकरणम्, अपवर्त्तनस्य चोपलक्षणत्वादुद्वर्त्तनमपीह दृश्यं, तच्च स्थित्यादेर्वृद्धिकरणस्वरूपं। (वृ०-प० २५)

६५. तत्र संक्रमणं मूलप्रकृत्यभिन्नानामुत्तरप्रकृतीनामध्यवसायविशेषेण परस्परं संचारणं। (वृ०-प० २५)

६६. "नन्वात्माऽमूर्त्तत्वादध्यवसायप्रयोगेण"। (वृ०-प० २५)

६७, ६८. यथा कस्यचित्सद्वेद्यमनुभवतोऽशुभकर्मपरिणति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६८. इमज अशुभ में शुभ नों संक्रम, त्रिहुं काल कहिवायो।
संक्रम्यूं संक्रमै नैं संक्रमसी, वर्णन वृत्ति थी आयो।।

६९. पुद्गल कर्म तणा वीखरिया, दृढ़ करि जीव प्रदेशे।
ते निधत्त कीधो रु करै छै, करसी ए सुविशेषे।।

७०. निकाचित अति ही दृढ़ कहियै, अग्नि तप्त सूइ-रासो।
तिमज निकाच्या अरु निकाचै, निकाचसे वलि तासो।।

७१. सर्व विषै कर्म द्रव्य वर्गणा, ते आश्री ए सीधो।
प्रश्न नरक नों गौतम पूछ्यो, श्री जिन उत्तर दीधो।।

७२. भेदिय चिय उपचिय नैं उदीरण, वेदिवो निर्जर इच्छी।
ए पट् प्रश्न समुच्चय पूछ्या, काल इच्छा नहिं प्रीच्छी।।

७३. अपवर्त्त, संक्रम, निधत्त, निकाचन, ए त्रिहुं पद पहिछाणी।
काल त्रिहूं नीं वंछा कीधी, कर्म द्रव्य आश्री जाणी।।

दूहा

७४. पुद्गल ना अधिकार थी, अपर सूत्र वलि च्यार।
पुद्गल आश्री पूछिया, श्री गोयम गणधार।।

७५. *हे भगवंत ! नारकी नैं जे, पुद्गल द्रव्य पिछाणो।
तैजस कार्मण करिनैं ग्रहै, ते शरीर रूप जे जाणो।।

७६. अतीत-काल समयै ते ग्रहै छै, कै ग्रहै वर्त्तमान कालै।
कै काल अनागत समय ग्रहै छै ? उत्तर हिव जिन आलै।।

७७. अतीत काल समयै तो न ग्रहै, ग्रहै वर्त्तमान कालै।
अनागत समयै पिण न ग्रहै, ग्रहै वच बुद्धिवंत न्हालै।।

७८. हे भगवंत ! नारकी नैं जे, पुद्गल द्रव्य पिछाणो।
तैजस कार्मण करी ग्रह्या छे, तास उदीरै जाणो।।

७९. अतीत समय ग्रह्यां स्यूं उदीरै ? तथा समय वर्त्तमानो।
पुद्गल द्रव्य ग्रहै छै तेहनी करै उदीरणा जानो ?।।

८०. कै अनागत समये जे ग्रहसी, तास उदीरै तामो ?
जिन कहै—तीतकाल समये ग्रह्या, तास उदीरै आमो।।

८१. वर्त्तमान समये जे ग्रहै, हिवडां उदीरै नांही।
आगमियै समयै जे ग्रहसी, ते न उदीरै यांही।।

८२. इमहिज वेदै इमज निर्जरै, कह्या सूत्र ए च्यारो।
कर्म तणा अधिकार थकी हिव, अष्ट सूत्र विस्तारो।।

*लय—सयणां वइयं जी रे

रेवविधा जाता येन तदेव सद्वेद्यमसद्वेद्यतया संक्रामतीति। (वृ०-प० २५)

६९. इह च विश्लिष्टानां परस्परतः पुद्गलानां निचयं कृत्वा धारणं रूढ़िशब्दत्वेन निधत्तमुच्यते। (वृ०-प० २५)

७०. निकाचनं चैषामेव पुद्गलानां परस्परविश्लिष्टानामेकीकरणमन्योऽन्यावगाहिता अग्निप्रतप्तप्रतिहन्यमानसूचीकलापस्येव। (वृ०-प० २५)

७२. भेदिया चिया उवचिया,उदीरिया वेदिया य निज्जिण्णा।
ओयट्टण संकामण, निहत्तण निकायणे तिविहकालो।।
(श० १/२४ संगहणी-गाहा)

७३. अपवर्त्तनसंक्रमनिधत्तनिकाचनपदेषु त्रिविधः कालो निर्देष्टव्यः। (वृ०-प० २५)

७४. अथ पुद्गलाधिकारादिदं सूत्रचतुष्टयमाह—
(वृ०-प० २५)

७५, ७६. नेरइया णं भंते ! जे पोग्गले तेयाकम्मत्ताए गेण्हंति, ते किं तीतकालसमए गेण्हंति ? पडुप्पन्नकालसमए गेण्हंति ? अणागयकालसमए गेण्हंति ?

७७. गोयमा ! नो तीयकालसमए गेण्हंति, पडुप्पन्नकालसमए गेण्हंति, नो अणागयकालसमए गेण्हंति।
(श० १।२५)

७८-८१. नेरइया णं भंते ! जे पोग्गले तेयाकम्मत्ताए गहिए उदीरेंति, ते किं तीयकालसमयगहिए पोग्गले उदीरेंति ? पडुप्पन्नकालसमए घेप्पमाणे पोग्गले उदीरेंति ? गहणसमयपुरक्खडे पोग्गले उदीरेंति ? गोयमा ! तीयकालसमयगहिए पोग्गले उदीरेंति, नो पडुप्पन्नकालसमए घेप्पमाणे पोग्गले उदीरेंति, नो गहणसमयपुरक्खडे पोग्गले उदीरेंति। (श० १।२६)

८२. एवं—वेदेंति, निज्जरेंति। (श० १।२७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८३. हे भगवंत ! नारकी नैं कर्म चल्यो जीव थी ताह्यो।
तेह कर्म बंधै छै पाछो, कै अचलित बंधायो ?।।

८४. जिन कहै चल्यो कर्म नहिं बंधै, अचलित बंध कहायो।
चल्यो कर्म निर्जरवा सन्मुख, ते फिर केम बंधायो।।

८५. हे भगवंत ! नारकी नैं स्यूं, चलियो कर्म उदीरै।
तथा अचलियो कर्म उदीरै ?, पूछै शीस सधीरै।।

८६. जिन कहै—कर्म चल्यो न उदीरै, ते तो उदैज आयो।
उदीरणा अध्यवसाये करि, अचलित कर्म नी थायो।।

८७. इमहिज वेदै इम अपवर्त्तन, संक्रम निधत्त निकाचो।
चलिया कर्म तणो तो न हुवै, ह्वै अचलित नै वाचो।।

८८. हे भगवंत ! नारकी नै स्यूं, चल्यो कर्म निर्जरियै।
कै जे अचलित कर्म निर्जरै ? प्रश्न गोयम उच्चरियै।।

८९. जिन कहै—चलियो कर्म निर्जरै, अचलित निर्जरै नांही।
उदय शब्द कर उदीरणा ए, संग्रहणि गाथा[1] मांही।।

९०. चल्यो निर्जरै इम वच कहिवै, निर्जर सम्मुख कहियै।
तिम अचलित वेदै इम कहिवै, वेदण सन्मुख लहियै।।

९०. चल्यो निर्जरै इम कहिवै धुर निर्जर थो पहिछाणी।
तिम अचलित वेदै इम कहिवै, धुर वेदण थी जाणी।।

९२. चलण समय नैं निर्जर समयो, विहूं जुजूआ जोयो।
तिम अचलित समयो नैं वेदन-समय जुजूआ होयो।।

९३. बंध उदय वेदै अपवर्त्तन, संक्रम निधत्त निकाचो।
अचलित कर्म तणी होवै छै, निर्जर चलित नै वाचो।।

९४. नरक तणो अधिकार कह्यो हिव, अनुक्रम दंडक कहियै।
असुरकुमार तणी हे भगवंत, स्थिती केतली लहियै[2] ?।।

८३, ८४. नेरइया णं भंते ! जीवाओ किं चलियं कम्मं बंधंति ? अचलियं कम्मं बंधंति ?
गोयमा ! नो चलियं कम्मं बंधंति, अचलियं कम्मं बंधंति। (श० १।२८)

८५, ८६. नेरइया णं भंते ! जीवाओ किं चलियं कम्मं उदीरेंति ? अचलियं कम्मं उदीरेंति ?
गोयमा ! नो चलियं कम्मं उदीरेंति, अचलियं कम्मं उदीरेंति। (श० १।२९)

८७. एवं—वेदेंति, ओयट्टेंति, संकामेंति, निहत्तेंति, निकाएंति। (श० १।३०)

८८, ८९. नेरइया णं भंते ! जीवाओ किं चलियं कम्मं निज्जरेंति ? अचलियं कम्मं निज्जरेंति ?
गोयमा ! चलियं कम्मं निज्जरेंति, नो अचलियं कम्मं निज्जरेंति। (श० १।३१)

८९. केवलमुदयशब्देनोदीरणा गृहीतेति। (वृ०-प० २८)

९३. बंधोदयवेदोयट्टसंकमे तह निहत्तणनिकाए।
अचलिय-कम्मं तु भवे, चलियं जीवाउ निज्जरए।।
(श० १।३१ संगहणी-गाहा)

९४,९५. उक्ता नारकवक्तव्यता, अथ चतुर्विंशतिदण्डक-क्रमागतामसुरकुमारवक्तव्यतामाह— (वृ०-प० २८)
असुरकुमाराणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

---

१. नैरयिक जीव आत्मा से चलित—प्रकम्पित कर्मों की निर्जरा करते हैं या अचलित कर्मों की ?

इस प्रश्न को उत्तरित करने के बाद एक संग्रहणी गाथा के द्वारा स्पष्ट किया है कि बंध, उदय, वेदन, अपवर्तन, संक्रमण, निधत्त और निकाचन आत्मा से अचलित कर्मों का होता है और निर्जरा चलित कर्मों की होती है।

उक्त गाथा में उदीरणा शब्द का ग्रहण नहीं है। वृत्तिकार के अनुसार उदय शब्द के द्वारा वह अपने-आप गृहीत हो जाता है।

२. संग्रहणी गाथा के बाद जीवों की स्थिति आहार आदि के सम्बन्ध में दो वाचनाएं उपलब्ध हैं। संक्षिप्त वाचना और वृहत् वाचना। संक्षिप्त वाचना में—'एवं ठिई आहारो य भाणियव्वो' यह पाठ है। वृहत् वाचना में पन्नवणा के आधार पर इनका विस्तृत विवरण है। अंगसुत्ताणि (भाग २, शतक १, सूत्र ३२) में संक्षिप्त वाचना स्वीकृत की गई है और नीचे टिप्पण में वृहत् वाचना उद्धृत कर दी गई है।

(शेष अग्रिम पृष्ठ पर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९५. श्री जिन भाखै जघन्य स्थिति तो, दश हजार वर्ष दाखी।
उत्कृष्टी सागर जाझेरी, बलि-इंद्र आश्री भाखी ॥

९६. असुरकुमार देव हे भगवंत !, किता काल सूं लेवै।
आण-पाण उसास-निश्वास ? हिव प्रभु उत्तर देवै ॥

९७. जघन्य थोव सप्त अरु उत्कृष्टो जाझो पक्षज जोवो।
इक उसास-निश्वास नों पाणू, सात पाणू इक थोवो ॥

९८. असुरकुमार देव हे भगवंत !, आहार तणा अर्थी छै ?
हां गौतम ! छै आहार ना अर्थी, प्रश्न गोयम बलि प्रीछै ॥

९९. काल केतला थी हे भगवंत !, असुरकुमार लै आहारो ?
जिन कहै द्विविध जाण लिये इक, अजाण थो बलि धारो ॥

१००. अजाणपणै तो लिये निरंतर, जाणपणै जे आहारो।
जघन चोथ-भक्त अरु उत्कृष्टो जाझो वर्ष हजारो ॥

१०१. असुरकुमार देव हे भगवंत !, किसै आहार प्रतिबंधो ?
जिन कहै गौतम ! द्रव्य थकी ले, अनंतप्रदेशिक खंधो ॥

१०२. खेत्त काल भाव पन्नवणा-गमे करी पिछाणो।
अष्टवीसमां पद में आख्यो, तिम इहां पिण जाणो ॥

१०३. शेष नारकी नीं परै कहिवा, जाव असुर नैं हंतो।
कवणपणै आहरचा जे पुद्गल, भुज्जो-भुज्जो परिणमंतो ? ॥

१०४. जिन कहै पंच इंद्रिपणै परणमै, रूडा रूपपणेहो।
सुभ वर्ण सुगंध सुभ रस पणैज, सुभ फर्शपणैज तेहो ॥

१०५. इष्ट मनोहर वांछितपणैज, तृप्तिपणै परिणमेहो।
ऊर्द्धपणै ते लघुपणै, पिण गुरुपणै नहिं तेहो ॥

१०६. असुरकुमार पूर्व ग्रह्या पुद्गल, परणम्या प्रमुख विचारो।
नरक जेम जाव चलित कर्म ते, निर्जरै सहु विस्तारो ॥

१०७. नागकुमार तणी हे भगवंत ! किती स्थिति उपदृष्टो ?।
जिन कहै—दश वर्ष सहस जघन, बे पल्य देसूण उत्कृष्टो ॥

गोयमा ! जहण्णेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं सातिरेगं सागरोवमं। उक्कोसेणं साइरेगं सागरोवममिति यदुक्तं तद् बलिसंज्ञकमसुरकुमारराजमाश्रित्योक्तम् ।

(वृ०-प० २८)

९६. असुरकुमारा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा ? ऊससंति वा णीससंति वा ?

९७. गोयमा ! जहण्णेणं सत्तण्हं थोवाणं उक्कोसेणं साइरेगस्स पक्खस्स आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, णीससंति वा।

९८. असुरकुमाराणं भंते ! आहारट्ठी ?
हंता आहारट्ठी।

९९, १००. असुरकुमाराणं भंते ! केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?
गोयमा ! असुरकुमाराणं दुविहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा—आभोगनिव्वत्तिए य अणाभोगनिव्वत्तिए य। तत्थ णं जे से अणाभोगनिव्वत्तिए, से अणुसमयं अविरहिए आहारट्ठे समुप्पज्जइ। तत्थ णं जे से आभोग निव्वत्तिए, से जहण्णेणं चउत्थभत्तस्स, उक्कोसेणं साइरेगस्स वाससहस्सस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

१०१-१०३. असुरकुमारा णं भंते ! किमाहारमाहारेंति ?
गोयमा ! दव्वओ अणंतपएसियाइं दव्वाइं, खेत्तकालभावपण्णवणागमेणं सेसं जहा नेरइयाणं जाव तेणं तेसिं पोग्गला कीसत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमंति ?

१०४, १०५. गोयमा ! सोइंदियत्ताए ५ सुरूवत्ताए सुवण्णत्ताए ४ इट्ठत्ताए ५, इच्छियत्ताए अभिज्जियत्ताए उड्ढत्ताए, णो अहत्ताए सुहत्ताए, णो दुहत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमंति।

१०६. असुरकुमाराणं पुव्वाहारिया पुग्गला परिणया ? असुरकुमाराभिलावेण जहा नेरइयाणं जाव नो अचलियं कम्मं निज्जरंति।

१०७. नागकुमाराणं भंते ! केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं।

हस्तलिखित प्रतियों और वृत्ति में पहले बृहत् वाचना लिखकर बाद में संक्षिप्त वाचना दी गई है। जयाचार्य ने भी अपनी जोड़ में ढाल ४ पद्य ९४ से १५१ तक बृहत् वाचना का अनुवाद किया है। उसके बाद छह पद्यों में संक्षिप्त वाचना को भी अपने अनुवाद में समाविष्ट कर लिया है।

बृहत् वाचना के आधार पर जो जोड़ की गई है, उसका पाठ अंगसुत्ताणि भाग २, पृ० ८-१०, सू० १।३२ के पाठान्तर से लिया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०८. नागकुमारज किता काल थी, आण-पाण ले इष्टो?
सप्त थोव जिन कहै जघन्य थी, पृथक् मुहूर्त्त उत्कृष्टो॥
१०९. नागकुमार देव हे भगवंत!, आहार तणा अर्थी छै?
हां गौतम! छै आहार ना अर्थी, प्रश्न गोयम वलि प्रीछै॥
११०. काल केतला थी हे भगवंत, नागकुमार ले आहारो?
जिन कहै द्विविध जाण लियै इक, अजाण थी वलि धारो॥
१११. अजाणपणै तो लिये निरंतर, जाणपणै जे आहारो।
जघन चोथ भक्त अरु उत्कृष्टो, पृथक्-दिवस सुविचारो॥
११२. शेष विस्तार असुर जिम जावत्, अचल निर्जरै नाहीं।
सुवन्नकुमार देव पिण इमहिज, जाव थणिय लग थाई॥

११३. पृथ्वीकाय तणो हे भगवंत!, केती स्थिति कहीसो?
अंतर्मुहूर्त्त जघन्य कहै जिन, उत्कृष्ट सहंस बावीसो॥

११४. पृथ्वीकाइया किता काल थी, लेवै आण रु प्राणो।
जिन कहै वेमात्राइं लेवै, नहिं छै तास प्रमाणो॥
११५. पृथ्वीकाय प्रभु! आहार ना अर्थी? हां गौतम! जिन केवै।
किता काल थी आहार लियै? जिन कहै निरंतर लेवै॥

११६. किसो आहार लै पृथ्वीकाइया, नरक जेम अवधारो।
यावत् निर्व्याघात करीनै, षट् दिशि नों लै आहारो॥
११७. अलोक नैं व्याघात कदाचित्, त्रिण दिशि नों लै केई।
कदाचित् चिउं दिशि नों लेवै, पंच दिशि नों इम लेई॥
११८. वर्ण थकी पंच वर्ण, गंध बे, पंच रस, अठ फासो।
शेष नरक नों जेम कह्यो छै, तिम पृथ्वी नों प्रकाशो॥
११९. नाणत्तं कहितां फेर एतलो, नरक तणी अपेक्षायो।
पृथ्वीकाय नैं आहार आश्रो, जे भेद आगल कहिवायो॥
१२०. भाग केतलूं आहार करै, कति भाग फर्श में आवै।
असंख्यातमों भाग आहरै, अनंत भाग फर्शावै॥

१२१. रस-इंद्रि वाला रस-इंद्रि करि, रस आस्वादै जेमो।
तिम ए फर्श इंद्रि द्वारे करि, फर्शे पुद्गल एमो।

१०८-११२. नागकुमारा णं भंते! केवइकालस्स आणमंति वा ४?
गोयमा! जहण्णेणं सत्तण्हं थोवाणं, उक्कोसेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स आणमंति ४।
नागकुमारा णं भंते! आहारट्ठी? हंता आहारट्ठी।
नागकुमाराणं भंते! केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ?
गोयमा! नागकुमाराणं दुविहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा—आभोगनिव्वत्तिए य अणाभोगनिव्वत्तिए य। तत्थ णं जे से अणाभोगनिव्वत्तिए, से अणुसमयमविरहिए आहारट्ठे समुप्पज्जइ। तत्थ णं जे से आभोगनिव्वत्तिए, से जहण्णेणं चउत्थभत्तस्स, उक्कोसेणं दिवसपुहुत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ। सेसं जहा असुरकुमाराणं जाव नो अचलियं कम्मं निज्जरेंति।
एवं सुवण्णकुमाराण वि जाव थणियकुमाराणं।

११३. पुढविकाइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?
गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं।

११४. पुढविकाइया केवइकालस्स आणमंति वा ४?
गोयमा! वेमाताए आणमंति वा ४।

११५. पुढविकाइया णं आहारट्ठी? हंता आहारट्ठी। पुढविकाइयाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ?
गोयमा! अणुसमयं अविरहिए आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

११६, ११८. पुढविकाइया किमाहारमाहारेंति?
गोयमा! दव्वओ जहा नेरइयाणं जाव निव्वाघाएणं छद्दिसिं, वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं सिय चउद्दिसिं सिय पंचदिसिं। वण्णओ कालनीलपीतलोहियहालिद्दसुक्किल्लाणि, गंधओ सुरभिगंध २ रसओ तित्त ५ फासओ कक्खड ८ सेसं तहेव।

११९, १२०. णाणत्तं, कइभागं आहारेंति, ? कइभागं फासाएंति?
गोयमा! असंखिज्जइभागं आहारेंति, अणंतभागं फासाएंति।

११९. 'नाणत्तं' त्ति नानात्वं भेदः पुनः पृथिवीकायिकानां नारकापेक्षयाऽऽहारं प्रतीदं। (वृ०-प० २९)

१२१. यथा रसनेन्द्रियपर्याप्तिपर्याप्तका रसनेन्द्रियद्वारेणाहारमुपभुञ्जाना आस्वादयन्तीति व्यपदिश्यन्ते एवमेते स्पर्शनेन्द्रियद्वारेणेति। (वृ० प० २९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२२. यावत् पुद्गल कवणपणै तसुं, भुज्जो परिणमै धारो।
जिन कहै—फर्शेंद्री वेमात्रा, परिणमै वारंवारो॥

१२३. शेष विस्तार नरक जिम सगलो, जाव वणस्सइ तासो।
नवरं स्थिति में फेर जुजुइ, वेमात्राइं उसासो॥

१२४. वेंद्रि स्थिति धुर अंतर्मुहूर्त्त, उत्कृष्टी वर्ष बारो।
वेमात्राइं उसास लेवै, हिवै आहार अधिकारो॥

१२५. अणाभोग तो त्रिये निरंतर, आभोगे इम जाणो।
असंख समय नैं अंतर्मुहूर्त्ते, वेमात्राइं पिछाणो॥
१२६. शेष तिमज यावत् इम कहिवो, अनंत भाग आस्वादै।
संग्रहणि-गाहा ना छठा प्रश्न लग, हिवै सातमो साधै॥

१२७. हे भगवंत! बेइंद्री पुद्गल आहारपणैं ग्रहै ज्यां ही।
ते स्यूं सर्व आहारै अथवा सर्व आहारै नांही?॥
१२८. जिन कहै द्विविध आहार वेइंद्रि, लोम आहार प्रक्षेवो।
लोम आहार तो सर्व ग्रहै छै, हिव प्रक्षेप कहेवो॥
१२९. प्रक्षेप आहारपणैं पुद्गल ग्रहै तसुं, असंख्यातमां भागे।
आहारै छै ए पाठ न्याय तसुं, विशिष्ट परणमै सागे॥
१३०. अनेक हजार भाग अणफर्श्या, अणस्वाद्या बिललावै।
अति सूक्ष्म अति स्थूल बहु द्रव्य, रसन-फर्श ते नावै॥

१३१. हे प्रभु! अणआस्वाद्या पुद्गल, वलि अणफर्श्या मांह्यो।
कुण बहु अल्प तुल्य विशेषाधिक?, हिव भाखै जिनरायो॥
१३२. सर्व थी थोड़ा केवल रस-इंद्रिय विषय जे नाया।
केवल फर्श इंद्रि अणफर्श्या, अनंत गुणा अधिकाया॥

१३३. हे भगवंत! बेइंद्री पुद्गल, आहारपणैं ग्रहै जाणी।
ते तसुं पुद्गल कवणपणैं जे, वलि-वलि परिणमैं आणी॥
१३४. जिन कहै—रस इंद्री फर्शेंद्रीपणैं वेमात्रा पेखो।
वलि-वलि परणमैं छै ते पुद्गल, अष्टम प्रश्न उवेखो॥

१३५. हे भगवंत! बेइंद्री पुद्गल, पूर्व आहारिया परिणया।
तिमहिज जाव चलित कर्म निर्जरै, सूत्र मध्ये ए थुणिया॥
१३६. तेइंद्री चउरिंद्रो नाणत्तं, स्थिति विषै पहिछाणी।
यावत् वलि अनेक हजारां भाग आहार ना जाणी॥
१३७. अणगंध्या नैं अणआस्वाद्या, वलि अणफर्श्या पेखो।
पुद्गल द्रव्य विध्वंस हुवै छै, हिव तसुं न्याय उवेखो॥

१२२. जाव ते णं तेसिं पोग्गला कीसत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमंति? गोयमा! फासिंदियवेमायत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमंति।
१२३. सेसं जहा नेरइयाणं जाव नो अचलियं कम्मं निज्जरंति। एवं जाव वणस्सइकाइयाणं, नवरं ठिती वण्णेयव्वा जा जस्स, उस्सासो वेमायाए।
१२४. बेइंदियाणं ठिई भाणियव्वा, ऊसासो वेमायाए।

१२५, १२६. बेइंदियाणं आहारे पुच्छा, गोयमा! आभोगनिव्वत्तिए य अणाभोगनिव्वत्तिए य तहेव। तत्थ णं जे से आभोगनिव्वत्तिए, से णं असंखेज्जसमए अंतोमुहुत्तिए वेमायाए आहारट्ठे समुप्पज्जइ। सेसं तहेव जाव अणंतभागं आसाएंति।
१२७-१३०. बेइंदिया णं भंते! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति ते किं सव्वे आहारेंति, णो सव्वे आहारेंति?
गोयमा! बेइंदियाणं दुविहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा—लोमाहारे पक्खेवाहारे य। जे पोग्गले लोमाहारत्ताए गिण्हंति ते सव्वे अपरिसेसिए आहारेंति। जे पोग्गले पक्खेवाहारत्ताए गिण्हंति तेसिं णं पोग्गलाणं असंखिज्जइभागं आहारेंति, णेगाइं च णं भागसहस्साइं अणासाइज्जमाणाइं अफासिज्जमाणाइं विद्धंसमावज्जंति।
१३१, १३२. एएसि णं भंते! पोग्गलाणं अणासाइज्जमाणाणं अफासाइज्जमाणाण य कयरे-कयरे अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?
गोयमा! सव्वत्थोवा पोग्गला अणासाइज्जमाणा, अफासाइज्जमाणा अणंतगुणा।
१३३, १३४. बेइंदिया णं भंते! जे पोग्गला आहारत्ताए गिण्हंति ते णं तेसिं पोग्गला कीसत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमंति?
गोयमा! जिब्भिंदियफासिंदियवेमायत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमंति।
१३५. बेइंदियाणं भंते! पुव्वाहारिया पुग्गला परिणया? तहेव जाव चलियं कम्मं निज्जरेंति।
१३६, १३७. तेइंदियचउरिंदियाणं णाणत्तं ठिईए जाव णेगाइं च णं भागसहस्साइं अणाघाइज्जमाणाइं अणासाइज्जमाणाइं अफासाइज्जमाणाइं विद्धंसमावज्जंति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३८. अति स्थूलपणां थी के पुद्गल, अति सूक्ष्मपणां थी केई।
इंद्रिय तणैं ग्राह्य नवि थाइं, थया विध्वंसज तेही।।

१३९. हे प्रभुजी ! ए पुद्गल आख्या, घ्राणपणैं नहिं आया।
अल्प बहुत्व इहां तीन बोल नीं, पूछ्यां कहै जिनराया।।

१४०. सर्व थोड़ा अणगंध्या पुद्गल, अनंत गुणा अनास्वादो।
अणफर्श्या ते अनंत गुणा छै, अल्प बहुत इम साधो।।

१४१. आहार परिणमैं तेइंद्री लिहुं इंद्रियपणैं पिछाणो।
चउरिंद्री चिउं इंद्री पणैं, ते बिहुं वेमात्रा जाणो।।

१४२. तिर्यंच पंचेंद्री फेर स्थिति में, वेमात्राइं उसासो।
अणाभोग करी आहार लियो, ते अंतर रहित विमासो।।

१४३. आभोगे अंतर्मुहूर्त्त धुर, उत्कृष्टो छठ कहियै।
शेष चउरिंद्री नीं पर जावत्, चलित कर्म निर्जरियै।।

१४४. पांचूं इंद्रीपणैं परिणमै, सुगम भणी नहिं आख्यो।
पंच इंद्रियपणैं वेमात्रा परणमै पन्नवण भाख्यो।।

१४५. इमज मनुष्य पिण फेर एतलो, आहार तणैं अधिकारो।
जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त आभोगे, उत्कृष्ट अट्ठम धारो।।

१४६. पंच इंद्रियपणैं वेमात्रा परिणमैं ते सुविचारो।
शेष तिमज जाव चल्यो, निर्जरै यथायोग्य अधिकारो।।

१४७. व्यंतर नागकुमार जिम कहियै, पिण फेर स्थिति में होयो।
इमहिज जोतषी पिण छै णवरं, विशेष इतलो जोयो।।

१४८. जघन्य अनैं उत्कृष्ट उसासज, पृथक् - मुहूर्त्त कहियै।
आहार जघन्य उत्कृष्ट पृथक्-दिन, शेष तिमज सलहियै।।

१४९. वैमानिक स्थिति ओघ सामान्या, इक पल्यं जघन्य अमोघो।
उत्कृष्टी तेतिस सागर नीं, ए वैमानिक ओघो।।

१५०. जघन्य उसास पृथक्-मुहूर्त्त, पख तेवीस उत्कृष्ट दीसो।
आहार आभोग जघन्य दिन पृथक्, उत्कृष्ट सहस तेतीसो।।

१५१. शेष विस्तार पूर्व आख्यो छै, तेहिज कहिवो सारो।
यावत् चलियो कर्म निर्जरै, त्यां लग सहु विस्तारो।।

१३९. एएसि णं भंते ! पोग्गलाणं अणाघाइज्जमाणाइं २ पुच्छा।

१४०. गोयमा ! सव्वत्थोवा पोग्गला अणाघाइज्जमाणा, अणासाइज्जमाणा अणंतगुणा, अफासाइज्जमाणा अणंतगुणा।

१४१. तेइंदियाणं घाणिंदियजिब्भिंदियफासिंदियवेमायत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमंति। चउरिंदियाणं चक्खिंदिय-घाणिंदियजिब्भिंदियफासिंदियवेमायत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमंति।

१४२, १४३. पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं ठिई भणिऊणं ऊसासो वेमायाए। आहारो अणाभोगनिव्वत्तिए अणु-समयं अविरहिओ। आभोगनिव्वत्तिओ जहण्णेणं अंतोमुहुत्तस्स, उक्कोसेणं छट्ठभत्तस्स। सेसं जहा चउरिंदियाणं जाव चलियं कम्मं निज्जरेंति।

१४५. एवं मणुस्साणवि, नवरं आभोगनिव्वत्तिए जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अट्ठमभत्तस्स।

१४६. सोइंदियवेमायत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमंति। सेसं जहा चउरिंदियाणं तहेव जाव निज्जरेंति।

१४७, १४८. वाणमंतराण ठिईए नाणत्तं, परिणमंति अवसेसं जहा नागकुमाराणं। एवं जोइसियाणवि, नवरं उस्सासो जहण्णेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेणवि मुहुत्त-पुहुत्तस्स। आहारो जहण्णेणं दिवसपुहुत्तस्स, उक्को-सेणवि दिवसपुहुत्तस्स। सेसं तहेव।

१४९-१५१. वेमाणियाणं ठिई भाणियव्वा ओहिया। ऊसासो जहण्णेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेणं तेत्तीसाए पक्खाणं। आहारो आभोगनिव्वत्तिओ जहण्णेणं दिवसपुहुत्तस्स, उक्कोसेणं तेत्तीसाए वाससहस्साणं। सेसं चलियाइयं तहेव जाव निज्जरेंति[1]।

१. भगवती की जोड़ कहीं संक्षिप्त और कहीं विस्तृत वाचना के आधार पर की गई है, इसलिए अंगसुत्ताणि के पाठ के साथ उसका यत्र-तत्र पूरा मेल नहीं बैठता। ढाल ४ में गाथा १४ से १५१ तक की जोड़ विस्तृत वाचना के आधार पर की गई है, अंगसुत्ताणि भाग २ श० १।३२ में 'एवं ठिती आहारो य भाणियव्वो' यह संक्षिप्त पाठ है। इसलिए जोड़ के समानान्तर उक्त सूत्र के टिप्पण से विस्तृत वाचना का पाठ दिया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूहा

१५२. चउवीसूं दंडक तणी, ग्रंथ करी नैं एह।
वक्तव्यता आखी अछै, केई पुस्तके जेह॥

१५३. एवं ठिई आहारो, इत्यादिक अतिदेश।
वाक्य करी नैं वारता, देखाडी छै लेश॥

१५४. तिका इहां विस्तार थी, ग्रंथ थकी अवलोय।
आखी छै सगली इहां, वृत्ति विषै इम जोय॥

१५५. स्थिति जिम स्थिति पद नैं विषै, तिणहिज रीत सुजाण।
भणवी सहु जीवां भणी, जूई - जूई पहिछाण॥

१५६. वलि आहार पिण जिम कह्यूं, अठवीसम पद मांय।
प्रथम उदेशक नैं विषै, तिम सगलो कहिवाय॥

१५७. *एत्तो आढत्तो ए आगल, जे पाठ थकी प्रारंभी।
नेरइयाणं भंते आहारट्ठी, आदि थी इम आरंभी॥

१५८. जाव दुक्खत्ताए भुज्जो-भुज्जो, कांइ परिणमंति पहिछाणी।
अठा तांइ जे पाठ सर्व छै, ग्रंथ थकी ए जाणी॥

१५९. चउथी ढाल विशाल कही ए, पन्नवण बहु विस्तारो।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय प्रसादै, 'जय-जश' संपति सारो॥

१५२-१५४. तदेतावता ग्रन्थेनोक्ता चतुर्विंशतिदण्डक-वक्तव्यता, इयं च केषुचित्सूत्रपुस्तकेषु 'एवं ठिई आहारो' इत्यादिनाऽतिदेशवाक्येन दर्शिता, सा चेत्तो विवरणग्रन्थादवसेयेति। (वृ०-प० ३१)

१५५, १५६. एवं ठिई आहारो य भाणियव्वो। ठिती जहा—ठितिपदे तहा भाणियव्वा सव्वजीवाणं। आहारो वि जहा पण्णवणाए पढमे आहारुद्देसए तहा भाणियव्वो

१५७, १५८. एत्तो आढत्तो—नेरइया णं भंते! आहारट्ठी? जाव दुक्खत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमंति। (श० १।३२)

ढाल : ५

दूहा

१. नरकादिक नों धर्म कह्यूं, ते आरंभी ताम।
आरंभ-निरूपण नैं अर्थ, पूछै गौतम स्वाम॥

२. हे भगवंत! बहु जीव स्यूं, आत्मारंभा थात?
निज आतम करि निज भणी, हणै करै अपघात॥

३. परारंभा पर नै हणै, तदुभयारंभा तेह।
निज पर दोनूं नै हणै, अणारंभा न हणेह॥

४. वीर कहै केइ एक छै, आत्मारंभा जीव।
परारंभा पिण तेह छै, उभयारंभ अतीव॥

५. अणारंभा कहिवै न तसुं, केइ एक वलि जीव।
त्रिहुं बोल धुरला नहीं, अणारंभा सुकहीव॥

१. उक्ता नारकादिधर्मवक्तव्यता, इयं चारम्भपूर्विकेति आरम्भनिरूपणायाह— (वृ०-प० ३१)

२-५. जीवा णं भंते! किं आयारंभा? परारंभा? तदुभयारंभा? अणारंभा? गोयमा! अत्थेगइया जीवा आयारंभा वि, परारंभा वि, तदुभयारंभा वि, णो अणारंभा।
अत्थेगइया जीवा नो आयारंभा, नो परारंभा, नो तदुभयारंभा, अणारंभा। (श० १।३३)

२, ३. तत्र चात्मानमारभन्ते आत्मना वा स्वयमारभन्त इत्यात्मारम्भाः, तथा परमारभन्ते परेण वाऽऽरम्भयन्तीति परारम्भाः, तदुभयम्—आत्मपररूपं, तदुभयेन वाऽऽरभन्त इति तदुभयारम्भाः, आत्मपरोभयारम्भवर्जितास्त्वनारम्भाः। (वृ०-प० ३१)

लय—सयणां थइयें जी रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. किण अर्थे इम आखियो, केइ धुरला त्रिहुं पेख।
अणारंभा कहियै न तसु, अणारंभा के एक ॥

*सुण-सुण रे शील ! सयाणां !, आखै जिनवर इम आणा।
जिन-आणा महा सुखदाई, आ तो शिवपद केरी साई ॥
(ध्रुपदं)

७. वीर कहै गोयम सुण सार, परूप्या जीव दोय प्रकार।
संसारी अनै सिद्ध सोय, अणारंभा सिद्ध अवलोय ॥
८. संसारी जीव दोय प्रकार, संजती नै असंजती धार।
संजती ना भेद दोय तत्थ, प्रमत्त संजती नै अप्रमत्त ॥
९. तिहां अप्रमत्त ते अणारंभा, नहीं आत्म-पर-उभयारंभा।
प्रमत्त सुभ जोग में अणारंभा, आत्म-पर-उभयारंभ न लंभा ॥
१०. असुभ जोग पडुच्च प्रमादी, आत्म-पर-उभयारंभा विवादी।
अणारंभा ते वेला न कहियै, ए छट्ठै गुणठाणै लहियै ॥
११. ए कह्यो संजती नो अधिकार, असंजती अविरत आश्री धार।
आत्म-पर-उभयारंभा कहाय, अणारंभा कह्या जिन नांय ॥

दूहा

१२. वृत्तिकार इहां इम कह्यो, सूक्ष्म एकेंद्री ताय।
त्याग नहीं हिंसा तणा, आत्मारंभादि थाय ॥

१३. मुनि रै त्याग हिंसा तणा, यतनवंत श्रुत-बुद्ध।
जीव तणी ह्वै विराधना, निर्जर फल चित सुद्ध ॥

१४. *तिण अर्थे गौतम ! इम आख्या, आत्म-पर-उभयारंभा के भाख्या।
केई अणारंभा सुखकार, हिवै न्याय कहै जय सार ॥

१५. 'संसारी ना किया दोय भेद, संजती असंजती सुवेद।
संजतासंजती कियो नांह्यो, हिवै श्रावक किण मांहे आयो ?॥
१६. संजती ना बे भेद सुतत्थ, प्रमत्त संजती नैं अप्रमत्त।
प्रमत्त संजती छठो गुणठाणो, अप्रमत्त सातमा थी जाणो ॥
१७. यां में तो श्रावक नहीं आवै, पंचमें गुण श्रावक पावै।
अविरत आश्री असंजती मांय, इणरो जाणैं समदृष्टि न्याय ॥

*लय—सुणो-सुणो रे सील सयाणां

६-११. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—अत्थेगइया जीवा आयारंभा वि, परारंभा वि, तदुभयारंभा वि, नो अणारंभा ? अत्थेगइया जीवा नो आयारंभा, नो परारंभा, नो तदुभयारंभा अणारंभा ?
गोयमा ! जीवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—संसारसमावण्णगा य, असंसारसमावण्णगा य।
तत्थ णं जे ते असंसारसमावण्णगा, ते णं सिद्धा। सिद्धा णं नो आयारंभा, नो परारंभा, नो तदुभयारंभा, अणारंभा।
तत्थ णं जे ते संसारसमावण्णगा, ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—संजया य, असंजया य।
तत्थ णं जे ते संजया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पमत्तसंजया य अप्पमत्तसंजया य।
तत्थ णं जे ते अप्पमत्तसंजया, ते णं नो आयारंभा, नो परारंभा, नो तदुभयारंभा, अणारंभा।
तत्थ णं जे ते पमत्तसंजया, ते सुहं जोगं पडुच्च नो आयारंभा, नो परारंभा, नो तदुभयारंभा, अणारंभा। असुभं जोगं पडुच्च आयारंभा वि, परारंभा वि, तदुभयारंभा वि, नो अणारंभा।
तत्थ णं जे ते असंजया, ते अविरतिं पडुच्च आयारंभा वि, परारंभा वि, तदुभयारंभा वि, नो अणारंभा।

१२. यद्यप्यसंयतानां सूक्ष्मैकेन्द्रियादीनां नात्मारम्भकादित्वं साक्षादस्ति तथाप्यविरतिं प्रतीत्य तदस्ति तेषां।
(वृ०-प० ३२)
१३. जा जयमाणस्स भवे विराहणा सुत्तविहिसमग्गस्स।
सा होइ निज्जरफला अज्झत्थविसोहिजुत्तस्स ॥
(वृ०-प० ३२)
१४. से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—अत्थेगइया जीवा आयारंभा वि, परारंभा वि, तदुभयारंभा वि, नो अणारंभा। अत्थेगइया जीवा नो आयारंभा, नो परारंभा, नो तदुभयारंभा, अणारंभा। (श० १।३४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. सर्व संसारी ना सुविचार, दोय भेद किया जगतार।
तीजो भेद इहां कियो नांहि, तिण सूं अविरत आश्री असंजती मांहि ॥'
(ज० स०)

१९. नेरिया प्रभु ! स्यूं आयारंभा, परारंभा कहीजै दंभा।
तदुभयारंभा कहिवाय, कै अणारंभा कहीजै ताय ? ॥

१९. नेरइया णं भंते ! किं आयारंभा ? परारंभा ? तदुभयारंभा ? अणारंभा ?

२०. इम पूछै गोयम स्वामी, अनुग्रह करो अंतरजामी।
दम-सागर दीनदयालं, वारू अर्थ बतावो विसालं ॥

२१. जिन कहै—नारकी दिल दंभा, छै आत्म-पर-उभयारंभा।
अणारंभा तो नहिं कहिवाय, गौतम पूछै किण अर्थे ए वाय ? ॥

२१-२३. गोयमा ! नेरइया आयारंभा वि, परारंभा वि, तदुभयारंभा वि, नो अणारंभा। (श० १।३५)
से केणट्ठेणं ?
गोयमा ! अविरतिं पडुच्च। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—नेरइया आयारंभा वि, परारंभा वि, तदुभयारंभा वि, नो अणारंभा। (श० १।३६)
एवं जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणिया। मणुस्सा जहा जीवा, नवरं—सिद्धविरहिया भाणियव्वा। वाणमंतरा जोइसिया वेमाणिया जहा नेरइया। (श० १।३७)

२२. जिन कहै—अव्रत अपेक्षाय, आत्म-पर-उभयारंभा थाय।
इम जाव पंचेंद्री तिर्यंच, अव्रत आश्रो लिहुं भेद संच ॥

२३. मनुष्य जीव तणो पर थुणवो, पर सिद्धां रो भेद न भणवो।
व्यंतर जोतषी नै वैमानीक, नारकी जिम कहिवा तहतीक ॥

२४. 'इहां जय-जश आखै न्याय, वीसमा दंडक रै मांय।
आत्म - पर - उभयारंभा कहाया, तिर्यंच श्रावक सहु इहां आया ॥

२५. तिम मनुष्य श्रावक में लंभ, अव्रत आश्री आत्मादि आरंभ।
अव्रत री क्रिया देश थी ताहि, अव्रत आश्रो असंजती मांहि' ॥
(ज० स०)

२६. सलेसी नै कृष्णादिक लेस, सातूं नों प्रश्न उत्तर विशेष।
पाठ मांहि संखेप बतायो, तिण रो निर्णय निसुणो न्यायो ॥

२६-२८. सलेस्सा जहा ओहिया। कण्हलेसस्स, नीललेसस्स, काउलेसस्स, जहा ओहिया जीवा, नवरं—पमत्ताप्पमत्ता न भाणियव्वा।

२७. सलेसी जीव स्यूं आयारंभा, कै पर-उभय-अणारंभ लंभा ?
औधिक संसारी ना किया भेद, तिम सलेसीनां ज सुवेद' ॥

---

१. सलेश्यी, कृष्णलेश्यी आदि जीव आत्मारंभी हैं ? परारंभी हैं ? या अनारंभी हैं ?

इस प्रश्न के उत्तर में औधिक पाठ का उल्लेख कर कहा गया है—'पमत्ताप्पमत्ता भेदा न भाणियव्वा' प्रमत्त और अप्रमत्त ये भेद संयती के हैं। संयती और असंयती—ये दो भेद संसारी जीव के हैं।

यहां प्रमत्त और अप्रमत्त भेदों की चर्चा नहीं की। इसका अर्थ यह है कि जो जीव अप्रमत्त हैं, वे आरंभी हैं ही नहीं। इसलिए उनको साथ रखने की अपेक्षा नहीं रही। पर इस संबंध में वृत्तिकार का अभिमत दूसरा है। उनके अनुसार कृष्ण, नील आदि अप्रशस्त भाव लेश्या में साधुत्व होता ही नहीं है। इसलिए कृष्णलेश्यी आदि के प्रमत्त और अप्रमत्त भेद नहीं किए।

यदि कृष्णलेश्यी में साधुत्व नहीं होता तो संसारी जीव के संयती और असंयती—ये दो भेद क्यों किए जाते ? ये दो भेद सूत्र १।३४ में किए जा चुके हैं। इस दृष्टि से वृत्तिकार का मत आलोच्य है।

जयाचार्य ने वृत्तिकार के इस मत के साथ न केवल अपनी असहमति ही व्यक्त की है, अपितु इसकी कड़ी समीक्षा भी की है। इस विस्तृत समीक्षा में उन्होंने ११७ पद्य (भगवती-जोड़, ढाल ५।२४-१४०) लिखे हैं, जो सूक्ष्म दृष्टि से पठनीय हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८. कृष्ण नील कापोत नैं जाणो, औघिक संसारी जेम पिछाणो।
णवरं प्रमत्त अप्रमत्त वे भेद, नहि करिवा न भणवा वेद ।।
२९. 'संसारी ना किया भेद दोय, संजती नैं असंजती जोय।
संजती ना दोय भेद कीधा, प्रमादी नैं अप्रमादी सीधा ।।
३०. तिम कृष्णादिक तिहुं ना भेद दोय, संजती नैं असंजती होय।
संजती ना बे भेद न थुणवा, प्रमत्त अप्रमत्त भेद न भणवा ।।
३१. प्रमादी में कृष्णादिक पावै, अप्रमादी में ए तिहुं नावै।
तिण सूं संजती ना बे भेद, नहि भणवा इम कह्युं वेद ।।
३२. धुर भेद संजत वर्ज्यो नांहि, तिण सूं कृष्णादि साधु रै मांहि।
संजत शुभ जोग थी अणारंभ, अशुभ जोग आश्रयी आरंभ ।।'
[ज० स०]
३३. कोइ कहै कृष्ण लेश्यावंत, तसुं किम शुभ जोग आवंत।
तिण रो जाव सुणो चित ल्याय, तेजु पद्म शुक्ल रै न्याय ।।
३४. तेजु पद्म शुक्ल आयारंभा? कै पर उभयारंभ अनारंभा?
तिण नैं औघिक पाठ भलायो, पिण सिद्ध न भणवा ताह्यो ।।
३५. 'तेजु पद्म शुक्ल ना वे भेद, संजती असंजती सुवेद।
संजती ना कह्या वे प्रकार, प्रमादी नैं अप्रमादी सार ।।
३६. अप्रमादी अणारंभा लंभ, प्रमत्त पिण सुभ जोगी नारंभ।
असुभ जोगी आत्मादि आरंभ, नहि अणारंभ चित स्तंभ ।।
३७. तेजु पद्म शुक्ल लेश्यावंत, असुभ जोगी कह्या भगवंत।
औघिक पाठ भलायो ते न्याय, पूर्वली परै भेद कराय ।।
३८. तिम कृष्ण नील काउवंत, संजती शुभ जोगी हुंत।
ते आश्री अणारंभी कहियै, वारू न्याय हियै सलहियै ।।
३९. शुभ लेसी अशुभ जोग अपेक्षाय, आत्मादि आरंभा कहै ताय।
तो अशुभ लेसी सुभ जोग अपेक्षाय, अणारंभा कहिणा तसुं न्याय ।।
४०. असुभ लेश्या द्रव्य कहै कोय, तो शुभ लेश्या पिण द्रव्य होय।
शुभ लेश्या भणी भाव थापै, तो अशुभ लेश्या भावे क्यूं उथापै?
४१. भावे तेजु पद्म शुक्लवंत, ते वेला असुभजोग न हुंत।
पिण जे भव आश्री ते जीव लंभ, असुभ जोग आश्री आरंभ ।।
४२. तिम भावे कृष्ण नील काउवंत, ते वेला सुभ जोग न हुंत।
पिण ते भव में आवै शुभ जोग, ते वेला अनारंभा प्रयोग ।।
४३. विरुद्ध अर्थ वृत्ति[1] में पिछाणी, अशुभ भाव लेश्या मुनि में नांणी।
ठांम-ठांम कह्यो सूत्र मांह्यो, छठे गुणठाणो छ लेस्या पायो ।।

३४. तेउलेसस्स, पम्हलेसस्स, सुक्कलेसस्स जहा ओहिया जीवा, नवरं—सिद्धा न भाणियव्वा। (श० १।३८)

---

१. कण्हलेसस्स इत्यादि—कृष्णलेश्यस्य नीललेश्यस्य कापोतलेश्यस्य च जीवराशेर्दण्डको यथा औघिकजीवदण्डकतथाऽध्येतव्यः—प्रमत्ताप्रमत्तविशेषणवर्जः, कृष्णादिषु हि अप्रशस्तभावलेश्यासु संयतत्वं नास्ति, यच्चोच्यते—पुव्वपडिवण्णओ पुण अण्णयरीए उ लेस्साए त्ति तद्द्रव्यलेश्यां प्रतीत्येति मंतव्यं, ततस्तासु प्रमत्ताद्यभावः।
(वृ० प० ३२, ३३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४४. पन्नवणा[1] सतरमैं पद पेख, पहिला उद्देशा में सुविशेख।
कृष्णलेशी मनुष्य समदिष्टि, क्रिया नैं अधिकार सु इष्टि॥
४५. तीन भेद तेहना सुविचार, संजती नैं असंजती धार।
संजतासंजती तहतीक, क्रिया भेद विना औधीक॥
४६. संजती ना वे भेद न कीधा, प्रमत्त अप्रमत्तादिक नहिं लीधा।
धुर भेद संजया थुणिया, प्रमत्त अप्रमत्तादिक नहिं भणिया॥
४७. कृष्णलेश्या छठा गुण ठांई, अप्रमादी में पावै नांही।
तिण सूं संयती रा दोय भेद, नहिं कीधा पन्नवण वेद॥
४८. भगवती पहिला शतक मझार, दूजै उदेशै क्रियाधिकार।
चोवीस दंडक सलेस छ लेस, क्रिया नों विस्तार विशेष॥
४९. मनुष्य त्रिविध प्रथम समदिष्टि, मिच्छदिट्ठ समामिथ्या इष्टि।
समदिष्टि मनुष्य तीन प्रकार, संजत असंजत श्रावक धार॥
५०. संजती ना वे भेद विचार, सरागी वीतरागी सार।
वीतरागी संजती मांहि, आरंभियादिक क्रिया नांहि॥
५१. सरागी संजती ना भेद दोय, प्रमादी नैं अप्रमादी जोय।
अप्रमादी मांहै क्रिया एक, मायावत्तिया कषाय थी देख॥
५२. प्रमादी संजती रै दोय, आरंभिया मायावत्तिया होय।
संजतासंजती रै तीन, तीजी परिग्रह नीं अधिकी लीन॥
५३. असंजत-समदृष्टि रै च्यार, अपच्चक्खाणिया अधिक विचार।
मिथ्यादृष्टि मिश्रदृष्टि पंच, मिथ्यात की पंचमी विरंच॥
५४. तेवीस दंडक क्रियाधिकार, तिहां कह्यो घणो विस्तार।
ग्रंथ बहुल थी इहां न वखाण्यो, प्रस्ताव ते मनुष्य नों आण्यो॥
५५. सलेसी कृष्णादि षट् लेस, दंडक ऊपर विस्तार विशेष।
सलेसी नेरइयादि विचार, आहार प्रश्न प्रमुख अधिकार॥
५६. कृष्णादिक अशुभ लेश्यावंत, मनुष्य क्रिया औधिक ज्यूं कहंत।
पिण सरागी वीतरागी सार, प्रमत्त अप्रमत्त न भणवा च्यार॥
५७. कृष्णादि त्रिहुं सरागी मांहि, वीतरागी में पावै नांहि।
प्रमादी में ह्वै, न अप्रमत्त, तिण सूं वे भेद करणा वर्ज्या तत्थ॥
५८. धुर भेद संजत वर्ज्यो नांहि, तिण सूं असुभ लेश्या मुनि मांहि।
आगला च्यारूं भेद न करणा, वर न्याय हियै आदरणा॥
५९. तेजु पद्म पावै जे मांय, पाठ औधिक ज्यूं कहिवाय।
णवरं मनुष्य मांहै इम थुणवा, सरागी वीतरागी न भणवा॥
६०. सरागी में तेजु पद्म पावै, वीतरागी मांहै नहिं भावै।
तिण सूं अप्रमत्त रा दोय भेद, नहिं करिवा जाण सुवेद॥

---

१. कण्हलेसाणं भंते !...णवरं मणूसाणं किरियाहिं विसेसो, जाव तत्थ णं जे ते सम-दिट्ठी ते तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—संजया असंजया संजयासंजया य...।
(पण्णवणा १७।२९, ३०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६१. औधिक अप्रमत्त रा भेद दोय, कीधा सरागी वीतरागी सोय।
ते इहां भेद न करिवा ताहि, प्रमत्त अप्रमत्त वर्ज्या नांहि ।।
६२. वर्ज्या सरागी वीतरागी ताहि, तो स्यूं मुनि में तेजु पद्म नांहि।
पिण ए वर्ज्या अप्रमत्त रा भेद, अप्रमत्त न वर्ज्यो सुवेद ।।
६३. तिमहिज पहिलै उदेशै पेख, कृष्ण नील कापोत में देख।
तिण सूं औधिक पाठज थुणवा, प्रमत्त अप्रमत्त भेद न भणवा ।।
६४. औधे संजती रा भेद दोय, कीधा ते नहिं करणा सोय;
धुर भेद संजत वर्ज्यो नांहि, तिण सूं कृष्णादिक संजती मांहि ।।
६५. सूत्र भगवती में सुविचार, पंचवीसमें शतके सार।
कह्यो छठै उदेशै विशेष, कषायकुशील मांहै पट् लेश ।।
६६. तिणहिज शतक सातमें उद्देश, सामायकचारित्र सुविशेष।
वलि छेदोपस्थापनी मांय, षट लेश्या कही जिनराय ।।
६७. पन्नवणा सतरमा पद मांय, तीजै उदेशै कह्यो जिनराय।
कृष्ण नील कापोत सुजोय, बे त्रिण च्यार ज्ञान विषै होय ।।
६८. तिहां एम कह्यो टीकाकार, मनपर्यव अधिक उदार।
कृष्ण संक्लिष्ट अध्यवसाय, किसी कृष्ण लेश्या मनपर्याय ।।
६९. अध्यवसाय कृष्ण ना जाण, असंख लोक प्रदेश प्रमाण।
कृष्ण तणा अध्यवसाय मद, तिहां मनपर्याय पावंद ।।
७०. मनपर्याय ज्ञान पिछाण, ऊपजै सातमैं गुणठाण।
पछै छठै गुणठाणैं आय, जद कृष्णादिक छहुं पाय ।।
७१. इम पन्नवणा-वृत्ति रै मांय, असुभ लेश्या रा कह्या अध्यवसाय।
अध्यवसाय तिको भाव लेश, तिण में ज्ञान च्यार सुविशेष ।।
७२. भगवती - वृत्ति साधु रै मांहि, भावे असुभ लेश्या वर्जी ताहि।
ते सूत्र थी विरुद्ध पिछाणो, पन्नवण-वृत्ति थी पिण विरुद्ध जाणो ।।
७३. उत्तराध्येन चउतीसमैं जाण, हिंसादिक पंच आश्रव पिछाण।
ए कृष्ण ना लक्षण जोय, ए प्रत्यक्ष भाव लेश्या अवलोय ।।
७४. सचित आंबो चूस्यां चउमासीक, नसीत पनरमैं तहतीक।
ए प्रथम आश्रव कृष्ण भाव लेस, कह्यो छठै गुणठाणै जिनेश ।।
७५. बोलै थोडोइ झूठ अलीक, नसीत बीजै उदेशै मासीक।
ए दूजो आश्रव भावे कृष्ण जाणं, ए पिण पावै छठै गुणठाणं ।।
७६. थोडोइ अदत्त ले कोय, नसीत बीजै मासीक सुजोय।
तीजो आश्रव कृष्ण लेस्या भाव, ए पिण छठै गुणठाणै कहाव ।।
७७. मिथुन अर्थे कुचेष्टा अनीत, छठै सप्तम उदेश नसीत।
चोथो आश्रव भावे कृष्ण कहियै, ए पिण छठै गुणठाणै लहियै ।।
७८. मूर्छा अर्थे पात्रा नैं पिछाण, त्रिन कारण रंगे जाण।
दंड नसीत चवदमें उदेश, पंचम आश्रव भावे कृष्ण लेश ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७९. तिम नील कापोत रा जाण, केइ लक्षण छठै गुणठाण।
कृष्ण रा लक्षण छठै केई, केइ पंचमै पहिलां थी लेई॥
८०. भावे शुक्ल में गुणठाणा तेर, केइ लक्षण प्रथम गुण हेर।
तिम भावे कृष्ण ना जाण, केइ लक्षण छठै गुणठाण॥
८१. कषायकुशील में कही छ लेश, छठा गुणठाणा आश्री जिनेश।
कषायकुशील पावै किण मांय, भगवती में गोयम पूछी बाय॥
८२. तीर्थ में के अतीर्थ में थाय? वीर कहै दोनूं में पाय।
अतीर्थ में तो तीर्थंकर मांय, कै प्रत्येकबुद्ध में पाय?
८३. जिन कहै तीर्थंकर मांय, कषायकुशील नियंठो पाय।
ए छद्मस्थ तीर्थंकर जोय, केवली में तो स्नातक होय॥
८४. प्रत्येकबुद्ध में पिण लहियै, कषायकुशील नियंठो कहियै।
ए शतक पचीसवां मांय, छठै उदेशै कह्यो जिनराय॥
८५. मासीक सूं लेइ छ - मासी, घणां बोल नसीत में राशी।
त्यांरो प्रायश्चित ले मुनिराय, ए माठी लेश्या तणो दंड पाय॥
८६. वलि वैक्रे तेजु आहारीक, लब्धि फोडचां क्रिया तहतीक।
जघन्य तीन, उत्कृष्टी पंच, पन्नवण छतीसमें पद संच॥
८७. आहारक शरीर निपजाय, प्रमाद आश्री अधिकरण ताय।
भगवती सोलमै शतक जाण, प्रथम उदेशै पाठ पिछाण॥
८८. वागुल अधोसिर पग उर्द्ध लटकै, तिम रूप वेक्रिय मुनि मटकै।
जनोइवाला नर जिम जाण, वलि जलोक नों रूप पिछाण॥
८९. वले शकुन पंखी रूप धारै, वे पग हुय जिम साथ उपाडै।
रूंख थी रूंख जातो वराल[1], एहवो रूप वेक्रिय मुनि न्हाल॥
९०. जीवंजीवग पंखी विकुर्वतो, हंस तीर थी तीर रमंतो।
एहवा रूप करि मुनिराय, ओ तो गगन-मंडल चल्यो जाय॥
९१. वलि समुद्रवायस नीं अलोल, किलोल थी बीजै किलोल।
वलि चक्रधारक जिम होय, जाय गगन-मंडल मांहै सोय॥
९२. इम छत्रधारक चमरधार, रत्न ग्रहि जाय गगन मझार।
उत्पल पद्म कुमुद कर लेई, जायै आकास मारग तेही॥
९३. वलि भृश—मृणाल विदारी, पुरुष जातो देख्यो तिणवारी।
एहवो रूप करी मुनिराय, ओ तो आकास मारग जाय॥
९४. वलि कमलिणी पाणी मझार, तिष्ठति देखी तिणवार।
मुनि पिण एहवो रूप धार, वैक्रिय लब्धि की तिणवार॥
९५. कृष्ण वर्ण देख्यो वन-खंड, ओ तो देखवा जोग्य सुमंड।
एहवो वैक्रिय रूप वणाय, मुनि गगनमंडल चल्यो जाय॥
९६. पुष्करणी चउखुणी सम तीर, मधुर पंख्यां ना शब्द गंभीर।
एहवी पुष्करणी वैक्रिय वणाय, मुनि गगनमंडल मांहै जाय॥

---

१. कौआ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९७. माई प्रमादी विकूर्वे रूप, आलोयां आराधक है तद्रूप।
भगवती तेरमा शतक मांह्यो, नवमै उदेशै कह्यो जिनरायो।।
९८. ए छठै गुणठाणैं वैक्रिय विशेष, प्रत्यक्ष भावे अशुभलेस।
प्रायश्चित्त अशुभ रो आवै, शुभ लेस्या रो डंड न पावै।।
९९. हुय रूप मझै मुनिराय, पेस बहु जोजन चल्यो जाय।।
तिण नैं निश्चै कह्यो अणगार, तीजा शतक रै पंचमै सार।
१००. ठाणांग सातमें ठाण, सात प्रकारे छद्मस्थ जाण।
हिंसा झूठ अनैं वलि अदत्त, शब्द रूप फर्श रस रक्त।।
१०१. पूजा सतकार नीं लैर बेवै, ए कार्य सावज्ज कही नैं सेवै।
परूपै ज्यूं पालणी नावे, ए भावे माठी लेस्या नैं प्रभावे।।
१०२. माठी लेस्या आवै तेहनो दंड, दोष री नहि थाप सुमंड।
फिरै दोष थाप्यां छठो गुणठाणो, तथा श्रद्धा भ्रष्ट थी पिछाणो।।
१०३. तथा नवो साधुपणो आवै, एहवौ भारी दोष लगावै।
तो छठो गुणठाणो फिराय, छ मासी मूं पिण छठो न जाय।।
१०४. छठै गुणठाणै चवदै जोग, पट् समुद्घात पिण योग।
पांच शरीर पिण पावै, तिम भावे छ लेस्या थावै।।
१०५. रहनेम राजमती नैं बोल्यो, विषय वस मोह कर्म झोल्यो।
ए प्रत्यक्ष असुभ भाव लेश, तेहथी असुभ कर्म नों प्रवेश।।
१०६. सीहो मोटे मोटे शब्दे रोयो, भगवती पनरमें शतक जोयो।
ए पिण असुभ लेश्या पहिछाण, वलि असुभ जोग पिण जाण।।
१०७. अइमुत्ता नै बाल-लीला आई, पाणी में तिण पाली तिराई।
अै पिण असुभ लेश्या असुभजोग, छठै गुणठाण ए दुप्रयोग।।
१०८. धर्मघोष रा साधु ताय, गुरु नै विन पूछ्यां जाय।
निंदी नागश्री नै दुप्रयोग, ऐ पिण असुभ लेश्या असुभ जोग।।
१०९. इत्यादि छठा गुणठाणां मांय, लब्धि फोड़ै तथा जे खलाय।
तिण नै कहीजै असुभ लेश्या भाव, वलि असुभ जोग नों प्रभाव।।
११०. पुलाक वकुश पडिसेवं, विशुद्ध लेश्या कही जिनदेवं।
दोष सेवी दंड सन्मुख थाय, ते वेला आश्री सुद्ध जणाय।।
१११. तीनूं नियंठै दोष लगावै, ते वेला तो माठी लेश्या थावै।
तिण रो कथन कियो दोसै नांय, दंड सन्मुख रो कथन जणाय।।
११२. कह्यो पुलाक काल कर ताय, उत्कृष्ट अष्टम कल्प जाय।
ते पिण पुलाक मिट्यां थी तुरंत, पिण पुलाक मांहै न मरंत।।
११३. नियंठो स्नातक विचार, कह्यो साहरण पाठ मझार।
ते साहरण हुवां पछै केवल पाय, तिण आश्री साहरण कह्यो ताय।।
११४. तिम पुलाक प्रमुख त्रिहुं मांय, विसुद्ध लेश्या कही जिनराय।
दंड नै सन्मुख तिणवार, ग्रह्यो अंत तणो अधिकार।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११५. कषाय कुशील अपडिसेवी आख्यो, इहां आद्य कथन ए भाख्यो।
कषायकुशीलपणो ग्रहै सार, तिण वेला अपडिसेवी उदार॥
११६. दीक्षा लेतां कषायकुशील, ते वेला अपडिसेवी सुशील।
तथा अपर नियंठा आवै, तिण वेला पिण अपडिसेवी भावै॥
११७. बीजू कषायकुशील रै मांय, षट् समुद्घात पिण पाय।
पंच शरीर, छ लेश्यावंत, संजमासंजम में ते आवंत॥
११८. पुलाक बकुश पडिसेवणा मांय, मनपर्यव ज्ञान न पाय।
कषायकुशील मांहै मनपर्याय, मनपर्यवज्ञानी गोयम खलाय॥
११९. पुलाक बकुश पडिसेवण मांहि, चवदै पूर्व पावै नांहि।
कषायकुशील पूर्व चवदै पाय, दशवैकालिक कह्यूं ते खलाय[1]॥
१२०. इम कषायकुशील खलाय, ग्रहण वेला अपडिसेवी थाय।
तिम पुलाक प्रमुख त्रिहुं मांय, शुद्ध लेश्या अंत अपेक्षाय॥
१२१. गति सूत्र नी विचिल जाणो, तिण में भ्रम कोई मति आणो।
पूर्वापर अविरुद्ध तत्त, शुद्ध न्याय मेलै बहुश्रुत॥
१२२. शतक पणवीसमै पंचमंग, सातमै उद्देशै पाठ सुचंग।
जघन अंतर छेदोपस्थापनीक, त्रेसठ सहंस वर्ष नो तहतीक॥
१२३. छठा पहिला दूजा आरां रा, त्रेसठ सहंस वरस तीनां रा।
तीजै आरै जन्म जिन तास, तीन वरस साढा अठ मास॥
१२४. तीस वरस रहै ग्रहवास, पछै चारित्र लेवै हुलास।
बारै वरस अनैं पख तेर, छद्मस्थपणैं मुनि मेर॥
१२५. पछै केवल तीर्थ थापै, छेदोपस्थापनीक आपै।
इतला अधिक वरस नहिं गुणिया, त्रेसठ सहंस वरस इज थुणिया॥

---

१. निर्ग्रन्थ के छह प्रकार हैं—पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना-कुशील, कषाय-कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक। पुलाक, बकुश और प्रतिसेवना-कुशील, दृष्टिवाद (चौदह पूर्व) का ज्ञाता नहीं होता, किन्तु कषाय-कुशील मुनि को दृष्टिवाद का अधिकारी माना गया है। दशवैकालिक में इस सन्दर्भ में एक पद्य आता है—

आयारपन्नत्तिधरं दिट्ठिवायमहिज्जगं।
वइविक्खलियं नच्चा न तं उवहसे मुणी॥८।४९

यहां जयाचार्य ने टब्बे के आधार पर इस पद्य का अर्थ करते हुए भगवती की जोड़ तथा अन्यत्र भी लिखा है—

चौदह पूर्वधर कषाय कुशील स्खलित हो सकता है।

यह अर्थ असम्मत नहीं है, किन्तु वाक्य-शुद्धि अध्ययन के सन्दर्भ को देखते हुए यहां यह अर्थ चिन्तनीय प्रतीत होता है।

अगस्त्यसिंह कृत दशवैकालिक की चूर्णि के आधार पर उक्त पद्य का अर्थ इस प्रकार है—

वाक्य-रचना के नियमों को तथा प्रज्ञापन की पद्धति को जानने वाला और नयवाद का अभिज्ञ मुनि बोलने में स्खलित हुआ है (उसने वचन, लिंग और वर्ण का विपर्यास किया है), यह जानकर भी मुनि उसका उपहास न करे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२६. किहां किंचित् अधिक गिण लीधां, इहां इतरा अधिक तज दीधा।
समचै पाठ देखी सूत्र मांय, बुद्धिवंत मिलावै न्याय ।।
१२७. पहिली नरक जीव श्रेणक नों, आयु सहंस चउरासी वरस नों।
नवमै ठाणै ठाणांग रै मांहि, त्यां पिण अधिक वरस गिण्या नांहि ।।
१२८. गामै एक रात्रि नगरै पंच, सीयाला ऊन्हाला में सुसंच।
उवाई सूत्र पाठ में वाय, ते पिण अभिग्रहधारी नीं अपेक्षाय ।।
१२९. सर्व उपधि ले गोचरी जाणो, आचारंग दूजै श्रुतखंध वाणो।
प्रथम अध्येन रै तीजै उदेश, ए पिण अभिग्रहधारी सुविशेष ।।
१३०. इत्यादिक बहु सूत्र मांय, समचै पाठ कह्या जिनराय।
पिण बुद्धिवंत न्याय विचारै, पूर्वापर अविरुद्ध धारै ।।
१३१. तिम कषायकुशील अपडिसेवी, आदि कथन ग्रहण वेला लेवी।
विशुद्ध लेस्या पुलाकादि मांय, कथन अंत्य आराधक न्याय ।।
१३२. पुलाक नियंठा नी स्थित्त, जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहुत्त।
वकुस पडिसेवणा नीं पिछाण, जघन्य स्थिति समय इक जाण ।।
१३३. उत्कृष्टी बिहुं नों जोड, देश ऊंणी पूरव कोड।
अशुभ भाव लेस्या अध्यवसाय, किम नावै ते स्थिति मांय ।।
१३४. कदे अशुभ भाव लेस्या आवै, शुभ भाव लेस्या कदे पावै।
ऐ तो पडिसेवी पहिछाण, वले स्थिति पिण अधिकी जाण ।।
१३५. अपडिसेवी रा असुध अध्यवसाय, नावै तिण रो तो आश्चर्य नांय।
पिण ए तो पडिसेवी सदोषी विशेष,तिण रै किम नावै अशुभ भाव लेश ।।
१३६. वकुस पडिसेवणा दोषसेवी, दंड नहि लेवै ज्यां लग वेवी।
तिण नैं पडिसेवी कहिवाय, त्यां लग तेहिज नियंठो जणाय ।।
१३७. पडिसेवणाद्वार रै मांय, पडिसेवी कह्यो जिनराय।
अपडिसेवी कहिजै नांहि, ए तो प्रत्यक्ष पाठ रै मांहि ।।
१३८. दंड लेवा रै सन्मुख होय, सुध भाव लेस्या जद जोय।
तिण वेला मरै तो आराधक, आलोयां विना मूंआ विराधक ।।
१३९. सुभ भाव लेस्या इम थायो, म्हैं तो उन्मान सूं मेल्यो न्यायो।
वले अपर न्याय कोइ होय, केवली वदै ते सत्य जोय ।।
१४०. दोष सेवै अशुभ लेस्या भाव, छठै गुणठाणै प्रमत्त प्रभाव।
अशुभ योग वसे लब्धि फोडै, अशुभ भाव लेस्या नैं जोडै ।।
१४१. ठाम-ठाम सूत्रां में जाण, पट् लेस्या छठै गुणठाण।
अशुभ जोग वर्तै तिणवार, अशुभ भाव लेस्या अवधार ।।
१४२. प्रथम गुणठाण असोच्चाधिकार, शुभ अध्यवसाय कह्या सार।
शुभ परिणाम नैं विशुद्ध लेस, नवमै शतक इकतीसमुदेश ।।
१४३. ईहा पोह विचारणा करतां, विभंग अनाण ऊपजतां।
कियो अपोह नों अर्थ जान, बीजा पक्ष रहित धर्मध्यान ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४४. तिम छठै गुणठाणै विचार, अशुभ जोग आवै किणवार।
अशुभ अध्यवसाय पिण तिवार, अशुभ भाव लेस्या पिण धार।।
१४५. तिण सूं कृष्णादिक संयति में कहीजै, ए धुर पाठ तो नांहि तजीजै।
तसुं भेद दोय नहिं थुणवा, प्रमत्त-अप्रमत्त भेद न भणवा।।
१४६. प्रमादी में तो कृष्णादि पावै, अप्रमादी मांही नहि थावै।
तिण सूं करणा वरज्या भेद दोय, ए न्याय प्रमत्त-अप्रमत्त जोय।।
१४७. ए आखी पंचमी ढाल, बारू न्याय अनेक विशाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय, सुख संपत्ति 'जय-जश' पाय।।'
(ज० स०)

ढाल : ६

दूहा

१. ए आरंभ भव-हेतु कह्यूं, हिव भव-हेतु-अभाव।
ज्ञानादिक है तेहनों, वर्णन इह प्रस्ताव।।

२. इह-भव में प्रभु ! ज्ञान है के परभव में ज्ञान?
तथा ज्ञान तदुभयभविक? गोयम प्रश्न प्रधान।।

३. वीर कहै सुण गोयमा ! इह वर्त्तमान भव मांय।
भण्यो ज्ञान इह-भव हुवै, जो परभव नहिं जाय।।

४. परभव में पिण ज्ञान ह्वै, तदुभय-भव[1] पिण ज्ञान।
इह-भव भण्योज परभवे, संग ले जावै जान।।

५. दर्शण समकत्व पिण इमज, हिव चारित्र पूछित्त।
इह-भव कै परभव चरित्त, कै तदुभय-भव चरित्त?।।

६. जिन कहै इह-भव में चरित्त, जावजीव लग थाय।
परभव में चारित नहीं, तदुभय-भव पिण नांय।।

७. इमहिज तप इह-भव मझै, इमहिज संजम जोय।
इहभव पिण नहिं परभवे, तदुभय-भवे न होय।।

१. भवहेतुभूतमारम्भं निरूप्य भवाभावहेतुभूतं ज्ञानादिधर्मैकदम्बकं निरूपयन्नाह— (वृ०-प० ३३)

२-४. इहभविए भंते ! नाणे? परभविए नाणे? तदुभयभविए नाणे?
गोयमा ! इहभविए वि नाणे, परभविए वि नाणे, तदुभयभविए वि नाणे।
(श० १।३९)

३, ४. 'इहभविए' त्ति ऐहभविकं यदिहाधीतं नानन्तरभवेऽनुयाति, पारभविकं यदनन्तरभवेऽनुयाति, तदुभयभविकं तु यदिहाधीतं परभवे परतरभवे चानुवर्त्तत इति।
(वृ०-प० ३३)

५, ६. दंसणंपि एमेव। (श० १।४०)
इहभविए भंते ! चरित्ते? परभविए चरित्ते? तदुभयभविए चरित्ते?
गोयमा ! इहभविए चरित्ते, नो परभविए चरित्ते, नो तदुभयभविए चरित्ते।
(श० १।४१)

७. एवं तवे संजमे। (श० १।४२, ४३)

१. वृत्तिकार ने तदुभयभविक ज्ञान में पर और परतर—इन दो भवों का ग्रहण किया है। वर्तमान भव और आगामी भव इन दो भवों में साथ रहने वाले ज्ञान को परभविक ज्ञान माना गया है। इसलिए तदुभयभविक ज्ञान को परभविक ज्ञान से भिन्न बताने के लिए पर और परतर भवों का ग्रहण आवश्यक हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. शिव हेतु ज्ञानादि में, दर्शन ईज प्रधान।
चरित्त नो कारण नहीं, दर्शन थीज निर्वान[1]॥

८. ननु सत्यपि ज्ञानादेर्मोक्षहेतुत्वे दर्शन एव यतितव्यं, तस्यैव मोक्षहेतुत्वात्। (वृ०-प० ३४)

९. इम केइ मानैं तेहनैं, समझावण नैं हेत।
गोयम प्रश्न करै इसो, सुणज्यो सहू सचेत॥

९. इति यो मन्यते तं शिक्षयितुं प्रश्नयन्नाह— (वृ०-प० ३४)

१०. *धिन-धिन गोयम गणहरू, ज्यां पूछ्या प्रश्न प्रधान। प्रभुजी।
धिन प्रभु उत्तर आपिया, त्रिभुवन-तारक भान। प्रभुजी। (ध्रुपदं)।

११. हे प्रभु! जे घर छोड़नै, नहिं रुंध्या आश्रवद्वार, प्रभुजी।
सीझै बूझै मुच्चै हुवे सीतली, सर्व दुख क्षयकार? प्रभुजी॥

११. असंवुडे णं भंते! अणगारे सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वाइ, सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ?

१२. वीर कहै सुण गोयमा! ए अर्थ समर्थ नांय।
गोयम कहै किण कारणं, असंवुडो मोक्ष न जाय?॥

१३. जिन कहै अणगार असंवुडो, आयु वर्जी कर्म सात।
प्रकृति ढोली बंधी कर्म नीं, करै दृढ़ निकाच विख्यात॥

१२, १३. गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे। (श० १।४४)
से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—असंवुडे णं अणगारे नो सिज्झइ, नो बुज्झइ, नो मुच्चइ, नो परिनिव्वाइ, नो सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ? गोयमा! असंवुडे अणगारे आउयवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ सिढिलबंधणबद्धाओ धणियबंधणबद्धाओ पकरेइ

१४. टीकाकार इहां इम कह्यो, अशुभ जोग सूं जाण।
प्रकृति प्रदेश बंध रो, हेतु जोग पिछाण॥

१४. असंवृतत्वस्याशुभयोगरूपत्वेन गाढतरप्रकृतिबन्धहेतुत्वात्। (वृ०-प० ३४, ४५)

१५. स्थिति सातूं कर्म नी, अल्प काल नी होय।
दीर्घ काल नीं जे करै, जबर कषाय थी जोय॥

१५. हस्सकालठिइयाओ दीहकालठिइयाओ पकरेइ (श० १।४५)

१६. टीकाकार इहां इम कह्यो, स्थिति बंध नों ताय।
अनुभाग रस विपाक नों, कहियै हेतु कषाय॥

१६. असंवृतत्वस्य कषायरूपत्वेन स्थितिबन्धहेतुत्वात्, (वृ०-प० ३५)

१७. मंद अनुभाव बंध्या तिके, तीव्र अनुभाव करंत।
अल्प प्रदेश कर्म तणां, बहु प्रदेश धरंत॥

१७. मंदाणुभावाओ तिव्वाणुभावाओ पकरेइ, अप्पपएसग्गाओ बहुप्पएसग्गाओ पकरेइ

१८. आउखो कर्म बंधै तदा, कदाचित् न बंधाय।
असाता ते दुख वेदनी, वलि-वलि उपचित थाय॥

१८. आउयं च णं कम्मं सिय बंधइ, सिय नो बंधइ, अस्सायावेयणिज्जं च णं कम्मं भुज्जो-भुज्जो उवचिणाइ

१९. अंतर्वर्त्ति सप्त कर्म में, असाता वेदनी फेर।
कहिवा नो कारण किसो? उत्तर ते इम हेर॥

१९. ननु कर्मसप्तकान्तर्वर्तित्वादसातवेदनीयस्य पूर्वोक्त-विशेषणेभ्य एव तदुपचयप्रतिपत्तेः किमेतद्ग्रहणेन? (वृ०-प० ३५)

२०. असंवृत अधिक दुखी हुवै, तसुं फल महादुख देख।
श्रोता नैं भय ऊपजै, तो तजै असंवृतपणुं अशेष॥

२०. असंवृतोऽत्यन्तदुःखितो भवतीति प्रतिपादनेन भयजनादसंवृतत्वपरिहारार्थमिदमित्यदुष्टमिति। (वृ०-प० ३५)

---

१. कुछ दार्शनिकों की मान्यता है कि ज्ञान, दर्शन और चारित्र में दर्शन ही प्रधान है। चारित्र हो या नहीं, दर्शन से अभिलषित अर्थ की सिद्धि हो सकती है। उनके अभिमत की अभिव्यक्ति इस श्लोक से होती है—

भट्ठेण चरित्ताओ सुट्ठुयरं दंसणं गहेयव्वं।
सिज्झंति चरणरहिया दंसणरहिया न सिज्झंति॥

जयाचार्य ने अपनी जोड़ में इसी मान्यता को उद्धृत किया है।

*लय—शिवपुर नगर सुहांमणो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. आदि अंत नहिं जेहनों, चिउं गति में दीर्घ काल।
संसार-अटवी नैं विषै, भ्रमण करै ते बाल॥

२२. तिण अर्थे करि गोयमा! असंवुडो अणगार।
सीझै नहीं, बूझै नहीं, जाव नहि सर्व दुख अंतकार॥

२३. असंवृत ना एह फल, हिव संवृत फल हीर।
प्रमत्त-अप्रमत्त भेद करि, चरम - अचरम शरीर॥

२४. चरमशरीरी तणो इहां, गौतम प्रश्न पूछंत।
हे प्रभु! संवुडो मुनिवरु, सीझै, बूझै करै दुख-अंत?॥

२५. जिन भाखै संवुडो मुनि, सीझै, बूझै करै दुख-अंत।
गोयम कहै किण कारणैं, दुख नो अंत करंत?॥

२६. जिन भाखै संवुडो मुनि, आयु वर्जी कर्म सात।
प्रकृति गाढी बंधी तिके, ढीली करै विख्यात॥

२७. दीर्घ काल नी स्थिति ते, अल्प काल नी करंत।
तीव्र अनुभावे कर्म जे, मंद अनुभावे धरंत॥

२८. कर्म दल बहु प्रदेश ते, अल्प प्रदेश करंत।
आउखो कर्म बंधै नहीं, असातावेदनी न चिणंत॥

२९. आदि-अंत नहि जेहनो, चिउं गति ते दीर्घ काल।
संसार रूप अटवी प्रते, अतिक्रमै गुणमाल॥

३०. तिण अर्थे कह्यो गोयमा! संवुडो अणगार।
सीझै, बूझै, कर्म मोचवै, सर्व दुख नो अंतकार॥

सोरठा

३१. अचरम तनु संवृत्त, कहिवो ए अपेक्षाय थी।
तेह परंपर तत्त, अल्प भवे शिव पामियै॥

३२. जो ए इम शिव होय, तो शुक्लपक्षी पिण असंवृत।
अवश्य परंपर जोय, ते पिण शिव पामै अछै॥

३३. तो संवुडो ताय, बलि असंवुडा तणां।
फल में फेर स्यूं थाय? तसुं उत्तर कहियै हिवै॥

३४. असंवुडो चरण-भ्रष्ट, सूत्रे फल विराधक तणां।
रुलै काल उत्कृष्ट, देसूण अर्द्ध-पुद्गल कह्यो॥

३५. संवृत मुनि उत्कृष्ट, सप्त अष्ट भव सिध हुवै।
वर्णन कितो विशिष्ट, आख्यो छै ए वृत्ति थी॥

२१. अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टइ

२२. से तेणट्ठेणं गोयमा! असंवुडे अणगारे नो सिज्झइ, नो बुज्झइ, नो मुच्चइ, नो परिनिव्वाइ, नो सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ॥ (श० १।४५)

२३, २४. असंवृतस्य तावदिदं फलं, संवृतस्य तु यत्स्यात्तदाह—संवृतः—अनगारः प्रमत्ताप्रमत्तसंयतादिः, स च चरमशरीरः स्यादचरमशरीरो वा, तत्र यश्चरमशरीरस्तदपेक्षयेदं सूत्रं। (वृ०-प० ३५)

२४, २५. संवुडे णं भंते! अणगारे सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वाइ, सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ?
हंता! सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वाइ, सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ। (श० १।४६)

२५-२८. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—संवुडे णं अणगारे सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वाइ, सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ?
गोयमा! संवुडे अणगारे आउयवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ धणियबंधणबद्धाओ सिढिलबंधणबद्धाओ पकरेइ, दीहकालट्ठिइयाओ हस्सकालट्ठिइयाओ पकरेइ, तिव्वाणुभावाओ मंदाणुभावाओ पकरेइ, बहुप्पएसग्गाओ अप्पपएसग्गाओ पकरेइ; आउयं च णं कम्मं न बंधइ, अस्सायावेयणिज्जं च णं कम्मं नो भुज्जो-भुज्जो उवचिणाइ

२९. अणादीयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं वीईवयइ

३०. से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—संवुडे अणगारे सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वाइ, सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ। (श० १।४७)

३१-३५. यस्त्वचरमशरीरस्तदपेक्षया परम्परया सूत्रार्थोऽवसेयः, ननु पारम्पर्येणासंवृतस्यापि सूत्रोक्तार्थस्यावश्यम्भावो, यतः शुक्लपाक्षिकस्यापि मोक्षोऽवश्यंभावी, तदेवं संवृतासंवृतयोः फलतो भेदाभाव एवेति, अत्रोच्यते, सत्यं, किन्तु यत्संवृतस्य पारम्पर्यं तदुत्कर्षतः सप्ताष्टभवप्रमाणं, यच्चासंवृतस्य पारम्पर्यं तदुत्कर्षतोऽपार्द्धपुद्गलपरावर्त्तमानमपि स्याद्, विराधनाफलत्वात्तस्येति। (वृ०-प० ३५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६. *कह्यो संवुडो मुनि सीझै इहां, तेह थी अन्य विशिष्ट गुण-रहीत ।
ते देव हुवै कै हुवै नहीं ? एहवा प्रश्न करै धर प्रीत ।।

३७. हे प्रभु ! जीव असंजती, अव्रती व्रत-रहीत ।
पचखाणे करी पाप कर्म नैं रुंध्या नहिं सुध रीत ।।
३८. ते तिर्यंच मनुष्य मरी, परभव गति पहिछाण ।
देव हुवै कै हुवै नहीं ? ए समवत्व चरण रहित जाण ।।
३९. जिन कहै केइ छै देवता, केइक देव न थाय ।
गोयम कहै किण कारणै ? जिन कहै सांभल न्याय ।।

४०. ए जीव पंचेंद्री तिर्यंच ते, अथवा मनुष्य पहिछाण ।
ग्राम आगर नगरै रहै, निगम वणिक ज्यां प्रधान ।।
४१. राजधानी तिहां नृप वसै, धूलकोट ते खेड प्रत्यख ।
करवट कह्यो कुनगर नै, जल स्थल पथ द्रोणमुख ।।
४२. मडंब वसती थी दूर सराय छै, विविध देश थी आयो कियाण ।
ते स्थान भणी पट्टण कह्यो, केइ रत्नभूमि कहै जाण ।।
४३. आश्रम स्थान तापस तणां, गोकुलादिक ते सन्निवेस ।
मनुष्य तथा तिर्यंच त्यां, सहै मन विन तृषा विशेष ।।

४४. निर्जरा नो अभिलाषा विना, क्षुधा सहै तन त्रास ।
वलि निर्जरा नी इच्छा विना, अकाम बंभचेरवास ।।
४५. निर्जरा ना भाव विना वलि, सहै सीत आतप दंस मंस ।
इमहिज स्नान करै नहीं, परसेवै करी तन ध्वंस ।।
४६. रज तनु वलगै ते जल्ल कह्यो, कठिनभूत मल जाण ।
पंक ते मल परसेवै करी, आलो मैल पिछाण ।।
४७. ए पूर्वे कह्या छै ते थकी, ऊपनो परिदाह कलेस ।
बहुत काल अल्प काल ही, भोगवी कष्ट असेस ।।

४८. अनेरा वाणव्यंतर तणा, देवलोक रै मांय ।
काल करीनैं ऊपजै, देवपणैं कहिवाय ।।
४९. हे भगवंत ! ते व्यंतर तणां, देवलोक किसायक होय ?
वीर कहै सुण गोयमा ! दृष्टांत दे कहुं तोय ।।

*लय—शिवपुर नगर सुहांमणो

३६. अनगारः संवृतत्वात्सिध्यतीत्युक्तं, यस्तु तदन्यः स विशिष्टगुणविकलः सन् किं देवः स्यान्न वा ? इति प्रश्नयन्नाह— (वृ०-प० ३५)

३७, ३८. जीवे णं भंते ! असंजए अविरए अप्पडिहयपच्चक्खायपावकम्मे इओ चुए पेच्चा देवे सिया ?

३९. गोयमा ! अत्थेगइए देवे सिया, अत्थेगइए नो देवे सिया ।
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ···असंजए अविरए अप्पडिहयपच्चक्खायपावकम्मे इओ चुए पेच्चा अत्थेगइए देवे सिया, अत्थेगइए नो देवे सिया ?(श० १।४८)

४०-४३. गोयमा ! जे इमे जीवा गामागर-नगर-निगम-रायहाणि-खेड-कव्वड-मडंब-दोणमुह-पट्टणासम-सण्णिवेसेसु अकामतण्हाए

निगमो-वणिग्जनप्रधानं स्थानं, राजधानी—यत्र राजा स्वयं वसति, खेटं- -धूलिप्राकारं, कर्वटं—कुनगरं, मडम्बं-सर्वतो दूरवर्त्ति सन्निवेशान्तरं, द्रोणमुखं—जलपथस्थलपथोपेतं, पत्तनं—विविधदेशागतपण्यस्थानं, रत्नभूमिरित्यन्ये, आश्रमं—तापसादिस्थानं, सन्निवेशोघोषादिः 'अकामतण्हाए' त्ति अकामानां—निर्जराद्यनभिलाषिणां सतां तृष्णा···तृड् अकामतृष्णा तया ।
(वृ०-प० ३६)

४४-४७. अकामछुहाए, अकामबंभचेरवासेणं, अकामसीतातवदंस-मसग-अण्हाणग-सेय-जल्ल-मल-पंक-परिदाहेणं
अप्पतरं वा भुज्जतरं वा कालं अप्पाणं परिकिलेसंति ।

एवमकामक्षुधा, 'अकामबंभचेरवासेणं' ति अकामानां—निर्जराद्यनभिलाषिणां सताम् अकामो वा—निरभिप्रायो ब्रह्मचर्येण—स्त्र्यादिपरिभोगाभावमात्रलक्षणेन वासो—रात्रौ शयनमकामब्रह्मचर्यवासोऽतस्तेन, 'अकामअण्हाणगसेयजल्लमलपंकपरिदाहेणं' ति अकामा येऽस्नानकादयस्तेभ्यो यः परिदाहः स तथा तेन, तत्र स्वेदः—प्रस्वेदः याति च लगति चेति, जल्लो—रजोमात्रं, मलः- -कठिनीभूतं रज एव पङ्को—मल एव स्वेदेनार्द्रीभूत इति । (वृ०-प० ३६, ३७)

४८. कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु वाणमंतरेसु देवलोगेसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति । (श० १।४९)

४९. केरिसा णं भंते ! तेसिं वाणमंतराणं देवाणं देवलोगा पण्णत्ता ? गोयमा ! से जहानामए इहं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५०. ए मनुष्यलोके रमणीक छै, वन अशोक वृक्ष ना सार।
प्रथमा इक वचन एकार छै, इकार वाक्यालंकार॥

५०. असोगवणे इ वा।

५०. 'असोगवणे' इत्यत्र प्रथमैकवचनकृत एकारः, इवशब्दस्तु वाक्यालङ्कारे। (वृ०-प० ३७)

५१. सप्तपर्ण-वन सप्तछद तणो, चंपक-वन अंब-वन्न।
तिलक लाउ वड-वन बलि, छत्तोह सण नैं असन्न॥

५१. सत्तवण्णवणे इ वा, चंपयवणे इ वा, चूयवणे इ वा, तिलगवणे इ वा, लउयवणे इ वा, नग्गोहवणे इ वा, छत्तोहवणे इ वा, असणवणे इ वा, सणवणे इ वा।

५२. अलसी कुसूंबा नों वन वलि, धवला सरसव नों वन्न।
बंधुजीव फूल दोपहरिया, बलि लंगु-वन[1] सोभन्न॥

५२, ५३. अयसिवणे इ वा, कुसुंभवणे इ वा, सिद्धत्थवणे इ वा, बंधुजीवगवणे इ वा, णिच्चं कुसुमिय-माइय-लवइय-थवइय

५३. फूल्या थका ते रहै सदा, मयुरचा ते पुष्प उपन्न।
अंकुरवत् पल्लव ऊपना, थवइ पुष्प डोडा जन्न॥

५३. 'लवइय' त्ति लवकितं संजातपल्लवलवमङ्कुरवदित्यर्थः, 'थवइय' त्ति स्तवकितं संजातपुष्पस्तवकमित्यर्थः। (वृ०-प० ३७)

५४. गुल्म लता-समूह ऊपनो, गुच्छ ते पत्र-समूह।
वृक्षां नी सम श्रेणि तिहां, बे बे तरु एकठा रूह॥

५४. गुलुइय-गोच्छिय-जमलिय-जुवलिय

५४. 'गुलुइय' त्ति संजातगुल्मकं, गुल्मं च लतासमूहः, 'गुच्छिय' त्ति संजातगुच्छं, गुच्छश्च पत्रसमूहः, 'जमलिय' त्ति यमलतया—समश्रेणितया तत्तरूणां व्यवस्थितत्वात् संजातयमलत्वेन यमलितं, 'जुवलिय' त्ति युगलतया तत्तरूणां संजातत्वेन युगलितं। (वृ०-प० ३७)

५५. विशेष फल फूल करी नम्या, आरंभ्या नमवा तेह।
भारे करी गाढ़ा नम्या, सोभायमान है जेह॥

५५. विणमिय-पणमिय

'विणमिय' त्ति विशेषेण पुष्पफलभरेण नमितमितिकृत्वा विनमितं। 'पणमियत्ति' तेनैव नमयितुमारब्धत्वात् प्रणमितं। (वृ०-प० ३७)

५६. भलै प्रकारै नीपजवै करी, लूंबी मंजरई जेण।
अवतंस शिखर मुगट तणा, धरणहार वन तेण॥

५६. सुविभत्तपिंडिमंजरिवडेंसगधरे

५६. सुनिष्पन्नतया पिण्ड्यो—लुम्ब्यो मञ्जर्यश्च प्रतीतास्ता एवावतंसकाः—शेखरकास्तान् धारयति यत्तत्सुविभक्तपिण्डीमञ्जर्यवतंसकधरं। (वृ०-प० ३७)

५७. वन रूप लक्ष्मी करी, घणुं-घणुं अवलोय।
सोभायमान थको रहे, अति रमणीक सुजोय॥

५७. सिरीए अतीव-अतीव उवसोभेमाणे-उवसोभेमाणे चिट्ठइ

५८. एहवा सुंदर रमणीक छै, व्यंतर नां देवलोग।
धुर स्थिति दश सहंस वर्ष नीं, उत्कृष्ट पल्य प्रयोग॥

५८, ५९. एवामेव तेसिं वाणमंतराणं देवाणं देवलोगा जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठितीएहिं, उक्कोसेणं पलिओवमट्ठितीएहिं, बहूहिं वाणमंतरेहिं देवेहि य देवीहि य आइण्णा

५९. ते व्यंतर बहु देवता, देव्यां रा वृंद करि प्राप्त।
आप-आप तणी मर्याद नैं, अणउलंघवै करि व्याप्त॥

५९. देवानां देवीनां च वृन्दैरात्मीयात्मीयावासमर्यादानुल्लंघनेन व्याप्ताः। (वृ०-प० ३७)

६०. केइ आप आपणी मर्याद नैं, लांघी घणी भूमि लग व्याप्त।
देव-देवी क्रीडासक्त ते, ऊपर-ऊपर आच्छादित आप्त॥

६०. विति किण्णा उवत्थडा

६०. 'विइइन्न' त्ति तैरेव वृन्दैर्निजावाससीमोल्लंघनेन व्याप्ताः, 'उवत्थड' त्ति उपस्तीर्णाः अनवरतक्रीडासक्तैरुपर्युपरिच्छादिताः। (वृ०-प० ३७)

१. 'लंगुवण' यह पाठ न तो प्रतियों में मिलता है और न वृत्ति में व्याख्यात है। संभव है जयाचार्य को प्राप्त प्रति में यह पाठ हो और उसी के आधार पर जोड़ में लंगुवन का उल्लेख हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६१. ते क्रीड़ा करवै अन्यो अन्य मिल्या, साथरा ज्यूं घणी दूर।
आसन शयण रमण रसै, भोगवता थका मुख नूर॥

६२. प्रगट तथा प्रकाश त्यां, व्यंतर - समूह उदार।
तास किरण विस्तरवै करी, दूर गयो अंधकार॥

६३. सकल क्रीडा नां स्थान ते, थाप्यो भोगववा मन्न।
तिण करि अधोपणैं व्याप्त छै, प्रमोदवंत प्रसन्न॥

६४. एहवी सुर-लक्ष्मी करी, घणुं - घणुं सुप्रयोग।
सोभायमान थका रहै, एहवा व्यंतर नां देवलोग॥

६५. तिण अर्थे करि गोयमा, आखी इह विध वाय।
असंजती केइ देव ह्वै, कोइयक देव न थाय॥

६६. गौतम सुणनै बोलिया, सेवं भंते! सेवं भंत।
आप कह्यो तिमहीज छै, द्वि वच बहुमान हुंत॥

६७. वलि द्वि वच भक्ति अधिक करी, जिन वंदी करी नमस्कार।
संजम तप कर आतमा भावित विचरै तिवार॥

६८. ए प्रथम शतक प्रथम उदेसा तणी, आखी जोड उदार।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' संपति सार॥

६९. ढाल रसाल कही छठी, उगणीसै उगणीस वरस।
कृष्ण कार्त्तिक शनि चतुर्थी, सुजाणगढ़ सुख सरस॥

प्रथम शते प्रथमोद्देशकार्थः॥ १।१॥

६१. संथडा फुडा

६१. 'संथड' त्ति संस्तीर्णाः, संशब्दः परस्परसंश्लेषार्थः, ततश्च क्वचित्तैरेव क्रीडमानैरन्योऽन्यस्पर्द्धया समन्ततश्चलद्भिराच्छादिता 'फुड' त्ति स्पृष्टाः आसनशयनरमणपरिभोगद्वारेण परिभुक्ताः। (वृ०-प० ३७)

६२. स्फुटा वा—प्रकाशा व्यन्तरसुरनिकरकिरणविसरनिराकृतान्धकारतया। (वृ०-प० ३७)

६३. अवगाढगाढा

६३. 'अवगाढगाढ' त्ति गाढं—बाढमवगाढास्तैरेव सकलक्रीडास्थानपरिभोगनिहितमनोभिरधोऽपि व्याप्ताः। (वृ०-प० ३७)

६४. सिरीए अतीव-अतीव उवसोभेमाणा-उवसोभेमाणा चिट्ठंति।
एरिसगा णं गोयमा! तेसिं वाणमंतराणं देवाणं देवलोगा पण्णत्ता

६५. से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ— जीवे णं असंजए जाव देवे सिया। (श० १।५०)

६६, ६७. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरति (श० १।५१)

६६, ६७. अनेन भगवद्वचने बहुमानं दर्शयति, द्विर्वचनं चेह भक्तिसंभ्रमकृतमिति। (वृ०-प० ३८)

ढाल : ७

सोरठा

१. आख्यो प्रथम उदेश, हिव बीजो प्रारंभियै।
प्रथम उद्देश कथेस, कर्म - धर्म चलणादिके॥

२. ते कर्मनो ज विचार, अथवा दुख-हेतू करम।
ते दुख नों अधिकार, दूजै उद्देशै अछै॥

१,२. व्याख्यातः प्रथमोद्देशकः, अथ द्वितीय आरभ्यते, अस्य चैवं संबंधः—प्रथमोद्देशके चलनादिधर्मकं कर्म्म कथितं तदेवेह निरूप्यते, तथोद्देशकार्थसंग्रहिण्यां 'दुक्खे' त्ति यदुक्तं तदिहोच्यते। (वृ०-प० ३८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूहा

३. नगर राजगृह नै विषै, समवसरण वर्द्धमान।
परषद निर्गत जाव इम, गौतम बोल्या वान॥

३. रायगिहे नगरे समोसरणं। परिसा णिग्गया जाव एवं वयासी— (श० १।५२)

४. इक वच 'जीवे' हे प्रभु, स्वयं कृत दुख वेदंत?
दुखहेतुत्वात् कर्म दुख, प्रश्न तास पूछंत॥

४. जीवे णं भंते! सयंकडं दुक्खं वेदेइ?
४. दुःखहेतुत्वाद् 'दुःख' कर्म। (वृ०-प० ३८)

५. सांसारिक सुख पिण अछै, तत्व थकी दुख-राश।
वृत्तिकार कीधो इसो, दुख पद अर्थ विमास॥

५. सांसारिकं सुखमपि वस्तुतो दुःखमिति। (वृ०-प० ३८)

६. परकृत दुख वेदै नहीं, ते प्रसिद्ध पहिछान।
ते भणी स्वयंकृत दुःख नों, पूछै गौतम जान॥

६. यत्परकृतं तन्न वेदयतीति स्वयंकृतमिति पृच्छतिस्म। (वृ०-प० ३८)

*चित्त लगाय नै सांभलो। [ध्रुपदं]

७. जिन कहै स्वयंकृत कर्म ते, दुख नों हेतु कहंत हो। गोयम।
वेदै कोइ एक कर्म नैं, कोइ कर्म न वेदंत हो। गोयम॥

७. गोयमा! अत्थेगइयं वेदेइ, अत्थेगइयं नो वेदेइ। (श० १।५३)

हूं अरज करूं छूं विनती। [ध्रुपदं]

८. गोयम कहै किण कारणै, आख्यो एह उदंत हो। स्वामी।
वेदै कोइ एक कर्म नैं, कोइ कर्म न वेदंत हो?। स्वामी।

८. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—अत्थेगइयं वेदेइ? अत्थेगइयं नो वेदेइ?

९. जिन कहै—उदय आयो अछै, तेह कर्म नै वेदंत।
जे कर्म उदय आव्यो नहीं, ते तो नहीं भोगवंत॥

९. गोयमा! उदिण्णं वेदेइ नो अणुदिण्णं वेदेइ। (श० १।५४)

१०. इहां वृत्तिकार कह्यो इसो, अवश्य वेदवा योग्य।
ते पिण एक वेदै अछै, एक न वेदै प्रयोग्य॥

१०. न च बन्धानन्तरमेवोदेति अतोऽवश्यं वेद्यमप्येकं वेदयत्येकं न वेदयति इत्येवं व्यपदिश्यते। (वृ०-प० ३८)

दूहा

११. बंध अनंतर उदय नहिं, इम कह्यो टीकाकार।
बहुलपणै वच एह छै, इरियावहि मत धार॥

१२. *प्रदेश बंध जे कर्म छै, ते नियमा वेदंत।
अनुभाग कर्म कोइ भोगवै, कोइक नहिं भोगवंत॥

१२, १३. जं जं पएसकम्मं तं नियमा वेएइ जं पुण अणुभागकम्मं तं अत्थेगइयं वेएइ अत्थेगइयं णो वेएइ अतः प्रदेशोदयापेक्षयैवावश्यं वेद्यता कर्म्मण इति।

१३. अवस्य वेदवा योग्य ते, प्रदेश उदय इज होय।
अवस्य वेदवा योग्य नहिं, अनुभावे रस जोय॥

१४. अनुभाव रस विपाक ए, इहां नहिं तसुं प्रस्ताव।
कोइ अनुभाव वेदै नहीं, कोइ वेदै अनुभाव॥

१५. प्रदेश कर्म अछै तिको, अवस्य वेदवा योग्य।
ते उदय न आयो वेदै नहीं, वेदै उदय प्रयोग्य॥

१६. तिण अर्थे स्वकृत कर्म तैं, कोइ वेदै कोइ न वेद।
इमज चउवीसै दंडकै, इक वच आख्यो अखेद॥

१६. से तेणट्ठेणं गोयमा! वुच्चइ—अत्थेगइयं वेदेइ, अत्थेगइयं नो वेदेइ। (श० १।५४)
एवं चउव्वीसदंडएणं (श० १।५५)

*लय—हाथ जोड़ी विनती करू

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. इमज बहु जीवां आसरी, बहु वच दंडक चउबीस।
उदय न आयो वेदै नहीं, उदय आयो वेदै ईश॥

दूहा

१८. इहां वृत्तिकार कह्यो इसो, इक बहु वचन सरीस।
बलि बहु वच पूछण तणों स्यूं प्रयोजन दीस?॥

१९. उत्तर तेहनों इम कह्यो, किण इक वस्तू मांय।
इक वच बहु वच फर छै, तिम इहां पिण स्यूं थाय॥

२०. सम्यक्त्व स्थिति इक जीव री, छासठ सागर अधिक।
बहु वचने सदा काल छै, इम बहु ठांम कथिक॥

२१. हिवै आठूं कर्म में कह्यो, आयू कर्म प्रधान।
ते आश्री जीव दंडकै, इक वच बहु वच जान॥

२२. *हे प्रभु! इक जीव आसरी, स्वयं कृत आयु वेदंत?
कोइ वेदै को वेदै नहीं, ए जिन उत्तर तंत॥

२३. जिम दुख दंडक बे कह्या, तिम आयु ना पिण दोय।
एक वचन बहु वचन नां, जाव वैमानिक जोय॥

दूहा

२४. वृत्तिकार कह्यो वृद्ध नी, उक्त भावना एह।
वासुदेव सप्तम नरक, आयू - दल ग्रहणेह॥

२५. कालांतरे परिणाम थी, तीजी नरक प्रयोग्य।
निपजावी तिहां ऊपना, तेहनीं परि उपभोग्य॥

२६. पूर्व बंध्यो वेदै नहीं, उदय न आयो तेह।
उत्पन्न उदय वेदै सही, अनुभाव अपेक्षा एह॥

२७. हिव चउवीसै दंडकै, प्रश्न आहारादि पेख।
पूछै गोयम गणहरू, वारू विनय विशेख॥

२८. *हे भदंत! सर्व नेरइया, सरीखो आहार लै तास।
शरीर सर्व ना सारिखा, सम उसास-निस्वास?॥

२९. जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं, गोयम कहै किण अर्थ?
आहार शरीर उस्सास ते, सरिखा नहीं तदर्थ॥

३०. वीर कहै सुण गोयमा! नेरइया बे प्रकार।
महा - शरीर तणां धणी, अल्प - शरीरी विचार॥

३१. टीकाकार ओलखावियो, जघन्य थकी सुविचार।
अल्पपणुं आंगुल तणां, असंखेज्ज भाग धार॥

१७. गोयमा! उदिण्णं वेदेंति नो अणुदिण्णं वेदेंति...।
(श० १।५७)
एवं---जाव वेमाणिया (श० १।५८)

१८-२०. नन्वेकत्वे योऽर्थो बहुत्वेऽपि स एवेति किं बहुत्वप्रश्नेन? इति, अत्रोच्यते, क्वचिद्वस्तुनि एकत्वबहुत्वयोरर्थविशेषो दृष्टो यथा सम्यक्त्वादेः एकं जीवमाश्रित्य षट्षष्टिसागरोपमाणि साधिकानि स्थितिकाल उक्तो नानाजीवानाश्रित्य पुनः सर्वाद्धा इति, एवमत्रापि संभवेदिति शङ्कायां बहुत्वप्रश्नो न दुष्टः। (वृ०-प० ३८)

२१. अथायुःप्रधानत्वान्नारकादिव्यपदेशस्यायुराश्रित्य दंडकमाह---दंडगं। (वृ०-प० ३८)

२२. जीवे णं भंते! सयंकडं आउयं वेदेइ?
गोयमा! अत्थेगइयं वेदेइ, अत्थेगइयं नो वेदेइ।

२३. जहा दुक्खेणं दो दंडगा तहा आउएण वि दो दंडगा---एगत्तपोहत्तिया। (श० १।५९)

२४-२६. एतस्य चेयं वृद्धोक्तभावना---यदा सप्तमक्षितावायुर्बद्धं पुनश्च कालान्तरे परिणामविशेषात्तृतीयधरणीप्रायोग्यं निर्वर्त्तितं वासुदेवेनेव तत्तादृशमङ्गीकृत्योच्यते---पूर्वबद्धं कश्चिन्न वेदयति,अनुदीर्णत्वात्तस्य यदा पुनर्यत्नैव बद्धं तत्नैवोत्पद्यते तथा वेदयतीत्युच्यते, तथैव तस्योदितत्वादिति। (वृ०-प० ३८, ३९)

२७. अथ चतुर्विंशतिदण्डकमाहारादिभिर्निरूपयन्नाह---
(वृ०-प० ३९)

२८-३०. नेरइया णं भंते! सव्वे समाहारा? सव्वे समसरीरा? सव्वे समुस्सासनीसासा?
गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे। (श० १।६०)
से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ---नेरइया नो सव्वे समाहारा? नो सव्वे समसरीरा? नो सव्वे समुस्सासनीसासा? गोयमा! नेरइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा---महासरीरा य, अप्पसरीरा य।

३१. तत्र जघन्यम्---अल्पत्वमंगुलासंख्येयभागमात्रत्वम्। (वृ०-प० ४१)

*लय---हाथ जोड़ी विनती करूं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२. उत्कृष्ट तनु मोटो कह्यो, धनुष पंच सय मान।
भवधारणी अपेक्षया, तमतमा महातनु जान॥

३३. उत्तर-वेक्रिय जघन्य थी, आंगुल भाग संख्यात।
उत्कृष्टो सहस्र धनुष नों, सम शरीर किम थात?॥

३४. शरीर विषम कहिवै करी, सम नहिं आहार उस्सास।
आहार उस्सास न सारिखो, सर्व नारकी नों तास॥

३५. शरीर प्रश्न दूजो पूछियो, उत्तर प्रथम शरीर।
तनु अनु आहार उस्सास छै, सुख समझावण हीर॥

३६. महाशरीरी नेरइया, महादुखी थका धार।
तीव्र आहार अभिलाष ह्वै, ग्रहु पुद्गल लै आहार॥

३७. बहु पुद्गल तनु परिणमै, उसासपणैं ग्रहै धार।
निःश्वासपणैं मूकै सही, बहु पुद्गल तिणवार॥

३८. महाशरीरी प्राये लोक में, बहुलो करै आहार।
अल्पशरीरी अल्प लै, हस्ति शशकवत् धार॥

३९. बार-बार ते आहार लै, परिणमै वेस्वाद।
बार-बार उस्सास लै, दुख तै निश्वास बाध॥

४०. अल्पशरीरी नेरइया, अल्प पुद्गल आहारंत।
अल्प परणमै अल्प द्रव्य ही, उस्ससंत निश्वसंत॥

४१. कदाचित् ते आहार लै, कदाचित् परणमंत।
कदाचित् उस्सास लै, कदाचित् निश्वसंत॥

दूहा

४२. अपर्याप्त अल्प तनु छतां, लोम आहार करै नांय।
आहार कदा इण कारणै, ए टीका में वाय॥

४३. 'केइ कहै उत्पत्ति समय जे, आहार लिये अवलोय।
शरीर-पर्याय बांध्यां बिना, ओज आहार ते जोय॥

४४. शरीर-पर्याय बांध्यां पछै, अंगप्रत्यंग लै आहार।
लोम-आहार तेहनैं कहै, सर्वज्ञ जाणै सार॥

४५. विग्रह गति अणाहारोक ह्वै, तेह तणी अपेक्षाय।
कदाचित् आहार ले कह्यूं, ते पिण जाणै केवली न्याय॥

४६. उस्सास पर्याय बांध्यां विना, नहि लेवै उस्सास।
कदाचित् उस्सास ले, एहवूं दीसै तास॥

४७. प्रथम उद्देशा में कह्यो, उस्सासादिक ताय।
लिये निरंतर नेरिया, महाशरीर अपेक्षाय'॥

(ज० स०)

३२. उत्कृष्टं तु महत्त्वं पञ्चधनुःशतमानत्वम्, एतच्च भवधारणीयशरीरापेक्षया। (वृ-प० ४१)

३३-३५. उत्तरवैक्रियापेक्षया तु जघन्यमङ्गुलसंख्यातभागमात्रत्वम्, इतरत्तु धनुःसहस्रमानत्वमिति, एतेन च किं समशरीरा इत्यत्र प्रश्ने उत्तरमुक्तम्। शरीरविषमताऽभिधाने सत्याहारोच्छ्वासयोर्वैषम्यं सुखप्रतिपाद्यं भवतीति शरीरप्रश्नस्य द्वितीयस्थानोक्तस्यापि प्रथमं निर्वचनमुक्तम्। (वृ०-प० ४१)

३६, ३७. तत्थ णं जे ते महासरीरा ते बहुतराए पोग्गले आहारेंति, बहुतराए पोग्गले परिणामेंति, बहुतराए पोग्गले उस्ससंति, बहुतराए पोग्गले नीससंति।

३८. ये यतो महाशरीरास्ते तदपेक्षया बहुतरान् पुद्गलान् आहारयन्ति, महाशरीरत्वादेव, दृश्यते हि लोके बृहच्छरीरो बह्वाशी स्वल्पशरीरश्चाल्पभोजी, हस्तिशशकवत्। (वृ०-प० ४१)

३९-४१. अभिक्खणं आहारेंति, अभिक्खणं परिणामेंति, अभिक्खणं उस्ससंति, अभिक्खणं नीससंति।

तत्थ णं जे ते अप्पसरीरा ते णं अप्पतराए पोग्गले आहारेंति, अप्पतराए पोग्गले परिणामेंति, अप्पतराए पोग्गले उस्ससंति, अप्पतराए पोग्गले नीससंति; आहच्च आहारेंति, आहच्च परिणामेंति, आहच्च उस्ससंति, आहच्च नीससंति।

४२. अथवाऽपर्याप्तकालेऽल्पशरीराः सन्तो लोमाहारापेक्षया नाहारयन्ति। (वृ०-प० ४१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४८. *तिण अर्थे करि गोयमा, आखी एहवी - भास।
सम आहार नहिं नेरिया, सम न उसास निसास॥

४९. हे भदंत! सहु नेरइया, छै सरिखा कर्मवंत?।
जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं, किण अर्थे? गोयम पूछंत॥
५०. जिन कहै—द्विविध नेरइया, पूर्व ऊपनां न्हाल।
घणां काल नां ऊपनां, पछै उपन्न अल्पकाल॥
५१. पूर्वोत्पन्न बहु काल नां, अल्पकर्मी कहिवाय।
पछै ऊपनां नारकी, ते बहुकर्मी थाय॥

५२. घणां काल नां ऊपनां, त्यां दुख बहु भुगत्यो विशेष।
अल्पकर्मी इण कारणै, अल्प कर्म रह्या शेष॥
५३. थोड़ा काल नां ऊपनां, दुख बहु भुगत्यो नांहि।
बहुकर्मी इण कारणै, घणां कर्म रह्या तांहि॥
५४. पूर्वोत्पन्न पछै ऊपनां, सम स्थित नीं अपेक्षाय।
आयु नैं अन्य कर्म नों, अल्प बहुतपणुं थाय॥
५५. हे भदंत! सहु नेरिया, छै सरिखा वर्णवंत?।
जिन कहै—अर्थ समर्थ नहीं, किण अर्थे? गोयम पूछंत॥
५६. जिन कहै द्विविध नेरइया, पूर्व ऊपनां न्हाल।
घणां काल नां ऊपनां, पछै उपन्न अल्प काल॥
५७. पूर्वोत्पन्न बहु काल नां, विशुद्ध वर्ण कहिवाय।
पछै ऊपनां नारकी, अविशुद्ध वर्ण ताय॥

५८. हे भदंत! सहु नेरइया, छै सम लेस्यावंत?
जिन कहै—अर्थ समर्थ नहीं, किण अर्थे? गोयम पूछंत॥
५९. जिन कहै द्विविध नेरइया, पूर्व ऊपनां न्हाल।
घणां काल नां ऊपनां, पछै उपन्न अल्प काल।
६०. पूर्वोत्पन्न जे नेरइया, विशुद्ध लेस्यावंत।
पछै ऊपनां नारकी, ते अविशुद्ध लेश कहंत॥

६१. वृत्ति मध्ये लेस्या शब्द करि, भाव लेस्या इहां ग्राह्य।
पूर्वे वर्ण द्वारे करी, द्रव्य लेस्या कहि वाह्य॥
६२. हे भदंत! सर्व नेरइया, सरिखा वेदनवंत?
जिन कहै—अर्थ समर्थ नहीं, किण अर्थे? गोयम पूछंत॥

*लय—हाथ जोड़ी विनती करूं

४८. से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—नेरइया नो सव्वे समाहारा, नो सव्वे समसरीरा, नो सव्वे समुस्सास-नीसासा। (श० १।६१)

४९-५१. नेरइया णं भंते! सव्वे समकम्मा?
गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे। (श० १।६२)
से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—नेरइया नो सव्वे समकम्मा? गोयमा! नेरइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पुव्वोववन्नगा य, पच्छोववन्नगा य। तत्थ णं जे ते पुव्वोववन्नगा ते णं अप्पकम्मतरागा। तत्थ णं जे ते पच्छोववन्नगा ते णं महाकम्मतरागा। (श० १।६३)

५२. पूर्वोत्पन्नानामायुष्तदन्यकर्मणां च बहुतरवेदनादल्प-कर्मत्वम्। (वृ०-प० ४२)

५३. पश्चादुत्पन्नानां च नारकाणामायुष्कादीनामल्पतराणां वेदितत्वात् महाकर्म्मत्वम्। (वृ०-प० ४२)

५४. एतच्च सूत्रं समानस्थितिका ये नारकास्तानङ्गीकृत्य प्रणीतम्। (वृ०-प० ४२)

५५-५७. नेरइया णं भंते! सव्वे समवण्णा?
गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे। (श० १।६४)
से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—नेरइया नो सव्वे समवण्णा?
गोयमा! नेरइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पुव्वोववन्नगा य, पच्छोववन्नगा य। तत्थ णं जे ते पुव्वोववन्नगा ते णं विसुद्धवण्णतरागा।
तत्थ णं जे ते पच्छोववन्नगा ते णं अविसुद्धवण्णतरागा। (श० १।६५)

५८-६०. नेरइया णं भंते! सव्वे समलेस्सा?
गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे। (श० १।६६)
से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—नेरइया नो सव्वे समलेस्सा?
गोयमा! नेरइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पुव्वोववन्नगा य, पच्छोववन्नगा य। तत्थ णं जे ते पुव्वोववन्नगा ते णं विसुद्धलेस्सतरागा। तत्थ णं जे ते पच्छोववन्नगा ते णं अविसुद्धलेस्सतरागा। (श० १।६७)

६१. इह च लेश्याशब्देन भावलेश्या ग्राह्याः, बाह्यद्रव्यलेश्या तु वर्णद्वारेणैवोक्तेति। (वृ०-प० ४२)

६२, ६३. नेरइया णं भंते! सव्वे समवेयणा?
गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे। (श० १।६८)
से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—नेरइया नो सव्वे समवेयणा?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६३. जिन कहै - द्विविध नेरइया, सन्नी असन्नीभूत।
सन्नीभूत महावेदना, असन्नीभूत अल्प हूंत ।।

६४. वृत्तिकार इहां इम कह्यो, सम्यक् दर्शनवंत।
सण्णिभूत कहियै तसु, महावेदन ते वेदंत।
६५. तेहनैं पूर्व भव तणों, स्व कृत कर्म विपाक।
याद करी वेदै घणों, मानसीक दुख आक ।।
६६. सकल दुःख नैं क्षय करै, अर्हत् भाख्यो धर्म।
विषम विषय विष लोभियै, नवि कीधो तज भर्म ।।
६७. इम चिंतव दुख वेदै घणों, सण्णि-समदृष्टी पिछाण।
मिथ्याती असण्णिभूत ते, स्वकृत कर्म फल अजाण ।।

६८. अन्य आचार्य इम कहै, सण्णिभूत सण्णिजाय।
तीव्र असुभ अध्यवसाय थी, महानरके दुख पाय ।।
६९. असण्णिभूत असण्णि भवे, नहिं तीव्र असुभ अध्यवसाय।
रत्नप्रभा में ऊपजै, अल्प वेदना पाय ।।

७०. तथा सण्णिभूत पर्याप्ता, महावेदना तास।
असण्णिभूत अपर्याप्ता, वेदन अल्प विमास ।।

७१. हे भदंत! सर्व नेरइया, सम तुल्य क्रियावंत ?।
जिन कहै—अर्थ समर्थ नहीं, किण अर्थे ? गोयम पूछंत ।।

७२. जिन कहै—गौतम! सांभलै, नेरइया त्रि प्रकार।
समदृष्टी नैं मिच्छादिट्ठी, समामिच्छदिट्ठी धार ।।
७३. क्रिय चउ समदृष्टी तणैं, आरंभिया पहिछाण।
परिग्रहिया मायावत्तिया, अपचक्खाण नीं जाण ।।

७४. पंच क्रिया मिथ्याती तणैं, सममिच्छदिट्ठी रै पंच।
मिथ्यादर्शन री वधी, श्रद्धा ऊंधी विरंच ।।
७५. तिण अर्थे करि गोयमा! आखी एहवी वाय।
सगलाइ जे नेरइया, सम तुल्य क्रिया न थाय ।।

गोयमा ! नेरइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सण्णिभूया य, असण्णिभूया य। तत्थ णं जे ते सण्णिभूया ते णं महावेयणा। तत्थ णं जे ते असण्णिभूया ते णं अप्पवेयणतरागा। (श० १।६९)

६४-६७. 'सन्निभूय' त्ति संज्ञा—सम्यग्दर्शनं तद्वन्तः सञ्ज्ञिनः सञ्ज्ञिनो भूताः—सञ्ज्ञित्वं गताः सञ्ज्ञिभूताः। तेषां च पूर्वकृतकर्मविपाकमनुस्मरतामहो महद्दुःखसङ्कटमिदमकस्मादस्माकमापतितं न कृतो भगवदर्हत्प्रणीतः सकलदुःखक्षयकरो विषयविषमविषपरिभोगविप्रलब्धचेतोभिर्द्धर्म इत्यतो महद्दुःखं मानसमुपजायतेऽतो महावेदनास्ते, असञ्ज्ञिभूतास्तु मिथ्यादृष्टयः, ये तु स्वकृतकर्मफलमिदमित्येवमजानन्तोऽनुपतप्तमानसा अल्पवेदनाः स्युरित्येके। (वृ०-प० ४२)

६८, ६९. अन्ये त्वाहुः—सञ्ज्ञिनः—सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियाः सन्तो भूता—नारकत्वं गताः संज्ञिभूताः, ते महावेदनाः, तीव्राशुभाध्यवसायेनाशुभतरकर्मबन्धेन महानरकेषूत्पादात्, असंज्ञिभूतास्त्वनुभूतपूर्वासंज्ञिभवाः ते चासंज्ञित्वादेवात्यन्ताशुभाध्यवसायाभावाद्रत्नप्रभायामनतितीव्रवेदननरकेषूत्पादादल्पवेदनाः।
(वृ०-प० ४२)

७०. अथवा 'सञ्ज्ञिभूताः' पर्याप्तकीभूताः, असंज्ञिनस्तु अपर्याप्तकाः, ते च क्रमेण महावेदना इतरे च भवन्तीति प्रतीयत एवेति। (वृ०-प० ४२)

७१. नेरइया णं भंते ! सव्वे समकिरिया ?
गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे। (श० १।७०)
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—नेरइया नो सव्वे समकिरिया ?

७२. गोयमा ! नेरइया तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—सम्मदिट्ठी, मिच्छदिट्ठी, सम्मामिच्छदिट्ठी।

७३. तत्थ णं जे ते सम्मदिट्ठी तेसि णं चत्तारि किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—आरंभिया, पारिग्गहिया, मायावत्तिया, अप्पच्चक्खाणकिरिया।

७४, ७५. तत्थ णं जे ते मिच्छदिट्ठी तेसि णं पंच किरियाओ कज्जंति, तं जहा—आरंभिया, पारिग्गहिया, मायावत्तिया, अप्पच्चक्खाणकिरिया, मिच्छादंसणवत्तिया। एवं सम्मामिच्छदिट्ठीणं पि। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—नेरइया नो सव्वे समकिरिया ।।
(श० १।७१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७६. हे भदंत ! सर्व नेरइया, सम तुल्य आयुवंत ? ।
एक समय साथै ऊपना, ते समोववण्णगा कहंत ?।।

७७. जिन कहै—अर्थ समर्थ नहीं, गोयम कहै किण न्याय ?
जिन कहै—चउविध नेरइया, सुण तूं चित्त लगाय ।।

७८. केइ सम आयु साथै ऊपनां, कै समायु विषम उपपन्न ।
केइ विषम आयु सम ऊपनां, के विषमायु विषमोत्पन्न ।।

७६-७८. नेरइया णं भंते ! सव्वे समाउया ? सव्वे समोववन्नगा ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । (श० १।७२)
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—नेरइया नो सव्वे समाउया ? नो सव्वे समोववन्नगा ?
गोयमा ! नेरइया चउव्विहा पण्णत्ता तं जहा—१. अत्थेगइया समाउया समोववन्नगा, २. अत्थेगइया समाउया विसमोववन्नगा, ३. अत्थेगइया विसमाउया समोववन्नगा, ४. अत्थेगइया विसमाउया विसमोववन्नगा । (श० १।७३)

७९. आहार शरीर उस्सास लि, कर्म, वर्ण, लेश अंग ।
वेदन, क्रिया, समायुष, सम उपपन्न चउभंग ।।

७९. आहाराईसु समा कम्मे वन्ने तहेव लेसाए ।
वियणाए किरियाए आउय उववत्ति चउभंगी ।। (वृ०-प० ४३)

८०. हे प्रभु ! असुरकुमार सहु, समाहार संगीत ? ।
जेम नारकी तिम भणो, णवरं कर्म, वर्ण, लेश विपरीत ।।

८०. असुरकुमारा णं भंते ! सव्वे समाहारा ? सव्वे समसरीरा ?
जहा नेरइया तहा भाणियव्वा, नवरं—कम्म-वण्ण-लेस्साओ परिवत्तेयव्वाओ । (श० १।७४)

८१. वृत्तिकार इहां इम कह्यूं, आहारक सूत्रे जोय ।
नेरिया ज्यूं भणवो कह्यो, पिण ए विशेष अवलोय ।।
जय-जय ज्ञान जिनेन्द्र नों । (ध्रुपदं)

८१. तत्राहारकसूत्रे नारकसूत्रसमानेऽपि भावना विशेषेण लिख्यते— (वृ०-प० ४३)

८२. असुरकुमार नैं अल्प-तनु, भवधारिणी अपेक्षाय ।
जघन्य थकी आंगुल तणों, असंखेज भाग थाय ।।

८३. महाशरीर उत्कृष्ट थी, सप्त हस्त प्रमाण ।
ए पिण भवधारिणी तणों, हिव उत्तर-वैक्रिय जाण ।।

८४. अल्पशरीर जघन्य थकी, आंगुल भाग संख्यात ।
महाशरीर उत्कृष्ट थी, जोजन लक्ष विख्यात ।।

८२-८४. असुरकुमाराणामल्पशरीरत्वं भवधारणीयशरीरापेक्षया जघन्यतोऽङ्गुलासंख्येयभागमानत्वं, महाशरीरत्वं तूत्कर्षतः सप्तहस्तप्रमाणत्वम्, उत्तरवैक्रियापेक्षया त्वल्पशरीरत्वं जघन्यतोऽङ्गुलसंख्येयभागमानत्वं महाशरीरत्वं तूत्कर्षतो योजनलक्षमानमिति ।(वृ०-प० ४३)

८५. महाशरीरी असुर ते, बहु पुद्गल आहारंत ।
मनोभक्षण आहारपेक्षया, सुर मनभक्षी कहंत ।।

८६. बलि प्रधान अपेक्षया, सूत्र विषै अवलोय ।
वस्तु नो निर्देश छै, अति शुभ पुद्गल जोय ।।

८५-८७. तत्रैते महाशरीरा बहुतरान् पुद्गलानाहारयन्ति, मनोभक्षणलक्षणाहारापेक्षया, देवानां ह्यसौ स्यात् प्रधानश्च, प्रधानापेक्षया च शास्त्रे निर्देशो वस्तूनां विधीयते, ततोऽल्पशरीरग्राह्याहारपुद्गलापेक्षया बहुतरांस्ते तानाहारयन्तीत्यादि प्राग्वत् । (वृ०प० ४३)

८७. असुर अल्प-तनु आहार लें, ते आहार तणी अपेक्षाय ।
महा-तनु बहु पुद्गल तणां, आहार लियै वर न्याय ।।

८८. महाशरीरी असुर ते, वार-बार लै आहार ।
वार-बार उस्सास लै, तसुं इम न्याय विचार ।।

८९. जघन्य आहार चोथ भक्त थी, सात थोक थी उस्सास ।
ते आश्री बार-वार लै, आहार उस्सास विमास ।।

९०. उत्कृष्ट वर्ष सहंस अधिक थी, असुर आहार सुविचार ।
पक्ष जाझेरे उस्सास लै, ते आश्री कह्यूं बार-बार ।।

८८-९०. अभीक्ष्णमाहारयन्ति अभीक्ष्णमुच्छ्वसन्ति च इत्यत्र ये चतुर्थादिरुपर्याहारयन्ति स्तोकसप्तकादेश्चोपर्युच्छ्वसन्ति तानाश्रित्याभीक्ष्णमित्युच्यते, उत्कर्षतो ये सातिरेकवर्षसहस्रस्योपरि आहारयन्ति सातिरेकपक्षस्य चोपर्युच्छ्वसन्ति तानंगीकृत्य एतेषामल्पकालीनाहारोच्छ्वासत्वेन पुनः पुनराहारयन्तीत्यादिव्यपदेशविषयत्वादिति । (वृ०-प० ४३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९१. अल्पशरीरी असुर ते, अल्प द्रव्य आहारै तेम।
पुद्गल अल्प उस्सास लै, नरक अल्प-तनु जेम॥

९२. पूर्व ऊपनां असुर नै, महाकर्म अशुद्ध वरण।
अविशुद्ध लेस्या तेहनी, बहु कर्म कंदर्प करण॥
९३ घणां काल ना ऊपनां, पुन्य कर्म बहु क्षीण।
तन वर्ण शुभ हीणो हुवै, भाव लेस्या पिण हीण॥
९४. पछै ऊपनां असुर नै, अल्पकर्म कहिवाय।
बहुल कर्म अणबांधवै, शुभ वर्ण लेश्या थाय॥

९५. सण्णिभूत नै महावेदना, चरण विराधना पाप।
तेह थकी अति ऊपनो, चित्त मांहै संताप॥
९६. तथा सण्णिभूत सण्णि मर थया, तथा पर्याप्त संजूत।
महावेदन शुभ वेदना, अल्प वेदन असण्णिभूत॥
९७. असुरकुमार तणीं परै, जावत् थणियकुमार।
आहार अनैं उस्सास ते, कहियै स्थिति अनुसार॥
९८. पुढवीकाइया जीव नै, आहार कर्म वर्ण लेश।
नरक तणी पर जाणज्यो, ए चउ सूत्र अशेष॥
९९. वृत्तिकार इहां इम कह्यूं, पृथ्वीकाय नी जान।
असंख भाग अंगुल तणो, तनु-अवगाहन मान॥
१००. पन्नवण पंचम पद मझै, पृथ्वीकाय मांहोमांहि।
अवगाहणा आश्री कह्या, चउट्ठाणवडिया ताहि।
१०१ महाशरीर लोम-आहार थी, बहु पुद्गल लै आहार।
बहु पुद्गल उस्सास लै, निरंतर ते वार-वार॥
१०२. अल्प-तनु अपर्याप्तपणैं, अल्प द्रव्य आहार उस्सास।
कदाचित् आहार उस्सास ते, न्याय नरक जिम तास॥

१०३. हे भदंत ! पृथ्वीकाइया, सहु सम वेदनवंत?
हंता छै समवेदना, किण अर्थे? गोयम पूछंत॥
१०४. जिन कहै—सहु पृथ्वीकाइया, असण्णिभूत मन-रहीत।
संचित कर्म अजाणता, वेदै सम इण रीत॥
१०५. तिण अर्थे करि गोयमा! अजाणपणा नी पेक्षाय।
सगला पृथ्वीकाइया, सम वेदै इण न्याय॥

१०६. हे भदंत ! पृथ्वीकाइया, सहु सम किरियावंत।
हंता सम क्रियावंत छै, किण अर्थे? गोतम पूछंत॥

९१. तथाऽल्पशरीरा अल्पतरान् पुद्गलानाहारयन्ति उच्छ्वसन्ति च अल्पशरीरत्वादेव।
(वृ०-प० ४३)

९२-९४. असुरास्तु ये पूर्वोत्पन्नास्ते महाकर्माणोऽशुद्धवर्णा अशुभतरलेश्याश्चेति, कथम्?, ये हि पूर्वोत्पन्ना असुरास्तेऽतिकन्दर्पदर्पाध्मातचित्तत्वान्नारकानेकप्रकारया यातनया यातयन्तः प्रभूतमशुभं कर्म संचिन्वन्तीत्यतोऽभिधीयन्ते ते महाकर्माणः, पूर्वोत्पन्नानां हि क्षीणत्वात् शुभकर्मणः शुभवर्णादयः—शुभो वर्णो लेश्या च ह्रसतीति, पश्चादुत्पन्नास्त्वबद्धायुषोऽल्पकर्माणो बहुतरकर्मणामबन्धनादशुभकर्म्मणामक्षीणत्वाच्च शुभवर्णादयः स्युरिति। (वृ०-प० ४३)

९५, ९६. ये सञ्ज्ञिभूतास्ते महावेदनाः, चारित्रविराधनाजन्यचित्तसन्तापात्, अथवा सञ्ज्ञिभूताः सञ्ज्ञिपूर्वभवाः पर्याप्ता वा ते शुभवेदनामाश्रित्य महावेदना इतरे त्वल्पवेदना इति। (वृ०-प० ४३, ४४)

९७. एवं—जाव थणियकुमारा। (श० १।७५)

९८. पुढविकाइयाणं आहार-कम्म-वण्ण-लेस्सा जहा णेरइयाणं। (श० १।७६)

९९-१०१. पृथिवीकायिकानामंगुलासंख्येयभागमात्रशरीरत्वेऽप्यल्पशरीरत्वम् इतरच्चेत आगमवचनादवसेयम् 'पुढविक्काइयस्स ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए' त्ति, ते च महाशरीरा लोमाहारतो बहुतरान् पुद्गलानाहारयन्तीति उच्छ्वसन्ति च अभीक्ष्णं महाशरीरत्वादेव। (वृ०-प० ४४)

१०२. अल्पशरीराणामल्पाहारोच्छ्वासत्वमल्पशरीरत्वादेव, कादाचित्कत्वं च तयोः पर्याप्तकेतरावस्थापेक्षमवसेयम्। (वृ०-प० ४४)

१०३-१०५. पुढविकाइया णं भंते! सव्वे समवेदणा?
हंता गोयमा! पुढविकाइया सव्वे समवेदणा।
से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—पुढविकाइया सव्वे समवेदणा?
गोयमा! पुढविकाइया सव्वे असण्णी असण्णिभूतं अणिदाए वेदणं वेदेंति।
से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—पुढविकाइया सव्वे समवेदणा। (श० १।७७, ७८)

१०६, १०७. पुढविकाइया णं भंते! सव्वे समकिरिया?
हंता गोयमा! पुढविकाइया सव्वे समकिरिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०७. जिन कहै—सहू पृथ्वीकाइया, मायी मिथ्यादृष्ट।
निश्चै पंच किया तसु, आरंभियादि अनिष्ट॥

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—पुढविकाइया सव्वे समकिरिया ?
गोयमा ! पुढविकाइया सव्वे मायीमिच्छदिट्ठी। ताणं णेयनियाओ पंच किरियाओ कज्जंति, तं जहा—आरंभिया जाव मिच्छादंसणवत्तिया।
(श० १।७६, ८०)

१०८. निश्चै पंच कहिवै करी, तीन तथा हुवै च्यार।
इम ओछी कहिवी नहीं, लीजै न्याय विचार॥

१०८. पृथ्वीकायिकानां नैयतिक्यो—नियताः न तु त्रिप्रभृतय इति, पंचैवेत्यर्थः। (वृ०-प० ४४)

१०९. तिण अर्थे करि गोयमा ! आखी एहवी वाय।
सगला पृथ्वीकाइया, सम क्रियावंत थाय॥

१०९. से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—पुढविकाइया सव्वे समकिरिया। (श० १।८०)

११०. सम आयु सम ऊपना, नरक तणीं पर न्हाल।
जिम कह्या पृथ्वीकाइया, तिम जाव चउरिंद्री संभाल॥

११०. समाउया, समोववन्नगा जहा नेरइया तहा भाणियव्वा। जहा पुढविकाइया तहा जाव चउरिंदिया।
(श० १।८१, ८२)

१११. 'बेइंद्री तेइंद्री चोरिंद्री, क्रिया नै अधिकार।
भलावण पृथ्वीकाय नी, बुद्धिवंत न्याय विचार॥

११२. पृथ्वीकाय में पाठ ए, सर्व माया मिथ्यादृष्ट।
पंच क्रिया तेहनै अछै, इहां पिण तेम सुदृष्ट॥

११३. बेइंद्री तेइंद्री चोरिंद्री, जे सर्व मिथ्याती में पच।
कथन नहीं सास्वादन तणो, इक ए न्याय सुसंच॥

११४. अथवा वमती सम्यक्त ए, कडेमाणे कडे न्याय।
कदा लागे क्रिया मिथ्यात नी, सर्वज्ञ वदे ते सत्य वाय'॥
(ज० स०)

११५. वृत्तिकार इहां इम कह्यूं, महा अल्प तनु जाण।
निज-निज जे अवगाहना, तिण अनुसार पिछाण॥

११५. इह महाशरीरत्वमितरच्च स्वस्वावगाहनाऽनुसारेणावसेयम्। (वृ०-प० ४४)

११६. बलि बेइंद्रियादिक तणा, प्रक्षेप आहार पिण होय।
ते आश्री बहु द्रव्य ग्रहै, महाशरीरी जोय॥

११६. आहारश्च द्वीन्द्रियादीनां प्रक्षेपलक्षणोऽपीति। (वृ०-प० ४४)

११७. तिर्यंच पंचेंद्री तणैं, नरक जेम कहिवाय।
पिण क्रिया में फेर छै, आगल कहिस्यै ताय॥

११७. पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जहा णेरइया, णाणत्तं किरियासु। (श० १।८३)

११८. वृत्तिकार कह्यूं महा-तनु, वार-वार लै आहार।
संखेज्ज वर्षायु पेक्षया, असंख वर्षायु म धार॥

११९. असंख वर्ष आयु नां धणी, पंचेंद्री तिर्यंच।
छठ भक्त सूं आहार लै, ते इहां न गिण्या संच॥

११८-१२१. नवरमिह महाशरीरा अभीक्ष्णमाहारयन्ति उच्छ्वसन्ति चेति यदुच्यते तत्सङ्ख्यातवर्षायुष्कापेक्ष्येत्यवसेयं, तथैव दर्शनात्, नासङ्ख्यातवर्षायुषः, तेषां प्रक्षेपाहारस्य षष्ठस्योपरि प्रतिपादितत्वात्, अल्पशरीराणां त्वाहारोच्छ्वासयोः कादाचित्कत्वं वचनप्रामाण्यादिति, लोमाहारापेक्षया तु सर्वेषामप्यभीक्ष्णमिति घटत एव। (वृ०-प० ४४)

१२०. अल्प-तनु आहार उस्सास ते, कदाचित् कहिवाय।
थी जिन-वचन प्रमाण थी, सद्दहिवूं मन मांय॥

१२१. लोम-आहार नी अपेक्षया, सर्व तणैं इम वाय।
अभिक्खणं वार-वार ते, अंतर रहित ए न्याय॥

१२२. अल्पशरीराणां तु यत्कादाचित्कत्वं तदपर्याप्तिकत्वे लोमाहारोच्छ्वासयोरभवनेन पर्याप्तिकत्वे च तद्भावेनावसेयमिति। (वृ०-प० ४४)

१२२. अल्प-तनु नैं कदाचित् कह्यूं, अपर्याप्तपणैं जोय।
आहार-पर्या बांध्या बिना, लोम उस्सास न होय॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२३. 'साहरण हुवां पछै लहै, केवलज्ञान प्रधान।
तिण सूं केवली रो साहरण कह्यो, शतक पचीसमें जान ।।
१२४. तिम विग्रहगतिया जीव नुं, ते अल्प तनु होणहार।
ते वाटै वहिता थकां, अणाहारक अवधार ।।
१२५. आहार प्रमुख बांध्यां पछै, लेवै आहार उस्सास।
कदाचित् इण कारण कह्यु, ते पिण जाणै केवली तास' ।।
(ज० स०)

१२६. कर्म सूवे पूर्व ऊपनां, अल्प कर्म तसुं थाय।
पछै ऊपनां ते महाकर्मी, निसुणो तेहनों न्याय ।।
१२७. ते आउखादिक तद्भवे, कर्म भोगविवा योग्य।
तेह कर्म नीं अपेक्षया, समुच्चय वचन प्रयोग्य ।।
१२८. तथा वर्ण लेश्या सूत्र नें विषै, पूर्व उप्पन्न पिछाण।
शुभ वर्णादिक तसुं कह्यु, तरुणपणै क्रांति जाण ।।
१२९. पछै ऊपनां तेहनैं, अशुद्ध वर्णादि देख।
बालपणै सूगावणो, प्रत्यक्ष ही संपेख ।।
१३०. हे प्रभु ! तिर्यंच पंचेंद्री, सहु सम किरियावंत।
जिन कहै—अर्थ समर्थ नहीं, किण अर्थे ? गोयम पूछंत ।।
१३१. जिन कहै—तिर्यंच पंचेंद्रिय, तीन प्रकार पिछाण।
समदिट्ठी नें मिच्छदिट्ठी, सम्मामिच्छदिट्ठी जाण ।।

१३२. समदृष्टी द्विविधि कह्या, असंजती अवलोय।
वलि संजतासंजती, ए श्रावक पद जोय ।।
१३३. श्रावक रै क्रिया तीन है, आरंभिकी कहिवाय।
परिग्गहिकी मायावत्तिया, अव्रत खंध थी नांय ।।

सोरठा

१३४. 'पंचम अंग पिछाण, दशम शते उद्देश धुर।
पूरव दिशि में जाण, कह्यु धर्मास्तिकाय नहीं ।।
१३५. ते पूरव दिशि मांहि, धर्मास्ति संपूर्ण नहीं।
इम खंध आश्यो नांहि, पिण देश अछै धर्मास्ति नुं ।।
१३६. तिम श्रावक रै जाण, संपूरण अविरत नथी।
तिण सूं अपच्चक्खाण-क्रिया खंध आश्रयी नहीं ।।
१३७. अथवा विदिशि विषेह, नो जीवे ए जीव नहीं।
आख्यो खंध न जेह, पिण देश अछै जीवां तणुं ।।
१३८. तिम श्रावक रै जाण, अविरत पिण आखी नथी।
देश थकी पहिछाण, अविरत छै पंचम गुणे ।।

१२६, १२७. कर्मसूत्रे यत्पूर्वोत्पन्नानामल्पकर्मत्वमितरेषां तु महाकर्मत्वं तदायुष्कादितद्भववेद्यकर्मापेक्षयाऽवसेयम्। (वृ०-प० ४४)

१२८, १२९. तथा वर्णलेश्यासूत्रयोर्यत्पूर्वोत्पन्नानां शुभवर्णाद्युक्तं तत्तारुण्यात् पश्चादुत्पन्नानां चाशुभवर्णादि बाल्यादवसेयं, लोके तथैव दर्शनादिति ।(वृ०-प० ४४)

१३०, १३१. पंचिंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते ! सव्वे समकिरिया ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—पंचिंदियतिरिक्खजोणिया नो सव्वे समकिरिया ?
गोयमा ! पंचिंदियतिरिक्खजोणिया तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—सम्मदिट्ठी, मिच्छदिट्ठी, सम्मामिच्छदिट्ठी।

१३२, १३३. तत्थ णं जे ते सम्मदिट्ठी ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—असंजया य, संजयासंजया य। तत्थ णं जे ते संजयासंजया, तेसि णं तिण्णि किरियाओ कज्जंति, तं जहा—आरंभिया, पारिग्गहिया, मायावत्तिया।
(श० १।८४, ८५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३९. सतरम शत विख्यात, उद्देश धुर श्रावक भणी।
संजतासंजती ख्यात, बालपंडित वलि आखियो ॥'
(ज० स०)

१४०. *असंजती रै चउ क्रिया, अधिको ए अपचक्खाण।
मिच्छदिट्ठी समामिच्छदिट्ठी, पंच - पंच पहिछाण ॥

१४०. असंजयाणं चत्तारि । मिच्छदिट्ठीणं पंच । सम्मामिच्छदिट्ठीणं पंच। (श० १।८५)

१४१. मनुष्य नेरइया नी परै, पिण इतलो फेर विचार।
महा-तनु बहु द्रव्य आहार लै, आहच्च—कदाचित् आहार ॥
१४२. अल्प-तनु अल्प द्रव्य आहार लै, अभिक्खणं बार-बार।
शेष नारकी नीं परै, जाव वेदना विचार[1] ॥

१४१, १४२. मणुस्सा जहा णेरइया णवरं जे महासरीरा ते बहुतराए पोग्गले आहारेंति आहच्च आहारेंति। जे अप्पसरीरा ते अप्पतराए पोग्गले आहारेंति अभिक्खणं आहारेंति, सेसं जहा नेरइयाणं जाव वेयणा।
(श० १।८६-९५)

१४३. वृत्तिकार कह्यूं नारकी, महा-तनु अभिक्खणं आहार।
मनुष्य सूत्रे महा-तनु, आहच्च आहार प्रकार ॥
१४४. महा - तनु देवकुर्वादिक, कदाचित् ले आहार।
कवल आहार अपेक्षया, अट्ठम भक्त उदार ॥
१४५. अल्प-तनु मनुष्य अभिक्खणं, अल्प द्रव्य देखो बाल।
वलि समुच्छिम निरंतर लियै, बार - बार ते न्हाल ॥
१४६. पूर्व ऊपनां मनुष्य ते, सुद्ध वर्णादिक गम्म।
तरुणपणें कांति अति हुवै, तथा समुच्छिम पेक्षा प्रथम्म ॥
१४७. पूर्व ऊपनां मनुष्य रै, तसु पुद्गल समुच्छिम।
पछै ऊपनां तेहनी, अपेक्षाय अवगम्म ॥

१४३-१४६. 'अभिक्खणं आहारेंती' त्यधीतम्, इह तु 'आहच्चे' त्यधीयते, महाशरीरा हि देवकुर्व्यादिमिथुनकाः, ते च कदाचिदेवाहारयन्ति कावलिकाहारेण, 'अट्ठमभत्तस्स आहारो' त्ति—वचनात्, अल्पशरीरास्त्वभीक्ष्णमल्पं च, बालानां तथैव दर्शनात् संमूर्च्छिममनुष्याणामल्पशरीराणामनवरतमाहारसम्भवाच्च, यच्चेह पूर्वोत्पन्नानां शुद्धवर्णादि तत्तारुण्यात् संमूर्च्छिमापेक्षया वेति। (वृ०-प० ४४, ४५)

१४८. हे भदंत ! सर्व मनुष्य ते छै सम - क्रियावंत।
जिन कहै—अर्थ समर्थ नहीं, किण अर्थे ? गोयम पूछंत ॥
१४९. जिन कहै—मनुष्य त्रिविध कह्या, समदृष्टि पहिछाण।
मिथ्यादृष्टि मनुष्य वलि, सममिच्छदिट्ठी जाण ॥

१४८, १४९. मणुस्सा णं भंते ! सव्वे समकिरिया ?
गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—मणुस्सा नो सव्वे समकिरिया ?
गोयमा ! मणुस्सा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—सम्मदिट्ठी, मिच्छदिट्ठी, सम्मामिच्छदिट्ठी।
(श० १।९६, ९७)

१५०. समदृष्टि त्रिविध कह्या, सजती नवगुण[2] इष्ट।
संजतासंजती पंचमैं, असंजती समदृष्ट ॥
१५१. सजती ते द्विविध कह्या, सराग नैं वीतराग।
वीतराग रै नहिं क्रिया, आरंभियादि न लाग ॥

१५०, १५१. तत्थ णं जे ते सम्मदिट्ठी ते तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—संजया, असंजया, संजयासंजया। तत्थ णं जे ते संजया ते दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—सरागसंजया य, वीतरागसंजया य। तत्थ णं जे ते वीतरागसंजया, ते णं अकिरिया।

---

*लय—हाथ जोड़ी विनती करूं

१. मनुष्य पंचेन्द्रिय के आहार, कर्म, वर्ण, लेश्या और वेदना के संबंध में प्रतियों में संक्षिप्त पाठ है। वहां 'सेसं जहा नेरइयाण जाव वेयणा' कहकर समग्र वर्णन को संक्षिप्त कर दिया है। उस संक्षिप्त पाठ के आधार पर जोड़ की गई है। अंगसुत्ताणि भाग २ में जाव की पूर्ति कर पूरा पाठ लिया गया है।

२. गुणस्थान—संयती में छठे गुणस्थान से लेकर १४वें गुणस्थान तक नौ गुणस्थान होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५२. सराग संजती द्विविधा, प्रमत्त नैं अप्रमत्त।
अप्रमत्त नैं इक क्रिया, मायावत्तिया तत्थ॥

१५३. प्रमत्त संजत नैं वे क्रिया, आरंभिया नैं माय[1]।
संजतासंजत त्रिण क्रिया, परिग्रह नीं अधिकाय॥

१५४. असजति रै चउ क्रिया, अधिकी अपचक्खाण।
मिच्छदिट्ठी सममिच्छदिट्ठी, पंच - पंच पहिछाण[2]।

१५२-१५४, तत्थ णं जे ते सरागसंजया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा---पमत्तसंजया य, अप्पमत्तसंजया य। तत्थ णं जे ते अप्पमत्तसंजया, तेसि णं एगा मायावत्तिया किरिया कज्जइ। तत्थ णं जे ते पमत्तसंजया, तेसि णं दो किरियाओ कज्जंति, तं जहा---आरंभिया य, मायावत्तिया य। तत्थ णं जे ते संजयासंजया, तेसि णं आइल्लाओ तिण्णि किरियाओ कज्जंति, तं जहा---आरंभिया, पारिग्गहिया, मायावत्तिया। असंजयाणं चत्तारि किरियाओ कज्जंति---आरंभिया पारिग्गहिया, मायावत्तिया, अप्पच्चक्खाणकिरिया। मिच्छदिट्ठीणं पंच आरंभिया, पारिग्गहिया, मायावत्तिया, अप्पच्चक्खाणकिरिया, मिच्छादंसणवत्तिया। सम्मामिच्छदिट्ठीणं पंच। (श० १। ९७)

१५५. व्यंतर असुर तणी परै, इम जोतिषि विमाण[3]।
नवरं इतो विशेष है, वेदना में पहिछाण॥

१५६. माई मिथ्यादृष्टि ऊपनां, अल्प - वेदनवंत।
अमाई समदृष्टि ऊपनां, महा - वेदन वेदंत॥

१५५, १५६. वाणमंतर-जोतिस-वेमाणिया जहा असुरकुमारा, नवरं वेयणाए णाणत्तं---मायिमिच्छदिट्ठीउववन्नगा य अप्पवेयणतरा, अमायिसम्मदिट्ठिउववन्नगा य महावेयणतरा भाणियव्वा जोतिसवेमाणिया। (श० १।१००)

१५७. असुर विषै महा वेदना, सण्णिभूत नैं ताय।
चरण विराधन थी निकै, मानसीक दुख पाय॥

१५८. तिम इहां पिण संभवै, सम्यक्त्व चरण विराध।
जोतिषि नैं वैमानिक मझै, ऊपनो चित असमाध॥

१५९. आगम ना अनुसार थी, जोतिषि वैमानीक।
असन्नी तिहां नहिं ऊपजै, णवरं पाठ तहतीक॥

१६०. माई - मिथ्यादृष्टि ऊपनां, अल्प वेदन सुभ तास।
अमाई - समदृष्टि रै, महासुभ वेदन जास॥

१५९, १६०. ज्योतिष्कवैमानिकेषु त्वसञ्ज्ञिनो नोत्पद्यन्तेऽतो वेदनापदे तेष्वधीयते 'दुविहा जोतिसिया---मायिमिच्छदिट्ठी उववन्नगा य' त्यादि, तत्र मायिमिथ्यादृष्टयोऽल्पवेदना इतरे च महावेदनाः शुभवेदनामाश्रित्येति। (वृ०-प० ४५)

१. मायावत्तिया।

२. इसके बाद मनुष्यों के आयुष्य और उत्पत्ति के संबंध में प्रश्न है, पर टिप्पण संख्या ६२ में सांकेतिक पाठ 'सेसं जहा नेरइयाणं जाव वेयणा' में उक्त प्रश्नों का समर्पण कर आयुष्य और उत्पत्ति के पाठ को पृथक् रूप से उल्लिखित नहीं किया। किन्तु उक्त संक्षिप्त पाठ के बाद क्रिया का पाठ अलग लिया है, क्योंकि क्रिया-सूत्र में नैरयिक के आलापक से कुछ भिन्नता है। आयुष्य और उत्पत्ति के संबंध में भिन्नता तो नहीं है, पर यह पाठ क्रिया के बाद है और संक्षिप्त पाठ में 'जाव वेयणा' कहा गया है। वेयणा तक क्रिया, आयुष्य और उत्पत्ति ये तीनों नहीं आते हैं, इसलिए यहां इनका स्वतंत्र उल्लेख होना चाहिए था, पर टीकाकार इस संबंध में मौन है। जयाचार्य ने भी अपनी जोड़ में इसी क्रम को अपनाया है। अंगसुत्ताणि भाग-२ में पूरा पाठ लिया गया है, इसलिए उसके शतक १ सूत्र ९८, ९९ की जोड़ अनुपलब्ध है। देखें---अंगसुत्ताणि भाग-२, पृ० २२, टिप्पण संख्या २।

३. वैमानिक देवता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६१. हिव समुच्चय सलेसी तणो, वलि कृष्णादि छ लेस।
आहारादिक नव पद करि, दंडक ऊपर कहेस॥

१६२. प्रभु ! सलेसी नेरइया, सगलां रै सम आहार।
वृत्तिकार इहां इम कह्यूं, नव पद कहियै विचार॥

१६३. आहार शरीर उस्सास नैं, कर्म वर्ण नैं लेस।
समवेदन क्रिया वलि, समायु सुविशेष॥

१६४. ए नव पद सलेसी नेरइया, असुर सलेसी एम।
जाव सलेसी वेमानिक, नव-नव पद ओघ जेम॥

१६५. कृष्ण आदि षट लेस नैं, नव पद सहित विचार।
यथासंभव दंडक ऊपरै, कहिवो वलि अधिकार॥

१६६. औधिक पूर्वे कह्या अछै, नरकादिक चउवीस।
सलेसी शुक्ललेसिए, त्रिहुं इक गमा सरीस॥

१६७. पंचेंदिय तिर्यंच ते, मनुष्य अनै वेमानीक।
शुक्ल लेस्या एहनैं विषै, अन्य दंडक न कथीक॥

१६८. कृष्ण नील लेस्या विषै, एहिज गमा देख।
औधिक पाठ तणी परै, पिण णवरं इतो विशेष॥

१६९. वेदना में कहिवो इसुं, माइ - मिथ्याती उपन्न।
अमाइ - समदृष्टि ऊपनां, शेष औध जिम जन्न॥

१७०. औधिक वेदना नै विषै, द्विविध नरक निहाल।
सण्णिभूत असण्णिभूत है, ते इहां देणां टाल॥

१७१. क्रिया सूत्र मनुष्य में, सराग नैं वीतराग।
प्रमत्त नैं अप्रमत्त ए, भेद न भणवा विभाग॥

१७२. 'औधिक संजती मनुष्य नां, भेद किया ए च्यार।
ते चउभेद करिवा नहीं, कृष्ण नील अधिकार॥

१७३. धुर भेद संयत टाल्यो नहीं, सरागी में तो होय।
वीतरागी में होवै नहीं, तिण सूं भेद करणा वरज्या दोय॥

१७४. कृष्णनील प्रमत्त में, अप्रमादी में न होय।
तिण सूं सरागी तणां, बे भेद न करणा कोय॥

१७५. वृत्तिकार इहां पिण कियो, अर्थ अधिक विपरीत।
भाव लेस्या वरजी साधु में, ए सूत्र विरुद्ध अनीत'॥
(ज० स०)

१७६. इमज कापोत लेस्या कही, णवरं नारकी मांय।
वेदन सूत्रे औधिक ज्यूं, सण्णि असण्णिभूत थाय॥

१७७. तेजू पद्म छै जे विषै, औधिक ज्यूं सुविभाग।
णवरं मनुष्य क्रिया विषै, न भणवा सराग वीयराग॥

१६१. अथ चतुर्विंशतिदण्डकमेव लेश्याभेदविशेषणमाहारादिपदैर्निरूपयन् दण्डकसप्तकमाह— (वृ०-प० ४५)

१६२. सलेस्सा णं भंते ! नेरइया सव्वे समाहारगा ?

१६३, १६४. अनंनाहारशरीरोच्छ्वासकर्मवर्णलेश्यावेदनाक्रियोपपातास्यपूर्वोक्तनवपदोपेतनारकादिचतुर्विंशतिपददण्डको लेश्यापदविशेषितः सूचितः।
(वृ०-प० ४५)

१६५. तदन्ये च कृष्णलेश्यादिविशेषिताः। पूर्वोक्तनवपदोपेता एव यथासम्भवं नारकादि पदात्मकाः षड्दण्डकाः सूचिताः। (वृ०-प० ४५)

१६६. ओहियाणं, सलेस्साणं, सुक्कलेस्साणं—एतेसिं णं तिण्हं एक्को गमो।

१६७. तेनेह पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो मनुष्या वैमानिकाश्च वाच्याः, नारकादीनां शुक्ललेश्याया अभावादिति।
(वृ०-प० ४५)

१६८, १६९. कण्हलेस्स-नीललेस्साणं पि एसो चेव गमो, नवरं—वेदणाए मायिमिच्छदिट्ठीउववन्नगा य, अमायिसम्मदिट्ठीउववन्नगा य भाणियव्वा।

१७०. कृष्णलेश्यादण्डके नीललेश्यादंडके च वेदनासूत्रे द्विविहा णेरइया पन्नत्ता—सन्निभूया य असन्निभूयायत्ति औधिकदण्डकाधीतं नाध्येतव्यम्। (वृ०-प० ४५)

१७१. मणुस्सा किरियासु सराग-वीयरागा पमत्तापमत्ता न भाणियव्वा।

१७६. काउलेस्साण वि एसेव गमो, नवरं—नेरइए जहा ओहिए दंडए तहा भाणियव्वा।

१७७. तेउलेस्सा, पम्हलेस्सा 'जस्स अत्थि' जहा ओहिओ दंडओ तहा भाणियव्वा, नवरं—मणुस्सा सराग-वीयरागा न भाणियव्वा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७८. औधिक में अप्रमत्त तणां, सराग वीयराग भेद।
ते इहां बे भेद करवा नहीं, पिण अप्रमत्त न कियो निषेध ।।

१७९. तेजु प्रमत्त संजत मझै, सरागी में ज होय।
वीतरागी में हुवै नहीं, तिण सुं न करणा भेद दोय ।।

१८०. तिम कृष्ण नील संजति नां, सराग प्रमुख ताहि।
च्यार भेद करणा नहीं, पिण संजत वर्ज्यो नांहि ।।
(ज० स०)

१८१. दुक्ख आउ उदय भोगवै, सम आहार कर्म वर्ण लेस।
समवेदन क्रिया कही, सम आयु सुविशेष ।।

१८२. ढाल भली ए सातमी, द्वितीय उदेशक देश।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' हरष विशेष ।।

१८१. दुक्खाउए उदिण्णे, आहारे कम्म-वण्ण-लेस्सा य।
समवेयण-समकिरिया, समाउए चेव बोधव्वा ।।
(श० १।१०१ संग्रहणी-गाहा)

ढाल : ८

दूहा

१. पूर्व सलेशी नेरिया, इम कहिवै अभिराम।
हिवै प्रश्न लेश्या तणो, पूछै गौतम स्वाम ।।

२. हे भदंत ! लेश्या किती ? जिन कहै सांभल वाय।
छ लेश्या आखी अछै, कृष्णादिक कहिवाय ।।

३. पन्नवण सतरम पद विषै, द्वितीय उद्देश भलाय।
जाव ऋद्धि अल्पबहुत्व लग, वर्णन सकल कहाय ।।

४. जे जेहवा तेहवाज ह्वै, ए अन्य मत वच सुण भ्रंत-
मुग्ध लहै, तसु बोधिवा, गोयम प्रश्न करंत ।।

५. हे भगवंत ! ए जीव नैं, गया काल रै मांय।
संसार में रहिवा तणो, कितै प्रकार कहिवाय ? ।।

*सुगुण जन सांभलो, वारू श्री जिन-वयण विशाल। (ध्रुपदं)

६. वीर कहै सुण गोयमा ! जी, संसार में रहिवा नूं काल।
नरक तिरि मनु देवता जी, चउविध भ्रमण निहाल ।।

१. प्राक् सलेश्या नारका इत्युक्तमथलेश्या निरूपयन्नाह—
(वृ०-प० ४६)

२. कइ णं भंते ! लेस्साओ पण्णत्ताओ ?
गोयमा ! छ लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा- —कण्हलेस्सा, नीललेस्सा, काउलेस्सा, तेउलेस्सा, पम्हलेस्सा, सुक्कलेस्सा।

३. लेस्साणं बीओ उद्देसो भाणियव्वो जाव इड्ढी।
(श० १।१०२)

४. अथ पशवः पशुत्वमश्नुवते इत्यादिवचनविप्रलम्भाद् यो मन्यतेऽनादावपि भवे एकधैव जीवस्यावस्थानमिति तद्बोधनार्थं प्रश्नयन्नाह- — (वृ०-प० ४७)

५. जीवस्स णं भंते ! तीतद्धाए आदिट्ठस्स कइविहे संसार-संचिट्ठणकाले पण्णत्ते ?

६. गोयमा ! चउव्विहे संसारसंचिट्ठणकाले पण्णत्ते, तं जहा— नेरइयसंसारसंचिट्ठणकाले, तिरिक्खजोणिय-संसारसंचिट्ठणकाले मणुस्ससंसारसंचिट्ठणकाले, देवसंसारसंचिट्ठणकाले। (श० १।१०३)

*लय---अभड भड रावणो इंदा सूं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. हे प्रभु ! कतिविध नरक में, संसार - संचिट्ठणकाल ।
जिन कहै—तीन प्रकार छै, शून्य अशून्य मिश्र काल न्हाल ।।

८. प्रथम हिवै अशून्य काल नैं, ओलखावूं छूं सोय ।
ते जाण्यां छतां शून्य मिश्र नैं, ओलखणा सोहरा जोय ।।
९. वर्तमान काले सातूं नरक में, नेरइया वर्तै अशेष ।
त्यां मांहि थी एक न नीकल्यो, ऊपनों पिण नहि एक ।।
१०. जे जीव निकल पाछो ऊपनों, जितै निकल्यो ऊपनों नांय ।
सातूं नरक में हुंता जिता रह्या, ए अशून्य काल कहिवाय ।।
११. जे नरक थी निकल ऊपनो जितै, त्यां मांसूं नीकल्यो एक ।
अथवा एक बाकी रह्यो, ए मिश्र काल संपेख ।।
१२. जे नरक थी निकल ऊपनों जितै, सातूं नरक रै मांय ।
सर्व आगला नीकल्या, ए शून्य काल कहिवाय ।।

१३. ए वर्त्तमान भव नरक नीं, स्थिति आश्री आख्यो नांय ।
सातूं नरक में नेरइया तणां, जीव आश्री कहिवाय ।।
१४. आगल अल्पबहुत्व अशून्य काल थी, अनंतगुणो कह्यो मिश्रकाल ।
तिण सूं ते जीव आश्री अछै, पिण भव आश्री मत भाल ।।
१५. भव आश्री जो ए हुवै तो, अनंतगुणो किम थाय ? ।
उत्कृष्ट सागर तेतीस नों, आयु नरक रै मांय ।।
१६. इतला मांहै सहु नीकलै तो, अशून्य काल थी जोय ।
असंखगुणो मिश्रकाल ह्वै, पिण अनंतगुणो नहि होय ।।
१७. सर्व थोड़ो अशून्य काल छै, बारै मुहूर्त्त विरह अपेक्षाय ।
मिश्रकाल अनंतगुणो नां हुवै, तिण सूं भव आश्री नहि थाय ।।
१८. तिर्यंच - गति विषै अछै, अशून्य मिश्रकाल दोय ।
मनुष्य अनै देवता मझै, काल तीनूं अवलोय ।।

१९. प्रभु ! नरक रहिवा तणो, शून्य अशून्य मिश्रकाल मांय ।
कुण-कुण अल्प बहुत्व छै, तुल्य विशेषाधिक कहिवाय ? ।।

२०. जिन कहै—सर्व थोड़ो अछै, अशून्य काल उपदिष्ट ।
ऊपजवा निकलवा नों नरक में, विरह बारै मुहूर्त्त उत्किष्ट ।।

२१. तेहथी मिश्रकाल अनंतगुणो, अशून्य काल वालो जे जीव ।
गमनागमन त्रस वणस्सइ, काल अनंतगुणो है अतीव ।।
२२. वनस्पति नां काल थी, अशून्य काल अनंतमैं भाग ।
तिण सूं ते जीव त्रस तरु नरक में, मिश्र अनन्तगुणो इम लाग ।।

७. नेरइयसंसारचिट्ठणकाले णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?
गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—सुन्नकाले, असुन्नकाले, मिस्सकाले ।। (श० १।१०४)

८-१०. तत्राशून्यकालस्तावदुच्यते, अशून्यकालस्वरूपपरिज्ञाने हि सतीतरौ सुज्ञानौ भविष्यत इति, तत्र वर्त्तमानकाले सप्तसु पृथिवीषु ये नारका वर्त्तन्ते तेषां मध्याद्यावन्न कश्चिदुद्वर्त्तते न चान्य उत्पद्यते तावन्मात्रा एव ते आसते स कालस्तान्नारकानङ्गीकृत्याशून्य इति भण्यते । (वृ०-प० ४७)

११. मिश्रकालस्तु तेषामेव नारकाणां मध्यादेकादय उद्वृत्ताः यावदेकोऽपि शेषस्तावन्मिश्रकालः । (वृ०-प० ४७)

१२. शून्यकालस्तु यदा त एवादिष्टसामयिका नारकाः सामस्त्येनोद्वृत्ता भवन्ति नैकोऽपि तेषां शेषोऽस्ति स शून्यकाल इति । (वृ०-प० ४७)

१३-१९. इदं च मिश्रनारकसंसारावस्थानकालचिन्तासूत्रं न तमेव वार्त्तमानिकनारकभवमङ्गीकृत्य प्रवृत्तम्, अपि तु वार्त्तमानिकनारकजीवानां गत्यन्तरगमने तदुद्वर्त्तोत्पत्तिमाश्रित्य, यदि पुनस्तमेव नारकभवमंगीकृत्येदं सूत्रं स्यात्तदाऽशून्यकालापेक्षया मिश्रकालस्यानन्तगुणता सूत्रोक्ता न स्यात् । (वृ०-प० ४८)

१७. अत उत्कर्षतो द्वादशमौहूर्त्तिकाशून्यकालापेक्षया मिश्रकालस्यानन्तगुणत्वाभावप्रसंगादिति । (वृ०-प० ४८)

१८. तिरिक्खजोणियसंसारपुच्छा गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—असुन्नकाले य, मिस्सकाले य । मणुस्साण य देवाण य जहा नेरइयाणं । (श० १।१०५-१०७)

१९. एतस्स णं भंते ! नेरइयसंसारसंचिट्ठणकालस्स सुन्नकालस्स, असुन्नकालस्स, मीसकालस्स य कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा ? बहुए वा ? तुल्ले वा ? विसेसाहिए वा ?

२०. गोयमा ! सव्वत्थोवे असुन्नकाले
नारकाणामुत्पादोद्वर्त्तनाविरहकालस्योत्कर्षतोऽपि द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणत्वात् । (वृ०प० ४८)

२१, २२. मिस्सकाले अणंतगुणे
मिश्राख्यो विवक्षितनारकजीवनिर्लेपनाकालोऽशून्यकालापेक्षयाऽनन्तगुणो भवति, यतोऽसौ नारकेतरेष्वागमनगमनकालः, स च त्रसवनस्पत्यादिस्थितिकालमिश्रितः सन्ननन्तगुणो भवति, त्रसवनस्पत्यादिगमनागमनानामनन्तत्वाद्, स च नारकनिर्लेपनाकालो वनस्पतिकायस्थितेरनन्तभागे वर्त्तत इति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. मिश्र थी शून्यकाल अनंतगुणो, नरक थी त्रस वणस्सइ थाय।
काल अनन्तानन्त तिहां, पछै त्रस होय नरके जाय॥

२४. वनस्पती नैं नरक नों, अंतर उत्कृष्ट जाण।
काल अनंता नों कह्यो, तिण सूं शून्य अनंतगुणो माण॥

२५. हिवै अल्पबहुत्व तिर्यंच में, सर्व थोड़ो अशून्यकाल।
ते अंतर्मुहूर्त विरह-काल छै, समुच्छिम विकलेंद्री नैं न्हाल॥

२६. एकेंद्री नै तो ऊपजवा तणों, नीकलवा नों विरह न कोय।
ते विरह तणा अभाव थी, अशून्यकाल नहि होय॥

२७. तिण सूं सर्व थोड़ो अशून्यकाल छै, ते समूर्च्छिम आश्री जाण।
वलि विकलेंद्री आश्री कह्यो, तसुं, अंतर्मुहूर्त प्रमाण॥

२८. अशून्य थी मिश्रकाल अनंतगुणो, नारकी नों पर जान।
तिर्यंच में शून्य-काल हुवै नहीं, त्यां थी नीकल रहै किण स्थान?

२९. अल्पबहुत्व मनुष्य देवता तणों, तोनूं काल नों जोय।
नरक तणी पर जाणज्यो, थां जिन-वच अवलोय॥

३०. हे प्रभु! नरक विषै रह्यो, तिरि मनुष्य देव भव मांय।
अल्प बहुत्व काल किहां रह्यो?, किहां तुल्य विशेषाधिक थाय॥

३१. जिन कहै—थोड़ो काल मनुष्य में, असंखगुणो नरक रै मांहि।
रह्यो देव में काल असंखगुणो, अनंतगुणो तिर्यंच में ताहि॥

३२. ढाल भली ए आठमी, दूजा उदेशा नों इक देश।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय' सुख हरष विशेष॥

२३, २४. सुन्नकाले अणंतगुणे (श० १।१०८)

सर्वेषां विवक्षितनारकजीवानां प्रायो वनस्पतिष्वनन्तानन्तकालमवस्थानात्, एतदेव वनस्पतिष्वनन्तानन्तकालावस्थानं जीवानां नारकभवान्तरकाल उत्कृष्टो देशितः समय इति। (वृ०-प० ४८)

२५-२७. तिरिक्खजोणियाणं सव्वत्थोवे असुन्नकाले

स चान्तर्मुहूर्त्तमात्रः अयं च यद्यपि सामान्येन तिरश्चामुक्तस्तथाऽपि विकलेन्द्रियसंमूर्च्छिमानामेवावसेयः, तेषामेवान्तर्मुहूर्त्तमानस्य विरहकालस्योक्तत्वात्, एकेन्द्रियाणां तूद्वर्त्तनोपपातविरहाभावेनाशून्यकालाभाव एव। (वृ०-प० ४८)

२८. मिस्सकाले अणंतगुणे (श० १।१०९)

शून्यकालस्तु तिरश्चां नास्त्येव, यतो वार्त्तमानिकसाधारणवनस्पतीनां तत उद्वृत्तानां स्थानमन्यद् नास्ति। (वृ०-प० ४८, ४९)

२९. मणुस्स-देवाण य सव्वत्थोवे असुन्नकाले, मिस्सकाले अणंतगुणे, सुन्नकाले अणंतगुणे। (श० १।११०)

३०, ३१. एयस्स णं भंते! नेरइयसंसारसंचिट्ठणकालस्स, तिरिक्खजोणियसंसारसंचिट्ठणकालस्स, मणुस्ससंसारसंचिट्ठणकालस्स, देवसंसारसंचिट्ठणकालस्स कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा? बहुए वा? तुल्ले वा? विसेसाहिए वा? गोयमा! सव्वत्थोवे मणुस्ससंसारसंचिट्ठणकाले, नेरइयसंसारसंचिट्ठणकाले असंखेज्जगुणे, देवसंसारसंचिट्ठणकाले असंखेज्जगुणे, तिरिक्खजोणियसंसारसंचिट्ठणकाले अणंतगुणे।

(श० १।१११)

ढाल : ९

दूहा

१. रहै जीव संसार में, अथवा मोक्ष पिण होय।
इण आशंका नैं विषै, प्रश्न गोयम हिव सोय॥

२. हे भदंत! ए जीव ते, अंतक्रिया करंत?
मोक्ष-प्राप्ति सर्व-कर्म-क्षय, इम वृत्तिकार कहंत॥

१. किं संसार एवावस्थानं जीवस्य स्यादुत मोक्षेऽपि? इति शंकायां पृच्छामाह— (वृ०-प० ४९)

२. जीवे णं भंते! अंतकिरियं करेज्जा?
कृत्स्नकर्मक्षयलक्षणां मोक्षप्राप्तिमित्यर्थः।(वृ०-प० ४९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. जिन कहै कोइक जीव जे, क्रिया तु अंत करंत।
कर्म-क्षये शिव प्राप्ति हुवै, केइ न करै क्रिय - अंत ॥

३. गोयमा ! अत्थेगइए करेज्जा, अत्थेगइए नो करेज्जा

४. सूत्र पन्नवणा वीसमां, अंतकिया पद नाम।
ते मांहै अधिकार जे, इहां कहिवो अभिराम ॥

४. अंतकिरियापयं नेयव्वं। (प्र० १।११२)
तच्च प्रज्ञापनायां विंशतितमं। (वृ०-प० ४६)

५. अंत-क्रिया अणथायवै, केयक जीव सुजोग।
देवपणें ऊपजै अछै, ते हिव प्रश्न प्रयोग ॥

५. कर्मलेशादन्तक्रियाया अभावे केचिज्जीवा देवेषूत्पद्यन्तेऽतस्तद्विशेषाभिधानायाह--- (वृ०-प० ४६)

६. *हां रा श्री प्रभुजी ! असंजति भव्य द्रव्य देवा रा।
हो जी स्वामी ! असंजति भव्य द्रव्य देवा रा।
प्रथम कहेवारा, जशधारी जी ॥

६. अह भंते ! असंजयभवियदव्वदेवाणं

७. हां रा श्री प्रभुजी ! संत आराधक गिरुओ रा।
विराधक विरुओ रा ॥

७. अविराहियसंजमाणं, विराहियसंजमाणं

८. हां रा श्री प्रभुजी ! श्रावक आराधक साचो रा।
विराधक काचो रा ॥

८. अविराहियसंजमासंजमाणं, विराहियसंजमासंजमाणं

९. हां रा श्री प्रभुजी ! असण्णि तापस जाणी रा।
कंदर्पिक ठाणी रा ॥

९. असण्णीणं, तावसाणं, कंदप्पियाणं

१०. हां रा श्री प्रभुजी ! चरक परिव्राजक जोयो रा।
किब्विसिया होयो रा ॥

१०. चरगपरिव्वायगाणं किब्विसियाणं

११. हां रा जिनेन्द्रजी ! तिर्यंच नैं आजीविक रा।
वलि आभियोगिक रा ॥

११. तेरिच्छियाणं आजीवियाणं आभिओगियाणं

१२. हां रा जिनेन्द्रजी ! समकित भ्रष्ट सलिंगी रा।
क्रिया इकरंगी रा ॥

१२. सलिंगीणं दंसणवावण्णगाणं

१३. हां रा जिनेन्द्रजी ! देवलोके उपजंता रा।
किहां लग गंता रा ॥

१३. एतेसि णं देवलोगेसु उववज्जमाणाणं कस्स कहि उववाए पण्णत्ते ?

१४. हां रा गोयमजी ! वीर कहै तिण वारो रा।
उत्तर उदारो रा ॥

१५. हां रा गोयमजी ! असंजत भव्य द्रव्य देवा रा।
सुरगति लेवा रा ॥

१५-१७. गोयमा ! असंजयभवियदव्वदेवाणं जहण्णेणं भवणवासीसु, उक्कोसेणं उवरिमगेवेज्जएसु।

१६. हां रा गोयमजी ! जघन्य भवनपती मांह्यो रा।
गति कहिवायो रा ॥

१७. हां रा गोयमजी ! उत्कृष्ट ग्रीवेयक मांह्यो रा।
नवमों पायो रा ॥

१८. हां रा सुगणांजी ! वृत्ति मध्ये इम जोयो रा।
ए मिथ्यादृष्टि होयो रा ॥

१८-२०. तस्मान्मिथ्यादृष्टय एवाभव्या भव्या वा असंयतभव्यद्रव्यदेवाः श्रमणगुणधारिणो निखिलसामाचार्यनुष्ठान-

*लय---हां रा मेवासीजी म्हांनी-सी नणदोली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. हां रा सुगणांजी ! भव्य तथा अभव्य पिछानो रा ।
बाह्य अनुष्ठानो रा ।।

२०. हां रा सुगणांजी ! अखिल क्रिया समाचारी रा ।
द्रव्य-लिंग धारी रा ।।

२१. हां रा सुगणांजी ! चक्रवर्त्ति प्रमुख आनंदै रा ।
मुनिवर वंदै रा ।।

२२. हां रा सुगणांजी ! प्रवर पूजा तसु देखी रा ।
अधिक विशेखी रा ।।

२३. हां रा सुगणांजी ! तिण अर्थे उचरंगो रा ।
ग्रहै द्रव्य-लिंगो रा ।।

२४. हां रा सुगणांजी ! निकेवल क्रिया नैं प्रभावै रा ।
ग्रैवेयक जावै रा ।।

२५. हां रा गोयमजी ! आराधक संत अचर्मो रा ।
जघन्य सुधर्मो रा ।।

२६. हां रा गोयमजी ! उत्कृष्टो गुण ऋद्धो रा ।
सर्वार्थसिद्धो रा ।।

२७. हां रा गोयमजी ! विराधक संत विमासी रा ।
जघन्य भवनवासी रा ।।

२८. हां रा गोयमजी ! उत्कृष्ट सुधर्म सागै रा ।
पदवी न आगै रा ।।

२९. हां रा गोयमजी ! आराधक श्रावक अधर्मो रा ।
जघन्य सुधर्मो रा ।।

३०. हां रा गोयमजी ! उत्कृष्टो उलसावै रा ।
अच्यू सुख पावै रा ।।

३१. हां रा गोयमजी ! विराधक श्रावक विमासी रा ।
जघन्य भवनवासी रा ।।

३२. हां रा गोयमजी ! जोतिषी में उत्कृष्ट रा ।
ए समदृष्टि भ्रष्ट रा ।।

३३. हां रा गोयमजी ! असण्णि अकाम निज्जरथी रा ।
भवण जघन्न थी रा ।।

३४. हां रा गोयमजी ! उत्कृष्टो कहिवायो रा ।
व्यंतर थायो रा ।।

३५. हां रा गोयमजी ! अवशेष सर्व विमासी रा ।
जघन्य भवनवासी रा ।।

३६. हां रा गोयमजी ! उत्कृष्टी स्थिति आगै रा ।
कहूं छूं मागै रा ।।

युक्ता द्रव्यलिङ्गधारिणो गृह्यन्ते, ते ह्यखिलकेवलक्रियाप्रभावत एवोपरिमग्रैवेयकेषूत्पद्यन्त इति ।
(वृ०-प० ५०)

२१-२३. चक्रवर्त्तिप्रभृत्यनेकभूपतिप्रवरपूजासत्कारसन्मानदानान् साधून् समवलोक्य तदर्थं प्रव्रज्याक्रियाकलापानुष्ठानं प्रति श्रद्धा जायते, ततश्च ते यथोक्तक्रियाकारिण इति । (वृ०-प० ५०)

२५, २६. अविराहियसंजमाणं जहण्णेणं सोहम्मे कप्पे, उक्कोसेणं सव्वट्ठसिद्धे विमाणे ।

२७, २८. विराहियसंजमाणं जहण्णेणं भवणवासीसु, उक्कोसेणं सोहम्मे कप्पे ।

२९, ३०. अविराहियसंजमासंजमाणं जहण्णेणं सोहम्मे कप्पे, उक्कोसेणं अच्चुए कप्पे ।

३१, ३२. विराहियसंजमासंजमाणं जहण्णेणं भवणवासीसु, उक्कोसेणं जोइसिएसु ।

३३, ३४. असण्णीणं जहण्णेणं भवणवासीसु, उक्कोसेणं वाणमंतरेसु ।

३५, ३६. अवसेसा सव्वे जहण्णेणं भवणवासीसु उक्कोसेणं वोच्छामि—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७. हां रा गोयमजी ! तापस जोतिषी थावै रा।
पत्रादिक खावै रा॥

३७. तावसाणं जोतिसिएसु

३८. हां रा गोयमजी ! कंदर्पियो कुतूहल करतो रा।
सुधर्म संचरतो रा॥

३८. कंदप्पियाणं सोहम्मे कप्पे

३९. हां रा गोयमजी ! चरक परिव्राजक त्रिदंडी रा।
ब्रह्मगति मंडी रा॥

३९. चरग-परिव्वायगाणं बंभलोए कप्पे

४०. हां रा गोयमजी ! किव्विसिया अवर्णवादी रा।
छठै कल्प साधी रा॥

४०. किव्विसियाणं लंतगे कप्पे

४१. हां रा गोयमजी ! तिर्यंच जावै सहसारो रा।
अष्टम उदारो रा॥

४१. तेरिच्छियाणं सहस्सारे कप्पे

४२. हां रा गोयमजी ! आजीविया गोशालक मत्ती रा।
अच्यू उपपत्ती रा॥

४२. आजीवियाणं अच्चुए कप्पे

४३. हां रा गोयमजी ! आभियोगिया अच्यू वरणू रा।
मंत्र वशिकरणू रा॥

४३. आभिओगियाणं अच्चुए कप्पे

४४. हां रा गोयमजी ! सम्यक्त्व-भ्रष्ट सलिंगी रा।
ग्रैवेयक चंगी रा॥

४४. सलिंगीणं दंसणवावन्नगाणं उवरिमगेविज्जएसु।
(१।११३)

४५. हां रा गोयमजी ! कंदर्पि, किव्विसि अभियोगी रा।
बाह्य चरण जोगी रा॥

४६. हां रा गोयमजी ! असण्णि जघन्य भवन दृष्टो रा।
व्यंतर उत्कृष्टो रा॥

४७. हां रा गोयमजी ! कोइक भवनपति क्षीणा रा।
व्यंतर थी हीणा रा॥

४७. यद्यपि...व्यन्तरा अल्पर्द्धिका तथाप्यत एव वचनादवसीयते सन्ति व्यन्तरेभ्यः सकाशादल्पर्द्धयो भवनपतयः केचन इति। (वृ०-प० ५१)

४८. हां रा सुगणांजी ! दूजा उदेशा नो देशो रा।
नवमी ढाल एसो रा॥

४९. हां रा सुगणांजी ! भिक्षु भारीमाल ऋषिरायो रा।
'जय' सुख पायो रा॥

ढाल : १०

दूहा

१. पूर्वे कह्यो असण्णि मरी, देवगणे उपजंत।
आयुबंध असण्णि तणैं, ते हिव प्रश्न करंत॥

१. असञ्ज्ञी देवेषूत्पद्यत इत्युक्तं स चायुषा इति तदायुर्निरूपयन्नाह- (वृ०-प० ५१)

२. हे भदंत ! असण्णि छतो, परभव नों पहिछाण।
आउखो बंधै तिको, असण्णि-आयू जाण॥

२. 'असन्निआउए' त्ति असञ्ज्ञी सन् यत्परभवयोग्यमायुर्बध्नाति तदसञ्ज्ञ्यायुः। (वृ०-प० ५१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. असण्णि-आयु कतिविधे ? तब बोल्या जिनराय ।
चउविधे असण्णि आउखो, ते सुणज्ये चित लाय ।।

*सुणो भव्य प्राणी रे, देव जिनेन्द्र दयाल वदै वर वाणी रे । (ध्रुपदं)

४. असण्णि-आउ चउविध कह्यो रे, नरक असण्णि-आउ जाण ।
तिर्यंच मनुष्य नैं देव नों रे, असण्णि - आउ पहिछाण ।।

३. कतिविहे णं भंते ! असण्णिआउए पण्णत्ते ?

४. गोयमा ! चउव्विहे असण्णिआउए पण्णत्ते, तं जहा—नेरइयअसण्णिआउए, तिरिक्खजोणियअसण्णिआउए, मणुस्सअसण्णिआउए, देवअसण्णिआउए ।
(श० १।११४)

सोरठा

५. असण्णि - आउ जोय, एह पाठ कहिवै करी ।
असण्णि नों अवलोय, आयु अर्थ करै इसो ।।

६. ते कारण थी एह, असण्णि बांध्यो आउखो ।
कृतत्वलक्षण जेह, विशेष संबंध करि कहै ।।

वा०—ए असन्नी आउखो संबंध मात्र पिण हुवै । जिम भिक्खु नों पात्र, तिम असण्णि नों आयु इम संबंध कहियै । तिको संबंध इहां नहीं । इहां तो असण्णि छतै कीधो—बांध्यो आयुष इम कीधापणैं ते लक्षण संबंध-विशेष निरूपण नैं अर्थे कहै छै ।

वा०—एतच्चासञ्ज्ञायुः संबन्धमात्रेणापि भवति यथा भिक्षोः पात्रम्, अतस्तत्कृतत्वलक्षणसंबन्धविशेषनिरूपणायाह—
(वृ०-प० ५१)

७. *प्रभु ! जीव असण्णि छतो, स्यूं नरक नों आयु बांधंत ?
तिर्यंच मनुष्य नैं देवनों, आयु नों बंध करंत ?

८. जिन कहै—गोयम नरक नों, आयु नों बंध करंत ।
तिर्यंच मनुष्य नैं देव नों, आउ असण्णि बांधंत ।।

७, ८. असण्णी णं भंते ! जीवे किं नेरइयाउयं पकरेइ ? तिरिक्खजोणियाउयं पकरेइ ? मणुस्साउयं पकरेइ ? देवाउयं पकरेइ ?

हंता गोयमा ! नेरइयाउयं पि पकरेइ, तिरिक्खजोणियाउयं पि पकरेइ, मणुस्साउयं पि पकरेइ, देवाउयं पि पकरेइ ।

९. नरक आयु बांधतो छतो, दश सहस्र वर्ष जघन्य ।
उत्कृष्टो पल्योपम तणों, असंख भाग बंध जन्य ।।

१०. तिर्यंच नों आयु बांधतो, जघन्य अंतर्मुहूर्त्त जाण ।
उत्कृष्टो पल्योपम तणों, असंख भाग बंध माण ।।

११. मनुष्य तिर्यंच तणीं परै, देवता नारकी जेम ।
वृत्तिकार विस्तारियो, असंख भाग अर्थ एम ।

९, १०. नेरइयाउयं पकरेमाणे जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पकरेइ ।
तिरिक्खजोणियाउयं पकरेमाणे जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पकरेइ ।

११. मणुस्साउए वि एवं चेव, देवा जहा नेरइया ।
(श० १।११५)

१२. रत्नप्रभा चोथै पाथड़ै, मध्यम स्थिति छै एह ।
तठा तांइ असण्णि ऊपजै, आगै आयु अधिकेह ।।

१३. जघन्य आयु पहिलै पाथड़ै, दश सहंस वर्ष प्रमाण ।
उत्कृष्टी तिहां स्थिति कही, नेउ सहस्र वर्ष जाण ।।

१४. [1]जघन्य स्थिति दूजै पाथड़ै, नेउ सहस्र प्रमाण ।
उत्कृष्टी तिहां स्थिति कही, दश लक्ष वर्ष सुजाण ।।

१२-१४. रत्नप्रभाचतुर्थप्रतरे मध्यमस्थितिकं नारकमाश्रित्येति, कथम् ? यतः प्रथमप्रस्तटे दश वर्षाणां सहस्राणि जघन्या स्थितिरुत्कृष्टा नवतिः सहस्राणि, द्वितीये तु दश लक्षाणि जघन्या इतरा तु नवतिर्लक्षाणि, एवैव तृतीये जघन्या इतरा तु पूर्वकोटी, एवैव चतुर्थे जघन्या इतरा तु सागरोपमस्य दशभागः एवं चात्र पल्योपमासङ्ख्ये य-

*लय— राजा राणी रंग थी रे

१. द्वितीय प्रतर की स्थिति के सन्दर्भ में जोड़ के साथ वृत्ति की संगति नहीं है। संभव है, वृत्ति में लिपि-दोष के कारण ऐसा हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. जघन्य स्थिति तीजै पाथड़ै, दश लक्ष वर्ष प्रमाण।
उत्कृष्टी तिहां स्थिति कही, पूरव कोड़ पिछाण॥

१६. जघन्य स्थिति चौथै पाथड़ै, पूरव कोड़ प्रमाण।
उत्कृष्ट स्थिति सागर तणों, दशमो भाग पहिछाण॥

१७. इण न्याय चौथै पाथड़ै, पल्य नों भाग असंख्यात।
मध्यम स्थिति में ऊपजै, वृत्ति मांहै ए वात॥

१८. तिर्यंच मनुष्य मांहै कह्यो, पल्य नों भाग असंख्यात।
ते जुगलिया आश्री जाणजो, असण्णी मर नैं थात॥

१९. असण्णी आयु बांधै देव नों, ते भवनपती व्यंतर थाय।
जोतिषी में वैमानिक में, असण्णी न ऊपजै आय॥

२०. हे प्रभु! असण्णी रै आउखो, चिउं गति नों बंधाय।
कुण-कुण अल्प बहुतपणूं, तुल्य विशेषाधिक थाय?॥

२१. जिन कहै—सर्व थोड़ो नहीं, असण्णी देवायु बांधंत।
तेह थी मनुष्य नों आउखो, संखेज्ज गुणो कहंत॥

२२. तेह थी तिर्यंच नो आउखो, असंखेज्जगुणो जाण।
तेह थी नरक नों आउखो, असंखगुणो पहिछाण॥

वा०— इहां असण्णि पंचेंद्रिय तिर्यंच मरी च्यारू गति में ऊपजै तेहना आउखा नीं अल्पबहुत्व में सर्व थोड़ो देवायु जे चउवीसमैं शतके द्वितीय उद्देशे टीका में कह्यो। असण्णि तिर्यंच कोड पूर्व आयुवंत मरी असुर में ऊपजै। ते उत्कृष्ट थी कोड पूर्व नों आयुखो पावै, उत्कृष्ट निज आउखा थी अधिक न पामैं। ते माटै इहां सर्व थी थोड़ो देव आयु कह्यो। तेहथी मनुष्यायु संख्यातगुणो। मनुष्य युगलियो हुवै ते माटै। तेह थी तिर्यंच आयु असंख्यातगुणो, तिर्यंच युगलियो हुवै ते माटै। तेहथी नरकायु असंख्यातगुणो, रत्नप्रभा नैं चौथे पाथडै मध्यम आउखै उपजै ते माटै।

२३. जिन वच सुण गोयम कहै, सेवं भंते सेवं भंत।
आप कह्यो तिमहीज छै, द्विर्वच आदरवंत॥

२४. बारे नों अंक इहां कह्यो, प्रथम अंक शतक एस।
दूजो अंक उदेशो अछै, शत प्रथम नों दूजो उद्देश॥

२५. दशमी ढाल कही भली, कृष्ण कार्त्तिक एकादशी।
भिक्खु भारीमाल ऋषिरायथी, 'जय-जश' संपति सरसी॥

प्रथमशते द्वितीयोद्देशकार्थः॥१।२॥

भागो मध्यमा स्थितिर्भवति, तिर्यक्सूत्रे यदुक्तं 'पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं' ति तन्मिश्रनकतिरश्चोऽधिकृत्येति। (वृ०-प० ५२)

२०-२२. एयस्स णं भंते! नेरइयअसण्णिआउयस्स, तिरिक्खजोणियअसण्णिआउयस्स, मणुस्सअसण्णिआउयस्स, देवअसण्णिआउयस्स कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा? बहुए वा? तुल्ले वा? विसेसाहिए वा?
गोयमा! सव्वत्थोवे देवअसण्णिआउए, मणुस्सअसण्णिआउए असंखेज्जगुणे, तिरिक्खजोणियअसण्णिआउए असंखेज्जगुणे, नेरइयअसण्णिआउए असंखेज्जगुणे।
(श० १।११६)

२३. सेवं भंते! सेवं भंते! (श० १।११७)

१. अंगसुत्ताणि भाग २, श० १।११६ में देव असन्नी-आयुष्य से मनुष्य असन्नी-आयुष्य असंख्येयगुण अधिक लिया है। जयाचार्य ने जोड़ में संख्येयगुण अधिक कहा है। यह विसंगति प्रतीत होती है, पर अंगसुत्ताणि सूत्र के पाठान्तर में अ० क० ब० और म० प्रतियों में संखेज्जगुण लिया है। संभव है, जयाचार्य के पास इन्हीं प्रतियों में से कोई प्रति रही हो, इसलिए आपने संख्येयगुण का उल्लेख किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ११

दूहा

१. द्वितीय उदेशक अंत में, आयू नों अधिकार।
तसुं बंध मोह छतै हुवै, हिव मोह नों विस्तार॥

१. द्वितीयोद्देशकान्तिमसूत्रेष्वायुर्विशेषो निरूपितः, स च मोहदोषे सति भवतीत्यतो मोहनीयविशेषं निरूपयन् आह— (वृ०-प० ५२)

२. हे भदंत ! बहु जीव रा, कंखा - मोहणी कर्म।
बांध्यो ते बहु काल नों, प्रथम प्रश्न ए मर्म॥

२. जीवाणं भंते ! कंखामोहणिज्जे कम्मे कडे ?

३. चिरकाल रहै करिवैज करि, कंक्ष कर्म निपजाय।
चय उपचय नों पिण इमज, प्रथन प्रश्न कहिवाय॥

४. अन्य मत वंछा कंक्ष ते, उपलक्षण थी जाण।
संकादिक कहिवी इहां, मिथ्या-मोह पिछाण॥

४. कांक्षा—अन्यान्यदर्शनग्रहः, उपलक्षणत्वाच्चास्य शङ्कादिपरिग्रहः, ततः कांक्षाया मोहनीयं कांक्षामोहनीयं, मिथ्यात्वमोहनीयमित्यर्थः। (वृ०-प० ५२)

वा०—जीव नैं मोहित करै तेहनैं मोहनीय कहियै। इहां निकेवल मोहनीय कर्म किम नवि कह्यो ? कंखा शब्द किम जोड्यो ? मोहनी नां दो भेद चारित्र मोहनीय, दर्शन मोहनीय ते इहां चारित्र मोहनी नों ग्रहण नहीं करवूं ते माटै कंखा मोहनीय कह्यो।

वा०—मोहयतीति मोहनीयं कर्म तच्च चारित्रमोहनीयमपि भवतीति विशिष्यते। (वृ०-प० ५२)

५. जिन भाखै हंता कडै हां कीधो ए कर्म।
हिव गोयम चउभंग करि, पूछै एहनों मर्म॥

५. हंता कडे। (श १।११८)

*हो जी प्रभु ! देव जिनेंद्र दयाल प्रते, गोयम भणै रे लो। (ध्रुपदं)

६. हो जी प्रभु ! जीव तणैं इक देश, अंश तेणे करी रे लो।
हो जी प्रभु ! कंखा मोह नों देश, अंश कीधुं धरी रे लो॥

६-९. से भंते ! किं १. देसेणं देसे कडे ? २. देसेणं सव्वे कडे ? ३. सव्वेणं देसे कडे ? ४. सव्वेणं सव्वे कडे ?
गोयमा ! १. नो देसेणं देसे कडे २. नो देसेणं सव्वे कडे ३. नो सव्वेणं देसे कडे ४. सव्वेणं सव्वे कडे।
(श० १।११९)

७. हो जी प्रभु ! तथा जीव नैं देश, अंश करि जाणियै।
हो जी प्रभु ! कंखा मोहनी सर्व, कर्युं इम माणियै॥

८. हो जी प्रभु ! सर्व जीव करि देश, कंख - मोह कृत इसो।
हो जी प्रभु ! सर्व जीव करि सर्व, कंख - मोह कृत जिसो॥

९. हां जी शिष्य ! जिन कहै धुर त्रिहुं भंग, तिकै मिलता नहीं।
हां जी शिष्य ! सर्व जीव करि सर्व, कंख - मोह कृत सही॥

१०. हां जी शिष्य ! इक समैं बंधवा योग्य, कर्म जे दल अछै।
हां जी शिष्य ! सर्व जीव प्रदेश तणो, व्यापार छै॥

१०. तदेकसमयबन्धनीयकर्म्मपुद्गलबन्धने सर्वजीवप्रदेशानां व्यापारः। (वृ०-प० ५२)

११. हां जी शिष्य ! अल्प कर्म जो होय, तो पिण इम साधियैं।
हां जी शिष्य ! चेतन ना परदेश, सर्व थी बांधियैं॥

१२. हो जी प्रभु ! नारक कंखा-मोह, कर्म कीधो जरे।
हां जी शिष्य ! हंता कीधुं जाव, सव्वेण सव्वे कडे॥

१२. नेरइयाणं भंते ! कंखामोहणिज्जे कम्मे कडे ?
हंता कडे जाव सव्वेणं। (श० १।१२०, १२१)

१३. हां जी शिष्य ! जाव त्रिमाणिक, दंडक चउवीसै इसो।
हो जी प्रभु ! प्रश्न हिवै त्रिणकाल तणो कहियै तिसो॥

१३. एवं जाव वेमाणियाणं दंडओ भाणियव्वो।
(श० १।१२२)

*लय— अंबाजी सज्ज सौलै शृंगार कै दर्शण दीजियै रे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. हो जी प्रभु ! जीव कंखा-मोह कर्म, अतीत काले कियो ?
हां जी शिष्य ! हंता कृत इम जाव, विमाणिक लग लियो ।।

१५. हो जी प्रभु ! जीव कंखा-मोह, वर्तमान कालै करै ।
हां जी शिष्य ! हंत करै इम जाव, विमानिक उच्चरै ।।
१६. हो जी प्रभु ! जीव कंखा-मोह करसी काल आगामिकै ।
हां जी शिष्य ! हंता करसी एम, जाव वैमानिकै ।।
१७. हां जी शिष्य ! एवं चिएज्ज पाठ, चय सामान्य थी ।
हां जी शिष्य ! चिण्या चिणै नै चिणसी, ए त्रिहुं काल थी ।।
१८. हां जी शिष्य ! एवं उवचिए उपचय, ए सामान्य थी ।
हां जी शिष्य ! उपचिण्या उपचिणै उपचिणसी, त्रिहुं काल थी ।।
१९. हां जी इहां वृत्तिकार विस्तार कियो, छे एहवो ।
हां जी इहां चय-उपचय नो अर्थ, कियो छै तेहवो ।।
२०. हां जी चय प्रदेश नैं अनुभागादिक नी वृद्धि करै ।
हां जी कांइ उपचय तेहिज, बार-बार पुष्टी धरै ।।
२१. हां जी कांइ अन्य आचार्य, चय उपचय अर्थ इम कहै ।
हां जी कांइ चय कर्म पुद्गल उपादान—ग्रहण मात्र है ।।
२२. हां जी कांइ उपचय चय नों काल, आबाधा मुच्चवै ।
हां जी कांइ वेदन अर्थ निषेक, भणी ते उच्चवै ।।
२३. हां जी कांइ ते निषेक इम जाण, प्रथम स्थिति नै विषै ।
हां जी कांइ बहुत कर्म दल प्रते, भोगवै छै तिसै ।।
२४. हां जी कांइ दूजै समय विशेष, हीन दल भोगवै ।
हां जी कांइ तीजै समय विशेष, हीन दल अनुभवै ।।
२५. हां जी कांइ इम यावत् उत्कृष्ट, स्थिति कर्म दलिक नै ।
हां जी कांइ तावत् विशेष हीन, अनुभवै इमज नैं ।।
२६. हां जी इम उदय न आव्या कर्म, तिकै सुभ भाव सूं ।
हां जी कांइ गया काल रै मांहि, उदीर्या चाव सूं ।।
२७. हां जी कांइ वर्त्तमान ए कर्म, उदीरै छै सही ।
हां जी कांइ उदीरस्यै वलि कर्म, अनागत रै मही ।।
२८. हां जी इम वेद्या वेदे वेदसी, काल त्रिहुं मही ।
हां जी कांइ निज्जर्या निज्जरे निज्जरसी, कर्म-दल सही ।।
२९. हां जी कांइ जीव अनै चउवीस, दंडक नै ऊपरै ।
हां जी कांइ ए सगलाइ बोल, समय विधि ऊचरै ।।
३०. हां जी कड चित उपचित ना भेद, चउ-चउ आणियै ।
हां जी कांइ उदीरि वेदि निज्जिण्णा, त्रिहुं-त्रिहुं जाणियै ।।

१४. जीवाणं भंते ! कंखामोहणिज्जं कम्मं करिंसु ?
हंता करिंसु । (श० १।१२३)
एएणं अभिलावेणं दंडओ भाणियव्वो, जाव वेमाणियाणं । (श० १।१२५)
१५. एवं करेंति । एत्थ वि दंडओ जाव वेमाणियाणं ।
(श० १।१२६)
१६. एवं करिस्संति । एत्थ वि दंडओ जाव वेमाणियाणं ।
(श० १।१२७)
१७, १८. एवं चिए, चिणिंसु, चिणंति, चिणिस्संति । उवचिए, उवचिणिंसु, उवचिणंति, उवचिणिस्संति ।
(श० १।१२८)

२०-२२. नवरं चयः— प्रदेशानुभागादेर्वृद्धिनम् उपचयस्तदेव पौनःपुन्येन, अन्ये त्वाहुः—चयनं—कर्म्मपुद्गलोपादानमात्रम्, उपचयनं तु चितस्याबाधाकालं मुक्त्वा वेदनार्थं निषेकः । (वृ०-प० ५३)

२३-२५. स चैवम्—प्रथमस्थितौ बहुतरं कर्मदलिकं निषिञ्चति ततो द्वितीयायां विशेषहीनम् एवं यावदुत्कृष्टायां विशेषहीनं निषिञ्चति । (वृ०-प० ५३)

२६, २७. उदीरेंसु, उदीरेंति, उदीरिस्संति ।

२८. वेदेंसु, वेदेंति, वेदिस्संति, निज्जरेंसु, निज्जरेंति निज्जरिस्संति । (श० १।१२८)

३०. कड-चिय-उवचिय, उदीरिया वेदिया य निज्जिण्णा ।
आदितिए चउभेदा, तियभेदा पच्छिमा तिण्णि ।।
(श० १।१२८ संगहणी-गाहा)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१. हां जी कांइ वृत्तिकार कह्युं, कड चित उपचित नां सही।
हां जी कांइ च्यार-च्यार तसुं भेद, विशेषपणैं लही ॥
३२. हां जी कांइ उदीरि वेदित निज्जर तणां त्रिहुं आखिया।
हां जी कांइ किण कारण पहिछाण, च्यार नहिं भाखिया ? ॥
३३. हां जी कांइ कड चित उपचित कर्म, काल बहु पिण रहै।
हां जी ते चिरकाल आश्री अधिक, त्रिकाल थकी कहै ॥
३४. हां जी कांइ उदीर वेदि निज्जिण्ण, काल बहु नां रहै।
हां जी धुर सुचिर क्रिया नवि कही, त्रिकाल क्रिया लहै ॥
३५. हां जी कांइ कंखा-मोह पिछान, पूर्व वेदै कह्यो।
हां जी हिव ते वेदन नों अर्थ, प्रस्ताव इहां लह्यो ॥
३६. हो जी प्रभु ! कंखा-मोहणी कर्म, जीव वेदे अछै ? ।
हां जी शिष्य ! हंता वेदै, हिव कारण गोयम पूछै ॥
३७. हां जी कांइ पूर्व कियो ए प्रश्न, वली किण कारणैं ?
हां जी कांइ वेदन तास उपाय, अर्थ चित धारणैं ॥
३८. हां जी कांइ पूर्व भण्यो पिण तेह, वली पाछो भणैं।
हां जी कांइ तिहां कारण छै कोय, दोष नहिं छै तिणैं ॥

३९. होजो प्रभु ! किम वेदे ए कंख ? तांम जिन कहै फिरी।
हां जी शिष्य ! पाखंड परिचय तेण-तेण कारण करी ॥
४०. हां जी शिष्य ! शंका जिन-वच मांहि, कंख अन्य वांछवै।
हां जी वितिगिच्छा फल-संदेह, भेद मति-भंग हुवै ॥
४१. हां जी शिष्य ! कलुष एम ए नहीं, बुद्धि विपरीतता।
हां जी शिष्य ! इण कारण करि जीव, मिथ्या-मोह वेदता ॥
४२. हो जी प्रभु ! तेहिज सत्य निशंक ? प्रभु जे भाखियो।
हां जी शिष्य ! हंता तेहिज सत्य निशंक जे जिन आखियो ॥

४३. हो जी प्रभु ! इम धरतो तज शंक, चित्त नैं स्थिर करै।
हो जी प्रभु ! एम पकरतो, अनुत्पन्न हिवडै धरै ॥
४४. हो जी प्रभु ! उक्त न्याय कर, मन चेष्टा रहितो छतो।
हो जी प्रभु ! इम संवरतो, अन्य मत सूं मन निवर्त्ततो ॥
४५. हो जी प्रभु ! आण-आराधक—आज्ञा-पालक ते हुवै।
हां जी शिष्य ! हंता इम मन धरतो, जाव आराधक जुवै ॥
४६. हां जी कांइ अंक तेरनो देश, धन्न त्रयोदशी मुखी।
हां जी भिक्षु भारीमाल ऋषराय थकी 'जय-जश' सुखी ॥
४७. हां जी कांइ एकादशमी ढाल, रसाल कही भली।
हां जी कांइ उगणीसै उगणीस, सुजाण सुरंगरली ॥

३१-३५. नन्वाद्ये सूत्रत्रये कृतचितोपचितान्युक्तानि उत्तरेषु कस्मान्नोदीरितवेदितनिर्जीर्णानि ? इति, उच्यते—कृतं चितमुपचितं च कर्म चिरमप्यवतिष्ठत इति करणादीनां त्रिकालक्रियामात्रातिरिक्तं चिरावस्थानलक्षणकृतत्वाद्याश्रित्य कृतादीन्युक्तानि, उदीरणानां तु न चिरावस्थानमस्तीति त्रिकालवर्त्तिना क्रियामात्रेणैव तान्यभिहितानीति। जीवाः कांक्षामोहनीयं कर्म वेदयन्तीत्युक्तम्, अथ तद्वेदनकारणप्रतिपादनाय प्रस्तावयन्नाह— (वृ०-प० ५३)

३६. जीवा णं भंते ! कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति ?
हंता वेदेंति। (श० १।१२९)

३८. पुव्वभणियंपि पच्छा जं भण्णइ तत्थ कारणं अत्थि।
पडिसेहो य अणुन्ना हेउविसेसोवलंभो त्ति ॥
(वृ०-प० ५४)

३९-४१. कहण्णं भंते ! जीवा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति ?
गोयमा ! तेहिं तेहिं कारणेहिं संकिया, कंखिया, वितिगिच्छिया, भेदसमावन्ना, कलुससमावन्ना—एवं खलु जीवा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति। (श० १।१३०)

४२. से नूणं भंते ! तमेव सच्चं णीसंकं, जं जिणेहिं पवेइयं ?
हंता गोयमा ! तमेव सच्चं णीसंकं, जं जिणेहिं पवेइयं।
(श० १।१३१)

४३-४५. से नूणं भंते ! एवं मणं धारेमाणे, एवं पकरेमाणे, एवं चिट्ठेमाणे, एवं संवरेमाणे आणाए आराहए भवति ? हंता गोयमा ! एवं मणं धारेमाणे जाव भवति।
(श० १।१३२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : १२

सोरठा

१. जिन-वच सत्य तद्रूप, वस्तु परिणाम थकी हुवै।
तेहिज वस्तु-स्वरूप, प्रश्न तास परिणाम नुं॥

१. एतच्च जीवानां कांक्षामोहनीयवेदनमित्थमेवावसेयं, जिनप्रवेदितत्वात्, तस्य च सत्यत्वादिति तत्सत्यतामेव दर्शयन्नाह—
(वृ०-प० ५४)

दूहा

२. वस्तु छती छतापणै, परिणामै हे भगवंत ?।
जे वस्तु अछती अछै, अछतापणैं परिणमंत ?॥

२, ३. से नूणं भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ ? नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ ? हंता गोयमा ! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ। नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ। (श० १।१३३)

३. जिन कहै—हंता जाव ते, अछतापणैं परिणमंत।
अस्ति सर्व स्वरूप करि, पर - रूप नास्ति हुंत॥

४. अंगुली में अंगुली तणो, छतापणों कहिवाय।
अंगुली में अंगुष्ठ नो, अछतापणोज थाय॥

४. अस्तित्वं—अंगुल्यादेः अंगुल्यादिभावेन सत्त्वं, नास्तित्वम्—अंगुल्यादेरंगुष्ठादिभावेनासत्त्वं।
(वृ०-प० ५५)

५. अंगुलीपणों अंगुली विषै, ए छतो छतापणैं जोय।
अंगुली विषै अंगुष्ठ नहीं, तिहां अंगुष्ठ नास्ति होय॥

६. अस्तिभाव कह्या तिके, परिणमै अस्ति - भाव।
नास्तिभाव नास्तिपणै, परिणमै ए वर न्याव॥

७. जे भदंत ! वस्तु छती, छतापणैं परिणमेह।
अछती ते अछतापणैं, प्रयोग ? स्वभाव ? एह॥

७, ८. 'जं णं' भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ, नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ, तं किं पयोगसा ? वीससा ?
गोयमा ! पयोगसा वि तं।
वीससा वि तं। (श० १।१३४)

८. वीर कहै—सुण गोयमा !, पओगसा पिण जाण।
ते जीव तणां व्यापार करि, स्वभाव थी पिणमाण॥

९. हे भदंत ! ते तुम मते, जिम अस्तिपणो जाण।
अस्तिपणां विषैज ते, परिणमै छै पहिछाण॥

९-११. जहा ते भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ, तहा ते नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ ? जहा ते नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ, तहा ते अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ ?

१०. तिमहिज ते ताहरै मतै, नास्तिपणुं विचार।
नास्तिपणां विषैज ते, परिणमै ए अधिकार॥

११. जिम तुम मते नास्तिपणुं, नास्तिपणै परिण माय।
तिम तुम मते अस्तिपणुं, अस्तिपणैज थाय॥

१२. हंता जिम मुझ मत विषै, अस्तिपणुं जाण।
अस्तिपणां विषैज ते, परिणमै छै पहिछाण॥

१२-१४. हंता गोयमा ! जहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ, तहा मे नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ।
जहा मे नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ, तहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ। (श० १।१३५)

१३. तिमहिज मे माहरै मतै, नास्तिपणुं विचार।
नास्तिपणां विषैज ते, परिणमै ए अधिकार॥

१४. जिम मम मते नास्तिपणुं, नास्तिपणै परिणमाय।
तिम मम मते अस्तिपणुं, अस्तिपणैज थाय॥

१५. हे भदंत ! आस्तिकपणुं, आस्तिकपणैज जेह।
पर नैं कहिवा योग्य छै, छती नैं छती कहेह॥

१५, १६. से नूणं भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्जं ? जहा परिणमइ दो आलावगा तहा गमणिज्जेणवि दो आलावगा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. जिम परिणमवा ना कह्या, दो आलावा भाव।
तिम पर नैं कहिवा तणा, भणवा दो आलाव[1]॥

१७. हे भदंत ! जिम तुझ मते, स्व शिष्य नैं कहिवाय।
तिम पाखंडी ग्रहस्थ नैं, तुझ मते कहिवा ताय।

१८. जिम पाखंडी ग्रहस्थ नैं, तुझ मत कहिवा ताय।
तिम तुझ मत स्व शिष्य नैं, कहिवा हे जिनराय !

१९. हंता जिम म्हारै मतै, स्व शिष्य नैं कहिवाय।
तिम पाखंडी ग्रहस्थ नैं, मुझ मत कहिवा ताय॥

२०. जिम पाखंडी ग्रहस्थ नैं, म्हारै मत कहिवाय।
तिम मुझ मत स्व शिष्य नैं, कहिवूं ए वर न्याय॥

२१. कंक्षा-मोहनी कर्म नो, वेदन भाख्यो ताम।
हिव तेहना इज बंध नो, पूछै गोतम स्वाम॥

२२. *हो जी प्रभु ! कंक्षा-मोहणी कर्म, जीवड़ला स्यूं बांधै छै ?
म्हारा स्वाम।
हां रे चेला ! हंता बांधै छै जीव, उत्तर जिनजी सांधै छै।
म्हारा शीस॥

२३. हो जी प्रभु ! कंक्षा - मोहनी कर्म, किण-विध बांधै छै जीवा ?
हां रे गोतम ! प्रमाद जोग निमित्त, बंध नु ए कारण कहीवा॥

२४. हां रे सुगणा ! अर्थ कियो धर्मसीह, मिथ्यात्वी ए परमादी।
हां रे सुगणा ! अशुभ-जोगी पिण तेह, समदृष्टि कंक्ष न बांधी॥

२५. हो जी प्रभु ! किण सूं प्रवर्त्तै प्रमाद ? अथवा किण सेती उपजै।
हां रे चेला ! जोग थी प्रवर्त्तै प्रमाद, ते अशुभ जोग थी निपजै॥

२६. हो जी प्रभु ! किण सूं प्रवर्त्तै जोग ? जिन कहै वीर्य-उप्पन्नं।
हां रे चेला ! वीर्य अंतराय क्षय थाय, अथ क्षय-उपशम-निप्पन्नं॥

२७. हो जी प्रभु ! किण सूं प्रवर्त्तै वीर्य, जिन भाखै तनु सूं वेती।
हां रे सुगणा ! वृत्तिकार कह्यो एम, ते निसुणो तन-मन सेती॥

२८. हां रे सुगणा ! वीर्य तणा युग भेद, सकरण अकरण सोइ।
हां रे सुगणा ! अकरण वीर्य संवेद, अलेशी अवस्था जोइ॥

२९. हां रे सुगणा ! अयोगी केवली नैं होय, जे आत्म-शक्ति अभिरामं।
हां रे सुगणा ! ते अकरण-वीर्य जोय, ते इहां न ग्रहिवुं तामं॥

भाणियव्वा जाव तहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्जं। (श० १।१३६-१३८)

१७, १८. जहा ते भंते ! एत्थं गमणिज्जं, तहा ते इहं गमणिज्जं ? जहा ते इहं गमणिज्जं, तहा ते एत्थं गमणिज्जं ?

१९, २०. हंता गोयमा ! जहा मे एत्थं गमणिज्जं जाव तहा मे एत्थं गमणिज्जं। (श० १।१३९)

२१. कांक्षामोहनीयकर्मवेदनं सप्रसङ्गमुक्तम् अथ तस्यैव-बन्धमभिधातुमाह— (वृ०-प० ५६)

२२. जीवा णं भंते ! कंखामोहणिज्जं कम्मं बंधंति ?
हंता बंधंति। (श० १।१४०)

२३. कहण्णं भंते ! जीवा कंखामोहणिज्जं कम्मं बंधंति ?
गोयमा ! पमादपच्चया, जोगनिमित्तं च।
(श० १।१४१)

२५. से णं भंते ! पमादे किंपवहे ?
गोयमा ! जोगप्पवहे। (श० १।१४२)

२६. से णं भंते ! जोए किंपवहे ?
गोयमा ! वीरियप्पवहे। (श० १।१४३)

२६. वीर्य नाम वीर्यान्तरायकर्मक्षयक्षयोपशमसमुत्थो जीव-परिणामविशेषः (वृ०-प० ५७)

२७. से णं भंते ! वीरिए किंपवहे ?
गोयमा ! सरीरप्पवहे। (श०१।१४४)

२८-३१. वीर्यं द्विधा—सकरणमकरणं च, तत्रालेश्यस्य केवलिनः कृत्स्नयोर्ज्ञेयदृश्ययोः केवलं ज्ञानं दर्शनं चोपयुञ्जानस्य योऽसावपरिस्पन्दोऽप्रतिघो जीवपरिणाम-विशेषस्तदकरणं तदिह नाधिक्रियते, यस्तु मनो-

१. अंगसुत्ताणि भाग १ श० १।१३७, १३८ के स्थान में जाव की पूर्ति की गई है। अन्य आदर्शों में 'दो आलावगा भाणियव्वा' कहा है। इसलिए अंगसुत्ताणि के दो सूत्रों की स्वतंत्र जोड़ प्राप्त नहीं होती।

*लय—हां जी साहिबा ! गोरी में मोत्यां जितरो भार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०. हां रे सुगणा ! सलेसी जीव नों सोय, मन वच काया साधन थी।
हां रे सुगणा ! आत्म-व्यापार जे होय, ते सकरण-वीर्य सुगम थी ।।
३१. हां रे सुगणा ! सकरण-वीर्य नों जाण, उत्पादक शरीर होइ।
हां रे सुगणा ! तिण कारण थी पिछाण, वीर्य तनु प्रवहै जोइ ।।
३२. हां रे सुगणा ! किण मूं प्रवर्त्ते शरीर ? जिन कहै चेतन थी जाणो।
हां रे सुगणा ! प्रश्नोत्तर शुभ सीर, किया वीर गोयम गुण-खाणी ।।
३३. हां रे चेला ! इम कंक्षा वेदक छतै जोय, छै उठाण ऊमो थावूं।
हां रे चेला ! कर्म गमनादिक जाण, बल नै तनु सामर्थ्य भावूं ।।
३४. हां रे चेला ! वीर्य जीव-ओछाह, बलि पुरुषकार अभिमानं।
हां रे चेला ! पराक्रम ते जाण, कार्य संपूर्ण ठाणं ।।
३५. हां रे सुगणा ! कंक्षा-मोह वेदन बंध, आख्यो हेतु करि सहीतं।
हां रे सुगणा ! उदीरणादिक तात, प्रश्न हिव रूडी रीतं ।।

३६. हो जी प्रभु ! आपणपै जे जीव, उदीरै कंक्षा कर्म।
हो जी प्रभु ! अतीत काल कृत निंद, पोतै आतम करि नर्म ।।
३७. हो जी प्रभु ! संवरै पिण पोतैईज, न करै तेहिज वर्त्तमानं।
हां रे चेला ! हंता पोतैज उदीर, निंदै संवरै सुजानं ।।
३८. हां रे सुगणा ! हिवै उदीरणा जाण, पूछै गोतम जिन उत्तर।
हो जी प्रभु ! जे पोतैईज उदीरै, पोतै निंदै संवर ।।
३९. हो जी प्रभु ! ते उदय आया नै उदीरै, उदीरै उदय न आयो।
हां जी अथवा उदय न आयो कर्म, उदीरण योग्य कहायो ?
४०. हो जी स्वामी ! उदय आया पछै जेह, अनंतर समय उदीरं ?
हां जी सुगणा ! प्रश्न पूछ्या ए च्यार, उत्तर इम देवै वीरं ।।
४१. हां रे चेला ! उदय आयो जे कर्म, तेहनै उदीरै नांही।
हां रे गोयम ! उदय न आयो कर्म, ते पिण न उदीरै त्यांही ।।
४२. हां रे गोयम ! उदय नायो उदीरणा योग्य, उदीरै ते कर्म त्यांही।
हां रे गोयम ! उदय आयां अनंतर समय, उदीरै छै ए नांही ।।
४३. हां रे सुगणा ! वृत्तिकार कह्यूं एम, कार्य उदीरण केरा।
हां रे सुगणा ! गरहै संवरे पूछा मांहि, आख्या किम वे अधिकेरा ?
४४. हां रे सुगणा ! उदीरणा रे मांहि, गर्हा संवरण उपायो।
हां रे सुगणा ! बहुलपणै विहुं होय, पूछा में तिण सूं आयो ।।
४५. हो जी प्रभु ! उदय न आयो कर्म, उदीरण योग्य कहायो।
हो जी प्रभु ! उदीरै छै ते कर्म, स्यूं उठाणं करि थायो ?
४६. हो जी प्रभु ! बल वीर्य पुरुषाकार, उदीरै पराक्रम सूं ?
हो जी प्रभु ! अथवा उठाणादिक विण जाण, उदीरै नियति नियम सूं ?

वाक्कायकरणसाधनः सलेश्यजीवकर्तृको जीवप्रदेशपरिस्पन्दात्मको व्यापारोऽसौ सकरणं वीर्यं तच्च शरीरप्रवहं, शरीरं विना तदभावादिति। (वृ०-प० ५७)

३२. से णं भंते ! सरीरे किंपवहे ?
गोयमा ! जीवप्पवहे। (श० १।१४५)

३३, ३४. एवं सति अत्थि उट्ठाणेइ वा, कम्मेइ वा, बलेइ वा, वीरिएइ वा, पुरिसक्कारपरक्कमेइ वा।
(श० १।१४६)

३५. कांक्षामोहनीयस्य वेदनं बन्धश्च सहेतुक उक्तः, अथ तस्यैवोदीरणामन्यच्च तद्गतमेव दर्शयन्नाह—
(वृ०-प० ५७)

३६, ३७. से नूणं भंते ! अप्पणा चेव उदीरेति ? अप्पणा चेव गरहति ? अप्पणा चेव संवरेति ?
हंता गोयमा ! अप्पणा चेव उदीरेति। अप्पणा चेव गरहति। अप्पणा चेव संवरेति। (श० १।१४७)

३८-४०. 'जं णं' भंते ! अप्पणा चेव उदीरेति, अप्पणा चेव गरहति, अप्पणा चेव संवरेति, तं किं—१. उदिण्णं उदीरेति ? २. अणुदिण्णं उदीरेति ? ३. अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेति ? ४. उदयाणंतरपच्छाकडं कम्मं उदीरेति ?

४१, ४२. गोयमा ! १. नो उदिण्णं उदीरेति २. नो अणुदिण्णं उदीरेति ३. अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेति ४. नो उदयाणंतरपच्छाकडं कम्मं उदीरेति।
(श० १।१४८)

४५, ४६. जं णं भंते ! अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेति, तं किं उट्ठाणेणं, कम्मेणं, बलेणं, वीरिएणं, पुरिसक्कार-परक्कमेणं अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेति ? उदाहु तं अणुट्ठाणेणं, अकम्मेणं, अबलेणं, अवीरिएणं, अपुरिसक्कारपरक्कमेणं अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेति ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७. हां रे चेला ! उठाण कर्म बल आदि, तेहथी उदीरण होयो।
हां रे चेला ! उठाणादिक विण तास, उदीरण न ह्वै कोयो ।।

४७. गोयमा ! तं उट्ठाणेणं वि, कम्मेण वि, बलेण वि, वीरिएण वि, पुरिसक्कार-परक्कमेण वि अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेति । णो तं अणुट्ठाणेणं, अकम्मेणं, अबलेणं, अवीरिएणं, अपुरिसक्कारपरक्कमेणं अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेति ।
(श० १।१४६)

४८. हां रे सुगणा ! वृत्तिकार कह्यु एम, उदीरण प्रमुख मांही।
हां रे सुगणा ! कारण काल स्वभाव, तो पिण ते न कह्यो त्यांही ।।
४९. हां रे सुगणा ! प्रधानपणै पिछाण, उदीरण केरो कारण।
हां रे सुगणा ! पुरुष-वीर्य इज होय, ते माटै एहनुं धारण।

४८, ४९. इह च यद्यप्युदीरणादिषु कालस्वभावादीनां कारणत्वमस्ति तथाऽपि प्राधान्येन पुरुषवीर्यस्यैव कारणत्वमुपदर्शयन्नाह—
(वृ०-प० ५९)

५०. हां रे चेला ! इम उठाणादिक करि जेह, उदीरण छतेज जाणी।
हां रे चेला ! उठाण कर्म बल वीर्य, प्रमुख सहु छै इम ठाणी ।।

५०. एवं सति अत्थि उट्ठाणेइ वा, कम्मेइ वा, बलेइ वा, वीरिएइ वा, पुरिसक्कारपरक्कमेइ वा।
(श० १।१५०)

५१. हां रे सुगणा ! कंक्षा-मोहनी एह, उदीरण एतो आखी।
हां रे सुगणा ! हिव तसु उपशम भाव, कहियै छै सूत्रे साखी ।।

५१. कांक्षामोहनीयस्योदीरणोक्ता, अथ तस्यैवोपशमनमाह—
(वृ०-प० ५९)

५२. हो जी प्रभु ! कंक्षा-मोहनी कर्म, उपशमावै पोतै स्वामी ?
हो जी प्रभु ! गरहै संवरै पोतै इज ? हंता कहै अंतरजामी ।।
५३. हां रे सुगणा ! च्यारूं प्रश्न उत्तर इमहीज, णवरं छै इतो विशेषं।
हां रे चेला ! उदय नांयो उपशमाय, नहीं छै त्रिहुं भंगा शेषं ।।

५२, ५३. से नूणं भंते ! अप्पणा चेव उवसामेइ ? अप्पणा चेव गरहइ ? अप्पणा चेव संवरेइ ?
हंता गोयमा ! एत्थ वि तह चेव भाणियव्वं, नवरं अणुदिण्णं उवसामेइ सेसा पडिसेहेयव्वा तिण्णि ।

५४. हो जी प्रभु ! उदय नांयो उपशमावै, उठाणादिक थी त्यांही।
हां रे चेला ! जाव पूर्ववत् पाठ, उठाणादिक विण नांहि ।।

५४. जं तं भंते ! अणुदिण्णं उवसामेइ तं किं उट्ठाणेणं जाव पुरिसक्कारपरक्कमेइ वा।

५५. हो जी प्रभु ! कांक्षा-मोहनी कर्म, आपणपै वेदै स्वामी !
हो जी प्रभु ! गरहै संवरै पोतैइज, हंता कहै अंतरजामी ।।
५६. हां रे सुगणा च्यारूं प्रश्न उत्तर इमहीज, णवरं छै इतो विशेषं।
हां रे चेला ! उदय आयो वेदंत, नहीं छै त्रिहुं भंगा शेषं ।।
५७. हो जी प्रभु ! उदय आयो वेदंत, उठाणादिक थी त्यांही।
हां रे चेला ! जाव पूर्ववत् पाठ, उठाणादिक विण नांही ।।

५५-५७. से नूणं भंते ! अप्पणा चेव वेदेइ अप्पणा चेव गरहइ एत्थ वि सच्चेव परिवाडी, नवरं उदिण्णं वेदेइ नो अणुदिण्णं वेदेइ एवं जाव पुरिसक्कार-परक्कमेइ वा।

५८. हो जी प्रभु ! कंक्षा - मोहनी कर्म, पोतैज निज्जरै स्वामी।
हो जी प्रभु ! गरहै संवरै पोतैईज, हंता कहै अंतरजामी ।।
५९. हां रे च्याऱ्यं प्रश्न उत्तर इमहीज, णवरं छै इतो विशेषं।
हां रे चेला ! उदय अनंतर समय निज्जर, नहीं छै त्रिहुं भंगा शेषं ।।
६०. हो जी प्रभु ! उदय अनंतर समय निज्जर, उठाणादिक थी त्यांही।
हां रे चेला ! जाव पूर्ववत् पाठ, उठाणादिक विण नांही ।।

५८-६०. से नूणं भंते ! अप्पणा चेव निज्जरेइ अप्पणा चेव गरहइ, एत्थ वि सच्चेव परिवाडी, नवरं उदयअणंतरपच्छाकडं कम्मं निज्जरेइ एवं जाव परक्कमेइ वा।
(श० १।१५१-१५४)

६१. हां जी सुगणा ! कंक्षा-मोहनी कर्म, वेदन प्रमुख निज्जरंत।
हां जी सुगणा ! नरकादि दंडक विचार, ते आश्री प्रश्न उदंत ।।

६१. अथ कांक्षामोहनीयवेदनादिकं निर्जरान्तं सूत्रप्रपंचं नारकादिचतुर्विंशतिदण्डकैर्नियोजयन्नाह—
(वृ०-प० ५९)

६२. हो जी प्रभु ! नेरइया कंक्षा-मोह कर्म, वेदं ए प्रश्न उदारा।
हां रे चेला ! जीव औधिक जिम नरक, इम यावत् थणियकुमारा ।।

६२. नेरइया णं भंते ! कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति ?
जहा ओहिया जीवा तहा नेरइया जाव थणियकुमारा।
(श० १।१६३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६३. हो जी प्रभु ! पृथ्वीकाइया जीव, कंक्षा-मोह कर्म वेदै छै।
हां रे चेला ! हंता वेदै जेह, उत्तर इम जिनजी कहै छै ।।

६४. हो जी प्रभु ! पृथ्वीकाइया जीव, कंक्षा-मोह किण विध वेदै ?
हां रे गोयम ! तर्क, ज्ञान, बुद्धि नांहि, मन वच पिण नहीं उमेदै ।।

६५. हां रे चेला ! वेदां अम्हे कंक्षा-मोह, तर्कादिक नहीं तसुं एहवूं।
हां रे गोयम ! पिण वेदै छै तेह, निश्चै तूं जाणै तेहवूं ।।

६३. पुढविक्काइया णं भंते ! कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति ?
हंता वेदेंति । (श० १।१६४)

६४, ६५. कहण्णं भंते ! पुढविक्काइया कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति ?
गोयमा ! तेसि णं जीवाणं णो एवं तक्का इ वा, सण्णा इ वा, पण्णा इ वा, मणे इ वा, वई ति वा—अम्हे णं कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेमो, वेदेंति पुण ते ।
(श० १।१६५)

६६. हो जी प्रभु ! तेहिज सत्य निसंक, जिन भाख्युं जे छै तिम ही।
हां रे गोयम ! जाव पराक्रम छतै एम, जावत् चउरिंदी इम ही ।।

६६. से नूणं भंते ! तमेव सच्चं नीसंकं, जं जिणेहिं पवेइयं ?
हंता गोयमा ! तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं ।
सेसं तं चेव जाव परक्कमेइ वा ।
एवं जाव चउरिंदिया । (श० १।१६६, १६७)

६७. हां रे चेला ! पंचेंद्री तिर्यंच पिछाण, जावत् वेमानिक ताहं।
हां रे चेला ! जीव औधिक जिम जाण, सगला पद कहिवा ज्यांही ।।

६७. पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जाव वेमाणिया जहा ओहिया जीवा । (श० १।१६८)

६८. हां रे सुगणा ! अंक तेर नों देश, द्वादशमी ढाल रसाली।
हां रे सुगणा ! भिक्खु भारीमाल ऋषराय, 'जय-जश' संपति सुविशाली ।।

ढाल : १३

दूहा

१. कंक्षा - मोहनी वेदवूं, कह्या दंडक चउवीस।
निर्ग्रंथ नै पिण ह्वै कदा, ते हिव प्रश्न कहीस ।।

२. श्रमण निर्ग्रंथ पिण हे प्रभु ! कंक्षा-मोहणी कर्म।
वेदै छे ? हंता अत्थि, ए जिन-वचन सुपर्म ।।

२. अत्थि णं भंते ! समणा वि निग्गंथा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेएंति ? हंता अत्थि । (श० १।१६९)

३. हे भदंत ! किण विध अछै, श्रमण निर्ग्रंथ नै जोय।
कंक्षा-मोह नै वेदवूं, हिव जिन उत्तर होय ।।

३. कहण्णं भंते ! समणा निग्गंथा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति ?

४. तेण-तेण कारण करी, तेर अंतरे जाण।
कारण कंक्ष-वेदन तणो, कहियै हिवै पिछाण ।।

५. तेर अंतरा नो अरथ, कियो धर्मसी ताय।
केतलुंक ते मांहिलु, कहियै छै वर न्याय ।।

६. णाणंतरेहिं पाठ ए, प्रथम अंतरो जाण।
समझ पड्यां विण एहनो, आंणै भर्म अयाण ।।

७. *एक ज्ञान थकी बीजो ज्ञान, तिण में आंतरू पडतूं पिछान।
शंकादिक ऊपजै तिण मांय, तिण नै णाणंतर कहिवाय ।।

७-१०. एकस्माज्ज्ञानादन्यानि ज्ञानानि ज्ञानान्तराणि तैर्ज्ञानविशेषैर्ज्ञानविशेषेषु वा शङ्किता इत्यादिभिः संबंधः, एवं

*लय—जेहनी मींजा भेदांणी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. जिम तीजूं अवधि ज्ञान माणैं, सर्व लोक रूपी द्रव्य जाणैं।
ते जाणै मन ना पिण पर्याय, तो चोथो मनपज्जव किण न्याय ?॥
९. अथवा मनपज्जव थी जोय, असंख्यातगुणो अवलोय।
अधिक क्षेत्र रूपी द्रव्य जाणै, एहवो अवधि कह्यूं जगभाणै॥
१०. मनपज्जव थी इतो जाणै नाहीं, तो इणनै चोथै ठांम सूत्र मांही।
अधिक ज्ञान मांहै आण्यो, तेहनो स्यूं प्रयोग पिछाण्यो ?॥
११. इम ऊपनै छतै संदेह, शंका कंखा वितिगिच्छा आणेह।
भेद-कलुष-समापन्न पांम, ए संका तणो छै ठाम॥

१२. *मनपर्यव थी सामान्य अवधि ए, परम दृष्टि करि पेखियै।
लघु अवधि जघन्य आंगुल तणो, असंख्यातमों भाग देखियै॥

१३. अविरति समदृष्टि नरक, तिर्यंच में पिण ए लहै।
गति च्यार में पिण ऊपजै, ते भणी अवधि सामान्य है॥
१४. मनपर्यव तो धुर थीज मोटो, पैंतालीस लक्ष जोजनं।
अढी आंगुल ऊंण छै ते, जघन्य पिण मोटो घनं॥
१५. मुनि लब्धवंत बिना न उपजै, ते भणी इम न्हालियै।
अवधि थी मनपर्यव मोटो, शंक इह विध टालियै॥

सर्वत्र, तेषु चैवं शङ्कादयः स्युः—यदि नाम परमाण्वादि-सकलरूपिद्रव्यावसानविषयग्राहकत्वेन संख्यातीतरूपाण्यवधिज्ञानानि सन्ति तत्किमपरेण मनःपर्यायज्ञानेन ? (वृ०-प० ६०)

दूहा

१६. दंसणंतरेहिं दूसरो दर्शण अंतर देख।
एहमें पिण समज्यां विना, आणै भर्म अशेष॥

यतनी

१७. दर्शण सम्यक्त्व श्रद्धा सुद्ध, दश बोल में इक न विरुद्ध।
तो बलि उपशम प्रमुख पंच, सम्यक्त्व जुदा कह्या ते स्यूं संच॥
१८. उपशम वडो कह्यो किण न्याय, क्षयोपशम वडो किम न कहिवाय ?
कांयक क्षय कांयक उपशम, तसुं कहियै सम्यक्त्व-क्षयोपशम॥
१९. मिथ्या मोहनीं जे उदय आवी, ते कर्म दल तेण खपावी।
अनैं उदय नावी ते उपशमावी, ए सम्यक्त्व क्षयोपशम कहावी॥
२०. अनैं उपशम सम्यक्त्व ताय, सर्व दर्शण-मोह उपशमाय।
दर्शन-मोह रो एक प्रदेश, उदय मांहि नहीं लवलेश॥
२१. तो जे उदय आवी ते खपावी, ते आश्री क्षयोपशम अधिकावी।
उपशम सम्यक्त्व अधिक किण न्याय ? इत्यादिक शंका मन मांय॥

२२. *क्षयोपशम गुणठाण तुर्य थी, सातमां लग ए हुवै।
इक भव संख्याती वार आवै, प्रदेश मिथ्या अनुभवै॥

*लय—पूज मोटा भांजै टोटा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. उपशम चउथा थी इग्यारम, दर्शन-मोह नों जाणियै।
इक प्रदेश पिण नांहि वेदै, सर्व उपशम ठाणियै।।
२४. इक भव मध्ये उत्कृष्ट थी, उपशम बार बे आवियै।
इत्यादि गुणकरण अधिक छै ए, इम संदेह निवारियै।।

दूहा

२५. चरित्तंतरेहिं पाठ ए, तीजो अंतरो जाण।
चारित्र में अंतर गिणो, आणै संक अयाण।।

यतनी

२६. नव भंगे करीनै जाण, सर्व अव्रत नों पचखाण।
ते सर्व चारित्र सुख खेम, तो वलि पांच चारित्र कह्या केम।।
२७. तथा सामायक छेदोपस्थापन्न, उच्चार तसुं समव्यापन्न।
पंच आश्रव त्याग समाज, तो ए जुदा कह्या किण काज ?।।

२८. *जूजूआ चरण परिणाम वस थी, दशम गुणठाणै वरण।
चरित्त सूक्ष्म - संपरायज, ग्यारमै उपशम-चरण।।

२९. द्वादशम तेरम चवदमैं गुणठाण क्षायक-चरण है।
क्षयोपशम उपशम नै क्षय, चारित्र-मोह नुं करण है।।
३०. महाविदेह नै बावीस जिन मुनि, चरण सामायक अछै।
सरल नै वलि विमल प्रज्ञा, छेदोपस्थापन वलि न छै।।
३१. प्रथम चरम जिन तणै धुर, सामायक अल्प काल ही।
जघन्य सप्त दिन, मास षट उपरंत उत्कृष्ट न्हाल ही।।
३२. वलि छेदोपस्थापन उचरै, अल्प प्रज्ञा ते भणी।
सातिचार नें निरतिचार, बे भेद इम शंका हणी।।
३३. तेवीसमां जिन तणां मुनि, आवंत चरम जिन वार ए।
इम नवदीक्षित छेदोपस्थापन, रीत निरतिचार ए।।
३४. उभय जिन मुनि व्रत भंग, फिरि सामायक नवि धारए।
छेदोपस्थापन आदरै, ए कह्युं सअतिचार ए।।

दूहा

३५. लिंगंतरेहिं पाठ ए, चोथो अंतरो जाण।
लिंग-अंतर अवलोक नै, आंणै भर्म अयाण।।

यतनी

३६. बावीस जिन मुनि महाविदेह खेत, वस्त्र पंच रंग नहिं मानोपेत।
प्रथम चरम वारै श्वेत मान, अंतर सूं भर्म आंणै अजान।।

*लय—पूज मोटा भांजै टोटा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७. *बावीस जिन मुनि महाविदेह क्षेत्र, सरल प्रज्ञा नां धणी।
प्रथम ऋजु-जड चरम वक्र-जड़, लिंग फेर इम भ्रम हणी ।।

दूहा

३८. पवयणंतरेहि पंचमो, प्रवचन सिद्धांत मांहि।
अंतर देखी मूढ-मति, शंका आणै ताहि ।।

यतनी

३९. प्रवचन सिद्धांत मै कह्या ताम, च्यार जाम तथा पंच जाम।
एहवो समय - अंतर अवलोय, शंका कंक्षा आणै मूढ कोय ।।
४०. प्रथम जिन मुनि ऋजु-जड जाण, चरिम ना वक्र-जड पिछाण।
विचला जिन मुनि ऋजु-प्रज्ञावंत, तिण सूं चउ पंच जाम कहंत ।।
४१. तथा पन्नवण चउथा पद मांहि, च्यार अनुत्तरविमान में ताहि।
सुर नीं जघन्य स्थिति जगीस, आखी सागर इकतीस ।।
४२. समवायांग तीस में वाय, सुर च्यार अनुत्तर मांय।
केतलाएक सुर नीं जगीस, स्थिति आखी सागर बत्तीस ।।
४३. इहां शंका आणै मन कोय, तेहनों उत्तर ए अवलोय।
कोइ सेज्या विषै पहिछाण, स्थिति बत्तीस सागर जाण ।।
४४. तथा ज्ञाता आठमै अझेण, मल्लि ना मुनि अवधि सुश्रेण।
हद आख्या है दोय हजार, मनपर्यव आठ सौ सार ।।
४५. अनै समवायांग सूत्र मझार, अवधिज्ञानी गुनसठ सौ उदार।
सतावन सौ मनपर्यवनाणी, ए शंका नो हिव उत्तर जाणी ।।
४६ नंदी मै अवधि षट प्रकार, बे प्रकार मनपर्यव सार।
घणां कह्या ते पिण सत्य जोय, थोडा ते एक जाति ना होय ।।

दूहा

४७. पावयणंतरेहि छठो कह्यो, प्रवचन सूत्र जोय।
तेहनां जाण जे बहुश्रुती, तसुं कहण में अंतर होय ।।

यतनी

४८. जिम स्थविर पार्श्व ना च्यार, उत्तर जूजूआ दिया उदार।
पूर्व - तप पूर्व - संजमेण, कम्मिया संगियाए तेण ।।

४९. *चिउं बोल नों ए उत्तर जे सुर-आयुबंध पिछाणियै।
सराग मध्यै आयु बंधै, ए परमार्थ जाणियै ।।
५०. तप - सराग सराग-संजम, रह्या कर्म खपावता।
सराग छतां सुर आयु बंधै, मुदो इक इम भाखता ।।

*लय---पूज मोटा भांजै टोटा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूहा

५१. कल्पांतरेहिं पाठ ए, सप्तम अंतर जोय।
कल्प में अंतर देख नै, शंका आणै कोय ।।

यतनी

५२. ठियकल्प अट्ठियकल्प साध, विहुं नै शिव-पंथ आराध।
आवसग ठियकल्पी नैं नियत, अट्ठियकल्पी नैं नियत न कहत ।।

५३. काम विहुं नों जाणै अतिचार, तिण ही वेला आलोवै सार।
ए कल्प में इतो स्यूं फेर? तिण रो उत्तर आगल हेर ।।

५४. *प्रथम चरण ठियकल्प प्रज्ञा, अल्प छै तिह कारणं।
आवश्यक विहुं काल करिवूं, एह नियमा धारणं ।।

५५. विचला ना मुनि बहुप्रज्ञ सरल तमु, नियम आवश्यक नों नहीं।
विहुं नै जिन आण जाणी, निशंक चित भावो सही ।।

यतनी

५६. तथा जिनकल्प में कष्ट घणेरो, स्थविर कल्प में कष्ट थोडेरो।
दोनूंइ कल्प में पहिछाण, नहीं ऊपजै केवलनाण ।।

५७. जिन-स्थविर-कल्पी सुवदीत, दोनूंइ हुवै कल्पातीत।
तो दोनूं नैं केवल लहियै, तो जिनकल्प कष्ट कांय सहियै?

५८. *जिनकल्प मुनि आदरै ते, कर्म बहु नैं भेदवा।
एम सम्यक्त्व देशव्रती धरै बहु भव छेदवा ।।

दूहा

५९. सप्तांतरेहिं आठमों, शुद्ध मार्ग में जाण।
कोइ अंतर देखी करी, आणैं भर्म अयाण ।।

यतनी

६०. साधु साध्वी नैं सुविचार, सरिखा पंच महाव्रत सार।
बलि शिवपद नी अधिकारी, सरिखी विहुं नै समाचारी ।।

६१. मुनि नैं तीन पछेवडी आखी, साध्वी नैं च्यार जिन भाखी।
तथा मुनि नैं न जडणो कमाड, कह्यो कल्पै अवंगुयद्वार ।।

६२. अनैं साध्वी नैं सुविचार, नहीं कल्पै उघाडै-द्वार।
रात्रि सूवै जडीनै कमाड, ब्रह्मचर्य-रक्षा भणी सार ।।

६३. कमाड न ह्वै जो कोय, तो रहै बांधी पछेवडी दोय।
इम मारग में अंतर जाण, भर्म आणैं कोइ अयाण ।।

*लय—पूज मोटा भांजै टोटा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६४. *चउ पछेवडी कमाड जडवूं, ते स्त्री ना खोलियावती।
वीतराग नीं आण छै ते, मुक्ति - मारग भावती ।।

६५. अचेल साध्वी नैं न कल्पै, तो अचेल मल्लि किम रह्या।
तास उत्तर—जिनेंद्र माटै कोय न देखै इम कह्या ।।

दूहा

६६. मतंतरे नवमों कह्यूं, मत में अंतर न्हाल।
समझ पड्यां विण जीव कै, आणैं भर्म भयाल ।।

यतनी

६७. एक वाचनाई सुविमासी, भगवती ना पद सहस्र चोरासी।
एक वाचनाई दोय लाख, ऊपर सहस्र अठ्यासी साख ।।

६८. *अधिकार विशेष अथवा वाचना, जूजूई गणधर तणी।
ते मध्य कोयक ना इता पद, एम शंका अवगणी ।।

६९. तथा लघु मोटा पद विशेष ते, न्याय करि इम जाणियै।
बहु वाचना सत्य आण जिनवर, शंक मूल म आणियै ।।

यतनी

७०. मतांतर पाठांतर पेख, गणधर नीं वाचना सुविशेख।
केइ कहै पाठांतर एह, दोय ठाम लिख्या सूत्र जेह ।।

७१. मूंहढै हुंता आया वाद जेम, बिहुं ठामे लिख्या धर प्रेम।
पछै थया बहुश्रुती भेला, कियो सूत्र संवाद समेला ।।

७२. किहां पाठ में अंतर देख, पाठांतर कहै केइ एक।
इणमैं शंका न आणवी जेह, सर्वज्ञ वदै सत्य तेह ।।

दूहा

७३. भंगंतर दशमों कह्यो, अंतर भांगा मांहि।
देखी नैं शंका धरै, समझ पड्यां विन ताहि ।।

यतनी

७४. चउभंगे आचार्य च्यार, सोवाग १ करंडक - धार।
गणिका २ ववहारिया ३ राय ४, त्यारा करंडिया सम कहिवाय ।।

७५. तथा श्रावक च्यार प्रकार, बाप सरीखा महा सुखकार।
भाइ सरीखा मित्र सरीस, सोक सरीखा अशुद्ध कहीस ।।

७६. ए आचार्य केम कहिवाय, वले श्रावक पिण किम थाय?
एहवो शंका आणैं मन कोय, तिण रो उत्तर आगल जोय ।।

---

*लय—पूज मोटा भांजै टोटा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७७. *आचार्य श्रावक नाम मात्रे, कहितां दोष न जाणियै।
अयोग्य तजिइं योग्य आदरै, ए समाधि चित आणियै॥

यतनी

७८. भंगंतरेहि नों अर्थ जाण, वृत्ति मांहि कही इम वाण।
दोय आदि संजोग थी जोय, भांगा ऊपजै ते अवलोय॥

७९. एक द्रव्य थी हिंसा कहाय, पिण भाव थी हिंसा न थाय।
इम च्यार भांगा में लीजै, इहां प्रथम भांगो किम कहीजै॥

८०. ईर्या समिति चालै मुनिराय, कीडी प्रमुख जीव हणाय।
तिका द्रव्य थी हिंसा कहाय, पिण भाव थी हिंसा न थाय॥

८१. द्रव्य-हिंसा मरण मात्र रूढ, पिण कर्म बंध नवि गूढ।
तिण सूं भाव-हिंसा न कहायो, जय गणपति कहै हिव न्यायो॥

८२. 'प्रथम आचारंग सुविशेष, अध्येन पंचम, पंचम उदेश।
सम्यक् मानतो जे मुनिराय, असम्यक् पिण सम्यक् थाय॥

८३. ईर्या सहित चाल्यां जीव-घात, तिण नैं घातो न कहिये विख्यात।
तथा तीजे अध्ययन आचारंग, नदी नावा नीं आज्ञा सुचंग॥

८४. बृहत्कल्प रै चउथे उदेश, एक मास मांहै सुविशेष।
तीन नदी नीं आज्ञा कहाय, ए पिण कल्प बांध्यो जिनराय॥

८५. नदी मांहै वहती साध्वी नैं, साधु काढै हाथ ग्रही नैं।
जिन-आज्ञा नहीं लोपाय, बृहत्कल्प छठा रै मांय॥

८६. वीतराग थी जीव हणाय, इरियावही पुन्य कर्म बंधाय।
भगवती शतक अठारमा मांय, अष्टम उदेशै कह्यो जिनराय॥

८७. मरण मात्र द्रव्य-हिंसा ताय, पिण जिन-आज्ञा सुखदाय।
तिण सूं भाव-हिंसा नहिं होय, हणवा रो कामी नहिं कोय॥

८८. इम जाणी नैं शंक निवारै, जिन-आज्ञा भणी दिल धारै।
जिन-आज्ञा मांहै नहि पाप, इम निश्चय दिल मांहै थाप॥'
(ज० स०)

दूहा

८९. नयंतरेहि ग्यारमों, नय-वच अंतर न्हाल।
समझ पड्यां विण तेह में, आणैं भर्म भयाल॥

यतनी

९०. नेगम संग्रह नैं ववहार, ऋजुसूत्र द्रव्य नय च्यार।
शब्द समभिरूढ एवंभूत, भाव नय तीनूं वर सूत॥

९१. यांरा वचन जूजूआ भाल, कोइ भर्म आणैं तिण काल।
तिण रो उत्तर आगल जोय, समाधान इसी विध होय॥

*लय—पूज मोटा भांजै टोटा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९२. *'द्रव्य नेगमादिक च्यार नय, विण भाव आवसग नै कहै।
ए आवसग छै इम परूपै, कहण मात्रे ए लहै।।

९३. इम नाम स्थापन द्रव्य जिन नैं, कहण मात्रे जिन कहै।
ए नाम-जिन ए स्थापना-जिन, द्रव्य-जिन इह विध लहै।।

९४. शब्दादि विण इक भाव मांनै, नाम स्थापन द्रव्य भणी।
नवि मांनवै, इक भाव मान्यो, आवश्यक भावे गुणी।।

९५. ए सात नय नों ए परमारथ, ओलखी दिल आणियै।
गुण-हीण वांद्यां धर्म ए, किणहि नयै नवि जाणियै।।

९६. पाप अष्टादश सेव्यां, सावज्ज कार्य माणियै।
अव्रत सेवायां धर्म नैं पुन्य, किणहि नयै नवि जाणियै।।

९७. असंजमजीवितव्य वांछ्यां, आण बाहिर माणियै।
श्रावक जिमायां धर्म नैं पुन्य, किणहि नयै नवि जाणियै।।

९८. जिम अजा नों गलो छेद्यां, किणहि नय में धर्म नहीं।
तिमहिज सर्व सावज्ज कार्य, धर्म नहीं छै तिण महीं'।।
(ज० स०)

दूहा

९९. नियमंतरेहि बारमों, नियम—अभिग्रह मांहि।
अंतर देखी समज विण, शंका आणै ताहि।।

यतनी

१००. अपमान देइ नैं आहार, आपै तो लेवूं तिवार।
एहवो अभिग्रह किणहि मुनिराय, कीधो मन हरष सवाय।।

१०१. तथा अधिक मान सत्कार, देइ आपै तो लेवूं आहार।
तो ए मान नों वांछवो होय ? ए शंका नों उत्तर जोय।।

१०२. *ए विहुं अभिग्रह नैं विषै, मुनि मान नैं अपमान नों।
इच्छुक नहीं, है रसिक केवल, निज नियम सुविधान नों।।

१०३. अणमिलयै चित स्थिर राखवो, भाव ए मुनिवर तणां।
ते भणी छै तप विहुं नैं, इत्यादि अभिग्रह घणां।।

१०४. बोल तेरै तणो अभिग्रह, वीर प्रभु पिण है कियो।
परंपर ए बात प्रसिद्ध, जाण निमल करै हियो।।

दूहा

१०५. पमाणंतरेहि तेरमों, प्रमाण में पहिछाण।
अंतर देखी समज विण, आणै भर्म अयाण।।

---

*लय—पूज मोटा भांजै टोटा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यतनी

१०६. चक्षु इंद्री नों विषय पिछाण, उच्छेद-अंगुल करि जाण।
लाख योजन जाझो कहिवाय, ए सूत्र तणों छै न्याय॥
१०७. तेणं लाख योजन ना कहीस, प्रमाण-योजन शत जगीस।
आठ सौ नै अस्सी पहिछाण, चंद प्रमाण-योजन माण॥
१०८. ते इहां थी प्रत्यक्ष प्रमाण, चंद दीसै छै सुविहाण।
किहां शत योजन कहियै, किहां आठसौ अस्सी लहियै॥
१०९. इत्यादिक प्रमाण मांय, अंतर देखो अधिकाय।
मन शंका आणै कोय, तसुं उत्तर आगल जोय॥

११०. *एक लक्ष योजन करै वैक्रिय, ते आश्री चक्षु विषय छै।
चंद सूर्य तो तसुं कांति ना, प्रभाव थी दीसै अछै॥
१११. बीजूं सही जे कृत पदारथ, कोश सय नै ऊपरै।
कोइ नगर कोट नर रुंख छै ते, दीसतुं नहिं इणि परै॥
११२. विषय चक्षु नों कह्यो, अप्रकाश वस्तु स्वभाव है।
ते भणी दीसै रवि शशि, तसुं कांति नों प्रभाव है॥

यतनी

११३. तथा प्रमाणंतरेहिं पेख, सूर्य आठसौ योजन देख।
समभूतला थी पहिछाण, ए सूत्र तणी छै वाण॥
११४. ऊगतो सगलै मोटो दीसै, मध्यानै नान्हो हीसै।
जद नान्हो विमान स्यूं होय? सहुवी शंका राखै कोय॥

११५. *ऊगतो आथमतो रवि, दूर थी दीसै अछै।
सहस्र सैंतालीस वे—सौ त्रेसठ योजन जेह छै॥
११६. मध्यानै आठ सौ योजन, दीसतुं ए निकट छै।
ढूकडा माटै तेज बहु तिण करी लघु दीसै अछै॥

दूहा

११७. अर्थ तेर अंतर तणो, धर्मसीह कियो जेह।
कितलोइक त्यां मांहिलो, आख्यो छै इहां तेह॥
११८. किहांइक वृत्ति थकी कह्या, किहांइक अपर सुन्याथ।
अवलोकन करिनै अख्युं, जाणै बहुश्रुत ताय॥

११९. *णाणंतरे १ दंसणंतरे २ चरित्तंतरे ३ लिंगंतरे ४।
पवयणंतरे ५ पावयणंतरे ६ कप्पंतरे ७ मग्गंतरे ८॥

११९, १२०. गोयमा! तेहि-तेहिं नाणंतरेहिं, दंसणंतरेहिं, चरित्तंतरेहिं लिंगंतरेहिं, पवयणंतरेहिं, पावयणंतरेहिं,

---

लय—पूज मोटा भांजै टोटा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२०. भवंतरे ९ भंगंतरे १० णयंतरे ११ णियमंतरे १२।
पमाणंतरेहिं १३ सर्वठामै, तृतीया बहु वच इहु परे ।।

वा०---इहां साधु मिथ्यात मोहणी कर्म वेदै कह्यो। ते ऊंधो सरध्यां समदृष्टि साधुपणों किम रहै? उत्तर---ए साधु ऊंधो सरध्यो, ते वेला प्रथम गुणठाणो आवै। जिम २५ में शतक छठै उद्देशै कह्यो पुलाक काल कीधै उत्कृष्ट आठमें कल्प जाय, ते पुलाक में तो मरै नथी। पिण पहिला पुलाक हुंतो तेहथी अनेरै नियंठै आयो, ते समय मरण पावै। इम पूर्व पुलाक हुंतो ते अपेक्षाय पुलाक काल करै, इम कह्यो। तिम पहिला साधु हुंतो, ऊंधो सरध्यो, तिवारै प्रथम गुणठाणै आयो। पिण पूर्व साधु हुंतो ते अपेक्षाय साधु मिथ्यात मोहणी वेदै कह्यो। ए वेदवुं कह्यो ते विपाक नी अपेक्षाय, पिण प्रदेश अपेक्षाय नहीं। जे खयोपशम सम्यक्त्व नो धणी प्रदेशे करी सम्यक्त मोहणी वेदे छै पिण विपाक थी नथी, ते माटै। मिथ्यात्व मोहणी विपाके करी वेदे तेहनों कथन इहां संभवै।

१२१. *ए तेर अनर करि मुनि पिण, शंक कंख वितिगिच्छियै।
तहं भेद कलुष इम मुनि, कंख-मोह कर्म वेदियै ।।

१२२. हे भदंत! तेहीज सत्य निशंक, जे जिनवर कह्यूं।
हंता तेहिज निशंक सत्य, इम धरचां आराधक थयूं ।।

१२३. +इम जाव पराक्रम लगै उदंत, णवरं अत्थि भंते! समणा निग्गंथा।
कंख-मोह कर्म बंधक कहियै, शेष तिमज सेवं भंते लहियै ।।

१२१. ...संकिता कंखिता वितिकिच्छिता भेदसमावन्ना कलुससमावन्ना---एवं खलु समणा निग्गंथा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति। (श० १।१७०)

१२२. से नूणं भंते! तमेव सच्चं नीसंकं, जं जिणेहिं पवेदितं? हंता गोयमा! तमेव सच्चं नीसंकं, जं जिणेहिं पवेदितं। (श० १।१७१)

१२३. एवं जाव परक्कमेइ वा।
सेवं भंते! सेवं भंते।
(श० १।१७२, १७३)

यतनी

१२४. इहां जाव शब्द रै मांह्यो, औधिक जीव तणो पाठ आयो।
णवरं जीव नी त्यां पूछा कीधी, इहां श्रमण निर्ग्रंथ नी सीधी ।।

१२५. जाव क्रम पाठ कहेवूं, श्रमण निर्ग्रंथ नैं इम लेवूं।
प्रभु! श्रमण कंक्ष-मोह बांधै, जिन भाखै हंता सांधै ।।

१२६. प्रभु! किणविध तास उपत्ति? गोयम! प्रमाद जोग निमित्ति।
ते प्रमाद किण सूं उपन्न? गोयम! जोग थकी ते निपन्न ।।

१२७. स्वामी! जोग ते किण सूं उपन्न? गोयम! वीर्य थकी ते निपन्न।
स्वामी! वीर्य ते किण सूं उपन्न? गोयम! शरीर थकी ते निपन्न ।।

१२८. स्वामी! शरीर ते किण सूं उपन्न? गोयम! जीव थकी ते निपन्न।
इम कंक्ष-बंध छतै जाण, छै उठाण कम्म बल माण ।।

१२९. पुरिसक्कार परक्कम अत्थि जोय, जाव शब्द में ए इहां होय।
सेवं भंते! इमहिज पूज्य वायो, अंक तेरे नों अर्थ कहायो ।।

१३०. बारू ढाल तेरमीं ताय, भिक्षु भारीमाल ऋषिराय।
गणि 'जय-जश' संपति सार, सुख आनंद हरष उदार ।।

प्रथमशते तृतीयोद्देशकार्थः ।। १।३ ।।

*लय---पूज मोटा भांजै टोटा

+लय---इण पुर कंबल कोय न लेसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : १४

दूहा

१. तृतीय उदेशै कर्म नों, उदीरणादि आद।
ते कर्म तणां इज भेद हिव, चउथ उद्देशै लाध।।

२. हे प्रभु ! कर्म-प्रकृति कति ? कर्म-प्रकृति कही आठ।
पन्नवण पद तेवीस में, प्रथम उद्देशे पाठ।।

३. कति प्रकृति बधै ते किम, कति स्थानक बंधाय।
कर्म प्रकृति वेदै कति, अनुभाग कतिविध ताय ?।।

४. कर्म - चिंत अधिकार तें, मोह नीं आथी जाण।
पूछै गोयम गणहरू, उत्तर दे जग-भाण।।

*प्रभुजी ! पर उपगारी हो, स्वामी ! थांरी महिमा भारी हो।
जिनेंद्र देव ! मुक्ति नेतारी हो, नाथ ! थे तो त्रिभुवन तारी हो।
जिनराज थांरी सूरति प्यारी हो। (ध्रुपदं)

५. हे प्रभु ! जीव मिथ्या-मोह कीधू, ते कर्म उदय सूं जेह।
उवट्ठाएज्जा—परलोक क्रिया, अंगीकार करै तेह।।

६. जिन कहै हंता, वलि शिष्य पूछे—मिथ्या मोह उदएण।
वीर्यपणें स्यूं उवट्ठाएज्जा, कै अवीर्यपणें तेण ?।।

७. जिन कहै वीर्यपणें उवट्ठाएज्जा, अवीर्यपणें नाहिं।
वलि शिष्य पूछै वीर्यपणें जो, उवट्ठाएज्जा ताहिं।।

८. स्यूं बाल वीर्यपणें उवट्ठाएज्जा, पंडित वीर्यपणें जोय।
कै बालपंडितवीर्यपणें रहिवूं ? हिव जिन उत्तर होय।।

९. बालवीर्यपणें उवट्ठाएज्जा, पंडितवीर्यपणें नांय।
बालपंडितवीर्यपणें न रहियै, ए मूल मिथ्याती कहिवाय।।

१०. ए मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्या उदय थी, बालवीर्य उपस्थान।
पंडित, बालपंडितवीर्यपणें, एहनुं रहिवूं म जान।।

११. हे प्रभु ! मोह-उदय थी, अपक्कम—उत्तम गुण थी हीन।
हंता मोह-उदय उत्तम गुणस्थानक थी होवै खीन।।

१२. ते प्रभु ! जावत् बालवीर्यपणें, अपक्कम पाछो वलंत।
कै पंडितवीर्य बालपंडित पणें ?, हिव जिन उत्तर दिंत।।

*लय—छोगो सण लाख रो बना ? लटकण मजादार।

१. अनन्तरोद्देशके कर्म्मण उदीरणवेदनाद्युक्तमिति तस्यव भेदादीन् दर्शयितुम् आह— (वृ०-प० ६२)

२. कति णं भंते ! कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ ? गोयमा ! अट्ठ कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ, कम्मप्पगडीए पढमो उद्देसो नेयव्वो जाव—अणुभागो समत्तो।

३. कति पगडी?कह बंधति? कतिहिं व ठाणेहिं बंधती पगडी ? कति वेदेति व पगडी ? अणुभागो कतिविहो कस्स ?
(संगहणी-गाहा, श० १।१७४)

५-८. जीवे णं भंते ! मोहणिज्जेणं कडेणं कम्मेणं उदिण्णेणं उवट्ठाएज्जा ?
हंता उवट्ठाएज्जा। (श० १।१७५)
से भंते ! किं वीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा ?
अवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा ?
गोयमा ! वीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा।
णो अवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा।(श० १।१७६)
जइ वीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा,
किं—बालवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा ?
पंडियवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा ?
बालपंडियवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा ?

९. गोयमा ! बालवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा।
नो पंडियवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा।
नो बालपंडियवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा।(श०१।१७७)

१०. इह मिथ्यात्वे उदिते मिथ्यादृष्टित्वाज्जीवस्य बालवीर्येणैवोपस्थानं स्यान्नेतराभ्याम्। (वृ०-प० ६४)

११. जीवे णं भंते ! मोहणिज्जेणं कडेणं कम्मेणं उदिण्णेणं अवक्कमेज्जा ? हंता अवक्कमेज्जा। (श० १।१७८)

१२. से भंते ! किं बालवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा ? पंडियवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा ? बालपंडियवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. बालवीर्यपणैं अपक्रम मिथ्यात्व उदय प्रथम गुणठाण।
पंडितवीर्यपणैं नहीं अपक्रम, त्यां नहीं मिथ्या अनाण ।।
१४. कोइ बालपंडितवीर्यपणैं, अपक्रम श्रावक होय।
ए चारित्र मोहनीं उदय करो छै, समचै मोह प्रश्न सोय ।।

१५. वाचनांतरे बालवीर्यपणैं, पंडितवीर्यपणैं नाय।
बालपंडितवीर्यपणैं नहीं छै, ए मिथ्यात्व उदय कहाय ।।

१६. उदय-विपक्ष उपशांत तणां हिव, सूतर वे अवलोय।
उदय तणां जिम दोय आलावा, तिम उपशम नां दोय ।।
१७. णवरं[1] मोह-उवशम उवट्टाएज्जा, पंडितवीर्य रहंत।
अपक्रमै बालपंडितवीर्यपणैं, इहां वृत्तिकार कहंत ।।
१८. मोह-उवशम उवट्टाय पंडितवीर्य, उपशांतमोहे होय।
पंडितवीर्य ईज तिहां कहियै, अपर न होवै दोय ।।

१९. वृद्ध-व्याख्या किणहि वाचना आश्री, मोह उपशम करि जोय।
मिथ्यादृष्टि ते नवि होवै, साधु वा श्रावक होय ।।

२०. मोह-उपशम करिकै अपक्रमै, बालपंडितपणैं जोय।
संजतपणां थी पाछो वली नै, देशसंजती होय ।।
२१. देश थकी तिण रै मोह उपशम छै, पिण मिथ्यादृष्टि नांय।
मोह नां उदय थकीज होवै ते, इहां उपशम अभिप्राय ।।

२२. ए सर्व अर्थ आख्यो टीका सूं, उवट्टाएज्जा आद।
ए च्यारूं आलावा नों अर्थ धर्मसी, कीधूं धर अहलाद ।।
२३. धुर वे आलावा मोह कर्म उदय, कर्त्ता कहियै तास।
प्रथम आलावै उवट्टाएज्जा, अपक्रम वीजो विमास ।।
२४. ए विहुं मध्ये फेर किसूं छै?, इति प्रश्ने पहिछाण।
हिवै उत्तर एहनों कहियै छै, सांभलज्यो सुविहाण ।।

१३, १४. गोयमा! बालवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा। नो पंडियवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा। सिय बालपंडियवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा। (श० १।१८०)

मिथ्यात्वमोहोदये सम्यक्त्वात् संयमादेशसंयमाद्वा अपक्रामेत मिथ्यादृष्टिर्भवेदिति। कदाचिच्चारित्रमोहनीयोदयेन संयमादपगत्य बालपण्डितवीर्येण देशविरतो भवेदिति। (वृ०-प० ६४)

१५. वाचनान्तरे त्वेवम्—'बालवीरियत्ताए नो पंडियवीरियत्ताए नो बालपंडियवीरियत्ताए' त्ति, तत्र च मिथ्यात्वमोहोदये बालवीर्यस्यैव भावादितरवीर्य-द्वयनिषेध इति। (वृ०-प० ६४)

१६, १७. जहा उदिण्णेणं दो आलावगा तहा उवसंतेण वि दो आलावगा भाणियव्वा, नवरं उवट्ठाएज्जा पंडियवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा बालपंडियवीरियत्ताए। (श० १।१८१-१८६)

१८. मोहनीयेनोपशान्तेन सतोपस्थितेष्ठेत क्रियासु पण्डितवीर्येण, उपशान्तमोहावस्थायां पण्डितवीर्यस्यैव भावादितरयोश्चाभावात्। (वृ०-प० ६४)

१९. वृद्धैस्तु काञ्चिद्वाचनामाश्रित्येदं व्याख्यातं—मोहनीयेनोपशान्तेन सता न मिथ्यादृष्टिर्जायते, साधुः श्रावको वा भवतीति। (वृ०-प० ६४)

२०, २१. मोहनीयेन हि उपशान्तेन संयतत्वाद्बालपण्डितवीर्येणापक्रामन् देशसंयतो भवति, देशतस्तस्य मोहोपशमसद्भावात्, न तु मिथ्यादृष्टिः, मोहोदय एव तस्य भावात्, मोहोपशमस्य चेहाधिकृतत्वादिति।
(वृ०-प० ६४)

१. अंगसुत्ताणि (भाग २) में यत्र तत्र जाव की पूर्ति कर संक्षिप्त पाठ को विस्तृत किया गया है। भगवती की जोड़ संक्षिप्त पाठों के आधार पर की गई है। इसलिए अंगसुत्ताणि के सूत्रों की संख्या के साथ जोड़ का क्रम नहीं बैठता। प्रथम शतक के सूत्र १८१ से १८६ तक का विवरण जोड़ में दो आलापक के संकेत से पूरा किया गया है। आगे भी यत्र तत्र इसी क्रम से जोड़ की रचना हुई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. ए मूलगो मिथ्यात मोह मांहि छै, मिथ्या विषैज वली।
उवट्ठाएज्जा कहितां करै दृढ़, स्थिर करै पुष्ट रली॥

२६. अनै चौथा पंचम छठा जीवठाणा थी, पाछो वली नै पिछाण।
मिथ्यात पामै तास कहीजै, अवक्कमेज्जा जाण॥

२७. ए मिथ्यात-मोह उदय अपक्रम कह्यो, चारित्र-मोह हिव जोय।
तास उदय थी अपक्रम मुनि नों, बालपंडित कोइ होय॥

२८. ए संजम अपक्रम पाछो वल्यो, एतलै पडियो पेख।
संजम भांगी नै श्रावक हूवो, देश-विरती ए देख॥

२९. त्रिविध-त्रिविध पचखाण भांगी कदा, दुविहं त्रिविध फिर कीध।
सर्व-विरत भांगो नै तेह माहिलुं, देश-देश ग्रहै लीध॥

३०. मोह उदय नां दोय आलावा नों, आख्यो ए अधिकार।
हिव मोह उपशम नां बे आलावा, कहियै तसुं विस्तार॥

३१. ए मोह कर्म उपशम छै जेह में, उवट्ठाए अपकरम।
ए विहुं मांहि फेर किसूं छै?, उत्तर तेहनों परम॥

३२. जे उत्तम गुणठाणा मांहि छै, वलि तेहिज में जेह।
उवट्ठाएज्जा कहितां करै दृढ़, वलि स्थिर पुष्ट करेह॥

३३. अवक्कमेज्जा संजत सेती, पाछो वलनै जोय।
बालपंडित हूं यां पिण मोह नुं उपशम ते अवलोय॥

३४. ए च्यारूं आलावा नों अर्थ धर्मसी, कीधो ते कह्यूं एह।
अपक्रम नों इज प्रश्न गौतम हिवै पूछै प्रेम धरेह॥

३५. से भंते! ते जीव तथा अथ अर्थे से शब्द परम।
आत्म करी अपक्रमै कै, अणआत्म करि अपकरम?

३६. जिन कहै आत्म करि अपक्रमैं, अणआत्म करि नांहि।
हिव मोह कर्म वेदै ते प्रश्न, पूछै गोयम ताहि॥

३७. मोहनीं कर्म मिथ्या-चारित्र-मोह, वेदतो छतो हे स्वाम!
ते किम ए अपक्रमण हुवै, मोह वेदता छता नैं ताम?॥

३८. जिन भाखै अपक्रमण थकी पूर्व अपक्रमकारी जीव।
जीवादि तत्व तथा अहिंसादिक, सुद्ध श्रद्धै वा करणी अतीव॥

३९. एवं कहितां ए कह्यूं जिम जिनवर, रोचवै तिमहिज तंत।
शुद्ध श्रद्धै अथवा शुद्ध करणी, अहिंसादि कार्य करंत॥

४०. हिवड़ां मोह उदय काले जीव तेहिज, ए नव तत्व जीवादि।
जिन भाख्यो तिम न रोचै न श्रद्धै, अथवा न करै कार्य अहिंसादि॥

४१. इम अपक्रमण मोह वेदन इम, आख्यो मोह अधिकार।
कर्म अधिकार थकी हिव सामान्य, कर्म तणों विस्तार॥

३५. से भंते! किं आयाए अवक्कमइ? अणायाए अवक्कमइ?

३६. गोयमा! आयाए अवक्कमइ, नो अणायाए अवक्कमइ—
मोहणिज्जं कम्मं वेदेमाणे। (श० १।१८७)

३७. से केणमेयं भंते! एवं?
मोहनीयं कर्म मिथ्यात्वमोहनीयं चारित्रमोहनीयं वा वेदयन्, उदीर्णमोह इत्यर्थः। (वृ०-प० ६४)

३८-४१. गोयमा! पुव्विं से एयं एवं रोयइ। इयाणिं से एयं एवं नो रोयइ—एवं खलु एयं एवं। (श० १।१८८)
'पूर्वम्' अपक्रमणात् प्राग् 'असौ' अपक्रमणकारी जीवः 'एतद्' जीवादि अहिंसादि वा वस्तु 'एवं' यथा जिनैरुक्तं 'रोचते' श्रद्धत्ते करोति वा, 'इदानीं' मोहनीयोदयकाले 'सः' जीवः एतत्' जीवादि अहिंसादि वा 'एवं' यथा जिनैरुक्तं 'नो रोचते' न श्रद्धत्ते न करोति वा, 'एवं खलु' उक्तप्रकारेण 'एतद्' अपक्रमणम्, 'एवं' मोहनीयवेदने इत्यर्थः। मोहनीयकर्माधिकारात् सामान्यकर्म चिन्तयन्नाह— (वृ०-प० ६४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२. हे प्रभु ! जे नरक तिरि मनु सुर नैं, कीधा जे कर्म पाप।
भोगवियां विण छूटवो नहीं छै ? हंता कहै जिन आप ॥

४३. गोयम पूछै किण अर्थ कह्यूं ए ? जिन कहै कर्म दे प्रकार।
प्रदेश कर्म वेदै छै नियमा, अनुभाग भजना धार ॥

४४. अनुभाग को वेदै को न वेदै, क्षयोपशम-सम्यक्त्ववंत।
दर्शण-मोह अनुभाग न वेदै, प्रदेशपणैं वेदंत ॥

४५. कर्म वेदण रा प्रकार दोय ए, जाणैं श्री जिन आप।
ते अधिकार कहै हिव आगल, सांभलज्यो चुपचाप ॥

४६. वेदना दोय प्रकार सामान्यपणैं जाण्यो अरिहंत।
स्मृत नी परै स्मृत कहियै विविध प्रकार जानंत ॥

४७. ए कर्म ए जीव अभ्युपगम वेदना करि वेदस्यै आम।
ब्रह्मचर्य भूमि-सयन लोचादिक, अंगीकार करि ताम ॥

४८. ए कर्म ए जीव उपक्रमिकी वेदना करि वेदस्यै सोय।
ताव रोगादि कर्म उदय आव्यां, उदीरणा वलि जोय ॥

४९. जिम कर्म बंध्या ते अणअतिक्रमवै, जिण देश काल विषैज।
जिम कर्म ते भगवंत दीठो तिम वेदस्यै ए निश्चैज ॥

५०. तिण अर्थे नरकादि किया कर्म, वेद्यां विण न मुकाय।
कर्म पुद्गल रा अधिकार थी हिव, परमाणु आदि कहाय ॥

५१. अंक चवद देश ढाल चवदमी, भिक्षु भारीमाल ऋषिराय।
'जय-जश' सुख संपति गण-वृद्धि, परम पूज्य सुपसाय ॥

४२. से नूणं भंते ! नेरइयस्स वा, तिरिक्खजोणियस्स वा, मणुस्सस्स वा, देवस्स वा जे कडे पावे कम्मे, नत्थि णं तस्स अवेदइत्ता मोक्खो ?
हंता गोयमा ! नेरइयस्स वा, तिरिक्खजोणियस्स वा, मणुस्सस्स वा, देवस्स वा जे कडे पावे कम्मे, नत्थि णं तस्स अवेदइत्ता मोक्खो। (श० १।१८९)

४३. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ नेरइयस्स वा जाव मोक्खो ? एवं खलु मए गोयमा ! दुविहे कम्मे पण्णत्ते, तं जहा—पदेसकम्मे य अणुभागकम्मे य। तत्थ णं जं णं पदेसकम्मं तं नियमा वेदेइ। तत्थ णं जं णं अणुभागकम्मं तं अत्थेगइयं वेदेइ, अत्थेगइयं णो वेदेइ।

४४. अनुभागकर्म च तथाभावं वेदयति वा न वा, यथा मिथ्यात्वं तत्क्षयोपशमकालेऽनुभागकर्मतया न वेदयति प्रदेशकर्मतया तु वेदयत्येवेति। (वृ०-प० ६५)

४५. इह च द्विविधेऽपि कर्मणि वेदयितव्ये प्रकारद्वयमस्ति, तच्चार्हतैव ज्ञायते इति दर्शयन्नाह— (वृ०-प० ६५)

४६. णायमेयं अरहया, सुयमेयं अरहया, विण्णायमेयं अरहया सामान्येनावगतम् एतद् वक्ष्यमाणं वेदनाप्रकारद्वयम् 'अर्हता' जिनेन 'सुयं' ति 'स्मृतं' तत्र स्मृतमिव स्मृतं।
(वृ०-प० ६५)

४७. इमं कम्मं अयं जीवे अब्भोवगमियाए वेदणाए वेदेस्सइ, प्रव्रज्याप्रतिपत्तितो ब्रह्मचर्यभूमिशयनकेशलुञ्चनादीनामंगीकारः। (वृ०-प० ६५)

४८. इमं कम्मं अयं जीवे उवक्कमियाए वेदणाए वेदेस्सइ।

४९. अहाकम्मं, अहानिकरणं जहा जहा तं भगवया दिट्ठं तहा तहा तं विप्परिणमिस्सतीति।

५०. से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—नेरइयस्स वा, तिरिक्खजोणियस्स वा, मणुस्सस्स वा, देवस्स वा, जे कडे पावे कम्मे, नत्थि णं तस्स अवेदइत्ता मोक्खो।
(श० १।१९०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : १५

दूहा

१. ए परमाणू हे प्रभु ! गया काल रै मांय।
अनंत सासता समय में, हुंता इम कहिवाय ?

२. जिन कहै हंता गोयमा ! ए परमाणू अतीत।
अनंत सासता समय में, हुंता कहिवो रीत ॥

३. हे प्रभुजी ! परमाणु या, वर्त्तमान ए काल।
सास्वत समय विषय अछै ? हंता उत्तर न्हाल ॥

४. हे प्रभुजी ! परमाणु या, सासत अद्धा अनंत।
अनागत समये हुसै ? हंता जिन कहै तंत ॥

५. खंध तणां पिण इमज ए, भणवा त्रिण आलाव।
जीव तणां पिण इमज ए, त्रिण आलावा भाव ॥

६. जीव तणां अधिकार तैं, यथा उत्तर प्रधान।
वक्तव्यता हिव जीव नीं, उद्देश पर्यंत जान ॥

७. हे भदंत ! छद्मस्थ नर, अवधि रहित ए जाण।
अतीत अनंत सासतै, समय विषै पहिछाण ॥

८. ते केवल संजम करी, केवल ते असहाय।
तथा शुद्ध परिपूर्ण वा, असाधारणे ताय ॥

९. वलि केवल संवर करी, निरोध इंद्रि कषाय।
केवल ब्रह्मचर्य करी, केवल प्रवचनमाय ॥

१०. सिज्झिसु सीझचा अछै, बहुवच प्राकृतत्वात्।
बूझचा जावत् सर्व दुक्ख अंत करयूं विख्यात ॥

११. सर्व विशुद्ध संजमादि ह्वै, उपशांत - मोह मझार।
इण अभिप्राये पूछियो, एम कह्यूं वृत्तिकार ॥

१२. जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं, किण अर्थे जिनराय ?
इम गोतम पूछै थकै, वीर बतावै न्याय ॥

*गुणी ! जिन ध्यावो रे,
म्हारा वीर प्रभु नां वर वच हियै बसावो रे।
गुणी ! जिन ध्यावो रे,
सम्यक्त्व चारित्रधर शिवपुर वेग सिधावो रे ॥ (ध्रुपदं)

*लय—हींडे हालो रे

१. एस णं भंते ! पोग्गले तीतं अणंतं सासयं समयं भुवीति वत्तव्वं सिया ?
पोग्गलेत्ति परमाणुरुत्तरत्रस्कन्धग्रहणात् (वृ०-प० ६६)

२. हंता गोयमा ! एस णं पोग्गले तीतं अणंतं सासयं समयं भुवीति वत्तव्वं सिया। (श० १।१९१)

३. एस णं भंते ! पोग्गले पडुप्पण्णं सासयं समयं भवतीति वत्तव्वं सिया ?
हंता गोयमा ! एस णं पोग्गले पडुप्पण्णं सासयं समयं भवतीति वत्तव्वं सिया। (श० १।१९२)

४. एस णं भंते ! पोग्गले अणागयं अणंतं सासयं समयं भविस्सतीति वत्तव्वं सिया ? हंता गोयमा ! एस णं पोग्गले अणागयं अणंतं सासयं समयं भविस्सतीति वत्तव्वं सिया। (श० १।१९३)

५. एवं खंधेण वि तिण्णि आलावगा एवं जीवेण वि तिण्णि आलावगा भाणियव्वा। (श० १।१९४-१९९)

६. जीवाधिकाराच्च प्रायो यथोत्तरप्रधानजीववस्तुवक्तव्यतामुद्देशकान्तं यावदाह। (वृ०-प० ६६)

७, ८. छउमत्थे णं भंते ! मणूसे तीतं अणंतं सासयं समयं—
केवलेणं संजमेणं,
इह छद्मस्थोऽवधिज्ञानरहितोऽवसेयः, 'केवलेणं' ति असहायेन शुद्धेन वा परिपूर्णेन वासाधारणेन वा। (वृ०-प० ६६)

९. केवलेणं संवरेणं, केवलेणं बंभचेरवासेणं, केवलाहि पवयणमायाहि
'संवरेणं' ति इन्द्रियकषायनिरोधेन। (वृ०-प० ६६)

१०. सिज्झिसु ? बुज्झिसु ? जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करिसु ?
'सिज्झिसु' इत्यादौ च बहुवचनं प्राकृतत्वादिति। (वृ०-प० ६६)

११. यदुत उपशान्तमोहाद्यवस्थायां सर्वेविशुद्धाः संयमादयोऽपि भवन्ति विशुद्धसंयमादिसाध्या च सिद्धिरिति सा छद्मस्थस्यापि स्यादिति। (वृ०-प० ६७)

१२. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे। (श० १।२००)
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ तं चेव जाव अंतं करिसु ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. जे केइ जीव भवांतकरा वा, चरमशरीरी जीवा।
सर्व दुख अंत कियो रु करै छै, करिस्यै शिव सुख पीवा।।

१४. सर्व अछै ते उत्पन्न ज्ञान अनै दर्शनधर सारा।
अरहा पूजा-योग्य जिणा ते, केवली थई उदारा।।

१५. तिवार पछै सीझै बूझै, मुच्चवै ह्वै शीतीभूतो।
सहु दुख अंत किया रु करै छै, करस्यै शिव पद सूतो।।

१६. तिण अर्थे केवल सजम करि, छद्मस्थ सीझचा नांही।
वर्त्तमान पिण इमहिज णवरं, प्रश्न सिज्झंति त्यांही।।

१७. अनागते पिण इमहिज णवरं, प्रश्ने सिज्झिरसंति।
जिम छद्मस्थ तेम अधो अवधि, परिमित क्षेत्र पश्यंति।।

१८. परमावधिक पिण इमहिज जाणो, परमाहोहिओ भावा।
क्वचित्पाठ परमोहिओ भाख्यो, तीन तीन आलावा।।

१३. गोयमा ! जे केइ अंतकरा वा अंतिमसरीरिया वा—सव्वदुक्खाणं अंतं करेंसु वा, करेंति वा, करिस्संति वा

१४-१६. सव्वे ते उप्पण्णणाण-दंसणधरा अरहा जिणा केवली भवित्ता तओ पच्छा सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिनिव्वायंति, सव्वदुक्खाणं अंतं करेंसु वा, करेंति वा, करिस्संति वा। से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करिसु। (श० १।२०१)

पडुप्पण्णे वि एवं चेव, नवरं—सिज्झंति भाणियव्वं। (श० १।२०२)

१७, १८. अणागए वि एवं चेव, नवरं—सिज्झिस्संति भाणियव्वं। जहा छउमत्थो तहा आहोहिओ वि, तहा परमाहोहिओ वि। तिण्णि तिण्णि आलावगा भाणियव्वा। (श० १।२०३, २०४)

परमावधेरधस्ताद् योऽवधिः सोऽधोऽवधिस्तेन यो व्यवहरत्यसौ आधोऽवधिकः—परिमितक्षेत्रविषयावधिकः 'परमाहोहिओ' त्ति परम आधोऽवधिकाद् यः स परमाधोऽवधिकः 'परमोहिओ' त्ति क्वचित्पाठः।(वृ०-प०६७)

१९. हे प्रभु ! केवली मनुष्य अतीत, अनंत सासतै काले।
सीझचा जावत् अंत कियो दुख ? हंता जिन वच वाले।।

२०. ए पिण तीन आलावा भणवा, छद्मस्थ नां जिम जाणी।
णवरं सिज्झिसु सिज्झंति, सिज्झिस्संति माणी।।

२१. हे प्रभु ! तेह अतीत अनंत, सासतै समय पिछाणी।
अथवा वर्त्तमान जे सास्वत, समय विषै सुविहाणी।।

२२. तथा अनागत अनंत सासता, समय विषैज सुदीवा।
जे केइ भव ना अंतकरा वा, चरमशरीरी जीवा।।

२३. सर्व दुख अंत किया रु करै छै, करस्यै ते सर्व ताही।
उत्पन्न ज्ञान दर्शनधर अरहा, जिणा केवली थाई।।

२४. तिवार पछै सीझै यावत् सर्व दुख नों अंतज करिस्यै ?
हंतातीत अनंत जाव दुख अत करी सिव वरिस्यै।।

२५. ते प्रभु ! उत्पन्न ज्ञान दर्शनधर, अरहा केवली जिणनै।
अलमस्तु इम कहियै ? हंता, प्रभु भाखै गोयम नै।।

१९, २०. केवली णं भंते ! मणूसे तीतं अणंतं सासयं समयं जाव अंतं करिसु ? हंता सिज्झिसु जाव एते तिण्णि आलावगा भाणियव्वा जहा छउमत्थस्स। नवरं सिज्झिसु सिज्झंति सिज्झिस्संति। (श० १।२०५)

२१-२४. से नूणं भंते ! तीतं अणंतं सासयं समयं, पडुप्पण्णं वा सासयं समयं, अणागयं अणंतं वा सासयं समयं जे केइ अंतकरा वा अंतिमसरीरिया वा सव्वदुक्खाणं अंतं करेंसु वा, करेंति वा, करिस्संति वा, सव्वे ते उप्पण्णणाण-दंसणधरा अरहा जिणा केवली भवित्ता तओ पच्छा सिज्झंति जाव अंतं करिस्संति ?

हंता गोयमा ! तीतं अणंतं सासयं जाव करिस्संति वा। (श० १।२०८)

२५. से नूणं भंते ! उप्पण्णणाण-दंसणधरे अरहा जिणे केवली, अलमत्थु त्ति वत्तव्वं सिया ?
हंता गोयमा ! उप्पण्णणाण-दंसणधरे अरहा जिणे केवली अलमत्थु त्ति वत्तव्वं सिया। (श० १।२०९)

२६. अलमस्तु पर्याप्तं भवतु नातः परं किञ्चिद् ज्ञानान्तरं प्राप्तव्यमस्यास्तीत्येतद्वक्तव्यं। (वृ०-प० ६७)

२६. अलमस्तु पर्याप्त थायवो, ए थी कोइ उपरंतो।
पावण योग्य नहीं छै बीजो, जिन नै एम कहंतो।।

२७. सेवं भंते अंक चवद नो, ढाल पनरमी ताजी।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादै, 'जय-जश' संपति जाझी।।

२७. सेवं भंते ! सेवं भंते। (श० १।२१०)

प्रथमशते चतुर्थोद्देशकार्थः।। १।४ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : १६

दूहा

१. अंत उदेशे चतुर्थे, आख्या अरिहंत आद।
पृथ्वी थी नीकल हुवै, हिव पृथ्वी विधि वाद॥

१. अनन्तरोद्देशकस्यान्तिमसूत्रेष्वर्हदादय उक्तास्ते च पृथिव्यां भवन्तीति अथवा पृथिवीतोऽप्युद्धृत्य मनुजत्वमवाप्ताः सन्तस्ते भवन्तीति पृथिवीप्रतिपादनायाह—
(वृ०-प० ६७)

२. हे भदंत ! पृथ्वी किती, जिन कहै गोयम ! सात।
रत्नप्रभा जाव तमतमा, हिव तेहनों अवदात॥

२. कति णं भंते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ? गोयमा ! सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—रयणप्पभा, जाव तमतमा। (श० १।२११)

३. हे प्रभु ! रत्नप्रभा विषै, कति लख नरकावास।
तीस लाख जिनवर कह्या, हिव गाहा संख्या तास॥

३. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए कति निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?
गोयमा ! तीसं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

४. तीस पचीस रु पनर दश, तिण लख धूम पिछाण।
पंच ऊण इक लख तमा, पंच तमतमा जाण॥

४. तीसा य पन्नवीसा, पन्नरस दसेव सयसहस्सा।
तिन्नेगं पंचूणं, पंचेव अणुत्तरा निरया॥१॥
(श० १।२१२ संगहणी-गाहा)

५. हे प्रभु ! असुरकुमार नां, किता लाख आवास ?
इम हिवै भवनपति तणां, युगल भवन नीं राश॥

५. केवइया णं भंते ! असुरकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?
गोयमा ! चोयट्ठी असुरकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

६. चउसठ लख है असुर नां, नाग चउरासी लाख।
लक्ष बोहितर सुवर्ण नां, पवन छिनूं लख साख॥

७. द्वीप दिशा उदधि विजु, थणिय अग्नि पहिछाण।
षड दक्षिण उत्तर युगल, लाख छिहंतर जाण॥

६, ७. एवं—
चोयट्ठी असुराणं, चउरासीई य होइ नागाणं।
बावत्तरि सुवण्णाणं, वाउकुमाराण छन्नउई॥१॥
दीव-दिसा-उदहीणं, विज्जुकुमारिंद-थणियमग्गीणं।
छण्हं पि जुयलयाणं, छावत्तरिमो सयसहस्सा॥२॥
(श० १।२१३ संगहणी-गाहा)

८. चउत्रिस चौमालीस लक्ष, अडतीस पंचास चालीस।
लक्ष भवन दक्षिण दिशै, असुरादि सुजगीस॥

८. 'चउतीसा चउचत्ता अट्ठत्तीसं च सयसहस्साओ।
पन्ना चत्तालीसा दाहिणओ होंति भवणाइं॥
(वृ०-प० ६८)

९. तीस चालीस चोतीस लक्ष, छंयालीस छतीस।
लक्ष भवन उत्तर दिशा, असुरादि सुजगीस[1]॥

९. तीसा चत्तालीसा चोत्तीसं चेव सयसहस्साइं।
छायाला छत्तीसा उत्तरओ होंति भवणाइं॥
(वृ०-प० ६८)

---

१. असुरकुमार आदि दस भवनपति देवों के आवास दक्षिण और उत्तर दोनों दिशाओं में विभक्त हैं। दोनों दिशाओं के आवासों की संयुक्त और पृथक्-पृथक् संख्या इस प्रकार है—

	संयुक्त	दक्षिण	उत्तर
असुरकुमार	६४ लाख	३४	३०
नागकुमार	८४ "	४४	४०
सुवर्णकुमार	७२ "	३८	३४

(शेष अग्रिम पृष्ठ पर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. पृथ्वीकाय नां वास कति ? जिन कहै असंख लक्ष ।
यावत् विमान जोतिषी, असंख लक्ष प्रत्यक्ष ।।

११. हे प्रभु ! सुधर्मकल्प नां, कति लख विमाण-वास ?
जिन कहै लक्ष बतीस वर, इम अनुक्रमे विमास ।।

१२. बतीस नै अटवीस लक्ष, बार आठ लख च्यार ।
सहस्र पचास चालीस वर, षट हजार सहसार ।।
१३. आणत पाणत च्यार सौ, आरण अच्चू जोय ।
त्रिण सय ए सहु सात सौ, कल्प चउ नां होय ।।
१४. इक सौ ग्यारै हेठिम त्रिक, मझम एक सौ सात ।
इक सय उवरिम त्रिक नां, पंच अणुत्तर ख्यात ।।

१५. पुढवि-स्थिति अवगाहना, तनु संघयण संठाण ।
लेश रु दृष्टि ज्ञान जोगुवयोगे दश ठाण ।।

*गोयम प्रश्न करै,
प्रश्न करै, निज पाप हरै, हृदय-सरोवर ज्ञान भरै ।
गोयम प्रश्न करै,
प्रश्न करै, भव्य जन उधरै, ज्ञान क्रिया सूं आप तिरै ।। (ध्रुपदं)

१६. हे प्रभु ! रत्नप्रभाइं तास, तीस लाख है नरकावास ।
इक इक नरकावासै जाण, नारकी नां कितला स्थिति-ठाण ?
जिनदेव भणैं
देव भणैं, शिष्य गोयम सुणैं, अतिशय परम सुप्रसन्न पणैं ।
जिनदेव भणैं
देव भणैं, जग-अघ नै हणैं, तीरथ च्यार परिवार घणैं ।।
(ध्रुपदं)

१७. जिन कहै इक इक नरकावास, असंख्याता स्थिति-स्थानक तास ।
नरकावासा नी जघन्य स्थिति जेह, समय-समय अधिकी इम लेह ।।

वायुकुमार	९६ "	५०	४६
द्वीपकुमार	७६ "	४०	३६
दिशाकुमार	७६ "	४०	३६
उदधिकुमार	७६ "	४०	३६
विद्युतकुमार	७६ "	४०	३६
स्तनितकुमार	७६ "	४०	३६
अग्निकुमार	७६ "	४०	३६

*लय—खिण गई रे मेरी खिण गई

१०. केवइया णं भंते ! पुढविक्काइयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ? गोयमा ! असंखेज्जा पुढविक्काइयावाससय-सहस्सा पण्णत्ता जाव असंखिज्जा जोइसियविमाणावास-सयसहस्सा पण्णत्ता । (श० १।२१४)

११. सोहम्मे णं भंते ! कप्पे कति विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?
गोयमा ! बत्तीसं विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता ।
(श० १।२१५)

१२-१४. एवं—
बत्तीसट्ठावीसा, बारस-अट्ठ-चउरो सयसहस्सा ।
पन्ना-चत्तालीसा, छच्च सहस्सा सहस्सारे ।।१।।
आणय-पाणयकप्पे, चत्तारि सयारणच्चुए तिण्णि ।
सत्त विमाणसयाइं चउसु वि एएसु कप्पेसु ।।२।।
एक्कारसुत्तरं हेट्ठिमए सत्तुत्तरं सयं च मज्झमए ।
सयमेगं उवरिमए, पंचेव अणुत्तरविमाणा ।।३।।
(श० १।२१५ संगहणी-गाहा)

१५. पुढवीट्ठिति-ओगाहण-सरीर-संघयणमेव संठाणे ।
लेस्सा दिट्ठी णाणे, जोगुवओगे य दस ठाणा ।।४।।
(श० १।२१५ संगहणी-गाहा)

१६, १७. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि नेरइ-याणं केवइया ठितिट्ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! असंखेज्जा ठितिट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—जहण्णिया ठिती, समयाहिया जहण्णिया ठिती, दुसम-याहिया जहण्णिया ठिती जाव असंखेज्ज-समयाहिया जहण्णिया ठिती । तप्पाउग्गुक्कोसिया ठिती ।
(श० १।२१६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. इक-इक नरकावासा मांय, जघन्य उत्कृष्टी स्थिति कहिवाय।
ग्रंथांतर थी लीजै विचार, इहां संखेप कहूं अधिकार॥

१८. केवलं तेषु जघन्योत्कृष्टविभागो ग्रन्थान्तरादवसेयः।
(वृ०-प० ६६)

१९. जिम प्रथम पाथरै जघन्य स्थिति जोय, दश हजार वर्ष नीं होय।
उत्कृष्ट नेउ सहस्र वर्ष कहाय, एहिज अर्थ देखाडै ताय॥

१९. यथा प्रथमप्रस्तटनरकेषु जघन्या स्थितिर्दशवर्षसहस्राणि उत्कृष्टा तु नवतिरिति। (वृ०-प० ६६)

२०. जघन्य स्थिति वर्ष दश सहस्र आद, प्रति नरक भिन्न रूप संवाद।
जू-जूवै नरकावासै जोय, जघन्य स्थिति पिण जू जूइ होय॥

२१. तेहिज समय अधिक पहिछान, ए बीजो छै स्थिति नों स्थान।
तेहिज द्विसमयादिक जोय, ए तीजो स्थिति-स्थानक होय॥

२०, २१. जघन्या स्थितिर्दशवर्षसहस्रादिका इत्येकं स्थिति-स्थानं, तच्च प्रतिनरकं भिन्नरूपं, सैव समयाधिकेति द्वितीयम्। (वृ०-प० ६६)

२२. इम जाव असंख समयाधिक जान, असंख्यातमां ए स्थिति-स्थान।
सर्व अंतिम जे स्थिति नों स्थान, कहियै छै निसुणो धर कान॥

२२. एवं यावदसंख्येयसमयाधिका सा, सर्वान्तिमस्थिति-स्थानदर्शनायाह— (वृ०-प० ६६)

२३. उत्कृष्ट स्थिति ना अनेक प्रकार, जू-जुवै नरकावासै धार।
वांछित नरकावासा योग्य, उत्कृष्टी स्थिति तास प्रयोग्य॥

२३. उत्कृष्टा असावनेकविधेति विशेष्यते तस्य—विवक्षित-नरकावासस्य प्रायोग्या— उचिता उत्कर्षिका तत्प्रायो-ग्योत्कर्षिका इत्यपरं स्थितिस्थानम्। (वृ०-प० ६६)

२४. इम इक-इक जे नरकावास, जघन्य उत्कृष्टी स्थिति विमास।
स्थिति-स्थानक तिहां छै असंख्यात, तेह विषै क्रोधादि कहात॥

२४. एवं स्थितिस्थानानि प्ररूप्य तेष्वेवक्रोधाद्युपयुक्तत्वा-न्नारकाणां विभागेन दर्शयन्निदमाह— (वृ०-प० ६६)

२५. ए प्रभु ! रत्नप्रभाइ तास, तीस लाख है नरकावास।
इक-इक नरकावासे जान, जघन्य स्थिति नारक वर्तमान॥

२५, २६. इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावाससि जह-ण्णियाए ठितीए वट्टमाणा नेरइया किं—कोहोवउत्ता ? माणोवउत्ता ? मायोवउत्ता ? लोभोवउत्ता ?

२६. स्यूं कोहोवउत्ता ? क्रोध-परिणाम, ए प्रबल क्रोध अशुभ जोग है ताम।
माणोवउत्ता मान - परिणाम, मायोवउत्ता लोभोवउत्ता ताम ?॥

२७. जिन कहै सर्व नेरइया ताम, क्रोध भाव वर्तत्ता परिणाम॥
न वर्त्तै मान माया लोभ मांय, ए प्रबलपणा नीं छै अपेक्षाय॥

२७. गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा १। कोहोवउत्ता।

२८. नरक भवे क्रोध उदय प्रचूर, सर्व क्रोध परिणामे सूर।
प्रथम भांगो ए आख्यो एक, द्विक संजोगिक छः हिव पेख॥

द्विक संजोगिया ६ भांगा

२९. तथा कोहोवउत्तामाणोवउत्ते[1] पेख, क्रोधी घणां नैं मान नो एक।
तथा कोहोवउत्तामाणोवउत्ता[2] जाण, क्रोधी बहु मानी बहु माण॥

३०. तथा कोहोवउत्ता मायोवउत्ते[3] न्हाल, क्रोधी घणां माया इक भाल।
तथा कोहोवउत्ता मायोवउत्ता[4] विचार, क्रोधी माया बहुवचने धार॥

३१. तथा कोहोवउत्ता लोभोवउत्ते[5] जेह, क्रोधी घणां लोभी इक तेह।
तथा कोहोवउत्ता लोभोवउत्ता[6] विरंग, द्विक संजोगी हिवै द्वादश भंग॥

२९-३१. २ अहवा कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ते य। ३. अहवा कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ता य। ४. अहवा कोहो-वउत्ता य मायोवउत्ते य। ५. अहवा कोहोवउत्ता य, मायोवउत्ता य। ६. अहवा कोहोवउत्ता य, लोभोवउत्ते य। ७. अहवा कोहोवउत्ता य, लोभोवउत्ता य।

त्रिक संजोगिया १२ भांगा

३२. कोहोवउत्ता माणोवउत्ते जान, मायोवउत्ते इक भंग मान[8]।
तथा कोहोवउत्ता माणोवउत्ते विचार, मायोवउत्ता दूजा धार[9]॥

३३. तथा कोहोवउत्ता माणोवउत्ता विरंग, मायोवउत्ते तीजो भंग[10]।
तथा कोहोवउत्ता माणोवउत्ता निहाल, मायोवउत्ता चउथो न्हाल[11]॥

३२, ३३. ८. अहवा कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ते य, मायोवउत्ते य। ९. कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ते य, मायोवउत्ता य। १०. कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ता य, मायोवउत्ते य। ११. कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ता य, मायोवउत्ता य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४. तथा कोहोवउत्ता माणोवउत्ते प्रसंग, लोभोवउत्ते पंचमो भंग[१२]।
तथा कोहोवउत्ता माणावउत्ते संपेख, लोभोवउत्ता छठो देख[१३]॥

३५. तथा कोहोवउत्ता माणोवउत्ता विचार, लोभोवउत्ते सप्तम धार[१४]।
तथा कोहोवउत्ता माणोवउत्ता निहाल, लोभोवउत्ता अष्टम भाल[१५]॥

३६. तथा कोहोवउत्ता मायोवउत्ते विरंग, लोभोवउत्ते नवमूं भंग[१६]।
तथा कोहोवउत्ता मायोवउत्ते संपेख, लोभोवउत्ता दशमों देख[१७]॥

३७. तथा कोहोवउत्ता मायोवउत्ता विचार, लोभोवउत्ते ए इग्यार[१८]।
तथा कोहोवउत्ता मायोवउत्ता निहाल,लोभोवउत्ता बारमों भाल[१९]॥

१२. कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ते य, लोभोवउत्ते य।
१३. कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ते य, लोभोवउत्ता य।
१४. कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ता य, लोभोवउत्ते य।
१५. कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ता य, लोभोवउत्ता य।
१६. कोहोवउत्ता य, मायोवउत्ते य, लोभोवउत्ते य।
१७. कोहोवउत्ता य, मायोवउत्ते य, लोभोवउत्ता य।
१८. कोहोवउत्ता य, मायोवउत्ता य, लोभोवउत्ते य।
१९. कोहोवउत्ता य, मायोवउत्ता य, लोभोवउत्ता य।

चउक संजोगिया आठ भांगा

३८. तथा कोहोवउत्ता माणोवउत्ते संपेख, मायोवउत्ते लोभोवउत्ते एक[२०]।
तथा कोहोवउत्ता माणोवउत्ते जोय, मायोवउत्ते लोभोवउत्ता ए दोय[२१]॥

३९. तथा कोहोवउत्ता माणोवउत्ते दुचीन, मायोवउत्ता लोभोवउत्ते ए तीन[२२]।
तथा कोहोवउत्ता माणोवउत्ते धार, मायोवउत्ता लोभोवउत्ता ए च्यार[२३]॥

४०. तथा कोहोवउत्ता माणोवउत्ता विरंच, मायोवउत्ते लोभोवउत्ते ए पंच[२४]।
तथा कोहोवउत्ता माणोवउत्ता प्रगट, मायोवउत्ते लोभोवउत्ता ए षट[२५]॥

४१. तथा कोहोवउत्ता माणोवउत्ता विख्यात,मायोवउत्ता लोभोवउत्ते ए सात[२६]।
तथा कोहोवउत्ता माणोवउत्ता दुघाट,मायोवउत्ता लोभोवउत्ता ए आठ[२७]॥

२०. कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ते, मायोवउत्ते य, लोभोवउत्ते य।
२१. कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ते य, मायोवउत्ते य, लोभोवउत्ता य।
२२. कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ते य, मायोवउत्ता य, लोभोवउत्ते य।
२३. कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ते य, मायोवउत्ता य, लोभोवउत्ता य।
२४. कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ता य, मायोवउत्ते य, लोभोवउत्ते य।
२५. कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ता य, मायोवउत्ते य, लोभोवउत्ता य।
२६. कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ता य, मायोवउत्ता य, लोभोवउत्ते य।
२७. कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ता य, मायोवउत्ता य, लोभोवउत्ता य। (श० १।२१७)

४२. जघन्य स्थिति नरकावासै जास, सत्तावीस ए भंगा तास।
जघन्य स्थिति ना सदा बहु कोय, ते स्थिति-सत्ताइं विरह नहिं कोय॥

४३. ते भणी क्रोध ना बहु वच जाण, सत्तावीसूई भंगे पिछाण।
नरक में क्रोध प्रचूर जगीस, तिण सूं क्रोध बहु वच सत्तावीस॥

४४. जघन्य स्थिती रै ऊपर जाण, एक समय स्थिति अधिक पिछाण।
ए स्थिति वाला नारक जोय, कदाचि लाभै कदा नहिं होय॥

४५. इमहिज जघन्य स्थिती थी जाण, दोय समय स्थिति अधिक पिछाण।
जाव संखेज्ज समय अधिकाय, कदाचि लाभै कदा नहिं थाय॥

४६. तिण कारण ए कहियै विशेष, कदे क्रोधी कदे मानी एक।
कदे माई कदे लोभी एक, प्रबलपणै वर्त्तै सुविशेष॥

४७. कदे क्रोध में वर्त्तै अनेक, कदे मान बहु वर्त्तै विशेष।
माया लोभ इमहिज अवधार, आदि देइ असी भंग विचार॥

४८. सत्ताइं करी विरह तसु जोय, कदाचि लाभै कदा नहिं होय।
तिण कारण असी भंगा तास, सूत्रे करी हिव कहियै जास॥

४२, ४३. तत्र च प्रतिनरकं जघन्यस्थितिकानां सदैव भावात् तेषु च क्रोधोपयुक्तानां बहुत्वात् सप्तविंशतिर्भंगकाः। (वृ०-प० ६९)

४४. एकादिसंख्यातसमयाधिकजघन्यस्थितिकानां तु कादाचित्कत्वात्। (वृ०-प० ६९)

४५. एवं जाव संखेज्जसमयाहियाए ठितीए।

४६, ४७. तेषु च क्रोधाद्युपयुक्तानामेकत्वानेकत्वसंभवादशीतिर्भंगकाः। (वृ०-प० ६९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४९. ए प्रभु ! रत्नप्रभाइं तास, तीस लाख छै नरकावास ।
इक-इक नरकावासे जान, समयाधिक जघन्य स्थिति वर्त्तमान ।।

४९, ५०. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि समयाहियाए जहण्णट्ठितीए वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता ? माणोवउत्ता ? मायोवउत्ता ? लोभोवउत्ता ?

५०. स्यूं कोहोवउत्ता माणोवउत्ता कहाय, मायोवउत्ता लोभोवउत्ता ताय ?
हिव अस्सी भंगा भाखै जिन भाण, इक संजोगिया आठ पिछाण ।।

इक संजोगिया आठ भांगा

५१. कोहोवउत्ते इक वच जान, जीव एक क्रोधे वर्त्तमान ।
मान माया लोभे न वर्त्तंत, पहिलो भांगो एह कहंत ।।

५१-५८. गोयमा ! १. कोहोवउत्ते य, २. माणोवउत्ते य, ३. मायोवउत्ते य, ४. लोभोवउत्ते य, ५. कोहोवउत्ता य, ६. माणोवउत्ता य, ७. मायोवउत्ता य, ८. लोभोवउत्ता य ।

५२. माणोवउत्ते इक वच जान, जीव एक माने वर्त्तमान ।
क्रोध माया लोभे न वर्त्तंत, बीजो भांगो एह कहंत ।।

५३. मायोवउत्ते इक वच जान, जीव एक माया वर्त्तमान ।
क्रोध मान लोभे न वर्त्तंत, तीजो भांगो एह कहंत ।।

५४. लोभोवउत्ते इक वच जान, जीव एक लोभे वर्त्तमान ।
क्रोध मान माया न वर्त्तंत, चोथो भांगो एह कहंत ।।

५५. कोहोवउत्ता बहु वच जान, जीव घणां क्रोधे वर्त्तमान ।
मान माया लोभे न वर्त्तंत, पंचमो भांगो एह कहंत ।।

५६. माणोवउत्ता बहु वच जान, जीव घणां माने वर्त्तमान ।
क्रोध माया लोभे न वर्त्तंत, छठो भांगो एह कहंत ।।

५७. मायोवउत्ता बहु वच जान, जीव घणां माया वर्त्तमान ।
क्रोध मान लोभे न वर्त्तंत, सप्तम भांगो एह कहंत ।।

५८. लोभोवउत्ता बहु वच जान, जीव घणां लोभे वर्त्तमान ।
क्रोध मान माया न वर्त्तंत, अष्टम भांगो एह कहंत ।।

द्विक संजोगिया २४ भांगा

५९. कोहोवउत्ते माणोवउत्ते[9] एक, कोहोवउत्ते माणोवउत्ता[10] संपेख ।
कोहोवउत्ता माणोवउत्ते[11] धार, कोहोवउत्ता माणोवउत्ता[12] ए च्यार ।।

५९. ९. अहवा कोहोवउत्ते य, माणोवउत्ते य । १०. अहवा कोहोवउत्ते य, माणोवउत्ता य । एवं असीतिभंगा नेयव्वा[1] ।

६०. कोहोवउत्ते मायोवउत्ते[13] पंच, कोहोवउत्ते मायोवउत्ता[14] विरंच ।
कोहोवउत्ता मायोवउत्ते[15] सप्तम, कोहोवउत्ता मायोवउत्ता[16] अष्टम ।।

६१. कोहोवउत्ते लोभोवउत्ते[17] नवम, कोहोवउत्ते लोभोवउत्ता[18] दशम ।
कोहोवउत्ता लोभोवउत्ते[19] ग्यार, कोहोवउत्ता लोभोवउत्ता[20] बार ।।

६२. माणोवउत्ते मायोवउत्ते[21] तेर, माणोवउत्ते मायोवउत्ता[22] हेर ।
माणोवउत्ता मायोवउत्ते[23] सुबोल, माणोवउत्ता मायोवउत्ता[24] सोल ।।

१. अंगसुत्ताणि मूल पाठ में अस्सी भंगों का संकेत है, पर उनका पृथक ग्रहण नहीं है । जयाचार्य ने जोड़ में प्रत्येक भंग का स्वतंत्र निरूपण किया है । यह टीका के आधार पर किया गया है । अंगसुत्ताणि १।२१८ के पाद टिप्पण में सब भंग उल्लिखित हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६३. माणोवउत्ते लोभोवउत्ते[३४] विचार, माणोवउत्ते लोभोवउत्ता[३५] अठार।
माणोवउत्ता लोभोवउत्ते[३६] गुनीस, माणोवउत्ता लोभोवउत्ता[३७] बीस ॥

६४. मायोवउत्ते लोभोवउत्ते[३८] इकीस, मायोवउत्ते लोभोवउत्ता[३९] बावीस।
मायोवउत्ता लोभोवउत्ते[४०] तेवीस, मायोवउत्ता लोभोवउत्ता[४१] चउबीस ॥

त्रिकसंजोगिया ३२ भांगा

६५. कोहोवउत्ते माणोवउत्ते विरंग, मायोवउत्ते पहिलूं भंग[४२]।
कोहोवउत्ते माणोवउत्ते जोय, मायोवउत्ता दूजो होय[४३] ॥

६६. कोहोवउत्ते माणोवउत्ता देख, मायोवउत्ते तीजो पेख[४४]।
कोहोवउत्ते माणोवउत्ता जाण, मायोवउत्ता चोथो माण[४५] ॥

६७. कोहोवउत्ता माणोवउत्ते गम्य, मायोवउत्ते ए पंचम्य[४६]।
कोहोवउत्ता माणोवउत्ते प्रगट, मायोवउत्ता ए थया षट[४७] ॥

६८. कोहोवउत्ता माणोवउत्ता भाल, मायोवउत्ते सप्तम न्हाल[४८]।
कोहोवउत्ता माणोवउत्ता विशेष, मायोवउत्ता अष्टम देख[४९] ॥

६९. कोहोवउत्ते माणोवउत्ते विचार, लोभोवउत्ते नवमूं प्रकार[५०]।
कोहोवउत्ते माणोवउत्ते प्रपंच, लोभोवउत्ता दशमूं संच[५१] ॥

७०. कोहोवउत्ते माणोवउत्ता धार, लोभोवउत्ते ए इग्यार[५२]।
कोहोवउत्ते माणोवउत्ता विषम, लोभोवउत्ता ए बारम[५३] ॥

७१. कोहोवउत्ता माणोवउत्ते हेर, लोभोवउत्ते ए थया तेर[५४]।
कोहोवउत्ता माणोवउत्ते गम, लोभोवउत्ता ए चवदम[५५] ॥

७२. कोहोवउत्ता माणोवउत्ता देख, लोभोवउत्ते पनरमों पेख[५६]।
कोहोवउत्ता माणोवउत्ता तेह, लोभोवउत्ता सोलमूं एह[५७] ॥

७३. कोहोवउत्ते मायोवउत्ते पिछाण, लोभोवउत्ते सतरमों जाण[५८]।
कोहोवउत्ते मायोवउत्ते विरंग, लोभोवउत्ता अठारमों भंग[५९] ॥

७४. कोहोवउत्ते मायोवउत्ता जगीस, लोभोवउत्ते ए उगणीस[६०]।
कोहोवउत्ते मायोवउत्ता जोय, लोभोवउत्ता बीसमों होय[६१] ॥

७५. कोहोवउत्ता मायोवउत्ते विगम, लोभोवउत्ते इकवीसम[६२]।
कोहोवउत्ता मायोवउत्ते जगीस, लोभोवउत्ता ए बावीस[६३] ॥

७६. कोहोवउत्ता मायोवउत्ता दुचीन, लोभोवउत्ते बीस रु तीन[६४]।
कोहोवउत्ता मायोवउत्ता प्रकार, लोभोवउत्ता बीस रु च्यार[६५] ॥

७७. माणोवउत्ते मायोवउत्ते लहीस, लोभोवउत्ते ए पणवीस[६६]।
माणोवउत्ते मायोवउत्ते प्रगट, लोभोवउत्ता बीस रु षट[६७] ॥

७८. माणोवउत्ते मायोवउत्ता विख्यात, लोभोवउत्ते बीस रु सात[६८]।
माणोवउत्ते मायोवउत्ता निकृष्ट, लोभोवउत्ता बीस रु अष्ट[६९] ॥

७९. माणोवउत्ता मायोवउत्त कहीस, लोभोवउत्ते ए गुणतीस[७०]।
माणोवउत्ता मायोवउत्ते मुजाण, लोभोवउत्ता तीसमूं माण[७१] ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८०. माणोवउत्ता मायोवउत्ता संपेख, लाभोवउत्ते तीस रु एक[६३]।
माणोवउत्ता मायोवउत्ता जोय, लोभोवउत्ता बतीसमूं होय[६४]॥

चउक संजोगिया १६ भांगा

८१. कोहोवउत्ते माणोवउत्ते गम, मायोवउत्ते लोभोवउत्ते प्रथम[६५]।
कोहोवउत्ते माणोवउत्ते जोय, मायोवउत्ते लोभोवउत्ता होय[६६]॥
८२. कोहोवउत्ते माणोवउत्ते दुचीन, मायोवउत्ता लोभोवउत्ते ए तीन[६७]।
कोहोवउत्ते माणोवउत्ते धार, मायोवउत्ता लोभोवउत्ता ए च्यार[६८]॥
८३. कोहोवउत्ते माणोवउत्ता संच, मायोवउत्ते लोभोवउत्ते ए पंच[६९]।
कोहोवउत्ते माणोवउत्ता प्रगट, मायोवउत्ते लोभोवउत्ता ए षट्[७०]॥
८४. कोहोवउत्ते माणोवउत्ता विख्यात, मायोवउत्ता लोभोवउत्ते ए सात[७१]।
कोहोवउत्ते माणोवउत्ता निकृष्ट, मायोवउत्ता लोभोवउत्ता ए अष्ट[७२]॥
८५. कोहोवउत्ता माणोवउत्ते जोय, मायोवउत्ते लोभोवउत्ते होय[७३]।
कोहोवउत्ता माणोवउत्ते विरस, मायोवउत्ते लोभोवउत्ता ए दश[७४]॥
८६. कोहोवउत्ता माणोवउत्ते विचार, मायोवउत्ता लोभोवउत्ते ए ग्यार[७५]।
कोहोवउत्ता माणोवउत्ते धार, मायोवउत्ता लोभोवउत्ता ए बार[७६]॥
८७. कोहोवउत्ता माणोवउत्ता हेर, मायोवउत्ते लोभोवउत्ते ए तेर[७७]।
कोहोवउत्ता माणोवउत्ता जाण, मायोवउत्ते लोभोवउत्ता पिछाण[७८]॥
८८. कोहोवउत्ता माणोवउत्ता निखर, मायोवउत्ता लोभोवउत्ते पनर[७९]।
कोहोवउत्ता माणोवउत्ता निटोल, मायोवउत्ता लोभोवउत्ता ए सोल[८०]॥
८९. इक संजोगिया आठ जगीस, द्विक संजोगिया च्यार रु बीस।
त्रिक संजोगिया भंग बतीस, चउक संजोगिया सोलै दीस॥
९०. असंखेज्ज समयाधिक जाण, जघन्य स्थिति नेरइया पिछाण।
तत्प्रायोग्य उत्कृष्टी स्थित्त, सप्त बीस भंगा है तत्थ॥

९०. असंखेज्जसमयाहियाए ठितीए तप्पाउग्गुक्कोसियाए ठितीए सत्तावीसं भंगा भाणियव्वा। (श० १।२१८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भंग-सूचक यन्त्र

२७ भांगा

		क्रोध	मान	माया	लोभ
		इक जोगिया १			
१	१	सर्व क्रोध	०	०	०
		द्विक संजोगिया ६			
२	१	३	१	०	०
३	२	३	३	०	०
४	३	३	०	१	०
५	४	३	०	३	०
६	५	३	०	०	१
७	६	३	०	०	३
		त्रिक संजोगिया १२ भांगा			
८	१	३	१	१	०
९	२	३	१	३	०
१०	३	३	३	१	०
११	४	३	३	३	०
१२	५	३	१	०	१
१३	६	३	१	०	३
१४	७	३	३	०	१
१५	८	३	३	०	३
१६	९	३	०	१	१
१७	१०	३	०	१	३
१८	११	३	०	३	१
१९	१२	३	०	३	३
		चउक संजोगिया ८			
२०	१	३	१	१	१
२१	२	३	१	१	३
२२	३	३	१	३	१
२३	४	३	१	३	३
२४	५	३	३	१	१
२५	६	३	३	१	३
२६	७	३	३	३	१
२७	८	३	३	३	३

८० भांगा

		क्रोध	मान	माया	लोभ
		इक संजोगिया ८ भांगा			
१	१	१	०	०	०
२	२	०	१	०	०
३	३	०	०	१	०
४	४	०	०	०	१
५	५	३	०	०	०
६	६	०	३	०	०
७	७	०	०	३	०
८	८	०	०	०	३
		द्विक संजोगिया २४			
९	१	१	१	०	०
१०	२	१	३	०	०
११	३	३	१	०	०
१२	४	३	३	०	०
१३	५	१	०	१	०
१४	६	१	०	३	०
१५	७	३	०	१	०
१६	८	३	०	३	०
१७	९	१	०	०	१
१८	१०	१	०	०	३
१९	११	३	०	०	१
२०	१२	३	०	०	३
२१	१३	०	१	१	०
२२	१४	०	१	३	०
२३	१५	०	३	१	०
२४	१६	०	३	३	०
२५	१७	०	१	०	१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्विक संजोगिया

		क्रोध	मान	माया	लोभ
२६	१८	०	१	०	३
२७	१९	०	३	०	१
२८	२०	०	३	०	३
२९	२१	०	०	१	१
३०	२२	०	०	१	३
३१	२३	०	०	३	१
३२	२४	०	०	३	३

त्रिक संजोगिया ३२ भांगा

		क्रोध	मान	माया	लोभ
३३	१	१	१	१	०
३४	२	१	१	३	०
३५	३	१	३	१	०
३६	४	१	३	३	०
३७	५	३	१	१	०
३८	६	३	१	३	०
३९	७	३	३	१	०
४०	८	३	३	३	०
४१	९	१	१	०	१
४२	१०	१	१	०	३
४३	११	१	३	०	१
४४	१२	१	३	०	३
४५	१३	३	१	०	१
४६	१४	३	१	०	३
४७	१५	३	३	०	१
४८	१६	३	३	०	३
४९	१७	१	०	१	१
५०	१८	१	०	१	३
५१	१९	१	०	३	१
५२	२०	१	०	३	३

		क्रोध	मान	माया	लोभ
५३	२१	३	०	१	१
५४	२२	३	०	१	३
५५	२३	३	०	३	१
५६	२४	३	०	३	३
५७	२५	०	१	१	१
५८	२६	०	१	१	३
५९	२७	०	१	३	१
६०	२८	०	१	३	३
६१	२९	०	३	१	१
६२	३०	०	३	१	३
६३	३१	०	३	३	१
६४	३२	०	३	३	३

चउक संजोगिया १६ भांगा

		क्रोध	मान	माया	लोभ
६५	१	१	१	१	१
६६	२	१	१	१	३
६७	३	१	१	३	१
६८	४	१	१	३	३
६९	५	१	३	१	१
७०	६	१	३	१	३
७१	७	१	३	३	१
७२	८	१	३	३	३
७३	९	३	१	१	१
७४	१०	३	१	१	३
७५	११	३	१	३	१
७६	१२	३	१	३	३
७७	१३	३	३	१	१
७८	१४	३	३	१	३
७९	१५	३	३	३	१
८०	१६	३	३	३	३

९१. *अवगाहना ते तनु नीं तेथ, तथा आधारभूत जे खेत।
स्थान प्रदेश वृद्धि करि जाण, जूआ-जूआ जे विभाग पिछाण॥

९१. 'ओगाहणाठाण' त्ति अवगाहन्ते—आसते यस्यां साऽवगाहना—तनुस्तदाधारभूतं वा क्षेत्रं तस्याः स्थानानि—प्रदेशवृद्ध्या विभागाः अवगाहनास्थानानि।

(वृ०-प० ७१)

९२. ए प्रभु ! रत्नप्रभाइं तास, तीस लक्ष छै नरकावास।
इक-इक नरकावासै जान, अवगाहन ना कितला स्थान ?॥

९२. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावाससि नेरइयाणं केवइया ओगाहणाठाणा पण्णत्ता ?

*लय—खिण गई रे मेर खिण गई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९३. जिन कहै—गोयम ! सांभल वात, असंख्यात अवगाहन-स्थान ।
जघन्य अवगाहन सहु नरक मांय, आंगुल असंख भाग कहिवाय ।।

९४. प्रदेश अधिक अवगाहण जघन्य, दोय प्रदेश अधिक है मन्य ।
यावत् असंख्यात प्रदेश, जघन्य अवगाहणा थी अधिक कहेस ।।
९५. तत्प्रायोग्य तेहिज नरकावास, उत्कृष्टी अवगाहन तास ।
जूजूअे नरकावासे जान, इम असंख अवगाहन-स्थान ।।
९६. ए प्रभु ! रत्नप्रभाइं तास, तीस लक्ष है नरकावास ।
इक-इक नरकावासै जान, जघन्य अवगाहन विषै वर्त्तमान ।।
९७. ते स्यूं कोहोवउत्ता होय ? असी भांगा भणवा तसुं जोय ।
जाव जघन्य अवगाहन थी प्रसग, संख प्रदेश अधिक असी भंग ।।

वा०— जघन्य अवगाहना आंगुल नैं असंख्यातमें भाग, ते नरक नां विरह काल माटै । सत्ताइं ते जघन्य अवगाहना वाला नेरइया किवारै लाधै किवारै न लाधै । लाधै तो क्रोध रा भाव में वर्त्तै । ते नेरइयो किवारै एक पिण पामियै । ते माटै अस्सी भांगा । इम इक प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहना ना धणी में जाव संख्यात प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहना नां धणी में पिण अस्सी भांगा जाणवा ।

९८. जघन्य अवगाहन थकी जगीस, असंख प्रदेश अधिक सत्तावीस ।
तेहिज नरकावासै कहीस, उत्कृष्ट अवगाहन सत्तावीस ।।

वा०—जघन्य स्थिति अनै जघन्य अवगाहना नां धणी नेरइया जघन्य स्थिति रै लेखै तो सत्तावीस भांगा, अनै जघन्य अवगाहना रै लेखै अस्सी भांगा, इम विरोध हुई । एहनों उत्तर—जघन्य स्थिति नां धणी नेरइया नैं पिण जघन्य अवगाहना कालै अस्सी भंगाईज कहियै । उत्पत्ति काल भाविपणै करी जघन्य अवगाहना रा अल्प हुई ते माटै । अनै जे जघन्य स्थिति नां धणी नेरइया नां सत्तावीस भांगा कह्या ते जघन्य अवगाहणा नैं उलंघी छै ते नेरइया नां सत्तावीस भांगा जाणवा ।

९९. ए प्रभु ! रत्नप्रभाइं तास, तीस लक्ष है नरकावास ।
इक-इक नरकावासै पीड, नेरइया में छै किता शरीर ?
१००. जिन कहै—तीन शरीर है सोय,वैक्रिय तेजस कार्मण जोय ।
ए तीनूं ई शरीर विषै वर्त्तमान, सत्तावीस भंगा पहिछान ।।

वा०—इहां वैक्रिय शरीर नैं विषै सत्तावीस भांगा कह्या । तो पिण जिका स्थिति आश्री अनैं अवगाहना आश्री भांगा री परूपणा पूर्वे कही तिका तो तिमहिज कहिवी । तेहनों बीजो कोइ अवकाश नथी, ते माटै । अनैं शरीर आश्री जे परूपणा अवकाश सहित छै, ते माटै सत्तावीस भांगा । इम अनेरै ठिकाणै पिण विचारी युक्ति कहिवूं । तथा विग्रह गति नैं विषै निकेवल तेजस कार्मण शरीर ईज छै । ते वैक्रिय रहित तेजस कार्मण किवारै लाभै किवारै न लाभै, ते माटै तेहना अस्सी

९३. गोयमा ! असंखेज्जा ओगाहणाठाणा पण्णत्ता, तं जहा ।
जहण्णिया ओगाहणा
'जहन्निय' त्ति जघन्यांगुलासंख्येयभागमात्रा सर्वनरकेषु । (वृ०-प० ७१)

९४, ९५. पदेसाहिया जहण्णिया ओगाहणा, दुपदेसाहिया जहण्णिया ओगाहणा जाव असंखेज्जपएसाहिया जहण्णिया ओगाहणा । तप्पाउग्गुक्कोसिया ओगाहणा ।
(श० १।२१९)

९६, ९७. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि जहण्णियाए ओगाहणाए वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता ? असीइभंगा भाणियव्वा जाव संखेज्जपदेसाहिया जहण्णिया ओगाहणा ।

वा०—'जहन्नियाए' इत्यादि जघन्यायां तस्यामेव चैकादिसंख्यातान्तप्रदेशाधिकायामवगाहनायां वर्त्तमानानां नारकाणामल्पत्वात् क्रोधाद्युपयुक्त एकोऽपि लभ्यतेऽतोऽशीतिर्भंगाः । (वृ०-प० ७१)

९८. असंखेज्जपदेसाहियाए जहण्णियाए ओगाहणाए वट्टमाणाणं, तप्पाउग्गुक्कोसियाए ओगाहणाए वट्टमाणाणं सत्तावीसं भंगा । (श० १।२२०)

वा०—ननु ये जघन्यस्थितयो जघन्यावगाहनाश्च भवन्ति तेषां जघन्यस्थितिकत्वेन सप्तविंशतिर्भङ्गकाः प्राप्नुवन्ति जघन्यावगाहनत्वेन चाशीतिरिति विरोधः ?, अत्रोच्यते, जघन्यस्थितिकानामपि जघन्यावगाहनाकालेऽशीतिरेव, उत्पत्तिकालभावित्वेन जघन्यावगाहनानामल्पत्वादिति, या च जघन्यस्थितिकानां सप्तविंशतिः सा जघन्यावगाहनत्वमतिक्रान्तानामिति भावनीयम् ।
(वृ०-प० ७१)

९९, १००. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि नेरइयाणं कइ सरीरया पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिण्णि सरीरया पण्णत्ता, तं जहा—वेउव्विए, तेयए, कम्मए । (श० १।२२१)

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए जाव वेउव्वियसरीरे वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता ? सत्तावीसं भंगा ।
(श० १।२२२)

वा०—यद्यपि वैक्रियशरीरे सप्तविंशतिर्भङ्गका उक्तास्तथाऽपि या स्थित्याश्रया अवगाहनाश्रया च भंगकप्ररूपणा सा तथैव दृश्या, निरवकाशत्वात्तस्याः, शरीराश्रयायाश्च सावकाशत्वात्, एवमन्यत्रापि विमर्शनीयमिति । ननु विग्रहगतौ केवले ये तैजसकार्मणशरीरे स्यातां तयो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भांगा संभवै। अनै इहां तैजस कार्मण नै विषै सत्तावीस भांगा किम कह्या? तेहनों उत्तर—इहां वैक्रिय शरीर सहित तेजस कार्मण शरीर नां सत्तावीस भांगा कह्या छै। अनै वैक्रिय शरीर रहित तेजस कार्मण शरीर नै विषै अस्सी भांगा हुवं तेहनो कथन इहां नथी कह्यूं।

एतेणं गमेणं तिण्णि सरीरया भाणियव्वा।

इहां बाकी दोय शरीर रह्या तेहनै विषै शरीरां नै पाठ नो अत्यन्त साम्य सरीखापणो दिखाडवा नै अर्थे तिण्णि सरीरया भाणियव्वा इम कह्या ते तीनां नै दिखाडवा नै अर्थे।

रूपत्वेनाशीतिरपि भंगकानां संभवतीति कथमुच्यते तयोः सप्तविंशतिरेवेति? अत्रोच्यते, सत्यमेतत् केवलं वैक्रिय-शरीरानुगतयोस्तयोरिहाश्रयणं केवलयोश्चानाश्रयण-मिति सप्तविंशतिरेवेति। (वृ०-प० ७१, ७२)

यच्च द्वयोरेवातिदेश्यत्वे त्रीणीत्युक्तम् तच्च त्रयाणामपि गमस्यात्यन्तसाम्योपदर्शनार्थम्। (वृ०-प० ७२)

१०१. ए प्रभु! नेरइया संघयणी होय? जिन कहै—पट मांहिलो नहिं कोय।
नहिं अस्थि नहीं शिरा सुरंग, नहिं स्नायु वलि तेहनैं अंग॥

१०२. तेहथी कह्या असंघयणी तेह, पिण पुद्गल असुभपणैं परिणमेह।
अनिष्ट अकांत अप्रिय वलि ताम, असुभ अनै कहियै अमणाम॥

१०३. एकार्थ एह विशेषण एथ, अतिहि अनिष्ट बतावा हेत।
छ संघयण असंघयणी में ताय, वर्त्तमान सत्तावीस कहाय॥

१०४. स्यूं प्रभु! जाव नारक संठाण, जिन कहै—द्विविध ते पहिछाण।
भव-धारणि उत्तर-वैक्रिय जोय, ए दोनूं नों हुंडक होय॥

१०५. ए प्रभु! जाव हुंडक संठाण, वर्तमान जे नेरइया जाण।
स्यूं कोहोवउत्ता? इत्यादि प्रसंग, यां पिण सप्तवीस छै भंग॥

१०६. ए प्रभु! रत्नप्रभा कति लेश? जिन कहै—इक कापोत कहेश।
ए जाव कापोत विषै वर्त्तमान, सत्तावीस भंगा पहिछान॥

१०७. रत्नप्रभाइं तीनूं दृष्ट, समदंसण अरु मिथ्या निकृष्ट।
सप्तवीस भंग तणु प्रसंग, सम्मामिच्छदंसण असी भंग॥

१०१, १०२. इमीसे णं भंते? रयणप्पभाए जाव नेरइयाणं सरीरया किंसंघयणा पण्णत्ता? गोयमा! छण्हं संघयणाणं असंघयणी। नेवट्ठी, नेव छिरा, नेव ण्हारूणि। जे पोग्गला अणिट्ठा अकंता अप्पिया असुहा अमणुण्णा अमणामा एतेसिं सरीरसंघायत्ताए परिणमंति। (श० १।२२४)

१०३. एकार्थिका वैते शब्दाः अनिष्टतात्प्रकर्षप्रतिपादनार्था इति। (वृ०-प० ७२)

१०३. इमीसे णं भंते? रयणप्पभाए जाव छण्हं संघयणाणं असंघयणे वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता? सत्तावीसं भंगा। (श० १।२२५)

१०४. इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए जाव नेरइयाणं सरीरया किंसंठिया पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—भवधारणिज्जा य, उत्तरवेउव्विया य। तत्थ णं जे ते भवधारणिज्जा ते हुंडसंठिया पण्णत्ता, तत्थ णं जे ते उत्तरवेउव्विया ते वि हुंडसंठिया पण्णत्ता। (श० १।२२६)

१०५. इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए जाव हुंडसंठाणे वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता? सत्तावीसं भंगा। (श० १।२२७)

१०६. इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए जाव नेरइयाणं कति लेस्साओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! एगा काउलेस्सा पण्णत्ता। (श० १।२२८)

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए जाव काउलेस्साए वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता? सत्तावीसं भंगा। (श० १।२२९)

१०७. इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए जाव नेरइया किं सम्मदिट्ठी? मिच्छदिट्ठी? सम्मामिच्छदिट्ठी? तिण्णि वि। इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए जाव सम्मदंसणे वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता? सत्तावीसं भंगा। एवं मिच्छदंसणे वि। सम्मामिच्छदंसणे असीतिभंगा। (श० १।२३०-२३३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—मिश्रदृष्टि अल्प ते भणी किवारै लाभै, किवारै न लाभै। अनै काल थकी पिण ते अल्प। ते भणी क्रोध ना भाव नैं विषै वर्तै ते एक पिण लाधै, ते भणी अस्सी भांगा।

१०८. ए प्रभु ! रत्नप्रभाइं जाव, ज्ञानी कै अज्ञानी कहाव ?
नियमा तीन ज्ञान नीं होय, तीन अज्ञान नीं भजना जोय[1] ।।

१०९. ए जावत् मतिज्ञाने वर्तमान, सत्तावीस भंगा पहिछान।
एवं तीनूं ज्ञान अज्ञान, विभंग सहित मति श्रुति ए जान ।।

वा०—इहां विभंग सहीत मति श्रुति अज्ञान नैं विषै सत्तावीस भंगा जाणवा। अनै असन्नी मरी प्रथम नरकै जाय, तिहां विभंग अज्ञान ऊपनां पहिली मति श्रुति अज्ञान नैं विषै अस्सी भंगा पामियै। अल्प ते भणी। अनै तिवारै तेहनी जघन्य अवगाहना हुई। ते जघन्य अवगाहना आश्रय करि कै अस्सी भंगा हुई।

११०. ए जाव स्यूं मन वच जोगी काय, तीनूंइ जोग कहै जिनराय।
तीनूंई जोग विषै वर्त्तमान, सत्तावीस भंगा पहिछान ।।

वा०—इहां निकेवल कार्मण काय जोग नैं विषै तो अस्सी भंगा संभवै। तो पिण तेहनीं इहां विवक्षा नथी। अनै वैक्रिय शरीर ने विषै रह्यो जे काय जोग तथा मन वचन सहीत जे काय जोग ते इहां ग्रहण कीधूं। तेहनैं विषै सत्तावीस भांगा जाणवा।

१११. ए जाव सागारोवउत्त अणागार, जिन कहै विहुं उपयोग विचार।
विहुं उपयोग विषै वर्त्तमान, सत्तावीस भंगा पहिछान ।।

११२. ए रत्नप्रभा नी आखी वात, इमहिज सातूं नरक विख्यात।
णाणत्तं लेश्या विषै विचार, जूजूइ लेस्या इह विध धार ।।

---

१. जो जीव सम्यक्त्व सहित नरक में उत्पन्न होते हैं, उनके प्रथम समय से ही भवप्रत्यय अवधिज्ञान होता है। इसलिए वहां नियमतः तीन ज्ञान होते हैं। जो मिथ्यादृष्टि जीव नरक में उत्पन्न होते हैं वे यदि पिछले भव में संज्ञी होते हैं, तो उन्हें भी भवप्रत्यय अवधिज्ञान प्रथम समय में ही प्राप्त हो जाता है। पर जो पिछले भव में असंज्ञी होते हैं, उन्हें भवप्रत्यय ज्ञान अन्तर्मुहूर्त बाद में उपलब्ध होता है। अतः पहले दो अज्ञान होते हैं और बाद में तीन अज्ञान। इस प्रकार तीन अज्ञान की भजना हो गई।

वा०—मिश्रदृष्टीनामल्पत्वात्तद्भावस्यापि च काल-तोऽल्पत्वादेकोऽपि लभ्यते इत्यशीतिभंगाः।
(वृ०-प० ७२)

१०८. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए जाव नेरइया किं नाणी ? अण्णाणी ?
गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणी वि। तिण्णि नाणाइं नियमा। तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।
(श० १।२३४)

१०९. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए जाव आभिनिबोहियनाणे वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता ? सत्तावीसं भंगा। एवं तिण्णि नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं भाणियव्वाइं।
(श० १।२३५, २३६)

वा०—यदि मत्यज्ञानश्रुताज्ञाने विभगात्पूर्वकाल-भाविनी विवक्ष्येते तदाऽशीतिभंगा लभ्यते, अल्पत्वा-त्तेषां, किन्तु जघन्यावगाहनास्ते ततो जघन्यावगाहना-श्रयेणैवाशीतिभंगकास्तेषामवसेया इति।
(वृ०-प० ७३)

११०. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए जाव नेरइया किं मण-जोगी ? वइजोगी ? कायजोगी ? तिण्णि वि। इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए जाव मणजोए वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता ? सत्तावीसं भंगा। एवं वइजोए। एवं कायजोए।
(श० १।२३७-२४०)

वा०—इह यद्यपि केवलकार्मणकाययोगेऽशीतिभंगाः संभवन्ति तथाऽपि तस्याविवक्षणात् सामान्यकाय-योगाश्रयणाच्च सप्तविंशतिरुक्तेति। (वृ०-प० ७३)

१११. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए जाव नेरइया किं सागा-रोवउत्ता ? अणागारोवउत्ता ? गोयमा ! सागारोवउत्ता वि, अणागारोवउत्ता वि। इमीसे णं भंते ! रयणप्प-भाए जाव सागारोवओगे वट्टमाणा नेरइया किं कोहो-वउत्ता ? सत्तावीसं भंगा। एवं अणागारोवउत्ते वि सत्तावीसं भंगा।
(श० १।२४१-२४३)

११२. एवं सत्त वि पुढवीओ नेयव्वाओ, नाणत्तं लेसासु।
(श० १।२४४)

रत्नप्रभापृथिवीप्रकरणवच्छेषपृथिवीप्रकरणान्य-ध्येयानि, केवलं लेश्यासु विशेषः, तासां भिन्नत्वाद्।
(वृ०-प० ७३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११३. रत्न सर्कर कापोत समील, तीजी नरके काऊ नील।
कापोत केइक नरकावास, केइक नील कहीजै तास॥

११४. चउथी नरकै नील कहाय, पंचमी नील कृष्ण विहुं थाय।
छठी नरकै कृष्ण संपेख, सप्तमी परम कृष्ण सुविशेख॥

११३, ११४. काऊ य दोसु, नइयाए मीसिया, नीलिया चउत्थीए।
पंचमियाए मीसा, कण्हा तत्तो परमकण्हा॥१॥
(श० १।२४४, संगहणी-गाहा)

ढूहा

११५. संख्या नरकावास नीं, तीस अनैं पणवीस।
इत्यादिक पूर्वे कही, तिण करि पाठ कहीस॥

११५. यच्च सूत्राभिलापेषु नरकावाससंख्यानानात्वं तत् 'तीसा य पन्नवीसा' इत्यादिना पूर्वप्रदर्शितेन समवसेयमिति। (वृ०-प० ७३)

११६. *हे प्रभु! असुरकुमार ना तास, चउसठ लक्ष अछै आवास।
इक-इक आवासै पहिछान, स्थिति ना स्थानक केता जान?

११७. जिन कहै—असंखेज्ज स्थिति ठाण, जेम नेरइया तिम ए जाण।
णवरं पडिलोमा तसुं भंग, लोभ मायादिक अनुक्रम संग॥

११६, ११७. चउसट्ठीए णं भंते! असुरकुमारावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि असुरकुमारावासंसि असुरकुमाराणं केवइया ठितिट्ठाणा पण्णत्ता? गोयमा! असंखेज्जा ठितिट्ठाणा पण्णत्ता। जहण्णिया ठिई जहा नेरइया तहा, नवरं—पडिलोमा भंगा भाणियव्वा। सव्वे वि ताव होज्ज लोभोवउत्ता। अहवा लोभोवउत्ता य, मायोवउत्ते य। अहवा लोभोवउत्ता य, मायोवउत्ता य।

वा०—नारकी नैं विषै क्रोध मान माया लोभ—इम अनुक्रमे भांगा कह्या। अनैं असुरकुमार नैं लोभ माया मान क्रोध इम अनुक्रमैं कहिवा। 'सव्वेवि ताव होज्ज लोभोवउत्ता' देवता नैं बहुलपणैं लोभ संज्ञा घणी हुई। तिण कारणैं सगलाई असुरकुमार लोभवंत छै। ए असंजोगियो एक भांगो थयो। हिवै द्विकसंजोगिया छह भांगा हुई। अहवा लोभोवउत्ता य मायोवउत्ते य। अहवा लोभोवउत्ता य मायोवउत्ता य। अहवा लोभोवउत्ता य माणोवउत्ते य। अहवा लोभोवउत्ता य माणोवउत्ता य। अहवा लोभोवउत्ता य कोहोवउत्ते य। अहवा लोभोवउत्ता य कोहोवउत्ता य। इम सत्तावीस भांगा करिवा तिण मे लोभै बहु वचन सर्व ठिकाणे करिवूं।

वा०—नारकप्रकरणे हि क्रोधमानादिना क्रमेण भंगकनिर्देशः कृतः, असुरकुमारादिप्रकरणेषु लोभमायादिनाऽसौ कार्य इत्यर्थः, अत एवाह—'सव्वेवि ताव होज्ज लोहोवउत्त' त्ति, देवा हि प्रायो लोभवन्तो भवन्ति तेन सर्वेऽप्यसुरकुमारा लोभोपयुक्ताः स्युः, द्विकसंयोगे तु लोभोपयुक्ततत्वे बहुवचनमेव, मायोपयोगे त्वेकत्वबहुत्वाभ्यां द्वौ भंगकौ, एवं सप्तविंशतिर्भंगकाः कार्याः। (वृ०-प० ७३)

११८. इमहिज जावत् थणियकुमार, णवरं नानापणुं विचार।
प्रश्न-सूत्र उत्तर-सूत्र अध्येय, संघयण संठाण लेश कहेय॥

११८. एएणं गमेणं नेयव्वं जाव थणियकुमारा, 'नवरं—नाणत्तं जाणियव्वं'। (श० १।२४५)

वा०—नारकी नैं अनैं असुरकुमारादिक नैं परस्पर मांहोमांहि नानापणुं जाणी नैं प्रश्न-सूत्र, अनैं उत्तर-सूत्र नुं उच्चरवूं। बलि नारकी नैं अनैं असुरादिक नैं संघयण संठाण लेस्या सूत्र नैं विषै नानापणुं हुई ते इम कहिवूं—चउसट्ठीए णं भंते असुरकुमारावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि असुरकुमारावासंसि असुरकुमाराणं सरीरगा किं संघयणी? गोयमा! असंघयणी, जे पोग्गला इट्ठा कंता ते तेसिं संघायत्ताए परिणमंति। एवं संठाणे वि, नवरं भवधारणिज्जा समचउरंससंठिया उत्तरवेउव्विया अण्णयरसंठिया। एवं लेसासु वि, नवरं कइ लेसाओ पण्णत्ताओ? गोयमा! चत्तारि, तंजहा—किण्हा, नीला, काऊ, तेऊ लेसा। चउसट्ठीए णं जाव किण्हलेसाए वट्टमाणा किं कोहोवउत्ता ४? गोयमा! सव्वेवि ताव होज्जा लोहोवउत्ता इत्यादि। एवं नीला, काऊ, तेऊ वि। बलि नागकुमारादिक प्रकरण नैं विषै इम भणवूं ते कहै छै—चुलसीए नागकुमारावाससयसहस्सेसु इत्येवं। 'चउसट्ठी असुराणं नागकुमाराण होइ चुलसीई' इत्यादिक वचन तैं प्रश्न सूत्र नैं विषै, भवन संख्या नानापणुं जाणी नैं सूत्र नो उच्चारण करिवूं।

वा०—नारकाणाममुरकुमारादीनां च परस्परं नानात्वं ज्ञात्वा प्रश्नसूत्राणि उत्तरसूत्राणि चाध्येयानीति हृदयं, तच्च नारकाणाममुरकुमारादीनां च संहनन-संस्थानलेश्यासूत्रेषु भवति। (वृ०-प० ७३, ७४)

*लय—खिण गई रे मेरी खिण गई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११९. हे प्रभु ! पृथ्वीकाय ना तास, असंख्यात लख तेहना वास।
इक-इक वासा मांहि पिछाण, पृथ्वीकाय नां किता स्थिति-ठाण ।।

१२०. जिन कहै—असंखेज्ज स्थिति-ठाण, अंतर्मुहूर्त्त जघन्य पिछाण।
अधिक जघन्य थी समयो एक, जाव तेहिज वासे उत्कृष्ट अपेख ।।

१२१. हे प्रभु ! पृथ्वीकाय ना तास, असंख्यात लक्ष है तसुं वास।
इक-इक पृथ्वीकाय नें वास, जघन्य स्थिति वर्तमान विमास ।।

१२२. तेह पृथ्वी स्यूं कोहोवउत्ता य, कै माणोवउत्ता तसुं कहिवाय ?
मायोवउत्ता लोभोवउत्ता य ? ए प्रश्न वहु वच च्यारूं मांय ।।

१२३. जिन कहै—कोहोवउत्ता तेह, माणोवउत्ता पिण छै जेह।
मायोवउत्ता पिण कहिवाय, लोभोवउत्ता पिण ते थाय ।।

१२४. पृथ्वी तणां जीव वहु उक्त, इक-इक कषाय में उपयुक्त।
वहु लाभै तिण सुं नहिं उपजै भंग, दसूंइ स्थान विषे ए प्रसंग ।।

१२५. णवरं तेजु लेस असी भग, स्वर्ग थकी चव देव सुरंग।
पृथ्वीकाय में उपजै आय, एक तथा वहु इम असी थाय ।।

११९, १२०. असंखेज्जेसु णं भंते ! पुढविक्काइयावाससय-सहस्सेसु एगमेगंसि पुढविक्काइयावासंसि पुढविक्काइयाणं केवइया ठितिट्ठाणा पण्णत्ता ? गोयमा ! असंखेज्जा ठितिट्ठाणा पण्णत्ता तं जहा—जहण्णिया ठिई जाव तप्पाउग्गुक्कोसिया ठिई। (श० १।२४६)

१२१, १२२. असंखेज्जेसु णं भंते ! पुढविक्काइयावाससय-सहस्सेसु एगमेगंसि पुढविक्काइयावासंसि जहण्णियाए ठितीए वट्टमाणा पुढविक्काइया किं कोहोवउत्ता ? माणोवउत्ता ? मायोवउत्ता ? लोभोवउत्ता ?

१२३. गोयमा ! कोहोवउत्ता वि, माणोवउत्ता वि, मायोवउत्ता वि, लोभोवउत्ता वि।

१२४, १२५. एवं पुढविक्काइयाणं सव्वेसु वि ठाणेसु अभंगयं, नवरं—तेउलेस्साए असीतिभंगा। (श० १।२४७)
पृथिवीकायिका एकैकस्मिन् कषाये उपयुक्ता बहवो लभ्यन्त इत्यभङ्गकं दशस्वपि स्थानेषु, नवरं 'तेउलेसाए असीई भंग' त्ति, पृथिवीकायिकेषु लेश्याद्वारे तेजोलेश्या वाच्या, सा च यदा देवलोकाच्च्युतो देव एकोऽनेको वा पृथिवीकायिकेषूत्पद्यते तदा भवति, ततश्च तदैकत्वादिभवनादशीतिर्भङ्गका भवन्तीति।
(वृ०-प० ७४)

वा०—इहां पृथ्वीकाय नां प्रकरण नें विषै स्थितिस्थानद्वार साक्षात् सूत्र पाठ नें विषै कह्यु ईज छै। अनें शेष नारकी नीं परै कहिवा। तिहां वली 'णवरं णाणत्तं जाणियव्वं' ए पाठ पूर्वे कह्यो तेहनीं अनुवृत्ति थकी नानापणुं इहां प्रश्न थकी अनें उत्तर थकी जाणवूं। अनें शरीरादिक सात द्वार नें विषै ते नानापणुं प्रश्न थकी अनें उत्तर थकी इम कहिवूं—असंखिज्जेसु णं भंते ! पुढविकाइयावाससयसहस्सेसु जाव पुढविकाइयाणं कइ सरीरा पण्णत्ता ? तिण्णि, तं जहा—ओरालिए तेयए कम्मए। एतेसु च कोहोवउत्ता वि माणोवउत्ता वीत्यादि कहिवूं १ तथा असंखेज्जेसु णं जाव पुढविकाइयाणं सरीरगा किं संघयणी इत्यादि ? तिमहिज णवरं पोग्गला मणुण्णा अमणुण्णा सरीरसंघायत्ताए परिणमंति २ एवं संठाणद्वार नें विषै पिण पूछा करवी अनें वलि उत्तर नें विषै इम कहिवूं—हुंडसंठिया, एतलुंईज पाठ भणवूं, पिण दुविहा सरीरगा पण्णत्ता तं जहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य इत्यादि पाठ न कहिवूं, पृथ्वीकाय नें वैक्रिय शरीर नहीं ते माटै ३। लेस्याद्वार नें विषै वलि इम कहिवूं—पुढविकाइयाणं भंते ! कइ लेसाओ पण्णत्ताओ ? गोयमा ! चत्तारि, तंजहा—कण्ह लेसा जाव तेऊ लेसा। इहां तीन लेस्या नें विषै तो भांगा नथी अनें तेजुलेश्या नें विषै अस्सी भंगा ए पूर्वे कह्याईज छै ४ दृष्टिद्वारे इम कहिवूं—असंखेज्जेसु जाव पुढविकाइया किं सम्मदिट्ठी मिच्छदिट्ठी सम्मामिच्छदिट्ठी ? गोयमा ! मिच्छदिट्ठी शेष तिमहिज ५ ज्ञानद्वारे पिण तिमहिज णवरं—पुढविकाइयाणं भंते ! किं णाणी ? अण्णाणी ? गोयमा ! णो णाणी, अण्णाणी, णियमादु अण्णाणी ६ योगद्वारे पिण तिमहिज—नवरं पुढविकाइयाणं भंते ! किं मणजोगी वइजोगी कायजोगी ? गोयमा ! नो मणजोगी, नो वइ जोगी, काय जोगी ७ ए पूर्वे कह्यु ते सर्व टीका थी जाणवूं।

वा०—इह पृथिवीकायिकप्रकरणे स्थितिस्थानद्वारं साक्षाल्लिखितमेवास्ति, शेषाणि तु नारकवद्वाच्यानि, तत्र च 'नवरं णाणत्तं जाणियव्वं' इत्येतस्यानुवृत्तेर्नानात्वमिह प्रश्नत उत्तरतश्चावसेयं, तच्च शरीरादिषु सप्तसु द्वारेष्विदम्—
(वृ०-प० ७४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२६. इम ही आउ वणस्सइकाय, तेउ वाउ में तेजू नांय।
सर्व स्थानक में अभंग होय, च्यार शरीर वाउ वृत्ति जोय ।।

१२६. एवं आउक्काइया वि । तेउक्काइय-वाउक्काइयाणं सव्वेसु वि ठाणेसु अभंगयं। वणप्फइकाइया जहा पुढविक्काइया । (श० २४८-२५०)
वाउक्काइयाणं, कइ सरीरा पन्नत्ता ? गोयमा ! चत्तारि, तं जहा—ओरालिए, वेउविए, तेयए, कम्मए । (वृ०-प० ७५)

१२७. पृथ्वी अप वनस्पति रै मांहि, दृष्टि द्वारै ज्ञानद्वारै ताहि।
कर्म ग्रंथै सास्वादन उक्त, वले ज्ञान कह्या बे तेह अयुक्त ।।

१२७. ननु पृथिव्यम्बुवनस्पतीनां दृष्टिद्वारे सास्वादनभावेन सम्यक्त्वं कर्मग्रन्थेष्वभ्युपगम्यते, तत एव च ज्ञानद्वारे मतिज्ञानं श्रुतज्ञानं च । (वृ०-प० ७५)

१२८. बे ते चोरिंद्री नु प्रसंग, जे स्थानै नरक नैं असी भंग।
ते स्थानकै विकलिंद्रिय तीन कहियै, भांगा असी सुचीन ।।

१२८. बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं जेहिं ठाणेहिं नेरइयाणं असीइभंगा तेहिं ठाणेहिं असीइं चेव ।

वा०—एक समय अधिक जघन्य स्थिति ना धणी नेरइया जाव संख्यात समय अधिक जघन्य स्थिति ना धणी नेरइया नैं विषै जघन्य अवगाहना ना नेरइया नैं विषै एक प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहना नों धणी जाव संख्यात प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहना नों धणी नेरइया नैं विषै मिश्रदृष्टि नेरइया नैं विषै अस्सी भांगा कह्या । विकलेंद्रिय नैं पिण ए स्थानक नैं विषै मिश्रदृष्टि वरजी नैं अस्सी भंगाईज, अल्प ते भणी । एक-एक क्रोधादि उपयुक्त ना संभव थकी । मिश्रदृष्टि विकलेंद्रिय नैं विषै नथी ।

वृद्ध तु पुनः इण सूत्र नैं विषै किणहि वाचना विशेष थकी इम कह्यं । जे स्थानकै नारकी नैं अस्सी भंगा ते स्थानक नैं विषै विकलेंद्रिय नैं अभंगक इति ए टीका में कह्यं ।

वा०—तत्रैकादिसङ्ख्यातान्तसमयाधिकायां जघन्यस्थितौ तथा जघन्यायामवगाहनायां च तत्रैव च संख्येयान्तप्रदेशवृद्धायां मिश्रदृष्टौ च नारकाणामशीतिर्भङ्गका उक्ताः, विकलेन्द्रियाणामप्येतेषु स्थानेषु मिश्रदृष्टिवर्जेष्वशीतिरेव, अल्पत्वात्तेषाम् एकैकस्यापि क्रोधाद्युपयुक्तस्य संभवात्, मिश्रदृष्टिस्तु विकलेन्द्रियेष्वेकेन्द्रियेषु च न संभवतीति न विकलेन्द्रियाणां तत्राशीतिभङ्गकसम्भव इति ।

वृद्धैस्त्विह सूत्रे कुतोऽपि वाचनाविशेषात् यत्राशीतिस्तत्राप्यभंगकमिति व्याख्यातमिति ।
(वृ०-प० ७५)

१२९. णवरं दृष्टि द्वार ज्ञान द्वार, जिहां नारकी नैं सत्तावीस प्रकार।
विकलेंद्रिय नैं तिहां अधिक विचार, असी भांगा कहिवा इम धार ।।

१३०. सास्वादन सम्यक्त्व सुअंग, मति श्रुत ज्ञान विषै असी भंग।
अल्प छै ते भणी ह्वै किणवार, सत्ताइं विरह असी इम धार ।।

१३१. जे स्थानक नेरइया नैं सत्तावीस, दाख्या भंगा श्री जगदीश।
ते स्थानकै विकलिंद्रिय मांय, अभंगक—भंगा नहिं थाय ।।

१२९-१३१. नवरं—अब्भहिया सम्मत्ते । आभिणिबोहियनाणे, सुयनाणे य एएहिं असीइभंगा । जेहिं ठाणेहिं नेरइयाणं सत्तावीसं भंगा तेसु ठाणेसु सव्वेसु अभंगयं ।
(श० १।२५१)
दृष्टिद्वारे ज्ञानद्वारे च नारकाणां सप्तविंशतिरुक्ता, विकलेन्द्रियाणां तु 'अब्भहिय' त्ति अभ्यधिकान्यशीतिर्भङ्गकानां भवति, कथं इत्याह—सम्यक्त्वे, अल्पीयसां हि विकलेन्द्रियाणां सास्वादनभावेन सम्यक्त्वं भवति, अल्पत्वाच्चैतेषामेकत्वस्यापि सम्भवेनाशीतिभङ्गकानां भवति, एवमाभिनिबोधिके श्रुते चेति । तथा 'जेहिं' इत्यादि, येषु स्थानकेषु नैरयिकाणां सप्तविंशतिर्भङ्गकास्तेषु स्थानेषु द्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां भङ्गकाभावः ।

१३२. पंचेंद्रिय तिर्यंच पिछाण, जेम नरक तिम भणवा जाण।
णवरं इतली फेर कहाय, जे जे बोल पावै तसु न्याय ।।
१३३. नरक में ज्यां सप्तवीस कथंग, तिहां पंचेंद्री तिर्यंच अभंग।
नरक नैं असी भंग जे स्थान, तिर्यंच पंचेंद्री नैं तिहां असी जान ।।

१३२, १३३. पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जहा नेरइया तहा भाणियव्वा, नवरं—जेहिं सत्तावीसं भंगा तेहिं अभंगयं कायव्वं । (श० १।२५२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—इहां टीका में इम कह्युं नारकी ना सूत्र नीं परै कहिवा नवरं शरीरद्वारे ए विशेष—असंखेज्जेसु णं भंते ! पंचेंदियतिरिक्खजोणियावासेसु पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं केवइया सरीरा पण्णत्ता ? गोयमा ! चत्तारि, तं जहा—ओरालिए, वेउव्विए, तेयए, कम्मए। सर्वत्र अभंगक इति। तथा संघयणद्वारे—पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं केवइया संघयणा पण्णत्ता ? गोयमा ! छः संघयणा तं जहा—वइरोसहनारायं जाव छेवट्टंति। इम संस्थानद्वारे पिण—छ संठाणा पण्णत्ता तं जहा—समचउरंसे ६। इम लेस्या द्वारे—कइ लेसाओ पण्णत्ताओ ? गोयमा ! तं जहा—कण्हलेसा ६। इति तिर्यंच पंचेंद्री वर्णन।

१३४. जे स्थानै नरक नैं असी भंग होय,ते स्थानकै मनुष्य असी भंग जोय।
जे स्थानै नरक नै सत्तावीस भंग, ते स्थानकै मनुष्य अभंग प्रसंग॥

१३५. णवरं मनुष्य में अधिक ए जाण, जघन्य स्थिति में असी पिछाण।
आहारक शरीर विषै असी होय, पाठ मांहि तो इतोईज जोय॥

वा०—नारकी नैं जघन्य स्थिति विषै सत्तावीस भंगा कह्या अनैं मनुष्य नैं जघन्य स्थिति विषै अस्सी भंगा, पिण अभंगक नहीं। आहारक शरीरवंत मनुष्य नैं अस्सी भंगा, अल्प छै ते भणी। अनैं नारकी नैं आहारक शरीर नथी ते माटै मनुष्य नैं ए अधिक कह्या। अत्र टीकाकार कह्युं—

इहां नारकी नां सूत्र नों अनैं मनुष्य नां सूत्र नों बहुलपणै शरीर, संघयण, संठाण, लेश्या, ज्ञान—ए पंचद्वार नै विषै ईज विशेष, ते कहै छै। शरीरद्वारे—असंखेज्जेसु णं भंते ! मणुस्सावासेसु मणुस्साणं कइ सरीरा पण्णत्ता ? गोयमा ! पंच, तं जहा—ओरालिए, वेउव्विए, आहारए, तेयए, कम्मए। असंखेज्जेसु णं जाव ओरालियसरीरे वट्टमाणा मणूसा किं कोहोवउत्ता ४ ? गोयमा ! कोहोवउत्ता वि ४। इम सर्व शरीर नैं विषै। नवरं आहारक नैं विषै अस्सी भंगा कहिवा।

संघयणद्वारे—नवरं मणुस्साणं भंते ! कइ संघयणा पण्णत्ता ? गोयमा ! छ संघयणा पण्णत्ता, तं जहा—वयरोसहनाराए जाव छेवट्टे।

संस्थानद्वारे—छ संठाणा पण्णत्ता, तं जहा—समचउरंसे जाव हुंडे।

लेस्याद्वारे—छ लेसाओ, तं जहा—किण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा।

ज्ञानद्वारे—मणुस्साणं भंते ! कइ णाणाणि ? गोयमा ! पंच, तं जहा—आभिणिबोहियणाणं जाव केवलणाणं। केवल वरजी च्यार ज्ञान नैं विषै अभंगक, केवलज्ञान नैं विषै कषाय नों उदय नथी।

१३६. व्यंतर भवनपति जिम होय, जोतिषि विमानिक पिण इम होय।
णवरं णाणत्तं जे जिहां बोल, जाव अणुत्तरा पाठ अमोल॥

१३४, १३५. जेहिं ठाणेहिं नेरइयाणं असीतिभंगा तेहिं ठाणेहिं मणुस्साण वि असीतिभंगा भाणियव्वा। जेसु सत्तावीसा तेसु अभंगयं, नवरं—मणुस्साणं अब्भहियं जहण्णियाए ठिईए, आहारए य असीतिभंगा।
(श० १।२५३)

१३६. वाणमंतर-जोतिस-वेमाणिया जहा भवणवासी, नवरं—नाणत्तं जाणियव्वं जं जस्स, जाव अणुत्तरा।
(श० १।२५४)

दूहा

१३७. वृत्ती नां जोतिषि कह्या, असंख विमानावास।
वैमानिक संख्यात लख, विमान-वास विमास॥

१३७. संखेज्जेसु णं भंते। वेमाणियावाससयसहस्सेसु...
(वृ०-प० ७७)

१३८. *सेवं भंते सोलमी ढाल, प्रथम शतक रै पंचमैं न्हाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय पसाय, 'जय-जश' सुख-सपति वर पाय॥

प्रथमशते पंचमोद्देशकार्थः॥१।५॥

१३८. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ।
(श० १।२५५)

*लय—खिण गई रे मेरी खिण गई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : १७

दूहा

१. पंचमुदेशै अंत में, जोतिषि वैमानीक।
विमानवासा वर्णव्या, दश ठाणै तहतीक॥

२. जोतिषी विमानवास ते, प्रत्यक्ष ही दीसंत।
छठे उदेशै आदि में, प्रश्न तास पूछंत॥

१, २. अनन्तरोद्देशकेऽन्तिमसूत्रेषु 'असंखेज्जेसु णं भंते ! जाव जोतिसियविमाणियावासेसु' तथा 'संखेज्जेसु णं भंते ! विमाणियावाससयसहस्सेसु' इत्येतदधीतं, तेषु च ज्योतिष्कविमानावासाः प्रत्यक्षा एवेति तद्गतदर्शनं प्रतीत्य तथा 'जावंते' इति यदुक्तमादिगाथायां तच्च दर्शयितुमाह— (वृ०-प० ७७)

*हो जिनदेव ! प्रभुजी ! आपरा वचनामृत म्हानै वालहा लागै हो लाल।
समय वच प्यारा लागै हो लाल, संवेग मुण्यां थो जागै हो लाल॥ (ध्रुपदं)

३. हे प्रभु ! सूर्य ऊगतो जी, गगन रह्यो दीसंत।
आथमतो पिण एतलो जी, सूर्य दृष्टि आवंत ?

३. जावइयाओ णं भंते ! ओवासंतराओ उदयंते सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छति, अत्थमंते वि य णं सूरिए तावतियाओ चेव ओवासंतराओ चक्खुप्फासं हव्वमागच्छति ?

४. जिन कहै—हंता गोयमा ! जो, गगनंतर थी जोय।
ऊगंतो दीसै जितो रवि, आथमतो पिण होय॥

४. हंता गोयमा ! जावइयाओ णं ओवासंतराओ उदयंते सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छति, अत्थमंते वि जाव हव्वमागच्छति। (श० १।२५६)

५. हे प्रभु ! ऊगंतो रवि जी, सगली दिशि जे खेत।
करै प्रकाश उद्योत बलि जी, अल्प तथा बहु तेथ॥

५. जावइयं णं भंते ! खेत्तं उदयंते सूरिए आयवेणं सव्वओ समंता ओभासेइ उज्जोएइ तवेइ पभासेइ,

६. तपति—शीत दूरो करै बलि, प्रभासयति नुं अर्थ।
टालै शीत विशेष थो जी, तिम आथमतोऽपि तदर्थ॥

६. 'तपति' अपनीतशीतं करोति ···प्रभासयति अतितापयोगाद्विशेषतोऽपनीतशीतं विधत्ते। (वृ०-प० ७८)

७. तितै क्षेत्र सर्व्वओ समंता आतप स्यूं अवभास।
उज्जोएइ ? तवेइ ? पभासेइ ? जिन कहै हंता तास॥

७. अत्थमंते वि य णं सूरिए तावइयं चेव खेत्तं आयवेणं सव्वओ समंता ओभासेइ ? उज्जोएइ ? तवेइ ? पभासेइ ?
हंता गोयमा ! जावतियं णं खेत्तं जाव पभासेइ।
(श० १।२५७)

८. ते प्रभु ! स्यूं फर्स्यो तिको जी ? अवभासै छै खेत्त ?।
कै अवभासै अफर्शियो जी, जाव छहुं दिशि तेथ[1]॥

८. तं भंते ! किं पुट्ठं ओभासेइ ? अपुट्ठं ओभासेइ जाव छद्दिसिं ओभासेई। (श० १।२५८-२६६)

९. इम उद्योत करै घणूं जी, तपै प्रभासै एम।
यावत् नियमा षट् दिशै जी, फर्स्यो प्रकासे तेम॥

९. एवं—उज्जोवेइ तवेइ पभासेइ। (श० १।२६७)

सोरठा

१०. फर्स्यो छै जे खेत, तेहिज अवभासै कह्यो।
हिवै फर्शणा एथ, तेहिज देखाडै अछै॥

---

१. अंग सुत्ताणि भाग २ शतक १ सूत्र २५८ से जाव की पूर्ति कर पाठ बढ़ाया गया है। यह क्रम २६६ सूत्र तक है। जोड़ संक्षिप्त पाठ के आधार पर की गई है।

*लय—रात रा अमला में होकौ गहिरो गूंजे हो लाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. *हे प्रभु ! सगली दिशि विषै जी, सर्व आतप करी तेथ।
फर्शण काल समय विषै जी, जितो क्षेत्र फर्शेत ।।

१२. फर्शण लागो तेहनैं जी, फर्श्यो कहिजै स्वाम ?
जिन कहै हंता गोयमा जी, इम सहु बात तमाम ।।

१३. ते प्रभु ! स्यूं लागो फर्शवा जी?, फर्शै क्षेत्र उदंत।
जावत् नियमा षट् दिशै जी, फर्शण लागो ते फर्शत ।।

१४. हे प्रभु ! लोक ना अंत नैं जी, अलोकांत फर्शत।
अलोकांत नैं लोकांत फर्शै ? हंता जिन भाखंत ।।

१५ ते प्रभु ! स्यूं लागो फर्शवा जी, फर्शै छै जिनराय ?
जावत् नियमा षट् दिशे जी, फर्शण लागो ते फर्शाय ।।

१६. द्वीप तणां छेहड़ा प्रते जी, फर्शै सागर - अंत।
सागर-अंत नैं द्वीपांत फर्शै ? हंता जिन-वच तत ।।

१७. यावत् नियमा षट् दिशै जी, हेठो जोजन हजार।
द्वीप समुद्र अछै सही, फर्शै ऊर्द्ध अधो दिशि च्यार ।।

१८. इण प्रकार करि जाणियै जी, उदक नो अंत नावंत।
छिद्र ना अंत नैं वस्त्रांत फर्शै, छायांत नैं धूप - अंत ।।

१९. जावत् नियमा षट् दिशै जी, गगनपंखी प्रमुख छाय।
आतप बीच रही थकी जी, इम षट दिशि फर्शाय ।।

२०. स्पर्शन ना अधिकार थी जी, प्राणातिपातादि पापस्थान।
प्रभव कर्म नीं फर्शणा नों हिव प्रश्न-विधान ।।

२१. अत्थि भंते ! जीवा भणी जी, प्राणातिपात नीं जोय।
किरिया—कर्म हुवै सही जी ? जिन कहै हंता सोय ।।

११, १२. से नूणं भंते ! सव्वंति सव्वावंति फुसमाणकाल-समयंसि जावतियं खेत्तं फुसइ तावतियं फुसमाणे पुट्ठे त्ति वत्तव्वं सिया ?
हंता गोयमा ! सव्वंति जाव वत्तव्वं सिया।
(श० १।२६८)

१३. तं भंते ! किं पुट्ठं फुसइ ? अपुट्ठं फुसइ ? गोयमा ! पुट्ठं फुसइ, नो अपुट्ठं जाव नियमा छद्दिसिं फुसइ।
(श० १।२६९)

१४. लोयंते भंते ! अलोयंतं फुसइ ? अलोयंते वि लोयंतं फुसइ ?
हंता गोयमा ! लोयंते अलोयंतं फुसइ, अलोयंते वि लोयंतं फुसइ। (श० १।२७०)

१५. तं भंते ! किं पुट्ठं फुसइ ? अपुट्ठं फुसइ ?
गोयमा ! पुट्ठं फुसइ, नो अपुट्ठं जाव नियमा छद्दिसिं फुसइ। (श० १।२७१)

१६. दीवंते भंते ! सागरंतं फुसइ ? सागरंते वि दीवंतं फुसइ ?
हंता गोयमा ! दीवंते सागरंतं फुसइ, सागरंते वि दीवंतं फुसइ जाव नियमा छद्दिसिं फुसइ। (श० १।२७२)

१७. योजनसहस्रावगाढा द्वीपाश्च समुद्राश्च भवन्ति, तत-श्चोपरितनानधस्तनांश्च द्वीपसमुद्रप्रदेशानाश्रित्य ऊर्ध्वाधोदिग्द्वयस्य स्पर्शना वाच्या, पूर्वादिदिशां तु प्रतीतैव, समन्ततस्तेषामवस्थानात्। (वृ०-प० ७९)

१८. एवं एएणं अभिलावेणं उदयंते पोयंतं छिद्दंते दूसंतं छायंते आयवंतं जाव नियमा छद्दिसिं फुसइ।
(श० १।२७३-२७५)

१९. 'छायंते आयवंतं' ति इह छायाभेदेन षड्दिग्भावनैवम्—आतपे व्योमवर्तिपक्षिप्रभृतिद्रव्यस्य या छाया तदन्त आतपान्तं चतसृषु दिक्षु स्पृशति तथा तस्या एव छायाया भूमेः सकाशात्तद्द्रव्यं यावदुच्छ्रयोऽस्ति, ततश्च छायान्त आतपान्तमूर्ध्वमधश्च स्पृशति। (वृ०-प० ७९)

२०. स्पर्शनाऽधिकारादेव च प्राणातिपातादिपापस्थानप्रभव-कर्मस्पर्शनामधिकृत्याह— (वृ०-प० ७९)

२१. अत्थि णं भंते ! जीवाणं पाणाइवाए णं किरिया कज्जइ ?
हंता अत्थि। (श० १।२७६)
'किरिया कज्जइ' त्ति, क्रियत इति क्रिया—कर्म सा क्रियते। (वृ०-प० ८०)

*लय—रात रा अमला में होकौ गहिरो गूंजे हो लाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. प्रभु ! ते किरिया स्यूं फर्श्या थी, कै अणफर्श्या होय ?
जावत् निर्व्याघात तैं जी, षट दिशि फर्शी जोय ।।

२३. व्याघात—अलोक नैडो तिहां जी, ते आश्री अवधार ।
कदा तीन कदा चिउं दिशे जी, ह्वै पंच दिशि किवार ।।

२४. तिका क्रिया प्रभु ! स्यूं ह्वै कीधी, कै अणकीधी थाय ?
जिन कहै—क्रिया कीधी हुवै छै, अणकीधी हुवै नांय ।।

२५. तिका क्रिया प्रभु आप री कीधी, कै पर कीधी होय ?
कै आतम पर बिहुं नीं कीधी, क्रिया लागै ए जोय ?।।

२६. जिन कहै—आपरी कीधी लागै, पर नीं कीधी न लागंत ?
वलि बिहुं नीं कीधी नहिं लागै, फुन गोयम पूछंत ।।

२७. तिका क्रिया प्रभु ! स्यूं आनुपूर्वी, अनुक्रम कीधी लागंत ?
कै अनानुपूर्वी कीधी लागै छै, अनुक्रम विण उपजंत ?।।

२८. जिन कहै आनुपूर्वी ते अनुक्रम, कीधी क्रिया लागंत ।
अनुक्रम विण अनानुपूर्वी कीधी क्रिया नवि हुंत ।।

२९. गये काले जे क्रिया कीधी छै, संप्रति काल करंत ।
काल अनागत क्रिया करिस्यै, ते सहु अनुक्रम हुंत ।।

३०. हे भगवंत ! नैरइया नै प्राणातिपात नीं जोय ।
किरिया—कर्म हुवै सही जी ? जिन कहै—हंता सोय ।।

३१. प्रभु ! ते किरिया स्यूं फर्श्या थी, कै अणफर्श्या होय ?
जावत् निर्व्याघात तैं जी, षट दिशि फर्शी जोय ।।

३२. तिका क्रिया प्रभु ! स्यूं ह्वै कीधी, कै अणकीधी थाय ?
जाव आनुपूर्वी कीधी हुवै, तीनूं काल रै मांय ।।

३३. जिम नेरइया तिम एकेंद्री वरजी, भणवूं विमाणिक अंत ।
एकेंद्री नैं जीव तणी पर, कहिवूं सहु विरतंत ।।

३४ प्राणातिपात कह्यो छै जिह विध, तिम मृषावाद पिछाण ।
अदत्त मिथुन परिग्रह जावत्, मिच्छादंसणसल्य जाण ।।

३५. इम ए अठारै पाप - स्थानक, चउवीस दंडके जान ।
सेवं भंते कही वीर वंदी गोयम विचरै धरता ध्यान ।।

३६. सोला ना अंक नो देश कह्यो ए, सरस सतरमी ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय प्रसादे, 'जय-जश' संपति माल ।।

२२, २३. सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जइ ? अपुट्ठा कज्जइ ?
गोयमा ! पुट्ठा कज्जइ, नो अपुट्ठा कज्जइ जाव निव्वाघाएणं छद्दिसिं, वाघायं पडुच्च सिया तिदिसिं, सिया चउदिसिं, सिया पंचदिसिं । (श० १।२७७)

२४. सा भंते ! किं कडा कज्जइ ? अकडा कज्जइ ?
गोयमा ! कडा कज्जइ, नो अकडा कज्जइ ।
(श० १।२७८)

२५. सा भंते ! किं अत्तकडा कज्जइ ? परकडा कज्जइ ?
तदुभयकडा कज्जइ ?

२६. गोयमा ! अत्तकडा कज्जइ, नो परकडा कज्जइ, नो तदुभयकडा कज्जइ । (श० १।२७९)

२७-२९. सा भंते किं आणुपुव्वि कडा कज्जइ ? अणाणुपुव्वि कडा कज्जइ ?
गोयमा ! आणुपुव्वि कडा कज्जइ, नो अणाणुपुव्वि कडा कज्जइ । जा य कडा, जा य कज्जइ, जा य कज्जिस्सइ, सव्वा सा आणुपुव्वि कडा, नो अणाणुपुव्वि कडा ति वत्तव्वं सिया । (श० १।२८०)

३०. अत्थि णं भंते ! नेरइयाणं पाणाइवायकिरिया कज्जइ ?
हंता अत्थि । (श० १।२८१)

३१. सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जइ ? अपुट्ठा कज्जइ ?
गोयमा !पुट्ठा कज्जइ, नो अपुट्ठा कज्जइ जाव नियमा छद्दिसिं कज्जइ । (श० १।२८२)

३२. सा भंते ! किं कडा कज्जइ ? अकडा कज्जइ ? गोयमा !
कडा कज्जइ, नो अकडा कज्जइ । (श० १।२८३)
तं चेव जाव नो अणाणुपुव्वि कडा ति वत्तव्वं सिया ।
(श० १।२८४)

३३. जहा नेरइया तहा एगिंदियवज्जा भाणियव्वा जाव वेमाणिया । एगिंदिया जहा जीवा तहा भाणियव्वा ।
(श० १।२८५)

३४, ३५. जहा पाणाइवाए तहा मुसावाए, तहा अदिण्णादाणे मेहुणे, परिग्गहे, कोहे जाव मिच्छादंसणसल्ले—एवं एए अट्ठारस । चउवीसं दंडगा भाणियव्वा ।
(श० १।२८६)

३५. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदति जाव विहरति । (श० १।२८७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : १८

दूहा

१. आखी कर्म-परूपणा, ते शाश्वत अतएव।
शाश्वत लोक-अलोक नां, रोह प्रश्न पूछेह।।

*जय-जयकारी हो ज्ञान जिनेंद्र नो रे, जय-जश करण मुणंद।
जय-जशकारी हो प्रश्नज पूछिया रे, जय-जश उत्तर आनंद।।ध्रु०।।

२. तिण कालै नैं तिण समा नैं विषै, भगवंत श्री महावीर।
सीस रोह नामैं अणगार छै, भद्र-प्रकृति गुण-हीर।।

३. प्रकृति स्वभावे मृदु मार्दव मुनि, प्रकृति स्वभावे विनीत।
प्रकृति स्वभावे क्रोध उदय नथी, प्रबलपणैं ए रीत।।

४. क्रोध मान माया लोभ पातला, मृदु मार्दव संपन्न।
अहंकार नैं अति ही जोनवूं, गुरु उपदेश थी जन्न।।

५. सुगुरु समीप चरण तलालीन छै, गुरु दत्त सीख आराध।
गुरु सेवा सुविनीतपणुं घणूं, सखरी भाव समाध।।

६. भगवंत श्री महावीर थकी मुनि, नहीं अति दूर नजीक।
जानु ऊर्द्ध अधोसिर ऊकडू, ध्यान कोठे तहतीक।।

७. संजम तप कर आतम भावनो, रोह मुनि विचरेह।
तब ते रोह भगवंत अणगार नैं, प्रवर्ती श्रद्धा एह।।

८. जावत् पूछै पहिलां लोक छै, पछै अलोकज होय?
प्रथम अलोक पछै प्रभु लोक छै?, उत्पत्ति आश्री जोय।।

९. जिन कहै—रोहा लोक-अलोक ए, पहिला पिण छै एह।
पाछै पिण ए दोनूं शाश्वता, आनुपूर्वी न कहेह।।

१०. हे प्रभुजी! पहिलां ए जीव छै, पाछै अजीव सोय?
प्रथम अजीव पछै ए जीव छै, लोक-अलोक ज्यूं जोय।।

११. इम भवसिद्धिया अभवसिद्धिया, सिद्धी असिद्धी स्थान।
ते मांहै सिद्ध असिद्ध ए जीव छै, शाश्वत दोनूं पिछान।।

*लय—साधूजी नगरी आया सदा भला रे

१. एवं तावद्गौतमद्वारेण कर्म प्ररूपितं, तच्च प्रवाहतः शाश्वतमित्यतः शाश्वतानेव लोकादिभावान् रोहकाभिधानमुनिपुङ्गवद्वारेण प्ररूपयितुं प्रस्तावयन्नाह—
(वृ०-प० ८०)

२, ३. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी रोहे णामं अणगारे पगइभद्दए पगइमउए[1] पगइविणीए पगइउवसंते

२, ३. 'पगइभद्दए' त्ति स्वभावत एव परोपकारकरणशीलः, 'पगइमउए' त्ति स्वभावत एव भावमार्दविकः, अत एव 'पगइविणीयए' त्ति तथा 'पगइउवसंते' त्ति क्रोधोदयाभावात्। (वृ०-प० ८१)

४. पगइपयणुकोहमाणमायालोभे मिउमद्दवसंपन्ने

मृदु यन्मार्दवम्—अत्यर्थमहङ्कृतिजयस्तत्संपन्नः—प्राप्तो गुरूपदेशाद् यः स तथा।
(वृ०-प० ८१)

५. अल्लीणे विणीए
'आलीणे' त्ति गुरुसमाश्रितः संलीनो वा, अनुपतापको गुरुशिक्षागुणात्, 'विणीए' त्ति गुरुसेवागुणात्।
(वृ०-प० ८१)

६-८. समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते उड्ढंजाणू अहोसिरे झाण-कोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तते णं से रोहे अणगारे जायसड्ढे जाव पज्जुवासमाणे एवं वदासी—
(श० १।२८८, २८९)

८, ९. पुव्वि भंते! लोए, पच्छा अलोए? पुव्वि अलोए, पच्छा लोए? रोहा! लोए य अलोए य पुव्वि पेते, पच्छा पेते—दो वेते सासया भावा, अणाणुपुव्वी एसा रोहा! (श० १।२९०)

१०, ११. पुव्वि भंते! जीवा, पच्छा अजीवा? पुव्वि अजीवा पच्छा जीवा? जहेव लोए य अलोए य तहेव जीवा य अजीवा य। एवं भवसिद्धिया य अभवसिद्धिया य सिद्धी असिद्धी सिद्धा असिद्धा। (श० १।२९१-२९४)

१. यह पाठान्तर से लिया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. हे प्रभुजी ! पहिलां ए अंड छै, पछै कुक्कुडी जेह ।
कै प्रथम कुक्कुडी पाछै अंड छै, हिव जिन उत्तर देह ।।

१३. रोहा ! ते अंड किण सूं ऊपनों ? कुक्कुडी सूं भगवंत !
तिका कुक्कुडी किण सूं ऊपनी ?. अंड थकी हे भदंत !

१४. इमहिज रोहा ! ते अंड कुक्कुडी, पहिलां पछै पिण एह ।
ए दोनूई शाश्वत भाव छै, अनानुपूर्वी कहेह ।।

१५. पहिलां हे प्रभुजी ! लोकांत छै, पछै अलोकांत थाय ?
पहिलां अलोकांत पछै लोकांत छै ? रोहा ! जाव आनुपूर्वी नांय ।।

१६. पहिलां हे प्रभुजी ! लोकांत छै, पछै सप्तम आकाश ।
सप्तमी नरक हेठे आकाश छै ? ए पूछा मुविमास ।।

१७. जिन कहै रोहा ! लोक नों अंत ते, सप्तम पृथ्वी आकाश ।
पूर्व पछै पिण ए भाव शाश्वता, जाव अनानुपूर्वी तास ।।

१८. इम लोकांत सप्तम तणुवाय ते, इम लोकांत घनवाय ।
इम लोकांत सप्तम धनोदधि, सप्तम पृथ्वी कहाय ।।

१९. इम लोकांत संघाते जोडवो, तम[1]-पृथ्वी-तल आकाश ।
तणुवाय घनवाय तम नों घनोदधि, इम तम पृथ्वी विमास ।।

२०. एम पंचमी जावत् धुर तणो, आकाश नैं तणुवाय ।
घनवाय घनोदधि नैं बलि पृथ्वी, लोकांत साथ जुडाय ।।

२१. बलि लोकांत संघाते जोडवा, द्वीप समुद्र असंख्यात ।
वासा—भरतक्षेत्रादिक सात छै, दंडक चउवीस ख्यात ।।

२२. अस्तिकाय पंच बलि समय नैं, कर्म अष्ट पट लेस ।
दृष्टि तीन बलि दर्शण च्यार नैं, ज्ञान पंच सुविशेष ।।

२३. चिहुं संज्ञा बलि पंच शरीर नैं, बलि त्रिण जोग विख्यात ।
प्रवर दोय उपयोग प्रतै वली, जोडवा लोकांत साथ ।।

२४. द्रव्य प्रदेश अनै पज्जवा वली, ए तिहुं पद नों जेह ।
अर्थ धर्मसीह कीधो छै तिको, सांभलजो चित देह ।।

२५. जीव अजीव बिहुं ए द्रव्य कह्या, प्रदेश बिहुं नां जाण ।
पज्जवा जीव अजीव तणां वली, अर्थ कियो इम छाण ।।

२६. वृत्तिकार कह्यो द्रव्य ते षट् अछै, कह्या प्रदेश अनंत ।
पज्जव अनंता ए अर्थ वृत्ति में, अद्धा काल तिहुं हुंत ।।

२७. ए सहु लोकांत साथै जोडवा, पहिलां लोकांत एह ।
पाछै ए सहु पूछा जूजूइ, उत्तर पूर्ववत् जेह ।।

---

१. छठी तमा पृथ्वी ।

१२-१४. पुव्वि भंते ! अंडए, पच्छा कुक्कुडी ? पुव्वि कुक्कुडी, पच्छा अंडए ? रोहा ! से णं अंडए कओ ?
भयवं ! कुक्कुडीओ ।
सा णं कुक्कुडी कओ ?
भंते ! अंडयाओ ।
एवामेव रोहा ! से य अंडए, सा य कुक्कुडी पुव्वि पेते, पच्छा पेते—दो वेते सासया भावा अणाणुपुव्वी एसा रोहा ! (श० १।२९५)

१५. पुव्वि भंते ! लोयंते, पच्छा अलोयंते ? पुव्वि अलोयंते, पच्छा लोयंते ? रोहा! लोयंते य अलोयंते य जाव अणाणुपुव्वी एसा रोहा ! (श० १।२९६)

१६. पुव्वि भंते ! लोयंते, पच्छा सत्तमे ओवासंतरे ? पुव्वि सत्तमे ओवासंतरे, पच्छा लोयंते ?

१७. रोहा ! लोयंते य सत्तमे ओवासंतरे य पुव्वि पेते, जाव अणाणुपुव्वी एसा रोहा ? (श० १।२९७)

१८-२४. एवं लोयंते य सत्तमे य तणुवाए । एवं घणवाए, घणोदही, सत्तमा पुढवी । एवं लोयंते एक्केक्केणं संजोएतव्वे इमेहिं ठाणेहिं, तं जहा—
ओवास-वात-घणउदहि-पुढवि-दीवा य सागरा वासा ।
नेरइयादि अत्थिय, समया कम्माइ लेस्साओ ।।१।।
दिट्ठी दंसण-नाणे, सण्ण-सरीरा य जोगे-उवओगे ।
दव्व-पएसा-पज्जव, अद्धा किं पुव्वि लोयंते ।।२।।
(श० १।२९८ संगहणी-गाहा)

२६. द्रव्याणि षट् प्रदेशा अनन्ताः पर्यवा अनन्ता एव 'अद्ध' त्ति अतीताद्धा अनागताद्धा सर्वाद्धा चेति ।
(वृ०-प० ८१, ८२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८. पहिलां हे प्रभुजी ! लोकांत छै, पाछै ए सर्व काल[1]।
लोकांत सर्व काल वे शाश्वता, अनानुपूर्वी न्हाल ।।

२९. इम अलोकांत संघाते जोडवा, वलि रोह पूछै ताय।
हे प्रभु ! पहिला सप्तम आकाश छै, पछै सप्तम तणुवाय ?

३०. इम सप्तम आकाशंतर तिको, जोडवो सर्व संघात।
जावत् सर्व काल लग जाणवो, वारू रीत विख्यात ।।

३१. प्रभु ! पहिलां सप्तम तणुवाय छै, पछै सप्तम घनवाय।
ए पिण तिणहिज विध कहिवो सही, जाव काल सर्व ताय ।।

३२. इम ऊपरलो इक-इक जोडवो, तेहथी जे-जे सुरीत।
हेठलूं ते-ते सघलूं छोडवूं, जावत् काल अतीत ।।

३३. हे प्रभु ! पहिलां अनागत काल छै, पछै सर्व काल हुंत।
जाव अनानुपूर्वी छै रोहा ! शाश्वत भाव रहंत ।।

३४. सेवं भंते इम कहि रोह मुनि, ध्यान ध्यावै इक चित्त।
लोक पदार्थ नां प्रस्ताव थी, पूछै गोयम लोक-स्थित्त ।।

३५. अंक सोलमा नों ए देश छै, ढाल अठारमीं पत्थ।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय प्रसाद थी, 'जय-जश' सुख संपत्त ।।

२८. पुव्वि भंते ! लोयंते पच्छा सव्वद्धा ? पुव्वि सव्वद्धा पच्छा लोयंते ? रोहा ! लोयंते य सव्वद्धा य पुव्वि पेते, पच्छा पेते—दो वेते सासया भावा, अणाणुपुव्वी एसा रोहा !
(श० १।३०१)

२९. जहा लोयंतेणं संजोइया सव्वे ठाणा एते, एवं अलोयंतेण वि संजोएतव्वा सव्वे। पुव्वि भंते ! सत्तमे ओवासंतरे, पच्छा सत्तमे तणुवाए ? (श० १।३०२, ३०३)

३०. एवं सत्तमं ओवासंतरं सव्वेहिं समं संजोएतव्वं जाव सव्वद्धाए। (श० १।३०४)

३१. पुव्वि भंते ! सत्तमे तणुवाए पच्छा सत्तमे घणवाए ?
एवं तहेव नेयव्वं जाव सव्वद्धा। (श० १।३०५, ३०६)

३२, ३३. एवं उवरिल्लं एक्केक्कं संजोयंतेणं, जो जो हिट्ठिल्लो तं तं छड्डंतेणं नेयव्वं जाव अतीत-अणागतद्धा, पच्छा सव्वद्धा जाव अणाणुपुव्वी एसा रोहा ?
(श० १।३०७)

३४. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ।
(श० १।३०८)

ढाल : १९

दूहा

१. हे भदंत ! आमंत्रि इम, भगवंत गौतम स्वाम।
विनय करी श्री वीर नै, पूछै प्रश्नज ताम ।।

*प्रभु प्यारा, वचनामृत देव जिनेंद्र । (ध्रुपदं)

२. कति विध प्रभु लोक नी स्थित्त, वीर कहै अष्ट विध ठित्त।
तिका कहियै छै अवितत्थ रे ।।

३. आकाश प्रतिष्ठित वाय, तनुवाय घनवाय कहाय।
तिकै रह्या आकाश रै मांय ।।

४. वाय प्रतिष्ठित उदधि वखाणी, घनोदधि घन जिसो पाणी।
तनु-घन-वाय ऊपरि जाणी ।।

१. भंतेति ! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं जाव एवं वयासी—
(श० १।३०९)

२. कतिविहा णं भंते ! लोयट्ठिती पण्णत्ता ?
गोयमा ! अट्ठविहा लोयट्ठिती पण्णत्ता,

३. तं जहा—आगासपइट्ठिए वाए।
आकाशप्रतिष्ठितो वायुः—तनुवातघनवातरूपः, तस्यावकाशान्तरोपरि स्थितत्वात्। (वृ०-प० ८२)

४. वायपइट्ठिए उदही।
वातप्रतिष्ठित उदधिः—घनोदधिस्तनुवातघनवातोपरि स्थितत्वात्। (वृ०-प० ८२)

---

१. अंग सुत्ताणि भाग २ शतक १ उद्देशक ६ सूत्र २९९ और ३०० की जोड़ उपलब्ध नहीं है। ये पाठ यहां बढ़ाए हुए हैं। वृत्ति में यह पाठ नहीं लिया गया है।

*लय—राणी भाषै सुण रे सूडा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. उदधि प्रतिष्ठिता पृथ्वी जाणं, ते रत्नप्रभादि पिछाणं।
बहुलपणां नी अपेक्षा वखाणं।।

६. बीजूं—पृथ्वी ईषत् प्राग्भारा, तिका रही आकाश आधारा।
इहां नहीं छै तसु अधिकारा।।

७. पृथ्वी प्रतिष्ठिता अवलोय, त्रस स्थावर प्राणी होय।
ते पिण बहुलपणै वच जोय।।

८. बीजूं—आकाश पर्वत विमाण, तसुं उपरि पिण छै प्राण।
न कह्यो तसुं कथन वखाण।।

९. तथा अजीव पुद्गल शरीराद, जीव प्रतिष्ठिता संवाद।
रह्या जीव विषै ते बाध।।

१०. तथा जीवा संसारिक जाणं, रह्या कर्म विषै पहिछाणं।
ते कर्म अनुदय माणं।।

११. कहै अन्य आचार्य व्यवस्थित, जीवा कर्म करीनैं प्रतिष्ठित।
नरकादिक भावै अवस्थित।।

१२. जीवा कम्मपइट्ठिया ताह्यो, एतो टीका में अर्थ बतायो।
हिव कहै धर्मसी वायो।।

१३. चउ गति में रह्या जीव धार, तिके कर्म आधार विचार।
थया आधारभूत तिवार।।

१४. अजीवा ते जीव-संग्रहिता, मन भाषा नां पुद्गल वहिता।
त्यां नैं जीव संग्रहिता कहिता।।

१५. छठा सातमां बोल रै मांह्यो, यां में कवण अंतर कहिवायो?
तसुं उत्तर ए वृत्ति मांह्यो।।

१६. छठै वचन आधार आधेय, सप्तम संग्राह्य संग्राहक लेय।
इहां पिण छै आधार आधेय।।

१७. संग्राह्य ग्रहिवा योग्य जाण, मन भाषादि पुद्गल माण।
एतो आधेय ते पहिछाण।।

१८. संग्राहक ते ग्रहणहार, ए तो जीव द्रव्य सुविचार।
तिण सुं जीव नैं कहियै आधार।।

१९. छठै बोल कर्म आधार, तिहां जीव रह्यो सुविचार।
तिण सुं जीव आधेय तिवार।।

२०. सातमें बोल जीव आधार, तिण ग्रह्या भाषादि प्रकार।
तिण सुं पुद्गल आधेय विचार।।

२१. आठमैं जीवा कम्म-संगहिया, जीव संसारीक नैं कहिया।
उदय प्राप्त कर्म वस रहिया।।

५. उदहिपइट्ठिया पुढवी।

५, ६. उदधिप्रतिष्ठिता पृथिवी, घनोदधीनामुपरि स्थितत्वात् रत्नप्रभादीनां, बाहुल्यापेक्षया चेदमुक्तम्, अन्यथा ईषत्प्राग्भारा पृथिवी आकाशप्रतिष्ठितैव। (वृ०-प० ८२)

७. पुढविपइट्ठिया तसथावरा पाणा।

७, ८. पृथिवीप्रतिष्ठितास्त्रसस्थावराः प्राणाः, इदमपि प्रायिकमेव, अन्यथाऽऽकाशपर्वतविमानप्रतिष्ठिता अपि ते सन्तीति। (वृ०-प० ८२)

९. अजीवा जीवपइट्ठिया।

९. अजीवाः—शरीरादिपुद्गलरूपा जीवप्रतिष्ठिताः, जीवेषु तेषां स्थितत्वात्। (वृ०-प० ८२)

१०. जीवा कम्मपइट्ठिया।

१०, ११. जीवाः कर्मप्रतिष्ठिताः, कर्मसु—अनुदयावस्थकर्मपुद्गलसमुदायरूपेषु संसारिजीवानामाश्रितत्वात्, अन्ये त्वाहुः—जीवाः कर्मभिः प्रतिष्ठिताः। नारकादिभावेन अवस्थिताः। (वृ०-प० ८२)

१४. अजीवा जीवसंगहिया।

अजीवा जीवसंगृहीताः, मनोभाषादि पुद्गलानां जीवैः संगृहीतत्वात्। (वृ०-प० ८२)

१५, १६. जीवाः जीवप्रतिष्ठितास्तथाऽजीवा जीवसंगृहीता इत्येतयोः को भेदः? उच्यते, पूर्वस्मिन् वाक्ये आधाराधेयभाव उक्तः उत्तरे तु संग्राह्यसंग्राहकभाव इति भेदः। (वृ०-प० ८२)

२१. जीवा कम्मसंगहिया। (श० १।३१०)

जीवाः कर्मसंगृहीताः, संसारिजीवानामुदयप्राप्तकर्मवशवर्त्तित्वात्। (वृ०-प० ८२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. जिको जीव कर्म वश लहियै, तिको कर्म प्रतिष्ठित रहियै।
जिम घट विषै रूपादि कहियै॥

२३. ए पिण आधार नै आधेयो, कर्मोदयवश वर्त्ती ग्रहेयो।
ए तो अर्थ वृत्ति थी कहेयो॥

२४. छठै अनुदय कर्म वसै जीवा, अष्टम उदय कर्म विषै कहिवा।
ए तो अर्थ विचार अतीवा॥

२५. किण अर्थे प्रभु! इम कहिया, अष्टविध लोक स्थिति रहिया।
जाव जीवा कर्म-संग्रहिया॥

२६. जिन भाखै यथा दृष्टंत, कोई पुरुष धरी मन खंत।
दीवडी वायु करी पूरंत॥

२७. ऊपर सूं तेहनों मुख बंधै, पछै वीच वांधी नै संधै।
ऊपरली गंठ खोलि निकंदै॥

२८. ऊपरला देश नूं काढै वाय, तेहिज ऊपरला देश रै मांय।
जल सूं भर पूरे ताय॥

२९. पछै ऊपरले मुख ताय, गांठ वांधै वांधी अधिकाय।
पछै विचली गांठ खोलाय॥

३०. अहो गौतम ते अपकाय, वाउकाय ऊपर रहै ताय?
गोतम कहै हंता रहिवाय॥

३१. तिण अर्थ करी इम कहिया, जाव जीवा कर्म-संग्रहिया।
गगन घन वायोदधि पृथ्वी रहिया॥

३२. दूजो दृष्टांत कोइ पुरुष ताय, मशक वायु भरी अधिकाय।
कडि बांधै पैसे जल मांय॥

३३. पाणी अगाध तिरयो नहिं जाय, पार रहित पाठांतर थाय।
पुरुष प्रमाण थी अधिकाय॥

३४. एहवो गोतम! ते नर प्राय, अपकाय ऊपर रहै जाय?
गोयम कहै हंता रहिवाय॥

३५. इण दृष्टांत करि इम कथिता, लोक स्थिति अष्टविध भणिता।
जाव जीवा कर्म-संग्रहिता॥

३६. कह्यो लोक स्थिति अधिकार, हिव तेहिज तणो विस्तार।
वारू गोयम प्रश्न उदार॥

३७. प्रभु जीव कर्मादि जोय, अन्योन्य बंध्या अवलोय।
संवद्ध परस्पर होय॥

३८. किण हेतु बंध्या कहिवाय? अन्योन्य पुट्ठा इण न्याय।
ओगाढ़ा लोलीभूत थाय॥

२२, २३. ये च यद्वशास्ते तत्र प्रतिष्ठिताः, यथा घटे रूपादय इत्येवमिहाप्याधाराधेयता दृश्येति।
(वृ०-प० ८२)

२५-३०. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—अट्ठविहा लोयट्ठिती जाव जीवा कम्मसंगहिया?
गोयमा! से जहाणामए केइ पुरिसे वत्थिमाडोवेइ, वत्थिमाडोवेत्ता उप्पिं सितं बंधइ, बंधित्ता मज्झे गंठिं बंधइ, बंधित्ता उवरिल्लं गंठिं मुयइ, मुइत्ता उवरिल्लं देसं वामेइ, वामेत्ता उवरिल्लं देसं आउयायस्स पूरेइ, पूरेत्ता उप्पिं सितं बंधइ, बंधित्ता मज्झिल्लं गंठिं मुयइ। से नूणं गोयमा! से आउयाए तस्स वाउयायस्स उप्पिं उवरिमतले चिट्ठइ?
हंता चिट्ठइ।

३१. से तेणट्ठेण गोयमा! एवं वुच्चइ—अट्ठविहा लोयट्ठिती जाव जीवा कम्मसंगहिया।

३२, ३३. से जहा वा केइ पुरिसे वत्थिमाडोवेइ, वत्थिमाडोवेत्ता कडीए बंधइ, बंधित्ता अत्थाहमतारमपोरुसियंसि उदगंसि ओगाहेज्जा।

३३. पाठान्तरेणापारं—पारवर्जितं। (वृ०-प० ८२)

३४, ३५. से नूणं गोयमा! से पुरिसे तस्स आउयायस्स उवरिमतले चिट्ठइ?
हंता चिट्ठइ।
एवं वा अट्ठविहा लोयट्ठिई जाव जीवा कम्मसंगहिया।
(श० १।३११)

३७-४०. अत्थि णं भंते! जीवा य पोग्गला य अण्णमण्णबद्धा, अण्णमण्णपुट्ठा, अण्णमण्णमोगाढ़ा, अण्णमण्णसिणेहपडिबद्धा, अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठंति? हंता अत्थि।
(श० १।३१२)

३७, ३८. 'पोग्गले' ति कर्मशरीरादिपुद्गलाः 'अण्णमण्णबद्ध' त्ति अन्योऽन्यं जीवाः पुद्गलानां पुद्गलाश्च जीवानां संबद्धा इत्यर्थः, कथं बद्धाः इत्याह—'अन्नमन्नपुट्ठा' पूर्वं स्पर्शनामात्रेणान्योऽन्यं स्पृष्टास्ततोऽन्योऽन्यं बद्धाः, गाढ़तरं संबद्धा इत्यर्थः, 'अण्णमण्णमोगाढ़' त्ति परस्परेण लोलीभावं गताः। (वृ०-प० ८३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३९. चीकणे तनु जिम रज लागै, तिम द्वेष अनै अनुरागै।
बंध्या—सिणेह-पडिवद्धा सागै॥

३९. अन्योऽन्यं स्नेहप्रतिबद्धा इति, अत्र रागादिरूपः स्नेहः, यदाह—

स्नेहाभ्यक्तशरीरस्य रेणुना श्लिष्यते यथा गात्रम्।
रागद्वेषक्लिन्नस्य कर्मबन्धो भवत्येवम्॥
(वृ०-प० ८३)

४०. समुदाय - भावे मांहोमाय, रहै छै जीव पुद्गल ताय?
हंता रहै छै ए जिनवाय॥

४१. किण अर्थे करी जिनराय, जीव पुद्गल नो समुदाय।
जाव अन्योऽन्य रहिवाय?॥

४१. से केणट्ठेणं भंते! जाव चिट्ठंति?

४२. यथा दृष्टांत कहै जिन-वाण, द्रह जल-भृत पूर्ण प्रमाण।
ऊणो किंचित् मात्र म जाण॥

४३. अति जल तैं पाणी निकसंतो, जल प्रचूर तैं विकसंतो।
चउदिशि वर्द्धमान थावंतो॥

४२-४४. गोयमा! से जहाणामए हरदे सिया पुण्णे पुण्णप्पमाणे वोलट्टमाणे वोसट्टमाणे समभरघडत्ताए चिट्ठइ।

४४. सम शब्द विषम ते नांहि, भर ते तिहां जल समुदाइ।
घट आकार तिष्ठै ताहि॥

४४. समो न विषमो घटैकदेशमनाश्रितत्वेन भरो—जलसमुदायो यत्र स समभरः तया समभरघटतया, सर्वथा भृतघटाकारतयेत्यर्थः। (वृ०-प० ८३)

४५. अहे कहितां हिवै पुरुष कोय, एहवा द्रह विषै अवलोय।
एक मोटी नावा मेली सोय॥

४६. सूक्ष्म छिद्र—सदा जल आवै, सौ छिद्र मोटा कहिवावै।
एहवी नाव द्रहै अवगाहै॥

४७. अहो गोयम! आश्रव द्वार, जल आवा नैं छिद्रै तिवार।
जल सूं भरी थकी जिवार॥

४८. जल पूर्ण न ऊणी लिगार, जल उल्लास पामै अपार।
जिण सूं भरी रहै तलधार॥

४९. जल सूं भरयो घडो रहै सोय, तिम द्रह नैं तल अवलोय।
नावा भरी थकी रहै जोय॥

४५-५०. अहे णं केइ पुरिसे तंसि हरदंसि एगं महं नावं सयासवं सयछिद्दं ओगाहेज्जा। से नूणं गोयमा! सा नावा तेहिं आसवदारेहिं आपूरमाणी-आपूरमाणी पुण्णा पुण्णप्पमाणा वोलट्टमाणा वोसट्टमाणा समभरघडत्ताए चिट्ठइ? हंता चिट्ठइ।

५०. वीर गोयम प्रते पूछंत, द्रहतल इम नाव रहंत?
गोयम भाखै—हां भगवंत॥

५१. तिण अर्थे छै पुद्गल जीवा, अन्योऽन्य बंध्या है सदीवा।
जेम द्रह-जल नाव अतीवा॥

५१. से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—अत्थि णं जीवा य पोग्गला य अण्णमण्णबद्धा, अण्णमण्णपुट्ठा, अण्णमण्णोगाढा, अण्णमण्णसिणेहपडिबद्धा, अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठंति। (श० १।३१३)

५२. लोक स्थिति विषेऽज जाण, हिव आगल प्रश्न वखाण।
पूछै गोयम महा गुणखाण॥

५३. हे प्रभु! सर्व ऋतु मझार, सर्व काल विषै सुविचार।
अपकाय सूक्ष्म ए धार॥

५४. तेह स्नेह प्रमाण सहीत, पडै छै एहवी अप सुप्रतीत।
जिन भाखै—हंता वदीत॥

५३, ५४. अत्थि णं भंते! सदा समितं सुहुमे सिणेहकाए पवडइ? हंता अत्थि। (श० १।३१४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५५. प्रभु ! ऊर्द्ध लोके स्यूं पडत, वृत्त वैताढ्यादिके भरंत ?
अधोग्राम कै तिरियै हुंत ?॥

५६. जिन कहै—ऊर्द्ध लोके पडै छै, अधो ग्रामादिके वरसै छै।
तिरछा लोक विषै झडै छै॥

५७. बादर अप रहै चिरकाल, तिम ए पिण रहै असराल ?
नहीं अर्थ समर्थ निहाल॥

५८. ततकाल विध्वंस पामंत, सेवं भंते सेवं भंते तंत।
प्रथम शतक छठो उद्देशंत।

५९. एगुणवीसमीं ढाल कहाय, भिक्खु भारीमाल ऋषराय।
सुख संपति 'जय-जश' पाय॥

॥ प्रथमशते षष्ठोद्देशकार्थः ॥ १।६ ॥

५५. से भंते ! किं उड्ढे पवडइ ? अहे पवडइ ? तिरिए पवडइ ?

५६. गोयमा ! उड्ढे वि पवडइ, अहे वि पवडइ, तिरिए वि पवडइ। (श० १।३१५)

५७, ५८. जहा से बायरे आउयाए अण्णमण्णसमाउत्ते चिरं पि दीहकालं चिट्ठइ तहा णं से वि ?
णो इणट्ठे समट्ठे। से णं खिप्पामेव विद्धंसमागच्छइ।
(श० १।३१६)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श० १।३१७)

ढाल : २०

सोरठा

१ छठै उद्देशै अंत, विध्वंस-वर्णन-वारता।
तास विपर्यय जंत, ऊपजवूं ते हिव कहै॥

१. विध्वंसमागच्छतीत्युक्तं प्राक् इह तु तद्विपर्यय उत्पादोऽभिधीयते। (वृ०-प० ८४)

*वीर वचन दिल धारियै। (ध्रुपदं)

२. हे प्रभु ! नेरइयो नरक में, ऊपजतो थको हुंत जी।
जीव पोता नैं देसे करी, नरक देस अवयव उपजंत जी ?

३. जीव पोता नैं देसे करी, नरक सर्व उपजंत ?
कै जीव सर्व प्रदेशे करि, नरक नो देसज हुंत ?

४. कै जीव सर्व प्रदेशे करी, नरक सर्वपणै होय ?
ए चिउं भांगा पूछिया, हिवै उत्तर दे जिन सोय॥

२-४. नेरइए णं भंते ! नेरइएसु उववज्जमाणे, किं—१. देसेणं देसं उववज्जइ ? २. देसेणं सव्वं उववज्जइ ? ३. सव्वेणं देसं उववज्जइ ? ४. सव्वेणं सव्वं उववज्जइ ?

५. देसेणं देस न ऊपजै, देसेण सव्वं न सोय।
सव्वेणं देसं न ऊपजै, एक सव्वेणं सव्वं होय॥

५. गोयमा ! १. नो देसेणं देसं उववज्जइ। २. नो देसेणं सव्वं उववज्जइ। ३. नो सव्वेणं देसं उववज्जइ। ४. सव्वेणं सव्वं उववज्जइ। (श० १।३१८)

६. चूर्णि-व्याख्या इमहिज छै, वलि कह्यो टीकाकार।
धुर दोय भंग पावै नहीं, लहै छेहला बे भंगा सार॥

७. तीजै भंगै गति ईलका, सर्व आत्म - प्रदेश।
तेहनां व्यापार करी जिहां, देश करिकै उत्पत्ति स्थान देश॥

८. चउथै भंगै गति कदुके, सव्वेणं सव्वं उपजंत।
ए टीकाकार व्याख्यान छै, तिको वाचनांतरे वदंत॥

६-८. सर्वेण तु सर्वं उत्पद्यते, पूर्णकारणसमवायात्, घटवत् इति चूर्णिव्याख्या, टीकाकारस्तु एवमाह...
एतेषु पञ्चात्यभङ्गौ ग्राह्यौ, यतः सर्वेण—सर्वात्मप्रदेशव्यापारेणैलिकागतौ यत्रोत्पत्तव्यं तस्य देशे उत्पद्यते, तद्देशेनोत्पत्तिस्थानदेशस्यैव व्याप्तत्वात्, कन्दुकगतौ वा सर्वेण सर्वत्रोत्पद्यते विमुच्यैव पूर्वस्थानमिति, एतच्च टीकाकारव्याख्यानं वाचनान्तरविषयमिति।
(वृ०-प० ८४)

*लय—मम करो काया माया कारमी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. जिम नारकी कह्या तिमज छै, जाव वैमानिक जाण।
उत्पत्ति काले आहार लै, तिण सूं आहार सूत्र हिव आण॥

१०. हे प्रभु ! नरक में नेरइयो, ऊपजतो लियै आहार।
जीव नैं एक देसे करी, आहार योग्य द्रव्य देस धार॥

११. कै देसेणं सव्वं आहार लै जी, कै सव्वेणं देसं लै आहार ?
कै सव्वेणं सव्वं आहार लै ? हिवै उत्तर जिन दियै सार॥

१२. प्रथम वे भंग पावै नहीं, छेहला वे भंगा होय।
तीजै भंगै देश बंध छै, चौथे भांगै सर्व बंध जोय॥

१३. दूजा समय थी भव विषै, सव्वेणं देसं सार।
तेल ग्राहक मोचक पूडलो, कांइ तेहनीं परै सुविचार॥

१४. प्रथम समयेज आहार ल, सव्वेणं सव्वं ताय।
तप्त तेले प्रथम पूडलो, तेहनों परै कहिवाय॥

१५. तप्त तेल कडाई विषै, पूडलो घालै तिवार।
तेल नों ग्रहण करै तिको, पिण मूकै नहीं ते लिगार॥

१६. इम प्रथम समय जे आहार ले, सव्वेणं सव्वं कहाय।
चउथो भांगो सर्व बंध ए, आहार ले पिण मूकै नाय॥

१७. दूजी वार ते पूडलो रे, घालै तप्त तेल मांहि।
आगलो तेल मूकै तिको, नवो तेल ग्रहण करै ताहि॥

१८. तिम दूजा समय थी आहार ले, सव्वेणं देसं विचार।
तीजै भांगै देश बंध ए, आगलो मूकै नवो लै आहार॥

१९. इम जाव वैमानिक लगै, वलि गोयम पूछंत।
नरक थी निकलतो छतो, देसेणं देसे निकलंत॥

२०. ऊपजवा नां जिम कह्या, तिम निकलवा नां हुंत।
नरक थी निकलतो छतो, स्यूं देसेणं देस आहारंत ?

२१. तिमज वे भांगा पहिला नहीं, छेहला वे भांगा होय।
एवं जाव वैमाणिक लगै, ए तो कहिवो विचारी जोय॥

२२. नरक में नेरइयो ऊपनों, ए पिण तिमहिज जाण।
जाव सव्वेणं सव्वे ऊपनो, पूर्वली परै पिछाण॥

२३. जिम ऊपजतो निकलतो छतो, तसु कह्या भांगा च्यार।
तेम नरक विषे ऊपनो नीकल्यो, तसु च्यार भांगा अवधार॥

२४. सव्वेणं सव्वं ऊपनो नीकल्यो, तीन भांगा नहिं होय।
आहारै बे धुर भांगा नहीं, छेहला भांगा हुवै दोय॥

९. जहा नेरइए, एवं जाव वेमाणिए। (श० १।३१९)
उत्पादे चाहारक इत्याहारसूत्रम्— (वृ०-प० ८४)

१०-१२. नेरइए णं भंते ! नेरइएसु उववज्जमाणे, किं—
१. देसेणं देसं आहारेइ ? २. देसेणं सव्वं आहारेइ ?
३. सव्वेणं देसं आहारेइ ? ४. सव्वेणं सव्वं आहारेइ ?
गोयमा ! १. नो देसेणं देसं आहारेइ। २. नो देसेणं सव्वं आहारेइ। ३. सव्वेणं वा देसं आहारेइ। ४. सव्वेणं वा सव्वं आहारेइ। (श० १।३२०)

१३. 'सव्वेण वा देसमाहारेइ' त्ति, उत्पत्त्यनन्तरसमयेषु सर्वात्मप्रदेशैराहारपुद्गलान् कांश्चिदादत्ते कांश्चिद्विमुञ्चति, तप्ततापिकागततैलग्राहकविमोचकापूपवद्, अत उच्यते—देशमाहारयतीति। (वृ०-प० ८५)

१४-१६. 'सव्वेण वा सव्वं' ति सर्वात्मप्रदेशैरुत्पत्तिसमये आहारपुद्गलानादत्ते एव प्रथमतः तैलभृततप्ततापिकाप्रथमसमयपतितापूपवदित्युच्यते—सर्वमाहारयतीति।
(वृ०-प० ८५)

१९-२१. एवं जाव वेमाणिए। (श० १।३२१)
नेरइए णं भंते ! नेरइएहिंतो उव्वट्टमाणे, किं—
१. देसेणं देसं उव्वट्टइ ? जहा उववज्जमाणे तहेव उव्वट्टमाणे वि दंडगो भाणियव्वो। नेरइए णं भंते ! नेरइएहिंतो उव्वट्टमाणे किं देसेणं देसं आहारेइ तहेव जाव सव्वेणं वा देसं आहारेइ। सव्वेणं वा सव्वं आहारेइ। एवं जाव वेमाणिया।

२२, २३. नेरइए णं भंते ! नेरइएसु उववण्णे किं देसेणं देसं उववण्णे एसो वि तहेव जाव सव्वेणं सव्वं उववण्णे। जहा उववज्जमाणे उव्वट्टमाणे य चत्तारि दंडगा तहा उववण्णेणं उव्वट्टेण वि चत्तारि दंडगा भाणियव्वा—
सव्वेणं सव्वं उववण्णे,

२४. सव्वेण वा देसं आहारेइ, सव्वेण वा सव्वं आहारेइ। एएणं अभिलावेणं उववण्णे वि उव्वट्टे वि नेयव्वं।
(श० १।३२२-३३३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. नरके ऊपजतो नेरइयो, स्यूं जीव ना अर्द्ध प्रदेश।
नरक नो अवयव अर्द्ध ह्वै, कै अर्द्धेणं सव्वं अशेस ?

२६. कै सव्वेणं अर्द्ध ऊपजै, कै सव्वेणं सव्वं जोय ?
जिम प्रथम आठ आलावा कह्या, तिम अर्द्ध नां पिण अठ होय॥

२७. णवरं देसेणं देसं जिहा, अर्द्धेणं अर्द्ध कहिवाय।
ए सर्व दंडक सोल छै, भणवा विचारी नें न्याय॥

२८. उपजवूं निकलवूं हुवै ते, गति पूर्व थी प्राय।
हिव गति सूत्र कहै अछै, सांभलजो चित ल्याय॥

२९. हे प्रभु ! इक वच जीव ते, स्यूं गति विग्रह सहीत ?
वक्र गति करि नें जाये तदा, ते गति विग्रह कहीत॥

३०. कै अविग्रह-गति सहीत छै जी ? विग्रह-गति ते नांय।
ऋजु गति कहियै तेहनें, तथा अविग्रह थाय॥

३१. जिन कहै विग्रह-गति कदा, रह्या अविग्रह किवार।
इम जाव वैमानिक लगें, एतो इक वच प्रश्न उदार॥

३२. बहु वच जीवा हे प्रभु ! विग्रह-गति समापन्न।
कै अविग्रह-गति सहीत छै ?, जिन कहै दोनूं जन्न॥

३३. बहु वच नारकी हे प्रभु ! स्यूं विग्रहगतिया चीन।
कै अविग्रहगतिया अछै ? जिन कहै भांगा तीन॥

३४. सगलाइ जीव हुवै कदा, अविग्रह-गति समापन्न।
उत्पत्ति विरहे विषै हुवै, नरकै रह्या बहु वचन्न॥

३५. अथवा अविग्रह-गति घणां, विग्रह-गति हुवै एक।
अथवा विग्रह-गति घणां, अविग्रह-गतिया[1] अनेक॥

२५-२७. नेरइए णं भंते ! नेरइएसु उववज्जमाणे, किं—
१. अद्धेणं अद्धं उववज्जइ ? २. अद्धेणं सव्वं उववज्जइ ?
३. सव्वेणं अद्धं उववज्जइ ? ४. सव्वेणं सव्वं उववज्जइ ?
जहा पढमिल्लेणं अट्ठ दंडगा तहा अद्धेण वि अट्ठ दंडगा भाणियव्वा, नवरं—जहिं देसेणं देसं उववज्जइ, तहिं अद्धेणं अद्धं उववज्जइ इति भाणियव्वं, एयं नाणत्तं। एते सव्वे वि सोलस दंडगा भाणियव्वा। (श० १।३३४)

२८. उत्पत्तिरुद्वर्त्तना च प्रायो गतिपूर्विका भवतीति गति-सूत्राणि। (वृ०-प० ८५)

२९, ३०. जीवे णं भंते ! किं विग्गहगइसमावण्णए ? अविग्गहगइसमावण्णए ?

२९. विग्रहो-वक्रं तत्प्रधाना गतिर्विग्रहगतिः, तत्र यदा वक्रेण गच्छति तदा विग्रहगतिसमापन्न उच्यते। अविग्रह-गतिसमापन्नस्तु ऋजुगतिकः विग्रहगतिनिषेधमात्राश्र-यणात् (वृ०-प० ८५)

३१. गोयमा ! सिय विग्गहगइसमावण्णए, सिय अविग्गहगइ-समावण्णए। (श० १।३३५)
एवं जाव वेमाणिए। (श० १।३३६)

३२. जीवा णं भंते ! किं विग्गहगइसमावण्णया ? अविग्गह-गइसमावण्णया ?
गोयमा ! विग्गहगइसमावण्णगा वि, अविग्गहगइसमा-वण्णगा वि। (श० १।३३७)

३३, ३४. नेरइया णं भंते ! किं विग्गहगइसमावण्णगा ? अविग्गहगइसमावण्णगा ?
गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्ज अविग्गहगइसमावण्णगा

३५. अहवा अविग्गहगइसमावण्णगा, विग्गहगइसमावण्णगे य। अहवा अविग्गहगइसमावण्णगा य, विग्गहगइसमा-वण्णगा य।

---

१. अन्तराल गति के दो प्रकार हैं—विग्रह गति और अविग्रह गति। विग्रह गति अर्थात् वक्र गति, अविग्रह गति का अर्थ है ऋजुगति।

भगवती के प्राचीन टीकाकार ने अविग्रह गति का अर्थ ऋजु गति ही किया है। अभयदेव सूरि ने विग्रह गति का अर्थ वक्रगति किया है। पर अविग्रह गति के दो अर्थ किए हैं—'अविग्रहगतिसमापन्नस्तु ऋजुगतिकः स्थितो वा' अभयदेव सूरि ने इस अर्थद्वय का स्पष्टीकरण देते हुए लिखा है—यदि अविग्रह गति का अर्थ ऋजु-गति ही करें तो नरकादि दण्डकों में अविग्रह गति समापन्न जीवों का सर्वदा बहुत्व कहा जाएगा, वह घटित नहीं होगा क्योंकि वहां एक, दो, तीन जीव ही उत्पन्न होते हैं। इसलिए अविग्रह गति का एक अर्थ अगति मानने से ही इस अर्थ की संगति बैठ सकती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६. इम जीव एकेंद्री वर्ज नैं, तीन भांगा हुवै ताय।
गति अधिकार थकी हिवै, चवन - सूत्र कहिवाय॥

३६. एवं जीव---एगिंदियवज्जो तियभंगो।
(श० १।३३८)

३७. अंक सतरमां नौं देश छै, प्रवर बीसमीं ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' संपति माल॥

ढाल : २१

दूहा

१. महाऋद्धिक प्रभु देवता, अनैं महाद्युतिवंत।
महाबल, महायशवंत ते, महाईश्वर पदवंत॥

१. देवे णं भंते ! महिड्ढिए महज्जुइए महब्बले महायसे महेसक्खे महाणुभावे।

२. पाठ किहां महासुख तणों, महानुभाव विशिष्ट-
वैक्रियादि करिवा समर्थ, एहवो देव सुइष्ट॥

२. 'महानुभावः' विशिष्टवैक्रियादिकरणाचिन्त्यसामर्थ्यः।
(वृ०-प० ८६)

*देव जिनेंद्र ना वच भारी रे, प्रभुजी रे सीस गोयम जशधारी।
पूछ्या प्रश्न भला हितकारी रे। (ध्रुपदं)

३. चवनकाल पहिला ए सुरवर, जीवंतो पहिछाणं।
किंचित् काल आहार नहि लेवै, ते कारण हिव जाणं॥

३. अविउक्कंतियं चयमाणे किंचिकालं

४. उत्पत्ति-स्थान आपणुं देखी, पुरुष - परिभुज्यमानं।
स्त्री-गर्भाशय रूप पेख नैं, लज्जा कारण जानं॥

५. उत्पत्ति कारण शुक्र रुधिर, अवलोक दुगंच्छा आवै।
किंचित्काल अरति परिसह थी, सुर नैं आहार न भावै॥

४, ५. हिरिवत्तियं दुगंछावत्तियं परीसहवत्तियं आहारं नो आहारेइ।
'ह्रीप्रत्ययं' लज्जानिमित्तं, स हि च्यवनसमयेऽनुपकान्त एव पश्यत्युत्पत्तिस्थानमात्मनः, दृष्ट्वा च तद्देवभव-विसदृशं पुरुषपरिभुज्यमानस्त्रीगर्भाशयरूपं जिह्रेति, ह्रिया च नाहारयति, तथा 'जुगुप्साप्रत्ययं' कुत्सानिमित्तं, शुक्रादेरुत्पत्तिकारणस्य कुत्साहेतुत्वात्, 'परीसहवत्तियं' ति इह प्रक्रमात् परीषहशब्देनारतिपरीषहो ग्राह्यः, ततश्चारतिपरीषहनिमित्तं। (वृ०-प० ८६)

६. तदनंतर ते आहार करै, क्षुधा तसुं खमणी नावै।
आहारिज्जमाणे आहारिए आख्यो, इम परिणामिय भावै॥

६. अहे णं आहारेइ आहारिज्जमाणे आहारिए, परिणामिज्जमाणे परिणामिए
अथ लज्जादिक्षणानन्तरमाहारयति बुभुक्षावेदनीयस्य चिरं सोढुमशक्यत्वात्। (वृ०-प० ८६)

७. सुर आयु क्षय करी हे प्रभु ! तिरि मणुस रै मांह्यो।
ज्यां ऊपजै ते आयु वेदे ? हंता जिन कहै वायो॥

७. पहीणे य आउए भवइ। जत्थ उववज्जइ तं आउयं पडिसंवेदेइ, तं जहा---तिरिक्खजोणियाउयं वा, मणुस्साउयं वा ? हंता गोयमा ! देवेणं महिड्ढिए जाव मणुस्साउयं वा।
(श० १।३३९)

सोरठा

८. ऊपजवा नो जोय, आख्यो छै अधिकार जे।
तेहिज प्रश्न हिव होय, चित्त लगाई सांभलो॥

*लय---स्वामी सरूपचंद सुखकारी रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. *जीव प्रभु ! गर्भे ऊपजतो, सइंदियो कहिवायो।
कै अणिंदियो कहियो तेहनै ? उत्तर दे जिनरायो ।।

१०. सिय सइंदियो सिय अणिंदियो, ताम गोयम पूछंतो।
किण अर्थे प्रभुजी इम कहियै ? हिव भाखै भगवंतो ।।

११. द्रव्येंद्रिय आश्री अणिंदियो, ऊपजै गर्भ मझारो।
भावेन्द्रिय आश्री सइंदियो, तिण अर्थे सुविचारो ।।

९-११. जीवे णं भंते ! गब्भं वक्कममाणे किं सइंदिए वक्कमइ ? अणिंदिए वक्कमइ ? गोयमा ! सिय सइंदिए वक्कमइ। सिय अणिंदिए वक्कमइ। (श० १।३४०)
से केणट्ठेणं भंते। एवं वुच्चइ—सिय सइंदिए वक्कमइ ? सिय अणिंदिए वक्कमइ ?

गोयमा ! दव्विंदियाइं पडुच्च अणिंदिए वक्कमइ। भाविंदियाइं पडुच्च सइंदिए वक्कमइ। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—सिय सइंदिए वक्कमइ। सिय अणिंदिए वक्कमइ।

(श० १।३४१)

१२. हे प्रभु ! जीव गर्भ ऊपजतो, शरीर सहित उपजै छै।
कै शरीर रहित ए जीव ऊपजै ? हिव जिन उत्तर कहै छै ।।

१३. कदाचित् सशरीरे ऊपजै, कदाचित् अशरीरं।
किण अर्थे प्रभुजी ! इम कहियै, न्याय कहै जिन हीरं ।।

१४. औदारिक वैक्रिय आहारक आश्री ऊपजै अशरीरं।
तेजस कार्मण आश्री उपजै, शरीर सहित वच वीरं ।।

१२, १३. जीवे णं भंते ! गब्भं वक्कममाणे किं ससरीरी वक्कमइ ? असरीरी वक्कमइ ? गोयमा ! सिय ससरीरी वक्कमइ। सिय ससरीरी वक्कमइ। (श० १।३४२)
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—सिय ससरीरी वक्कमइ ? सिय असरीरी वक्कमइ ?

१४. गोयमा ! ओरालिय-वेउव्विय-आहारयाइं पडुच्च असरीरी वक्कमइ। तेया-कम्माइं पडुच्च ससरीरी वक्कमइ। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—सिय ससरीरी वक्कमइ। सिय असरीरी वक्कमइ।

(श० १।३४३)

१५. हिव प्रभु ! जीव गर्भ ऊपजतां, प्रथम करै स्यूं आहारो ?
जिन कहै अम्मा रुधिर, शुक्र पितु बेहूं मिल्यूं असारो ।।

१५. जीवे णं भंते ! गब्भं वक्कममाणे तप्पढमयाए किमाहारमाहारेइ ? गोयमा ! माउओयं पिउसुक्कं—तं तदुभयसंसिट्ठं तप्पढमयाए आहारमाहारेइ। (श० १।३४४)

१६. जीव प्रभु ! जे रह्यो गर्भ में, आहार किसूं ते आहारै ?
जिन कहै मां रस विगति भोगवै, एक देश तसु धारै ।।

१६. जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे किं आहारमाहारेइ ?
गोयमा ! जं से माया नाणाविहाओ रसविगतीओ आहारमाहारेइ, तदेकदेसेणं ओयमाहारेइ। (श० १।३४५)

१७. हे प्रभु ! गर्भे जीव रह्या नैं, छै उच्चार तदर्थं।
लघु, खेल, संघाण, वमन, पित ? नहीं ए अर्थ समर्थं ।।

१७. जीवस्स णं भंते ! गब्भगयस्स समाणस्स अत्थि उच्चारे इ वा पासवणे इ वा खेले इ वा सिंघाणे इ वा वंते इ वा पित्ते इ वा ? णो इणट्ठे समट्ठे। (श० १।३४६)

१८. किण अर्थे करिनै ? हे गौतम ! जीव गर्भगत जाणं।
जे आहारे ते पुष्ट करै, पंचेंद्रीपणै पिछाणं ।।

१९. हाड अनै मींजा अरु केश, रोम नखपणें सुजोयो।
दाढी मूंछ नां केशपणें, तिण कारण गोयम ! सोयो ।।

२०. इम कहिए—गर्भस्थ जीव नैं उच्चार पासवण खेलं।
सिंघाण आदिक सहु नहिं होवै समुचित न्याय सुमेलं ।।

१८-२०. से केणट्ठेणं ? गोयमा ! जीवे णं गब्भगए समाणे जमाहारेइ तं चिणाइ, तं जहा—सोइंदियत्ताए जाव फासिंदियत्ताए, अट्ठि-अट्ठिमिंज-केस-मंसु-रोम-नहत्ताए। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—जीवस्स णं गब्भगयस्स समाणस्स णत्थि उच्चारे इ वा पासवणे इ वा खेले इ वा सिंघाणे इ वा वंते इ वा पित्ते इ वा।

(श० १।३४७)

*लय—स्वामी सरूपचंद सुखकारी रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. जीव प्रभु ! जे रह्यो गर्भ में, मुखे करोनै त्यांही।
कवल आहार लेवा समर्थ छै ? जिन कहै समर्थ नांही ॥

२२. ते किण अर्थे ? तब जिन भाखै, जीव रह्यो गर्भ ठामै।
सर्व आत्म करिनैं आहारै छै, सर्व आत्म-परिणामै ॥
२३. सर्व आत्म करि उस्सास निस्वास, वार - वार ले आहारं।
वार - बार परिणामै, उस्सास निस्वास पिण वहु वारं ॥
२४. कदाचि आहारै कदाचि नाहारै, तथा स्वभावै तासं।
कदाचित् परिणामैं ते फुन, कदा उस्सास निस्वासं ॥
२५. माउ-जीव-रसहरणी रस नैं, हरै नाभि नीं नालं।
पुत्र-जीव-रसहरणी छै ते, आहार लियै तिण कालं ॥
२६. माउ-जीव नैं रसहरणी ते, वंधी थकी तिवारं।
पुत्र-जीव सूं फरशी छै, ते कारण थी लै आहारं ॥
२७. अवर नाल पिण सुत-रसहरणी, वंधी छती स्वभावै।
माउ-जीव सूं फरसी तिण सूं, शरीर पुष्टो थावै ॥
२८. तिण अर्थे करि गौतम ! जावत् मुखे करीनै ताह्यो।
कवल आहार लेवा नहिं समरथ, इम प्रभु न्याय बतायो ॥
२९. हे प्रभु ! किता अंग माता ना ? तीन अंग जिनवाणी।
मंस लोही मस्तक नों भेजो, रुधिर बहुल जिहां जाणी ॥

३०. हे प्रभु ! अंग पिता ना केता ? तीन अंग जिनवाणी।
हाड, हाड नी मींजा, केश-मूंछ-नख-रोम पिछाणी[1] ॥

३१. मात पिता ना अंग प्रभुजी, किता काल रहै सोयो ?
जिन कहै तनु भव-धारणीक, अविनष्ट ज्यां लग होयो ॥
३२. उपचय अंतिम समय थकी ए, समय - समय अवलोयो।
हायमान थातोज सर्वथा, चरम समय क्षय होयो ॥

३३. सतर अंक नो देश अर्थ ए, एकवीसमीं ढालं।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय प्रसादै, 'जय-जश' हरष विसालं ॥

२१. जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे पभू मुहेणं कावलियं आहारमाहारित्तए ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे। (श० १।३४८)

२२-२४. से केणट्ठेणं ? गोयमा ! जीवे णं गब्भगए समाणे सव्वओ आहारेइ, सव्वओ परिणामेइ, सव्वओ उस्ससइ, सव्वओ निस्ससइ; अभिक्खणं आहारेइ, अभिक्खणं परिणामेइ, अभिक्खणं उस्ससइ, अभिक्खणं निस्ससइ; आहच्च आहारेइ, आहच्च परिणामेइ, आहच्च उस्ससइ, आहच्च निस्ससइ।

२५-२८. माउजीवरसहरणी, पुत्तजीवरसहरणी माउजीवपडिवद्धा पुत्तजीवफुडा—तम्हा आहारेइ, तम्हा परिणामेइ। अवरा वि य णं पुत्तजीवपडिबद्धा माउजीवफुडा नम्हा चिणाइ, तम्हा उवचिणाइ।
से तेणट्ठेणं जाव नो पभू मुहेणं कावलियं आहारमाहारित्तए। (श० १।३४९)

२९. कइ णं भंते ! माइयंगा पण्णत्ता ? गोयमा ! तओ माइयंगा पण्णत्ता, तं जहा—मंसे, सोणिए, मत्थुलुंगे।
(श० १।३५०)
'मत्थुलुंग' त्ति मस्तकभेज्जकम्। (वृ०-प० ८८)

३०. कइ णं भंते ! पेतियंगा पण्णत्ता ? गोयमा ! तओ पेतियंगा पण्णत्ता, तंजहा—अट्ठि, अट्ठिमिजा, केस-मंसु-रोम-नहे। (श० १।३५१)

३१, ३२. अम्मापेइए णं भंते ! सरीरए केवइयं कालं संचिट्ठइ ?
गोयमा ! जावइयं से कालं भवधारणिज्जे सरीरए अव्वावन्ने भवइ एवतियं कालं संचिट्ठइ, अहे णं समए-समए वोयमिज्जमाणे-वोयसिज्जमाणे चरिमकाल-समयंसि वोच्छिण्णे भवइ। (श० १।३५२)

---

१. केशादिकं बहुसमानरूपत्वात् एकमेव...
केश, श्मश्रू, नख और रोम—इन चारों को एक अवयव माना गया है। इस प्रकार तीन अंग पितृप्रधान और तीन अंग मातृप्रधान माने गए हैं। इनके अतिरिक्त जितने अवयव हैं उनमें शुक्र और शोणित की सम परिणति होने के कारण उभय सामान्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : २२

दूहा

१. गर्भ तणां अधिकार थी, अपर सूत्र अवलोय।
गर्भ तणों कहियै अछै, अर्थ अनूपम जोय॥

२. जीव प्रभु ! गर्भे मरी, नरक विषै उपजंत ?
जिन कहै कोइक ऊपजै, कोइक नहिं उपजंत॥

२. जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे नेरइएसु उववज्जेज्जा ?
गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा। (श० १।३५३)

३. गोयम कहै किण कारणै ?, तब भाखै जगनाथ।
गर्भ विषै मर नरक में, जायै तसुं अवदात॥

३. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा ?

४. *श्री जिनदेव कहै इसुं, सुण गोयमा ! जे सन्नी पंचेंद्री जीव रे।
सुण गोयमा।
सगली पर्याप्तियां करी, सुण गोयमा ! पर्याप्तो स्वयं कहीव रे।
सुण गोयमा॥

४. गोयमा ! से णं सण्णी पंचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए।

५. वीर्य-लब्धि तणों धणी, वैक्रिय-लब्धि संपन्न।
शत्रु-सैन्य निसुणी करी, अवधारी नैं मन्न॥

६. गर्भ देश थी बाहिरै, काढी निज प्रदेश।
समुद्घात वैक्रिय करी, कषाय वसै विशेष॥

७. चतुरंग सेन्या विकुर्वी, शत्रु - सेन्य संघात।
युद्ध करै रोसे भरचो, अर्थ—द्रव्य वंछात॥

५-७. वीरियलद्धीए वेउव्वियलद्धीए पराणीयं आगयं सोच्चा निसम्म पएसे निच्छुभइ, निच्छुभित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहणित्ता चाउरंगिणिं सेणं विउव्वइ, विउव्वित्ता चाउरंगिणीए सेणाए पराणीएणं सद्धिं संगामं संगामेइ। से णं जीवे अत्थकामए

८. राज्य तणो ते कामियो, भोग - काम ए ताम।
गंध फर्श रस भोग्य नी, वंछा मात्र परिणाम॥

८. रज्जकामए भोगकामए
भोगाः—गन्धरसस्पर्शाः। (वृ०-प० ८९)

९. काम तणो ते कामियो, शब्द रूप ते काम।
तेहनो कामी ए अछै, वंछा मात्रज ताम॥

९. कामकामए
कामौ—शब्दरूपे। (वृ०-प० ८९)

१०. अर्थ - कंखिए—द्रव्य नीं कांक्षा ते गृध चित्त।
राज्य तणी कांक्षा घणी, भोग काम आसित्त॥

१०. अत्थकंखिए रज्जकंखिए भोगकंखिए कामकंखिए,

११. अर्थ - पिपासा तेहनै, पाम्यै पिण अतृप्त।
राजभोग नै काम नीं, तास पिपासा वृत्त॥

११. अत्थपिवासिए रज्जपिवासिए भोगपिवासिए कामपिवासिए,

१२. ते अर्थ राज्य भोग काम में, चित्त सामान्यज ताम।
मन विशेष तेहनें विषै, तल्लेश आत्म-परिणाम॥

१३. तेहिज अध्यवसाय छै, तीव्र अध्यवसान तास।
अर्थादिक संलग्नता, तदट्ठोवउत्त विमास॥

१२, १३. तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते

१४. ते अर्थादिक नैं विषै, विकरण इंद्रिय स्थाप।
अर्थादि संस्कार सूं, भावना भावित आप॥

१४. तदप्पियकरणे तब्भावणाभाविए,
'तदर्पितकरणे' त्ति तस्मिन्नेव—अर्थादावर्पितानि—आहितानि—करणानि इन्द्रियाणि कृतकारितानुमतिरूपाणि वा येन स तथा, 'तब्भावणाभाविए' त्ति...तद्भावनया—अर्थादिसंस्कारेण भावितो यः स तथा।
(वृ०-प० ८९)

*लय—रात समय बड़ भीमजी मनमोहना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. इह युद्ध अवसर गर्भ में, मरी नरक में जात।
तिण अर्थे कह्यूं गर्भ थी, नरक विषै उपपात॥

१५. एयंसि णं अंतरंसि कालं करेज्ज नेरइएसु उववज्जइ। से तेणट्ठेणं गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा। अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा। (श० १।३५४)
'एयंसि अंतरंसि' त्ति एतस्मिन् संग्रामकरणावसरे (वृ०-प० ८६)

१६. जीव प्रभु ! गर्भे मरी, देव विषै उपजंत ?
जिन कहै—कोइक सुर हुवै, कोइक सुर नवि हुंत॥

१६. जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे देवलोगेसु उववज्जेज्जा ?
गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा। (श० १।३५५)

१७. गोयम कहै किण कारणै ? तब भाखै जगनाथ।
गर्भ विषै मरि सुर हुवै, आगल ए अवदात॥

१७. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा ?

१८. ते सन्नी पंचेंदी जीव छै, सर्व पर्याप्ति-प्रतिपन्न।
तथारूप श्रमण माहण कनैं, इक आर्य धर्म वचन्न॥

१९. सांभल अवधारी करी, दिल संवेग अथाग।
धर्म विषै श्रद्धा हुई, रक्त धर्म अनुराग॥

१८, १९. गोयमा ! से णं सण्णी पंचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा निसम्म तओ भवइ संवेगजायसड्ढे तिव्वधम्माणुरागरत्ते।

२०. धर्म तणीं तसुं बंछना, पुन्य, स्वर्ग, सिव काम।
धर्म, पुन्य, स्वर्ग, मोक्ष नीं, तसु आकांक्षा आम॥

२१. धर्म पुन्य स्वर्ग मोक्ष नीं अतृप्ति तेह पिपास।
'इहां स्वर्ग पुन्य बंछा तणी, नहिं जिन आज्ञा तास॥

२०, २१. से णं जीवे धम्मकामए पुण्णकामए सग्गकामए मोक्खकामए, धम्मकंखिए पुण्णकंखिए सग्गकंखिए, मोक्खकंखिए, धम्मपिवासिए पुण्णपिवासिए सग्गपिवासिए मोक्खपिवासिए।

२२. नरक जावै तेहनैं कही, अर्थ राज्य भोग काम।
तसुं बंछा सावज्ज अछै, तिम ए पिण सावज्ज ताम॥

२३. इहलोक अनैं परलोक नैं अर्थे तप करणो नांहि।
दशवैकालिक देखलो, नवमा अध्येन मांहि॥

२४. ते माटै पुन्य स्वर्ग नीं, बंछा आज्ञा बार।
पिण तास हुंतो जे बंछना, ते कहि सूत्र मझार'॥
(ज० स०)

२५. ते धर्मादिक में चित्त छै, तेहिज मन ते लेश।
अध्यवसाय तेहनैं विषै, ते तीव्र अध्यवसान एस॥

२५-२७. तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तब्भावणाभाविए, एयंसि णं अंतरंसि कालं करेज्ज देवलोगेसु उववज्जइ। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा। (श० १।३५६)

२६. ते धर्मादि उपयुक्त छै, त्रिकरण इंदिय स्थाप।
धर्मादि संस्कार सूं, भावन भावित आप॥

२७. इह अवसर गर्भे मरी, देवलोक में जाय।
तिण अर्थे आख्युं इस्युं, कांइ गर्भे मरि सुर थाय॥

२८. इहां श्रमण माहण पै सुण करी, कह्यो देवलोक में जाय।
श्रमण उत्तर गुण सहित छै, माहण मूल गुण पाय॥

२९. माहण शब्द तणों इहां, कांइ अर्थ कियो वृत्ति मांय।
स्थूल हिंसादिक त्याग ते, ए अणमिलतो कहिवाय॥

३०. रायप्रश्नेणी वृत्ति में, कह्यो श्रावक परम गीतार्थ।
इम आपस में वृत्तिकार रै, विवाद वेपरमार्थ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१. स्थूल हिंसा थी निवर्त्यो, तास माहण कहै एक।
इक परम गीतार्थ नै कहै, ए विहुं अर्थ अविवेक ।।

३२. श्रमण उत्तर गुण सहीत छै, माहण मूल गुण सहीत।
भगवती शतकै पंचमै छठै उदेशै प्रतीत ।।

३३. ए अल्प आयु अधिकार में, हिंसा झूठ उचार।
तथारूप समण वा माहण नैं, दियै अफासु आहार ।।

३४. वा शब्द समुच्चय अर्थ छै, अपर नाम पेक्षाय।
नाम अनेक मुनि तणां तिहां विचै शब्द वा आय ।।

३५. सूयगडांग श्रुत-खंध दूसरै अध्येन पहिलै पेख।
चवद नाम मुनि नां कह्या समण माहण धुर देख ।।

३६. बीच शब्द वा सहु विषै नामांतर पेक्षाय।
तिण कारण श्रावक भणी माहण कहियै नांय ।।

३७. सूयगडांग रै सोलमैं, इंद्रिय-दमन कराय।
मुक्ति-गमन जे जोग्य छै वोसिरावी जिण काय ।।

३८. माहण कहीजै तेहनैं, श्रमण कहीजै ताम।
भिक्षु नैं निर्ग्रंथ वलि, वा शब्द च्यारूं ठाम ।।

३९. किम प्रभु ! तसुं माहण कह्यो ? हे महामुनि ! बताय।
ताम जिनेश्वर इम कहै सांभलज्यो सुखदाय ।।

४०. सहु पाप कर्म सूं निवर्त्यो, राग, द्वेष, कलहादि।
जाव मिथ्यादर्शण थकी निवृत्त, करी समाधि ।।

४१. पंच-समित-समितो सहित यत्नवंत, नहिं क्रोध।
नहीं मान तसुं माहण कह्यो पाठ मांहै ए सोध ।।

४२. प्रत्यक्ष पाठ मांहै इहां सर्व पाप-पचखाण।
कीधा तसुं माहण कह्यो वीर तणी ए वाण ।।

४३. भगवती वृत्ति मांहै कह्यो स्थूल हिंसा-पचखाण।
माहण कहियै तेहनैं केम मिलै ए वाण ? ।।

४४. सर्व त्यागी नैं पाठ में माहण कह्यो जिनराय।
देशव्रती नैं वृत्ति में, अणमिलती इण न्याय ।।

४५. वृत्ति विषै सूतर थकी अणमिलतो जे होय।
किम मानीजै तेहनैं हियै विमासी जोय ।।

यतनी

४६. दूजै आचारंग वृत्ति विशेष, प्रथम झयण रै दशमै उदेश।
कह्यो कारण पडियां सोय, अफासु लूण खाणो जोय ।।

४७. तिणहिज टीका में पहिलै अध्ययन, पहिलै उदेशै में ए वयन।
कारणे नीलण फूलण सहीत, आधाकर्मी प्रमुख ए अनीत ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४८. वलि चूर्णि नशीत री जोय, जेह शिष्य अपंडित सोय।
रोग मेटण अंब चूसेह, पनरमैं उदेशै एह ॥
४९. ववहार नी वृत्ति मझार, कारणे अंब फल नो आहार।
गिलाण अद्धा मार्ग मांहि, वलि भिक्षा अणमिलियां ताहि ॥
५०. ऊणोदरी हुवै जद जोय, सचित्त आंबो ग्रहिवो सोय।
वृत्ति ववहार नवमैं उद्देश, एहवा वचन विरुद्ध विशेष ॥
५१. सातम उद्देशे नशीत, अर्थ चूर्णि में विपरीत।
धमै धातु लोह तंब आदि, राजा नैं आभियोगे साधि ॥
५२. तथा मैथुन अर्थे भावै, लोह तंब धमै नै धमावै।
ए प्रत्यक्ष विरुद्ध पिछाण, आगम थी अणमिलती वाण ॥
५३. आवसग नीं निर्युक्ति ताहि, परिठावणिया समिति मांहि।
साधु करै पंचक में काल, करिवा डाभ ना पूतला न्हाल ॥
५४. बृहत्कल्प री वृत्ति में एम, पूतला करिवा कह्या तेम।
एहवी विरुद्ध वृत्ति में पिछाण, आगम थी अणमिलती जाण ॥
५५. बृहत्कल्प तणी वृत्ति मांहि, तथा चूर्णि में कहिवाहि।
कारणे रात्रि-भोजन आण, ए प्रत्यक्ष विरुद्ध पिछाण ॥
५६. इत्यादिक विरुद्ध अनेक, वृत्ति चूर्णि मांहै विशेष।
सूत्र सूं अणमिलती सोय, मानवा जोग्य ते किम होय ॥
५७. दूजै आचारंग सुविशेष, पहिला झेण रै दशमैं उद्देश।
कह्या मंस मच्छ भोगवणा, अस्थि कांटा ग्रही परिठवणा ॥
५८. एहवो समुच्चय पाठ मझारो, तिण रो विमल न्याय अवधारो।
पार्श्वचंद सूरि अर्थ कीधो, तिको टवा मांहै छै प्रसीधो ॥
५९. लोक प्रसिद्ध मंस मच्छादि, वृत्तिकार वखाण्यो संवादि।
तिको सूत्र सूं विरुद्ध है ताहि, तिण सूं ए अर्थ संभवै नाहि ॥
६०. मांहिलो गिर मंस पिछाण, मंस मच्छ वणस्सइ जाण।
अस्थि शब्दे कुलिया कहाय, ठांम ठांम सिद्धांत रै माय ॥
६१. सूत्रे उत्सर्गे जाण्यो, वृत्ति में अपवाद वखाण्यो।
तिण सूं सूत्र सूं मिलै विशेष, पार्श्वचंद सूरि वच एष ॥
६२. टवा करण वाले तिण एम, वृत्ति नैं निषेधी छै तेम।
अणमिलतुं टीका नों अर्थ, है मानवा में असमर्थ ॥
६३. तिम माहण शब्द नूं जोय, वृत्ति में श्रावक कियो सोय।
वच मरोड कह्यो स्थूल-त्यागी, संभवै अणमिलतो सागी ॥

६४. *उत्तराध्येन पचीस में, बहु गाथा सुविचार।
माहण साधु नैं कह्यो, ज्यांरै पंच आश्रव परिहार ॥

*लय—रात समय बड भीमजी मन मोहना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६५. ठाणांग ठाणै तीसरे, प्रथम उदेश अनूप।
तीन प्रकारे देवता, करै विज्जू तारारूप ।।

६६. विकुर्वणा करतां छतां, मैथुन समय समाज।
तथारूप श्रमण वा माहण नै, निज ऋद्धि देखाडण काज ।।

६७. सुयगडांग श्रुतस्कंध दूसरै, सप्तम झयण मझार।
गौतम स्वामी इम कह्यो, उदक भणी सुविचार ।।

६८ तथारूप श्रमण माहण कनैं, इक वच धारै सार।
परम उपगारी जाणनैं, करै वंदणा नैं नमस्कार ।।

६९. कल्याणं मंगलं देवयं, प्रशस्त मन हेतु चैत।
जाणी नैं सेवा करै, चिउं नामै माहण एथ ।।

७०. मुनि अधिकारै साधु नां, ए च्यारूंइ नाम।
जिन अधिकारै जिन तणा, च्यारूं नाम सुयाम ।।

७१. प्रतिमा अधिकारै बिंब ना, ए च्यारूंइ नाम।
पिण श्रावक नां न कह्या किहां, सूत्र पाठ में ताम ।।

७२. जिन मुनि ना चिउं नाम ते, लोकोत्तर परभव लेख।
प्रतिमा ना चिउं नाम ते, इहभव लौकिक पेख ।।

७३. वलि गौतम उदक भणी कह्यो, अम्हनै न रुचै एह।
जे समणा वा माहणा, एहवूं वच बोलेह ।।

७४. भूत शब्द घाली करी, त्रस तणा पचखाण।
करणा छै श्रावक भणी, एम परूपै जाण ।।

७५. समणा वा निग्गंथा वा, तसुं निश्चै कहियै नांय।
ए विरुद्ध वचन सुणैं तेहनैं, केवल अनुतापज थाय ।।

७६. इहां समण माहण नैं स्थानके, कह्यो श्रमण निर्ग्रंथ।
बिहुं ठामै वा शब्द छै, प्रतख पाठ में तंत ।।

७७. समणा वा नैं माहणा, ए बिहुं पाठ नैं स्थान।
समणा वा निग्गंथा वा, कह्या पाठ गुणखान ।।

७८. समणा वा नैं माहणा, इहां पिण छै वा शब्द।
समणा वा निग्गंथा वा, यां पिण वा शब्द सुलब्ध ।।

७९. द्वितीय सुयगडांग सूत्र में, दूजा अध्येन मांय।
मुक्ति - गमन योग्य संजमी, समण माहण सुखदाय ।।

८०. वारै क्रिया-स्थान नैं, त्यागै अनरथ जाण।
यां पिण माहण साधु नैं, भाख्यो श्री जगभाण ।।

८१. इत्यादिक बहु सूत्र में, जोवो पाठ अमोल।
माहण कह्यो साधु भणी, पिण श्रावक नों नहिं बोल ।।

८२. तथारूप श्रमण माहण भणी, दै सचित्त असूझतो आहार।
अल्प आयु बंधै तसुं, भगवती सूत्र मझार ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८३. माहण श्रावक नैं कहै, तसुं लेखै अवलोय।
श्रावक भणी असुद्ध दियां, निगोद नों बंध होय॥

८४. ठाणांग ठाणै तीसरै, चोथै उद्देसै ताय।
श्रमण माहण नैं ऋद्धि देखायवा, सुर पृथ्वी कंपाय॥

८५. तथारूप श्रमण माहण इहां, आख्या मुनि नैं ताय।
वा शब्द समुच्चय अर्थ छै, वलि अपर नाम पेक्षाय॥

८६. ठाणांग ठाणै तीसरै, चउथा उदेशा मांय।
छद्मस्थ मनुष्य नैं इक-चक्षु, सुर बे-चक्षु पाय॥

८७. तथारूप श्रमण वा माहण नैं, उत्पन्न दर्शण नाण।
तीन-चक्षु तेहनैं कही, ए चउदपूर्वधर जाण॥

८८. एक चक्षु ते आंख छै, द्वितीय परम श्रुत जाण।
अवधि तणी तीजी चक्षु इहां, माहण मुनी पिछाण॥

८९. तथारूप श्रमण माहण इहां, पूर्वधर मुनि पेख।
वा शब्द समुच्चय अर्थ छै, कांइ अपर नाम थी देख॥

९०. ठाणांग ठाणै तीसरै, चउथै उदेशै तंत।
तथारूप श्रमण वा माहण नैं, परम-अवधि उपजत॥

९१. प्रथम देखै ऊर्द्धलोक नैं, पछै तिरछू जाणेह।
अधोलोक जाणैं पछै, दुर्लभ जाणवूं एह॥

९२. ए परम-अवधि मुनि में ज छै, श्रमण माहण कह्यो तास।
वा शब्द समुच्चय अर्थ छै, जोवो हीयै विमास॥

९३. भगवती पंचम शतक में, बलि ठाणांग तीजै ठाण।
दीर्घायु शुभ अशुभ नों, आख्यो श्री जगभाण॥

९४. तथारूप श्रमण वा माहण नैं, हेली निंदी अपमान।
अमनोज्ञ आहार प्रतिलाभियां, अशुभ दीर्घायु बंधान॥

९५. तथारूप श्रमण वा माहण नैं, करि वंदणा नैं नमस्कार।
बहु सत्कार देइ करी, वलि सनमानी तार॥

९६. कल्लाणं मंगलं देवयं प्रशस्त मन हेतु जाण।
करि सेव मनोज्ञ आहार दियां, शुभ दीर्घायु बंधाण॥

९७. वा शब्द इहां पिण छै सही, बलि श्रमण माहण ना नाम।
कल्लाणं मंगलं देवयं, चेइयं ए च्यारूं नाम॥

९८. इहां समण माहण साधूज छै, तेहनां ए च्यारूं नाम।
ए नाम चिउं श्रावक तणा, न कह्या किणहि ठाम॥

९९. भगवती आठमा शतक में, तथारूप असंजती जाण।
सचित-अचित प्रतिलाभियां, एकंत पाप पिछाण॥

१००. मूढ कहै पडिलाभ ते गुरु बुद्धि दीधां पाप।
पडिलाभेइ पाठ में, गुरु बुद्धि नी करै स्थाप॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०१. तथारूप श्रमण वा माहण नैं, अणगमतो जे आहार।
हेली निंदी प्रतिलाभियां, अशुभ दीर्घायु धार॥

१०२. तथारूप श्रमण वा माहण नैं, मनगमतो जे आहार।
वंदी सेवी प्रतिलाभियां, शुभ दीर्घ आयु बंध सार॥

१०३. पडिलाभेइ पाठ नैं, गुरु बुद्धि थापै कोय।
तसुं लेखै श्रमण माहण भणी, कह्यो पडिलाभेइ सोय॥

१०४. ते श्रमण माहण गुरु मुनि थया, पडिलाभेइ रै न्यांय।
माहण अर्थ श्रावक तणों, तसुं लेखै पिण नांय॥

१०५. जो माहण कहै श्रावक भणी, तो पडिलाभे गुरु बुद्धि नांय।
जो पडिलाभे गुरु बुद्धि कहै, तो माहण श्रावक नहिं थाय॥

१०६. शुभ-अशुभ दीर्घायु बंध में, समण माहण नैं जाण।
पडिलाभेइ पाठ छै, ए रूडी रीत पिछाण॥

१०७. माहण श्रावक नैं स्थापियां, पडिलाभेइ नों जाण।
गुरु बुद्धि अर्थ करता तिको, उथप गयो पिछाण॥

१०८. पडिलाभे गुरु बुद्धि स्थापियां, माहण शब्द नों पेख।
श्रावक अर्थ करै तिको, उथप गयो विशेख॥

१०९. माहण पडिलाभै पाठ नों, अर्थ ऊंधो करै अजाण।
तिण सुं आप बोल्यो आप ऊथपै, त्यांरै ते पिण नहीं पिछाण॥

११०. धुर थाप्यां दूजो ऊथपै, दूजो थाप्यां धुर उथपंत।
विरुद्ध अर्थ करै तेहनैं, निज वच पिण इम विघटंत॥

१११. तिण सूं माहण अर्थ श्रावक नहीं, पडिलाभै गुरुबुद्धि नांहि।
ए बिहुं अर्थ ऊंधा करै, ते खूता मिथ्या मांहि॥

११२. गर्भे मरि हुवै देवता, तिहां माहण शब्द नों ताय।
वृत्तिकार श्रावक कियो, ते अणमिलतो इण न्याय॥

११३. सूत्र भगवती तेह में, कांइ यंत्र धर्मसी कीध।
तेहमें अर्थ इसो कियो, ते सांभलजो प्रसीध॥

११४. गर्भे मरि नैं सुर हुवै, ते सन्नी पंचेंद्री पर्याप्त।
तथारूप साधु ना सांभली, धर्म वचन दिल व्याप्त॥

११५. धर्म तणो तिरस्यो थको, काल करी सुर होय।
ए अर्थ धर्मसी - यंत्र में, ते लिख्यो इहां अवलोय॥

११६. लूंकां नीं हुंडी अछै, बोल अठावन तास।
तिहां समण माहण बिहुं पाठ नों, कियो साधु अर्थ विमास॥

(ज० स०)

११७. सतर अंक नों देश ए, सरस बावीसमीं ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय थी 'जय-जश' संपति माल॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : २३

दूहा

१. बलि विशेषे गर्भ नों, प्रश्न गोयम पूछंत।
उत्तर श्रीजिन आखियो, ते सुणज्यो धर खंत ।।

२. *हे प्रभु ! गर्भ विषे रह्यो, उत्तानक छत्राकार।
पसवाड़ा नै भारे करी, रहै गर्भ मझार ।।

३. अंब फल नीं पर कूबडो, ऊर्द्ध स्थान खडो थाय।
अथवा वेसै भली परै, कै शयन करै गर्भ मांय ?

४. माता सूअै जद ए सूअै, माता जाग्यां जागंत ?
माता सुखे गर्भ पिण सुखी, दुखे दुखी थावंत ?

५. जिन कहै—हंता गोयमा ! गर्भ रह्यो थको जन्त।
जाव माता दुखणो छतै, सुत पिण दुख वेदंत ।।

६. अथ हिव जन्म समय विषै, सिर करनै जनमंत।
अथवा जन्मै पगे करी, घात रहित निकलंत ।।

७. तिरिछो थइ नै उदर थी, नीकलवूं वरते सोय।
तो नीकलवूं तो हुवै नहीं, पामै मरण सुजोय ।।

८. गर्भ थकी हिव नीकल्यो, जेह जीव नैं जाण।
सुभ असुभ फल भोगवै, सुणियै तेह सुजाण ।।

९. यश प्रतिहत करणार जे, कर्म सामान्य थी बंध।
पुट्ठाइं पोषित अधिक ही, गाढा बंध्या सुसंध।

१०. अथवा बद्धाइं पाठ जे, असुभ कर्म बंध्या जेह।
पुट्ठाइं पहिला फर्श्या तिके, द्वितीय अर्थ छै एह ।।

११. निद्धत्त ते उद्वर्तन अपवर्तन वरजी शेष।
करण अयोग्यपणै करी, थाप्या संपेष ।।

१२. कडाइं ते सर्व करण नैं, अयोग्यपणैं करि जाण।
स्थापित कर्म पूर्व भवै, एह निकाचित आण ।।

१३. गति मनुष्य पंचेंद्रिय जात जे, त्रसादि नाम संघात।
उदयपणै करि स्थापिया, पट्ठवियाइं कहात ।।

१४. तीव्र अनुभाव तेणं करी, उदय सनमुख भूत।
आफेइ उदय ते आविया, नहिं उपशम नों सूत ।।

*लय—सीता सती सुत जनमीया

२-४. जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे उत्ताणए वा पासल्लए वा अंबखुज्जए वा अच्छेज्ज वा ? चिट्ठेज्ज वा ? निसीएज्ज वा ? तुयट्टेज्ज वा ? माउए सुयमाणीए सुवइ ? जागरमाणीए जागरइ ? सुहियाए सुहिए भवइ ? दुहियाए दुहिए भवइ ?

५. हंता गोयमा ! जीवे णं गब्भगए समाणे जाव दुहियाए दुहिए भवइ।

६, ७. अहे णं पसवणकालसमयंसि सीसेण वा पाएहिं वा आगच्छति सममागच्छति, तिरियमागच्छति विणिहायमावज्जति।

९. वण्णवज्झाणि य मे कम्माइं बद्धाइं पुट्ठाइं
'वण्णवज्झाणि य' त्ति वर्ण्याः—श्लाघा वध्यो—हन्तव्यो येषां तानि वर्णवध्यानि। बद्धानि सामान्यतः, पोषितानिगाढतरबन्धनतः। (वृ०-प० ९०)

१०. अथवा बद्धानि, कथम् ? यतः पूर्वं स्पृष्टानीति। (वृ०-प० ९०)

११. निहत्ताइं
उद्वर्त्तनापवर्तनकरणवर्जशेषकरणायोग्यत्वेन व्यवस्थापितानीत्यर्थः। (वृ०-प० ९०)

१२. कडाइं
'कडाइं' ति निकाचितानि सर्वकरणायोग्यत्वेन व्यवस्थापितानीत्यर्थः। (वृ०-प० ९०)

१३. पट्ठवियाइं
'पट्ठवियाइं' ति मनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजातित्रसादिनामकर्मादिना सहोदयत्वेन व्यवस्थापितानीत्यर्थः। (वृ०-प० ९०)

१४. अभिनिविट्ठाइं अभिसमण्णागयाइं उदिण्णाइं—नो उवसंताइं भवंति,
'अभिनिविट्ठाइं' ति तीव्रानुभावतया निविष्टानि,'अभिसमन्नागयाइं' ति उदयाभिमुखीभूतानीति। (वृ०-प० ९०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. ते कर्म उदय हुवै एहवो, भूंडो रूप आकार।
दुवर्ण दुर्गंध दुरस, अशुभ फर्श दुखकार॥

१६. अनिष्ट ते सुखकारी नहीं, अकांत अप्रिय जाण।
अशुभ अमनोज्ञ अमनाम ते, एकार्थ पहिछाण॥

१७. हीन स्वर ते अल्प स्वर हुवै, दीन दुखी नर जेह।
तेहना स्वर सरिखो हुवै, कह्यूं दीन - स्वर तेह॥

१८. अनिष्ट स्वर अकांत स्वर, अप्रिय स्वर जास।
असुभ मनगमतो नथी, अतिअणगमतो तास॥

१९. तिहां जनम्यां छतो पिण ह्वै इसो, अनादेज - वचन्न।
वचन कोइ तसुं नादरै, असुभ कर्म फल जन्न॥

२०. यश प्रनिहत करणार जे, अशुभ कर्म बंध्या नांय।
प्रश्न कहिवूं तेहनै, जाव आदेज-वच थाय॥

२१. इम पुन्य कर्म उदय करी, रूप वर्णादिक जोय।
गमतो लागै सहु भणी, सेवं भंते ! सेव भंते ! सोय॥

२२. अर्थ प्रथम शत सातमों, ए तेवीसमीं ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' मंगलमाल॥

॥ प्रथमशते सप्तमोद्देशकार्थः १।७ ॥

१५. तओ भवइ दुरूवे दुवण्णे दुग्गंधे दुरसे दुफासे

१६. अणिट्ठे अकंते अप्पिये असुभे अमणुण्णे अमणामे

१७. हीणस्सरे दीणस्सरे
'हीणस्सरे' त्ति अल्पस्वरः 'दीणस्सरे' त्ति दीनस्येव—दुःस्थितस्येव स्वरो यस्य स दीनस्वरः। (वृ०-प० ६०)

१८. अणिट्ठस्सरे अकंतस्सरे अप्पियस्सरे असुभस्सरे अमणुण्णस्सरे। अमणामस्सरे

१९. अणाएज्जवयणे पच्चायाए या वि भवइ।

२०. वण्णवज्जाणि य से कम्माइं नो बद्धाइं पसत्थं नेयव्वं जाव आदेज्जवयणे पच्चायाए या वि भवइ।
(श० १।३५७)

२१. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श० १।३५८)

ढाल : २४

दूहा

१. सप्तमुदेशे अंत में, कही गर्भ नी बात।
गर्भ छतै हुवै आउखो, हिवै आयु अवदात॥

*प्रभुजी ! हो, वीर नैं गोयम वीनवै, वीनवै बे कर जोड़। (ध्रुपदं)

२. प्रभुजी ! हो, एकांत बाल मनुष्य तिको, विरति-रहित नो विरतंत।
प्रभुजी ! हो, बांधै नरक नो आउखो, जाव देव आयु पकरंत ?

३. नरक आयु बांधी करी, नरक विषै उपजंत ?
तिरि मणु सुर आयु करी, तिरि मणु सुरपणै हुंत ?

वा०—इहां वृत्तिकार कह्यु ं—एकांत बाल में मिथ्याती अनैं अविरति-सम्यग्-दृष्टि पिण आया। ए बिहूं में बालपणा नी समानता छते पिण अविरति-सम्यग्-दृष्टि मनुष्य देवता नों हीज आउखो बांधै। पिण अनेरो न बांधै।[1]

१. गर्भवक्तव्यता सप्तमोद्देशकस्यान्ते उक्ता, गर्भवासश्चायुषि सतीत्यायुर्निरूपणायाह—· (वृ०-प० ६०)

२, ३. एगंतबाले णं भंते ! मणुस्से किं नेरइयाउयं पकरेति ? तिरिक्खाउयं पकरेति ? मणुस्साउयं पकरेति ? देवाउयं पकरेति ? नेरइयाउयं किच्चा नेरइएसु उववज्जति ? तिरियाउयं किच्चा तिरिएसु उववज्जति ? मणुस्साउयं किच्चा मणुस्सेसु उववज्जति ? देवाउयं किच्चा देवलोगेसु उववज्जति ?
वा०—'एगंतबाले' इत्यादि, 'एकान्तबालः' मिथ्यादृष्टिरविरतो वा, एकान्तग्रहणेन मिश्रतां व्यवच्छिनत्ति, यच्चैकान्तबालत्वे...समानेऽप्यविरतसम्यग्दृष्टिर्मनुष्यो देवायुरेव प्रकरोति न शेषाणि। (वृ०-प० ६०)

*लय—भाभीजी हो डूंगरिया हरिया हुवा

१. एकान्त-बाल मिथ्यादृष्टि या अविरत-सम्यक्दृष्टि कहलाता है। यहां एकान्त-बाल का ग्रहण करने से मिश्र-बालपंडित का व्यवच्छेद हो गया।

(शेष अग्रिम पृष्ठ पर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमजी ! हो वीर प्रभु इम वागरै, वागरै अमृत वाण। (ध्रुपदं)

४. एकांत बाल मनुष्य तिको, नरक आयु पकरंत।
तिर्यंच मनुष्य नैं देव नुं, आउखो ते बांधंत॥

५ नरक आउखो बांधी करी, नरक विषै उपजंत।
तिरि मणु देव आयु करि, तिरि मणु सुरपणैं हुंत॥

६. प्र० ! एकांत पंडित संजती, स्यूं नरक आयु पकरंत ?
यावत् सुर आयु करी, देवलोके उपजंत ?
७. गो० ! एकांत पंडित मनुष्य ते, कदाच आयु पकरंत।
कदाच आयु बांधे नहीं, जो बांधै तो देवायु बंधंत॥

८. प्र० ! किण अर्थे सुर बंध कह्यूं ? तब भाखै जिन भाण।
गो० ! एकांत पंडित मनुष्य नैं, निकेवल वे गति जाण॥
९. अंतक्रिया शिवपद लहै, अथवा कल्प उपपात।
कल्प शब्द सामान्य थी, वैमानिक विख्यात॥

१०. प्र० ! बाल-पंडित मणु श्रावक, स्यूं नरक आयु पकरंत ?
जाव देवायु बांधी करी, देव विषै उपजंत ?
११. गो० ! नरक तिर्यंच मनुष्य तणुं, आउखो नहीं बांधंत।
जाव देवायु बांधी करी, देव विषै उपजंत॥
१२. प्र० ! किण अर्थे जाव सुर तणुं, आयु बांधी सुर थाय ?
वीर कहै सुण गोयमा ! बाल-पंडित नूं न्याय॥
१३. गो० ! तथारूप श्रमण माहण कनैं, इक पिण आर्य उत्तम्म।
धर्म संबंधी भला वचन नैं, सुण दिलधारी निसम्म॥
१४. गो० ! देश ते स्थूल हिंसादिक थकी, निवर्त्यो विरति विचार।
देश स्थावर हिंसा थकी निवर्त्यो नहीं तिणवार॥
१५. देश ते स्थूल हिंसादिक तणां, कीधा तिण पचखाण।
देश स्थावर हिंसादिक तणां, त्याग न कीधा जाण॥

४. गोयमा ! एगंतबाले णं मणुस्से नेरइयाउयं पि पकरेति, तिरियाउयं वि पकरेति, मणुस्साउयं पि पकरेति, देवाउयं पि पकरेति,

५. नेरइयाउयं किच्चा नेरइएसु उववज्जति, तिरियाउयं किच्चा तिरिएसु उववज्जति, मणुस्साउयं किच्चा मणुस्सेसु उववज्जति, देवाउयं किच्चा देवलोगेसु उववज्जति। (श० १।३५९)

६, ७. एगंतपंडिए णं भंते ! मणुस्से किं नेरइयाउयं पकरेति ? जाव देवाउयं किच्चा देवलोएसु उववज्जति ? गोयमा ! एगंतपंडिए णं मणुस्से आउयं सिय पकरेति, सिय णो पकरेति, जइ पकरेति...देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जति। (श० १।३६०)

८, ९. से केणट्ठेणं जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जति ? गोयमा ! एगंतपंडियस्स णं मणुस्सस्स केवलमेव दो गतीओ पण्णायंति, तं जहा—अंतकिरिया चेव, कप्पोववत्तिया चेव। (श० १।३६१)

९. कल्पशब्दः सामान्येनैव वैमानिकदेवाऽऽवासाभिधायक इति। (वृ०-प० ६१)

१०. बालपंडिए णं भंते ! मणुस्से किं नेरइयाउयं पकरेति जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जति ?

११. गोयमा ! बालपंडिए णं मणुस्से णो नेरइयाउयं पकरेति... देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जति। (श० १।३६२)

१२-१४. से केणट्ठेणं जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जति ? गोयमा ! बालपंडिए णं मणुस्से तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा निसम्म देसं उवरमइ, देसं णो उवरमइ,

१५. देसं पच्चक्खाइ, देसं णो पच्चक्खाइ।

एकान्त बालत्व की दृष्टि से सभी एकान्त बाल समान हैं, फिर भी वे महा-आरंभ, उन्मार्ग-देशना, कषाय की अल्पता और अकाम निर्जरा आदि अपने-अपने हेतुओं के कारण क्रमशः नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति का आयुष्य बांधते हैं।

अविरत-सम्यक्दृष्टि एकान्त बाल है, इसलिए उसके भी उपर्युक्त चारों गतियों में आयुष्य का बंध होना चाहिए, किन्तु वह केवल देवगति का ही आयुष्य बांधता है; क्योंकि भगवती शतक ३०।२९ में कहा है—क्रियावादी-सम्यग्दृष्टि मनुष्य केवल एक वैमानिक देव का ही आयुष्य बांधता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. देश-निवृत्त देश-पचखाणी, नरक आयु न बंधंत।
यावत् सुर-पदवी लहै, तिण अर्थे जाव सुर हुंत ।।

१६. से तेणं, देसोवरम-देसपच्चक्खाणेणं णो नेरइयाउयं पकरेति जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जति। से तेणट्ठेणं जाव देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जति।
(श० १।३६३)

१७. आउखो बंधवा तणुं, कारण आश्रव जाण।
तिण सूं कर्म-बंध क्रिया तणां, हिव पंच सूत्र पिछाण ।।

१७. आयुर्बन्धस्य क्रिया: कारणमिति क्रियासूत्राणि पञ्च।
(वृ०-प० ९१)

१८. प्र०! कच्छ प्रमुख स्थानक विषै, मृग वध करिवा ताय।
बैठो छै कोइ मानवी, ते माटे कहिवाय ।।

१९. नदी जले वींटचा तरु, कच्छ तास कहिवाय।
द्रह तथा जलाशय मात्र में, द्रव—तृणादि-समुदाय ।।

१८, १९. पुरिसे णं भंते! कच्छंसि वा दहंसि वा उदगंसि वा दवियंसि वा (श० १।३६४)
'कच्छे' नदीजलपरिवेष्टिते वृक्षादिमति प्रदेशे उदके—जलाश्रयमात्रे 'द्रविके' तृणादि द्रव्यसमुदाये।
(वृ०-प० ९२)

२०. वलय-वृत्ताकार जे जल, नदी प्रमुख ना जाण।
तेह कुटिल गति सहित छै, जेह विषै पहिछाण ।।

२०. वलयंसि वा
'वलये' वृत्ताकारनद्याद्युदककुटिलगतियुक्तप्रदेशे।
(वृ०-प० ९२)

२१. णूम—अंधार सहित छै, तेह विषै पहिछाण।
गहन - ते वृक्ष वल्ली लता, तास समूह विषै जाण ।।

२१. नूमंसि वा गहणंसि वा
'नूमे' अवतमसे 'गहने' वृक्षवल्लीलतावितानवीरुत्समुदाये।
(वृ०-प० ९२)

२२. पर्वत ना एक देश में, तरु—वल्यादि-समुदाय।
गहन—विदुर्ग कह्यो तसुं, तथा पर्वत विषै ताय ।।

२२. गहणविदुग्गंसि वा पव्वयंसि वा
'गहनविदुर्गे' पर्वतैकदेशावस्थितवृक्षवल्ल्यादिसमुदाये।
(वृ०-प० ९२)

२३. पर्वत—विदुर्ग ते गिरि तणां, समुदाय ते प्रत्यक्ष।
वन इक जाति तरु घणां, वन-विदुर्ग नाना वृक्ष ।।

२३. पव्वयविदुग्गंसि वा वणंसि वा वणविदुग्गंसि वा
'पव्वयविदुग्गंसि व' त्ति पर्वतसमुदाये 'वने' एकजातीयवृक्ष-समुदाये वणविदुग्गंसि व' त्ति नानाविधवृक्षसमूहे।
(वृ०-प० ९२, ९३)

२४. एतला स्थानक नैं विषै, वधक नर पहिछान।
मृग हणेवा कारणैं, बैठो छै धर ध्यान ।।

२५. मृगे करी आजीविका, मृग हणवा अध्यवसाय।
एकाग्र चित्त मृग-वध-विषै, मृग हणवा कच्छादि जाय ।।

२५. मियवित्तीए मियसंकप्पे मियपणिहाणे मियवहाए गंता

२६. ए मृग इम कहि मारिवा, मृग ग्रहण नैं काज।
कूटपास रचना करै, केतली क्रिया समाज?

२६. एते मिय त्ति काउं अण्णयरस्स मियस्स वहाए कूडपासं उद्दाति, ततो णं भंते! से पुरिसे कतिकिरिए?

२७. गो०! जिन कहै ते पुरुष कच्छ विषै, जाव कूटपास रचै संच।
ते पुरुष नैं तीन क्रिया कदा, कदा च्यार कदा पंच ।।

२७. गोयमा! जाव च णं से पुरिसे कच्छंसि वा जाव कूडपासं उद्दाइ ताव च णं से पुरिसे सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए। (श० १।३६४)

२८. प्र०! गोयम पूछै किण कारणै? तब भाखै जिनराय।
गो०! ते क्रिया-कर्ता बंधन रचै, पिण बांधै मारै नांय ।।

२८. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—सिय तिकिरिए? सिय चउकिरिए? सिय पंचकिरिए? गोयमा! जे भविए उद्दवणयाए—णो बंधणयाए, णो मारणयाए—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९. ते पुरुष नैं तीन क्रिया तदा, धुर गमनादि चेष्टा काय।
अहिगरणि पास रूप ते, पाउसिया दुष्ट अध्यवसाय॥

३०. ते क्रिया-कर्ता पासा रचै, मृग नै बांधै तिवार।
च्यार क्रिया ते पुरुष नैं, चौथी परितापना नी धार॥

३१. ते क्रिया-कर्ता पासा रचै, मृग बांधी मारंत।
पंच क्रिया ते पुरुष नैं, पाणाइवाय पिण हुंत॥

३२. तिण अर्थे जाव पच है, वलि गोयम पूछंत।
प्र० ! पुरुष प्रभ् कच्छ नै विषै, जाव वन-विदुर्ग जंत॥

३३. ऊंचा करि तृण एकठा, मांहै घालै तेउकाय।
क्रिया किती तिण पुरुष नैं ? वारू अर्थ बताय॥

३४. गो० ! जिन कहै—तीन क्रिया कदा, कदा च्यार कदा पंच।
गोयम पूछै किण कारणै ? तब जिन भाखै संच॥

३५. जे जीव तृणा करै एकठा, तीन क्रिया तव होय।
अग्नि घाली पीडा कियां, परितावणिया चउथी जोय॥

३६. जे जीव तृणा करी एकठा, अग्नि घाली बालेह।
पंच क्रिया छै तेहनैं, तिण अर्थे कह्यूं एह॥

३७. प्र०! पुरुष प्रभु ! कच्छ नैं विषै, जाव वन-विदुर्ग रै मांय।
मृगे करि आजीविका, मृग वध अध्यवसाय॥

३८. मृग वध एकाग्र चित्त छै, मृग वध अर्थे जंत।
ए मृग इम कहो मृग नैं हणवा बाण मूकंत॥

३९. क्रिया किती ते पुरुष नैं ? जिन कहै तीन कदाचि।
कदाचित् चिउं, पंच कदा, किण अर्थे ए वाचि ?

४०. गो० ! जे पुरुष बाण काढ्यो तदा, पिण बींध्यो मारचो नांय।
तीन क्रिया ते पुरुष नैं, बींध्यां चउथी थाय॥

२९. तावं च णं से पुरिसे काइयाए, अहिगरणियाए, पाओसियाए—तिहिं किरियाहिं पुट्ठे।
'काइयाए' त्ति गमनादिकायचेष्टारूपया 'अहिगरणियाए' त्ति अधिकरणेन—कूटपाशरूपेण निर्वृत्ता या सा तथा तया 'पाउसियाए' त्ति प्रद्वेषो—मृगेषु दुष्टभावस्तेन निर्वृत्ता प्राद्वेषिकी। (वृ०-प० ९३)

३०. जे भविए उद्दवणताए वि, बंधणताए वि—णो मारणताए—तावं च णं से पुरिसे काइयाए, अहिगरणियाए, पाओसियाए, पारितावणियाए—चउहिं किरियाहिं पुट्ठे।

३१. जे भविए उद्दवणताए वि, बंधणताए वि, मारणताए वि, तावं च णं से पुरिसे काइयाए, अहिगरणियाए, पाओसियाए, पारितावणियाए, पाणातिवायकिरियाए—पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे।

३२, ३३. से तेणट्ठेणं जाव पंचकिरिए। (श० १।३६५)
पुरिसे णं भंते ! कच्छंसि वा जाव वणविदुग्गंसि वा तणाइं ऊसविय-ऊसविय अगणिकायं निसिरइ—तावं च णं भंते ! से पुरिसे कतिकिरिए ?

३४. गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए। (श० १।३६६)
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—सिय तिकिरिए ? सिय चउकिरिए ? सिय पंचकिरिए ?

३५. गोयमा ! जे भविए उस्सवणयाए तिहिं, उस्सवणयाए वि निसिरणयाए वि नो दहणयाए चउहिं,

३६. जे भविए उस्सवणयाए वि निसिरणयाए वि दहणयाए वि तावं च णं से पुरिसे काइयाए जाव पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।(श० १।३६७)

३७, ३८. पुरिसे णं भंते ! कच्छंसि वा जाव वणविदुग्गंसि वा मियवित्तीए मियसंकप्पे मियपणिहाणे मियवहाए गंता एते 'मिय त्ति' काउं अण्णतरस्स मियस्स वहाए उसुं निसिरति,

३९. तओ णं भंते ! से पुरिसे कतिकिरिए ? गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए। (श० १।३६८)
से केणट्ठेणं भंते !

४०. गोयमा ! जे भविए निसिरणयाए—णो विद्धंसणयाए, णो मारणयाए—तावं च णं से पुरिसे...तिहिं किरियाहिं पुट्ठे। जे भविए निसिरणताए वि, विद्धंसणताए वि—णो मारणयाए—तावं च णं से पुरिसे...चउहिं किरियाहिं पुट्ठे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१. ते पुरुष बाण काढ्यो वली, वींध्यो मारचो संच।
पंच क्रिया ते पुरुष नैं, तिण अर्थे त्रिण चउ पंच ।।

४१. जे भविए निसिरणयाए वि, विद्धंसणयाए वि, मारणताए वि—तावं च णं से पुरिसे जाव पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।
(श० १।३६९)

४२. प्र० ! पुरुष कोई कच्छ नैं विषै, जावत् मृग वध काज।
यत्नपणैं कानां लगैं, बाण खांची रहै स्हाज ।।

४२. पुरिसे णं भंते ! कच्छंसि वा जाव...सियस्स वहाए आयत-कण्णायतं उसुं आयामेत्ता चिट्ठेज्जा,

४३. अन्य पुरुष कोइ पूठ थी, आवी तेहनुं सोय।
निज हाथे खड्गे करी, मस्तक छेदे कोय ।।

४३. अण्णयरे पुरिसे मग्गतो आगम्म सयपाणिणा असिणा सीसं छिंदेज्जा,

४४. पूर्वे शर खांची रह्यो, मृग मारण नैं जेह।
बाण छूटो तसुं हाथ थी, वींधाणो मृग तेह ।।

४४, ४५. से य उसू ताए चेव पुव्वायामणयाए तं मियं विधेज्जा, से णं भंते ! पुरिसे किं मियवेरेणं पुट्ठे ? पुरिसवेरेणं पुट्ठे ?

४५. हे भगवन् ! ते पुरुष नैं, खडग थी मारणहार।
स्यूं फर्यो मृग वैरे करि ? कै पुरुष वेरेण विचार ?

४६. गो० ! जे बाण सांध्यो मृग मारिवा, ते मृग-वध करि फर्शत।
जे खडगे करि पुरुष मारियो, तसुं वध पुरुष नों हुंत ।।

४६. गोयमा ! जे मियं मारेइ, से मियवेरेणं पुट्ठे। जे पुरिसं मारेइ, से पुरिसवेरेणं पुट्ठे। (श० १।३७०)

४७. गोयम कहै—किण कारणैं ? जिन कहै—धनु-कांडादि।
करिवा लागो तेहनैं, कीधो कहियै वादि ?

४७. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—जाव पुरिसवेरेणं पुट्ठे ? से नूणं गोयमा ! कज्जमाणे कडे ?

४८. पुणच विषै शर सांधवा, आरोपवा लागो ताम।
सांध्यो आरोप्यो तेहनैं कहियै इह विध आम ?

४८. संधिज्जमाणे संधिते ?

४९. पुणच प्रते खांची करी, अतिहि वर्तुलाकार।
करवा मांड्यूं धनुष्य नैं, कीधो कहियै तिवार ?

४९. निव्वत्तिज्जमाणे निव्वत्तिते ?

५०. नीसरवा मांड्यो तदा, धनुष्य थकी जे बाण।
नीसरियो कहिजै तसुं ? इम पूछै जगभाण ।।

५०. निसिरिज्जमाणे निसिट्ठे त्ति वत्तव्वं सिया ?

५१. प्र०! गोयम कहै—हंता प्रभु! करवा मांड्यो ते कीधो कहाय।
जाव बाण नीसरवा मांडियो, कहियै नीसरियो ताय ।।

५१. हंता भगवं ! कज्जमाणे कडे जाव निसिट्ठे त्ति वत्तव्वं सिया।

५२. तिण अर्थे करि गोयमा ! मृग हणै चित गैर।
मृग-वैर फरस्यो कह्यो, पुरुष हणै ते नर-वैर ।।

५२. से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—जे मियं मारेइ, से मियवेरेणं पुट्ठे। जे पुरिसं मारेइ, से पुरिसवेरेणं पुट्ठे।

५३. शर थी छ मास में मृग मरै, तो मृग वधक क्रिया पंच।
छ मास उपरंत जो मरै, तो च्यार क्रिया नो संच ।।

५३. अंतो छण्हं मासाणं मरइ—काइयाए जाव पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे। बाहिं छण्हं मासाणं मरइ—काइयाए जाव पारितावणियाए—चउहिं किरियाहिं पुट्ठे।
(श० १।३७१)

५४. प्रहार हेतु मरण छै, छ मास लग ते जाण।
छ मास उपरंत मरण ते, परिणामंतर पहिछाण ।।

५४. षण्मासान् यावत् प्रहारहेतुकं मरणं परतस्तु परिणामान्तरापादितमिति कृत्वा षण्मासादूर्ध्वं प्राणातिपातक्रिया न स्यादिति हृदयम्। (वृ०-प० ९३)

५५. वृत्तिकार इसडी कही, ए ववहार-नय अपेक्षाय।
प्रहार हेतु मरण ते, छ मास थी पिण अधिकाय ।।

५५. एतच्च व्यवहारनयापेक्षया प्राणातिपातक्रियाव्यपदेशमात्रोपदर्शनार्थमुक्तम्, अन्यथा यदा कदाऽप्यधिकृतं प्रहारहेतुकं मरणं भवति तदैव प्राणातिपातक्रिया इति।
(वृ०-प० ९३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६. प्र० ! पुरुष भदंत ! पुरुष प्रतै, शक्ति करीनै हणंत ।
अथवा ते नर निज हाथ सूं, खड्गे शिर छेदंत ।।

५७. क्रिया किती ते पुरुष नै ? जिन कहै—उत्तर तंत ।
शक्ति अथवा निज कर हणैं, ते क्रिया पंच फर्शत ।।

५८. प्र० ! आसन्न वध ह्वै जे थकी, वलि अनवकांक्षणवृत्त ।
एहवा पुरुष वेरे करी, फरसै ते अपवित्त ।।

५६, ५७. पुरिसे णं भंते ! पुरिसं सत्तीए समभिधंसेज्जा, सयपाणिणा वा से असिणा सीसं छिंदेज्जा, तओ णं भंते ! से पुरिसे कतिकिरिए ?
गोयमा ! जावं च णं से पुरिसे तं पुरिसं सत्तीए समभिधंसेति, सयपाणिणा वा से असिणा सीसं छिंदति—तावं च णं से पुरिसे...पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे ।

५८. आसण्णवधएण य अणवकंखणवत्तीए णं पुरिसवेरेणं पुट्ठे । (श० १।३७२)

सोरठा

५९. अनवकांक्षण - वृत्त, अपेक्षा रहित ज वर्तवूं ।
पर-प्राण-वांछा नहिं चित्त, अथवा निज दुख परिहार नीं ।।

५९. अनवकांक्षणा—परप्राणनिरपेक्षा स्वगतापायपरिहारनिरपेक्षा वा वृत्तिः—वर्त्तनं यत्रैव वैरे तत्तथा तेनानवकांक्षणवृत्तिकेनेति । (वृ०-प० ९४)

६०. *इम पुरुष वैर फर्श्यो तिको, तिणहिज भव मझार ।
अथवा भुगतै परभवै, कर्म हेतु दुख भार ।।

६१. शतक प्रथम देश अष्टमो, एह चोबीसमीं ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' संपति विशाल ।।

६२. धन-धन गोयम गणहरू, ज्यां पूछ्या प्रश्न उदार ।
धन-धन प्रभु उत्तर आपिया, धन-धन शासन सार ।।

ढाल : २५

दूहा

१. क्रिया ना अधिकार थी, हिव तेहिज विस्तार ।
युद्ध रूप क्रिया तणो, गोयम प्रश्न उदार ।।

+वीर नै गोयम वीनवै (ध्रुपदं)

२. वे नर सरिखा कुशलपणैं, प्रमाण आदिपणैं दीस । प्रभुजी ।
सरिखी त्वचा, वय ना धणी, भंड उपगरण सरीस ।। प्रभुजी ।।

२. दो भंते ! पुरिसा सरिसया सरित्तया सरिव्वया सरिसभंडमत्तोवगरणा
'सरिसय' त्ति सदृशकौ कौशलप्रमाणादिना ।
(वृ०-प० ९४)

३. संग्राम आपस में करै, एक हारै जीतै एक ।
हे भदंत ! किण कारणै ? जिन कहै सुण सुविशेख ।।

४. जीतै सवीर्य पराक्रमी, अवीर्यवंत हारंत ।
गोयम कहै—किण कारणै ? तव भाखै भगवंत ।।

३, ४. अण्णमण्णेणं सद्धिं संगामं संगामेंति तत्थ णं एगे पुरिसे पराइणति, एगो पुरिसे परायिज्जति । से कहमेयं भंते ! एवं ? गोयमा ! सवीरिए परायिणति, अवीरिए परायिज्जति । (श० १।३७२)
से केणट्ठेणं जाव परायिज्जति ?

*लय—भाभीजी हो डूंगरिया हरिया हुवा
+लय—धन्न सीमंधर स्वामजी !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. वीर्य अंतराय कर्म जिणे, न बांध्यो न फर्श्यो कोय।
जाव उदय आयो नहीं, उपशांत तसुं जय होय॥

६. वीर्य अंतराय बांधियो, जाव उदय आयां हुवै हार।
तिण अर्थे करिनें कह्यो, पूरव वृत्त प्रकार॥

७. वीर्य ना अधिकार थी, वीर्य प्रश्न पूछाय।
हे प्रभु! जीव सवीरिया, अवीरिया कहिवाय?

८. जिन कहै—सांभल गोयमा! वीर्य-सहित पिण जीव।
वीर्य-रहित पिण जीव छै, किण अर्थे ए कहीव?

९. जिन कहै—जीव द्विविध कह्या, संसारी नै असंसार।
असंसारी अवीरिया, संसारी दोय प्रकार॥

१०. सेलेशी गुणस्थान चवदमें, असेलेशी गुण तेर।
सेलेशी लब्धि-सवीरिया, करण-अवीरिया हेर॥

११. असेलेशी लब्धि-वीर्य थी सवीरिया कहिवाय।
करण-वीर्ये करि उभय छै, सवीर्य अवीर्य ताय॥

१२. पर्याप्ता करण-वीर्य थी, सवीरिया कहिवाय।
अपर्याप्ता करण-वीर्य थी, अवीरिया ए न्याय॥

१३. तिण अर्थे करि जीवड़ा, वीर्य सहीत रहीत।
नेरइया प्रभु! स्यूं सवीरिया, कै अवीरिया संगीत?

१४. जिन कहै—लब्धि वीर्य करी, नरक सवीरिया होय।
करण-वीर्य करि सवीरिया, अवीरिया पिण जोय॥

१५. किण अर्थे तब जिन कहै, जे नेरइया नै छै उठाण।
कर्म बल वीर्यादिक अछै, पर्याप्ता पहिछाण॥

१६. ते नेरइया लब्धि वीर्य करी, सवीरिया अवलोय।
करण-वीर्य करि पिण तिके, सवीरिया छे सोय॥

१७. जे नरक रै उठाणादिक नहीं, लब्धि वीर्य करि तेह।
सवीरिया कहियै अछै, करण अवीरिया जेह॥

५. गोयमा! जस्स णं वीरियवज्झाइं कम्माइं नो बद्धाइं नो पुट्ठाइं जाव नो अभिसमण्णागयाइं नो उदिण्णाइं—उवसंताइं भवंति से णं परायिणति।

६. जस्स णं वीरियवज्झाइं कम्माइं बद्धाइं जाव उदिण्णाइं णो उवसंताइं भवंति से णं पुरिसे पराजिज्जति, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चति—सवीरिए परायिणति, अवीरिए परायिज्जति। (श० १।३७४)

७. जीवा णं भंते! किं सवीरिया? अवीरिया?

८. गोयमा! सवीरिया वि, अवीरिया वि। (श० १।३७५)
से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—जीवा सवीरिया वि? अवीरिया वि?

९. गोयमा! जीवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—संसारसमावण्णगा य, असंसारसमावण्णगा य। तत्थ णं जे ते असंसारसमावण्णगा ते णं सिद्धा। सिद्धा णं अवीरिया। तत्थ णं जे ते संसारसमावण्णगा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१०. सेलेसिपडिवण्णगा य, असेलेसिपडिवण्णगा य। तत्थ णं जे ते सेलेसिपडिवण्णगा ते णं लद्धिवीरिएणं सवीरिया, करणवीरिएणं अवीरिया।

११. तत्थ णं जे ते असेलेसिपडिवण्णगा ते णं लद्धिवीरिएणं सवीरिया, करणवीरिएणं सवीरिया वि, अवीरिया वि।

१२. 'सवीर्याः' उत्थानादिक्रियावन्तः अवीर्यास्तूत्थानादिक्रियाविकलाः, ते चापर्याप्त्यादिकालेऽवगन्तव्याः।
(वृ०-प० ६५)

१३. से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—जीवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सवीरिया वि, अवीरिया वि।
(श० १।३७६)
नेरइया णं भंते! किं सवीरिया? अवीरिया?

१४. गोयमा! नेरइया लद्धिवीरिएणं सवीरिया, करणवीरिएणं सवीरिया य, अवीरिया य। (श० १।३७७)

१५, १६. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—नेरइया लद्धिवीरिएणं सवीरिया? करणवीरिएणं सवीरिया य? अवीरिया य? गोयमा! जेसि णं नेरइयाणं अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे, ते णं नेरइया लद्धिवीरिएण वि सवीरिया, करणवीरिएण वि सवीरिया।

१७. जेसि णं नेरइयाणं णत्थि उट्ठाणे जाव परक्कमे, ते णं नेरइया लद्धिवीरिएणं सवीरिया, करणवीरिएणं अवीरिया। (श० १।३७८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. जिम नारकी तिम जाव ते, तिरि पंचेंद्री तेह।
मनुष्य ओघिक जीव ज्यूं, णवरं सिद्ध वरजेह॥

१८. जहा नेरइया एवं जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणिया।
(श० १।३७६)
मणुस्सा जहा ओहिया जीवा णवरं सिद्धवज्जा भाणियव्वा। (श० १।३८०, ३८१)

१९. वाणव्यंतर नैं जोतिषी, वैमानिक सुविशेष।
कहिवा नरक तणी परै, सेवं भंते! सेवं भंते! एष॥

२०. एम कही गोयम गणी, प्रणमी वीर जिनेश।
जावत् विचरै ए कह्यो, धुर शत अष्टमुदेश॥

२१. ढाल भली पणवीसमीं, भिक्खु भारीमाल ऋषिराय।
'जय-जश' सुख-संपति सदा, गण-वृद्धि हरष सवाय॥

प्रथमशते अष्टमोद्देशकार्थः॥१।८॥

१९, २०. वाणमंतर-जोतिस-वेमाणिया जहा नेरइया।
(श० १।३८२)
सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति जाव विहरइ।
(श० १।३८३)

ढाल : २६

दूहा

१. अष्टमुदेशक अंत में, वीर्य तणो अधिकार।
वीर्य ते गुरु लघु हुवै, हिव ते प्रश्न उदार॥

२. तथा संगहणी गाह में, गुरुए पाठ उचार।
ते प्रतिपादनपर हिवै, नवम उद्देशक सार॥

१, २. अष्टमोद्देशकान्ते वीर्यमुक्तं, वीर्याच्च जीवा गुरुत्वाद्यासादयन्तीति गुरुत्वादिप्रतिपादनपरः तथा सङ्ग्रहण्यां यदुक्तं 'गुरुए' त्ति तत्प्रतिपादनपरश्च नवमोद्देशकः।
(वृ०-प० ९५)

*गोयम वीर नैं वीनवै। (ध्रुपदं)

३. किम प्रभु! जीव भारीपणो, पामै शीघ्र संजूत?
असुभ कर्म उपचय रूप जे, अधोगमन हेतुभूत॥

३. कहण्णं भंते! जीवा गरुयत्तं हव्वमागच्छंति?
'गुरुकत्वम्' अशुभकर्मोपचयरूपमधस्तादगमनहेतुभूतं।
(वृ०-प० ९५)

४. जिन कहै—प्राणातिपात सूं, मृषा अदत्तादान।
मिथुन परिग्रह क्रोध थी, मान माया लोभ जान॥

५. राग-द्वेष कलह वारमों, अभ्याख्यान दै आल।
पिशुन—चाडी अरति व्रत विषै, असंजम में रति न्हाल॥

६. परपरिवाद ए सोलमों, माया सहित मृषावाद।
मिथ्यादर्शणसल्ल ए, पाप अठारै प्रसाध॥

७. ए पाप अठारै सेवियां, सेवायां पिण सोय।
अनुमोद्यां भारी हुवै, अधोगमन अवलोय॥

४-७. गोयमा! पाणाइवाएणं मुसावाएणं अदिण्णादाणेणं मेहुणेणं परिग्गहेणं कोह-माण-माया-लोभ-पेज्ज-दोस-कलह-अब्भक्खाण-पेसुन्न-परपरिवाय-अरतिरति-मायामोस-मिच्छादंसणसल्लेणं—एवं खलु गोयमा! जीवा गरुयत्तं हव्वमागच्छंति। (श० १।३८४)

८. किम प्रभु! जीव हलकापणो पामै शीघ्र सुहाय?
जिन कहै—प्राणातिपात सूं वेरमण—निवर्तीय॥

९. जाव मिथ्यादर्शणसल्ल थी, निवर्त्तै—टालै सोय।
हलको होवै इह विधै, ऊर्द्धगमन अवलोय॥

८, ९. कहण्णं भंते! जीवा लहुयत्तं हव्वमागच्छंति?
गोयमा! पाणाइवायवेरमणेणं जाव मिच्छादंसणसल्लवेरमणेणं—एवं खलु गोयमा! जीवा लहुयत्तं हव्वमागच्छंति। (श० १।३८५)

*लय—लिछमण राम सूं वीनवै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. इम पाप अठारै सेविवै, संसार आउली करंत।
इम पाप अठार अणसेविवै, संसार परित्ती करै जंत ।।

११. इम पाप अठारै सेविवै, संसार दीर्घ करंतु।
इम पाप अठार अणसेविवै, संसार अल्प करै जंतु ।।

१२. इम पाप अठारै सेविवै, भ्रमण करै वारंवार।
इम पाप अठार अणसेविवै, अतिक्रमै संसार ।।

१३. प्रशस्त चउ मोक्ष अंग छै, अप्रशस्त चउ विपरीत।
गुरु लघु ना अधिकार ते, एहिज प्रश्न संगीत ।।

१४. प्रभु ! अवकाशांतर सातमो, भारे करि गुरु होय ?
कै लघु हलको भार थी, गुरुलघु अगुरुलघु जोय ?

१५. जिन कहै—एकांत गुरु नहीं, केवल लघु नहि कोय।
गुरुलघु पिण कहियै नहीं, अगुरुलघु इक होय ।।

वा०—अत्र वृत्तिकार कह्यु इहां लघुगुरु नीं ए व्यवस्था—

निश्चयनय थकी सर्व गुरु अथवा सर्व लघु द्रव्य न हुवै अनै व्यवहार थकी बादर स्कंध नै विषै सर्व गुरुपणो अनै सर्व लघुपणो जुदै। पिण अनेरा नै विषै न हुवै।

निश्चयनय नै मते चउफर्शी सूक्ष्म अनंत प्रदेशियो स्कंध अनै अरूपी द्रव्य ए अगुरुलघु हुवै। शेष बादररूपी द्रव्य गुरुलघु जाणवा। ए निश्चयनय नो मत कह्यु।

अनै व्यवहार थकी गुरु आदि च्यारूइं बोल छै, ते देखाडै छै। गुरु ते पाषाण अधोगमन थी। लघु ते धुंओ उर्द्धगमन थी। गुरुलघु ते वायु तिरछो गमन थी। अगुरुलघु ते आकाश तत्स्वभावपणा थी।

१६. तणुवाय सातमीं नरक नों, स्यूं प्रभु गुरु कहिवाय ?
कै लघु—हलको भारे करी, गुरुलघु अगुरुलघु थाय ?

१७. जिन कहै—एकांत गुरु नहीं, केवल लघु न कहाय।
गुरुलघु छै अपेक्षाय थी, अगुरुलघु नहि थाय ।।

१८. इम घणवाय सातमीं नरक नों, सप्तम घनोदधि देख।
पृथ्वी सातमीं नरक नीं, कहियै गुरुलघु एक ।।

१९. आकाश छहूंइ नरक नां, जिम सप्तम आकाश।
एक अगुरुलघु पामियै, तिण नहिं कहियै तास ।।

२०. जिम तणुवाय गुरुलघु, तिम सगला घनवाय।
घनोदधि पृथ्वी छहुं, कहियै ए वर न्याय ।।

सोरठा

२१. अवकाशांतर आदि, पूर्व कह्या छै ते वली।
गाथा अर्द्ध संवादि, तिण अनुसारे जाणवा ।।

१०. एवं संसारं आउलीकरेंति एवं परित्तीकरेंति

११. एवं दीहीकरेंति एवं ह्रस्सीकरेंति

१२. एवं अणुपरियट्टेंति एवं वीईवयंति

१३. पसत्था चत्तारि अपसत्था चत्तारि।
(श० १।३८६-३९१)

१४. सत्तमे णं भंते ! ओवासंतरे किं गरुए ? लहुए ? गरुय-लहुए ? अगरुयलहुए ?

१५. गोयमा ! णो गरुए, णो लहुए, णो गरुयलहुए, अगरुय-लहुए। (श० १।३९२)

वा०—इह चेयं गुरुलघुव्यवस्था—

निच्छयओ सव्वगुरुं सव्वलहुं वा न विज्जए दव्वं।
ववहारओ उ जुज्जइ बायरखंधेसु नऽण्णेसु ।।१।।
अगुरुलहू चउफासो अरुविदव्वा य होंति नायव्वा।
सेसा उ अट्ठफासा गुरुलहुया निच्छयणयस्स ।।२।।
(वृ०-प० ९६)

१६. सत्तमे णं भंते ! तणुवाए किं गरुए ? लहुए ? गरुयलहुए ? अगरुयलहुए ?

१७. गोयमा ! णो गरुए, णो लहुए, गरुयलहुए, णो अगरुय-लहुए। (श० १।३९३)

१८. एवं सत्तमे घणवाए, सत्तमे घणोदही, सत्तमा पुढवी।
(श० १।३९४)

१९. ओवासंतराइं सव्वाइं जहा सत्तमे ओवासंतरे।
(श० १।३९५)

२०. जहा तणुवाए एवं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूहा

२२. आकाश वाय घनोदधि, पृथिवी द्वीप पिछाण।
सागर नैं वासा वली, इम कहियै सुविधान॥

२२. ओवास-वाय-घणउदही, पुढवी दीवा य सागरा वासा।
(श० १।३९६)

सोरठा

२३. अगुरुलघु आकाश, गुरुलघु वायु प्रमुख जे।
ए वर अर्थ विमास, संग्रह अर्द्ध गाथा तणो॥

२३. गुरुलघुर्वायुस्तिर्यग्गमनात् अगुरुलघ्वाकाशं तत्स्वभावत्वात्। (वृ०-प० ९६)

२४. *हे प्रभु ! नेरइया स्यूं गुरु ? जाव अगुरुलघु होय ?
जिन कहै—नहीं गुरु, नहीं लघु, गुरुलघु अगुरुलघु दोय॥

२४. नेरइया णं भंते ! किं गरुया ? जाव अगरुयलहुया ?
गोयमा ! णो गरुया, णो लहुया, गरुयलहुया वि, अगरुयलहुया वि। (श० १।३९७)

२५. किण अर्थे ? तव जिन कहै, वैक्रिय तेजस ताहि।
ते आश्री इक गुरुलघु, अन्य तीन पद नांहि॥

२५. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—गोयमा ! विउव्वियतेयाइं पडुच्च णो गरुया, णो लहुया, गरुयलहुया, णो अगरुयलहुया।

२६. जीव कर्म आश्री नेरइया, अगुरुलघु अवलोय।
एवं जाव वेमाणिया, पिण शरीर नानात्व जोय॥

२६. जीवं च कम्मगं च पडुच्च णो गरुया, णो लहुया, णो गरुयलहुया, अगरुयलहुया... (श० १।३९८)
एवं जाव वेमाणिया, नवरं---नाणत्तं जाणियव्वं सरीरेहिं। (श० १।३९९)

२७. धुर धर्मास्तिकाय ते, जाव जीवास्तिकाय।
अगुरुलघु कहियै तसुं, पद तीनूं नहिं पाय॥

२७. धम्मत्थिकाए जाव जीवत्थिकाए चउत्थपएणं।
(श० १।४००-४०२)

२८. पुद्गलास्तिकाय हे प्रभु ! एकांत गुरु कहिवाय ?
कै केवल कहियै लघु, कै गुरुलघु अगुरुलघु ताय ?

२८. पोग्गलत्थिकाए णं भंते ! किं गरुए ? लहुए ? गरुयलहुए ? अगरुयलहुए ?

२९. जिन कहै—एकांत गुरु नहीं, केवल लघु न कहाय।
गुरुलघु पिण कहियै तसुं, अगुरुलघु पिण थाय॥

२९. गोयमा ! णो गरुए, णो लहुए, गरुयलहुए वि, अगरुयलहुए वि। (श० १।४०४)

३०. किण अर्थे ? तव जिन कहै, गुरुलघु द्रव्य आश्री जोय।
ए च्यार शरीर प्रमुख घणां, गुरुलघु तीजो होय॥

३०. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—गोयमा ! गरुयलहुयदव्वाइं पडुच्च णो गरुए, णो लहुए, गरुयलहुए, णो अगरुयलहुए।

३१. अगुरुलघु द्रव्य आसरी, कार्मणादि प्रसिद्ध।
अगुरुलघु चउथो पद अछै, समय कर्म चउथै पद्द॥

३१. अगरुयलहुयदव्वाइं पडुच्च णो गरुए, णो लहुए, णो गरुयलहुए, अगरुयलहुए। (श० १।४०५)
समया कम्माणि य चउत्थपदेणं। (श० १।४०६, ४०७)

३२. कृष्णलेश्या प्रभु ! गुरु अछै, जाव अगुरुलघु होय ?
जिन कहै—नहिं गुरु, नहिं लघु, गुरुलघु अगुरुलघु जोय॥

३२. कण्हलेस्सा णं भंते ! किं गरुया जाव अगरुयलहुया ?
गोयमा ! णो गरुया, णो लहुया, गरुयलहुया वि, अगरुयलहुया वि। (श० १।४०८)

३३. किण अर्थे ? तव जिन कहै, गुरुलघु छै द्रव्य लेश।
भावलेश्या अगुरुलघु, इम यावत् शुक्ल अशेष॥

३३. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—गोयमा ! दव्वलेस्सं पडुच्च ततियपदेणं, भावलेस्सं पडुच्च चउत्थपदेणं। (श० १।४०९)
एवं जाव सुक्कलेसा। (श० १।४१०)

३४. इहां वृत्तिकार कह्यू इसुं, भावलेश्या ते ताय।
जीव-परिणति अरूपी अछै, अगुरुलघु इण न्याय॥

३४. भावलेश्या तु जीवपरिणतिस्तस्याश्चामूर्त्तत्वादगुरुलघ्वित्यनेन व्यपदेशः। (वृ०-प० ९७)

*लय—लिछमन राम सूं बीनवै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३५. लक्षण कृष्णलेश्या तणा, पंचाश्रव कहिवाय।
उत्तराध्येन चउतीसमें, जीव आश्रव इण न्याय॥

३६. दृष्टि, दर्शण, ज्ञान नैं, अज्ञान, संज्ञा ताय।
चउथै पद अगुरुलघु अछै, वृत्ति में जीव पर्याय॥

३६. दिट्ठी-दंसण-णाण-अण्णाण-सण्णाओ चउत्थएणं पदेणं नेतव्वाओ। (श० १।४११)
दृष्ट्यादीनि जीवपर्यायत्वेनागुरुलघुत्वादगुरुलघुलक्षणेन।
(वृ०-प० ६७)

३७. औदारिकादि शरीर चउ, तीजै पद है प्रसिद्ध।
कार्मण चउथे पद अछै, मन वच चउथै पद्॥

३८. काय जोग पद तीसरै, द्रव्य जोग पहिछाण।
सागार नैं अणागार ते, अगुरुलघु चउथै जाण॥

३७, ३८. हेट्ठिल्ला चत्तारि सरीरा नेयव्वा तइएणं पदेणं।
कम्मयं चउत्थएणं पदेणं। (श० १।४१२)
मणजोगो, वइजोगो चउत्थएणं पदेणं, कायजोगो तइएणं पदेणं। (श० १।४१३)
सागारोवओगो, अणागारोवओगो चउत्थएणं पदेणं।
(श० १।४१४)

३९. सर्व द्रव्य सर्व प्रदेश ते, पजवा सर्व सुजोय।
जिम पुद्गलास्तिकाय तिम, गुरुलघु अगुरुलघु दोय॥

३९. सव्वदव्वा, सव्वपएसा, सव्वपज्जवा जहा पोग्गलत्थिकाओ। (श० १।४१५)

४०. अतीत अनागत सर्व अद्धा, चउथै पद सुविशेष।
ए अर्थ कह्या प्रथम शतक नां, नवमा उदेशा नों देश॥

४०. तीतद्धा, अणागतद्धा, सव्वद्धा चउत्थएणं पदेणं।
(श० १।४१६)

४१. ढाल भली छवीसमीं, भिक्खु भारीमाल ऋषिराय।
भिक्खू लिखत प्रसाद थी, 'जय-जश' संपति पाय॥

ढाल : २७

दूहा

१. गुरलघु नां अधिकार थी, एहिज प्रश्न उदार।
पूछै गोयम मुनि तणो, प्रश्न प्रवर हितकार॥

*गोयम वीर नैं वीनवै [ध्रुपदं]

२. हे प्रभु ! अल्प उपधिपणुं, अल्प-अभिलाषा अन्नादिक धार कै।
अमूर्च्छा उपधि-रक्षण विषै, अनासक्ति भोगवतां आहार कै॥

२. से नूणं भंते ! लाघवियं अप्पिच्छा अमुच्छा अगेही लाघविकम्—अल्पोपधिकम् 'अप्पिच्छ' त्ति अल्पोऽभिलाष आहारादिषु 'अमुच्छ' त्ति उपधावसंरक्षणानुबन्धः 'अगेहि' त्ति भोजनादिषु परिभोगकालेऽनासक्तिः।
(वृ०-प० ६७)

वीर प्रभु इम वागरै। [ध्रुपदं]

३. अस्नेह स्वजनादिक विषै, श्रमण निर्ग्रंथ नैं ए भला पंच?
जिन कहै—हंता गोयमा ! मुनि नै एह प्रशस्त सुसंच॥

३. अपडिबद्धया समणाणं निग्गंथाणं पसत्थं? हंता गोयमा ! लाघवियं जाव पसत्थं (श० १।४१७)
अप्रतिबद्धता—स्वजनादिषु स्नेहाभाव इत्येतत्पञ्चकमिति गम्यं। (वृ०-प० ६७)

४. हे प्रभु ! अक्रोधपणुं वले, अमानपणुं अमायापणुं जोय।
अलोभपणुं मुनि नैं भलो? जिन कहै हंता इमहिज होय॥

४. से नूणं भंते ! अकोहत्तं अमाणत्तं अमायत्तं अलोभत्तं समणाणं निग्गंथाणं पसत्थं?
हंता गोयमा ! अकोहत्तं अमाणत्तं जाव पसत्थं।
(श० १।४१८)

*लय—हूं बलिहारी हो जादवां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. कोधादि-दोष अभाव तें, कांक्ष-दोष क्षय करिवा अर्थ।
प्रश्न हिव गोयम करै, कर्म काटण ते नंत समर्थ।।
६. प्रभु ! राग-द्वेष अन्य मत आग्रह, ए कांक्ष-प्रदोष मुनि क्षय कीध।
ते अंत करै कर्मां तणो ? तथा ह्वै चरम-शरीरी प्रसीध।।

७. पहिलां बहु मोह विषै रही, पछै आथव रूंधी करै काल।
सीझै जाव दुख अंत करै ? जिन कहै—हंता इमहिज न्हाल।।

८. स्वदर्शण नीं कही वारता, हिव अन्य दर्शण - प्रश्न पिछाण।
अन्यतीर्थी ! प्रभु इम कहै, भाषै पन्नवै परूपै जाण।।
९. आइक्खंति सामान्य थी, भासंति पाठ विशेष थी जोय।
पन्नवेंति ते उपपत्ति करी, परूपै भेद कथन थी होय।।

१०. इम इक जीव इक समय में, आउखा दोय भणी पकरंत।
इह भव ना आयु प्रतै, अथवा परभव नों बांधंत।।
११. जे समय इह भव नुं आयु करै, ते समय परभव नो आयु पकरंत।
जे समय परभव नों आयु करै, ते समय इहभव नो आयु बांधंत।।

१२. इहभवायु करिवा तणा, अध्यवसाय करीनैं सोय।
परभव नों जे आउखो, पकरै बांधै छै अवलोय।।
१३. परभवायु करिवा तणा, अध्यवसाय करीनैं सोय।
इहभव नों जे आउखो, पकरै बांधै छै ते जोय।।
१४. ते किम कहियै ए प्रभु ! जिन कहै—ए अन्यतीर्थी नीं वाय।
इहभव बै आयु करै, ते मिथ्या—झूठ कहीजै ताय।।

१५. हूं पिण इम कहूं छूं इसो, एक जीव इक समय मझार।
आउखो एक बांधै अछै, इहभव वा परभव नुं विचार।।

१६. जे समय इहभव नुं आयु करै, ते समय परभव नों आयु करै नांय।
जे समय परभव नुं आयु करै, ते समय इहभव नुं आयु न कराय।।

१७. इहभव नुं आयु करिवै करी, परभव नुं आयु करै नांय।
परभवायु करिवै करी, इहभव नुं आयू न कराय।।

५. कोधादिदोषाभावाविनाभूतकांक्षाप्रदोषक्षयकार्याभिधानार्थम्। (वृ०-प० ९७)
६. से नूणं भंते ! कंखापदोसे खीणे समणे निग्गंथे अंतकरे भवति, अंतिमसरीरिए वा ?
कांक्षा—दर्शनान्तरग्रहो गृद्धिर्वा सैव प्रकृष्टो दोषः कांक्षाप्रदोषः। (वृ०-प० ९७)
७. बहुमोहे वि य णं पुव्वि विहरित्ता अह पच्छा संवुडे कालं करेइ ततो पच्छा सिज्झति जाव अंतं करेति ? हंता गोयमा ! कंखापदोसे खीणे जाव अंतं करेति।
(श० १।४१९)
८. अण्णउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति, एवं भासंति, एवं पण्णवेंति, एवं परूवेंति—
९. आख्यान्ति सामान्यतः 'भासंति' त्ति विशेषतः 'पण्णवेंति' त्ति उपपत्तिभिः 'परूवेंति' त्ति भेदकथनतः।
(वृ०-प० ९८)
१०. एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो आउयाइं पकरेति, तं जहा—इहभवियाउयं च, परभवियाउयं च।
११. जं समयं इहभवियाउयं पकरेति,
तं समयं परभवियाउयं पकरेति।
जं समयं परभवियाउयं पकरेति,
तं समयं इहभवियाउयं पकरेति।
१२. इहभवियाउयस्स पकरणयाए परभवियाउयं पकरेति।

१३. परभवियाउयस्स पकरणयाए इहभवियाउयं पकरेति।
(श० १।४२०)
१४. से कहमेयं भंते ! एवं ?
गोयमा ! जण्णं ते अण्णउत्थिया एवमाइक्खंति जाव एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो आउयाइं पकरेति, तं जहा—इहभवियाउयं च, परभवियाउयं च।
जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु।
१५. अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि, जाव परूवेमि—एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं आउयं पकरेति, तं जहा—इहभवियाउयं वा, परभवियाउयं वा।
१६. जं समयं इहभवियाउयं पकरेति,
णो तं समयं परभवियाउयं पकरेति।
जं समयं परभवियाउयं पकरेति,
णो तं समयं इहभवियाउयं पकरेति।
१७. इहभवियाउयस्स पकरणताए
णो परभवियाउयं पकरेति।
परभवियाउयस्स पकरणताए
णो इहभवियाउयं पकरेति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. इम खलु इक जीव इक समय, एक आउखा भणी पकरंत।
तेह इहभव वा परभव तणुं, सेवं भंते! जाव विचरंत॥

जय जय ज्ञान जिनेन्द्र नो। (ध्रुपदं)

१९. अन्ययूथिक प्रस्ताव थी, अन्य तीर्थंकर शिष्य संतान।
तास विस्तार कहै हिवै, सांभलजो श्रोता धर कान॥

२०. तिण कालै नैं तिण समय, पार्श्व जिन शिष्य नां सीस।
कालासवेसी-पुत्र ते, इण नामें अणगार जगीस॥

२१. जिहां वीर स्थविर श्रुत-वृद्ध हुंता, ते स्थविर भगवंत नैं कहै इम आय।
स्थविर सामायक न जाणता, समभाव रूप सूक्ष्म छै ताय॥

२२. स्थविर सामायक अर्थ न जाणता, अर्थ प्रयोजन कर्म निरोध।
स्थविर पचखाण न जाणता, पचखाण अर्थ न जाणता सोध॥

२३. स्थविर संयम नहीं जाणता, संजम पृथव्यादि रक्षण ताम।
स्थविर संयम अर्थ न जाणता, ए अर्थ अनाश्रवपणुं अभाम॥

२४. स्थविर संवर नहीं जाणता, इंद्रिय नोइंद्रिय वस करण।
स्थविर संवर अर्थ न जाणता, अर्थ अनाश्रवपणुं भव तरण॥

२५. स्थविर विवेग न जाणता, विशिष्ट बोध विवेग कहाय।
स्थविर विवेक अर्थ न जाणता, तजवा योग्य त्यागादिक ताय॥

२६. स्थविर विउसग्ग नहीं जाणता, ध्यान करी काया वोसिराय।
स्थविर विउसग्ग अर्थ न जाणता, निस्पृहपणुं निर्वेछा ताय॥

२७. स्थविर भगवंत तिण अवसरै, कालासवेसी पुत्र नैं कहै एम।
हे आर्य! सामायक जाणां अम्हे, जाव जाणां विउसग्ग ना अर्थ जेम॥

२८. कालासवेसी-पुत्र मुनि तिको, स्थविर भगवंत प्रतै कहै वाय।
जो आर्य! सामायक जाणो तुम्हे, जाव विउसग्ग अर्थ जाणो सुखदाय॥

१८. एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं आउयं पकरेति, तं जहा—इहभवियाउयं वा, परभवियाउयं वा।
(श० १।४२१)
सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति भगवं गोयमे जाव विहरति।
(श० १।४२२)

२०. तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्चिज्जे कालासवेसियपुत्ते णामं अणगारे
'पासावच्चिज्जे' त्ति पार्श्वापत्यानां—पार्श्वजिनशिष्याणामयं पार्श्वापत्यीयः। (वृ०-प० १००)

२१. जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते एवं वयासी—थेरा सामाइयं न याणंति,
'थेरे' ति श्रीमन्महावीरजिनशिष्याः श्रुतवृद्धाः 'सामाइयं' ति समभावरूपं 'न याणंति' त्ति न जानन्ति, सूक्ष्मत्वात्तस्य। (वृ०-प० १००)

२२. थेरा सामाइयस्स अट्ठं न याणंति। थेरा पच्चक्खाणं न याणंति, थेरा पच्चक्खाणस्स अट्ठं न याणंति।
'सामाइयस्स अट्ठं' ति प्रयोजनं कर्मानुपादाननिर्जरणरूपं। (वृ०-प० १००)

२३. थेरा संजमं न याणंति, थेरा संजमस्स अट्ठं न याणंति।
'संजमं' ति पृथिव्यादिसंरक्षणलक्षणं, तदर्थं च—अनाश्रवत्वं। (वृ-प० १००)

२४. थेरा संवरं न याणंति, थेरा संवरस्स अट्ठं न याणंति।
'संवरं' ति इन्द्रियनोइन्द्रियनिवर्त्तनं, तदर्थं तु—अनाश्रवत्वमेव। (वृ०-प० १००)

२५. थेरा विवेगं न याणंति, थेरा विवेगस्स अट्ठं ण याणंति।
'विवेगं' ति विशिष्टबोधं, तदर्थं च—त्याज्यत्यागादिकं। (वृ०-प० १००)

२६. थेरा विउस्सग्गं न याणंति, थेरा विउस्सग्गस्स अट्ठं न याणंति। (श० १।४२३)
'विउस्सग्गं' ति व्युत्सर्गं कायादीनां, तदर्थं चानभिष्वङ्गताम्। (वृ०-प० १००)

२७. तए णं थेरा भगवंतो कालासवेसियपुत्तं अणगारं एवं वदासी—जाणामो णं अज्जो! सामाइयं, जाणामो णं अज्जो! सामाइयस्स अट्ठं जाव जाणामो णं अज्जो! विउस्सग्गस्स अट्ठं। (श० १।४२४)

२८. तते णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे ते थेरे भगवंते एवं वयासी—जइ णं अज्जो! तुब्भे जाणह सामाइयं, तुब्भे जाणह सामाइयस्स अट्ठं जाव जइ णं अज्जो! तुब्भे जाणह विउस्सग्गं, तुब्भे जाणह विउस्सग्गस्स अट्ठं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९. हे आर्य ! तुम्हारै सामायक कवण ? कवण सामायक नों थारैं अर्थ।
जावत् विउसग्ग नों अरथ, कवण तुम्हारै अछै समर्थ ? ।।

३०. स्थविर भगवंत तिण अवसरे, कालासवेसी पुत्र नैं कहै एम।
आर्य ! अहो अम्हारै मतै, आतम सामायक छै वर खेम ।।
३१. वृत्तिकार इसड़ो कह्यूं, गुणप्रतिपन्न जीव नै ताय।
द्रव्यार्थिक नय नै मते, सामायक कहियै सुखदाय ।।
३२. हे आर्य ! सामायक नों अर्थ, अम्हारै मतै आतमा जाण।
जाव विउसग्ग नों अर्थ, ते पिण आतम हीज पिछाण ।।
३३. कह्यो वृत्तिकार सामायक अर्थ, जीवईज कर्म अणउपादान।
जीव ना गुण छै ते भणी, जीव थकी जुदा म पिछान ।।
३४. कालासवेसी-सुत तिण समैं, स्थविर भगवंत प्रतै कहै वाय।
जो आतमा सामायक तुझ मतै, जाव आतमा विउसग्ग अर्थ कहाय ।।

३५. तो क्रोधादिक चिउं तजी, आत्मा किण अर्थे गर्हो एम।
निंदामि गरिहामि किम कहो, अप्पाणं वोसिरामि कहो केम ?

३६. वृत्तिकार कह्यो अभिप्राय ए, त्यक्त-क्रोधादि सामायिकवान।
ते कहो किम निंदा करै ? निंदा में द्वेष संभव पहिछान ।।
३७. स्थविर कहै काला ! सुणो, संयम अर्थे गर्हा ताम।
सावज्ज निद्यां संयम हुवै, ते गर्हा संयम-हेतु गुणधाम ।।

३८. कालासवेसी कहै स्यूं प्रभु ! गर्हा संयम कै अगर्हा होय।
काला ! गर्हा संजम कह्यो, अगर्हा संयम नहिं कोय ।।
३९. गर्हा करी सहु दोष नैं, रागादिक पूर्व कृत पाप-
खपावै, मिथ्या अव्रत तजी, ए बालपणों सर्व छांडै आप ।।

४०. इम निश्चै तुझ आतमा, संयम नैं विषै स्थापित होय।
इम निश्चै तुझ आतमा, संयम विषै पुष्ट अवलोय ।।
४१. इम निश्चै तुझ आतमा, संयम विषय अधिक सावधान।
कालासवेसी सांभली, प्रतिबोध्यो समझ्यो गुणखान ।।
४२. स्थविर भगवंत नैं वंदनैं, नमस्कार करि बोल्यो वाय।
हे भंते ! पद पूर्वे कह्या, अजाणपणैं करि मैं नवि पाय ।।

२९. के भे अज्जो ! सामाइए ? के भे अज्जो ! सामाइयस्स अट्ठे ? जाव के भे अज्जो ! विउस्सग्गे ? के भे अज्जो ! विउस्सग्गस्स अट्ठे ? (श० १।४२५)
३०. तए णं थेरा भगवंतो कालासवेसियपुत्तं अणगारं एवं वयासी—आया णे अज्जो ! सामाइए,
३१. 'जीवो गुणपडिवण्णो नयस्स दव्वट्ठियस्स सामइयं'।
(वृ०-प० १००)
३२. आया णे अज्जो ! सामाइयस्स अट्ठे जाव विउस्सग्गस्स अट्ठे। (श० १।४२६)
३३. सामायिकार्थोऽपि जीव एव, कर्मानुपादानादीनां जीव-गुणत्वात् जीवाव्यतिरिक्तत्वाच्च। वृ०-प० १००)
३४. तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते एवं वदासी—जइ भे अज्जो ! आया सामाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे जाव आया विउस्सग्गस्स अट्ठे—
३५. अवहट्टु कोह-माण-माया-लोभे किमट्ठं अज्जो ! गरहह ?
'अवहट्टु' त्ति अपहृत्य त्यक्त्वा क्रोधादीन् किमर्थं गर्हध्वे ? 'निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि' इति वचनात्। (वृ०-प० १००)
३६. यः सामायिकवान् त्यक्तक्रोधादिश्च स कथं किमपि निन्दति ? निन्दा हि किल द्वेषसम्भवेति। (वृ०-प०१००)
३७. कालासा ! संजमट्ठयाए। (श० १।४२७)
संयमार्थमिति, अवद्ये गर्हिते संयमो भवति,
अवद्यानुमतेर्व्यवच्छेदनात्, तथा गर्हा संयमः, तद्धेतुत्वात्।
(वृ०-प० १००)
३८. से भंते ! किं गरहा संजमे ? अगरहा संजमे ? कालासा ! गरहा संजमे, णो अगरहा संजमे।
३९. गरहा वि य णं सव्वं दोसं पविणेति, सव्वं बालियं परिण्णाए।
दोषं—रागादिकं पूर्वकृतं पापं वा द्वेषं वा।
बाल्यं—बालतां मिथ्यात्वमविरतिं च।
(वृ०-प० १००)
४०, ४१. एवं खु णे आया संजमे उवहिते भवति। एवं खु णे आया संजमे उवचिए भवति। एवं खु णे आया संजमे उवट्ठिते भवति। (श० १।४२८)

४२. एत्थ णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे संबुद्धे थेरे भगवंते वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—एएसि णं भंते ! पयाणं पुव्वि अण्णाणयाए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३. असवणयाए—असुणवै करी, अबोहीए—महावीर जिन धर्म।
तेह तणें अणपामवै, तथा न पायो बुद्धि करि मर्म।।

४४. अणभिगमेणं—विस्तार थी, बोध अभाव करी नहीं पाय।
अदिट्ठाणं ते साक्षात थी, स्वयमेव नहिं लाधो ए न्याय।।

४५. अस्सुयाणं—अन्य पै नहीं सुण्या, अमुयाणं—स्मृत ध्याया नांय।
अविण्णायाणं नो अरथ, विशिष्ट बोध जाणपणें न आय।।

४६. अव्वोकडाणं—विशेष थी, मुझ प्रति सुगुरु नहीं आख्यात।
अव्वोच्छिण्णाणं—विपक्ष थी, भिन्न करी न बताया साक्षात।।

४७. अणिज्जूढाणं—महाग्रंथ थी, मुझै समजवा अर्थ विचार।
अनुग्रह गुरु मुझ पर करी, संक्षेप करि नहिं कह्या उदार।।

४८. अणुवधारियाणं — अरथ, इण कारण म्हैं धार्या नांहि।
प्रीत करी न प्रतीतिया, ए पद मुझ रुचिया नहीं ताहि।।
४९. हे भदंत! ए पद प्रतै, हिवै जाणवै सांभलवै करि सोय।
बोध करी विस्तार करि, देख्या सुणिया ध्याया जोय।।
५०. विशेषपणें जाण्या हिवै, विशेष थी तुम आखी बात।
संदेह मिटियो मांहरो, महाग्रंथ थी संक्षेप श्रवणात।।
५१. इण कारण धार्या अम्हे, ए अर्थ सरधूं प्रतीतूं स्वाम।
रोचवूं ए इमहिज छै, जे तुम्हे वचन कह्या अभिराम।।
५२. स्थविर भगवंत तिण अवसरै, कालासवेसी-पुत्र नैं कहै एम।
हे आर्य! श्रद्ध प्रतीत कर, रोचव तूं जे अम्हे कहां तेम।।

५३. कालासवेसी स्थविरां भणी, वंदी नमंसी कहै धर प्रीत।
तुझ कन्है वांछूं चउ याम थी, पंच याम पडिकमण सहीत।।
५४. तेह धर्म प्रतै आदरी, वंछू छूं विचरवो स्वाम।
ए कालासवेसी नों वच सुणी, स्थविर वदै वचनामृत आम।।

५५. अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंध म कर अंतराय।
कालासवेसी तब वंदनै, पंच महाव्रत धार्या ताय।।

४३. असवणयाए अबोहीए
अबोधिः--जिनधर्मानवाप्तिः, इह तु प्रक्रमान्महावीर-जिनधर्मानवाप्तिस्तया, अथवौत्पत्तिक्यादिबुद्ध्यभावेन। (वृ०-प० १००)

४४. अणभिगमेणं अदिट्ठाणं
'अणभिगमेणं' ति विस्तरबोधाभावेन हेतुना 'अदृष्टानां' साक्षात्स्वयमनुपलब्धानाम्। (वृ०-प० १००)

४५. अस्सुयाणं अमुयाणं अविण्णायाणं
'अश्रुतानाम्' अन्यतोऽनाकर्णितानाम्,···'अस्मृतानाम्' दर्शनाकर्णनाभावेनाननुध्यातानाम्, 'अविज्ञातानाम्' विशिष्टबोधाविषयीकृतानाम्। (वृ०-प० १००)

४६. अव्वोकडाणं अव्वोच्छिण्णाणं
अव्याकृतानां विशेषतो गुरुभिरनाख्यातानाम्, 'अव्वोच्छिण्णाणं' ति विपक्षादव्यवच्छेदितानाम्। (वृ०-प० १००)

४७. अणिज्जूढाणं
महतो ग्रन्थात्सुखावबोधाय संक्षेपनिमित्तमनुग्रहपरगुरुभिरनुद्धृतानाम्। (वृ०-प० १००, १०१)

४८. अणुवधारियाणं एयमट्ठं नो सद्दहिए नो पत्तिइए नो रोइए।

४९. इदाणिं भंते! एतेसिं पयाणं जाणयाए सवणयाए बोहीए अभिगमेणं दिट्ठाणं सुयाणं मुयाणं

५०. विण्णायाणं वोगडाणं वोच्छिण्णाणं णिज्जूढाणं उवधारियाणं

५१. एयमट्ठं सद्दहामि पत्तियामि रोएमि। एवमेयं से जहेयं तुब्भे वदह (श० १।४२९)

५२. तए णं ते थेरा भगवंतो कालासवेसियपुत्तं अणगारं एवं वयासी—सद्दहाहि अज्जो! पत्तियाहि अज्जो! रोएहि अज्जो! से जहेयं अम्हे वदामो। (श० १।४३०)

५३, ५४. तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वदासी—इच्छामि णं भंते! तुब्भं अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए।

५५. अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं। (श० १।४३१)
तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरति। (श० १।४३२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६. कालासवेसी बहु वरस लगै, चारित्र पर्याय पाली जान।
जिण अर्थे नग्न भाव आदर्यूं, मुंडपणुं दिख्या अरु अस्नान।।

५७. अदंत-धोवण छत्र नहिं, पानही नहीं, फिरवो अलुयाण[1]।
भूमि-फलग-काष्ठे शयन, केश-लोच ब्रह्मचर्य पिछाण।।

५८. गोचरी पर घर जायवो, लाधै अणलाधै समभाव।
अनुकूल प्रतिकूल सम चिते, इंद्रिय-कंटक सहै तज ताव।।

५९. बावीस परिसह नैं वली, उवसग्ग खमण धार्या सिव काज।
ते अर्थ मोक्ष आराधनैं, चरम निःश्वास करी शिवराज।।

६०. सिद्ध बुद्ध तत्व-ज्ञाता थइ, कर्म रहित नैं शीतलीभाव।
सर्व दुःख नैं क्षय किया, ए कालासवेसीसुत प्रस्ताव।।

६१. धुर शत देश नवमा तणों, सप्तवीसमीं आखी ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' सुख संपति सुविशाल।।

५६. तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे मुंडभावे अण्हाणयं

५७. अदंतवणयं अच्छत्तयं अणोवाहणयं भूमिसेज्जा फलहसेज्जा कट्ठसेज्जा केसलोओ बंभचेरवासो

५८. परघरप्पवेसो लद्धावलद्धी उच्चावया गामकंटगा

५९. बावीसं परिसहोवसग्गा अहियासिज्जंति, तमट्ठं आराहेइ, आराहेत्ता चरमेहिं उस्सास-नीसासेहिं

६०. सिद्धे बुद्धे मुक्के परिनिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।
(श० १।४३३)

ढाल : २८

दूहा

१. कालासवेसीपुत्र शिव, पचखाणे करि पाय।
हिव तेह विपरीत जे, अपचखाण कहिवाय।।

१. कालास्यवैशिकपुत्रः प्रत्याख्यानक्रियया सिद्ध इति तद्विपर्ययभूताप्रत्याख्यानक्रियानिरूपणसूत्रम्—
(वृ०-प० १०१)

२. हे भदंत! इम आमंत्री, भगवंत गोतम स्वाम।
वीर प्रते वंदन करी, इम बोलै सिर नाम।।

*रूडा भजलै रे जिनराज। (ध्रुपदं)।

२. भंते ति! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वदासी—

३. सेठ अनैं दरिद्री नैं प्रभु! रंक राय नैं जाण।
अपचखाण नी क्रिया वरोवर? हंता ए जिन वाण।।

३. से नूणं भंते! सेट्ठियस्स य तणुयस्स य किवणस्स य खत्तियस्स य समा चेव अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ? हंता गोयमा! सेट्ठियस्स जाव अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ। (श० १।४३४)
'तणुयस्स' त्ति दरिद्रस्य 'किवणस्स' त्ति रङ्कस्य 'खत्तियस्स' त्ति राज्ञः। (वृ०-प० १०१)

४. किण अर्थे? तव श्री जिन भाखै, अविरति आश्री जोय।
क्रिया तणां अधिकार थकी, वलि प्रश्न क्रिया नों होय।।

४. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—गोयमा! अविरतिं पडुच्च। (श० १।४३५)
अप्रत्याख्यानक्रियायाः प्रस्तावादिदमाह—
(वृ०-प० १०१)

---

१. नंगे पांव।
*लय—सीता आवै रे घर राग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. आधाकर्मी भोगवतो मुनि स्यूं बांधै ? पकरंत ?
चिणै ? उपचिणै ? प्रकृति, स्थिति, अनुभाव, प्रदेश बंधंत ?

६. जिन कहै—आधाकर्मी भोगवतां, आयु वरजी सात।
कर्म प्रकृति ढीली बंधी ते, दृढ़ बंधन बंधात ॥

७. यादत् काल अनंत भमै ते, किण अर्थे ? भगवंत !
जिन कहै—आधाकर्मी भोगवतां, चरण धर्म लोपंत ॥
८. चारित्र धर्म प्रते अतिक्रमतो, पृथ्वीकाय नीं ताय।
दया नहीं तेहना घट मांहै, इम जावत् त्रसकाय ॥
९. जे जंतु ना तन नों आहार, करै तेहनीं पिण जाण।
दया नही तेहनैं तिण अर्थे, जाव भ्रमण कहिवाण ॥

१०. आधाकर्म—विपक्ष सूझतो, तेहनूं प्रश्न अखिन्न।
अचित सूझतो मुनि भोगवतो स्यूं बंध ? जाव उपचिन्न ? ॥

११. जिन भाखै मुनि अचित सूझतो, भोगवतो कर्म सात।
दृढ़ बंध्या ते ढीला पाडै, जिम संवुड अवदात ॥

१२. णवरं आयु कर्म कदाचित् बंधै कदा अबंध।
शेष संवुडा नी पर कहिवो, यावत् शिव-पद संध ॥
१३. किण अर्थे जावत् शिव पामै ? जिन कहै एहनूं न्याय।
अचित सूझतो भोगवतो मुनि-धर्म नहि लोपाय ॥

१४. चारित्र धर्म नैं अणअतिक्रमतो, पृथ्वीकाय नीं ताय।
दया अछै तेहनां घट मांहै, इम जावत् त्रसकाय ॥
१५. जे जंतु नां तन नों आहार करै तेहनीं पिण जाण।
दया तास घट में तिण अर्थे जाव लहै निर्वाण ॥

१६. कह्यूं संसार तणुं अतिक्रमवूं, ते कर्म पलटवे होय।
कर्म स्वयं अस्थिर तिण स्यूं, हिव अस्थिर सूतर जोय ॥

१७. हे भदंत ! जे अस्थिर पलटै, स्थिर ते पलटै नांहि।
अस्थिर वस्तु ह्वै ते भाजै, स्थिर नहिं भाजै ताहि ?
१८. बाल सासतूं बालपणूं ते असासतूं पहिछाण।
पंडित सासतूं पंडितपणूं ते असासतूं ? इम जाण ?

५. आहाकम्मं णं भुंजमाणे समणे निग्गंथे किं बंधइ ? किं पकरेइ ? किं चिणाइ ? किं उवचिणाइ ?
बंधइ---प्रकृतिबंधमाश्रित्य, पकरेइ---स्थितिबंधापेक्षया, चिणाइ—अनुभागबंधापेक्षया, उवचिणाइ—प्रदेशबंधापेक्षया। (वृ०-प० १०२)
६, ७. गोयमा ! अहाकम्मं णं भुंजमाणे आउयवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ सिढिलबंधणबद्धाओ धणियबंधणबद्धाओ पकरेइ जाव अणुपरियट्टइ। (श० १।४३६)
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—गोयमा ! आहाकम्मं णं भुंजमाणे आयाए धम्मं अइक्कमइ,
८. आयाए धम्मं अइक्कममाणे पुढविकायं णावकंखइ जाव तसकायं णावकंखइ,
९. जेसि पि य णं जीवाणं सरीराइं आहारमाहारेइ ते वि जीवे णावकंखइ। से तेणट्ठेणं गोयमा !···जाव चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टइ। (श० १।४३७)
१०. आधाकर्मविपक्षश्चेत्र प्रासुकैषणीयमिति प्रासुकैषणीयसूत्रम्। (वृ०-प० १०२)
फासु-एसणिज्जं णं भंते ! भुंजमाणे समणे निग्गंथे किं बंधइ ? किं पकरेइ ? किं चिणाइ ? किं उवचिणाइ ?
११. गोयमा ! फासु-एसणिज्जं णं भुंजमाणे आउयवज्जाओ सत्त कम्मपयडीओ धणियबंधणबद्धाओ सिढिलबंधणबद्धाओ पकरेइ जहा संवुडे,
१२. नवरं आउयं च णं कम्मं सिय बंधइ, सिय णो बंधइ, सेसं तहेव जाव वीईवयइ। (श० १।४३८)
१३. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ---जाव चाउरंतं संसारकंतारं वीईवयइ ?
गोयमा ! फासु-एसणिज्जं णं भुंजमाणे समणे निग्गंथे आयाए धम्मं नाइक्कमइ,
१४. आयाए धम्मं अणइक्कममाणे पुढविकायं अवकंखइ जाव तसकायं अवकंखइ,
१५. जेसि पि य णं जीवाणं सरीराइं आहारेइ ते वि जीवे अवकंखइ। से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव चाउरंतं संसारकंतारं वीईवयइ। (श० १।४३९)
१६. अनन्तरसूत्रे संसारव्यतिव्रजनमुक्तं, तच्च कर्मणोऽस्थिरतया प्रलोटने सति भवतीत्यस्थिरसूत्रम्---
(वृ०-प० १०२)
१७. से नूणं भंते ! अथिरे पलोट्टइ, नो थिरे पलोट्टइ ? अथिरे भज्जइ, नो थिरे भज्जइ ?
१८. सासए बालए, बालियत्तं असासयं ? सासए पंडिए, पंडियत्तं असासयं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. जिन कहै—हंता, अस्थिर पलटै, पाषाणादिक ताय।
अस्थिर—ऊंधा-सूधा होवै, एम पलटवूं थाय॥

२०. अध्यात्म चिंतवन विषै तो, अस्थिर कर्म पिछाण।
जीव-प्रदेश थकीज चल्यूं ते, निर्जरिवूं पलटाण॥

२१. स्थिर जे शिला प्रमुख नहिं पलटै, अध्यात्मे स्थिर जीव।
कर्म क्षये पिण जीवपणुं नहिं पलटै एह सदीव॥

२२. अस्थिर—भंगुर स्वभाव तृणादि भाजै वे दल थाय।
अध्यात्मे अस्थिर कर्म भाजै, चल्यो थको झड़ जाय॥

२३. स्थिर ते लोह—शलाका प्रमुख, अभंगुर नहिं भंजाय।
अध्यात्मे स्थिर जीव न भाजै, द्रव्य जीव पेक्षाय॥

२४. बाल सासतूं असजती नां, द्रव्य जीव अपेक्षाय।
बालपणुं तो असासतूं छै, कदे पंडित को थाय॥

२५. पंडित सासतूं संजति नुं, द्रव्य जीव अपेक्षा जोड़।
पंडितपणुं असासतो कहियै, देश ऊणो पुव्व कोड॥

२६. इतलै द्रव्य जीव ते सासत, द्रव्य तणो पर्याय।
आवै जावै भाव जीव ते, असासतूं इण न्याय॥

२७. सेवं भंते अंक गुनोसम, अष्टवीसमीं ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय प्रसादै, 'जय-जश' संपति माल॥

प्रथमशते नवमोद्देशकार्थः॥१।९॥

१९. हंता गोयमा ! अथिरे पलोट्टइ,
'अथिरे' त्ति अस्थास्नु द्रव्यं लोष्टादि 'प्रलोटति' परिवर्त्तते। (वृ०-प० १०२)

२०. अध्यात्मचिन्तायामस्थिरं कर्म तस्य जीवप्रदेशेभ्यः प्रतिसमयचलनेनास्थिरत्वात् 'प्रलोटयति' बन्धोदयनिर्जरणादिपरिणामैः परिवर्त्तते। (वृ०-प० १०२)

२१. नो थिरे पलोट्टइ।
'स्थिरं' शिलादि न प्रलोटयति, अध्यात्मचिन्तायां तु स्थिरो जीवः, कर्मक्षयेऽपि तस्यावस्थितत्वात्, नासौ 'प्रलोटयति' उपयोगलक्षणस्वभावान्न परिवर्त्तते। (वृ०-प० १०२)

२२. अथिरे भज्जइ,
'अस्थिरं' भंगुरस्वभावं तृणादि 'भज्यते' विदलयति, अध्यात्मचिन्तायामस्थिरं कर्म तद् 'भज्यते' व्यपैति। (वृ०-प० १०२)

२३. नो थिरे भज्जइ।
'स्थिरम्' अभंगुरमयः-शलाकादि न भज्यते, अध्यात्मचिन्तायां स्थिरो जीवः स च न भज्यते शाश्वतत्वादिति। (वृ०-प० १०२)

२४. सासए बालए, बालियत्तं असासयं।
'सासए बालए' त्ति बालको व्यवहारतः शिशुर्निश्चयतोऽसंयतो जीवः स च शाश्वतो द्रव्यत्वात्, 'बालियत्तं' ति व्यवहारतः शिशुत्वं निश्चयतस्त्वसंयतत्वं तच्चाशाश्वतं पर्यायत्वादिति। (वृ०-प० १०२)

२५. सासए पंडिए, पंडियत्तं असासयं। (श० १।४४०)
एवं पंडितसूत्रमपि, नवरं पंडितो व्यवहारेण शास्त्रज्ञो जीवः, निश्चयतस्तु संयत इति। (वृ०-प० १०२)

२७. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ।
(श० १।४४१)

ढाल : २९

दूहा

१. नवम उदेशक अंत में, अस्थिर कर्म विचार।
कर्म विषै अन्यतीर्थी तेहनूं प्रश्न प्रकार॥

*पूछै गोयम गणहरू (ध्रुपदं)

२. अन्यतीर्थी प्रभु ! इम कहै, चलिवा लागो चल्यूं नहीं कहिणो रे।
जाव निर्जरिवा लागो तसुं, अनिर्जरयो कहै वयणो रे॥

*लय—इंद्र कहै नमिराय नैं

१. अनन्तरोद्देशकेऽस्थिरं कर्मेत्युक्तं, कर्मादिषु च कुतीर्थिका विप्रतिपद्यन्ते अतस्तद्विप्रतिपत्तिनिरासप्रतिपादनार्थः। (वृ०-प० १०२)

२. अण्णउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति जाव परूवेंति—एवं खलु चलमाणे अचलिए जाव निज्जरिज्जमाणे अणिज्जिण्णे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. बे परमाणु एकठा नहिं मिले, किम कारण मिलै नाहीं ?
अति सूक्ष्म तिण कारणै, नहीं स्नेहकाय तिण मांही ।।

४. त्रिण परमाणुं भेला मिले, स्नेहकाय तिण मांही ।
ते भेद्यां द्विविध त्रिविधे, बे त्रिण भागज थाई ।।

५. बे भागे करतां छतां, दोढ़-दोढ़ इम होयो ।
त्रिण भागे करतां थकां, तीनूंइ जू-जूआ जोयो ।।

६. इम जावत् परमाणुया, च्यार पंच मिल ताह्यो ।
ते खंध रूप हुवै अछै, ते वलि खंध कहायो ।।
७. दुख हेतु कर्मपणें हुवै, दुख पिण सास्वतो तेही ।
सदा परिमाण सहित ते, चय उपचय हुवै जेही ।।
८. बोल्यां पहिली भाषा कहै, बोलता न कहै भासा ।
बोल्यां पछै भाषा कहै, ए तसुं मत नीं आसा ।।
९. जे बोल्यां पहिली भाषा कहै, बोलतां भाषा न आखै ।
बोल्यां पछै भाषा कहै, प्रश्न दोय हिव दाखै ।।
१०. भासक तणी भाषा अछै, कै अभासक नीं भाषा कहियै ?
अभासक नीं भाषा कहै, भासक नीं भाषा न लहियै ।।
११. काइयादिक क्रिया करी, कीधां पहिलां दुख हेतू ।
वर्त्तमान क्रिया दुख हेतु नहीं, क्रिया समय गयां दुख केतू ।।
१२. जे क्रिया कीधां पहिलां दुख कहै, क्रिया करतां दुख हेतु नांही ।
क्रिया कीधां पछै दुख हेतु कहै, प्रश्न दोय हिव त्यांही ।।
१३. क्रिया करण थकी स्यूं दुख हुवै ? कै अणकरिवा थी दुख लहियै ।
अणकरिवा थी दुख कहै, करिवा थी दुख नहीं गहियै ।।

१४. अणकीधो दुख कारण कर्म ते, ए आगामि काल पेक्षायो ।
अणकरिवा माटै अणफरिसियो, दुख कारण कहिवायो ।।

१५. दुख नों कारण कर्म ते, न करै वर्त्तमान कालो ।
गये काले कीधो नहीं, ते दुख हेतु न्हालो ।।

१६. प्राण भूत जीव सत्व ते, अणकीधा पुन्य पापो ।
सर्व जीव भोगवै अछै, ए पंचम प्रश्न नीं थापो ।।

३. दो परमाणुपोग्गला एगयओ न साहण्णंति,
कम्हा दो परमाणुपोग्गला एगयओ न साहण्णंति ?
दोण्हं परमाणुपोग्गलाणं नत्थि सिणेहकाए, तम्हा दो परमाणुपोग्गला एगयओ न साहण्णंति ।
४. तिण्णि परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति,
कम्हा तिण्णि परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति ?
तिण्हं परमाणुपोग्गलाणं अत्थि सिणेहकाए, तम्हा तिण्णि परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति ।
ते भिज्जमाणा दुहा वि, तिहा वि कज्जंति ।
५. दुहा कज्जमाणा एगयओ दिवड्ढे परमाणुपोग्गले भवइ—एगयओ वि दिवड्ढे परमाणुपोग्गले भवइ ।
तिहा कज्जमाणा तिण्णि परमाणुपोग्गला भवंति ।
६, ७. एवं चत्तारि। पंच परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति, एगयओ साहण्णित्ता दुक्खत्ताए कज्जंति । दुक्खे वि य णं से सासए समयं समियं उवचिज्जइ य, अवचिज्जइ य ।
८. पुव्वि भासा भासा । भासिज्जमाणी भासा अभासा । भासासमयवितिक्कंतं च णं भासिया भासा ।
९, १०. जा सा पुव्वि भासा भासा । भासिज्जमाणी भासा अभासा । भासासमयवितिक्कंतं च णं भासिया भासा ।
सा किं भासओ भासा ? अभासओ भासा ? अभासओ णं सा भासा । नो खलु सा भासओ भासा ।

११. पुव्वि किरिया दुक्खा । कज्जमाणी किरिया अदुक्खा ।
किरियासमयवितिक्कंतं च णं कडा किरिया दुक्खा ।
१२, १३. जा सा पुव्वि किरिया दुक्खा । कज्जमाणी किरिया अदुक्खा । किरियासमयवितिक्कंतं च णं कडा किरिया दुक्खा । सा किं करणओ दुक्खा ? अकरणओ दुक्खा ?
अकरणओ णं सा दुक्खा । नो खलु सा करणओ दुक्खा— सेवं वत्तव्वं सिया ।

१४. अकिच्चं दुक्खं, अफुसं दुक्खं,
'अकृत्यम्' अनागतकालापेक्षयाऽनिर्वर्त्तनीयं जीवैरिति...
तथाऽकृतत्वादेवास्पृश्यम्—अवन्ध्यनीयम् ।
(वृ०-प० १०४)
१५. अकज्जमाणकडं दुक्खं,
क्रियमाणं वर्त्तमानकाले कृतं चातीतकाले तन्निषेधाद-क्रियमाणकृतम् (वृ०-प० १०४)
१६. अकट्टु-अकट्टु पाण-भूय-जीव-सत्ता वेदणं वेदेंति—इति वत्तव्वं सिया । (श० १।४४२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. हे प्रभु ! ए किम वारता ?, तब भाखै जिनरायो।
ए अन्यतीर्थि - परूपणा, मिथ्या—झूठ कहिवायो ।।

१८. हूं पिण गोयम ! इम कहूं, चलिवा लागूं ते चलियूं।
जाव निर्जरिवा लागो तसुं, कहिवूं तास निर्जरियूं ।।

१९. परमाणु वे मिल एकठा, ज्यांरे स्नेहकाय बंध पायो।
ते बेहुं भेदज पामता, इक इक परमाणु थायो ।।

२०. परमाणु त्रिण मिल एकठा, छै स्नेह पर्याय नीं रासो।
भेद पामता ते हुवै, द्विविध त्रिविध तासो ।।

२१. द्विविध एक परमाणुयो, द्विप्रदेशी खंध एको।
जे भेद पाम्यां त्रिविध हुवै, तो तीन परमाणु विशेखो ।।

२२. इम यावत् पंच परमाणुया, एकठा मिल खंध होयो।
खंध पिण तेह असासतो, सदा पुष्ट हीन जोयो ।।

वा०—पांच परमाणुया एकठा मिली, कर्मपणें हुई ते पिण मिथ्या। जे भणी ते पंच परमाणुया ना खंध मात्र थइ सकै, पिण कर्मपणुं नहीं। कर्म नों तो अनंत परमाणुमय अनंत प्रदेशी खंध रूपपणों छै। तथा वली कर्म नों जीव नैं आवरवा नो स्वभाव छै। ते पंच परमाणु स्कंधमात्र छतो असंख्यात जीव नां प्रदेश नैं किम आवरै ? ते भणी तेहनों कथन मिथ्या।

२३. बोल्यां पहिली भाषा नहीं, बोलवा मांडी ते भासा।
भाषा समय उलंघ्यां पछै, भासा न कहियै तासा ।।
२४. जे बोल्यां पहिली भाषा नहीं, भासिज्जमाणी भाषा कहियै।
भाषा समय उलंघ्यां भाषा नहीं, प्रश्न दोय हिव लहियै।
२५. ते स्यूं भासक थी भाषा अछै, कै अभाषक थी भाषा होयो ?
भाषक थी भाषा हुवै, अभाषक थी भाषा न कोयो ।।
२६. क्रिया पहिलां दुख हेतु नहीं, क्रिया करंता दुख हेतु कहियै।
क्रिया समय गयां दुख हेतु नहीं, जिम भाषा तिम क्रिया उचरियै ।।
२७. जाव क्रिया कियां थी दुख हुवै, अणकीधां दुख नांही।
ते इम कहिवूं छै सही, चउथा प्रश्न रै मांही ।।

१७. से कहमेयं भंते ! एवं ?
गोयमा ! जण्णं ते अण्णउत्थिया एवमाइक्खंति जाव वेदणं वेदेंति—इति वत्तव्वं सिया। जे ते एवमाहंसु, मिच्छा ते एवमाहंसु।
१८. अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि, एवं भासेमि, एवं पण्णवेमि, एवं परूवेमि—एवं खलु चलमाणे चलिए। जाव निज्जरिज्जमाणे निज्जिण्णे।
१९. दो परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति,
कम्हा दो परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति ?
दोण्हं परमाणुपोग्गलाणं अत्थि सिणेहकाए, तम्हा दो परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति। ते भिज्जमाणा दुहा कज्जंति। दुहा कज्जमाणा एगयओ परमाणुपोग्गले—एगयओ परमाणुपोग्गले भवति।
२०. तिण्णि परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति, कम्हा तिण्णि परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति ? तिण्हं परमाणुपोग्गलाणं अत्थि सिणेहकाए, तम्हा तिण्णि परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति। ते भिज्जमाणा दुहा वि, तिहा वि कज्जंति।
२१. दुहा कज्जमाणा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ दुपएसिए खंधे भवति। तिहा कज्जमाणा तिण्णि परमाणुपोग्गला भवंति।
२२. एवं चत्तारि। पंच परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति। एगयओ साहणित्ता खंधत्ताए कज्जंति। खंधे वि य णं से असासए सया समितं उवचिज्जइ य, अवचिज्जइ य।
वा०—पञ्च पुद्गलाः संहताः कर्मतया भवन्ति, तदप्यसंगतं, कर्मणोऽनन्तपरमाणुतयाऽनन्तस्कंधरूपत्वात्, पञ्चाणुकस्य च स्कन्धमात्रत्वात्, तथा कर्म जीवावरणस्वभावमिष्यते, तच्च कथं पञ्चपरमाणुस्कन्धमात्ररूपं सदसङ्ख्यातप्रदेशात्मकं जीवमावृणुयादिति।
(वृ०-प० १०५)
२३. पुव्वि भासा अभासा, भासिज्जमाणी भासा भासा, भासासमयवितिक्कंतं च णं भासिया भासा अभासा।
२४, २५. जा सा पुव्वि भासा अभासा। भासिज्जमाणी भासा भासा, भासासमयवितिक्कंतं च णं भासिया भासा अभासा। सा किं भासओ भासा ? अभासओ भासा ? भासओ णं भासा, नो खलु सा अभासओ भासा।
२६, २७. पुव्वि किरिया अदुक्खा, जहा भासा तहा भाणियव्वा किरिया वि जाव करणओ णं सा दुक्खा। नो खलु सा अकरणओ दुक्खा—सेवं वत्तव्वं सिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८. कीधो दुख कारण कर्म ते, ए आगमि काल अपेक्षायो।
करिवा माटै फर्श्यो छतो, दुख कारण कहिवायो॥

२८. किच्चं दुक्खं, फुसं दुक्खं,

२९. दुख नों कारण कर्म ते, करै वर्त्तमान कालो।
गये काले कीधो अछै, ते दुख हेतु न्हालो॥

२९. कज्जमाणकडं दुक्खं,

३०. प्राण भूत जीव सत्व ते, शुभ अशुभ कर्म ताह्यो।
कीधा तिके भोगवै अछै, ए पंचमो प्रश्न कहायो॥

३०. कट्टु-कट्टु पाण-भूय-जीव-सत्ता वेदणं वेदेंति—इति वत्तव्वं सिया। (श० १।४४३)

३१. वलि अन्यतीर्थिक मत तणो, प्रश्न गोयम पूछंता।
हे प्रभु ! इम अन्यतीर्थी, वयण भाखै परूपंता॥

३२. एक जीव इक समय में, बे क्रिया नों बंध करै ताह्यो।
इरियावहि अकषाइ तणैं, सकषाइ रै संपरायो॥

वा०—इरियावहि क्रिया अकषाइ नैं हुवै अनै सांपरायिकी सकषाइ नैं हुवै। एहवी इरियावहि अनैं संपराय नों एक जीव रै एक समैं बंध हुवै। एहवो अन्यतीर्थी कहै छै।

३१, ३२. अण्णउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति जाव एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेति, तं जहा—इरियावहियं च, संपराइयं च।

३३. जे समय इरियावहि करै, ते समय बंधै संपरायो।
जे समय बांधै संपराय नैं, ते समय इरियावहि थायो॥

३३. जं समयं इरियावहियं पकरेइ,
तं समयं संपराइयं पकरेइ।
जं समयं संपराइयं पकरेइ,
तं समयं इरियावहियं पकरेइ॥

३४. इरियावहि बंधवै करी, संपराय बंधायो।
संपराय बंधवै करी, बंध इरियावहि नुं थायो॥

३४. इरियावहियाए पकरणयाए संपराइयं पकरेइ। संपराइयाए पकरणयाए इरियावहियं पकरेइ।

३५. इम इक जीव निश्चै करी, इक समय वे क्रिया बंधायो।
इरियावहि संपरायकी, हे प्रभु ! ए किम वायो?

३५. एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेति, तं जहा—इरियावहियं च, संपराइयं च।(श०१।४४४)
से कहमेयं भंते ! एवं ?

३६. जिन भाखै—कहै अन्यतीर्थी, एक समय बे क्रिया बंधायो।
इरियावहि संपरायकी, ते झूठ—मिथ्या तसुं वायो॥

३६. गोयमा ! जण्णं ते अण्णउत्थिया एवमाइक्खंति...एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेति, जाव इरियावहियं च, संपराइयं च।
जे ते एवमाहंसु। मिच्छा ते एवमाहंसु।

३७. हूं पिण गोयम ! इम कहूं, एक समय इक जीवो।
इरियावहि तथा संपरायकी, क्रिया एक कहीवो॥

३७. अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि...एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एक्कं किरियं पकरेइ, तं जहा—इरियावहियं वा, संपराइयं वा। (श० १।४४५)

३८. परतीर्थी नीं वारता, इक समय बंधै क्रिया दोयो।
ते स्वसमय करि कहिवो इहां, इक समय क्रिया इक होयो॥

३९. अनंतर सूत्रे क्रिया कही, क्रियावंत नैं ह्वै उत्पादो।
हिव उत्पत्ति-विरह परूपणा, कहियै धर अहलादो॥

३९. अनन्तरं क्रियोक्ता, क्रियावतां चोत्पादो भवतीत्युत्पादविरहप्ररूपणायाह— (वृ०-प० १०७)

४०. हे भदंत ! नरकगति विषै, कितो ऊपजवानों विरह दृष्टो।
जिन कहै समय इक जघन्य थी, बारै मुहूर्त्त उत्कृष्टो॥

४०. निरयगई णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।
(श० १।४४६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१. पद छट्ठै कह्यो तिम इहां, उत्पत्ति-विरह गति च्यारो।
जघन्य थकी इक समय छै, उत्कृष्ट मुहूर्त्त बारो॥

४१. एवं वक्कंतीपयं भाणियव्वं निरवसेसं। (श० १।४४७)
व्युत्क्रान्तिः---जीवानामुत्पादस्तदर्थ पदं—प्रकरणं व्युत्क्रान्तिपदं तच्च प्रज्ञापनायां षष्ठं, तच्चार्थलेशत एवं द्रष्टव्यं---पञ्चेन्द्रियतिर्यग्गतौ मनुष्यगतौ देवगतौ चोत्कर्षतो द्वादश मुहूर्त्ताः जघन्यतस्त्वेकसमय उत्पाद-विरह इति। (वृ०-प० १०७)

४२. मुहूर्त्त चउवीस, दिन-निश सात नुं, पक्ष मास वे च्यार छ मासो।
क्रम उत्कृष्ट सातुं तणो, विरह उपजवानुं तासो॥
४३. इमहिज नीकलवा तणो, विरह कह्यो जिनरायो।
उपजवा नीकलवा तणो, जघन्य समय इक थायो॥

४२, ४३. चउवीसई मुहुत्ता १ सत्त अहोरत्त २ तह य पण्णरस ३।
मासो य ४ दो य ५ चउरो ६ छम्मासा ७ विरहकालो उ॥
उक्कोसो रयणाइसु सव्वासु जहण्णओ भवे समओ।
एमेव य उव्वट्टण संखा पुण सुरवरा तुल्ला॥
(वृ०-प० १०७)

४४. इक दोय तिण जघन्य थी, संख असंख उत्कृष्टो।
एक समय में नेरइया, उपजै निकलै अनिष्टो॥

४४. एगो य दो य तिण्णि य संखमसंखा व एगसमएणं।
उववज्जंतेवइया उव्वट्टंतावि एमेव॥
(वृ०-प० १०७)

४५. अंतरमुहूर्त्त विकलेंद्री तणों, तिमज संमूर्च्छिम जाणी।
उभय विरह उत्कृष्ट थी, जघन्य समय इक ठाणी॥
४६. बारै मुहूर्त्त गर्भेज नों, उभय उत्कृष्टो त्यांही।
जघन्य थकी इक समय छै, विरह एकेंद्री रै नांही॥
४७. बारै मुहूर्त्त गर्भेज नों, संमूर्च्छिम चउवीसो।
उभय विरह उत्कृष्ट थी, जघन्य समय इक दीसो॥

४५, ४६. तिर्यग्गतौ च विरहकालो यथा—
भिन्नमुहुत्तो विगलिंदियाण संमुच्छिमाण य तहेव।
बारस मुहुत्त गब्भे उक्कोस जहन्नओ समओ॥
एकेन्द्रियाणां तु विरह एव नास्ति। (वृ०-प० १०७)
४७. मनुष्यगतौ तु—
बारस मुहुत्त गब्भे मुहुत्त संमुच्छिमे चउव्वीसं।
उक्कोस विरहकालो दोसु वि य जहन्नओ समओ॥
४८. देवगतौ तु— (वृ०-प० १०७)

४८. भवनपति व्यंतर जोतिषी, सौधर्म नैं ईशाणो।
उत्कृष्ट चउवीस मुहूर्त्त नों, जघन्य समय इक जाणो॥

भवणवणजोइसोहम्मीसाणे चउवीसइ मुहुत्ता उ।
उक्कोसविरहकालो पंचसु वि जहन्नओ समओ॥
(वृ०-प० १०७)

४९. उत्कृष्ट सनतकुमार में, नव दिन मुहूर्त्त बीसो।
महेन्द्र दिवस बारै तणों, मुहूर्त्त दश वलि दीसो॥
५०. दिन साढा बावीस नों, पंचम कल्प पिछाणी।
दिन पैंतालीस तणों कह्यो, लंतक कल्पै जाणी॥
५१. असी दिवस रात्रि सातमै, सौ दिन आठमै जासो।
नवमै दशमै संख्य मास नों, आरण अच्चू संख्य वासो॥
५२. संख्याता सौ वर्ष नों, हेठिम त्रिक विचारो।
संख्याता सहस्र वर्ष तणों, मझिम त्रिक मझारो॥
५३. संख्याता लक्ष वर्ष नों, उवरिम त्रिक में पायो।
पल्य नों भाग असंख्यातमों, च्यार अनुत्तर मांह्यो॥
५४. पल्य नों भाग संख्यातमों, सर्वार्थसिद्ध मांह्यो।
सहु ठामै विरह उत्कृष्ट ए, जघन्य समय इक थायो॥

४९-५४. णवदिण वीस मुहुत्ता बारस दस चेव दिणमुहुत्ताओ।
बावीसा अद्ध चिय पणयालअसीइदिवसतयं॥
संखेज्जा मासा आणयपाणएसु तह आरणच्चुए वासा।
संखेज्जा विन्नेया गेवेज्जेसु अओ वोच्छं॥
हेट्ठिम वाससयाइं सज्झि सहस्साइ उवरिमे लक्खा।
संखेज्जा विन्नेया जह संखेज्जं तु तीसुपि॥
पलिया असंखभागो उक्कोसो होइ विरहकालो उ।
विजयाइसु निद्दिट्ठो सव्वेसु जहण्णओ समओ॥
(वृ०-प० १०७, १०८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५५. ए ऊपजवा नों विरह छै, सर्व देव नैं सोयो।
इमहिज निकलवा तणो, उत्कृष्ट जघन्य सुजोयो॥

५५. उववायविरहकालो इय एसो वण्णिओ उ देवेसु।
उव्वट्टणावि एवं सव्वेसु होइ विण्णेया॥
(वृ०-प० १०८)

५६. जघन्य थकी एक समय नों, है उत्कृष्ट छ मासो।
विरह सिद्ध गति नों कह्यो, पिण निकलवा नुं न तासो॥

५६. जहण्णेण एगसमओ उक्कोसेणं तु होंति छम्मासा।
विरहो सिद्धिगईए उव्वट्टणवज्जिया नियमा॥
(वृ०-प० १०८)

५७. पन्नवण पद छट्ठा विषै, आख्यो छै अधिकारो।
ते अनुसारे आखियो, वारू ए विस्तारो॥

५८. सेवं भंते ! इम कहि, जाव गोतम विचरंतो।
प्रथम शतक नुं परवडो, दशम उदेश सोहंतो॥

५८. सेवं भंते ! सेवं भंते त्ति जाव विहरइ। (श० १।४४८)

५९. ए प्रथम शतक अर्थ आखियो, संवत् उगणीसैं उगणीसो।
मृगसिर सुदि पूनम दिने, लाडणूं सहर जगीसो॥

६०. ढाल भली गुणतीसमीं, भिक्खु भारीमाल ऋषरायो।
'जय-जश' संपति साहिबी, गण-वृद्धि स्वाम पसायो॥

प्रथमशते दसमोद्देशकार्थः॥१।१०॥

गीतक-छंद

१. इति पंचमाङ्ग-समुद्र गुरु-गम-भंग संग प्रसंग थी,
वर प्रथम शतक पदार्थमय-आवर्त-गर्त उमंग थी।
उल्लंघियो युगपोत-वृत्ति सुचूर्णि रूप लही भली,
मैं प्रगट उपचित-जाड्य लघुमति वृत्तिकार कह्यो बली॥

१. इति गुरुगमभंगैः सागरस्याहमस्य,
स्फुटमुपचितजाड्यः पञ्चमांगस्य सद्यः।
प्रथमशतपदार्थावर्तगर्तव्यतीतो,
विवरणवरपोतौ प्राप्य सद्धीवराणाम्॥
(वृ०-प० १०८)

२. गुरुदेव गुर कृपया अतुल भल अंग पंचम उदधि नो,
वर प्रथम शतक पदार्थ रूपज भ्रमर लंघ्यो शुभमनो।
वर विविध विवरण समय-प्रवहण जोड़मय रच पाजही,
अति सुगम निगम सुधार पर-उपकार हित सुख साजही॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय शतक

ढाल : ३०

गीतक-छंद

१. धुर शतक दसमोद्देशकान्ते विरह जीवोत्पाद नों,
इह शतक प्रारंभ उच्छ्वासादि चिन्तन तेहनों।
इण परे संबंध स्यूं आयात आमुख रूप जे,
एक गाथा कही आगमकार सहज सरूप जे॥

१. प्रथमशतान्तिमोद्देशकान्ते जीवानामुत्पादविरहोऽभिहितः, इह तु तेषामेवोच्छ्वासादि चिन्त्यत इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदमुपोद्घातसूत्रानन्तरसूत्रम्।
(वृ०-प० १०६)

दूहा

२. द्वितिय शतक उद्देश दश, प्रथम उदेशा मांय।
धुर [1]उश्वास-खंधक वलि, [2]समुद्घात द्वितियाय॥

२, ३. १ ऊसास खंदए वि य, २ समुग्घाय
३, ४ पुढविंदिय ५ अण्णउत्थि ६ भासा य
७ देवा य ८ चमरचंचा,
९, १० समयखित्ततत्थिकाय बीयसए॥
(२।१ संगहणी-गाहा)

३. [3]पृथ्वी [4]इंद्रिय [5]अन्नउत्थिय, [6]भाषा [7]देवा जाण।
[8]चमरचंचा नैं [9]समयखित्त, [10]अस्तिकाय पिछाण॥

४, ५. यद्यप्येकेन्द्रियाणामागमादिप्रमाणाज्जीवत्वं प्रतीयते तथाऽपि तदुच्छ्वासादीनां साक्षादनुपलम्भाज्जीवशरीरस्य च निरुच्छ्वासादेरपि कदाचिद्दर्शनात् पृथिव्यादिपूच्छ्वासादिविषया शङ्का स्यादिति तन्निरासाय तेषामुच्छ्वासादिकमस्तीत्येतस्यागमप्रमाणप्रसिद्धस्य प्रदर्शनपरमिदं सूत्रमवगन्तव्यम्। (वृ०-प० १०६)

४. यद्यपि श्रद्धागम्य शुभ, एकेन्द्रिय में जोय।
आगम आदि प्रमाण थी, जीवपणूं अवलोय॥

५. उस्वासादी तेहनैं, प्रत्यक्ष दीसै नांय।
ते संका टालण भणी, प्रसिद्ध आगम वाय॥

६, ७. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णामं नयरे होत्था ——वण्णओ। सामी समोसढे। परिसा निग्गया। धम्मो कहिओ। पडिगया परिसा। (श० २।१)

६. तिण कालै नैं तिण समै, नगर राजगृह ताय।
स्वामी तिहां समवसर्या, परषद वंदै आय॥

७. देव जिनेन्द्रे दाखियो, धर्म अमोलक आण।
परषद सुण वंदी करी, पहुंती निज-निज ठाण॥

८. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी जाव पज्जुवासमाणे एवं वदासी—

८. तिण कालै नैं तिण समै, वड़ा सीस सुविनीत।
जाव करी पर्युपासना, पूछै प्रश्न पुनीत॥

*प्रश्न गोयम प्रभुजी नैं पूछै॥ध्रुपदं॥

९. जे इमे भंते! बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया जीवा, एएसि णं आणामं वा पाणामं वा उस्सासं वा निस्सासं वा जाणामो पासामो।

९. बे ते चउरिंद्री पंचेंद्री लेवै, आणपाण उसास निःस्वासो रे।
ते तो अम्है जाणां छां स्वामी! देखां छां पिण तासो रे॥

*लय——थिर-थिर रे चेतन संजम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. तिमहिज पृथिव्यादिक एकेंद्री[1] लेवै उस्वास निःस्वासो।
प्रगट अम्है नहिं जाणां नै देखां, स्यूं ते पिण लेवै उस्वासो?

जयवंता जिन उत्तर आपै ।।ध्रुपदं।।

११. जिन कहै—हंता, जीव एकेंद्री, लियै उस्सास निस्सासो।
गोयम पूछै—कैहवा द्रव्य रो? हिव जिन कहै—गुण-रासो।।
१२. द्रव्य थी अनंत प्रदेशिक द्रव्य नों, क्षेत्र थकी हिव कहिए।
असंख प्रदेश अवगाही पुद्गल, काल थकी अन्यतर स्थिति लहिए।।
१३. भाव थी वर्णादिक सहीत नों, जीव एकेंद्री जाणी।
उस्सास अनैं निस्सास लेवै छै, बलि गोयम कहै वाणी।।

१४. जो भाव थी वर्णादिक सहित नों, ते स्यूं एक वर्ण द्रव्य होयो?
आहारगमो पन्नवण अठवीसमै, तिम जाव पंचदिशि जोयो।।

१५. नारक प्रभुजी! उसासादिक लै? आहार-पदे तिम जाणी?
जावत् नियमा षट दिशि थी लै, उस्सास निस्सास पिछाणी।।

१६. जीव एकेंद्री व्याघात आश्री, त्रि चउ पंच दिशि ताह्यो।
निर्व्याघाते षट दिशि नों लै, त्रस छ दिशि कहिवायो।।

१७. *उस्सास एकेंद्रियादिक नैं, तेह वायु रूप है।
वायु ना उस्सास नों हिव, प्रवर प्रश्न अनूप है।।

१८. +हे भदंत! जे [1]वायुकाय छै, वाउकाय नैं जोयो।
उस्सास अनैं निःसास लेवै छै? हंता जिन वच होयो।।

१०. जे इमे पुढविकाइया जाव वणप्फइकाइया—एगिंदिया जीवा, एएसि णं आणामं वा पाणामं वा उस्सासं वा निस्सासं वा न याणामो न पासामो। एए णं भंते! जीवा आणमंति वा? पाणमंति वा? ऊससंति वा? नीससंति वा?

११-१३. हंता गोयमा! एए वि णं जीवा आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, नीससंति वा। (श० २।२)
किण्णं भंते! एते जीवा आणमंति वा? पाणमंति वा? ऊससंति वा? नीससंति वा?
गोयमा! दव्वओ अणंतपएसियाइं दव्वाइं, खेत्तओ असंखेज्जपएसोगाढाइं, कालओ अण्णयरठितियाइं, भावओ वण्णमंताइं गंधमंताइं रसमंताइं फासमंताइं आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, नीससंति वा। (श० २।३)

१४. जाइं भावओ वण्णमंताइं आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, नीससंति वा ताइं किं एगवण्णाइं···? आहारगमो नेयव्वो जाव पंचदिसं। (श० २।४, ५)

१५. किण्णं भंते! नेरइया आणमंति वा? पाणमंति वा? ऊससंति वा? नीससंति वा? तं चेव जाव नियमा छद्दिसिं आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, नीससंति वा। (श० २।६)

१६. जीव-एगिंदिया वाघाय-निव्वाघायाइं च भाणियव्वाइं। सेसा नियमा छद्दिसिं। (श० २।७)
तत्र निर्व्याघातेन षड्दिशं षड् दिशो यत्रानमनादौ तत्तथा, व्याघातं प्रतीत्य स्यात्त्रिदिशं स्याच्चतुर्दिशं स्यात्पञ्च-दिशमानमन्ति ४···'सेसा नियमा छद्दिसिं' ति शेषा नारकादिवसाः षड्दिशमानमंति। (वृ०-प० ११०)

१७. अथैकेन्द्रियाणामुच्छ्वासादिभावादुच्छ्वासादेश्च वायु-रूपत्वात् किं वायुकायिकानामप्युच्छ्वासादिना वायुनैव भवितव्यमुतान्येन केनापि पृथिव्यादीनामिव तद्विल-क्षणेन? (वृ०-प० ११०)

१८. वाउयाए णं भंते! वाउयाए चेव आणमंति वा? पाण-मंति वा? ऊससंति वा? नीससंति वा? हंता गोयमा! वाउयाए णं वाउयाए चेव आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, नीससंति वा। (श० २।८)

---

*लय—पूज मोटा भांजै टोटा

+लय—थिर-थिर रे चेतन! संजम

१. वृत्तिकार ने वायुकाय के सन्दर्भ में श्वासोच्छ्वास का एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित किया है। जयाचार्य की सूक्ष्मग्राही मेधा ने इस प्रश्न का स्पर्श कैसे नहीं किया, यह आश्चर्य की बात है। वि० सं० १९९४ में भगवती सूत्र और जोड़ का सामूहिक
(शेष अग्रिम पृष्ठ पर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. हे प्रभु ! वाऊकाय वायु में, अनेक सयसहस्र वारो।
मरि-मरि वलि-वलि तिहांज उपजै ? हंता जिन वच सारो ॥

२०. ते प्रभु ! स्यूं मरै शस्त्रे फर्श्या, कै अणफर्श्यै मरंता।
जिन कहै—ते फर्श्यैज मरै छै, अणफर्श्यै न चवंता ॥

२१. ते प्रभुजी ! स्यूं निज काया थी, निकलै शरीर सहीतो।
अथवा शरीर रहित निकलै छै ? हिव जिन उत्तर वदीतो ॥
२२. किण हि प्रकारे निज काया थी, निकलै सरीर सहीतो।
किण हि प्रकारे निज काया थी, निकलै शरीर रहीतो।
२३. हे प्रभु ! ते किण अर्थे कहियै ? तव भाखै जिनरायो।
वाऊकाय में च्यार शरीर छै, आहारक वर्जी ताह्यो ॥
२४. औदारिक वैक्रिय छांडी नैं, निकलै वाऊकायो।
तेजस कार्मण साथ लेई नैं, परभव मांही जायो ॥

१९. वाउयाए णं भंते ! वाउयाए चेव अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाति ?
हंता गोयमा ! (श० २।९)

२०. से भंते ! किं पुट्ठे उद्दाति ? अपुट्ठे उद्दाति ?
गोयमा ! पुट्ठे उद्दाति, नो अपुट्ठे उद्दाति।
(श० २।१०)

२१, २२. से भंते ! किं ससरीरी निक्खमइ ? असरीरी निक्खमइ ?
गोयमा ! सिय ससरीरी निक्खमइ, सिय असरीरी निक्खमइ। (श० २।११)

२३, २४. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—सिय ससरीरी निक्खमइ, सिय असरीरी निक्खमइ ? गोयमा ! वाउयायस्स णं चत्तारि सरीरया पण्णत्ता, तं जहा—ओरालिए, वेउव्विए, तेयए, कम्मए। ओरालिय-वेउव्वियाइं विप्पजहाय तेयय-कम्मएहिं निक्खमइ। (श० २।१२)

स्वाध्याय चल रहा था। तब मुनि हेमराजजी ने जो आगम के विशेषज्ञ थे, परामर्श दिया कि वृत्ति का यह अंश बहुत महत्त्वपूर्ण है, इसलिए इसे संग्रहीत कर लेना चाहिए। तब मैंने पूरक व्याख्या के रूप में चार पद्य बनाए, वे इस प्रकार हैं—

१. कही वृत्ति में वात, उच्छ्वासादिक वायु नों।
वायु रूप विख्यात, अन्य रूप अथवा हुवै ?
२. जदि हुवै वायू रूप, श्वास-वायु पिण श्वास लै।
अन्य वायु तद्रूप, इम अनवस्था आवस्यै ?
३. समाधान है स्वास, श्वास-वायु चेतन नहीं।
लहै न श्वासोच्छ्वास, तो अनवस्था क्यूं हुवै ?
४. जीव मात्र जे जोय, आन-प्राण लै वायु नों।
ते अति सूक्ष्म होय, वायुकायिक शरीर थी ॥

यहां वृत्तिकार ने, यह जिज्ञासा व्यक्त की है—जिस प्रकार पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वनस्पतिकायिक आदि जीव वायु का श्वासोच्छ्वास लेते हैं, वैसे ही वायुकायिक जीव भी अपने से विलक्षण द्रव्य का श्वासोच्छ्वास लेते हैं या वायु का ही लेते हैं ? यदि वायुकायिक जीव भी वायु का ही श्वासोच्छ्वास लें तो श्वास-वायु के जीवों को भी श्वासोच्छ्वास के लिए अन्य वायु की अपेक्षा होगी। इस प्रकार शृंखला आगे बढ़ती रही तो क्या अनवस्था दोष उत्पन्न नहीं हो जाएगा ?

इस प्रश्न के समाधान में स्वयं वृत्तिकार ने लिखा है—श्वास-वायु वायु होने पर भी सजीव नहीं होती—वायुकायिक जीवों के औदारिक, वैक्रिय शरीर रूप नहीं होती। क्योंकि श्वासोच्छ्वास के पुद्गलों का नाम है 'आनप्राण'। आनप्राण के पुद्गल औदारिक और वैक्रिय शरीर के पुद्गलों के अनन्तगुण प्रदेश वाले और अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। वायुकायिक जीवों के शरीर से अत्यन्त सूक्ष्म और निर्जीव होने के कारण श्वास-वायु के श्वासोच्छ्वास लेने का प्रसंग ही उपस्थित नहीं होता। इस दृष्टि से अनवस्था दोष की संभावना निर्मूल है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. *वायु बलि बलि वायु में उपजं, कह्यूं तेहथी हिवै।
भव-चक्र भमवो कोइक मुनि नों, प्रश्न गोयम पूछवै ?

२६. †हे प्रभु ! 'प्रासुक-भोजी निर्ग्रंथ, चरमशरीरी नांह्यो।
भव नुं विस्तार रुध्यो नहीं, जेणे संसार हीण न पायो।।

२७. संसार भोगववा योग्य कर्म नुं, तांतो न तूटो तासो।
वार-वार भव-भव में भमिवूं, विच्छेद हुवो नहिं जासो।।

२८. भव-भव वेदवा योग्य कर्म नों, पिण न हुवो विच्छेदो।
नीठो नहीं प्रयोजन, बलि करणीय कार्य संवेदो।।

२९. इत्थत्थं कहितां ए भव-भ्रमण, वलि संसार में पावै ?
'इत्थत्त' पाठांतर एणे प्रकारे, मनुष्य प्रमुख गति आवै।।

३०. वृत्तिकार कह्यूं कषाय उदय थी, ए चारित्र नां पडिवाई।
उपशांत कषाई छट्ठै आवी, भ्रष्ट होय निगोद में जाई।।

३१. तिण सूं गोतम पूछ्यो प्रासुक-भोजि रूलै संसार मझारो ?
जिन कहै हंता मडाई-निर्ग्रंथ, भ्रमण करै संसारो।।

३२. *संसार-चक्र अवाप्त जे मुनि, जीव छै स्यूं ए भणी।
प्राण प्रमुख षट् नाम करि, बोलाविये इम संथुणी।।

३३. काल नैं भेदे करी, अथवा छहूं समकाल ही।
बोलाविये हिव प्रश्न एहवा, सांभलो सुविशाल ही।।

---

*लय—पूज मोटा भांजै टोटा

†लय—थिर-थिर रे चेतन संजम

१. वृत्तिकार ने मडाई का संस्कृत रूप मृतादी किया है। जयाचार्य ने अपनी व्याख्या में उसी को आधार माना है। मुनि सचित्त भोजन का परिहार करता है—वह अचित्त-भोजी होता है। उस अचित्त शब्द को ध्यान में रखकर ही वृत्तिकार ने मृतादी का अर्थ प्रासुक-भोजी किया है, किंतु पंडित बेचरदासजी दोशी ने इस शब्द का एक नया अर्थ प्रस्तुत किया है। वह बहुत महत्त्वपूर्ण और विमर्श योग्य है। उनके अनुसार मृतादी का अर्थ है याचित-भोजी। संस्कृत में मृत और याचित दोनों शब्द एकार्थक हैं। मृतं तु याचितं [देखें अभिधान चिन्तामणि ३।५३०] उत्तराध्ययन से भी इस अर्थ की पुष्टि होती है। वहां मुनि द्वारा ग्राह्य वस्तुओं की चर्चा करते हुए कहा गया है—सव्वं से जाइयं होइ नत्थि किंचि अजाइयं (उ० २।२८) मृतादी का याचित-भोजी अर्थ संगत भी है और समुचित भी, इस दृष्टि से पंडित बेचरदासजी की प्रस्तुति को स्वाभाविक और अर्थ के अधिक निकट माना जा सकता है।

२५. वायुकायस्य पुनः पुनस्तत्रैवोत्पत्तिर्भवतीत्युक्तम्, अथ कस्यचिन्मुनेरपि संसारचक्रापेक्षया पुनः पुनस्तत्रैवोत्पत्तिः स्यादिति दर्शयन्नाह— (वृ०-प० १११)

२६. मडाई णं भंते ! नियंठे नो निरुद्धभवे, नो निरुद्धभवपवंचे, नो पहीणसंसारे,

२७. नो पहीणसंसारवेयणिज्जे, नो वोच्छिण्णसंसारे,

२८. नो वोच्छिण्णसंसारवेयणिज्जे, नो निट्ठियट्ठे, नो निट्ठियट्ठकरणिज्जे

२९. पुणरवि इत्थत्थं हव्वमागच्छइ ?
'इत्थत्थं' ति 'इत्यर्थम्' एनमर्थम्—अनेकशस्तिर्यङ्नरनाकिनारकगतिगमनलक्षणम्।
'इत्थत्त' मिति पाठान्तरं तत्रानेन प्रकारेणेत्थं तद्भाव इत्थत्वं मनुष्यादित्वमिति भावः। (वृ०-प० १११)

३०. कषायोदयात्प्रतिपतितचरणानां चारित्रवतां संसारसागरपरिभ्रमणं, यदाह—
जइ उवसंतकसाओ लहइ अणंतं पुणोवि पडिवायं।
(वृ०-प० १११)

३१. हंता गोयमा ! मडाई णं नियंठे...पुणरवि इत्थत्थं हव्वमागच्छइ। (श० २।१३)

३२, ३३. स च संसारचक्रगतो मुनिजीवः प्राणादिना नामषट्केन कालभेदेन युगपच्च वाच्यः स्यादिति विभणिषुः प्रश्नयन्नाह— (वृ०-प० १११)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४. +हे प्रभु ! ते निर्ग्रंथ जीव नैं, किम कहि बोलावीजै ?
जिन कहै—प्राण कही बोलाविय, वलि तसु भूत कहीजै ।
३५. जीव इसो कहिनै बोलाविय, वलि तसु सत्त कहीजै ।
विज्ञ कही बोलाविय तेहनैं, वलि तसु वेद वदीजै ।।
३६. इक-इक नाम जूइ जूइ पूछा, पूर्वे पूछी एहो ।
छहुं नामे समकाल बोलाविय, प्रश्न हिवै ते जेहो ।।
३७. प्राण भूत जीव सत्त विज्ञ वेद, बोलाविय समकालो ।
उस्सासादिक छहुं धर्म करि, युगपत वांछा न्हालो ।।
३८ तिण काले प्राण भूत प्रमुख जे, वांछ्यो नहिं इम एको ।
सर्व धर्म समकाले वांछा, तिण सूं जूओ प्रश्न सुविशेखो ।।

३९. अथवा ए छहुं फेर कह्या ते, निगमन वाक्य कहायो ।
सगला री फिर चोटी बांध करि, नाम छहुं फिर आयो ।।
४०. तिण युगपत पक्ष करी नहिं कहिवा, ए छहुं नाम पिछाणी ।
ए विहुं अर्थ कह्या टीका में, तिण अनुसारे जाणी ।।
४१. किण अर्थे प्राण जाव वेद ? जिन कहै—आण रु प्राणो ।
उस्सास नैं निस्सास लियै छै, ते भणी प्राण पिछाणो ।।

४२. जे भणी हुवो हुवै नैं होस्यै, ते भणी भूत थूणीजै ।
प्राण धरै आयु कर्म भोगवै, ते भणी जीव भणीजै ।।

४३. सक्त-आसक्त शुभाशुभ कर्मे, सत्त कहीजै ताह्यो ।
तथा सुंदर-असुंदर चेष्टा-सक्त समर्थ ते मांह्यो ।।
४४. अथवा शुभाशुभ कर्म करी नैं, सक्त संबद्ध कहायो ।
इण न्याय सक्त कहीजै तेहनैं, अर्थ विहुं वृत्ति मांह्यो ।।

४५. रस पांचूं जाण्या ते माटै, विज्ञ नाम इम थुणियै ।
सुख-दुख वेदै वेद कह्यो तसु, तिण अर्थे प्राणादिक भणियै ।।

४६. *कह्यूं पूर्वे भ्रष्ट संयत, वृद्धि तसु संसार नीं ।
तेहथी विपरीत पृच्छा, हिव सुणो अणगार नीं ।।
४७. +हे प्रभु ! प्रासुकभोजी निर्ग्रंथ, रुंध्यो भव नुं विस्तारो ।
जाव निठाड्यो भव नुं करिवूं, ते वलि नावै संसारो ?

+लय—थिर-थिर रे चेतन संजम
*लय—पूज मोटा भांजै टोटा

३४, ३५. से णं भंते ! किं ति वत्तव्वं सिया ?
गोयमा ! पाणे त्ति वत्तव्वं सिया । भूए त्ति वत्तव्वं सिया । जीवे त्ति वत्तव्वं सिया । सत्ते त्ति वत्तव्वं सिया । विण्णु त्ति वत्तव्वं सिया । वेदे त्ति वत्तव्वं सिया ।

३७. पाणे भूए जीवे सत्ते विण्णू वेदे त्ति वत्तव्वं सिया ।
(श० २।१४)
३८. यदा तूच्छ्वासादिधर्मैर्युगपदसौ विवक्ष्यते तदा प्राणो भूतो जीवः सत्त्वो विज्ञो वेदयितेत्येतत्तं प्रति वाच्यं स्यात् । (वृ०-प०११२)
३९, ४०. अथवा निगमनवाक्यमेवेदमतो न युगपत्पक्षव्याख्या कार्येति । (वृ०-प० ११२)

४१. से केणट्ठेणं पाणे त्ति वत्तव्वं सिया जाव वेदे त्ति वत्तव्वं सिया ?
गोयमा ! जम्हा आणमइ वा, पाणमइ वा, उस्ससइ वा, नीससइ वा तम्हा पाणे त्ति वत्तव्वं सिया ।
४२. जम्हा भूते भवति भविस्सति य तम्हा भूए त्ति वत्तव्वं सिया । जम्हा जीवे जीवति, जीवत्तं आउयं च कम्मं उवजीवति तम्हा जीवे त्ति वत्तव्वं सिया ।
४३, ४४. जम्हा सत्ते सुभासुभेहिं कम्मेहिं तम्हा सत्ते त्ति वत्तव्वं सिया ।
सक्तः—आसक्तः शक्तो वा—समर्थः सुन्दरासुन्दरासु चेष्टासु, अथवा सक्तः—संबद्धः शुभाशुभैः कर्मभिरिति । (वृ०-प० ११२)
४५. जम्हा तित्तकडुकसायंबिलमहुरे रसे जाणइ तम्हा विण्णु त्ति वत्तव्वं सिया ।
जम्हा वेदेति य सुह-दुक्खं तम्हा वेदे त्ति वत्तव्वं सिया । से तेणट्ठेणं पाणे त्ति वत्तव्वं सिया जाव वेदे त्ति वत्तव्वं सिया । (श० २।१५)
४६. अनन्तरोक्तस्यैवार्थस्य विपर्ययमाह— (वृ०-प० ११२)

४७. भडाई णं भंते ! नियंठे निरुद्धभवे, निरुद्धभवपवंचे जाव निट्ठियट्ठकरणिज्जे नो पुणरवि इत्थत्थं हव्वमागच्छइ ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४८. हंता जिन कह्यां गोयम पूछै, स्यूं कहि बोलावीजै ?
जिन कहै—सिद्ध कही बोलाविय, बुद्ध तत्व-जाण कहीजै ।।
४९. मुक्त कर्म थी मूकाणो कहिये, पाम्यो भवदधि पारो ।
होणहार ते हुआ सरीखो, उपचार थी इम धारो ।।

५०. परंपरा कर भवदधि केरूं, पार पाम्युं तसुं कहीजै ।
सिद्ध बुद्ध मुक्त निवृत्त अंतकृत, सहु-दुख-क्षीण वदीजै ।।

५१. सेवं भंते ! सेवं भंते ! इम कहि गोतम स्वामी ।
वीर वंदी नैं विचरै, संजम तप कर आतम धामी ।।

५२. श्रमण भगवंत महावीर तिवारै, राजगृह गुणसिल सेती-
विहार करी विचरै जनपद में, मुनिजनवृंद समेती ।।

५३. *एह अनंतर संजती नैं, हानि वृद्धि भव नीं कही ।
सिद्धपणुं वलि आखियो छै, पूर्व पाठ विषै सही ।।
५४. हिवै तेहिज अर्थ वलि, अन्य अर्थ व्युत्पादन भणी ।
चरित्र खंधक मुनि तणों कहुं, सरस बात सुहामणी ।।

५५. *अंक इकवीस नुं देश कह्यूं, ए तीसमीं ढाल रसालो ।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय प्रसादे, 'जय-जश' संपति मालो ।।

४८, ४९. हंता गोयमा ! मडाई णं नियंठे जाव नो पुणरवि इत्थत्थं हव्वमागच्छइ । (श० २।१६)
से णं भंते ! किं ति वत्तव्वं सिया ?
गोयमा ! सिद्धे त्ति वत्तव्वं सिया । बुद्धे त्ति वत्तव्वं सिया । मुत्ते त्ति वत्तव्वं सिया । पारगए त्ति वत्तव्वं सिया ।
४९. 'पारगए' त्ति पारगतः संसारसागरस्य भाविनि भूत-वदिन्युपचारात् । (वृ०-प० ११२)
५०. परंपरगए त्ति वत्तव्वं सिया ! सिद्धे बुद्धे मुत्ते परिणिव्वुडे अंतकडे सव्वदुक्खप्पहीणे त्ति वत्तव्वं सिया । (श० २।१७)
पारम्पर्येण गतो भवाम्भोधिपारं प्राप्तः परम्परागतः । (वृ०-प० ११२)
५१. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरति । (श० २।१८)
५२. तए णं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ नगराओ गुण-सिलाओ चेइआओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ । (श० २।१९)
५३, ५४. इहानन्तरं संयतस्य संसारवृद्धिहानी उक्ते सिद्धत्वं चेति, अधुना तु तेषामन्येषां चार्थानां व्युत्पादनार्थं स्कन्दकचरितं विवक्षुरिदमाह— (वृ०-प० ११२)

ढाल : ३५

दूहा

१. तिण कालै नै तिण समै, कयंगला अभिधान ।
नगरी हुंती सुहामणी, वर्णन बहुविध जान ।।
२. तिण कयंगला रै बाहिरै, ईशाणकूंण रै मांय ।
छत्तपलास उद्यान थो, वर्णन तसुं अधिकाय ।।

१. तेणं कालेणं तेणं समएणं कयंगला नामं नगरी होत्था—वण्णओ । (श० २।२०)
२. तीसे णं कयंगलाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसी-भाए छत्तपलासए नामं चेइए होत्था—वण्णओ । (श० २।२१)

*लय—पूज मोटा भांजै टोटा
+लय—थिर-थिर रे चेतन संजम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. तिण अवसर तपस्वी श्रमण, भगवंत श्री महावीर।
उत्पन्न पूर्ण ज्ञान फुन, दर्शणधर गुण-हीर॥

४. यावत् समवसरचा प्रभु, परषद निकली ताय।
जाव शब्द में पाठ छै, तास अर्थ हिव आय॥

५. अरहा जिनवर केवली, जाण्या सहु जीवादि।
सर्वभावदर्शी प्रभु, अंबरगत छत्रादि॥

६. कयंगला नगरी थकी, नहिं अति दूर नजीक।
नगरी नामै सावत्थी, तसुं वर्णन तहतीक॥

७. सावत्थी नगरी विषै, गद्दभालि शिष्य ताम।
कात्यायनगोत्री खंधक, वसै परिव्राजक आम॥

८. ऋग्वेद यजुर्वेदी, साम अथर्वण वेद।
इतिहास ए पंचमो, पुराण जाण उमेद॥

९. नाम कोस नों जाण ते, निघंटु छट्ठो एथ।
च्यारूं वेद कह्या तिकै, अंग - उपंग समेत॥

१०. अंग कह्या शिक्षादि षड्, तद् विस्तार उपांग।
तेह उभय कर सहित जे, साभिप्राय सर्वांग॥

११. विशद वेद-विद्या तणो, सारए कहितां सोय।
अध्यापन द्वारे करी, तास प्रवर्तक जोय॥

१२. अथवा दूजो अर्थ तसुं, वीसरियो सूत्रादि।
तेह तणां स्मारण थकी, स्मारक ते अविवादि॥

१३. अशुद्ध पढै है तेहनैं, वारए करै निषेध।
किहां धारए पाठ है, धारक च्यारूं वेद॥

१४. पारए—पारगामी कह्यो, षडंगवेत्ता जाण।
परिकर ए छै वेद नुं, तिण कारण फुन आण॥

१५. अथवा षडंगविद कह्यूं, विद् विचारणे धातु।
तास विचारपणुं ग्रह्यूं, पुनरुक्त दोष न थातु॥

१६. साटतंत्र शास्त्रे निपुण, गणित शास्त्र नुं जाण।
शिक्षा कल्प तणों वलि, अधिक जाण पहिछाण॥

१७. वर्ण - स्वरूप-निरूपकः, शिक्षा तास कहाय।
आचार-निरूपक शास्त्र नैं, कल्प कहीजै ताय॥

३, ४. तए णं समणे भगवं महावीरे उप्पन्ननाणदंसणधरे जाव समोसरणं। परिसा निग्गच्छइ। (श० २।२२)

६. तीसे णं कयंगलाए नयरीए अदूरसामंते सावत्थी नामं नयरी होत्था—वण्णओ। (श० २।२३)

७. तत्थ णं सावत्थीए नयरीए गद्दभालस्स अंतेवासी खंदए नामं कच्चायणसगोत्ते परिव्वायगे परिवसइ—

८. रिग्वेद-जजुर्वेद-सामवेद-अहव्वणवेद-इतिहास-पंचमाणं

९. निघंटुछट्ठाणं चउण्हं वेदाणं संगोवंगाणं
निघण्टु नामकोशः। (वृ०-प० ११४)

१०. सरहस्साणं
अङ्गानि—शिक्षादीनि षड्, उपांगानि—तदुक्तप्रपञ्चनपराः प्रबन्धाः 'सरहस्साणं' ऐदंपर्ययुक्तानाम्।
(वृ०-प० ११४)

११, १२. सारए
सारकोऽध्यापनद्वारेण प्रवर्त्तकः, स्मारको वाऽन्येषां विस्मृतस्य सूत्रादेः स्मारणात्। (वृ०-प० ११४)

१३. धारए
वारकोऽशुद्धपाठनिषेधात् 'धारए' त्ति क्वचित्पाठः तत्र धारकोऽधीतानामेषां धारणात्। (वृ०-प० ११४)

१४. पारए सडंगवी
पारगामी 'षडङ्गविदि' ति षडंगानि—शिक्षादीनि वक्ष्यमाणानि, सांगोपांगानामिति यदुक्तं तद्भेदपरिकरज्ञापनार्थम्। (वृ०-प० ११४)

१५. अथवा षडंगविदित्यत्र तद्विचारकत्वं गृहीतं 'विद विचारणे' इति वचनादिति न पुनरुक्तत्वमिति।
(वृ०-प० ११४)

१६. सट्ठितंतविसारए, संखाणे सिक्खा-कप्पे
'संखाणे' त्ति गणितस्कन्धे। (वृ०-प० ११४)

१७. 'सिक्खाकप्पे' त्ति शिक्षा—अक्षरस्वरूपनिरूपकं शास्त्रं कल्पश्च—तथाविधसमाचारनिरूपकं शास्त्रमेव।
(वृ०-प० ११४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. शब्द शास्त्र व्याकरण ते, छंद शास्त्र नों जाण।
निरुक्त व्युत्पत्तिकारकः, शास्त्र तेह पहिछाण ॥

१९. जोतिष नुं पिण जाण ते, अपर बहू बलि जाण।
ब्राह्मण परिव्राजक तणां, नय में निपुण वखाण ॥

१८. वागरणे छंदे निरुत्ते
'वागरणे' त्ति शब्दशास्त्रे 'छंदे' त्ति पद्यलक्षणशास्त्रे 'निरुत्ते' त्ति शब्दव्युत्पत्तिकारकशास्त्रे। (वृ०-प०११४)

१९. जोतिसामयणे अण्णेसु य बहूसु बंभण्णएसु परिव्वायएसु य नयेसु सुपरिनिट्ठिए या वि होत्था। (श० २।२४)
'जोतिसामयणे' त्ति ज्योतिः-शास्त्रे 'बंभण्णएसु' त्ति ब्राह्मणसंबंधिषु 'परिव्वायएसु य' त्ति परिव्राजकसत्केषु। (वृ०-प० ११४)

*खंधक बुद्धिवंतो। (ध्रुपदं)

२०. तिण सावत्थी नगरी मांहि वसंतो, पिंगल नामैं निर्ग्रंथो रे।
वैसालिक श्रावक सुखदायो, सुणैं जिनवच रसिक सवायो रे ॥

२०. तत्थ णं सावत्थीए नयरीए पिंगलए नामं नियंठे वेसालि-यसावए परिवसइ। (श० २।२५)

सोरठा

२१. वृत्तिकार इण ठाम, अर्थ कियो निर्ग्रंथ नुं।
निर्ग्रंथ श्रमणज ताम, पिंगल व्याख्या नहिं करी ॥

२१. 'नियंठे' त्ति निर्ग्रन्थः श्रमणः। (वृ०-प० ११४)

२२. विशाल - कुल उत्पन्न, माता श्री महावीर नीं।
तेह विशाला मन्न, तास पुत्र वर्धमान जिन ॥

२३. वैशालिक भगवान, तेहना वच श्रवणे करी।
तद् वचनामृत पान, वैशालिक श्रावक कह्यो ॥

२२, २३. 'वेसालियसावए' त्ति विशाला—महावीरजननी तस्या अपत्यमिति वैशालिकः—भगवांस्तस्य वचनं शृणोति तद्रसिकत्वादिति वैशालिकश्रावकः, तद्वचना-मृतपाननिरतः। (वृ०-प० ११४)

२४. *वृत्तिकार कहै पिंगल नामैं संत, वैसालिक महावीर भदंत।
श्रावक कह्यो तसु वच सुण लीन, ते पिंगल श्रमण प्रवीन ॥

२५. केइ कहै पिंगल श्रमण छै एक, दूजो वैसालिक श्रावक देख।
इह विध साधु श्रावक बिहुं माणैं, तत्व केवलज्ञानी जाणैं ॥

२४, २५. पिंगलनामं नियंठे सोऽवि वेसालि-सावओ।
संजय-सावयस्सावि तत्थं जाणंति अरिहंता ॥

२६. पिंगल निर्ग्रंथ वेसालिय श्रावक निवार, अन्य दिवस कदाचित् धार।
जिहां खंधक कात्यायनगोत्री त्यां आय, पूछै इह विध प्रश्न सोभाय ॥

२६. तए णं से पिंगलए नामं नियंठे वेसालियसावए अण्णया कयाइ जेणेव खंदए कच्चायणसगोत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता खंदगं कच्चायणसगोत्तं इणमक्खेवं पुच्छे—

२७. हे मागध ! मगध देश नां वासी, स्यूं सअंत लोक विमासी ?
कै अनंत लोक कहीजै ताय ? ते अंत-रहित कहिवाय।
२८. सअंत जीव ते अंत सहीत, कै जीव अंत रहीत ?
सिद्धी ते मुक्ति-शिला है सअंता, कै अंत-रहित सिद्धी मंता ?
२९. अंत सहित छै सिद्ध भगवान, कै अंत-रहित सिद्ध जान ?
किसा मरण थी संसार बधावै, किण मरणे संसार घटावै ?
३०. ए प्रश्न नों उत्तर दै अमनैं, म्है प्रश्न पूछ्या तुमनैं।
यां प्रश्नां रो उत्तर दीधां फेर, बलि प्रश्न पूछसूं हेर ॥
३१. इम पूछ्यै थकै खंधक मन मांह्यां, शंका कंखा वितिगिच्छा पायो।
शंका ते इहां उत्तर ए होय, अथवा न ह्वै ? अवलोय ॥

२७. मागहा !
'मागह' त्ति मगधजनपदजातत्वान्मागधस्तस्यामन्त्रणं हे मागध ! (वृ०-प० ११४)

२७-३०. किं सअंते लोए ? अणंते लोए ? सअंते जीवे ? अणंते जीवे ? सअंता सिद्धी ? अणंता सिद्धी ? सअंते सिद्धे ? अणंते सिद्धे ? केण वा मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढति वा, हायति वा ?—एतावताव आइक्खाहि वुच्चमाणे एवं। (श० २।२६)

३१. तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते पिंगलएणं नियंठेणं वेसालियसावएणं इणमक्खेवं पुच्छिए समाणे संकिए
'संकिए' किमिदमिहोत्तरमिदं वा ? इति संजातशङ्कः। (वृ०-प० ११४)

*लय—समजू नर विरला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२. ए उत्तर भलो न, ए पिण भलो नांही, तो किम उत्तर थाई ?
उत्तर नी वंछा मन मांही, कंखा ते कहिवाई ।।

३३. ए उत्तर दीधां मानसी कै नांय ? ए वितिगिच्छा कहिवाय ।
भेद-समापन्न मति-भंग पायो, स्यूं हिव कहिवूं ताह्यो ?

३४. कलुष-भाव हूं जाणूं नां कांई, इम कलुषपणो मन मांही ।
पिंगल निर्ग्रंथ वैशालिक श्रावक नैं, किंचित मात्र पिण तिण नैं ।।

३५. उत्तर देवा समर्थ नांह्यो, जद रह्यो अबोल्यो ताह्यो ।
जद पिंगल निर्ग्रंथ वैशालिक श्रावक, जिन-धर्म में परिपक्व ।।
३६. वे त्रिण वार ए प्रश्न पूछंतो, हे मागध ! स्यूं लोक सअंतो ?
जाव किसै मरणेज मरंतो, वृद्धि हानि संसार करंतो ?

३७. ए प्रश्न पूछ्यां नों उत्तर दै अमनैं, इम प्रश्न पूछ्या म्है तुमनैं ।
खंधक कात्यायनगोत्री तिवारैं, ए प्रश्न सुणीनै जिवारैं ।।
३८. पिंगल निर्ग्रंथ वैशालिक श्रावक, पूछ्यै वे त्रिण वारां प्रत्यक्ष ।
शंका कंखा वितिगिच्छा पायो, भेद कलुष मन थायो ।।

३९. पिंगल निर्ग्रंथ वैशालिक श्रावक नैं, किंचित मात्र पिण तिण नैं ।
जाव देवा नैं समर्थ नांही, जब मौन रह्यो मनमांही ।।

४०. तिण सावत्थी नगरी में तिण वारे, सिंघाडग तिग चउक मझारे ।
महाजन संमद्देति वा जाणी, उत्सुक जनता भीड़ भराणी ।।
४१. बहुजन एम वदै मांहोमांय, आगल ए सम्बन्ध जुड़ाय ।
तिहां जन-संमर्द उरो-निःक्षेप, उरु सूं उरु अडो सुविशेष ।।
४२. इति शब्द अर्थ छै एह, उपप्रदर्शने जेह ।
वा शब्द समुच्चय अर्थ कहाय, अन्य शब्द तणी अपेक्षाय ।।
४३. महाजन सद्देति वा कहिवाय, पाठांतरे वृत्ति मांय ।
शब्द बहु जन नों तिहां मुणियै, जन-व्यूह नों अर्थ हिव भणियै ।।
४४. जन-व्यूह तेह चक्रादि आकार, जन - समुदाय विचार ।
परिषद वंदन निकली पेख, मूल विषै ए लेख ।।

३२. कंखिए
इदमिहोत्तरं साधु इदं च न साधु अतः कथमत्रोत्तरं लप्स्ये ? इत्युत्तरलाभाकाङ्क्षावान् काङ्क्षितः ।
(वृ०-प० ११४)

३३. वितिगिच्छिए भेदसमावन्ने
अस्मिन्नुत्तरे दत्ते किमस्य प्रतीतिरुत्पत्स्यते न वा ? इत्येवं विचिकित्सितः ।
'भेदसमापन्ने' मतेर्भंगं किंकर्त्तव्यताव्याकुलनालक्षणमापन्नः । (वृ०-प० ११४)

३४. कलुससमावन्ने
'कलुषसमापन्नः' नाहमिह किञ्चिज्जानामीत्येवं स्वविषयं कालुष्यं समापन्नः । (वृ०-प० ११४)

३५, ३६. णो संचाएइ पिंगलयस्स नियंठस्स वेसालियसावयस्स किंचि वि पमोक्खमक्खाइउं, तुसिणीए संचिट्ठइ ।
(श० २।२७)
तए णं से पिंगलए नियंठे वेसालियसावए खंदयं कच्चायणसगोत्तं दोच्चं पि तच्चं पि इणमक्खेवं पुच्छे—मागहा ! किं सअंते लोए ? जाव केण वा मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढति वा, हायति वा ?

३७, ३८. एतावतावं आइक्खाहि वुच्चमाणे एवं ।
(श० २।२८)
तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते पिंगलएणं नियंठेणं वेसालियसावएणं दोच्चं पि तच्चं पि इणमक्खेवं पुच्छिए समाणे संकिए कंखिए वितिगिच्छिए भेदसमावन्ने कलुससमावन्ने

३९. णो संचाएइ पिंगलस्स नियंठस्स वेसालियसावयस्स किंचि वि पमोक्खमक्खाइउं तुसिणीए संचिट्ठइ ।
(श० २।२९)

४०. तए णं सावत्थीए नयरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहवा जणसंमद्दे इ वा

४१. तत्र बहुजनोऽन्योऽन्यस्यैवमाख्यातीति वाक्यार्थः । तत्र जनसंमर्दः उरोनिक्षेपः । (वृ०-प० ११५)

४२. इति उपप्रदर्शने 'वा' समुच्चये । (वृ०-प० ११५)

४३. पाठान्तरे शब्द इति वा । (वृ०-प० ११५)

४४. जणवूहे इ वा
जनव्यूहः—चक्राद्याकारो जनसमुदायः ।
(वृ०-प० ११५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

४५. जन - बोल इ आद, अंत सावत्थी मध्य थइ।
निकलै जन अहलाद, वृत्ति विषे सूत्रार्थ इम ॥

४५. जणबोले इ वा

गीतक-छंद

४६. जन-बोल जे अप्रगट अक्षर, सांभलै ध्वनि रव छतो।
जन-कलकले तेहोज ध्वनि पिण, वच - विभाग लहोजतो ॥

४६. जण कलकले इ वा
बोलः—अव्यक्तवर्णो ध्वनिः, कलकलः—स एवोपलभ्यमानवचनविभागः। (वृ०-प० ११५)

४७. जनऊर्मि[1] एहनों अर्थ, जल-कल्लोल नै आकार ही।
समुदाय जन नों एहवो ए, प्रथम अर्थ विचार ही ॥

४७. जणुम्मी इ वा

४८. अथवा तिहां बहु लोक नों, समुदाय संकीरण घणुं।
जन ऊपरोपरि मिलै बहु, ए द्वितीय अर्थ सुहामणुं ॥

४७, ४८. ऊर्मिः— संबाध : कल्लोलाकारो वा जनसमुदायः। (वृ०-प० ११५)

४९. जन उक्कलिया अति ही लघु समुदाय हीज कहीजियै।
बहु एहवा स्थानक अछै, तिहां लोक रव सलहीजियै ॥

४९. जणुक्कलिया इ वा
उत्कलिका- –समुदाय एव लघुतरः। (वृ०-प० ११५)

५०. जन अपर अपरज स्थान थी, एकत्र आय मिलै जिहां।
जे इसा स्थानक तेहनैं, जन-सन्निपात कह्युं इहां ॥

५०. जणसण्णिवाए इ वा
जनसन्निपातः—अपरापरस्थानेभ्यो जनानां मीलनं। (वृ०-प० ११५)

५१. प्रभु कयंगला वन आविया, तमु वारता सब कर रह्या।
हिय हरष अधिक हुलास घन, मन सावत्थी-जन गहगह्या ॥

यतनी

५२. बहुजन मांहोमां इम आखै, आइक्खइ सामान्य थी दाखै।
भासइ कहितां जे भाषै, तिकै विशेष थी अभिलाषै ॥

५३. पूर्वे अर्थ कह्या जे दोय, आइक्खइ भासइ सोय।
तेहिज बे पद कर हिव कहियै, पन्नवेइ परूवेइ लहियै ॥

५२, ५३. बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ, एवं भासेइ, एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ—

५४. तथा आइक्खइ सामान्य थी आखै, भासइ ते विशेष थी भाखै।
पन्नवेइ वचन पर्याय, कहै प्रगट धर्म फल ताय ॥

५५. परूवेइ कहितां परूपेइ, कहै हेतु कारण करि जेह।
सुणवा वाला रै हियै अणावै, दृष्टांत देइ दखावै ॥

५६. इम निश्चै देवानुप्रिया! जाण, श्रमण भगवंत वीर वर्धमान।
धर्म-आदि-कर्त्ता गुण-धामी, जाव मुक्ति जावा नां कामी ॥

५६, ५७. एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे आइगरे जाव सिद्धिगतिनामधेयं ठाणं संपाविउकामे पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागए इहसंपत्ते इहसमोसढे इहेव कयंगलाए नयरीए बहिया छत्तपलासए चेइए

५७. क्रम पूर्वानुपूर्व चालता, गामानुग्रामे विचरंता।
नगरी कयंगला छै जेह, चैत्य छत्रपलास तिपेह ॥

---

१. टीकाकार ने जणुम्मि—जन-ऊर्मि शब्द के दो अर्थ किए हैं—जन-सम्बाध और कल्लोलाकार जन-समुदाय। आनुपूर्वी के क्रम से पहले सम्बाध शब्द का ग्रहण होना चाहिए था, पर जयाचार्य ने अपनी जोड में 'कल्लोलाकार जन-समुदाय' इस अर्थ को प्राथमिकता दी है और दूसरे अर्थ में 'जन-सम्बाध' को व्याख्यात किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८. यथाप्रतिरूप जोग्य जाण, साधु नैं कल्पै ते पिछाण।
अवग्रह ते आज्ञा सुविचार, ग्रही मांगी सेज्या नी उदार ।।

५९. संजम तप कर आतम भावंता, विचरै जिनजी जगवंता।
प्रभु कयंगला वन आया, चिउं तीर्थ मांहि सोभाया ।।

६०. ते माटै निश्चै महाफल सार, अहो देवानुप्रिया ! विचार।
तथारूप अरिहंत भगवंत, तसु नाम गोत्र सुण्या हुंत ।।

६१. तो स्यूं वलि कहिवूं ताय, प्रभु सम्मुख गमन सहाय।
वंदण वच स्तुति नुं कहिवाय, नमस्कार पंचांग नमाय ।।

६२. प्रश्न पूछण नों फुन पेख, सेवा करवा नुं महाफल लेख।
सन्मुख गमन आदि सुख जोग, सर्व जयणां स्यूं कार्य प्रयोग ।।

६३. इक पिण आर्य धर्ममय सोय, भलुं वच सुण्यां महाफल होय।
तो किसुं कहिवूं वली जे अदंभ, विस्तीर्ण अर्थ ग्रहण नुं लंभ ।।

*सुगुण जन संचरै रे, वीर वंदन नैं हेत।
जनम सफलो करै रे, कयंगला नै चैत ।। (ध्रुपदं)

६४. तै माटै जावां अम्हे रे, देवानुप्रिय ! सार।
श्रमण भगवंत महावीर नैं, करां वंदना नैं नमस्कार ।।

६५. सत्कार ते आदर करां, सन्मान कहिये सोय।
योग्य भक्ति अंगीकरो, हिव प्रभु केहवा जोय ।।

†६६. कल्याणकारित्वात्, स्वाम कल्याणीको,
विघ्न - उपशम हेतुपणात्, प्रभुजी मंगलीको,
मंगलीको जश जिनजी को, देवयं—त्रिण लोक अधिप नीको।
म्है तो जासां जासां वंदन वीर, त्रिभुवन-तिलक टीको ।।

६७. चैत्य—अत्यंत प्रशस्त मनो हेतु स्वामी,
ए चिहुं पद नों तंत, अर्थ कीधो धामी,
कीधो धामी प्रभु हितकामी, वृत्ति रायप्रश्नेणी थी पामी।
म्है तो जासां जासां वंदन वीर, प्रभू अंतरजामी ।।

•धर्म ना धोरी जी, गोयम जिन जोड़ी जी।
होजी एतो कयंगला नैं बाग, जिनेश्वर आया जी।
सुगुण हुलसाया जी ।। (ध्रुपदं)

६८. प्रभुजी नी सेवा करां कांइ, एह अम्हारै मान।
परभव मांहै हित भणी कांइ, पथ्य अन्न नीं पर जान ।।

५८, ५९. अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

६०. तं महप्फलं खलु भो देवाणुप्पिया ! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं नाम-गोयस्सवि सवणयाए

६१, ६२. किमंग पुण अभिगमण-वंदण-नमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए ?

६३. एगस्सवि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ?

६४. तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महावीरं वंदामो नमंसामो

६५. सक्कारेमो सम्माणेमो
'सत्कारयामः' आदरं कुर्मः 'सन्मानयाम' उचितप्रतिपत्तिभिः, किम्भूतम् ? (वृ०-प०११५)

६६. कल्लाणं मंगलं देवयं
कल्याणं—कल्याणकारित्वात् मंगलं—दुरितोपशमकारित्वात् देवतां—देवं त्रैलोक्याधिपतित्वात्।
(राय० वृ०-प० ५२)

६७. चेइयं
चैत्यं सुप्रशस्तमनोहेतुत्वात्। (राय० वृ०-प० ५२)

६८. पज्जुवासामो। एयं णे पेच्चभवे इहभवे य हियाए
'प्रेत्यभवे' जन्मान्तरे, 'हिताय' पथ्यान्नवत्।
(वृ०-प० ११५)

*लय—कोडी चाली सासरै रे
†लय—धिन-धिन भिक्खू स्वाम दीपाई दान दया
•लय—पायल वाली पदमणी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

+वीर विराज रह्या ।
समवसरण विच गाज रह्या, कवंगला-वन छाज रह्या ।
सुर नर वृंदज आय रह्या श्री जिनवाण सुणाय रह्या ।
सुण-सुण जन हरषाय रह्या ।
नगरी सावत्थी ना जन भणैं, चालो प्रभुजी वंदन काज ।। (ध्रुपदं)

६९. सुख नैं अर्थे एह छै, कांइ फुन क्षम अर्थे एह ।
सहु वंछित वस्तु जिका, कांइ मिलवा समर्थपणेह ।।

७०. *वली मोक्ष नैं अर्थ ए परंपराइं हेत ।
शुभानुबंधज सुख भणी होस्यै जिन नी सेव ।।

७१. +इम कही ए कारण थकी, वहु उग्रकुले उत्पन्न ।
ऋषभदेवजी स्थापिया, कोटवाल वंश जन्न ।।

७२. *उग्र-पुत्र तेहिज कह्या, वय कुमार विख्यात ।
इम भोगा आदीश्वरे स्थापित गुरुवंश-जात ।।

७३. +राजन्य कुल नां ऊपनां भगवंत ना जे मित्त ।
तास वंश में ऊपनां फुन तसुं पुत्र पवित्त ।।

७४. *क्षत्रिय कुल नां ऊपनां सामान्य राजकुलीन ।
वली क्षत्री नां सुत वहु जिन वंदन लहलीन ।।

७५. +ब्राह्मण फुन सुत तेहनां भट कहियै वलवंत ।
वलि तेहनां वहु पुत्र ही जिन वंदन मन खंत ।।

७६. *जोधा तेहिज भट थकी अति विशिष्ट जोधार ।
सहस्रादिक सूं जुध्र करै वलि तेहनांज कुमार ।।

७७. +एम मल्लिकी लेच्छकी राज-विशेष कहाय ।
जिम नव मल्लइ लेच्छइ नृप चेडा रै सहाय ।।

७८. *फुन अन्य वहु राजान ही ईश्वर ते युवराज ।
द्वितिय अर्थ ईश्वर तणो महर्द्धिक अन्य समाज ।।

७९. +अति तुष्टमान थइ नृप दियो पट्ट-बंध विभूषित अंग ।
राजस्थानीया जाणवा तलवर तेह सुचंग ।।

८०. *सन्निवेशाधिप माडंबिका फुन कोडंबिक ताय ।
कतिपय कुटुंब-नायक सही नृप-सेवक कहिवाय ।।

६९. सुहाए खमाए
'सुखाय' शर्मणे 'क्षेमाय' सङ्गतत्वाय । (वृ०-प० ११५)

७०. निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ
'निःश्रेयसाय' मोक्षाय 'आनुगामिकत्वाय' परम्परा-शुभानुबन्धसुखाय भविष्यति । (वृ०-प० ११५)

७१, ७२. इति कट्टु वहवे उग्गा उग्गपुत्ता भोगा भोगपुत्ता इतिहेतोर्वहवः 'उग्राः' आदिदेवावस्थापिताऽऽरक्षकवंश-जाताः 'भोगाः' तेनैवावस्थापितगुरुवंशजाताः ।
(वृ०-प० ११५)

७३. राइण्णा
'राजन्याः' भगवद्वयस्यवंशजाः । (वृ०-प० ११५)

७४. खत्तिया
'क्षत्रियाः' राजकुलीनाः । (वृ०-प० ११५)

७५. माहणा भडा
'भटाः' शौर्यदन्तः । (वृ०-प० ११५)

७६. जोहा पमत्थारो
'योधाः' तेभ्यो विशिष्टतराः । (वृ०-प० ११५)

७७. मल्लई लेच्छई लेच्छइपुत्ता,
मल्लकिनो लेच्छकिनश्च राजविशेषाः ।
(वृ०-प० ११५)

७८. अण्णे य बहवे राईसर
राजानः नृपाः, ईश्वराः युवराजास्तदन्ये च महर्द्धिकाः ।
(वृ०-प० ११५)

७९. तलवर
'तलवराः' प्रतुष्टनरपतिवितीर्णपट्टबन्धविभूषिता राज-स्थानीयाः । (वृ०-प० ११५)

८०. माडंबिय-कोडुंबिय
'माडंबिकाः' संनिवेशविशेषनायकाः 'कौटुम्बिकाः' कति-पयकुटुम्बप्रभवो राजसेवकाः । (वृ०-प० ११५)

+लय—गूजरी पाण्यूं नोसरी
*लय—पायल वाली पद्मणी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८१ †जे द्रव्य संचय नै विषै, महागज नहिं दीसंत।
गज प्रमाण द्रव्य ढिग, जसु ईभ तिको धनवंत॥

८१. इब्भ
इभ्यः यद्द्रव्यनिचयाच्छन्नो महेभो न दृश्यते।
(राय० वृ०-प० ४०)

८२. *जेहनां मस्तक नै विषे, श्री देवी नो सोय।
सुवर्ण-पट्ट सोभे रह्यो, नगर-सेट्ठि ए जोय॥

८२. सेट्ठि
श्रेष्ठी श्री देवतामुद्रायुक्तसुवर्णपट्टविभूषितोत्तमाङ्गः।
(राय० वृ०-प० ४०)

८३. †चतुरंग - सेना - नायका, सेनापति सुखदाय।
सार्थ नों नायक तिको, सार्थवाह कहिवाय॥

८३. सेणावइ-सत्थवाह
सेनापतिः नृपतिनियुक्तश्चतुरङ्गसेनापतिः। सार्थवाहः सार्थनायकः। (राय० वृ०-प० ४०)

८४. *ए पूर्व कह्या ते आदि दे, जावत् ही उत्किष्ट।
अधिक आनंद नीं महाध्वनि, सिंहनाद रव इष्ट॥

८४. पभितओ जाव महया उक्किट्ठसीहनाय
उत्कृष्टिश्च—आनन्दमहाध्वनिः। (वृ०-प० ११५)

८५. †अक्षर प्रगट रहीत जे, मोटो शब्दज होय।
बोल कहीजै तेहनैं, ए महाध्वनि अवलोय॥

८५. बोल
बोलश्च—वर्णव्यक्तिवर्जितो महाध्वनिः।
(वृ०-प० ११५)

८६. *कलकल अप्रगट वचन, कह्यूं तेहिज लक्षण व्याप्त।
एहवो जे रव तिण करी, उदधि शब्द जिम प्राप्त॥

८७. †जन नां बहुलपणां थकी उदधि तणां अभिराम।
गर्जारव नै सारिखा शब्द करंता ताम॥

८६, ८७. कलकलरवेणं पक्खुभियमहासमुद्दरवभूयं पिव करेमाणा
कलकलश्च—अव्यक्तवचनः स एवैतल्लक्षणो यो रवस्तेन समुद्ररवभूतमिवजलधिशब्दप्राप्तमिव।
(वृ०-प० ११५)

८८. *जे सावत्थी नगरी तणै मध्य-मध्य थइ जन्न।
निकलै पाठ इहां लगैं, वृत्ति विषै सुवचन्न॥

८८. सावत्थीए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति।
(श० २।३०)

दूहा

८९. एह अर्थ संक्षेप ही, करतो हिव कहिवाय।
परिषद वंदन नीकली, इतरा में सहु आय॥

८९. एतस्यार्थस्य संक्षेपं कुर्वन्नाह—'परिसा निग्गच्छति' त्ति। (वृ०-प० ११५)

९०. •खंधक कात्यायनगोत्री तिवार, बहु जन कनैं सुण समाचार।
हिवड़ा मे धार विचारण लागो, इम जुजुआ पाठ विभागो॥

९०. तए णं तस्स खंदयस्स कच्चायणसगोत्तस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म।

९१. अयं कहितां प्रत्यक्ष छै एह, आगल कहिस्यै तेह।
खंधक कात्यायनगोत्री नां धार, उपजता मन नां विचार॥

सोरठा

९२. फुन विचारणा ताय, जेह कवी कहितो छतो।
न्यून अधिक पिण थाय, तिण सूं हिव आगल कहै॥

९३. •एयारूवे कहितां अवलोय, एहिज रूप जसुं होय।
न्यून अधिक इहां कहियै नांय, हुवै जिसा अध्यवसाय॥

९१-९३. इमेयारूवे
अयं वक्ष्यमाणतया प्रत्यक्षः स च कविनोच्यमानो न्यूनाधिकोऽपि भवतीत्यत आह— (वृ०-प० ११५)

---

†लय—गूजरी पाण्यू नीसरी
*लय—पायल वाली पदमणी
•लय—समजू नर विरला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९४. अज्झत्थिए कहितां अवधार, आतम विषयै विचार।
चिंतिए कहितां स्मरण रूप, पत्थिए अभिलाष तद्रूप ।।

९५. मनोगत मन मेंज रह्यू जे न बार, संकल्प तास विचार।
वचन करीनैं प्रकासी नांही, तेह विचारणा त्यांही ।।

९६. समुप्पज्जित्था ऊपनी ताय, ते विचारणा हिव आय।
इम निश्चै श्रमण तपस्वी सधीर, भगवंत श्री महावीर ।।
९७. कयंगला नगरी रै बार, चैत्य छत्रपलास मझार।
संयम तप कर आतम भावंता, विचरै जिनजी जयवंता ।।
९८. तो हूं जाऊं वंदू श्री महावीर, करूं नमस्कार गुणहीर।
श्रेय मुझ नैं निश्चै करि एह, वीर वंदी स्तुति करेह ।।
९९. काय जोगे करीनैं नमस्कार, सत्कारी सन्मानी सार।
कल्याणकारी प्रभु कल्याणीक, दुरितोपशम हेतु मंगलीक ।।
१००. तीन लोक नां अधिप कहेव, तिण सूं देवयं देवाधिदेव।
सुप्रशस्त मन नां हेतु स्वाम, तिण सूं चैत्य प्रभुजी रो नाम ।।
१०१. एहवा प्रभु नीं सेवा करि सार, ए एतारूप अर्थ उदार।
हेतु प्रश्न कारण व्याकरण सोय, मुझ नै पूछवा श्रेय सजोय ।।

वा०—इमाइं च णं एतारूवाइं इत्यादि पाठ नों अर्थ—इमाइं च णं ति प्राकृत पणां थकी। इमा कहितां ए अनंतरोक्तपणैं करी प्रत्यक्ष नजीक थी, च शब्द थकी अन्य पिण। एयारूवाइं कहितां एतत्रूप कह्या जे स्वरूप थी अथवा ए पूर्वे कह्या जिसा अर्थ नैं एतत्रूप कहियै, प्रश्न नां सरीखापणां थकी ते तथा अट्ठाइं कहितां ते अर्थ कहियै लोक सअंतपणादि भाव प्रतै वलि तेहथी अन्य अर्थ प्रतै। हेतुइं कहितां अन्वय व्यतिरेक लक्षण हेतु ना जाणवा जोग्यपणा थकी। हेतु, लोक-सअंत पणादिक हीज वली तेहथी ते अनेरा हेतु प्रतै। पसिणाइं कहितां प्रश्न एहीज लोक-सांतपणादि तथा तेहथी अन्य प्रश्न प्रतै। कारणाइं कहितां कारण ते युक्ति मात्र ते लोक-सांतपणादि विषयपणा थो कारण एहीज अथवा अन्य कारण प्रतै। वागरणाइं कहितां व्याख्यायमानपणा थी व्याकरण ए लोक-सांतपणादिक हीज अथवा अनेरा व्याकरण प्रतै। पुच्छित्तए त्ति कट्टु कहितां पूछिवूं श्रेय इम करीनैं।

१०२. इम करी इम मन मांहि विचारी, जिहां परिव्राजक नों मठ धारी।
तिहां आवै तिहां आवी नैं तेह, त्रिदंडादि ग्रहण करेह ।।
१०३. [1]त्रिदंडक [2]कमंडलु [3]रुद्राक्षमाल, वलि माटी नों [4]भाजन न्हाल।
भिसियं कहितां [5]आसन-विशेष, पूंजण अर्थे [6]चीवर-खंड पेख ।।
१०४. पन्नालका ते [7]त्रिकाष्ठिकी जाणो,
[8]अंकुस तरुपल्लव ग्रहिवा पिछाणो।
पवित्रका ते [9]वींटी अंगुली नीं, [10]गणेत्रिका आभरण चीनी ।।

९४. अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए

'अज्झत्थिए' त्ति आध्यात्मिक आत्मविषयः 'चिंतिए' त्ति स्मरणरूपः 'पत्थिए' त्ति प्रार्थितः—अभिलाषात्मकः। (वृ०-प० ११५)

९५. मणोगए संकप्पे

'मणोगए' त्ति मनस्येव यो गतो न बहिः वचनेनाप्रकाशनात्स तथा 'संकल्पः' विकल्पः। (वृ०-प० ११६)

९६, ९७. समुप्पज्जित्था—एवं खलु समणे भगवं महावीरे कयंगलाए नयरीए बहिया छत्तपलासए चेइए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

९८-१००. तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि नमंसामि। सेयं खलु मे समणं भगवं महावीरं वंदित्ता, नमंसित्ता सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं

१०१. पज्जुवासित्ता इमाइं च णं एयारूवाइं अट्ठाइं हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं पुच्छित्तए

वा०—'इमाइं च णं' ति प्राकृतत्वाद् इमान् अनन्तरोक्तत्वेन प्रत्यक्षासन्नान् च शब्दादन्यांश्च 'एयारूवाइं' ति एतद्रूपान् उक्तस्वरूपान्, अथवैतेषामेवानन्तरोक्तानामर्थानां रूपं येषां प्रष्टव्यतासाधर्म्यात्तत्तथा तान् अर्थान् भावान् लोकसान्तत्वादींस्तदन्यांश्च 'हेऊइं' ति अन्वयव्यतिरेकलक्षणहेतुगम्यत्वाद्धेतवो—लोकसान्तत्वादय एव तदन्ये चातस्तान् 'पसिणाइं' ति प्रश्नविषयत्वात् प्रश्ना एत एव तदन्ये वाऽतस्तान् 'कारणाइं' ति कारणम्—उपपत्तिमात्रं तद्विषयत्वात्कारणानि एत एव तदन्ये वाऽतस्तानि 'वागरणाइं' ति व्याक्रियमाणत्वाद्व्याकरणानि एत एव तदन्ये वाऽतस्तानि 'पुच्छित्तए' त्ति प्रष्टुं 'तिकट्टु' इतिकृत्वा। (वृ०-प० ११६)

१०२. इति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता जेणेव परिव्वायगावसहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता—

१०३-१०५. तिदंडं च कुंडियं च कंचणियं च करोडियं च भिसियं च केसरियं च छण्णालयं च अंकुसयं च पवित्तयं च गणेत्तियं च छत्तयं च वाहणाओ य पाउयाओ य धाउरत्ताओ य गेण्हइ, गेण्हित्ता परिव्वायावसहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता तिदंड-कुंडिय-कंचणिय-करोडिय - भिसिय - केसरिय - छण्णालय - अंकुसय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०५. "छत्र "पानही-पावडी सुजोई, गेरू रंग्या वस्त्र ग्रहै सोई।
परिव्राजक नां मठ थी निकलिया प्रसीधा, त्रिदंडादि दश कर लीधा ॥

पवित्तय-गणेत्तियहत्थगए,
'कुण्डिका' कमण्डलु 'काञ्चनिका' रुद्राक्षकृता 'करोटिका' मृद्भाजनविशेषः 'भृशिका' आसनविशेषः 'केशरिका' प्रमार्जनार्थं चीवर-खण्डं 'षड्नालकं' त्रिकाष्ठिका 'अंकुशकं' तरुपल्लवग्रहणार्थमंकुशाकृतिः 'पवित्रकम्' अंगुलीयकं 'गणेत्रिका' कलाचिकाऽऽभरण-विशेषः 'धाउरत्ताओ' त्ति साटिका इति विशेषः, 'तिदंडे' त्यादि त्रिदण्डकादीनि दश हस्ते गतानि—स्थितानि यस्य स तथा। (वृ०-प० ११६)

१०६. छत्र पानही संयुक्त पिछाणी, पहिर्‌या गेरू रंग्या वस्त्र जाणी।
सावत्थी मध्य-मध्य थइ सोय, नीकलियो अवलोय ॥
१०७. जिहां कयंगला नगरी जान, जिहां छत्रपलास उद्यान।
जिहां भगवंत विराजै भावै, खंधक तिहां चल आवै ॥

१०६, १०७. छत्तोवाहणसंजुत्ते धाउरत्तवत्थपरिहिए सावत्थीए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव कयंगला नगरी, जेणेव छत्तपलासए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव पहारेत्थ गमणाए।
(श० २।३१)

१०८. अंक इकवीस तणुं देश न्हाल, ए कही इकतीसमीं ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय प्रसादै, 'जय-जश' सुख अहलादै ॥

ढाल : ३२

सोरठा

१. गोतम ! इति साह्लाद, इन्द्रभूति नों नाम ले।
भगवंत वीर सुसाध, प्रभणें इम गोतम प्रतै ॥

*जशधारी शीस ! सयाणा लाल, गोयमा ! (ध्रुपदं)

२. वीर कहै तूं देखिस लाल, गोयमा ! मित्र पूर्व संगतिक पेखिस हो।
३. हे भगवंत ! ते कुण तामो लाल, स्वामजी ! जिन भाखै खंधक नामो हो ॥

४. गोयम पूछै किण वेला, होइस ते मित्र सुमेला।
५. साक्षात् दर्शण करि देखिस, कै श्रवण थकी तसुं पेखिस ॥
जग-तारक आप प्रकाशो लाल, स्वामजी।

६. हिव किता काल थी जाणी, मिलस्यै पुव्व मित्र पिछाणी ॥

७. ए तीन प्रश्न पूछंता, हिव भाखै जिन जयवंता ॥
८. इम निश्चै गोयम ! जाणी, ते काल समय पहिछाणी ॥
९. हुंती सावत्थी नामो, नगरी वर्णक अभिरामी ॥

१. गोयमाइ ! समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—

२. दच्छिसि णं गोयमा ! पुव्वसंगइयं।
३. कं भंते !
खंदयं नाम।
४. से काहे वा ?
कस्यां वेलायामित्यर्थः। (वृ० पृ० ११६)
५. किह वा ?
केन वा प्रकारेण ? साक्षाद्दर्शनतः श्रवणतो वा।
(वृ०-प० ११६)
६. केवच्चिरेण वा ? (श० २।३२)
कियतो वा कालात् ? (वृ०-प० ११६)

८, ९. एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थी नामं नगरी होत्था—वण्णओ।

* लय—सुखपाल सिंघासण लायजो राज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—'सावत्थी नामं नगरी होत्था', इहां होत्था शब्द किम कह्यो ? विभक्ति ना परिणाम थकी। होत्था कहितां अस्ति, अस्ति कहितां छै। अथवा काल नैं अवसर्प्पिणी-पणा थकी प्रसिद्ध गुण है जे सावत्थी नगरी नां, तिका नगरी जेहवी गये काले हुंती तेहवी हिवड़ां नथी ते भणी होत्था कहितां हुंती।

१०. तिहां गद्दभाली-सीस सुभद्रक, कात्यायनगोत्री खंधक ।।
११. परिव्राजक तिहां वसंतो, जिन कह्यो सहू विरतंतो ।।
१२. जावत् इहां आवण सारी, संकल्पित मन में धारी ।।
१३. ए दूर नहीं छै ताह्यो, इम कहिवै नजीक आयो ।।

वा०—वले ते अदूर अवधि-स्थान नीं अपेक्षाय करिकै पिण हुवै अथवा अतिही दूर मार्ग नीं अपेक्षा करिकै कोशादिक पिण अदूर हुवै इण कारण थी हिवै कहै छै।

१४. वंछित स्थानक थी ताह्यो, अल्प मार्ग रह्यो वहु आयो ।।

सोरठा

१५. ते फुन वीसामादि, कारण वाग प्रमुख विषै।
बैठो हुवै संवादि, इण कारण थी हिव कहै ।।

१६. *मारग पडिवन्नो चालै, वर्त्तै छै पंथ विचालै ।।

१७. हिवडां इज देखिस नैणो, इम भाख्या प्रभुजी वैणो ।।

वा०—हूं किम देख सूं ? श्रवण थकी कै, साक्षात थकी ? ए दूजो प्रश्न पूछ्यो तेहनों उत्तर—अदूरागए कहितां खंधक नजीक आवै छै इम कहिवै साक्षातहीज देखवूं हुवै ? तथा हूं किता काल सूं देखसूं ए तीजो प्रश्न तेहनों उत्तर अज्जेव णं दच्छसि हिवडांईज देखसी। अनैं किसी वेला देखसूं ए प्रथम प्रश्न तेहनों उत्तर समर्थपणा थकी जाणवो। जे कारण थकी जदि भगवान मध्याह्न समये ए वार्ता कही तिवारे मध्याह्न ते वे प्रहर नैं ऊपर मुहुर्त्तादि जिका वेला हुवै ते वेला नै विषे देखिसि इम समर्थपणा थकी कह्यूं जे भणी अदूर आगतादि विशेषण नैं ते देश प्राप्ति नै विषे मुहुर्त्तादिक हीज काल हुवै पिण अति बहु काल न हुवै।

१८. हे भदंत ! इम वच धामी, जिन वंदी वले सिरनामी ।।
१९. गोतमजी ! एम वदंता, प्रभु नैं इम प्रश्न पूछंता ।।
२०. हे प्रभुजी ! खंधक ताह्यो, देवानुप्रिय रै पाह्यो ।।
२१. मुंड थई सुखकारो, घर थी नीकल इहवारो ।।
२२. अणगारपणां प्रति लेवा, ए समर्थ छै स्वयमेवा ।।
२३. तव भाखै श्री जिनराया, हंता समर्थ सुखदाया ।।
२४. इम जिन शिष्य नैं उपदेशै, इतै आयो खंधक ते देशै ।।

---

* लय—सुखपाल सिंघासण लायजो राज

वा०—'सावत्थी नामं नयरी होत्थ' त्ति विभक्तिपरिणामादस्तीत्यर्थः, अथवा कालस्यावसर्प्पिणीत्वात्प्रसिद्धगुणाः कालान्तर एवाभवन्नेदानीमिति।
(वृ०-प० ११६)

१०-१२. तत्थ णं सावत्थीए नयरीए गद्दभालस्स अंतेवासी खंदए नामं कच्चायणसगोत्ते परिव्वायए परिवसइ। तं चेव जाव जेणेव ममं अंतिए, तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

१३. से अदूरागते
वा०—स चावधिस्थानापेक्षयाऽपि स्यात् अथवा दूरतरमार्गापेक्षया कोशादिकमप्यदूरं स्यादत उच्यते।
(वृ०-प० ११६)

१४. बहुसंपत्ते
ईषदूनसंप्राप्तो बहुसंप्राप्तः। (वृ०-प० ११६)

१५. स च विश्रामादिहेतोरारामादिगतोऽपि स्यादत उच्यते।
(वृ०-प० ११६)

१६. अद्धाणपडिवण्णे अंतरा पहे वट्टइ।
मार्गप्रतिपन्नः, किमुक्तं भवति ? 'अंतरापहे वट्टइ' त्ति विवक्षितस्थानयोरन्तरालमार्गे वर्त्तत इति।
(वृ०-प० ११६)

१७. अज्जेव णं दच्छिसि गोयमा ! (श० २।३३)

वा०—कथं ? यतोऽदूरागतादिविशेषणस्य साक्षादेव दर्शनं संभवति, तथा 'अज्जेव णं दच्छिसि' इत्यनेन कियच्चिरादित्यस्योत्तरमुक्तं, 'काहे' इत्यस्य चोत्तरं सामर्थ्यगम्यं, यतो यदि भगवता मध्याह्नसमये इयं वार्त्ताऽभिहिता तदा मध्याह्नस्योपरि मुहूर्त्ताद्यतिक्रमणे या वेला भवति तस्यां द्रक्ष्यसीति सामर्थ्यादुक्तम्, अदूरागतादिविशेषणस्य हि तद्देशप्राप्तौ मुहूर्त्तादिरेव कालः संभवति न बहुतर इति। (वृ०-प० ११६)

१८, १९. भंतेति ! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वदासी—

२०-२३. पहू णं भंते ! खंदए कच्चायणसगोत्ते देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ? हंता पभू। (श० २।३४)

२४. जावं च णं समणे भगवं महावीरे भगवओ गोयमस्स एयमट्ठं परिकहेइ, तावं च णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते तं देसं हव्वमागए। (श० २।३५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. गोतम गणधर गुणखाणी, खंधक नैं नजीक जाणी ।।
[गोयमजी प्रेमे भीना लाल]
२६. शीघ्र ऊठी ऊभा थावै, ऊभा थइ साहमा जावै ।।
२७. साहमा जइ गोयम भावै, जिहां खंधक छै तिहां आवै ।।
२८. इहां वृत्तिकार कह्यो एमो, ते सांभलज्यो धर प्रेमो ।।

२५-२७. तए णं भगवं गोयमे खंदयं कच्चायणसगोत्तं अदूरागतं जाणित्ता खिप्पामेव अब्भुट्ठेति, अब्भुट्ठेत्ता खिप्पामेव पच्चुवगच्छइ, जेणेव खंदए कच्चायणसगोत्ते तेणेव उवागच्छइ ।

दूहा

२९. असंजती साहमा गया, गोतमजी किण आम ?
होणहार संजमी तणैं, पक्षपात थी तास ।।
३०. अक्षीण रागपणैं वलि, तथा कही जिन वात ।
खंधक नां जे मन तणो, ते कहिवा अवदात ।।

२९. यच्च भगवतो गौतमस्यासंयतं प्रत्यभ्युत्थानं तद्भाविसंयतत्वेन तस्य पक्षपातविषयत्वात् । (वृ०-प० ११६)
३०. गौतमस्य चाक्षीणरागत्वात्, तथा भगवदाविष्कृततदीयविकल्पस्य तत्समीपगमनतस्तत्कथनात् ।
(वृ०-प० ११६)

३१. ते कहिवै भगवंत नों, अतिशय केवलज्ञान ।
प्रकाशवै करि ऊपजै, वीर विषै बहुमान ।।
३२. इह कारण करिनैं गया, खंधक साहमा येन ।
टीकाकार कह्यो इसो, सूरि अभयदेवेन ।।

३१. भगवज्ज्ञानातिशयप्रकाशनेन भगवत्यतीववहुमानोत्पादनस्य चिकीर्षितत्वादिति । (वृ०-प० ११६)

*खंधक मूं गोतम मिलिया लाल, स्वामजी !

३३. जिहां खंधक छै तिहां आवो, इम वचन वदै हुलसावी ।।
३४. तसुं नाम लेइ वतलाया, पूछै गोयम ऋषराया ।।
३५. तुम्ह भले प्रकारे आया, सोभन आगमन कहाया ।।

३३. उवागच्छित्ता खंदयं कच्चायणसगोत्तं एवं वयासी—
३४. हे खंदया !
३५. सागयं खंदया !
'स्वागतं' शोभनमागमनं तव स्कन्दक ! (वृ०-प० ११६)

सोरठा

३६. महावीर भगवान, महाकल्याण निधि नोंज तुझ ।
मिलवो कल्याण-निदान, तेह थी शोभन आगमन ।।

३६. महाकल्याणनिधेर्भगवतो महावीरस्य संपर्केण तव, कल्याणनिबन्धनत्वात्तस्य । (वृ०-प० ११६)

३७. *अतिसय करि सोभन आया, अति भलै प्रकार सुहाया ।।

३७. सुसागयं खंदया !
'सुसागयं' ति अतिशयेन स्वागतं । (वृ०-प० ११६)

सोरठा

३८. अथवा किणहि प्रकार, शोभन अति शोभन वलि ।
एकार्थक अवधार, ए बिहुं शब्द उच्चारवै ।।
३९. संभ्रम निमित्तपणेह, उभयवार कहितां थकां ।
हुवै अदूषित एह, पुनरुक्त दोष न जाणवो ।।

३८, ३९. कथञ्चिदेकार्थौ वा शब्दावेतौ, एकार्थशब्दोच्चारणं च क्रियमाणं न दुष्टं, संभ्रमनिमित्तत्वादस्येति ।
(वृ०-प० ११६)

४०. *अनुरूप आगमने आया, जिन दर्शन अध्यवसाया ।।

४०. अणुरागयं खंदया !
'अन्वागतम्' अनुरूपमागमनं । (वृ०-प० ११७)

४१. शोभन अनुरूपे आया, इहां दोनूं शब्द कहाया ।।

४१. सागयमणुरागयं खंदया !

*लय—सुखपाल सिंघासण लायजो राज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

४२. शोभन शब्द संगीत, फुन अनुरूपपणुं प्रवर ।
ए विहुं धर्म सहीत, तुझ आगमन थयो इहां ।।

४३. *इम प्रश्न रूप बतलाया, पूछ्यां दोपण नहिं पाया ।।

खंधकजी ! निसुणो वाणी लाल, खंधया !

४४. हे खंधक ! तुझनै ताह्यो, इण नगरी सावत्थी मांह्यो ।।
४५. पिंगल निर्ग्रन्थ पिछाणी, वैसालिक श्रावक जाणी ।।
४६. ए प्रश्न पूछ्या बुद्धिवंते, मागध ! स्यूं लोक सअंते ।।
४७. कै लोक अणंत कहायो, इम तिमहिज सर्व सुणायो ।।
४८. जेणेव कहंता जाणी, जे दिशा विषै पहिछाणी ।।
४९. इहं कहितां अवलोई, जिन समवसरण ए होई ।।
५०. तेणेव कहितां तिण दिश, झट आया छोडी अमरस ।।

५१. हे खंधक ! ते निश्चै कर, समर्थ ए अर्थ वरावर ।।

वा०—'अत्थेसमत्थे'' एहनों अर्थ—अत्थि कहितां अस्ति—छै । एम कहितां ए पूर्वे कह्यो ते, अत्थे कहितां अर्थ । अट्ठे समट्ठेत्ति पाठांतर । काकु पाठ थी कहिवो, अर्थ स्यूं समर्थ—साचो छै ? इति प्रश्न ।

५२. तव बोलै खंधक वाचो, हंता अत्थि ए साचो ।।
[गोयमजी ! तुझ किण भाखी लाल गोयमा !]
५३. खंधक गोतम प्रति सारो, बोलै तव वचन तिवारो ।
५४. कुण तथारूप वर ज्ञानी, तिण ज्ञान बले करि जानी ।।
५५. कुण अछै इसो तप ध्यानी, तप बल सुर सन्निधि जानी ।।

५६. मुझ हृदय-वारता छानी, किण प्रगट करी ? तै जानी ।।

५७. गोतम कहै धर्माचारज, मुझ धर्मोपदेशक आरज ।।
५८. श्रमण तपस्वी धीरं, भगवन्त श्री महावीरं ।।
५९. उत्पन्न-ज्ञान - दर्शन - धर, ए क्षायिक भावे जिनवर ।।
६०. वंदनादि जोग्य वदीता, जिन रागद्वेष नै जीता ।।

६१. असहाय ज्ञान छै जेहनैं, तिण सुं कह्या केवली तेहनैं ।।
६२. त्रिहुं काल विजानक ध्यानो, त्यांसू वात नहीं कोइ छानी ।।

*लय—सुखपाल सिंघासण लायजो राज

१. भगवती श० २।३६ में 'से नूणं खंदया ! अट्ठे समट्ठे' पाठ है । इसी पाठ के आधार पर जोड़ की गई है । उससे आगे—वार्तिका में 'अत्थेसमत्थे' पाठ देकर 'अस्त्येषोऽर्थः' यह रूपान्तरण किया है और 'अट्ठे समट्ठे' पाठ को पाठान्तर के रूप में स्वीकृत किया है ।

४२. शोभनत्वानुरूपत्वलक्षणधर्मद्वयोपेतं तवागमनमित्यर्थः ।
(वृ०-प० ११७)

४४-४७. से नूणं तुमं खंदया ! सावत्थीए नयरीए पिंगलएणं नियंठेणं वेसालियसावएणं इणमक्खेवं पुच्छिए—मागहा ! किं सअंते लोगे ? अणंते लोगे ? एवं तं चेव जाव

४८, ४९. जेणेव इहं,
यस्यामेव दिशीदं भगवत्समवसरणं । (वृ०-प० ११७)

५०. तेणेव हव्वमागए ।
तस्यामेव दिशि । (वृ०-प० ११७)

५१. से नूणं खंदया ! 'अट्ठे समट्ठे' ?

वा०—'अत्थेसमत्थे' त्ति अस्त्येषोऽर्थः ? 'अट्ठे समट्ठे' त्ति पाठान्तरं, काक्वा चेदमध्येयं, ततश्चार्थः किं 'समर्थः' संगतः ? इति प्रश्नः स्यात् । (वृ०-प० ११७)

५२. हंता अत्थि । (श० २।३६)

५३, ५४. तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी—से केस णं गोयमा ! तहारूवे नाणी वा

५५. तवस्सी वा,
तपस्वी च तपः सामर्थ्यादेवतासान्निध्याज्जानातीति ।
(वृ०-प० ११७)

५६. जेणं तव एस अट्ठे मम ताव रहस्सकडे हव्वमक्खाए, जओ णं तुमं जाणसि ? (श०२।३७)

५७-५९. तए णं से भगवं गोयमे खंदयं कच्चायणसगोत्तं एवं वयासी—एवं खलु खंदया ! मम धम्मायरिए धम्मोवदेसए समणे भगवं महावीरे उप्पण्णनाणदंसणधरे

६०. अरहा जिणे
अर्हद्वन्दनाद्यर्हत्वात्, जिनो रागादिजेतृत्वात् ।
(वृ०-प० ११८)

६१, ६२. केवली तीयपच्चुप्पन्नमणागयवियाणए
केवली असहायज्ञानत्वात्, अत एवातीतप्रत्युत्पन्नानागतविज्ञायकः । (वृ०-प० ११८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

६३. तीन काल रा जाण, देश थकी पिण ह्वै कदा।
इह कारण थी माण, आगल कहियै छै हिवै॥

६४. *सर्वज्ञ सर्व जाणंता, वलि सर्व भाव देखंता॥

६५. ए अर्थ जिणे मुख आख्या, तुझ रहस प्रथम झट दाख्या॥

६६. हूं जाणूं तास पसायो, ए ढाल वतीसमी ताह्यो॥

६७. भिक्खु भारीमाल ऋषरायो 'जश-जश' सुख संपति पायो।
वर चरित खंधक नुं सुणियै लाल, सुगुणजी॥

६३. स च देशज्ञोऽपि स्यादित्याह— (वृ०-प० ११८)

६४. सव्वण्णू सव्वदरिसी

६५, ६६. जेणं मम एस अट्ठे तव ताव रहस्सकडे हव्वमक्खाए, जओ णं अहं जाणामि खंदया! (श० २।३८)

ढाल : ३३

दूहा

१. तब खंधक कहै गोतम प्रते, चालो गोतम ताम।
थारा धर्माचार्य नैं, धर्मोपदेशक स्वाम॥

२. श्रमण भगवंत महावीर नैं, वंदां—ते स्तुति तास।
नमस्कार सिर नामियै, जाव करां पर्युपास॥

३. अहासुहं देवाणुप्पिया! मा प्रतिबंध करेह।
वीर भणी वंदन तणी, गोतम आज्ञा देह॥

४. भगवंत गोतम तिह समय, खंधक साथ प्रसिद्ध।
श्रमण भगवंत महावीर त्यां, पधारवा मन किद्ध॥

*शासण-सिर-सेहरा प्रभु प्यारा रे।

५. तिण काले तिण समय सोहतो रे, महावीर श्रमण भगवंतो रे।
वियट्टभोइ—नित्य आहार करंतो॥

६. वियट्टभोइ नो अर्थ वदीतो, दोलतरामजी कियो इण रीतो।
निवर्त्या भोग श्री धर प्रीतो॥

७. वीर-शरीर प्रधान-उदारो, शृंगार तणी पर सारो।
ओपम वाची शब्द अवधारो॥

१, २. तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी—गच्छामो णं गोयमा! तव धम्मायरियं धम्मोवदेसयं समणं भगवं महावीरं वंदामो नमंसामो जाव पज्जुवासामो।

३. अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं। (श० २।३९)

४. तए णं से भगवं गोयमे खंदएणं कच्चायणसगोत्तेणं सद्धिं जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव पहारेत्थ गमणाए। (श० २।४०)

५. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे वियट्टभोई यावि होत्था। (श० २।४१)
'वियट्टभोइ' त्ति व्यावृत्ते-व्यावृत्ते सूर्ये भुंक्ते इत्येवंशीलो व्यावृत्तभोजी प्रतिदिनभोजीत्यर्थः। (वृ०-प० ११८)

७. तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स वियट्टभोइस्स सरीरयं ओरालं सिंगारं
ओरालं ति प्रधानं···शृंगारमिव शृंगारम्।
(वृ०-प० ११८, ११९)

*लय—सुखपाल सिंघासण लायजो राज
*लय—नमिनाथ अनाथां रा नाथो रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. श्रेय कल्याणकारी सोभायो, शिव—अनुपद्रव हेतु ताह्यो।
धर्म-धन लहो धन्य कहायो॥

९. अथवा धर्म-धने सोभायो, तथा धर्म-धन जोग्य ताह्यो।
एहवा वीर प्रभु जिनरायो॥

१०. हित-अर्थ-प्रापक मंगलीको, अरिहंता मंगल तहतीको।
साधु मंगल शिवपद टीको॥

११. अलंकृत मुकुटादि रहीतो, नहिं वस्त्र विभूषा प्रतीतो।
लक्षण व्यंजन गुण करि सहीतो॥

१२. लक्षण मान उन्मान प्रमाणो, व्यंजन मस तिल प्रमुख पिछाणो।
गुण सौभाग्य औदारादि जाणो॥

८, ९. कल्लाणं सिवं धन्नं
'कल्याणं' श्रेयः 'शिवम्' अनुपद्रवमनुपद्रवहेतुर्वा 'धन्यं' धर्मधनलब्धृ तत्र वा साधु तद्वाऽर्हति। (वृ०-प० ११९)

१०. मंगल्लं
मङ्गले— हितार्थप्रापके साधु मांगल्यम्।(वृ०-प०११९)

११. अणलंकियविभूसियं लक्खण-वंजण-गुणोववेयं
अलंकृतं मुकुटादिभिः विभूषितं—वस्त्रादिभिस्तन्निषेधादनलंकृतविभूषितं। (वृ०-प० ११९)

१२. लक्षणं—मानोन्मानादि···व्यञ्जनं—मषतिलकादिकम् गुणाः—सौभाग्यादयः। (वृ०-प० ११९)

सोरठा

१३. लक्षण कहियै मान, फुन उन्मानादिक भणी।
तास अर्थ पहिछाण, कहियै छै ते सांभलो॥

१४. जल-भृत कुंडी मांहि, पुरुष प्रवेश करै तिहां।
प्रवेश कीधै ताहि, तेहथी ते जल नीकले॥

१५. ते जल जो मापेह, द्रोण प्रमाण हुवै जदा।
तदा पुरुष छै तेह, मान-सहीत कहीजियै॥

१४, १५. तत्र मानं—जलद्रोणमानता, जलभृतकुण्डिकायां हि मातव्यः पुरुषः प्रवेश्यते तत्प्रवेशे च यज्जलं ततो निस्सरति तद्यदि द्रोणमानं भवति तदाऽसौ मानोपेत उच्यते। (वृ०-प० ११९)

वा०—जल भरी कुंडी मांहि पुरुष पैठां जे जल नीकलै, ते जल द्रोण प्रमाण हुवै, ते पुरुष नैं मानोपेत कहियै।

तिवारै कोइ पूछै द्रोण किणनैं कहियै तेहनों उत्तर—दोय खोभलै एक पुसली, दोय पुसली नै एक सेइ अनैं च्यार सेइ नों एक कुडब, च्यार कुडब नो एक पात्थो ते पायली अनैं च्यार पात्था नों एक आढ़ो अनैं च्यार आढा नों एक द्रोण, ए द्रोणमान।

१६. मापण जोग्य पिछाण, पुरुष तुला रोपित हुवै।
अर्द्ध भार प्रमाण, नर उन्मान सहीत ते॥

१६. उन्मानं त्वर्द्धभारमानता, मातव्यः पुरुषो हि तुलारोपितो यद्यर्द्धभारमानो भवति तदोन्मानोपेतोऽसावुच्यते। (वृ०-प० ११९)

वा०—तुला ते ताकड़ी नैं विषे तोल्यां थकां जे पुरुष अर्द्ध भार मान जो हुवैं ते पुरुष उन्मान सहीत कहियै।

कोई पूछै भार किण नैं कहियै? तेहनों उत्तर ५ चिरमी नों १ मासो, १६ मासा नो १ सोनइयो, अनैं ४ सोनइयां नो १ पल, अनैं १०० पल नीं तुला ते ताकड़ी, अनैं २० तुला नो १ भार।

वा०—स्यात् गुञ्जा पञ्चमाषकः
ते तु षोडश कर्षोऽक्षः पलं कर्षचतुष्टयम्
विस्तः सुवर्णो हेम्नोऽक्षे कुरुविस्तस्तु तत्पले
तुला पलशतं तासां विंशत्या भार आचितः
(अभिधान चिन्तामणि ५४७-५४९)

१७. निज आंगुल करि जेह, इक सौ अष्टांगुल पुरुष।
ऊंचपणे ह्वै तेह, प्रमाण सहित कहीजियै॥

१७. प्रमाणं पुनः स्वांगुलेनाष्टोत्तरशतांगुलोच्छ्रयता। (वृ०-प० ११९)

वा०—व्यंजन-मस तिलकादि, अथवा लक्षण ते जन्म थकी चिह्न, अनैं पछै थयो जे चिह्न ते व्यंजन।

वा०—व्यञ्जनं—मषतिलकादिकमथवा सहजं लक्षणं पश्चाद्भवं व्यञ्जनम्। (वृ०-प० ११९)

१८. *लक्ष्मी सोभा करि सुविधानो, घणुं घणुं सोभायज मानो।
तीर्थ महिमा सहित सुप्रधानो॥

१८. सिरीए अतीव-अतीव उवसोभमाणं चिट्ठइ। (ज० २।४२)

*लय—नमिनाथ अनाथां रा नाथो रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. खंधक कात्यायनगोत्री तिवारो, तनु वीर नुं देखी उदारो।
हरष संतोष चित्त मझारो॥

१९. तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स वियट्टभोइस्स सरीरय ओरालं जाव अतीव-अतीव उवसोभेमाणं पासइ,

सोरठा

२०. हृष्ट तुष्ट तसुं चित्त, अतिशय करिकै तुष्ट मन।
तथा हृष्ट विस्मित्त, तुष्ट तिको संतोष मन॥

२०. पासित्ता हट्ठतुट्ठचित्तं
हृष्टतुष्टमत्यर्थं तुष्टं हृष्टं वा—विस्मितं तुष्टं च—सन्तोषवच्चित्तं—मनो यत्र तत्तथा। (वृ०-प० ११९)

२१. *आनंदिए थयो आनदो, णंदिए मन प्रीति पावंदो।
परम सुमन समन सुखकंदो॥

२१. आणंदिए णंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए

सोरठा

२२. आ ईषत् कहिवाय, मुख सौम्यपणादिक भाव करि।
समृद्धि पाम्युं ताय, आनंदित नों अर्थ ए॥

२२. 'आनन्दितः' ईषन्मुखसौम्यतादिभावैः समृद्धिमुपगतः। (वृ०-प० ११९)

२३. फुन तदनंतर जेह, तेहिज जिन दर्शण करी।
अति समृद्धि पावेह, नंदित पद नुं अर्थ ए॥

२३. नन्दितस्तैरेव समृद्धतरतामुपगतः। (वृ०-प० ११९)

२४. प्रीति तृप्ति अत्यंत, पाम्युं जेहनां मन विषै।
पीइमणे पद हुंत, तास अर्थ ए आखियो॥

२४. प्रीतिः—प्रीणनमाप्यायनं मनसि यस्य स तथा। (वृ०-प० ११९)

२५. थयो परम उत्कृष्ट, सुमनस्पणुं मन जेहनें।
अतही भलूंज इष्ट, परमसोमणसिए नुं अर्थ ए॥

२५. परमं सौमनस्यं सुमनस्कता संजातं यस्य स परमसौमनस्यितस्तद्भाऽस्यास्तीति परमसौमनस्यिकः। (वृ०-प० ११९)

२६. *हर्ष नैं वश करि कायो, हियो विस्तार पामतो ताह्यो।
हर्ष सूं हिवड़ो हुलसायो॥

२६. हरिसवसविसप्पमाणहियए
हर्षवशेन विसर्प्पद्—विस्तारं व्रजद् हृदयं यस्य स तथा।

सोरठा

२७. तथा आनंदित आदि, एकार्थक ए पद सहु।
पद जुजुआ संवादि, अतिहि प्रमोद जणायवा॥

२७. एकार्थिकानि वैतानि प्रमोदप्रकर्षप्रतिपादनार्थानीति। (वृ०-प० ११९)

२८. *जिहां श्रमण तपस्वी सधीरो, एहवा भगवन् श्री महावीरो।
तिहां आवै, आवी गुण-धीरो॥

२८. जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता।

२९. वीर प्रभु भणी सुखकारो, जीमणा पासा थी सुविचारो।
देवै प्रदक्षिणा तिण वारो॥

३०. यावत् सेव करी हुलसावै, अहो खंधक जिन बतलावै।
तिण नैं आगूंच वात सुणावै॥

२९, ३०. समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ जाव पज्जुवासइ। (श० २।४३)

३१. ढाल तेतीसमीं सुखदायो, भिक्खु भारीमाल ऋषरायो।
सुख 'जय-जश' संपति पायो।

*लय—नमिनाथ अनाथां रा नाथो रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ३४

दूहा

१. हे खंधक ! जे सावत्थि में, पिंगल नाम निर्ग्रंथ ।
वैसालिक श्रावक तुझै, प्रश्न पूछ्या धर खंत ।।

२. मागध ! लोक सअंत स्यूं, तथा अनंत कहाय ?
इम तिमहिज जावत् जिहां, मुझ पै तिहां झट आय ।।

१, २. खंदयाति ! समणे भगवं महावीरे खंदयं कच्चायण-सगोत्तं एवं वयासी—से नूणं तुमं खंदया ! सावत्थीए नयरीए पिंगलएणं नियंठेणं वेसालियसावएणं इणमक्खेवं पुच्छिए—मागहा !
किं सअंते लोए ? अणंते लोए ? एवं तं चेव जाव जेणेव ममं अंतिए तेणेव हव्वमागए ।

३. खंधक ! अर्थ समर्थ ए ? हंता अत्थि स्वाम !
अर्थ अनूपम तेहनों, भाखै जिन गुण-धाम ।।

३. से नूणं खंदया ! अट्ठे समट्ठे ? हंता अत्थि ।
(श० २।४४)

४. जे पिण खंधक तुझ इसो, आतम विषै ए जन्न ।
चिंतित प्रार्थित मन रह्यु, विचार जे उत्पन्न ।।

*वदै वर वीर विमल वानी,
ज्ञान-घटा उमटी, प्रगटी जिन-छटा जबर जानी । (ध्रुपदं)

४, ५. जे वि य ते खंदया ! अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—किं सअंते लोए ? अणंते लोए ?—तस्स वि य णं अयमट्ठे—एवं खलु मए खंदया ! चउव्विहे लोए पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ ।

५. खंधक तै चिंत्यूं मन मांह्यो,
वलि मनमांहि विचार ऊपनों लोक सांत ताह्यो ?
तथा स्यूं लोक अनंत कहियै,
तेहनुं पिण ए अर्थ एम निश्चै खंधक लहियै ।
लोक ए चउविध मैं भाख्यो,
द्रव्य, खेत्र नैं काल, भाव थी जूओ जूओ आख्यो,
तास हिव भेद कहूं छाणी,
ज्ञान-घटा उमटी, प्रगटी जिन-छटा जबर जानी ।।

६. द्रव्य थी लोक एक जाणी,
तिण कारण ए अंत-सहित छै न्याय हियै आणी,
खेत्र थी लोक इतो वहुलो,
असंखेज्ज कोडाकोडी जोजन लांवो पहुलो ।
परिधि हिव लोक तणी सुणियै,
असंख्यात कोडा-कोडी जे जोजन नी गिणियै,
तिको पिण अंत सहित ठानी,
ज्ञान-घटा उमटी, प्रगटी जिन-छटा जबर जानी ।।

६. दव्वओ णं एगे लोए सअंते ।
खेत्तओ णं लोए असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ आयाम-विक्खंभेणं, असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ परिक्खेवेणं पण्णत्ते, अत्थि पुण से अंते ।

७. लोक ए काल थकी जोई,
कदापि न हुवो, नहि ह्वै, न हुसी इम नहि छै कोई,
हूओ ए काल अतीत मही,
वर्त्तमान काले पिण छै ए हुसै अनागत ही ।

७. कालओ णं लोए न कयाइ न आसी, न कयाइ न भवइ, न कयाइ न भविस्सइ—भविंसु य, भवति य, भविस्सइ य—धुवे नियए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए निच्चे, नत्थि पुण से अंते ।

*लय—सुगुरु की सीख हियै धरना रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अचल भावे करि ध्रुव एही,
एक स्वरूपपणां थी लोकज नियत कह्यूं जेही,
सास्वतो खिण-खिण सद्भावै,
अक्षय कहितां अविनाशी छै नास नहीं थावै।
अवस्थित कहितां तसुं कहियै,
अनंत पर्यायपणैं करिनैं छै नित्य एम लहियै,
तास फुन अंत नहीं जानी,
ज्ञान-घटा उमटी, प्रगटी जिन-छटा जबर जानी ॥

गीतक-छन्द

८. ध्रुव शब्द अचलपणां थकी, ए लोक नैं ध्रुव दाखियै।
फुन तेह अनियत रूप पिण ह्वै, इह थकी हिव आखियै ॥

८. ध्रुवोऽचलत्वात् स चानियतरूपोऽपि स्यादत आह—
(वृ०-प० ११६)

९. कह्यूं णितए लोक नैं, तसुं अर्थ नियत पिछाणियै।
इक ही स्वरूपपणां थकी, ए नियतरूपज जाणियै ॥

९. नियत एकस्वरूपत्वात्। (वृ०-प० ११६)

१०. फुन नियत तेह कदाचि पिण ह्वै, इह थकी आगल कहै।
सासए खिण-खिण तणा सद्भाव थी शास्वत रहै ॥

१०. नियतरूपः कादाचित्कोऽपि स्यादत आह—शाश्वतः प्रतिक्षणं सद्भावात्। (वृ०-प० ११६)

११. फुन सास्वतो ते नियत काल अपेक्षया पिण ह्वै तिको।
इह कारणे हिव अक्खए, अविनाशि थी अक्षय जिको ॥

११. स च नियतकालापेक्षयाऽपि स्यादित्यत आह—अक्षयोऽविनाशित्वात्। (वृ०-प० ११६)

१२. फुन तेह अक्षय द्रव्य करि पिण ह्वै तिको स्यूं लीजियै।
इह कारणे हिव आगलै, अवट्ठिए पाठ अहीजियै ॥

१२. अयं च द्रव्यतयाऽपि स्यादित्याह— (वृ०-प० ११६)

१३. अवट्ठिए रव नों अर्थ जे पर्याय अनंतपणैं करी।
अवस्थितपणा थी लोक नैं, फुन अवस्थित आख्यूं फिरी ॥

१३. अवस्थितः पर्यायाणामनन्ततयाऽवस्थितत्वात्।
(वृ०-प० ११६)

सोरठा

१४. निष्कर्ष रूप में जोय, निच्चे पाठ छै आगलै।
लोक नित्य अवलोय, अंत रहित इम काल थी ॥

१४. किमुक्तं भवति? नित्य इति। (वृ०-प० ११६)

१५. *भाव थी लोक तणुं निरणुं,
वर्ण गंध रस फर्श तणां ए पजव अनंत भणुं,
वलि संठाण अनंत पजवा,
गुरु-लघु बादर खंध तणां पिण पजव अनंत भवा।
अगुरुलघु पजव अनंता ही,
तसुं फुन अंत नहीं हे खंधक! इम चउविध थाई,
वदैं प्रभुजी पूरणज्ञानी,
ज्ञान-घटा उमटी, प्रगटी जिन-छटा जबर जानी ॥

१५. भावओ णं लोए अणंता वण्णपज्जवा, अणंता गंधपज्जवा, अणंता रसपज्जवा, अणंता फासपज्जवा, अणंता संठाणपज्जवा, अणंता गरुयलहुयपज्जवा, अणंता अगरुयलहुयपज्जवा, नत्थि पुण से अंते।

*लय—सुगुरु की सीख हियै धरना रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. एतलै द्रव्य थकी भाली,
अंत-सहित ए लोक कहीजै निमल न्याय न्हाली,
क्षेत्र थी अंत-सहित एही,
काल थकी ए लोक अछै ते अंत-रहित जेही।
भाव थी अंत-रहित कहियै,
वर्णादिक नां पजव अनंता एह इहां गहियै,
प्रथम प्रश्नोत्तर ए जानी,
ज्ञान-घटा उमटी, प्रगटी जिन-छटा जवर जानी ॥

१६. सेत्तं खंदगा ! दव्वओ लोए सअंते, खेत्तओ लोए सअंते, कालओ लोए अणंते, भावओ लोए अणंते।
(श० २।४५)

१७. जिके पिण खंधक तै तेमो,
जाव सांत कै अनंत जीव छै तास अर्थ एमो,
जीव चउविध करि मैं भाख्यो,
द्रव्य क्षेत्र नैं काल भाव थी जूओ जूओ आख्यो।
द्रव्य थी एह जीव एको,
तिण कारण ए अंत-सहित छै परम न्याय पेखो,
हिवै सुण आगल वर वाणी,
ज्ञान-घटा उमटी, प्रगटी जिन-छटा जवर जानी ॥

१७. जे वि य ते खंदया ! जाव कि सअंते जीवे ? अणंते जीवे ?
तस्स वि य णं अयमट्ठे—एवं खलु मए खंदया ! चउव्विहे जीवे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ।
दव्वओ णं एगे जीवे सअंते।

१८. क्षेत्र थी जीव तणां कहियै,
असंख्यात प्रदेश अछै ते जिन-वच सूं लहियै।
तिके आकाश तणां जेही,
असंख्यात प्रदेश ओगाह्या अंत-सहित एही।
काल थी जीव एह ज्याही,
कदाचित् नहि हुओ इसी विध कहिवो तसु नांही।
जाव नित्य पूर्व पाठ भणवा,
तेह तणुं फुन अंत नहीं छै थिर चित सूं थुणवा।
सुधा जिन वाणी सुखदानी,
ज्ञान-घटा उमटी, प्रगटी जिन-छटा जवर जानी ॥

१८. खेत्तओ णं जीवे असंखेज्जपएसिए, असंखेज्जपएसोगाढे, अत्थि पुण अंते। कालओ णं जीवे न कयाइ न आसी जाव निच्चे, नत्थि पुण से अंते।

१९. भाव थी जीव प्रभू भाखै,
ज्ञान तणां पर्याय अनंता इम दर्शण आखै।
अनंता चरित पजवधारी,
गुरुलघु नां पिण पजव अनंता ए तनु सहचारी।
अगुरुलघु पजव अनंता ही,
तेह तणुं फुन अंत नहीं छै जिन-वच सुखदाई,
अदल वर न्याय हियै जानी,
ज्ञान-घटा उमटी, प्रगटी जिन-छटा जवर जानी ॥

१९. भावओ णं जीवे अणंता नाणपज्जवा, अणंता दंसणपज्जवा, अणंता चरित्तपज्जवा, अणंता गरुयलहुयपज्जवा, अणंता अगरुयलहुयपज्जवा, नत्थि पुण से अंते।

सोरठा

२०. औदारिकादि जाण, ते आश्री गुरुलघु कह्या।
वृत्ति मध्यै इम वाण, जीव अरूपी ते भणी ॥

२०. अनन्ता गुरुलघुपर्याया औदारिकादिशरीराण्याश्रित्य।
(वृ०-प० ११९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. 'धर्माधर्म आकाश, जीवास्ति नैं काल ए।
अगुरुलघु सुविमास, प्रथम शतक नवमें कह्यो ।।
२२. वलि जीवास्तिकाय, तेह अरूपी भगवती।
वर्णादिक नहिं पाय, द्वितिय शतक दशमें कह्यो ।।
२३. तिण कारण पहिछाण, जीव प्रतै गुरुलघु कह्यो।
औदारिकादिक जाण, च्यार शरीर अपेक्षया' ।। (ज० स०)

२४ *एतलै द्रव्य थकी वारू,
अंत सहित ए जीव कहीजै इक वचने चारू।
क्षेत्र थी अंत-सहित कहियै,
काल थकी ए अंत-रहित छै प्रवर न्याय लहियै।
भाव थी अंत-रहित जीवो,
ए चिहुंविध करि जीव कह्यो प्रभु विमल ज्ञान दीवो।
द्वितिय प्रश्नोत्तर ए जानी,
ज्ञान-घटा उमटी, प्रगटी जिन-छटा जवर जानी ।।

२४. सेत्तं खंदगा ! दव्वओ जीवे सअंते, खेत्तओ जीवे सअंते, कालओ जीवे अणंते, भावओ जीवे अणंते।
(श० २।४६)

२५. जिके पिण खंधक तव पृच्छा,
अंत-सहित ए सिद्धी छै कै अंत-रहित ? इच्छा।
तास पिण एह अर्थ थाई,
म्हैं चिहुं विधा परूपी सिद्धी सांभल चित ल्याई।
द्रव्य थी एक सिद्धि थुणिजै,
अंत सहित छै सिद्ध-शिला हिव क्षेत्र थकी सुणिजै।
पैंतालिस लख जोजन ताजी,
लांबी चौड़ी मुक्ति-शिला छै तिगुणि परिधि जाझी।
मान तसुं आगल कहिवा नी,
ज्ञान-घटा उमटी, प्रगटी जिन-छटा जवर जानी ।।

२६. कोड इक बंयालीस लाखं,
तीस सहस वे सय गुणपचा जोजन थुत साखं।
परिधि किंचित अधिकी लेखो,
क्षेत्र थकी फुन छै तसुं अंतज विमल नयण देखो।
काल अरु भाव थकी गुणवी,
लोक तणो विस्तार कह्यो तिम अंत-रहित भणवो।
वदै जगतारक जिन वानी,
ज्ञान-घटा उमटी, प्रगटी जिन-छटा जवर जानी ।।

२५, २६. जे वि य ते खंदया ! पुच्छा—
किं सअंता सिद्धी ? अणंता सिद्धी ?
तस्स वि य णं अयमट्ठे। एवं खलु मए खंदया ! चउव्विहा सिद्धी पण्णत्ता, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ।
दव्वओ णं एगा सिद्धी सअंता।
खेत्तओ णं सिद्धी पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं, एगा जोयणकोडी...बायालीसं च सयसहस्साइं तीसं च सहस्साइं दोण्णि य अउणापन्नजोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ता, अत्थि पुण से अंते।
कालओ य भावओ य जहा लोयस्स तहा भाणियव्वा। नत्थि पुण सा अंता।

*लय—सुगुरु की सीख हियै धरना रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७. द्रव्य थी अंत-सहित सिद्धी,
क्षेत्र थकी पिण अंत-सहित छै नभ-प्रदेश लिद्धी।
काल थी अंत-रहित आखी,
भाव थकी पिण अंत-रहित जे सिद्ध-शिला भाखी।
एम ए चिहुंविध करि लहियै,
सिद्ध-क्षेत्र तसु नजीक माटै सिद्धी तसुं कहियै,
तृतीय प्रश्नोत्तर ए जानी,
ज्ञान-घटा उमटी, प्रगटी जिन-छटा जबर जानी॥

२७. सेत्तं खंदया! दव्वओ सिद्धी सअंता, खेत्तओ सिद्धी सअंता, कालओ सिद्धी अणंता, भावओ सिद्धी अणंता।
(श० २।४७)

२८. जिके पिण खंधक तुझ चिंतो,
जावत् किसूं अणंते सिद्धे तिमज जाव संतो।
द्रव्य थी एक सिद्ध संतो,
क्षेत्र थकी सिद्ध असंख-प्रदेशिक छै अति गुणवंतो।
तिके आकाश तणा हुंतो,
असंख्यात प्रदेश ओगाह्या तसुं फुन छै अंतो।
तास ओलखियै गुणखानी,
ज्ञान-घटा उमटी, प्रगटी जिन-छटा जबर जानी॥

२८, २९. जे वि य ते खंदया! जाव किं अणंते सिद्धे?
तं चेव जाव दव्वओ णं एगे सिद्धे सअंते।
खेत्तओ णं सिद्धे असंखेज्जपएसिए, असंखेज्जपएसोगाढे, अत्थि पुण से अंते। कालओ णं सिद्धे सादीए, अपज्जवसिए, नत्थि पुण से अंते। भावओ णं सिद्धे अणंता नाणपज्जवा, अणंता दंसणपज्जवा, अणंता अगरुयलहुय-पज्जवा, नत्थि पुण से अंते।

२९. काल थी सिध इक वचनंतो,
आदि-सहित रु अंत-रहित छै तसुं फुन नहिं अंतो।
भाव थी सिद्ध भणी कहियै,
ज्ञान तणा छै पजव अनंता इम दर्शन लहियै।
जाव वलि अगुरुलघु आछा,
पजव अनंता अमल अनोपम क्षय-निप्पन जाचा।
तास फुन अंत नहीं जानी,
ज्ञान-घटा उमटी, प्रगटी जिन-छटा जबर जानी॥

सोरठा

३०. 'इहां जाव' शब्द रै मांहि, चारित्र ना पज्जव कह्या।
ते सिद्धां में नांहि, पांचूं चारित्र मांहिलो॥

१. जयाचार्य के सामने जो आदर्श था उसमें सूत्र-पाठ इस प्रकार था---'भावओ णं सिद्धे अणंता नाणपज्जवा, अणंता दंसणपज्जवा जाव अणंता अगरुयलहुयपज्जवा।' इस जाव पद के द्वारा स्तवक में दो पाठ गृहीत हैं---'अणंता चरित्तपज्जवा, अणंता गरुयलहुयपज्जवा।' किन्तु ये दोनों पाठ प्रासंगिक नहीं हैं। क्योंकि सिद्धों में न तो चारित्र है और न गुरुलघुपर्याय है। जयाचार्य को जाव पद-रहित आदर्श उपलब्ध नहीं था। इसलिए उन्होंने जाव शब्द वाले पाठ को अशुद्ध नहीं बतलाया। अपेक्षा दृष्टि से उस पाठ में संगति बिठाने के लिए तेवीस सोरठों में एक लम्बी चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है—सिद्धों में चारित्र मोहकर्म का क्षायिक भाव है, उस अपेक्षा से वहां चारित्र के पर्यवों का ग्रहण किया है। सिद्धों में गुरुलघुपर्यव का उल्लेख है,
(शेष अग्रिम पृष्ठ पर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१. चारित्तावर्णी कर्म, खायक-निप्पन्न त्यां अछै।
नहिं अघ रोकण धर्म, पिण स्थिरता गुण तो सही ।।
३२. चारित्तावर्णी कर्म, खायक-निपन्न नां गयो।
तिण सूं ए गुण पर्म, लाधै छै सिद्धां मझै ।।
३३. वलि जाव शब्द रै मांहि, गुरुलघु ना पजवा कह्या।
ए सिद्धां में नांहि, शरीर रहित छै ते भणी ।।
३४. गुरुलघु पजवा ताय, जाव शब्द में आविया।
संलग्न पाठ जणाय, पिण लाभै ते लीजियै ।।
३५. संलग्न शब्द अनेक, देखी न्याय मिलाविय।
लाभै ते छै लेख, नहिं लाभै ते टालियै ।।
३६. तथा अजोगी ठाण, तास चरम समय विषै।
क्षायिक चारित्र जाण, वलि तनु तीन अछै तिहां ।।
३७. होणहार ए सिद्ध, हुवा जिसो उपचार थी।
ते इहां सिद्ध समृद्ध, कह्यो नजीकपणा थकी ।।
३८. क्षायिक चारित्र तास, ते चारित्र ना पर्यव तिहां।
गुरुलघु पर्यव विमास, औदारिक तैजस तणा ।।
३९. जिम अनुयोगजद्वार, जाणक-भविक-शरीर थी।
व्यतिरिक्त ते सुविचार, द्रव्य शंख त्रिणविध कह्यो ।।
४०. एक-भविक धुर भेद, शंख थकी जे प्रथम भव।
द्वितिय बद्धायु वेद, शंखायू बंध्यां पछै ।।
४१. अभिमुखनामज गोत, जघन्य समय इक अंत जे।
उत्कृष्टो इम होत, अंतर्मुहूर्त्त चरम जे ।।

वह या तो पाठ की संलग्नता के कारण है अथवा चौदहवें गुणस्थान के जीवों को सिद्ध माना गया है। क्योंकि वे तत्काल सिद्ध होने वाले हैं। चौदहवें गुणस्थान में जीव सशरीरी होता है, अतः वहां चारित्र और गुरुलघुत्व दोनों घटित हो जाते हैं।

मैंने जब पहली बार भगवती की जोड़ पढ़ी, तब मेरे पास जो भगवती सूत्र के मूल पाठ की प्रति थी, उसमें जाव पद नहीं था।(देखें अंगसुत्ताणि भाग २, श०२।४८) भगवती की जोड़ के सामूहिक स्वाध्याय में मंत्री मुनि मगनलालजी भी उपस्थित थे। उन्होंने कहा—यदि जयाचार्य को यह प्रति उपलब्ध होती तो उन्हें ये तेवीस सोरठे नहीं लिखने पड़ते। अब हमारे सामने यह प्रति है, इसलिए आपको इस विषय पर एक टिप्पणी कर देनी चाहिए। मंत्री मुनि का कथन स्वीकार कर मैंने दो सोरठों में उक्त विषय पर टिप्पणी की—

किण ही प्रती मझार, जाव शब्द लाभै नहीं।
ज्ञान, दर्शन, अवधार, अगुरुलघु पजवा कह्या ।।१।।
किण ही प्रती मझार, जाव शब्द है तेहथी।
न्याय निमल निरधार, जयगणपति इम मेलव्यूं ।।२।।

यह घटना सं० १९९४, बीकानेर की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२. नैगम संग्रह सोय, वलि व्यवहार तणो धणी।
त्रिविध शंख अवलोय, वंछै छै तीनूं भणी॥
४३. ऋजुसूत्र सुविचार, वंछै द्विविध शंख नै।
बद्धाय प्रति धार, अभिमुख-नामज-गोत्र वलि॥
४४. तीन शब्द नय भाव, अभिमुखनामज गोत्र प्रति।
वंछै छै धर न्याव, एहवूं आख्यो पाठ में॥
४५. वृत्ति विषै इम वाय, यद्यपि ए त्रिण भाव नय।
द्रव्य न वंछै ताय, तो ए किम मान्यो इणे॥
४६. कार्य शंख तणेह, प्रथम काल ए ढूकडुं।
कारण रूप कहेह, तिण सूं अभिमुख मानियो॥
४७. तिम चवदम गुणठाण, अंत समय तेहनै विषै।
सिद्ध कह्यो छै जाण, ते पिण जाणै केवली॥
४८. द्वितीय शतक उदंत, प्रथम उद्देशक नैं विषै।
प्रासुकभोजी संत, रुंध्या भव-विस्तार जिण॥
४९. सिद्ध कहीजै तास, बुद्ध मुक्त कहीजै तसुं।
सहु दुख क्षीण विमास, थयुं कहीजै तेहनैं॥
५०. होणहार ए सिद्ध, हूआ सरीखो लेखवी।
नय उपचार प्रसिद्ध, तेम इहां आख्यो हुवै॥
५१. भृगूपुत्र गुण-रयण, मुनी कह्या छै तेहनैं।
चवदम उत्तरज्झयण, होणहार मुनिवर तिके॥
५२. मृगापुत्र अधिकार, कह्यो दमीश्वर तेहनैं।
उत्तरज्झयण मझार, ए होणहार मोटो मुनि॥
५३. इम ए पिण अवलोय, चरम समय चवदम गुणे[1]।
चारित्र गुरुलघु जोय, ते पिण जाणै केवली॥'(ज०स०)

५४. *एतलै द्रव्य थकी जोई,
अंत-सहित ए सिद्ध कहीजै इक वचने होई।
क्षेत्र थी अंत-सहित ख्यातं,
काल थकी जे अंत-रहित छै वसुधा अवदातं।
भाव थी अंत-रहित भारी,
तिमहिज यावत् सिद्ध अंत नहिं आखै जगतारी।
तुर्य प्रश्नोत्तर ए जानी,
ज्ञान-घटा उमटी, प्रगटी जिन-छटा जब रजानी॥

५४. सेत्तं खंदया ! दव्वओ सिद्धे सअंते, खेत्तओ सिद्धे सअंते,
कालओ सिद्धे अणंते, भावओ सिद्धे अणंते।
(श० २।४८)

१. गुणस्थान में
*लय--सुगुरु की सीख हिये धरना रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५५. लोक अरु जीव तणों भाख्यो,
मुक्ति-शिला नैं सिद्ध तणों चिहुं उत्तर जिन आख्यो।
हिवै वे प्रश्न तणैं निरणैं,
किसै मरण संसार वधावै हाणि किसै मरणैं।
ढाल चउतीसमीं ए धामी,
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रशादै संपति 'जय' पामी।
सुजश गण-वृद्धि हरष जानी,
ज्ञान-घटा उमटी, प्रगटी जिन-छटा जबर जानी॥

ढाल : ३५

दूहा

१. जे पिण खंधक तुझ इमो, एतत्रूप सुजन्न।
आत्म विषै चिंतित वलि, जावत् हि उत्पन्न॥

१. जे वि य ते खंदया ! इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए जाव समुप्पज्जित्था

२. किसै मरण मरतो छतो, वृद्धि हुवै संसार।
तथा हानि संसार नीं, किण मरणै ह्वै सार?

२. केण वा मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढति वा, हायति वा ?

३. तेहनों पिण ए अर्थ इम, निश्चै खंधक ! धार।
दोय प्रकारे मरण म्है, आख्यो तसु अधिकार॥

४. बाल-मरण धुर जाणवूं, पंडित-मरण पिछाण।
से किं तं ? अथ स्यूं तिको, बाल-मरण दुख-खान॥

३, ४. तस्स वि य णं अयमट्ठे—एवं खलु खंदया ! मए दुविहे मरणे पण्णत्ते, तं जहा—बालमरणे य, पंडियमरणे य।
से किं तं बालमरणे ?

५. बाल-मरण धुर छै तिको, आख्यो बार प्रकार।
ते जिम छै तिम आगलै, कहियै छै अधिकार॥

५. बालमरणे दुवालसविहे पण्णत्ते, तं जहा—

*खंधक गुणरसियो।
वीर वचन सुविशाल जेहनैं मन वसियो॥ (ध्रुपदं)

६. भूख तृषा करि पीडियो रे, सूरिजन ! मरै करतो विलापात।
तथा संजम छांडी मरै रे, सूरिजन ! ते वलय-मरण विख्यात॥

६. वलयमरणे
वलतो—बुभुक्षापरिगततत्वेन वलवलायमानस्य—संयमाद्वा भ्रस्यतो यन्मरणं तद्वलन्मरणं। (वृ०-प० १२०)

७. इंद्रियवश पीड़्यो मरै रे, भविजन ! काम वसै मातंग।
इम अन्य इंद्रिय वस मरै रे, भविजन ! वसट्ट - मरण प्रसंग॥
(प्राणी गुणरसियो)

७. वसट्टमरणे।
वशेन—इंद्रियवशेन ऋतस्य—पीडितस्य।
(वृ०-प० १२०)

८. तोमरादिक द्रव्य शल्य थी, भाव शल्य अतिचार।
तेह आलोयां विण मरै, अन्तोसल्ल अवधार॥

८. अंतोसल्लमरणे
अन्तःशल्यस्य द्रव्यतोऽनुद्धृततोमरादेः भावतः सातिचारस्य यन्मरणं तदन्तः शल्यमरणं। (वृ०-प० १२०)

*लय—पंखी गुणरसियो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. मनुष्य मरी नै मनुष्य हुवै, तिर्यंच मरी नै तिर्यंच।
तद्भव-मरण कह्यो तसुं, कर्म निदाने संच।।

९. तद्भवमरणे
तस्मै भवाय मनुष्यादेः सतो मनुष्यादावेव बद्धायुषो यन्मरणं तत्तद्भवमरणम्। (वृ०-प० १२०)

सोरठा

१०. तद्भव-मरण सुजोय, तिरिक्ख मनुष्य नैं इज हुवै।
अन्य गति में नहि होय, न्याय विचारी लीजियै।।

१०. इदं च नरतिरश्चामेवेति। (वृ०-प० १२०)

११. *कषाय वसै गिरि थी मरै, वृक्ष थी पडी मरंत।
पाणी मांहै पेसी मरै, अग्नि-प्रवेश करंत।।

११. गिरिपडणे तरुपडणे जलप्पवेसे जलणप्पवेसे।

१२. कषाय थी विष खाय नैं, मरै शस्त्रे करि ताय।
चोकड़ी वस पासी लियै, गिद्ध पंखी पै खवाय।।

१२. विसभक्खणे सत्थोवाडणे वेहाणसे गिद्धपट्ठे—

सोरठा

१३. गृध्र-स्पृष्ट आख्यात, पक्षी विशेष गृध्र जे।
तथा गृद्ध फुन जात, मंस-लुब्ध स्यालादि करि।।

१४. स्पृष्ट—विदारित देह, गज खर करभादिक तणैं।
तनु अंतर पैसेह, गृध्र-स्पृष्टज मरण ते।।

१३, १४. गृध्रैः—पक्षिविशेषैर्गृद्धैर्वा—मांसलुब्धैः शृगालादिभिः स्पृष्टस्य—विदारितस्य करिकरभरासभादिशरीरान्तर्गतत्वेन यन्मरणं तद्गृध्रस्पृष्टं वा गृद्धस्पृष्टं वा गृध्रैर्वा भक्षितस्य—स्पृष्टस्य यत्तद्गृध्रस्पृष्टम्। (वृ०-प० १२०)

१५. द्वादशविध ए ख्यात, उपलक्षण थी अन्य कर।
मरै करी निज घात, द्वादश अंतर तेह पिण।।

१५. 'दुवालसविहेण बालमरणेणं' ति उपलक्षणत्वादस्यान्येनापि बालमरणान्तःपातिना मरणेन म्रियमाण इति। (वृ०-प० १२०)

१६. मुख्य थकी ए वार, बाल-मरण आख्या अछै।
पूरण आदि विचार, तेहनों कथन नहीं इहां।।

१७. *ए द्वादशविध बालमरण छै तिण कर मरतो जंत।
भव अनंत नारकी तणां आतम संघात जोडंत।।

१८. तिर्यंच मनु सुर भव वलि जेह अनादि अनंत।
चिहुं गति रूप संसार में ते अरण्य विषै भमंत।।

१६, १८. इच्चेतेणं खंदया! दुवालसविहेणं बालमरणेणं मरमाणे जीवे अणंतेहिं नेरइयभवग्गहणेहिं अप्पाणं संजोएइ, अणंतेहिं तिरियभवग्गहणेहिं अप्पाणं संजोएइ, अणंतेहिं मणुयभवग्गहणेहिं अप्पाणं संजोएइ, अणंतेहिं देवभवग्गहणेहिं अप्पाणं संजोएइ, अणाइयं च णं अणवदग्गं चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टइ।

बा०—इहां कह्यो ए बारे प्रकार नां बाल-मरण करिकै नारकी नां अनंता भव-ग्रहण आतम संघातै जोड़ै, अनै तिर्यंच, मनुष्य, देव चिहुं गति रूप संसार-कांतार में भमै। जे सत्य सहित अग्नि जलादिक में पेसी मरै, ए सावज्ज कार्य थी सुभ-मनुष्यायु नैं देवायु ए पुन्य प्रकृति बंधै नहीं, ते सावज्ज कार्य स्यूं तो पापईज बंधै। अनै इहां कह्यो—अनादि अनंत च्यार गतिरूप संसार कांतार में भमै, ते भ्रमण नीं अपेक्षाय च्यार गति कही।

इहां कोइ कहै ते च्यार गति में तो शुभ मनुष्यायु, देवायु पिण आयो, जे अग्न्यादिक में पैसी मरै ते सावज्ज कार्य थकी शुभ आउखो बंधै, इम कहै तेहनों उत्तर—जे अग्न्यादिक में पैसी मरै ते एक भव में तो एक गति नों ईज आउखो बंधै, पिण एक भव में च्यार गति नों आउखो बंधै नहीं। अनैं इहां संसार-कांतार नां वर्णन

*लय—पंखी गुणरसियो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में अनादि अनंत च्यार गति नो नाम कह्यु ते माटै भ्रमण नीं अपेक्षाय जाणवो। अनै अतिचार-शल्य सहित मरी कोयक देवता हुवै, ते अतिचार दोष-रूप शल्य थी देवता न हुवै और गुणा सूं देवता हुवै। तिम अग्नि जलादिक में पैसी मरै ते पिण और शीलादिक गुण सूं देवता हुवै, पिण ते सावज्ज कार्य सूं देवता न हुवै।

कोइ कहै अग्नि आदिक में पैसी मरै ते कष्ट थी देवता हुवै। तेहनों उत्तर—ते तो आगला भव में अशुभ कर्म बांध्या ते उदै आया भोगवै छै, पिण ए जीव री हिंसा रूप सावज्ज कार्य ते निर्जरा री करणी नहीं। एहथी पुन्य पिण बंधै नहीं। इम सावज्ज कार्य नां कष्ट थी पुन्य बंधै तो नीलो घास काटतां कष्ट हुवै। संग्राम में मिनखां नै खड्गादिक थी मारतां हाथ ठंठ हुवै, कष्ट हुवै। मोटा अणाचार सेवतां, शीतकाल में प्रभाते स्नान करतां पिण कष्ट हुवै, तिण रै लेखै एह थी पिण पुन्य बंधै ते माटै ए सावज्ज करणी थी पुन्य बंधै नहीं। अनै जे जीव-हिंसा रहित कार्य—शीतकाल में शीत खमै, उष्णकाल में सूर्य नीं आतापना लेवै, भूख तृषा दिक खमै, निर्जरा अर्थे ते सकाम निर्जरा छै, तिण री केवली आज्ञा देवै, तेहथी पुन्य बंधै। अनै विना मन भूख तृषा शीत तावड़ादि खमै, बिना मन ब्रह्मचर्य पालै, ते निर्जरा रा परिणाम बिना तपस्यादिक करै, ते पिण अकाम निर्जरा आज्ञा मांहि छै। तथा पूजा श्लाघा रै अर्थे तपस्यादिक करै ते पिण अकाम निर्जरा छै। ए पूजा श्लाघा नी वंछा आज्ञा मांहि नथी, निर्जरा पिण नहीं हुवै ते वांछा थी, पुन्य पिण नहीं बंधै। अनै जे तपस्या करै, भूख तृषा खमै, इण में जीव री घात नथी ते माटै ए तपस्या आज्ञा मांहि छै। निर्जरा रो अर्थी थको न करै तिण सूं अकाम निर्जरा छै। एह थकी पिण पुन्य बंधै छै। पिण आज्ञा बारला कार्य थी पुन्य बंधै नथी। (ज० स०)

१९. ए मरणे मरतो छतो वड्ढती वड्ढती ख्यात।
संसार वृद्धि करै घणीं तिण सूं द्विवच आत॥

वा०—भृशं ते अतिहि बधावै इहां सूत्रे 'वड्ढती वड्ढती' बे वार कह्यो ते अति ही वृद्धि नै अर्थे।

१९. सेत्तं मरमाणे वड्ढइ-वड्ढइ।
'वड्ढइ वड्ढइ' त्ति संसारवर्द्धनेन भृशं वर्द्धते जीवः, इदं हि द्विर्वचनं भृशार्थे इति। (वृ०-प० १२०)

२०. बाल-मरण ए आखियो अतिहि बधारै संसार।
ते माटै मुख्य जाणवा बाल-मरण ए बार॥

२०. सेत्तं बालमरणे। (श० २।४९)

२१. से किं तं? अथ एहनूं से कहितां अथ जाण।
किं कहितां स्यूं तं तिको पंडित-मरण पिछाण॥

२१. से किं तं पंडियमरणे?

२२. पंडित-मरण द्विविध कह्यु पाओवगमन उदार।
दूजो भत्तपचखाण छै ए विहुं अणसण सार॥

२२. पंडियमरणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पाओवगमणे य, भत्तपच्चक्खाणे य।

२३. अथ पाओवगमन ते कवण छै? तेहना दोय प्रकार।
निहारिम करै ग्राम में अनिहारिम ते उजार॥

२३. से किं तं पाओवगमणे?
पाओवगमणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—नीहारिमे य, अनीहारिमे य।

२४. नियमा अपडिकम्म तिको न करै देह नी सार।
त्याग च्यारूंइ आहार नां पाओवगमन मझार॥

२४. नियमा अप्पडिकम्मे। सेत्तं पाओवगमणे।
इदं च चतुर्विधाहारपरिहारनिष्पन्नमेव भवति।
(वृ०-प० १२०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. अथ भतपचखाण ते कवण ? तेहनां दोय प्रकार ।
निहारिम ग्रामादिक विषै अनिहारिम करै उजार ।।

२५. से किं तं भत्तपच्चक्खाणे ?
भत्तपच्चक्खाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—नीहारिमे य, अनीहारिमे य ।

वा०—निहरणते निकासवै करी नीपनो जे मरण ते निहारिम कहियै । ग्रामादिक नै विषे जे मरै तेहनै ए कलेवर नां निकासवा थकी, अनै जे अटवी नै विषै मरै ते अनिहारिम कहियै ।

वा०—निर्हरिण निर्वृत्तं यत्तन्निर्हारिमं प्रतिश्रये यो म्रियते तस्यैतत्, तत्कडेवरस्य निर्हारणात् । अनिर्हारिमं तु योऽटव्यां म्रियते इति । (वृ०-प० १२०)

२६. नियमा सप्पडिकम्म छै तिको तनु नीं सार करंत ।
भतपचखाण मरण तणो आख्यो ए विरतंत ।।

२६. नियमा सपडिकम्मे ।
सेत्तं भत्तपच्चक्खाणे ।

सोरठा

२७. अन्य सूत्र रै मांय, पंडित - मरणज त्रिविधे ।
पाओवगमन सुहाय, इंगित भतपचखाण फुन ।।

२८. इंगित - मरणज तेह, विशेष भतपचखाण नों ।
तिण कारण थी जेह, तृतिय भेद न कह्यो इहां ।।

२८. यच्चान्यत्रेह स्थाने इंगितमरणमभिधीयते तद्भक्तप्रत्याख्यानस्यैव विशेष इति नेह भेदेन दर्शितमिति ।
(वृ०-प० १२०)

२९. मुख्य थकी ए ख्यात, द्वि प्रकार पंडित-मरण ।
अणसण विण मुनि जात, मरै तिको न कह्यु इहां ।।

३०. सर्वानुभूति साध, सुनक्षत्र मुनिवर बलि ।
पाम्या पद आराध, अणसण विण पंडित-मरण ।।

३१. वली अन्य मुनिराय, संथारा विण जे मरै ।
ते पंडित - मरण सुहाय, तेहनों कथन इहां नथी ।।
(ज० स०)

३२. *ए द्विविध पंडित-मरणे करी मरतो जीव सनूर ।
अनंत नरक नां भव थकी करै आत्म नै दूर ।।

३२, ३३. इच्चेतेणं खंदया ! दुविहेणं पंडियमरणेणं मरमाणे जीवे अणंतेहिं नेरइयभवग्गहणेहिं अप्पाणं विसंजोएइ जाव वीईवयइ ।
सेत्तं मरमाणे हायइ-हायइ ।
सेत्तं पंडियमरणे ।

३३. जाव संसार अतिक्रमै ए मरण मरतो थको जीव ।
संसार घटावै ते आखियो ए पंडित-मरण कहीव ।।

३४. हे खंधक ! ए द्विविध करी, मरतो थको जीव जाण ।
वृद्धि करै संसार नी वले करै संसार नी हाण ।।

३४. इच्चेएणं खंदया ! दुविहेणं मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढइ वा, हायइ वा । (श० २।४९)

३५. खंधक सुण प्रतिबोधियो करि वंदणा नमस्कार ।
श्रमण भगवंत महावीर नैं एम कहै सुविचार ।।

३५. एत्थ णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते संबुद्धे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

३६. सुणवो वांछूं तुझ पै प्रभु जिन-भाषित धर्म जेह ।
अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंध करेह ।।

३६. इच्छामि णं भंते ! तुब्भं अंतिए केवलिपण्णत्तं धम्मं निसामित्तए ।
अहासुहं देवाणुप्पिया । मा पडिबंधं । (श० २।५०)

३७. श्रमण भगवंत महावीर जी खंधक नै तिणवार ।
महा मोटी परषद विषै धर्म कहै हितकार ।।

३७. तए णं समणे भगवं महावीरे खंदयस्स कच्चायणसगोत्तस्स, तीसे य महइमहालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ ।

लय—पंखी गुणरसियो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८. धर्म कथा भणवी इहां उववाई रै मांय।
एह तणो विस्तार छ तेम इहां कहिवाय ।।

३८. धम्मकहा भाणियव्वा। (श० २।५१)

३९. *देवै श्री जिन देशना, अमृतवाणी ऐन, सयाणा !
आर्य अनारज सांभली, चित मे पामें चैन, सयाणा !

गीतक-छंद

४०. चित मांहि चैन अत्यंत पामैं, शरद नव घन सारखो।
गभीर मधुर क्रोंच दुंदुभि, प्रवर रव स्वर पारखो ।।
४१. भाषा भली अर्धमागधी, फुन वाणि योजन गामिनी।
पणतीस गुण करि परवरी, भव्य सर्व नैं हित-कामिनी ।।

यतनी

४२. हितकार सर्व नैं होय, जिन वाण स्वरूपी जोय।
जिम कर्म थी जीव बंधावै, तिकै कारण प्रति ओलखावै ।।
४३. वलि जेह उपाय करेह, जीव कर्म थकी मूकावेह।
तसु कारण आप बतावै, भिन भिन करिनैं दर्शवै ।।
४४. एह जीव संसार रै मांय, जिम क्लेश दुःख अति पाय।
तिका सावज करणी असार, जिका ओलखावै जगतार ।।
४५. जिम सर्व दुःख नो अंत, केइ जीव करै मतिवंत।
जिका दूर किया मोह-जालै, चित आर्त्तध्यान थी टालै ।।
४६. जे आर्त्तध्यान थी नहिं निवर्त्तत, आर्त्त-अनुगत चित अति हुंत।
भव-सागर जेम भमंत, तेह कारण कहै भगवंत ।।
४७. जिम वैराग्य भावज पाया, राग-द्वेष नी लैर मिटाया।
तिकै कर्म डावडो उघाडै, झट कर्म आठूंइ झाडै ।।
४८. पंच महाव्रत साधु नां सार, वलि श्रावक नां व्रत बार।
ए द्विविध धर्म उदार, आराध्यां सुख गति सुखकार ।।

४२-४७. जह जीवा बज्झंती मुच्चंती जह य संकिलिस्संती।
जह दुक्खाणं अंतं करेंति केई अपडिबद्धा ।।
अट्टनियट्टियचित्ता जह जीवा दुक्खसागरमुवेंति।
जह वेरग्गमुवगया कम्मसमुग्गं विहाडेंति ।।
(वृ०-प० १२१)

४९. •इत्यादिक उपदेश दियो जिनजी जानी,
सरस संवेग विशेष परम पद नीं सानी।
नी सानी जी, उचरंग आनी, सुण हियै परिषदा हुलसानी,
ए तो जयवंता जिनराज प्रभू नीं वर वानी ।।

५०. ‡खंधक तव प्रभुजी कनै धर्म सुणी हियै धार।
हरष संतोष जावत् वली विकसित हृदय उदार ।।

५०. तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे जाव हियए।

*लय—तारा हो प्रत्यक्ष
•लय—धिन-धिन भिक्षु स्वाम
‡लय—पंखी गुणरसियो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५१. ढाल भली पैंतीसमी भिक्षु भारीमाल ऋषराय।
'जय-जश' संपति साहिबी आनंद तास पसाय।।

ढाल : ३६

दूहा

१. हिव खंधक ऊठी करी, वीर प्रते तिणवार।
दक्षिण करे प्रदक्षिणा, दै वच वदै उदार।।

२. निर्ग्रंथ-प्रवचन हे प्रभु! श्रध्या[1] म्हैं सुखकार।
प्रतीतिया म्है प्रीति करि, प्रत्यय वा सत्य सार।।

३. निर्ग्रंथ प्रवचन वलि रुच्या, हूं करसूं अंगीकार।
एवमेयं इमहीज ए, सामान्य थी सुविचार।।

४. तहमेयं तिमहिज ए, विशेष थी कहिवाय।
अवितह—ते सत्य ए, प्रवचन सूत्र सुहाय।।

५. असंदिद्ध संशय-रहित, हे प्रभु! ए तुझ वाय।
इच्छिय वांछूं पडिच्छियं—पामवुं वांछूं ताय।।

६. इच्छिय-पडिच्छियं तसु अर्थ ए युगपत् समकाल।
इच्छा वलि पामण तणी वांछा विषय निहाल।।

१. उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

२. सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं,
पत्तियामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं,
रोएमि णं भंते! निग्गंथं पावयणं,
प्रीतिं प्रत्ययं वा सत्यमिदमित्येवं रूपं तत्र करोमीत्यर्थः। (वृ०-प० १२१)

३. रोएमि णं भंते! निग्गंथं पावयणं,
अब्भुट्ठेमि णं भंते! निग्गंथं पावयणं।
एवमेयं भंते!
एवमेतन्नैर्ग्रन्थं प्रवचनं सामान्यतः। (वृ०-प० १२१)

४. तहमेयं भंते! अवितहमेयं भंते!
'तहमेयं' ति तथैव तद्विशेषतः 'अवितहमेयं' सत्यमेतदित्यर्थः। (वृ०-प० १२१)

५. असंदिद्धमेयं भंते! इच्छियमेयं भंते! पडिच्छियमेयं भंते!
'असंदिद्धमेयं' ति सन्देहवर्जितमेतत् 'इच्छियमेयं' ति इष्टमेतत् 'पडिच्छियमेयं ति प्रतीप्सितं प्राप्तुमिष्टम्। (वृ०-प० १२१)

६. इच्छिय-पडिच्छियमेयं भंते!
युगपदिच्छाप्रतीप्साविषयत्वात्। (वृ०-प० १२१)

---

१. भगवती २।५२ का पाठ है—

सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं
पत्तियामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं
रोएमि णं भंते! निग्गंथं पावयणं

व्याकरण की दृष्टि से ये वर्तमान काल के उत्तम पुरुष में एक वचन के रूप हैं। टीकाकार ने भी वर्तमान काल के आधार पर ही टीका की है। जयाचार्य ने अपनी जोड़ में यहां भूतकाल का प्रयोग किया है। मूल के साथ यह विसंगति-सी प्रतीत होती है, किन्तु व्याकरण-शास्त्र के अनुसार वर्तमान काल में आसन्नभूत का और आसन्नभूत में वर्तमान का प्रयोग असम्मत नहीं है। जयाचार्य ने यहां वर्तमान में आसन्नभूत का प्रयोग किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. जे तुम भाषी वारता, म्है धारी ओछाहि।
एवमेय इत्यादि वा, एकार्थे वृत्ति मांहि।।

७. से जहेयं तुब्भे वदह त्ति कट्टु।
'एवमेयं भंते !' इत्यादीनि पदानि यथायोगमेकार्थानि।
(वृ०-प० १२१)

८. इम कहि जिन वंदी करी, नमस्कार कर तंत।
जउ ईशाणे निज उपधि, त्रिदंड आदि तजंत।।

८. समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभायं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता तिदंडं च कुंडियं च जाव धाउरत्ताओ य एगंते एडेइ,

९. वीर समीपे आय नै, प्रदक्षिणा त्रिण वार।
नमस्कार वनणा करी, इम बोल्यो गुणधार।।

९. जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करेत्ता जाव नमंसित्ता एवं वयासी —
(श० २।५२)

*प्रभु ! अरज करूं छूं वीनती। (ध्रुपदं)

१०. प्रभु ! आलित्तेण अभिविधि करी, ए तो जल रह्या जीव-लोय।
प्रभु ! पलित्तेणं अतिहि जले, वलि आलित्त पलित्त जोय।।

१०. आलित्ते णं भंते ! लोए, पलित्ते णं भंते ! लोए, आलित्तपलित्ते णं भंते ! लोए।
'आलित्तेणं' ति अभिविधिना ज्वलितः 'लोए' त्ति जीवलोकः 'पलित्तेण' ति प्रकर्षेण ज्वलितः।

११. जरा अनै मरणे करी, जीव लोक जलै जग तांहि।
जिम दृष्टांत कोइ गाथापती, तिण रै अग्नि लागी घर मांहि।।

११, १२. जराए मरणेण य।
से जहानामए केई गाहावई अगारंसि झियायमाणंसि जे से तत्थ भंडे भवइ अप्पभारे मोल्लगरुए, तं गहाय आयाए एगंतमंतं अवक्कमइ।

१२. घर में भंड वस्तु हुवै, अल्प व्हानी तिका छै सार।
वस्तु बहुमोली ग्रही आतमा, जावै एकांत स्थान तिवार।।

१३. ए मुझ वस्तु काढ्यं छतै, पच्छा पुरा हियाए होय।
इहलोक मांहै होवै हित भणी, पेच्चा पाठ कह्यो नहिं कोय।।

१३. एस मे नित्थारिए समाणे पच्छा पुरा य हियाए।

१४. सुहाए ते सुख अर्थे हुवै, खमाए क्षम समर्थ काज।
निस्सेसाए कल्याण अर्थे हुवै, दारिद्र मुकायवूं साज।।

१४. सुहाए खमाए निस्सेयसाए।

१५. जिहां जावै त्यां आवणहारी हुसै, ते पिण इह भव आश्री जोय।
विवक्षित काल थी पच्छा-पुरा इह भव में सर्वदा होय।।

१५. आणुगामियत्ताए भविस्सइ।
'पच्छापुरा य' त्ति विवक्षितकालस्य पश्चात् पूर्वं च सर्वदैवेत्यर्थः। (वृ०-प० १२२)

१६. इण दृष्टांते हे देवानुप्रिया ! मुझ आतम तिको इक भंड।
इट्ठे ते इष्ट वल्लभ अछै, कंते अभिलाष जोग्य अखंड।।

१६. एवामेव देवाणुप्पिया ! मज्झ वि आया एगे भंडे इट्ठे कंते।

१७. सदा प्रेयविषयपणा थी वली, प्रिय छै मुझ आतम एह।
मनोज्ञ मनगमती भली, मणामे अति गमती कहेह।।

१७. पिए मणुण्णे मणामे

१८. थेज्जे—स्थैर्य-धर्म योग थी, तथा उवबाई नीं वृत्ति मांहि।
अस्थिर आतमा पिण मूढ़ जे स्थिर भाव जाणै छै तांहि।।

१८. थेज्जे
स्थैर्यधर्मयोगात् स्थैर्यः। (वृ०-प०१२२)

१९. वेस्सासिए कहितां वलि, विश्वास प्रयोजन तास।
बहुलपणै करी पर-तनु तिको, अविश्वास हेतु विमास।।

१९. वेस्सासिए
वैश्वासिको विश्वासप्रयोजनत्वात्। (वृ०-प० १२२)

२०. संमए तत्कृत कार्य ना, संमतपणा थी एह।
बहुवार बहुजन मान्य ह्वै, तिणै बहुमत कहिए तेह।।

२०. सम्मए बहुमए
संमतस्तत्कृतकार्याणां संमतत्वात् 'बहुमतः' बहुशो बहुभ्यो वाऽन्येभ्यः सकाशाद्बहुरिति वा मतो बहुमतः।
(वृ०-प० १२२)

*लय—मेरी तूंबी देवोनीं हो सेठजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. पोतै अनिष्ट कार्य कीधो तो पिण, पछै मत-सम्मत मानेह।
निज आतम प्रति वोसिरावै नहीं, अणुमए नों अर्थ छै एह॥

२२. भंड - करंडग सम वली, आभरण - करंडिया समान।
आदरवा जोग्य पणा थकी, मुझ आत्मा ए सुविधान॥

२३. 'मा णं सीयं'[1] रखे फर्शे शीत नैं, णं शब्द वाक्यालंकार।
अथवा मा नं आतम प्रतै फर्शे, शीत नों कष्ट अपार॥

२४. रखे उष्ण क्षुधा तिरखा वलि, रखे चोर सर्प फर्शत।
दंस मसक वातिक पैत्तिक श्लेष्मिक सान्निपातिक होवंत॥
२५. विविध रोग दीर्घकालिका जिका शीघ्रघाती रोग आतंक।
परिसह उपसर्ग हुवै रखै, इम पाली आतम अवंक॥

२६. भावे लाय थकी मुझ आतमा, वारै काढ्यै हतै परलोग।
हित सुख खम मोक्ष कल्याण है, फल सार्थ आसी सुप्रयोग॥
२७. तिण सूं वांछूं छूं देवानुप्रिया! स्वयमेव प्रव्रज्या देह।
रजोहरणादि वेस देवै करी, मुंड स्वयमेव लोच करेह॥

२८. सेहावियं पडिलेहणादिक क्रिया, स्वयमेव करावो ग्रहण।
सूत्रार्थ स्वयमेव सीखावियै, इम बोलै खंधक वयण॥

२९. स्वयमेव आचार सीखावियै, श्रुत ज्ञानादि विषय अनुष्ठान॥
काले भणवो इत्यादि सीखवो, गोचर-भिक्षा अटन रूप जान॥

३०. तथा विनय रूप जे धर्म नैं, विनयफल ते कर्म क्षय होय।
चरण पंच महाव्रत आदि दे, करण उत्तर गुण अवलोय॥

३१. जाया कहितां जात्रा संजम तणी, मात्रा तिण अर्थे लै आहार।
विनयादिक नें विषै वर्तवो, सुणवो वांछूं ते धर्म उदार॥

२१. अणुमए
'अनुमतः' अनु—विप्रियकरणस्य पश्चादपि मतोऽनुमतः। (वृ०-प० १२२)
२२. भंडकरंडगसमाणे
भाण्डकरण्डकम्—आभरणभाजन तत्समान आदेयत्वादिति। (वृ०-प० १२२)
२३. मा णं सीयं
माशब्दो निषेधार्थः णमिति वाक्यालङ्कारार्थः इह च स्पृशत्विति यथायोगं योजनीयम्, अथवा मा एनमात्मानमिति व्याख्येयं। (वृ०-प० १२२)
२४, २५. मा णं उण्हं, मा णं खुहा, मा णं पिवासा, मा णं चोरा, मा णं वाला, मा णं दंसा, मा णं मसया, मा णं वाइय-पित्तिय-सेंभिय-सन्निवाइय विविहा रोगायंका परीसहोवसग्गा फुसंतु त्ति कट्टु
रोगाः—कालसहा व्याधयः आतङ्कास्त एव सद्यो घातिनः। (वृ०-प० १२२)
२६. एस मे नित्थारिए समाणे परलोयस्स हियाए सुहाए खमाए नीसेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ।
२७. तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! सयमेव पव्वाविय, सयमेव मुंडाविय,
स्वयमेव भगवतैवेत्यर्थः प्रव्राजितं रजोहरणादिवेषदानेनात्मानमिति गम्यते, मुण्डितं शिरोलुञ्चनेन।
(वृ०-प० १२२)
२८. सयमेव सेहाविय, सयमेव सिक्खाविय,
सेहितं प्रत्युपेक्षणादिक्रियाकलापग्राहणतः, शिक्षितं सूत्रार्थग्राहणतः। (वृ०-प० १२२)
२९. सयमेव आयार-गोयरं
तथाऽऽचारः—श्रुतज्ञानादिविषयमनुष्ठानं कालाध्ययनादि, गोचरो—भिक्षाटनम्। (वृ०-प० १२२)
३०. विणय-वेणइय-चरण-करण
विनयः प्रतीतो वैनयिकं—तत्फलं कर्मक्षयादि, चरणं—व्रतादि, करणं—पिण्डविशुद्धयादि। (वृ०-प०१२२)
३१. जायामायावत्तियं धम्ममाइक्खियं। (अ० २।५२)
यात्रा—संयमयात्रा मात्रा—तदर्थमेवाहारमात्रा, ततश्च विनयादीनां वृत्तिः—वर्त्तनं यत्रासौ विनयवैनयिकचरणकरणयात्रामात्रावृत्तिकोऽतस्तं धर्मम्।
(वृ०-प० १२२)

१. 'मा णं शीतं स्पृशतु' इस पाठ की टीकाकार ने दो प्रकार से व्याख्या की है। दूसरी प्रकार से व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा है—मा एनं आत्मानं शीतं स्पृशतु। जयाचार्य ने दोनों व्याख्याओं के आधार पर जोड़ की रचना की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीर प्रभु खंधक प्रति सीखवै । (ध्रुपदं)

३२. जब वीर प्रभू खंधक भणी, स्वयमेव प्रव्रज्या दिद्ध ।
जाव धर्म कहै रूड़ी रीत सूं, प्रभु वचन वदै सुप्रसिद्ध ॥

३३. इम चालवूं हे देवानुप्रिया ! युग मात्र भूमि दृष्टि थाप ।
ते पिण जयणा सहित रूड़ी रीत सूं, इम कहै जिनेश्वर आप ॥

३४. निक्खमण प्रवेशादि रहित स्थानके, पेखी पूंजी रूड़ी रीत ।
संजम, आत्म, प्रवचन बाधा नहिं हुवै, इम ऊभो रहिवूं जयणा सहीत ॥

३५. पहिलां चक्षु थकी मही देखनैं, कर नैं संडासै कर ताय ।
सावधानपणैं प्रमार्जन करी, इम बेसवूं तुझ मुनिराय !

३६. इम जयणां सहीत बलि सूयवूं, इम भोगविवूं तज स्वाद ।
दोष धूम्र अंगारादि टालनै, इम बोलवूं मित मधुरादि ॥

३७. इम प्रमाद निद्रा छांडनै, विबुध्य-विबुध्य जागी-जागी ताय ।
प्राण भूत जीव सत्त्व नैं विषै, संजम करि यत्न करिवूं सवाय ॥

३८. एह अर्थ संजम तेहनैं विषै, किंचित् समय मात्र पिण ताय ।
प्रमाद न करवूं सर्वथा, इम भाषै श्री जिनराय ॥

धन्य-धन्य खंधक मोटो मुनि । (ध्रुपदं)

३९. खंधक कात्यायनगोत्री तदा, श्रमण भगवंत महावीर पाहि ।
इम पूर्वोक्त धर्म उपदेश नैं, सम्यक् पडिवजै आणी ओछाहि ॥

४०. वीर आज्ञा करीनैं चालतो, ऊभो रहै वेसै सूवै आण ।
बलि भोजन आज्ञा सूं करै, आज्ञा सूं बोलै निरवद्य वाण ॥

४१. तिम प्रमाद रूप निद्रा तजी, विबुध्य-विबुध्य जागी-जागी ताय ।
प्राण भूत जीव सत्त्व नैं विषै, संजम करि करै यत्न सवाय ॥

४२. ढाल भली छतीसमीं, खंधक लीधो चरण सुखदाय ।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, सुख-संपति 'जय-जश' पाय ॥

३२. तए णं समणे भगवं महावीरे खंदयं कच्चायणसगोत्तं सयमेव पव्वावेइ जाव धम्ममाइक्खइ—

३३. एवं देवाणुप्पिया ! गंतव्वं,
युगमात्रभून्यस्तदृष्टिनेत्यर्थः । (वृ०-प० १२२)

३४. एवं चिट्ठियव्वं,
निष्क्रमणप्रवेशादिवर्जिते स्थाने संयमात्मप्रवचनबाधापरिहारेणोर्ध्वस्थानेन स्थातव्यम् । (वृ०-प० १२२)

३५. एवं निसीइयव्वं,
उपवेष्टव्यं संदंशकभूमिप्रमार्जनादिन्यायेनेत्यर्थः ।
(वृ०-प० १२२)

३६. एवं तुयट्टियव्वं, एवं भुंजियव्वं, एवं भासियव्वं,
'एवं भुंजियव्वं' ति धूमांगारादिदोषवर्जनतः 'एवं भासियव्वं' ति मधुरादिविशेषणोपपन्नतयेति ।
(वृ०-प० १२२)

३७. एवं उट्ठाय-उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमियव्वं,
प्रमादनिद्राव्यपोहेन विबुद्ध्य-विबुद्ध्य प्राणादिषु विषये यः संयमो—रक्षा तेन संयंतव्यं—यतितव्यं ।
(वृ०-प० १२२)

३८. अस्सिं च णं अट्ठे णो किंचि वि पमाइयव्वं ।
(श० २।५३)

३९. तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स इमं एयारूवं धम्मियं उवएसं सम्मं संपडिवज्जइ—

४०. तमाणाए तह गच्छइ, तह चिट्ठइ, तह निसीयइ, तह तुयट्टइ, तह भुंजइ, तह भासइ,

४१. तह उट्ठाय-उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमेइ, अस्सिं च णं अट्ठे णो पमायइ ।
(श० २।५४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ३७

दूहा

१. कात्यायनगोत्री खंधक थयो तदा अणगार।
पंच-समित मन-वच-तनु-समित गुप्ति त्रिहुं सार॥

१. तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते अणगारे जाते—इरियासमिए भासासमिए एसणासमिए आयाणभंड-मत्तनिक्खेवणासमिए उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-पारिट्ठावणियासमिए मणसमिए वइसमिए काय-समिए मणगुत्ते वइगुत्ते कायगुत्ते

२. ईर्या—गमन विषै मुनि, सम् सम्यक् प्रकार।
इत कहितां जे प्रवर्त्त, ईर्या-समित उदार॥

२. ईर्यायां—गमने समितः, सम्यक्प्रवृत्तत्वरूपं हि समित-त्वम्। (वृ०-प० १२२)

३. भाषा-समित विचार नैं, वदै वचन सुखदाय।
बलि एषणा नै विषै, सम्यक् प्रवृत्ति ताय॥

४. आदान ग्रहण करी सहित, भंड मात्र ए मंत।
उपकरणज-परिच्छद भणी, निक्खेवणा मूकंत॥

५. तेह विषै शुध प्रवर्त्त, कहियै ए आदान।
भंडमत्तनिक्षेपणा , समिति चतुर्थी जान॥

४, ५. आदानेन—ग्रहणेन सह भाण्डमात्रायाः—उपकरण-परिच्छदस्य या निक्षेपणा—न्यासस्तस्यां समितो यः स तथा। (वृ०-प० १२२)

गीतक छंद

६. वड़ि नीत नैं लघु नीत फुन जे, खेल—बलखो मुख तणों।
संघाण श्लेषम नाक नुं, जल्ल—मैल ए तनु नो गिणों॥

६. 'खेल' त्ति कण्ठमुखश्लेष्मा सिंघानकं च—नासिका-श्लेष्मा। (वृ०-प० १२२)

७. उच्चार नैं पासवण फुन जे, खेल नैं संघाण ही।
जल्ल परिठवा में मुध प्रवृत्ति, समित तेह सुजाण ही॥

दूहा

८. शुद्ध मन जसुं प्रवर्त्त, ते मन-समित पिछान।
निपाप वचनज वागरै, वचन-समित ते जान॥

८. 'मणसमिए' त्ति संगतमनः प्रवृत्तिकः। (वृ०-प० १२२)

९. निपाप काया प्रवर्त्त, काय-समित कहिवाय।
अशुभज मन प्रति गोपवं, मनोगुप्त सुखदाय॥

९. 'मणगुत्ते' त्ति मनोनिरोधवान्। (वृ०-प० १२२)

१०. अशुभ वचन प्रति गोपवै, वचन-गुप्त विख्यात।
अशुभ काय प्रति गोपवै, काय-गुप्त अखियात॥

११. मनोगुप्तत्वादिक तणों, निगमन वच हिव आय।
गुत्ते कहितां गुप्त है, त्रिहुं गुप्त इह मांय॥

११. गुत्ते
मनोगुप्तत्वादीनां निगमनम्। (वृ०-प० १२२)

१२. एहिज विशेषण अर्थ हिव, आगल कहियै जेह।
गुत्तिदिए—इंद्रिय तणी, विषय गोपवी तेह॥

१२. गुत्तिदिए

१३. गुप्त बंभयारी बलि, गुप्तियुक्त ब्रह्म सार।
तेह प्रतै मुनि आचरै, खंधक गुण-भंडार॥

१३. गुत्तबंभयारी
गुप्तं —ब्रह्मगुप्तियुक्तं ब्रह्म चरति यः स तथा।
(वृ०-प० १२२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गीतक-छंद

१४. फुन संग नैं तजवै करी, मुनि पवर त्यागी छै सही।
रिषि लज्जु संयमवान् अथवा, रज्जु जेम अवक्र ही॥

१५. वर धर्म धन पामी करी, जग मांहि धन्य कहावही।
वच खमैं जे क्षमता करी, पिण न तु असमत्थ-भाव ही॥

दूहा

१६. जितेंद्रिय इंद्रिय तणां, विकार तणुं अभाव।
नहीं विकार इंद्रिय तणुं, ए उत्तम गुण साव॥

१७. पूर्वे गुप्तेंद्रिय कह्यूं, इंद्रिय-जन्य विकार।
गोपन मात्र थकी हुवै, ए अविकार विचार॥

गीतक-छंद

१८. रव सोहिए तसुं अर्थ त्रिण, शोभितो शोभावान ही।
अतिचार नैं तजवै करी, वा शोधितो गुणखान ही॥

१९. फुन सर्व प्राणी विषै मैत्री, वर सखर समभाव ही।
तसुं योग थी सौहृद कह्यूं, ए तृतिय अर्थ कहाव ही॥

२०. अनियाण—तेह निदान पुद्गल-सुख तणी वांछा नहीं।
फुन अल्प उत्सुक ते उतावलपणां रहित मुनी सही॥

२१. फुन चरण थी नहि बहिर्लेश्या—मनोवृत्ति मुनी तणी।
सुध श्रमणभावे रक्त वा अति रक्त चरणे रुचि घणी॥

२२. रव दंत ना बे अर्थ—क्रोधादिक दमन थी दंत ही।
अथ राग-द्वेष द्वयान्त-करण-प्रवृत्त कहियै द्वयन्त ही॥

२३. सुध एह वर निर्ग्रंथ प्रवचन, तेह प्रति आगल करी।
विचरै मुनी गुण-सागरू, संवेग अति चित आदरी॥

दूहा

२४. महावीर भगवन् श्रमण, कयंगला थी ताम।
छत्रपलास उद्यान थी निकलै निकली स्वाम॥

२५. बाहिर जनपद देश में, विहार करी विचरंत।
हिव खंधक अणगार ते, सीखै सूत्र-सिद्धंत॥

२६. तथारूप जे वीर नां, स्थविर समीपै सार।
सामायिक नैं आदि दे, भणिया अंग इग्यार॥

१४. चाई लज्जू

'चाइ' त्ति संगत्यागवान् 'लज्जु' त्ति संयमवान्, रज्जुरिव वा रज्जुः—अवक्रव्यवहारः। (वृ०-प० १२२)

१५. धन्ने खंतिखमे

धन्यो—धर्मधनलब्धेत्यर्थः, क्षान्त्या क्षमते न त्वसमर्थतया योऽसौ क्षान्तिक्षमः। (वृ०-प० १२२)

१६. जिइंदिए

'जितेन्द्रियः' इन्द्रियविकाराभावात्। (वृ०-प० १२२)

१७. यच्च प्रागुप्तेन्द्रिय इत्युक्तं तदिन्द्रियविकारगोपनमात्रेणापि स्यादिति विशेषः। (वृ०-प० १२२)

१८, १९. सोहिए

शोभितः शोभावान् शोधितो वा निराकृतातिचारत्वात् सौहृदं—मैत्री सर्वप्राणिषु तद्योगात्सौहृदो वा।
(वृ०-प० १२२, १२३)

२०. अनियाणे अप्पुस्सुए

'अणियाणं' त्ति प्रार्थनारहितः 'अप्पुस्सुए' त्ति 'अल्पौत्सुक्यः' त्वरारहितः। (वृ०-प० १२३)

२१. अबहिल्लेसे सुसामण्णरए

अविद्यमाना बहिः—संयमाद्बहिस्ताल्लेश्या—मनोवृत्तिर्यस्यासावबहिर्लेश्यः, शोभने श्रमणत्वे रतोऽतिशयेन वा श्रामण्ये रतः। (वृ०-प० १२३)

२२. दंते

दान्तः क्रोधादिदमनात्, द्वयन्तो वा रागद्वेषयोरन्तार्थं प्रवृत्तत्वात्। (वृ०-प० १२३)

२३. इणमेव निग्गंथं पावयणं पुरओ काउं विहरइ।
(श० २।५५)

२४-२६. तए णं समणे भगवं महावीरे कयंगलाओ नयरीओ छत्तपलासाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ। (श० २।५६)
तए णं से खंदए अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—सूत्रे कह्यु इग्यारे अंग भण्या, इहां कोइ कहै इग्यार अंग भण्या इण वचने करी खंधक चरित्र पहिलांहीज इग्यारै अंग नी निष्पत्ति संभावियै छै। पंचमा अंग रै अंतर्भूत ए खंधक चरित हुवै, इम किण प्रकार करिकै विरोध नथी? एहनों उत्तर कहै छै—श्रीमन् महावीर स्वामी ना तीर्थ नैं विषे ११ गणधर नी नव वाचना। सातमा-आठमा गणधर नी एक वाचना। नवमा-दशमा गणधर नी एक वाचना। अनैं ते सर्व वाचना नैं विषै खंधक चरित थकी पूर्व काल नैं विषै खंधक चरित नैं विषै कह्या जे अर्थ, तिके अर्थ अन्य मुनि ना नाम करिकै परूपियै। अनैं खंधक चरित्र नीं उत्पत्ति हुयां पछै सुधर्म स्वामी जंबू नामैं स्व शिष्य प्रतै अंगीकार करीनैं ए अधिकृत वाचना नैं विषै खंधक चरित नैं हीज आश्रयी नैं ते अर्थ नी परूपणा कीधी, इम विरोध नथी। अथवा और प्रकार करिकै हुवै ते पिण ज्ञानी जाणै।

'एक्कारसअंगाइं अहिज्जइ' त्ति इह कश्चिदाह—नन्वनेन स्कन्दकचरितात्प्रागेवैकादशांगनिष्पत्तिरवसीयते, पञ्चमांगान्तर्भूतं च स्कन्दकचरितमिदमुपलभ्यते इति कथं न विरोधः? उच्यते, श्रीमन्महावीरतीर्थे किल नव वाचनाः, तत्र च सर्ववाचनासु स्कन्दकचरितात्पूर्वकाले ये स्कन्दकचरिताभिधेया अर्थास्ते चरितान्तरद्वारेण प्रज्ञाप्यन्ते, स्कन्दकचरितोत्पत्तौ च सुधर्मस्वामिना जम्बूनामानं स्वशिष्यमंगीकृत्याधिकृतवाचनायामस्यां स्कन्दकचरितमेवाश्रित्य तदर्थप्ररूपणा कृतेति न विरोधः। (वृ०-प० १२४)

दूहा

२७. ग्यारा अंग भणी करी, ज्यां प्रभु छै त्यां आय।
नमस्कार वंदन करी, बोलै एहवी वाय॥

*धिन-धिन खंधक महामुनि जी कांइ, श्रमण-सिरोमण सार॥ध्रुपदं॥

२७. अहिज्जित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

२८. एक मास नीं भिक्खू पडिमा प्रतै जी, प्रभु तुम आज्ञा थी सार।
अंगीकार करीनैं विचरवो जी कांइ, हूं वंछूं इहवार जी कांइ॥

२८. इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए।

२९. अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं। (श० २।५७)
तए णं से खंदए अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे हट्ठे जाव नमंसित्ता मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। (श० २।५८)

२९. अहासुहं देवानुप्रिया! प्रतिबंध म करो लिगार।
वीर तणी आज्ञा हुवां, हरष सहित अंगीकार॥

३०. तए णं से खंदए अणगारे मासियं भिक्खुपडिमं अहासुत्तं 'अहासुत्तं' ति सामान्यसूत्रानतिक्रमेण। (वृ०-प० १२४)

३०. खंधक मुनि तिण अवसरे, भिक्षु-पडिमा मासीक।
सामान्यपणैं सूत्रे कही, अणतिक्रमवै सधीक॥

३१. एक दात लै आहार नीं, पाणी नीं इक दात।
आचार छै जिनकल्पी जिसो, दशाश्रुतखंध आख्यात॥

३२. अहाकप्पं
प्रतिमाकल्पानतिक्रमेण तत्कल्पवस्त्वनतिक्रमेण वा।
(वृ०-प० १२४)

३२. पडिमा नां कल्प आचार नैं, अणतिक्रमवै जाण।
तथा प्रतिमा-कल्प वस्तु प्रतै, अणतिक्रमवै पिछाण॥

३३. अहामग्गं
ज्ञानादिमोक्षमार्गानतिक्रमेण क्षायोपशमिकभावानतिक्रमेण वा। (वृ०-प० १२४)

३३. ज्ञानादि मोक्ष-मार्ग प्रतैं, अणअतिक्रमवै सार।
अथवा क्षयोपशम भाव नैं, अणअतिक्रमवै विचार॥

३४. अहातच्चं
यथातत्त्वं तत्त्वानतिक्रमेण मासिकी भिक्षुप्रतिमेति शब्दार्थानतिलंघनेनेत्यर्थः। (वृ०-प० १२४)

३४. तत्व अणअतिक्रमवै करी, तसु भिक्षु-पडिमा मासीक।
शब्दार्थ अणअतिक्रमवै, तत्त्व अर्थ तहतीक॥

*लय—म्हांरी सासूजी रे पांच पुत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३५. अहासम्मं[1] समभाव नैं, अण अतिक्रमवै जोय।
काय करि फर्शे मुनि, पिण मनोरथ मात्र न होय ॥

३६. पालेइ कहितां जाणवो जी, वार-वार उपयोग।
तेणे करीनै सहित छै, पालै सावधान सुप्रयोग ॥

३७. सोभेइ सोभावै पारणै, करै गुर्वादिक दत्त आहार।
तथा सोधै अतिचार-पंक नैं, प्रक्षालन थी सार ॥

३८. तीरेइ समाप्ति अर्थ में, तीर शब्द सुविचार।
पूरण छतै तसुं अवधि में, अल्प काल रहै सार ॥

३९. पूरण छतै पिण महामुनि, प्रतिमा नी अवधि विषेह।
तसुं कार्य परिमाण पूरण थकी, पाठ पूरेइ कहेह ॥

४०. किट्टेइ कहितां म्है कियो, पडिमा कार्य एह।
अथवा ए कोधो वली, इम पारणक-दिन कीर्त्तेह ॥

४१. अणुपालेइ परिपूरण करी, अनुमोदै मुनिराय।
श्री जिन नीं आज्ञा करी, आराधै सुखदाय ॥

४२. सम्यक् काया कर फरसणै, जाव आराधी एह।
जिहां श्रमण भगवंत महावीर छै, तिहां आवै गुणगेह ॥

४३. आवै श्रमण भगवंत पै, आवी नैं मुनिराय।
जाव पंचांग नमाय नैं, बोलै इह विध वाय ॥

४४. दोय मास नीं भिक्खू पडिमा प्रतै, तुम आज्ञा थी सार।
अंगीकार करी नैं विचरवो, हूं वंछूं गुणधार ॥

४५. अहासुहं देवाणुप्पिया ! प्रतिबंध म करो लिगार।
तिणहिज विध आराधनैं, पहुंचावी मुनि पार ॥

४६. इम त्रैमासिक चउमासिकी, पंच मास, छ मास नो सार।
सात मास नी सातमीं, इक-इक दात वधार ॥

४७. आठमीं सात अहोरात्रि नीं, नवमीं सप्त दिन-रात।
दशमीं सप्त अहोरात्रि नीं, ए तीनूं आख्यात ॥

सोरठा

४८. ए त्रिहुं प्रतिमा मांहि, उदक रहित एकांत।
उत्तानकादि ताहि, आसण विशेष जाणवूं ॥

---

१. अंगसुत्ताणि भाग २ श० २।५९ में अहासम्मं और सम्मं दो पाठ हैं और उसके पादटिप्पण में लिखा है—कुछ प्रतियों में सम्मं पाठ नहीं है। जयाचार्य ने ऐसी ही किसी प्रति के आधार पर जोड की रचना की, इसलिए सम्मं पाठ की जोड उपलब्ध नहीं होती।

३५. अहासम्मं सम्मं काएण फासेइ
यथासाम्यं समभावानतिक्रमेण 'काएणं' ति न मनोरथमात्रेण (वृ०-प० १२४)

३६. पालेइ
असकृदुपयोगेन प्रतिजागरणात्। (वृ०-प० १२४)

३७. सोभेइ
शोभयति पारणकदिने गुर्वादिदत्तशेषभोजनकरणात् शोधयति वाऽतिचारपङ्कक्षालनात्। (वृ०-प० १२४)

३८. तीरेइ
पूर्णेऽपि तदवधौ स्तोककालावस्थानात्। (वृ०-प० १२४)

३९. पूरेइ
पूर्णेऽपि तदवधौ तत्कृत्यपरिमाणपूरणात्।
(वृ०-प० १२४, १२५)

४०. किट्टेइ
कीर्त्तयति पारणकदिने इदं चेदं चैतस्याः कृत्यं तच्च मया कृतमित्येवं कीर्त्तनात्। (वृ०-प० १२५)

४१. अणुपालेइ आणाए आराहेइ,
'अणुपालेइ' त्ति तत्समाप्तौ तदनुमोदनात्।
(वृ०-प० १२५)

४२. सम्मं काएण फासेत्ता जाव आराहेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ,

४३. उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

४४. इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे दोमासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए।

४५. अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं। तं चेव।
(श० २।५९)

४६. एवं तेमासियं, चउम्मासियं, पंचमासियं, छम्मासियं, सत्तमासियं,

४७. पढमसत्तरातिंदियं, दोच्चसत्तरातिंदियं, तच्चसत्तरातिंदियं,

४८. एतास्तिस्रोऽपि चतुर्थभक्तेनापानकेनेति, उत्तानकादिस्थानकृतस्तु विशेषः। (वृ०-प० १२५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४९. *अहोरात्रि नीं इग्यारमीं, छठ - भक्त चउविहार।
एक रात्रि नीं बारमीं, अष्टम - भक्त उदार॥

५०. भिक्षु-पडिमा नीं विधि कही, दशाश्रुतखंध मझार।
जिम सूत्रे कही तिण विधे, जाव आराधी सार॥

सोरठा

५१. 'एकादश अंग - धार, खंधक प्रति इम आखियो।
भिक्षु - पडिमा बार, ते पिण तिण अंगीकरी॥

५२. फुन विशेष श्रुतवान, प्रतिमा ते अंगीकरै।
जघन्य थकी ते जान, नवम पूर्व तृतीय वस्थु॥

५३. उत्कृष्टो अवलोय, असंपूर्ण दश पूर्वधर।
प्रतिमा धारक होय, तो खंधक किम आदरी॥

५४. अन्य पुरुष अपेक्षाय, पूर्व श्रुत नो नियम ए।
जिन-आज्ञा कर ताय, धार्यां दोष नहीं इहां'॥
(ज० स०)

५५. *इम बारै भिक्षु-पडिमा वही, जिहां प्रभु छै तिहां आय।
नमस्कार वंदना करी, बोलै एहवी वाय॥

५६. गुणरत्न-संवच्छर तप भलो, तुम आज्ञा थी सार।
अंगीकार करीनै विचरवो, हूं वांछूं जगतार!

५७. अहासुहं देवानुप्रिया! म करो विलंब लिगार।
इम प्रभु दीधी आगन्या, खंधक नै तिणवार॥

५८. खंधक मुनि तिण अवसरे, जिन आज्ञा थयां सार।
जाव पंचांग नमाय नैं, गुणरत्न-संवच्छर धार।

वा०—गुणरत्न-संवच्छर नुं अर्थ कहै छै—गुण—निर्जरा-विशेष तेह नीं रचिवुं—करिवुं, तीजा भाग सहित संवच्छर करिकै जे तप नै विषै. ते गुण-रचन-संवच्छर कहियै। अथवा गुण हीज रत्न जेहनै विषे ते गुणरत्न, गुण-रत्न-संवच्छर जे तप नै विषै, ते गुण-रत्न संवच्छर तप, ए गुणरत्नसंवत्सर तप रूप कर्म नै स्वीकार करी नै विचरवुं वांछै हो।

५९. प्रथम मास एकांतरे, अंतर रहित उदार।
चउत्थ-चउत्थ सूत्रे कह्यूं, तप करिवै करि सार॥

४९. रातिंदियं, एगरातियं। (श० २।६०)
'राइंदिय' त्ति रात्रिन्दिवा, एकादशी अहोरात्रपरिमाणा, इयं च षष्ठभक्तेन, 'एगराइय' त्ति एकरात्रिकी, इयं चाष्टमेन भवतीति। (वृ०-प० १२५)

५०. तए णं से खंदए अणगारे एगरातियं भिक्खुपडिमं अहासुत्तं जाव

५५. आराहेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी- -

५६. इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए।

५७. अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं। (श० २।६१)

५८. तए णं से खंदए अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे हट्ठ-तुट्ठे जाव नमंसित्ता गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरति।

वा०—'गुणरयणसंवच्छरं' ति गुणानां—निर्जराविशेषाणां रचनं—करणं संवत्सरेण- -सत्रिभागवर्षेण यस्मिंस्तपसि तद् गुणरचनसंवत्सरं, गुणा एव वा रत्नानि यत्र स तथा गुणरत्नः संवत्सरो यत्र तद्गुणरत्नसंवत्सरं ---तपः। (वृ०-प० १२५)

५९. पढमं मासं चउत्थंचउत्थेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं

*लय—म्हांरी सासूजी रे पांच पुत्र।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

६०. चतुर्थ एह विचार, नाम कह्यु उपवास नुं।
इम छठ आदि उदार, बेलादिक नुं नाम छै ॥

६१. *दिवस उकडू आसणै, सूर्य सनमुख थाप।
आतापन-भूमी विषै, आतापन लै आप ॥

६२. रात्री वीरासण करै, वस्त्र रहित सुविचार।
छठ-छठ बीजा मास में, पूरववत् सुप्रकार ॥

दूहा

६३. सिंघासण नें ऊपरै, बैसी नें नर जेह।
बिहुं पग धरती नें विषै, राखै जिम बेसेह ॥

६४. पछै सिंघासण तल थकी, परहो काढै ताय।
तिमहिज ते बैठो रहै, वीरासण कहिवाय ॥

६५. *एवं तीजा मास में, अट्ठम-अट्ठम उदार।
चउथा मास विषै मुनि, दशम, दशम तप धार ॥

६६. पंचम मासे मुनि कियो, पंच, पंच तप पेख।
छट्ठे मासे महामुनि, षट्, षट् तप सुविशेख ॥

६७. सातमा मास विषै वली, सात, सात उपवास।
आठमा मास विषै वली, अठ, अठ तप गुण-राश ॥

६८. नवमैं मासै निर्मला, वर नव, नव उपवास।
दसमै मासै दीपता, दश, दश दिन तप तास ॥

६९. एकादशमा मास में, तप दिन ग्यार, इग्यार।
बारम मासै महामुनि, बार, बार तप सार ॥

७०. तेर तेरमा मास में, तेर, तेर उपवास।
चवदम मासै चूंप सूं, चवद, चवद दिन जास ॥

७१. पनरम मासै परवरा, पनर, पनर तप दिन्न।
सोल, सोल तप सोलमैं, अंतर-रहित सुजन्न ॥

७२. दिवस ऊकडू आसणै, रवि साहमी आताप।
रात्रि वीरासण मुनि रहै, वस्त्रे रहित सुव्याप ॥

७३. तप दिन मास तेरै सही, ऊपर दिन दश सात।
दिवस तिहोत्तर पारणा, मास सोलै इम थात ॥

६०. चतुर्थ भक्तं यावद्भक्तं त्यज्यते यत्र तच्चतुर्थम्, इयं चोपवासस्य संज्ञा, एवं षष्ठादिकमुपवासद्वयादेरिति।
(वृ०-प० १२५)

६१, ६२. दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे, रत्तिं वीरासणेणं अवाउडेण य।
दोच्चं मासं छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे, रत्तिं वीरासणेणं अवाउडेण य।

६३, ६४. 'वीरासणेणं' ति सिंहासनोपविष्टस्य भूम्यस्तपादस्यापनीतसिंहासनस्येव यदवस्थानं तद्वीरासनं।
(वृ०-प० १२५)

६५. एवं तच्चं मासं अट्ठमंअट्ठमेणं। चउत्थं मासं दसमंदसमेणं।

६६. पंचमं मासं बारसमंबारसमेणं। छट्ठं मासं चउद्दसमंचउद्दसमेणं।

६७. सत्तमं मासं सोलसमंसोलसमेणं। अट्ठमं मासं अट्ठारसमंअट्ठारसमेणं।

६८. नवमं मासं वीसइमंवीसइमेणं। दसमं मासं बावीसइमंबावीसइमेणं।

६९. एक्कारसमं मासं चउवीसइमंचउवीसइमेणं। बारसमं मासं छव्वीसइमंछव्वीसइमेणं।

७०. तेरसमं मासं अट्ठावीसइमंअट्ठावीसइमेणं चउद्दसमं मासं तिसइमंतिसइमेणं।

७१. पण्णरसमं मासं बत्तीसइमंबत्तीसइमेणं। सोलसमं मासं चोत्तीसइमंचोत्तीसइमेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं

७२. दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे, रत्तिं वीरासणेणं अवाउडेण य। (श० २।६२)

७३. इह च त्रयोदश मासाः सप्तदशदिनाधिकास्तपःकालः, त्रिसप्ततिश्च दिनानि पारणककाल इति।
(वृ०-प० १२५)

*लय—म्हांरी सासूजी रे पांच पुत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गीतक-छंद

७४. तप दिवस पनरै प्रथम मासै, बीस बीजै प्रवर ही।
चउवीस तप दिन मास तीजै, चतुर्थे चउवीस ही॥

७५. पणवीस पंचम मास तप, चउवीस छट्ठै मास ए।
इकवीस तप दिन मास सप्तम, चउवीस अष्टम तास ए॥

७६. नवमेंज मासै सप्तवीसज, दशम मासै तीस ही।
तेतीस तप दिन मास ग्यारम, बारमै चउवीस ही॥

७७. पट्वीस तेरम मास तप दिन, अष्टवीसज चवदमै।
फुन तीस तप दिन मास पनरम, दिन बतीसज सोलमै॥

७८. हिव पारणा दिन प्रथम मासै, पनर दिन पहिछाणियै।
बलि पारणा दश मास बीजै, आठ तीजै आणियै॥

७९. वर पारणा षट मास चउथै, पंच पारण पंचमै।
फुन पारणा चउ मास छट्ठै, जाणियै ए अनुक्रमै॥

८०. बलि मास सप्तम अष्टमै, नवमेज मास सुचीन ए।
बलि दशम ग्यारम मास में, छै पारणा तिण-तीन ए॥

८१. वर बारमै नै तेरमै, चवदमै पनरम मास ए।
सोलमै मासै पारणा जे, दोय-दोयज तास ए॥

८२. ए बात आखी वृत्ति मांहे, तेहथी दाखी इहां।
केइ आगला केइ पाछला दिन, मेल जाणै जो जिहां॥

८३. *खंधक महा मुनिवर तदा, गुणरत्न-संवच्छर धार।
सूत्रे कह्यो जिण विध करी, जाव आराधी सार॥

८४. जिहां प्रभु तिहां आयनैं, करि वंदणा नमस्कार।
चउत्थ छट्ठ अट्ठम घणां, दसम दुवालस सार॥

८५. मासद्ध मासखमण करी, तप विचित्र प्रकारे ताय।
विचरै आतम भावता, खंधक महामुनिराय॥

८६. ढाल भली सैंतीसमीं, भिक्षु भारीमाल ऋषिराय।
'जय-जश' संपति साहिबी, गण-वृद्धि हरष सवाय॥

७४-७७. पण्णरसवीसचउव्वीस चेव चउवीस पण्णवीसा य।
चउवीस एक्कवीसा चउवीसा सत्तवीसा य॥
तीसा तेत्तीसावि य चउव्वीस छवीस अट्ठवीसा य।
तीसा वत्तीसावि य सोलसमासेसु तवदिवसा॥
(वृ०-प० १२५)

७८-८१. पण्णरसदसट्ठछप्पंचचउरपंचसु य तिण्णि तिण्णित्ति।
पंचसु दो दो य तहा सोलसमासेसु पारणगा॥
(वृ०-प० १२५)

८३. तए णं से खंदए अणगारे गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं अहासुत्तं अहाकप्पं जाव आराहेत्ता

८४, ८५. जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता बहूहि चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं, मासद्धमासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। (श० २।६३)

ढाल : ३८

दूहा

१. तिण अवसर खंधक मुनि, ते तप करी उदार।
उदार वांछा-रहित वर, प्रधान तप करि सार॥

१. तए णं से खंदए अणगारे तेणं ओरालेणं 'ओरालेन' आशंसारहिततया प्रधानेन।(वृ०-प० १२५)

*लय—म्हारी सासूजी रै पांच पुत्र।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

२. फुन प्रधान तप जेह, अल्प दिवस नों पिण हुवै।
ते कारण थी एह, विपुल घणां दिन नु प्रवर ।।

२. विउलेणं
प्रधानं चाल्पमपि स्यादित्याह—'विपुलेन' विस्तीर्णेन बहुदिनत्वात्। (वृ०-प० १२५)

३. विस्तीर्ण तप जेह, गुरु-आज्ञा विण पिण हुवै।
तथा अप्रयत्नेह, इह कारण थी हिव कहै ।।

३. पयत्तेणं
विपुलं च गुरुभिरननुज्ञातमपि स्यादप्रयत्नकृतं वा स्यादत आह— (वृ०-प० १२५)

यतनी

४. पयत्तेणं पाठ पहिछान, प्रदत्त गुरु आणा थी जान।
अथवा प्रयत्नवान कहेह, प्रमाद-रहित करि जेह ।।

४. 'पयत्तेणं' ति प्रदत्तेनानुज्ञातेन गुरुभिः प्रयतेन वा प्रयत्नवता—प्रमादरहितेनेत्यर्थः। (वृ०-प० १२५)

सोरठा

५. एहवुं तप पिण ताय, सामान्य थी प्रतिपन हुवै।
तेहथी हिव कहिवाय, पग्गहिए बहुमान करि ।।

५. पग्गहिएणं
एवंविधमपि सामान्यतः प्रतिपन्नं स्यादित्याह—'प्रगृहीतेन' बहुमानप्रकर्षादाश्रितेन। (वृ०-प० १२५)

यतनी

६. कल्लाणेणं कहितां कल्याणेह, निरोगता कारण एह।
शिव मोक्ष नों हेतु वखाण, तिण सूं खंधक तप सिव जाण ।।

६. कल्लाणेणं सिवेणं
'कल्याणेन' नीरोगताकारणेन 'शिवेन' शिवहेतुना।
(वृ०-प० १२५)

दूहा

७. धर्म धन्य सोभन करी, कह्यु तास तप धन्य।
विघनहरण सोभन करी, मंगलीक तप मन्य ।।

७. धन्नेणं मंगल्लेणं
'धन्येन' धर्मधनसाधुना 'माङ्गल्येन' दुरितोपशमसाधुना।
(वृ०-प० १२५)

यतनी

८. सस्सिरीए कहितां सोभा सहीत, सुध पालवा थी सुप्रतीत।
जिम कीधो तप अंगीकार, तिम हिज ऊतार्यो पार ।।

८. सस्सिरीएणं
सम्यक्पालनात्सशोभेन। (वृ०-प० १२५)

दूहा

९. उदग्गेणं नो अर्थ ए, उन्नत पर्यवसान।
उत्तरोत्तर वर्द्धमान ए, छेहड़े उच्च पिछान ।।

९. उदग्गेणं
उन्नतपर्यवसानेन उत्तरोत्तरं वृद्धिमतेत्यर्थः।
(वृ०-प० १२५)

यतनी

१०. उदत्तेणं कहितां अवलोय, उन्नत चढ़तै भाव करि जोय।
तप कीधो मुनिवर ताय, तिण करि थई दुर्बल काय ।।

१०. उदत्तेणं
उन्नतभाववता। (वृ०-प० १२५)

दूहा

११. उत्तम ज्ञान-सहीत छै, तम-अज्ञान थकीज।
ऊर्ध्व कहंतां दूर ए, तथा उत्तम सेवीज ।।

११. उत्तमेणं
ऊर्ध्वं तमसः—अज्ञानाद्यत्तत्तथा तेन ज्ञानयुक्तेनेत्यर्थः।
(वृ०-प० १२५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यतनो

१२. उदारेणं कहितां अवधार, अति निस्पृहपणैं विचार।
सूत्र महाणुभागेणं जेह, अर्थ महा प्रभाव जणेह ।।

*महिमा थांरी मुलक में तपसी जी। (ध्रुपदं)

१३. एहवै तप करवै करी तपसीजो, खंधक मुनि नो तन्न हो, गुण गिरुआ।
सूको निरसपणां थकी तपसीजो, सुक्के पाठ कथन्न हो, गुण गिरुआ ।।

दूहा

१४. लुक्खे पाठ कह्यू वलि, लूखो भूख वशेन।
रूक्षीभूतपणा थकी, तनु थयो विकट तपेन ।।

१५. *निर्मस मांस-रहित तनु, अस्थी हाड कहाय।
चरम चामडियै करी, वींटचा तसु अधिकाय ।।

दूहा

१६. निर्मस अस्थि संबंधि करी, उठत बैसत सोय।
किडि-किडि शब्द विशेष प्रति भूत—प्राप्त जे होय ।।

१७. *कृश दुर्बल तनु मुनि तणो, नाडी व्याप्तज ताय।
निर्मस नाड्यां दीसती, इसो थयो मुनिराय ।।

दूहा

१८. चालै जीव-वले करी, पिण तनु-बल करि नांहि।
जीव-वले कर नैं बलि, ऊभो रहैज ताहि ।।

१९. *बोल्यां पछै किलामना, बोलत होय गिलान।
बोलण नी मन ऊपनां, खेद लहै गुणखान ।।

वा०—से जहानामए—से कहितां जिम, जहा शब्दे दृष्टांत नैं अर्थे, नाम शब्द संभावना नैं विषै, ए शब्द वाक्यालंकारे।

दूहा

२०. यथा दृष्टांतज—काष्ठ करि, भरी गाडली जाण।
पत्र पलाशादिक तणां, तिण करि भरी पिछाण ।।

२१. *पत्र युक्त तिल सुं वलि, माटी ना सुविशेख।
भंड भाजने करि भरी, जेह गाडली पेख ।।

*लय—शीतल जिन शिवदायका।

१२. उदारेणं महाणुभागेणं
'उदारेण' औदार्यवता निःस्पृहत्वातिरेकात् 'महानुभागेन' महाप्रभावेण। (वृ०-प० १२५)

१३. तवोकम्मेणं सुक्के
शुष्को नीरसशरीरत्वात्। (वृ०-प० १२५)

१४. लुक्खे
बुभुक्षावशेन रूक्षीभूतत्वात्। (वृ०-प० १२५)

१५. निम्मंसे अट्ठि-चम्मावणद्धे
अस्थीनि चर्मावनद्धानि यस्य सोऽस्थिचर्मावनद्धः। (वृ०-प० १२५)

१६. किडिकिडियाभूए
किटिकिटिका—निर्मांसास्थिसम्बन्ध्युपवेशनादिक्रियासमुत्थः शब्दविशेषस्तां भूतः—प्राप्तो यः स किटिकिटिकाभूतः। (वृ०-प० १२५, १२६)

१७. किसे धमणिसंतए जाव यावि होत्था।
'कृशः' दुर्बलः 'धमनीसन्ततो' नाडीव्याप्तो मांसक्षयेण दृश्यमाननाडीकत्वात्। (वृ०-प० १२६)

१८. जीवंजीवेणं गच्छइ, जीवंजीवेणं चिट्ठइ,
जीवबलेन गच्छति न शरीरबलेनेत्यर्थः। (वृ०-प० १२६)

१९. भासं भासित्ता वि गिलाइ, भासं भासमाणे गिलाइ,
भासं भासिस्सामीति गिलाइ।
'से जहानामए' 'से' त्ति यथार्थे यथेतिः दृष्टान्तार्थः नामेति सम्भावनायाम् 'इति' वाक्यालङ्कारे। (वृ०-प० १२६)

२०. से जहानामए कट्ठसगडिया इ वा, पत्तसगडिया इ वा,

२१. पत्त-तिल-भंडग- सगडिया इ वा,
पत्रयुक्ततिलानां भाण्डकानां च—मृन्मयभाजनानां भृता गन्त्रीत्यर्थः। (वृ०-प० १२६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूहा

२२. एरंड काष्ठ नीपनी, जेह गाडली होय।
अथवा एरंड काष्ठ करि, भरी गाडली सोय।।

२२. एरंडकट्ठसगडिया इ वा,

२३. एरंड काष्ठ तणो इहां, ग्रहण असारपणेह।
तास शकटिका गाडली, सूकी थकीज जेह।।

२४. *तेह गमन आदिक विषै, अतिसय करि अधिकाय।
शब्द सहित ह्वै गाडली, वाजै अधिक सवाय।।

२३, २४. एरण्डकाष्ठमयी एरण्डकाष्ठभृता वा शकटिका, एरण्डकाष्ठग्रहणं च तेषामसारत्वेन तच्छकटिकायाः शुष्कायाः सत्या अतिशयेन गमनादौ सशब्दत्वं स्यादिति। (वृ०-प० १२६)

दूहा

२५. वलि अंगारा कोयला, तेह थकी पहिछाण।
जेह शकटिका गाडली, भरी थकी फुन जाण।।

२५. इंगालसगडिया इ वा—

२६. *उष्ण विषै दीधां छतां, सूकां छतां अत्यंत।
शब्द सहित चालै तिका, शब्द सहित तिष्ठंत।।

२६. उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ,

दूहा

२७. काष्ठादिक आला तणा, एह विशेषण दोय।
यथा सभवै तिम इहां, संयोजवुं अवलोय।।

२७. 'उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी' त्ति विशेषणद्वयं काष्ठादीनामार्द्राणामेव संभवतीति यथासम्भवमायोज्यमिति। (वृ०-प० १२६)

२८. *इम खंधक अणगार पिण, शब्द सहित चालंत।
शब्द सहित ऊभो रहै, इम दुर्बल तनु हुंत।।

२८. एवामेव खंदए अणगारे ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ,

दूहा

२९. उपचित—पुष्ट तपे करी, मंस लोही करि जेह।
अपचित—क्षीण थयो तनु, महामुनी गुणगेह।।

२९. उवचिए तवेणं अवचिए मंस-सोणिएणं,

३०. *अग्नि भस्म रासे करी, ढांकी तिम तनु किद्ध।
तप लक्षण तेजे करी, ऋषि गुण करी समृद्ध।।

३०. हुयासणे विव भासरासिपडिच्छण्णे तवेणं, तेएणं, 'तवेणं तेएणं' ति तपोलक्षणेन तेजसा। (वृ०-प० १२६)

वा०—इहां ए अभिप्राय जिम राखे करी ढांकी अग्नि बाहिर तेज रहित हुवै, अंतरवर्त्ति दीपै, इम खंधक पिण सरीर नैं विषै मांस लोही क्षीणपणां थकी बाहिर सरीर तेज-रहित अनैं मांहै सुभ ध्यान तप रूप अग्नि घणुं-घणुं दीपै कह्युं, तेहिज अर्थ वलि कहै छै।

वा०—अयमभिप्रायः—यथा भस्मच्छन्नोऽग्निर्बहिर्वृत्त्या तेजोरहितोऽन्तर्वृत्त्या तु ज्वलति, एवं स्कन्दकोऽपि अपचितमांसशोणितत्वाद्बहिर्निस्तेजा अन्तस्तु शुभध्यानतपसा ज्वलतीति। उक्तमेवार्थमाह— (वृ०-प० १२६)

दूहा

३१. तप तेजे सोभा करी, अतीव-अतीव ताय।
शोभायमान घणुं-घणुं, रहै खंधक ऋषिराय।।

३१. तव-तेयसिरीए अतीव-अतीव उवसोभेमाणे-उवसोभेमाणे चिट्ठइ। (श० २।६४)

*लय—शीतल जिन शिवदायका।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*धिन मुनिराज खंधक सार।
ऋषिराज खंधक पाज भवदधि, लाज उभय उदार।(ध्रुपदं)

३२. तिण कालै नैं तिण समय रे, राजग्रह नगर सुजान।
तिहां श्री वीर समोसर्या रे, जाव परषद गई स्थान॥

३३. खंधक मुनिवर नां तदा, अन्य दिवस किण वार।
पुव्वरत्तावरत्तकाल समये, धर्म जागरणा करतां सार॥

३२. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नगरे समोसरणं जाव परिसा पडिगया। (श० २।६५)

३३. तए णं तस्स खंदयस्स अणगारस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स (श० २।६६)

वा०—'पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि' त्ति पूर्वरात्रश्च—रात्रेः पूर्वो भागः अपररात्रश्च—अपकृष्टा रात्रिः पश्चिमतद्भाग इत्यर्थः, तल्लक्षणो यः कालसमयः कालात्मकः समयः स तथा तत्र, अथवा पूर्वरात्रापररात्रकालसमय इत्यत्र रेफलोपात् 'पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि' त्ति स्याद्। (वृ०-प० १२७)

वा०—'पुव्वरत्तावररत्तकालसमयंसि—इहां इण पाठ ऊपर टीकाकार नो विवेचन मननीय छै—रात्रि नो पूर्व भाग ते पूर्वरात्र कहियै। वलि अपररात्र ते अपकृष्ट रात्रि, रात्रि नु पश्चिम भाग। पूर्व रात्रि अनैं पश्चिम रात्रि ए बिहुं लक्षण जे काल रूप समय तेहनैं कहियै पुव्वरत्तावरत्तकाल समय। एतलै मध्य रात्रि नैं विषे—पूर्व रात्रि नुं छेहलुं भाग अनैं पश्चिम रात्रि नुं पहिलुं भाग, ए बिहुं भाग रात्रि ना ते वेला अर्द्ध रात्रि हुई, ते अर्द्ध रात्रि नैं विषे।'

अथवा पूर्व रात्रि अपररात्रि काल समय इहां रेफ रा लोप थकी पुव्वरत्तावरत्त काल समयंसि इम पाठ हुई।

३४. *एतत् रूप आत्म विषै, चिंतित प्रार्थित पेख।
मन विषेज विचार एहवुं, उपनों ताम विशेख॥

३४. इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—

३५. इम ए उदार तपे करी, हूं जावत नाड़ी दीसंत।
चालूं जीव-बले करी, जीव-शक्ति तिष्ठंत॥

३५. एवं खलु अहं इमेणं एयारूवेणं ओरालेणं जाव धमणिसंतए जाए। जीवंजीवेणं गच्छामि, जीवंजीवेणं चिट्ठामि।

३६. यावत् पामूं किलामना, यावत् इण दृष्टंत।
शब्द सहित हूं चालतो, शब्द सहित तिष्ठंत॥

३६. जाव गिलामि जाव एवामेव अहं पि ससद्दं गच्छामि ससद्दं चिट्ठामि।

३७. ते इम पिण छै तिहां लग, म्हारै उठाण कम्म बल जान।
वीर्य नैं फुन पुरसकार, वलि पराक्रम मान॥

३७. तं अत्थि ता मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे।

सोरठा

३८. इतलै आज लगेह, उट्ठाणादि सर्वथा।
क्षीण थया नहि एह, शक्ति कहिण मात्रज रही॥

३८. उत्थानादि न सर्वथा क्षीणमिति भावः। (वृ०-प० १२७)

३९. *ते माटै जिहां लगै म्हारै छै, भासा मात्रज एह।
उठाण कम्म बल वीर्य शक्ति, पुरसकार पराक्रम जेह॥

३९. तं जावता मे अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे

४०. वलि जिहां लग माहरा, धर्माचारज धीर।
धर्म तणां उपदेशदाता, भगवंत श्री महावीर॥

४०. जाव य मे धम्मायरिए धम्मोवदेसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ,

४१. रागद्वेष जित्या जिणे, भविक शुभार्थी स्वाम।
तथा पुरसवर-गंध-हस्ती, विचरै छै अभिराम॥

४१. 'सुहत्थि' त्ति शुभार्थी भव्यान् प्रति सुहस्ती वा पुरुषवरगन्धहस्ती। (वृ०-प० १२७)

*लय—कपि रे प्रिया संदेशो कहै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

४२. अणसण करिवो मोय, फुन ते प्रभु साखे करी।
तिण सुं महाफल होय, इम अभिप्राय करी इहां ।।

४३. प्रभु निर्वाणे जोय, शोकरूप दुख नुं रखे।
भाजन हुवैज मोय, ए अभिप्रायज दूसरो ।।

४४. *त्यां लग मुज नैं श्रेय अछै, काल प्रभाते जास।
प्रकाश प्रभा रजनी विषै, प्रगट्यै गगन उजास ।।

४५. दल उत्पल पंकज तणां, कमल कहितां मृगनेन।
ए विहुं मृदु मिलिया तिकै, थया विकसित रवि उदयेन ।।

४६. रात्रि गयां प्रभात समयै, रवि ऊगै आकाश।
रक्त अशोक प्रकाश करिकै, फूल केसू नों जास ।।

४७. शुक मुख अर्द्ध गुंजा जिसो, लाल सूर्य सुप्रमोद।
कमलागर द्रहादिक नै विषै, करै नलिनिषंड नों बोध ।।

४८. सहस्र-किरण दिनकर इसो, तेज करी नैं जान।
जाज्वलमान सुदीपतो, उदय छतै असमान ।।

४९. श्रमण भगवंत महावीर नैं, करि वंदणा नमस्कार।
यावत् करि पर्युपासना, वीर आज्ञा ले सार ।।

५०. स्वयमेव पंच महाव्रत नैं, उचरी बीजी वार।
संत - सत्यां नैं खमाय नैं, तथारूप स्थविर संग सार ।।

५१. कीधा अभ्यास पडिलेहणादिक, आदि शब्द थी विख्यात।
प्रिय दृढ़धर्मी एहवा, कडाइ स्थविर संघात ।।

सोरठा

५२. पाठ मांहि कड हुंत, ते पद ना इक देश थी।
पद समुदाय दीसंत, एहवूं आख्यो वृत्ति में ।।

५३. कीधा अभ्यास सार, योग तिकै व्यापार ज्यां।
पडिलेहणादि उदार, ते कृत-योगा पद इसुं ।।

५४. *विपुल नामे पर्वत ऊपर, धीरै - धीरै चढ़ ताम।
पुढवी-शिलापट मेघ सरीखो, सजल - घटा सम श्याम ।।

४२, ४३. एतच्च भगवत्साक्षिकोऽनशनविधिर्महाफलो भवतीत्यभिप्रायेण भगवन्निर्वाणे शोकदुःखभाजनं मा भूवमहम् इत्यभिप्रायेण वा चिन्तितमनेनेति।
(वृ०-प० १२७)

४४. तावता मे मेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए, प्रकाशप्रभातायां रजन्यां। (वृ०-प० १२७)

४५. फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिलियम्मि
फुल्लं—विकसितं तच्च तदुत्पलं च फुल्लोत्पलं तच्च कमलश्च —हरिणविशेषः फुल्लोत्पलकमलौ तयोः कोमलम्—अकठोरमुन्मीलितं—दलानां नयनयोश्चोन्मीलनं यस्मिंस्तत्तथा तस्मिन्। (वृ०-प० १२७)

४६, ४७. अहपंडुरे पभाए, रत्तासोयप्पकासे, किंसुय-सुयमुहगंजद्धरागसरिसे, कमलागरसंडबोहए।

४८. उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते।

४९. समणं भगवं महावीरं वंदित्ता नमंसित्ता जाव पज्जुवासित्ता समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे।

५०. सयमेव पंच महव्वयाणि आरोवेत्ता, समणा य समणीओ य खामेत्ता तहारूवेहिं थेरेहिं।

५१. कडाईहिं सद्धिं
आदिशब्दात् प्रियधर्माणो दृढ़धर्माण इत्यादि गृह्यते।
(वृ०-प० १२७)

५२, ५३. 'कडाईहिं' ति, इह पदैकदेशात्पदसमुदायो दृश्यस्ततः कृतयोग्यादिभिरिति स्यात्, तत्र कृता योगाः—प्रत्युपेक्षणादिव्यापारा येषां संति ते कृतयोगिनः।
(वृ०-प० १२७)

५४. विपुलं पव्वयं सणियं-सणियं—दुरुहित्ता मेहघणसंनिगासं
विपुलं विपुलाभिधानं, 'मेघघणसंनिगासं' ति घनमेघसदृशमान्द्रजलदसमानं कालकमित्यर्थः।
(वृ०-प० १२७)

*लय—कपि रे प्रिया संदेशो कहै।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५५. अति रमणीकपणां थकी, सुर आगम ते ठाम।
आसन विशेष पृथ्वी-शिला, पिण काष्ठ-शिला नहिं ताम॥

५५. देवसन्निवातं पुढवीसिलापट्टयं
देवानां संनिपातः—समागमो रमणीयत्वाद् यत्र स तथा तं पुढविसिलापट्टयंति पृथिवीशिलारूपः पट्टकः—आसनविशेषः पृथिवीशिलापट्टकः, काष्ठशिलाऽपि शिला स्यादतस्तद्व्यवच्छेदाय पृथिवीग्रहणं। (वृ०-प० १२७)

५६. पृथ्वी-सिला पडिलेहिनैं, पाथरी डाभ संथार।
ते ऊपर बैसी करी, संलेखणा सुखकार॥

५६. पडिलेहित्ता, दब्भसंथारगं संथरित्ता दब्भसंथारोवगयस्स संलेहणाझूसणाझूसियस्स

५७. कृश कीजै कर्म-देह जिण करि, ते संलेखणा तप साह।
झूसणा सेवा तिण करी, सेवबुं आण ओछाह॥

५७. सलिख्यते---कृशीक्रियतेऽनयेति संलेखना---तपस्तस्या जोषणा—सेवा तया जुष्टः---सेवितो जूषितो वा क्षपितो यः स तथा। (वृ०-प० १२७)

५८. भात-पाणी पचखी करी, पाओवगमन संथार।
मरण प्रते अणवंछतो, श्रेय विचरबुं सार॥

५८. भत्तपाणपडियाइक्खियस्स पाओवगयस्स कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए

५९, ६०. त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव···जलंते जेणेव समणे भगवं महावीरे जाव पज्जुवासइ। (श० २।६६)

५९. एम करीनैं महामुनि, पूरव आख्युं तेम।
मन मांहै करी विचारणा, अणसण करवा प्रेम॥

६०. काले प्रकाश प्रभा रजनी विषै, जाव जलंते जास।
जिहां श्रमण भगवंत महावीर छै, जाव करै पर्युपास॥

६१. हे खंधक! इह विध कही, श्रमण तपस्वी ताय।
भगवंत श्री महावीरजी, कहै खंधक प्रति इम वाय॥

६१. खंदयाइ! समणे भगवं महावीरे खंदयं अणगारं एवं वयासी—

६२. ते निश्चै तुज खंधका, पुव्वरत्तावरत्त काल।
जाव धर्म चिंता प्रते, करतां छतां सुविशाल॥

६२. से नूणं तव खंदया! पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स

६३. इम एतत्रूप आतम विषै, जाव विचार उपन्न।
निश्चै हूं इम एहवै, उदार तप कर जन्न॥

६४. विस्तीर्ण तप तिमज यावत्, काल अवांछित जोय।
मुझ नै श्रेय छै विचरबुं, एम करीनैं सोय॥

६३, ६४. इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं इमेणं एयारूवेणं तवेणं ओरालेणं विउलेणं तं चेव जाव कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए त्ति कट्टु

६५. इम मन मांहि विचार नैं, काल प्रभा प्रगटेह।
जावत् जाज्वल्यमान सूर्य, उदय थयो गगनेह॥

६६. जिहां म्हारै समीप छै, तिहां आयो झट चाल।
ते निश्चै करि खंधका! समर्थ अर्थ विशाल?

६५, ६६. एवं संपेहेमि, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जेणेव ममं अंतिए तेणेव हव्वमागए। से नूणं खंदया! अट्ठे समट्ठे?

६७. खंधक भाखै हंता अत्थि, ताम प्रभुजी वदेह।
अहासुहं देवानुप्रिया! मा प्रतिबंध करेह॥

६७. हंता अत्थि
अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं। (श० २।६७)

६८. तिण अवसर खंधक ऋषी, वीर प्रभु नीं ताय।
आण थयां मुनि हरषियो, तुष्ट जाव विकसाय॥

६८. तए णं से खंदए अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए—समाणे हट्ठ-तुट्ठे जाव हियए।

६९. ऊठै, ऊठीनैं पछै, श्रमण भगवंत नैं सार।
दक्षिण कर थी प्रारंभ नैं, दे प्रदक्षिणा त्रिण वार॥

६९. उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ,

७०. जाव पंचांग नमाय नै, पोतेइज स्वयमेव।
पंच महाव्रत उच्चरै, उचरी नैं ततखेव॥

७०. जाव नमंसित्ता सयमेव पंच महव्वयाइं आरुहेइ, आरुहेत्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७१. संत - सत्या नै खमाय नैं, तथारूप स्थविर नैं साथ।
धीरै-धीरै गिरि विपुल ऊपरै, चढै मुनि सुविख्यात।।

७२. सजल मेघज सारखी, अमर समागम तेथ।
एहवी पृथ्वी-शिलपट्ट प्रते, पडिलेही धर चेत।।

७३. उच्चार - पासवण - भूमिका, पडिलेहै पडिलेही ताय।
डाभ सथारो संथरै, संथरी मुनिराय।।

७४. पूर्व दिशि नैं साहमो, बैस पर्यंकासन्न।
करतल जोड़ी नख दसूं, सिरसावत्तं जन्न।।

सोरठा

७५. पर्यंकासन पेख, पद्मासन कह्यु वृत्ति में।
केइ कहै सुविशेख, नमोत्थुणं गुणै ते आसणे।।

७६. सिरसावत्तं सोय, शिर करि कै अप्राप्त कर।
अथवा आवर्त्त जोय, ते शिर विषै कियो मुनि।।

७७. *अंजलि कर मस्तक विषै, बोल्यो एहवी वान।
नमोत्थुणं अरिहंत नैं, जाव पहुंता शिव-स्थान।।

७८. नमोत्थुणं श्रमण भगवंत नै, महावीर नै जोय।
जाव कामो शिव-स्थान नां, ए अरिहंत नै होय।।

७९. ते समवसरण बैठा अछै, भगवंत श्री वर्द्धमान।
ते प्रते हूं वंदणा करूं, इहां रह्यो छतो जान।।

८०. मुझनै इहां रह्या प्रते, समवसरण रह्या स्वाम।
देख रह्या छो इम करी, इम कहै वंदी सिर नाम।।

८१. पूर्वे पिण म्है प्रभु समीपे, सर्व हिंसा पचखाण।
जाव त्याग मिथ्यादंसण तणां, जावजीव लग जाण।।

८२. हिवड़ां पिण प्रभु वीर समीपे, सर्व हिंसा पचखाण।
जाव त्याग मिथ्यादर्शण तणा, जावजीव लग जाण।।

८३. सर्व अशन पाणी तणां, खादिम स्वादिम जाण।
चउविध पिण जे आ'र नां, मुझ जावजीव पचखाण।।

८४. जे पिण फुन ए तनु अछै, इष्ट कांत प्रिय पेख।
जाव शीतादिक रखे फर्शै, एम करी सुविशेख।।

८५. ए पिण तनु छै तेहनैं, चरम उस्सास करेह।
छेहले निश्वासे करी, वोसिरावूं छूं एह।।

७१. समणा य समणीओ य खामेइ, खामेत्ता तहारूवेहिं थेरेहिं कडाईहिं सद्धिं विपुलं पव्वयं सणियं-सणियं दुरुहइ, दुरुहित्ता

७२. मेहघणसन्निगासं देवसन्निवातं पुढविसिलापट्टयं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता

७३. उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता दब्भसंथारगं संथरइ, संथरित्ता

७४. पुरत्थाभिमुहे संपलियंकनिसण्णे करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं

७५. संपलियंकनिसण्णेत्ति पद्मासनोपविष्टः।
(वृ०-प० १२८)

७६. सिरसावत्तंति शिरसाऽप्राप्तम् अस्पृष्टम्, अथवा शिरसि आवर्तः····यस्यासौ। (वृ०-प० १२८)

७७. मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—नमोत्थु णं अरहंताणं भगवंताणं जाव सिद्धिगतिनामधेयं ठाणं संपत्ताणं।

७८. नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव सिद्धि-गतिनामधेयं ठाणं संपाविउकामस्स।

७९, ८०. वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए, पासउ मे भगवं तत्थगए इहगयं ति कट्टु वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

८१. पुव्वि पि मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए जाव मिच्छादंसण-सल्ले पच्चक्खाए जावज्जीवाए।

८२. इमाणि पि य णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए जाव मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि जावज्जीवाए।

८३. सव्वं असण-पाण-खाइम-साइमं—चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए।

८४. जं पि य इमं सरीरं इट्ठं कंतं पियं जाव मा णं फुसंतु त्ति कट्टु।

८५. एयं पि णं चरिमेहिं उस्सास-नीसासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु

---

*लय- -कपि रे प्रिया संदेशो कहै।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८६. एम करीनै संलेखणा, झूसणा सेवा तास।
तेह सहित थई करी, आणी मन हुल्लास॥

८७. भात पाणी पचखी करी, रही पाओवगमन संथार।
मरण प्रते अणवछतो, विचरै मुनि गुणधार॥

८८. खंधक मुनि तव वीर नां, तथारूप स्थविर नैं पास।
सामायिक आदे करी, अंग इग्यार अभ्यास॥

८९. वहु प्रतिपूर्ण वार वर्षे, पाली चारित्त पर्याय।
मास संलेखणाइं करी, आतम प्रतिसेवी ताय॥

९०. साठ भक्त नां अणसण करिकै, छेदी तजी चिहुं आर।
आलोइ फुन पडिक्कमी, निसल्ल थया गुणधार॥

८६. संलेहणाझूसणाझूसिए

८७. भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगए कालं अणवकंखमाणे विहरइ। (श० २।६८)

८८. तए णं से खंदए अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता,

८९. बहुपडिपुण्णाइं दुवालसवासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता,

९०. सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइय-पडिक्कंते।

सोरठा

९१. आलोवण अवधार, अतिचार कहै गुरु कनै।
न करूं दूजी वार, पडिक्कंते इम धारणा॥

९२. तथा आलोवण सार, गुरु आगै आखै तिका।
पडिक्कंते सुविचार, मिच्छामि दुक्कडं प्रमुख॥

९३. *समाधि पाम्यो महामुनि, मानसी - पीड रहीत।
काल अनुक्रम पामियो, पंडित - मरण पुनीत॥

९४. स्थविर भगवंत तिण अवसरे, जाण्यो खंधक काल।
परिनिर्वाण ते मरण नो, करै काउस्सग्ग न्हाल॥

९५. मरण हुवै छतै तनु तणों, परिठवूं पिण निर्वाण।
तेहिज प्रत्यय हेतु जेहनों, ते परिनिव्वाणवत्तियं जाण॥

९६. वस्त्र पात्र ग्रही करी, धीरै - धीरै मुनिराय।
विपुल गिरि थी ऊतरी, जिहां प्रभू तिहां आय॥

९७. श्रमण भगवंत महावीर नै, वांदै प्रणमै पाय।
वांदी पग प्रणमी करी, बोलै एहवी वाय॥

९८. इम शिष्य देवाणुप्पिया तणो, खंधक नामै मुनिराय।
भद्र उपशांत स्वभाव थी, स्वभावे प्रतनु कषाय॥

९९. कोमल निरहंकार-संपन्न, इंद्रिय जोप विकार।
भद्र विनीतज आपरी, आज्ञा लेइ उदार॥

९१. आलोचितं—गुरूणां निवेदितं यदतिचारजातं तत् प्रतिक्रान्तम्—अकरणविषयीकृतं येनासावालोचितप्रतिक्रान्तः। (वृ०-प० १२८)

९२. अथवाऽऽलोचितश्चासावालोचनादानात् प्रतिक्रान्तश्च मिथ्यादुष्कृतदानादालोचितप्रतिक्रान्तः।
(वृ०-प० १२८, १२९)

९३. समाहिपत्ते आणुपुव्वीए कालगए। (श० २।६९)

९४. तए णं ते थेरा भगवंतो खंदयं अणगारं कालगयं जाणित्ता परिनिव्वाणवत्तियं काउसग्गं करेंति, करेत्ता (श० २।७०)

९५. परिनिर्वाणं—मरणं तत्र यच्छरीरस्य परिष्ठापनं तदपि परिनिर्वाणमेव तदेव प्रत्ययो—हेतुर्यस्य स परिनिर्वाणप्रत्ययः। (वृ०-प० १२९)

९६. पत्त-चीवराणि गेण्हंति, गेण्हित्ता विपुलाओ पव्वयाओ सणियं-सणियं पच्चोरुहंति पच्चोरुहित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति,

९७. उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

९८, ९९. एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी खंदए नामं अणगारे पगइभद्दए पगइउवसंते पगइपयणुकोहमाण-मायालोभे मिउमद्दवसंपन्ने अल्लीणे विणीए। से णं देवाणुप्पिएहिं अब्भणुण्णाए समाणे

*लय—कपि रे प्रिया संदेशो कहै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१००. स्वयमेव पंच महाव्रत आरोपी, संत सत्यां नैं खमाय।
मुझ संघाते विपुल गिरि चढ़, तं चेव सर्व कहाय॥

१००. सयमेव पंच महव्वयाणि आरुहेत्ता, समणा य समणीओ य खामेत्ता, अम्हेहिं सद्धि विपुलं पव्वयं सणियं-सणियं दुरुहित्ता

१०१. जाव अनुक्रम काल कीधो, आचार पालण नां एह।
भंड-उपगरण मुनि तणां, देखाडै गुणगेह॥

१०१. जाव आणुपुव्वीए कालगए। इमे य से आयारभंडए। (श० २।७०)

१०२. हे भगवंत ! आमंत्र इह विध, वीर प्रभु नैं ताय।
नमस्कार वंदना करी, गौतम बोलै वाय॥

१०२. भंतेति ! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

१०३. इम शिष्य देवानुप्रिया तणों, खंधक नामै श्रमण।
काल मासे काल करिनें, किहां गयो ? किहां उप्पण्ण ?

१०३. एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी खंदए नामं अणगारे कालमासे कालं किच्चा कहिं गए ? कहिं उववण्णे ?

सोरठा

१०४. किहां गयो कहिवाय, तेह किसी गति नैं विषै।
किहां ऊपनो ताय, किसै देवलोकादिके ?

१०४. 'कहिंगए' त्ति कस्यां गतौ 'कहि उववण्णे' त्ति क्व देवलोकादौ ? (वृ०-प० १२६)

१०५. *हे गोतम ! आमंत्र इह विध, गोयम नैं कहै वीर।
इम निश्चै शिष्य मांहरो, खंधक मुनि गुणहीर॥

१०५. गोयमाइ ! समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वदासी—एवं खलु गोयमा ! मम अंतेवासी खंदए नामं अणगारे

१०६. प्रकृति-भद्रक जाव ते मुनि, म्है आज्ञा दीधे सार।
स्वयमेव पवर पंच महाव्रत, थापै थापी नै उदार॥

१०६. पगइभद्दए जाव से णं मए अब्भणुण्णाए समाणे सयमेव पंच महव्वयाइं आरुहेत्ता

१०७. तिमहिज सर्व विशेष रहितज, कहिवूं जेह वृतंत।
जाव आलोइ पडिक्कमी, समाधि पाम्यो संत॥

१०७. जाव आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते

१०८. काल मासै मरण अवसर, काल करीनै ताय।
अच्युत - कल्पै ऊपनों, खंधक महा मुनिराय॥

१०८. कालमासे कालं किच्चा अच्चुए कप्पे देवत्ताए उववण्णे। (श० २।७१)

१०९. तिहां कितायक सुर तणी, बावीस सागर जाण।
आऊखा नीं स्थिति कही, उत्कृष्टी पहिछाण॥

१०९. तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता

११०. तिहां खंधक पिण सुर तणी, पवर सागर बावीस।
आऊखा नीं स्थिति कही, सांभल गोयम शीस !

११०. तत्थ णं खंदयस्स वि देवस्स बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। (श० २।७२)

१११. ते प्रभु ! खंधक देवता, आयु-क्षय करि ताम।
फुन ते भव नुं क्षय करी, वलि स्थिति-क्षय करिस्वाम॥

१११. से णं भंते ! खंदए देवे ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं

सोरठा

११२. आयु कर्म छै जेह, तेह तणां जे दलिक प्रति।
निर्जरिवै करि एह, आयुष - क्षय आख्यो इहां॥

११२. 'आउक्खएणं' ति आयुष्ककर्मदलिकनिर्जरणेन। (वृ०-प० १२६)

११३. सुर संबंधी सोय, कर्म गत्यादिक जेहनैं।
निर्जरिवै करि जोय, भव-क्षय कहियै तेहनैं॥

११३. 'भवक्खएणं' ति देवभवनिबन्धनभूतकर्मणां गत्यादीनां निर्जरणेन। (वृ०-प० १२६)

११४. आयुः कर्म पिछाण, तेह तणी जे स्थिति प्रते।
भोगविवै करि जाण, स्थिति-क्षय कर खंधक अमर॥

११४. 'ठितिक्खएणं' ति आयुष्ककर्मणः स्थितेर्वेदनेन। (वृ०-प० १२६)

---

*लय—कवि रे प्रिया संदेशो कहै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११५. *अंतर - रहित तिहां थकी, चयं चइत्ता ताम।
किहां जास्यै किहां उपजस्यै ? खंधक सुरवर स्वाम !

११५. अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ?

सोरठा

११६. अणंतरं अवलोय, सुरभव तणुं जेह छै।
चयं शरीर सुजोय, तेह चइत्ता त्यज करी।।

११७. तथा चयं ते च्यवन, चइत्ता तेह प्रतै करी।
अंतर रहित गमन, करस्यै किहां जास्यै किहां ?

११६, ११७. 'अणंतरं' ति देवभवसम्बन्धिनं 'चयं' ति शरीरं 'चइत्त' त्ति त्यक्त्वा, अथवा 'चयं' ति च्यवं—च्यवनं 'चइत्त' त्ति च्युत्वा कृत्वाऽनन्तरं क्व गमिष्यति ?
(वृ०-प० १२६)

वा०—अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गमिहिति—अनंतरं कहितां ते देव भव तणुं, चयं कहितां शरीर, ते प्रतै चइत्ता कहितां छांडी नै, कहिं गमिहिति कहितां किहां जास्यै ?

अथवा चयं कहितां च्यवन, चइत्ता कहितां ते प्रतै चवी नै एतलै करी नै, अनंतर कहितां अंतर रहित, कहिं गमिहिति किहां जास्यै ? ए क्रिया पद थी संबंध करिवो।

+वीर प्रभु इम वदै गोयमजी ! (ध्रुपदं)

११८. जिन भाखै सुण गोयमा ! गोयमजी, महाविदेहखित्त मांय।
हो गुण गहिरा।
निष्ठित-अर्था सीझस्यै गोयमजी, बुझस्यै केवल पाय।
हो गुण गहिरा।।

११८, ११९. गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति बुज्झिहिति मुच्चिहिति परिणिव्वाहिति सव्वदुक्खाणं अंतं करेहिति। (श० २।७३)

११९. कर्म थकी मूकावस्यै, थास्यै शीतलीभूत।
अंत करिस्यै सर्व दुक्ख नों, खंधक मुनि शुभ सूत।।

१२०. आंक थयो इकवीसमों, ए अडतीसमीं ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' गण गुणमाल।।

।।द्वितीयशते प्रथमोद्देशकार्थः।।२।१।।

ढाल : ३९

दूहा

१. प्रथम उद्देशे मरण करि, वधै घटै संसार।
इह विध पूर्वे मरण प्रति, आख्यो कर विस्तार।।

१. 'केण वा मरणेण मरमाणे जीवे वड्ढइ' त्ति प्रागुक्तं।
(वृ०-प० १२६)

२. समुद्घात मरणांतिकी, करै तास मृत्यु होय।
समुद्घात करि रहित नैं, मरण हुवै फुन सोय।।

३. इह संबंध थकी इहां, द्वितिय उद्देशक मांय।
समुद्घात जे सप्त है, तास सरूप कहाय।।

२, ३. मरणं च मारणान्तिकसमुद्घातेन समवहतस्यान्यथा च भवतीति समुद्घातस्वरूपमिहोच्यते, इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदमादिसूत्रम्—
(वृ०-प० १२६)

*लय—कपि रे प्रिया संदेशो कहै

+लय—शीतल जिन शिवदायका साहिबजी !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*बुधिवंत ज्ञान नयन करि देखो। (ध्रुपदं)

४. किता प्रभु ! समुद्घात परूप्या ? श्री जिन भाखै सातो जी।
वेदना - समुद्घात धुर कहियै, पद समुद्घात विख्यातो जी॥

४. कइ णं भंते ! समुग्घाया पण्णत्ता ? गोयमा ! सत्त समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा—१. वेदणासमुग्घाए २. कसायसमुग्घाए ३. मारणंतियसमुग्घाए ४. वेउव्वियसमुग्घाए ५. तेजससमुग्घाए ६. आहारगसमुग्घाए ७. केवलियसमुग्घाए।

वा०—समुद्घात शब्द नों अर्थ कहै छै—सम—एकीभाव उत्—प्रबलता अनै घात—हनन अर्थात् एकमेक थवा पूर्वक प्रबलता बड़े हनन ते समुद्घात। तेहनुं सविस्तार विवेचन आ छै—जेम कोइ एक जीव वेदना-समुद्घात वालो होय तो ते वेदना नां अनुभव ज्ञान नीं साथे एकमेक थइ जाय छै, तेम थया सिवाय ते वेदना-समुद्घात वालो बनी शकतो नथी। एकमेक थयां पछी आत्मा साथे संबद्ध थयेला वेदनीय कर्म नां पुद्गलो ऊपर ते जीव प्रबलतापूर्वक प्रहार करै छै, मार—हनन चलावै छै, अर्थात् जे वेदनीय कर्म कालांतरे वेदवा योग्य छै तेहनैं उदीरणा-करण द्वारा खेंची उदय मां न्हाखी तेनैं आत्मा थी सर्वथा जुदं करी न्हाखै छै। आ प्रकार नुं स्वरूप वेदनी-समुद्घात वाला नुं के वेदनीय समुद्घात नुं होय छै। एज रीते बीजा समुद्घातो माटै पिण जाणवुं। तात्पर्य ए कै जे समुद्घात मां आतमा वर्ततो होय तेनां अनुभव-ज्ञान साथे एकमेक थइ ते संबंधी कर्मों नैं आत्मा थी सर्वथा जुदा करै छै, ए स्वरूप सामान्य समुद्घात नो हुवै।

वा०—'कइ णं भंते छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता ?' इत्यादि सूत्र वर्जी नैं 'समुग्घायपयति' पन्नवणा नों छत्तीसमो समुद्घात-पद जाणवो कहिवो, ते लेश थी देखाडै छै। कइ णं भंते समुग्घाया पणत्ता ? गोयमा ! सत्त समुग्घाया पणत्ता। तं जहा—वेयणासमुग्घाए इत्यादि इह संग्रहणी—

वेयण कसाय मरणे वेउव्विय तेयए य आहारे।
केवलिए चेव भवे जीवमणुस्साण सत्तेव॥

जीव-पद नैं विषै अनैं मनुष्य-पद नैं विषै सातूंइ समुद्घात कहिवी। नारकादिक नैं विषै यथायोग्य कहिवी। तिहां वेदना-समुद्घाते करी जीव वेदनीय कर्म-पुद्गल नों शातन करै—अलगा करै। कषाय समुद्घाते करी कषाय-पुद्गल नों शातन करै। मारणांतिक-समुद्घाते करी आयु-कर्म-पुद्गल नों शातन करै। वैक्रिय-समुद्घाते करी जीव प्रदेशां प्रतै शरीर थकी बाहिर काढी शरीर-विष्कंभ

वा०—समुद्घात शब्द नों अर्थ कहै छै—सम—एकीभाव उत्—प्रबलता अनैं घात—हनन अर्थात् एकमेक थवा पूर्वक प्रबलता बड़े हनन ते समुद्घात। तेहनुं सविस्तार विवेचन आ छै—जेम कोइ एक जीव वेदना-समुद्घात वालो होय तो ते वेदना नां अनुभव ज्ञान नीं साथे एकमेक थइ जाय छै, तेम थया सिवाय ते वेदना-समुद्घात वालो बनी शकतो नथी। एकमेक थयां पछी आत्मा साथे संबद्ध थयेला वेदनीय कर्म नां पुद्गलो ऊपर ते जीव प्रबलतापूर्वक प्रहार करै छै, मार—हनन चलावै छै, अर्थात् जे वेदनीय कर्म कालांतरे वेदवा योग्य छै तेहनैं उदीरणा-करण द्वारा खेंची उदय मां न्हाखी तेनैं आत्मा थी सर्वथा जुदं करी न्हाखै छै। आ प्रकार नुं स्वरूप वेदनी-समुद्घात वाला नुं के वेदनीय समुद्घात नुं होय छै। एज रीते बीजा समुद्घातो माटै पिण जाणवुं। तात्पर्य ए कै जे समुद्घात मां आतमा वर्ततो होय तेनां अनुभव-ज्ञान साथे एकमेक थइ ते संबंधी कर्मों नैं आत्मा थी सर्वथा जुदा करै छै, ए स्वरूप सामान्य समुद्घात नो हुवै।

स्थूल दृष्टिए जेम कोइ एक पक्षी होय अनैं तेहनी पांखो ऊपरे खूब धूल चढ़ी गइ होय, त्यारे ते पक्षी पोता नीं पांखो नैं पहोली करी तेहनां ऊपरली धूल खंखेरी न्हाखै छै। तेम आत्मा पोता ऊपर चढेल कर्म नां अणुओ नैं खंखेरवा आ समुद्घात नाम नी किरिया करै छै।

५. छद्मस्थ में समुद्घात कह्यो छै, पन्नवणा सूत्र मझारो।
तेह पाठ वर्जी नैं भणवो, पट-तीसम पद सारो[1]॥

५. छाउमत्थियसमुग्घायवज्जं समुग्घायपदं नेयव्वं।
(श० २।७४)

५. छाउमत्थियसमुग्घायवज्जं समुग्घायपदं नेयव्वं।
(श० २।७४)

जीवपदे मनुष्यपदे च सप्त वाच्याः, नारकादिषु तु यथायोगमित्यर्थः, तत्र वेदनासमुद्घातेन समुद्धत आत्मा वेदनीयकर्मपुद्गलानां शातं करोति, कषायसमुद्घातेन कषायपुद्गलानां मारणान्तिकसमुद्घातेनायुःकर्मपुद्गलानां वैकुर्विकसमुद्घातेन समुद्धतो जीवः प्रदेशान्

*लय—दया भगोती छै सुखदाई

१. अंगसुत्ताणि भाग २ श० २।७४ में "छाउमत्थियसमुग्घायवज्जं समुग्घायपदं नेयव्वं" इतना पाठ है। इस सूत्र के पाद-टिप्पण में अन्य आदर्शों में उपलब्ध पाठ को उद्धृत किया गया है, पर उसे मूल में नहीं रखा गया है। जयाचार्य ने उस पाठ के आधार पर जोड की है, इसलिए जोड के समानान्तर वह पाठान्तर उद्धृत किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाहल्य मात्र एतलै शरीर प्रमाणै चौड़ो अनैं जाडो अनैं आयाम ते लांबपणै संख्येय योजन दंड प्रतै रचै, रची नै यथास्थूल वैक्रिय शरीर नां पुद्गल पूर्वे ग्रह्या ते शातन करै, यथासूक्ष्म पुद्गल प्रतै ग्रहै यथोक्तम्—वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरइ निसिरित्ता अहाबायरे पोग्गले परिसाडेइ, अहासुहुमे पोग्गले आइयति ।

इम तेजस, आहारक समुद्घात पिण वखाणवा। केवली-समुद्घाते करि केवली वेदनीयादि कर्म पुद्गल प्रतै शातन करै। ए सर्व समुद्घात नैं विषै शरीर नैं विषै थकी जीव प्रदेशा नों निर्गम हुवै। सर्व नो मान अंतर्मुहूर्त्त नो छै। णवरं एतलो विशेष छै—केवली समुद्घात आठ समय प्रमाण छै।

ए समुद्घात एकेंद्रिय विकलेंद्रिय नैं पहिली तीन हुवै। वायुकाय नारकी नैं पहिली च्यार हुवै। देव अनैं पंचेंद्री तिर्यंच नैं पंच हुवै। मनुष्य सन्नी अनैं जीव पदे सात समुद्घात हुवै।

६. जावत् वेमानिक नैं भणवूं, कषाय जे समुद्घातो।
अल्पबहुत्व कही छत्तीसम पद, त्यां लग कहिवूं विख्यातो।।

७. हे प्रभु ! अणगार भावितआतमा, जे केवली समुद्घातो।
जावत् शाश्वत काल अनागत, शिव सुख रहै विख्यातो।।

८. समुद्घात पद इहां भलाव्यो, बीजा शतक नों एहो।
समुद्घात नों उद्देशो ए बीजो, दाख्यो जिन-वचने हो।।

द्वितीयशते द्वितीयोद्देशकार्थः ।।२।२।।

शरीराद्बहिर्निष्काश्य शरीरविष्कम्भबाहल्यमात्रमायामतश्च संख्येययोजनानि दण्डं निसृजति निसृज्य च यथास्थूलान् वैक्रियशरीरनामकर्मपुद्गलान् प्राग्बद्धान् शातयति यथासूक्ष्मांश्चादत्ते। (वृ०-प० १२९, १३०)

एवं तैजसाहारकसमुद्घातावपि व्याख्येयौ, केवलिसमुद्घातेन तु समुद्घतः केवली वेदनीयादिकर्मपुद्गलान् शातयतीति, एतेषु च सर्वेष्वपि समुद्घातेषु शरीराज्जीवप्रदेशनिर्गमोऽस्ति, सर्वे चैतेऽन्तर्मुहूर्त्तमानाः, नवरं केवलिकोऽष्टसामयिकः

एते चैकेन्द्रियविकलेन्द्रियाणामादितस्त्रयो, वायुनारकाणां चत्वारः, देवानां पञ्चेन्द्रियतिरश्चां च पञ्च, मनुष्याणां तु सप्तेति। (वृ०-प० १३०)

६. जाव—वेमाणियाणं। कसायसमुग्घाया, अप्पाबहुयं।

७. अणगारस्स णं भंते ! भाविअप्पणो केवलीसमुग्घाए जाव—सासतं अणागयद्धं चिट्ठति ? (श० २।७४)

सोरठा

९. द्वितीय उद्देश पिछाण, समुद्घात वर्णन कह्यूं।
ते समुद्घात में जाण, मारणांतिक समुद्घात छै।।

१०. ए समवहत जोय, केइ पृथ्वी में ऊपजै।
पृथ्वी नों अवलोय, उद्देशक तीजो हिवै।।

९, १०. द्वितीयोद्देशके समुद्घाताः प्ररूपिताः, तेषु च मारणान्तिकसमुद्घातः, तेन च समवहताः केचित्पृथिवीष्पद्यन्त इतीह पृथिव्यः प्रतिपाद्यन्ते। (वृ०-प० १३०)

११. *हे प्रभु ! केतली पृथ्वी परूपी, जिम जीवाभिगम मझारो।
नारक नों उद्देशक बीजो, जाणवूं ते अधिकारो।।

११. कइ णं भंते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ? गोयमा ! सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—रयणप्पभा सक्करप्पभा वालुयप्पभा पंकप्पभा धूमप्पभा तमप्पभा तमतमा। जीवाभिगमे नेरइयाणं जो बितिओ उद्देसो सो नेयव्वो।

१२. पुढवी[1] कहितां कितरी पृथिवी प्ररूपी ? प्रथम प्रश्न ए जाणो।
पृथवी अवगाही नैं नरकावासा, केतली दूर पिछाणो।।

१३. नरकावासा नों संस्थान वलि स्यूं ? नरक जाडपणुं जाणी ?
नरकावासा नो विष्कंभ परिधि, फुन वर्णादिक पहिछाणी।।

१२, १३. पुढवी ओगाहित्ता, निरया संठाणमेव बाहल्लं।
विक्खंभ परिक्खेवो, वण्णो गंधो य फासो य।।
(संगहणी-गाहा वृ०-प० १३०)

---

*लय—दया भगोती छै सुखदाई

१. कुछ आदर्शों में जीवाभिगम के नारक नामक द्वितीय उद्देशक की अर्थ-सूचक संग्रहगाथा दी है। जयाचार्य ने उसी आदर्श के आधार पर जोड़ की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—तत्र पुढवी कहितां पृथ्वी, केतली हे भगवान् ! पृथिवी कही ? गोतम ! सात पृथ्वी कही। ते केही ? रत्नप्रभा इत्यादि।

'ओगाहित्ता निरया' इति पृथ्वी अवगाही केतली दूर नरकावासा छै ? तिहां ए रत्नप्रभा पृथ्वी नैं विषै एक लाख असी हजार योजन नों पिंड छै। ते मांहै ऊपरि एक सहस्र योजन अवगाहीजै नीचै एक सहस्र योजन मूकी नैं ते बीच में त्रीस लाख नरकावासा छै। इम शर्करप्रभादिक पृथ्वी नैं विषै यथायोग कहिवा।

'संठाणमेव' त्ति नरक नो संठाण कहिवो। तिहां जे आवलिका-प्रविष्ट नरकावासा छै, ते वर्तुल त्र्यंस चउरंस छै, अनै आवलिका-बद्ध थी अनेरा नरकावासा पुष्पावकीर्ण बिखर्या फूल नैं आकारे, ते नाना प्रकार संस्थान छै।

बाहल्य ते नरक नों जाडपणो कहिवो। त्रिण सहस्र योजन छै, ते किम ? नीचै एक सहस्र जोजन घन छै, मध्य एक सहस्र योजन सुसिर छै, उपरि एक सहस्र योजन संकोच छै।

तथा विक्खंभ-परिक्खेवो—विष्कंभ अनै परिधि कहिवा। तिहां संख्यात योजन विस्तार वाला नों संख्यात योजन आयाम, विष्कंभ अनै परिधि छै। अनै बीजा असंख्यात योजन नां विस्तार वाला नों आयाम, विष्कंभ अनै परिधि असंख्यात योजन नीं जाणवी।

तथा वर्णादिक कहिवा। ते अत्यंत अनिष्ट इत्यादि घणो वक्तव्य छै। जावत् जिहां लगै इण उद्देशक नैं विषै अंत लेहड़ै जे कह्यु ते कहै छै—

१४. जाव सर्व प्राण स्यूं पूर्वे ऊपना ? तीस लक्ख नरकावासा मझारो।
हता अनेक वार ते ऊपना, अथवा अनंती वारो॥

१५. केई कहै अव्यवहार राशि थी, ऊपना ते अपेक्षायो।
अनेक वार तथा अनंत वार कह्यु, तत्व जाणै जिनरायो॥

वा०—असकृत् ते अनेक बार ऊपनो, ते अनेक बार तो बे आदि वेला पिण हुइं इण कारण थकी अत्यंत बहुलपणानां अंगीकार नैं अर्थ कहै छै। अदुवा अणंतखुत्तो अथवा अनंती बार ऊपनो इम वृत्तिकार कहै।

द्वितीयशते तृतीयोद्देशकार्थः ॥२।३॥

सोरठा

१६. तृतीय उद्देश विषेह, कह्या नरक नां नेरिया।
पंचेंद्रिय छै तेह, इंद्रिय - परूपणा हिवै॥

१७. *हे प्रभु ! इंद्रिय केती परूपी ?, जिन कहै इंद्रिय पंचो।
इंद्रियोद्देशक प्रथम जाणवूं, पनरम पद नों संचो॥

वा०—इहां सूत्र पुस्तक नैं विषे द्वार त्रिणहीज लिख्या छै अनै शेष ते अर्थ जाव शब्द करिकै जाणवा।

*लय—दया भगोती छै सुखदाई

वा०—कइ णं भंते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ? गोयमा ! सत्त, तं जहा—रयणप्पभेत्यादि।

'ओगाहित्ता निरय'त्ति पृथिवीमवगाह्य कियद्दूरे नरकाः ? इति वाच्यं, तत्रास्यां रत्नप्रभायामशीतिसहस्रोत्तरयोजनलक्षबाहल्यायामुपर्येकं योजनसहस्रमवगाह्याधोऽप्येकं वर्जयित्वा त्रिंशन्नरकलक्षाणि भवंति, एवं शर्कराप्रभादिषु यथायोगं वाच्यम्,

'संठाणमेव' त्ति नरकसंस्थानं वाच्यं, तत्र ये आवलिकाप्रविष्टास्ते वृत्तास्त्र्यस्राश्चतुरस्राश्च, इतरे तु नानासंस्थानाः,

'बाहल्ले'ति नरकाणां बाहल्यं वाच्यं, तच्च त्रीणि योजनसहस्राणि, कथम् ? अध एकं, मध्ये शुषिरमेकम्, उपरि च संकोच[1] एकमिति।

'विक्खंभपरिक्खेवो' त्ति एतौ वाच्यौ, तत्र संख्यातविस्तृतानां संख्यातयोजन आयामो विष्कम्भः परिक्षेपश्च, इतरेषां त्वन्यथेति।

तथा वर्णादयो वाच्याः, ते चात्यन्तमनिष्टा इत्यादि बहु वक्तव्यं यावदयमुद्देशकान्तः। (वृ०-प० १३०)

१४. जाव किं सव्वे पाणा उववण्णपुव्वा ?
हंता गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो।
(श० २।७५, ७६)

वा०—असकृद्—अनेकशः, इदं च वेलाद्वयादावपि स्यादतोऽत्यन्तबाहुल्यप्रतिपादनायाह—'अदुव' त्ति अथवा 'अणंतखुत्तो' त्ति 'अनन्तकृत्वः' अनन्तवारानिति।
(वृ०-प० १३०)

१६. तृतीयोद्देशके नारका उक्ताः, ते च पञ्चेन्द्रिया इतीन्द्रियप्ररूपणाय चतुर्थोद्देशकः। (वृ०-प० १३१)

१७. कइ णं भंते ! इंदिया पण्णत्ता ? गोयमा ! पंच इंदिया पण्णत्ता, पढमिल्लो इंदियउद्देसओ नेयव्वो,
(श० २।७७)

वा०—इह च सूत्रपुस्तकेषु द्वारत्रयमेव लिखितं, शेषास्तु तदर्था यावच्छब्देन सूचिताः। (वृ०-प० १३१)

१. उपरि संकुचिता शिखराकृत्या संकोचमुपगता योजनसहस्रम्। (जीवाभिगम-वृ०-प० १०६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. संस्थान इंद्रिय पंच तणों धुर, बाहल्य जाडापणुं जेहो।
पोहल चोडापणुं तास जाणवुं, जाव अलोक लगेहो'॥

वा०—तिहां संस्थान श्रोत्रादि इंद्रिय नुं कहिवुं। ते इम—श्रोतेंद्री नुं संस्थान कदंब वनस्पती नां फूल नैं आकारे। चक्षु इंद्रिय नु संस्थान मसूरक चन्द्र नैं आकारे छै—मसूर ते आसन विशेष (गाल मसूरीयो इति लोक भाषा) चन्द्र कहितां चन्द्रमा। अथवा मसूरचन्द्र ते धान्य विशेष, तेहना अर्द्ध एतलै मसूर नीं दाल नैं आकारै वृत्त—गोल। घ्राणेंद्रिय नुं संस्थान अतिमुक्तक चंद्र ते फूल-विशेष नो दल, तेहनैं आकारे अनै पन्नवणा ना अर्थ में कह्यु ते अतिमुक्तक वृक्ष नां फूल नैं तथा चन्द्रमा नैं संस्थानैं संस्थित छै। रसनेंद्रिय नुं संस्थान क्षुरप्र ते पाछणा नैं आकारे। स्पर्शनेंद्रिय नु संस्थान नाना आकार ते अनेक आकारे।

'बाहल्लं' कहितां इंद्रिय नु बाहल्य ते जाडपणुं कहिवुं। सर्व इंद्रिय नों अंगुल नों असंख्यातमो भाग बाहल्य छै।

जो स्पर्शन इंद्रिय नु जाडपणुं अंगुल नैं असंख्यातमें भाग छै, तो खड्ग, छूरी आदि करिकै हणियै छते शरीर नैं अंतर-मांहि किम वेदना भोगवै? तेहनों उत्तर—स्पर्श इंद्रिय नों विषय शीत आदि स्पर्श हुइं, जिम चक्षु इंद्रिय नों विषय रूप, घ्राणेंद्रिय नों विषय गंध, जिह्वा-इंद्रिय नों विषय रस, श्रोत्रेंद्रिय नों विषय शब्द अनैं छूरी आदि करि हणियै छते अंतः शरीर नैं विषै शीतादि स्पर्श नों अनुभव नहीं हुवै। केवल दुख रूप वेदन नों हीज अनुभव हुवै। अनैं ते दुख रूप वेदना नों अनुभव तो आत्मा समस्त शरीर करिके करै, केवल स्पर्शेंद्रिय थीज नहीं करै ज्वरादि वेदनवत्। ते माटै स्पर्शेंद्री नीं नान्ही अवगाहणा छै ते दोष नहीं।

अथ शीतल पाणी आदि पीधे छते अन्तर—मांहि शीत आदि स्पर्श पिण भोगवियै, ते कारण थकी किम स्पर्श इंद्रिय नु अंगुल नैं असंख्यातमे भाग जाडपणो मिलै? तेहनुं पिण उत्तर—इहां स्पर्श इंद्रिय सर्व शरीर नैं विषै पिण प्रदेश पर्यंतवर्त्ति छै। अभ्यंतर पिण शुशिर—पोलाड नैं ऊपरि स्पर्श इंद्रिय नां भाव थी दोष नथी।' (ज० स०)

'पोहत्त' कहितां पोहलपणों ते चोडापणों। इम श्रोत्र, चक्षु, घ्राण नों अंगुल नों असंख्यातमो भाग पोहलपणो। जिह्वेंद्रिय नु प्रत्येक अंगुल नु पोहलपणो। ते आत्मांगुले जाणव। स्पर्शन इंद्रिय शरीर प्रमाणैं पोहलपणुं। तेहनों मान उत्सेधांगुल करिकै।

'कइपएस' कहितां इंद्रिय केतले प्रदेशे नीपनी? पांचूइ इंद्रिय अनंत प्रदेशे करी नीपनी छै।

१. अंगसुत्ताणि भाग २ श० २।३७वें सूत्र के अन्त में 'पढमिल्लो इंदिय उद्देसो नेयव्वो जाव' कहकर अगले सूत्र में अलोक सम्बन्धित प्रश्न उपस्थित किया है। भगवती की जोड़ में इन्द्रियों के संस्थान आदि की सूचना देकर जाव शब्द के द्वारा अलोक सम्बन्धी प्रसंग की सूचना दी गई है। उसके बाद वार्तिका में पूर्व सूचित सब पहलुओं को विस्तार से बताकर 'अलोगे णं भंते किण्णा फुडे? कतिहिं वा काएहिं फुडे?' पाठ दिया है, किन्तु उस पर जोड़ नहीं लिखी गई है। इसलिए श० २।३८वें सूत्र की जोड उपलब्ध नहीं होती। श० २।३७ के पाद-टिप्पण में लिखा है कि 'अतोऽग्रे सर्वादर्शेषु संठाणं बाहल्लं पोहत्तं जाव अलोगे इति पाठोऽस्ति' जयाचार्य ने इसी पाठ के आधार पर जोड़ लिखकर यावत् शब्द से संग्राह्य शेष अर्थों को वार्त्तिका में निबद्ध किया है।

१८. संठाणं बाहल्लं पोहत्तं जाव अलोगे। (श० २।३७)

वा०—तत्र संस्थानं श्रोत्रादीन्द्रियाणां वाच्यं, तच्चेदं—श्रोत्रेन्द्रियं कदम्बपुष्पसंस्थितं, चक्षुरिन्द्रियं मसूरकचन्द्रसंस्थितं, मसूरकम्—आसनविशेषश्चन्द्रः—शशी, अथवा मसूरकचन्द्रो—धान्यविशेषदलं, घ्राणेन्द्रियमतिमुक्तकचन्द्रकसंस्थितम्, अतिमुक्तचन्द्रकः—पुष्पविशेषदलं, रसनेन्द्रियं क्षुरप्रसंस्थितं स्पर्शनेन्द्रियं नानाकारम्।

'बाहल्लं' ति इन्द्रियाणां बाहल्यं वाच्यं, तच्चेदं—सर्वाण्यंगुलासंख्येयभागबाहल्यानि।

'पोहत्तं' ति पृथुत्वं, तच्चेदं—श्रोत्रचक्षुर्घ्राणानामंगुलासंख्येयभागो, जिह्वेन्द्रियस्यांगुलपृथक्त्वं स्पर्शनेन्द्रियस्य च शरीरमानम्।

'कइपएसं' ति अनन्तप्रदेशनिष्पन्नानि पञ्चापि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'ओगाढे' कहितां केतला आगासत्थिकाय नां प्रदेश नै अवगाह्या छै ? पांचूंइ इंद्रियां आकाशास्तिकाय नां असंख्याता प्रदेश अवगाह्या छै।

'अप्पाबहु' कहितां पांचूं इंद्रियां आकाश-प्रदेश अवगाह्या तेहनी अल्प बहुत्व, ते इम---इहां वृत्तिकार कह्यु - सर्व थोड़ा आकाश प्रदेश अवगाही नैं चक्षु इंद्रिय रही। तेहथी श्रोत्रेन्द्रिय घ्राणेंद्रिय अनुक्रमे करिकै संख्यात गुणा अवगाह्या। तेहथी रसनेंद्रिय असंख्यात गुणा अवगाह्या। तेह थकी फर्शनेंद्रिय संख्यात गुणा अवगाह्या, इत्यादि जे पन्नवणा में कह्यु ते खरूं।

स्पृष्ट अर्थ प्रतै अनै प्रविष्ट अर्थ प्रतै ग्रहण करै, ते इम---श्रोत्रेंद्रिय फर्श्या शब्द प्रतै सुणैं पिण अफर्श्या न सुणैं। अनैं चक्षुरिंद्रिय फर्श्या रूप प्रतै न देखै, अणफर्श्या प्रतै देखै। अनैं घ्राणेंद्रिय फर्श्या गंध प्रतै सूंघै। रसनेंद्रिय फर्श्या रस प्रतै आस्वादै। स्पर्शन इंद्रिय फर्श्या स्पर्श प्रतै वेदै पिण अणफर्श्या प्रतै न सूंघै, न आस्वादै, न वेदै। इम श्रोत्रादिक विषै पैठा पुद्गल पिण कहिवा।

विषय कहितां इंद्रिय नीं विषय, इहां वृत्तिकार कह्यु---पांचूं इंद्रिय नी विषय जघन्य अंगुल नैं असंख्यातमे भाग कही। अनैं पन्नवणा १५ पदे केयक परत में पांचूं इंद्रिय नी विषय जघन्य आंगुल नैं असंख्यातमैं भाग कही, अनैं केयक परत में चक्षु इन्द्रिय नीं विषय जघन्य आंगुल नैं संख्यातमैं भाग कही, ते घणी परतां देख निर्णय कीजो[1]।

उत्कृष्ट श्री श्रोत्र नों बारै योजन विषय, चक्षु नों साधिक लक्ष योजन विषय, शेष सब इन्द्रियां नों नौ योजन।

'ओगाढे' त्ति असंख्येयप्रदेशावगाढानि।

'अप्पाबहु' त्ति सर्वस्तोकं चक्षुरवगाहतस्ततः श्रोत्रघ्राणेन्द्रिये क्रमेण संख्यातगुणे ततो रसनेन्द्रियं असंख्येयगुणं ततः स्पर्शनं संख्येयगुणम्।[1]

'पुट्ठपविट्ठ' त्ति श्रोत्रादीनि चक्षूरहितानि स्पृष्टमर्थं प्रविष्टं च गृह्णन्ति।

'विसय' त्ति सर्वेषां जघन्यतोऽङ्गुलस्यासंख्येयभागो विषयः।

उत्कर्षतस्तु श्रोत्रस्य द्वादश योजनानि, चक्षुषः सातिरेकं लक्षं, शेषाणां च नव योजनानीति।

१. भगवती की वृत्ति में पांचों इन्द्रियों के विषय जघन्यतः अंगुल का असंख्येय भाग बतलाया गया है। जयाचार्य ने इस विषय की समीक्षा करते हुए लिखा है---प्रज्ञापना (पद १५) के कुछ आदर्शों में भी पांचों इन्द्रियों का विषय जघन्यतः अंगुल का असंख्येय भाग बतलाया गया है, किन्तु इसका निर्णय अनेक प्रतियां देखकर किया जाए। जयाचार्य द्वारा प्रदत्त इस सूचना के आधार पर यह पाठ समीक्षणीय है। हमने प्रज्ञापना के पाठ-शोधन में जिन आदर्शों का प्रयोग किया, उन सब में चक्षु का जघन्य विषय अंगुल का संख्येय भाग और शेष इन्द्रियों का असंख्येय भाग उपलब्ध है---"चक्खिंदियस्स णं भंते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ? गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जति भागओ।" मुनि पुण्यविजयजी ने भी यही पाठ स्वीकार किया है। उन्हें कुछ आदर्शों में 'असंखेज्जति' पाठ भी मिला है। यह सम्यक् नहीं है। इस टिप्पणी के साथ वह पाद-टिप्पणी में उद्धृत है। आवश्यक निर्युक्ति के विवरण में मलयगिरि ने भी प्रज्ञापना के पाठ का अनुसरण किया है---

चक्षुरिन्द्रियमपि जघन्यतोऽङ्गुलसंख्येयभागमात्रावस्थितं पश्यति
(आवश्यक-निर्युक्ति पत्र २९)

उन्होंने अपने प्रतिपाद्य की पुष्टि में विशेषावश्यक भाष्य को भी उद्धृत किया है---

अवरमसंखेज्जंगुलभागातो नयणवज्जाणं ॥
संखेज्जइभागातो नयणस्स मणस्स न विसयपरिमाणं।
पोग्गलमित्तनिबंधाभावातो केवलस्सेव ॥
(विशेषावश्यक भाष्य ३४९, ३५०)

इनके आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि भगवती की वृत्ति में पांचों इन्द्रियों का जघन्य विषय अंगुल का असंख्येय भाग बतलाया गया है, वह सम्मत नहीं है।

१. भगवती की वृत्ति का मुद्रित पाठ शुद्ध प्रतीत नहीं होता। जयाचार्य ने वृत्ति के पाठ को प्रामाणिक बताया है और उसकी पुष्टि प्रज्ञापना के (५१।१३) पाठ से की है।
जयाचार्य ने भगवती वृत्ति के जिस पाठ का अनुवाद किया है, प्रज्ञापना में उसका संवादी पाठ मिलता है। इससे सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं कि मुद्रित पाठ शुद्ध नहीं है। प्रस्तुत पाठ इस प्रकार होना चाहिए---
सर्वस्तोकं चक्षुरवगाहतस्ततः श्रोत्रघ्राणेन्द्रिये क्रमेण संख्यातगुणे ततो रसनेन्द्रियं असंख्येयगुणं ततः स्पर्शनं संख्येयगुणम्।
हमने वृत्ति का यही पाठ अनुवाद के सन्दर्भ में उद्धृत किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इहां पन्नवणा नां अर्थ में कह्यो ते लिखियै छै—इहां कोइ कहै जे आगमांतरे चक्षु विषय घणों दीसै छै। जे भणी पुष्करार्द्ध द्वीप नां मानुषोत्तर समीपवर्ती मनुष्य उत्कृष्ट दिवसइं एकवीस लाख चउत्तीस हजार पांच सौ सैंतीस प्रमाणांगुले निष्पन्न योजन थकी सूर्य ऊगतो आथमतो देखै छै। ते माटे इहां साधिक लक्ष योजन नों चक्षु विषय कह्यो ते किम घटै ? तत्रोत्तरं—एह सूर्य अतिप्रकाश्य थाइं ते माटै अधिक विषय दीसै छै, पिण अप्रकाश्य वस्तु ते लक्ष योजन उपरांत न दीसै। इहां अप्रकाश्य वस्तु आश्रयी नै विषय कह्यो छै। अनै प्रकाश्य वस्तु नों विषय तो अधिक पिण होइ तेहनों दोष नहीं। इहां एह इंद्रिय विषय प्रमाण आत्मांगुले जाणवुं, पिण उत्सेधांगुले न कहिवुं। इहां कोइ कहै छै जे जो शरीरप्रमाण उत्सेधांगुल कह्युं छै तो शरीर प्रतिबद्ध जे इंद्रिय तेहनों विषय उत्सेधांगुले ज कहीइं, पिण आत्मांगुलै न कहिइं ? तत्रोत्तरं—शरीर जे उत्सेधांगुले कह्या छै पिण इंद्रिय-विषय न जाणवो। जो उत्सेधांगुलै इंद्रिय-विषय कहीइं तो पांच सौ धनुष ना मनुष्य नै विषय व्यवहार न पोंहचै, यथा जे भरत चक्रवर्ती नूं आत्मांगुल ते प्रमाणांगुल कह्युं। ते प्रमाणांगुल ए कह्युं, ते प्रमाणांगुल एक सहस्र उत्सेधांगुल थाइ। तिहां भरत नीं अयोध्या नगरी तथा स्कंधावार ते आत्मांगुलै बार योजन प्रमाण कह्या ते उत्सेधांगुले तो अनेक सहस्र गमै योजन थाइ। तिहां विजय ढक्का भेरी प्रमुख नों शब्द सर्व नैइं किम संभलाइ ? अनै ते शब्द तो समग्र नगर तथा समग्र स्कंधावार व्यापी सिद्धांत कह्युं छै, ते व्यवहार न पोंहचै ते माटै इहां इंद्रिय नों विषय ते आत्मांगुलज जाणवो।

'अणगारे' कहितां हे भगवंत ! भावितात्म अणगार मारणांतिक समुद्घात समवहत नां जे छेहला शैलेशी काल नां अंत्य समय नां जे निर्जर्या पुद्गल अति सूक्ष्म ते पुद्गल सर्व लोक प्रतै अवगाही नै व्यापी नै रह्या छै। छद्मस्थ—केवलज्ञान-रहित तथा विशिष्ट अवधि ज्ञानादि पिण रहित ते। हे भगवन् ! ते निर्जर्या पुद्गल नुं अन्यत्व परस्पर भिन्नपणुं अर्थात् ए पुद्गल एहना अनै ए पुद्गल अनैरा नां इम जाणै ? देखै ? हे गोतम ! ए अर्थ समर्थ नहीं। इहां मरण नैं अंत हुवै ते माटै मारणांतिक कही, पिण ए केवली समुद्घात जाणवी। केवली नैं मारणांतिक समुद्घात न हुवै, मारणांतिक समुद्घात छद्मस्थ नैं ईज हुवै ते माटे।

'अणगारे' त्ति अनगारस्य समुद्घातगतस्य ये निर्जरापुद्गलास्तान्न छद्मस्थो मनुष्यः पश्यतीति।

आहारे कहितां ते चरम निर्जर्या पुद्गल प्रतै नरकादिक न जाणै न देखै अनै आहरै तो छै, इत्यादि घणों विस्तार छै।

'आहारे' त्ति निर्जरापुद्गलान्नारकादयो न जानन्ति न पश्यन्ति आहारयन्ति चेत्येवमादि बहु वाच्यम्।

हिवै केतला लगै ए उद्देशो कहिवो ते कहै छै—जाव अलोको कहितां यावत् अलोक सूत्र नों अंत ते इम—अलोगेणं भंते किण्णा फुडे कइहिं काएहिं फुडे ? गोयमा ! नो धम्मत्थिकाएणं फुडे जाव नो आगासत्थिकाएणं फुडे आगासत्थिकायस्स देसेणं फुडे, आगासत्थिकायस्स पएसेहिं फुडे, नो पुढविकाइएणं फुडे जाव नो अद्धा समएणं फुडे। एगे अजीवदव्वदेसे अगुरुलहुए अणंतेहिं अगुरुलहुयगुणेहिं संजुत्ते सव्वागासे अणंतभागूणेति।

अथ किमन्तोऽयमुद्देशकः ? इत्याह—'यावदलोकः' अलोकसूत्रान्तः, तच्चेदम्—

अलोक छै तिको धर्मास्तिकायादि अलोक में नहीं, ते माटै। जे अलोकांत नैं लोकांत फर्शै छै ते फर्शवूं इहां न लेखव्यूं, इहां फर्शवूं नाम व्याप्तपणां नों छै। जे अलोक धर्मास्तिकायादिके करी व्याप्त नथी ते माटै इहां स्पृष्ट नाम व्याप्तपणां नो छै। अनै आकाशास्तिकाय काय नां देश प्रदेश करी स्पृष्ट कहितां व्याप्त छै, ते आकाशास्तिकाय नां देश प्रदेश अलोक नैं विषै छै ते माटै। अनै एक अजीव द्रव्य नों देश ते आकाशास्तिकाय द्रव्य नां देशपणां थकी ते अलोक नैं स्पृष्ट-व्याप्त छै।

नालोको धर्मास्तिकायादिना पृथिव्यादिकायैः समयेन च स्पृष्टो—व्याप्तः, तेषां तत्रासत्त्वात्, आकाशास्तिकायदेशादिभिश्च स्पृष्टः, तेषां तत्र सत्त्वात्, एकश्चासावजीवद्रव्यदेशः, आकाशद्रव्यदेशत्वात्तस्येति। (वृ०-प० १३१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. *संठाण बाहल्य पृथक् पोहलपणूं, जाव किण करि फर्श्यो अलोगो।
अर्थ ए दूजा शतक नों चउथो इंद्रियोद्देसक सुयोगो॥

॥द्वितीयशते चतुर्थोद्देशकार्थः॥२।४॥

सोरठा

२०. इंद्रिय नों अधिकार, चउथै उद्देशै कह्यो।
ते वस थी परिचार, तास निरूपण पंचमे॥

२०. अनन्तरमिन्द्रियाण्युक्तानि, तद्वशाच्च परिचारणा स्यादिति तन्निरूपणाय पञ्चमोद्देशकस्येदमादिसूत्रम्।
(वृ०-प० १३१)

२१. *हे प्रभु! अन्यतीर्थी इम आखै, इम निश्चै निर्ग्रंथो।
काल कियै छतै देव थई नैं, निज आतम करि मंतो॥
२२. ते निर्ग्रंथ नुं जीव देवता, अन्य देव प्रति त्यांही।
अन्य देव नीं देवी प्रति वश करि, आलिंगी भोगवै नांही॥

२१, २२. अण्णउत्थिया णं भंते! एवमाइक्खंति भासंति पण्णवंति परूवेंति—एवं खलु नियंठे कालगए समाणे देवब्भूएणं अप्पाणेणं से णं तत्थ नो अण्णे देवे, नो अण्णेसिं देवाणं देवीओ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय परियारेइ,
'अभियुज्य' वशीकृत्य आश्लिष्य वा 'परिचारयति परिभुंक्ते।
(वृ०-प० १३२)

२३. आतम संबंधि पोता नीं देवी, तेह प्रतै पिण त्यांही।
वश करि-करि आलिंगि-आलिंगि, ते सुर भोगवै नांही॥
२३. नो अप्पणिच्चियाओ देवीओ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय परियारेइ,

२४. निज आतम करि ते सुर पोतै, स्त्री पुरुष रूपपणेहो।
विकुर्वी-विकुर्वी भोग भोगवै, निर्ग्रंथ सुर थयुं तेहो॥
२४. अप्पणामेव अप्पाणं विउव्विय-विउव्विय परियारेइ।

२५. इक पिण जीवज एक समय में, दोय वेद वेदंतो।
इत्थि-वेद फुन पुरुष-वेद प्रतै, इम तसुं वेदवूं हुंतो॥
२५. एगे वि य णं जीवे एगेणं समएणं दो वेदे वेदेइ, तं जहा—इत्थिवेदं च, पुरिसवेदं च।
२६. इम परउत्थिक तणीं वारता, सर्व जाणवी सोयो।
जावत् इत्थि-वेद प्रतै फुन, पुरुष-वेद प्रति जोयो॥
२६. एवं परउत्थियवत्तव्वया णेयव्वा जाव इत्थिवेदं च, पुरिसवेदं च। (श० २।७९)

२७. ते किम? ए प्रभु! गोयम पूछै, तब भाखै जिनरायो।
जे माटै ते अन्यतीर्थिका, एम कहै छै ताह्यो॥
२८. जाव स्त्री-वेद पुंवेद प्रतै, फुन ए विहुं वेद कहायो।
इण प्रकार कर एक जीव ते, वेदे समय इक मांह्यो॥
२७, २८. से कहमेयं भंते! एवं?
गोयमा! जं णं ते अण्णउत्थिया एवमाइक्खंति जाव इत्थिवेदं च, पुरिसवेदं च।

२९. जे पाखंडी ते इम भाखै, हे गोतम! सुणवायो।
ते अन्यतीर्थी मिथ्या—खोटूं, इम वचन वदै छै ताह्यो॥
२९. जे ते एवमाहंसु, मिच्छं ते एवमाहंसु।

वा०—अन्यतीर्थी नों मिथ्यापणो ते इम—पुरुष छै तिको स्त्री रूप कीधे छते पिण ते देव नैं पुरुषपणां माटै पुरुष वेद नों हीज एक समय नैं विषै उदय छै, पिण स्त्री-वेद नों उदय नथी। अथवा वेद पलट्यै छते एतलै स्त्री, पुरुष नों रूप कीधे छते स्त्री-वेद नों हीज उदय छै पिण पुरुष-वेद नों उदय नथी, मांहोमाहि विरुद्ध भाव थी।

वा०—मिथ्यात्वं चैषामेवं—स्त्रीरूपकरणेऽपि तस्य देवस्य पुरुषत्वात् पुरुषवेदस्यैवैकत्र समये उदयो न स्त्रीवेदस्य, स्त्रीवेदपरिवृत्त्या वा स्त्रीवेदस्यैव न पुरुषवेदोदयः, परस्परविरुद्धत्वादिति। (वृ०-प० १३२)

३०. हूं पिण गोतम! एम कहूं छूं, सामान्य थी सुविचारो।
बलि विशेष थकी इम भाखूं, पन्नवूं हेतु करि सारो॥
३१. एम परूपूं भेद कहिवा थी, इम निश्चै निर्ग्रंथो।
काल कियै इक देवलोक में, देवपणैं उपजवूं हुंतो॥

३०, ३१. अहं पुण गोयमा! एवमाइक्खामि भासामि पण्णवेमि परूवेमि—एवं खलु णियंठे कालगए समाणे अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति—

*लय—दया भगोती छै सुखदाई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति। देवलोक ते देवजन मध्ये देवपणें ऊपजै। ते देवलोक कहितां देवजन केहवा छै? इहां प्रथम देवजन नुं विशेषण कहै छै।

३२. महिड्ढिएसु महाऋद्धिवंता, जसु परिवारादि रिद्धो।
जावत् महा अनुभाग अमर-जन, महा शक्तवंत समृद्धो॥

३२. महिड्ढिएसु जाव महाणुभोगेसु

३३. दूरंगतिसु ऊर्ध्व देव गति, चिर स्थितिवंता तेहो।
एहवा अमर-जन देवलोक छै, तेह विषै उपजेहो॥

३३. दूरगतीसु चिरट्ठितीएसु।

३४. एहवा अमर-जन देवलोक छै, तेह विषै सुविचारी।
ते निर्ग्रंथ नुं जीव काल करि, देव हुवै अति भारी॥

३४. से णं तत्थ देवे भवइ

३५. महिड्ढिए कहितां महा ऋद्धिवंतो, जसु परिवारादि ऋद्धो।
जाव दशूं दिश उद्योत करतो, ते सुर अधिक समृद्धो॥

३५. महिड्ढिए जाव दस दिसाओ उज्जोएमाणे

सोरठा

३६. इहां जाव शब्द रै मांय, पाठ कह्या तसु अर्थ इम।
महाद्युति कांति सुहाय, महाबल महायश महासुखी॥

३६. 'महिड्ढिए' इत्यत्र वाक्यकरणादिदं दृश्यम्—महज्जुइए महाबले महायसे महासोक्खे। (वृ०-प० १३२)

३७. महाअनुभाग सुशक्त, सोभित हार हिया विषै।
कडा बहिरखा युक्त, तिण करि स्तंभित उभय भुज॥

३७. महाणुभागे हारविराइयवच्छे कडयतुडियथंभियभुए

वृत्तिका—बाहुरक्षिका। (वृ०-प० १३२)

३८. अंगद कहितां देख, बाहू नां आभरण नों।
आख्यो एह विशेख, कुंडल आभरण कान नां॥

३८. अंगदानि—बाह्वाभरणविशेषान् कुण्डलानि—कर्णाभरणविशेषान्। (वृ०-प० १३२)

३९. कुंडल करिकै मृष्ट, गल-स्थले रेखा पडै।
कर्णपीठ धर श्रिष्ठ, कर्णाभरणज एह फुन॥

३९. मृष्टगण्डानि—उल्लिखितकपोलानि, कर्णपीठानि—कर्णाभरणविशेषान् धारयतीत्येवंशीलो यः स तथा। (वृ०-प० १३२)

४०. हस्ताभरण विचित्त, विचित्र माला पुष्प नी।
मस्तक विषै पवित्त, मुकुट विराजै जेहनें॥

४०. 'विचित्तहत्थाभरणे विचित्तमालामउलिमउडे' (वृ०-प०१३२)

४१. कल्याणकारी मान, माल्य प्रवर उत्तम भली।
वलि विलेपन जान, धरणहार छै तेहनो॥

४२. देदीप्यमान शरीर, फुन प्रलंब वनमाल धर।
दिव्य वर्ण करि हीर, करै उद्योतज दशुं दिशा॥

४३. दिव्य गंध करि देख, दिव्य रस दिव्य फर्श करि।
दिव्य संघयण विशेख, पुद्गल शक्ती रूप ए॥

४४. दिव्य संस्थान करेह, दिव्य ऋद्धि परिवार करि।
दिव्य युति करि जेह, वंछित-अर्थ-संयोग ए॥

४४. ऋद्धिः—परिवारादिका, युतिः—इष्टार्थसंयोगः। (वृ०-प० १३२)

४५. दिव्य प्रभा दीपंत, ते यानादि विमान करि।
फुन दिव्य छाया हुंत, ए उत्तम शोभा करी॥

४५. प्रभा—यानादिदीप्तिः, छाया—शोभा। (वृ०-प० १३२)

४६. दिव्य अर्चि सुविशाल, रत्नादिक तनु में रह्या।
तास तेज जे ज्वाल, तिण करिनैं उद्योत अति॥

४६. अर्चिः—शरीरस्थरत्नादितेजोज्वाला, तेजः—शरीरार्चिः। (वृ०-प० १३२)

४७. दिव्य तेज करि तेह, एह किरण तनु नीं कही।
दिव्य लेश फुन जेह, शरीर नैं वर्णे करी॥

४७. लेश्या—देहवर्णः। (वृ०-प० १३२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४८. जुओ-जुओ अर्थ एह, पूर्वे भाख्या शब्द नों।
वलि एकार्थपणेह, जाव शब्द में ए कह्या।।

४८. एकार्था वैते। (वृ०-प० १३२)

४९. *दसुं दिश में उद्योत करंतो, उद्योत तेह प्रकाशो।
वलि दसुं दिश में शोभ रह्यो सुर, ए निर्ग्रंथ जीव विमासो।।

५०. जाव पडिरूवे प्रतिरूप सुर, जाव शब्द में जाणी।
पासाइए दरिसणिज्जे कह्यो छै, फुन अभिरूप पिछाणी।।

४९, ५०. दस दिसाओ उज्जोएमाणे पभासेमाणे पासाइए दरिसणिज्जे अभिरुवे पडिरुवे।

वा०—पासाइए—देखणहार नों चित्त प्रसन्न करणहार, दरिसणिज्जे—जे प्रतै देखतां छतां चक्षु खेद न पामै, अभिरूवे—मनोज्ञ रूप छै, पडिरूवे—देखणहार देखणहार प्रतिरूप छै जेहनै, एतलै जोइवा जोग्य छै।

वा०—'पासाइए' द्रष्टृणां चित्तप्रसादजनकः 'दरिसणिज्जे' यं पश्यच्चक्षुर्न श्राम्यति 'अभिरूवे' मनोज्ञरूपः 'पडिरूवे' त्ति द्रष्टारं द्रष्टारं प्रति रूपं यस्य स तथेति। (वृ०-प० १३२, १३३)

५१. तेह निर्ग्रंथ तिहां अन्य देवे, अन्य सुर नी देवी प्रति त्यांही।
आलिंगी-आलिंगी वश करि-करि, परिचारणा करि ज्यांही।।

५१. से णं तत्थ अण्णे देवे, अण्णेसिं देवाणं देवीओ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय परियारेइ,

वा०—'से णं' ति असौ निर्ग्रंथदेवः 'तत्र' देवलोके 'नो' नैव 'अण्णे' त्ति अन्यान् आत्मव्यतिरिक्तान् 'देवान्' सुरान्। तथा नो अन्येषां देवानां सम्बन्धिनीर्देवीः 'अभिजुंजिय' त्ति 'अभियुज्य' वशीकृत्य आश्लिष्य वा 'परिचारयति' परिभुंक्ते। (वृ०-प० १३२)

वा०—'सेणं' ति अथ निर्ग्रंथः 'तत्थ' त्ति तत्रैव देवलोके 'अण्णे देवे' त्ति अन्यान् देवान् 'अण्णेसिं देवाणं देवीओ' त्ति अन्येषां देवानां देवीः 'अभिजुंजिय' त्ति अभियुज्य वशीकृत्य आश्लिष्य वा 'परिचारयति' परिभुंक्ते।

वा०—'सेणं' ति असौ निर्ग्रंथदेवः 'तत्र' देवलोके 'नो' नैव 'अण्णे' त्ति अन्यान् आत्मव्यतिरिक्तान् 'देवान्' सुरान्। तथा नो अन्येषां देवानां सम्बन्धिनीर्देवीः 'अभिजुंजिय' त्ति 'अभियुज्य' वशीकृत्य आश्लिष्य वा 'परिचारयति' परिभुंक्ते। (वृ०-प० १३२)

इहां अनेरा देव प्रति भोगवै एहवूं अर्थ कीधै केई कहै—ए पश्चिम द्वारीपणुं हुवै। पिण ए निर्ग्रंथ नुं जीव इसो महद्धिक देवता एहवूं करिवा अयोग्य कार्य किम करै? ते माटै अन्य देव थी पश्चिमद्वारी विना मुखादिक नीं कुचेष्टा रूप परिचारणा करै, इम हुवै ते पिण ज्ञानी जाणै।

अथवा 'सेणं'—ते निर्ग्रंथ नुं जीव तेहिज 'तत्थ'—तिहां देवलोक नैं विषै 'अण्णे देवे'—अन्य देव छै तिको 'अण्णे देवाणं देवीओ'—अनेरा देव नी देवी प्रतै वश करी तथा आलिंगी भोगवै ए दूजो अर्थ।

जद कोई पूछै निर्ग्रंथ ना जीव नैं अन्य देव किम कह्यो? तेहनों उत्तर—जे अनेरा देव नीं देवी प्रति भोगवै ते देवता नीं अपेक्षाय ए निर्ग्रंथ नुं जीव अन्य देव छै। ते अनेरा देवता नीं देवी प्रतै भोगवै, एहवूं अर्थ हुवै ते पिण ज्ञानी जाणै।

५२. निज पोता नी देवी प्रतै पिण, आलिंगी-आलिंगी तेहो।
वश करी-करी भोगवै, जीव निर्ग्रंथ नुं जेहो।।
५३. आपणपैंज निजात्म प्रतै ते, इत्थि पुरुष नों रूपो।
विकुर्वी-विकुर्वी भोगवै नांही, सुर वर तेह अनूपो।।

५२, ५३. अप्पणिच्चियाओ देवीओ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय परियारेइ, नो अप्पणामेव अप्पाणं विउव्विय-विउव्विय परियारेइ।

वा०—अथ यहां कह्यो आपको रूप विकुर्वी नें आप परिचारणा नहीं करै—एहनों ए परमार्थ—एक समय बे वेद नहीं वेदै, तिण आश्री कह्यो छै बाकी तो आपको रूप विकुर्वी नैं परिचारणा करै छै।

५४. इक पिण जीव जे एक समय में, एकज वेद वेदंतो।
इत्थि-वेद प्रतै अथवा ते, पुरिस वेद-प्रति मंतो।।
५५. जेह समय विषै इत्थि-वेद प्रति, वेदै भोगवै ज्यांही।
तेह समय विषै पुरुष-वेद प्रति, वेदै भोगवै नांही।।
५६. जेह समय विषै पुरुष-वेद प्रति, वेदै भोगवै जेहो।
तेह समय विषै इत्थि-वेद प्रति, वेदै भोगवै न तेहो।।

५४. एगे वि य णं जीवे एगेणं समएणं एगं वेदं वेदेइ, तं जहा—इत्थिवेदं वा, पुरिसवेदं वा।

५५, ५६. जं समयं इत्थिवेदं वेदेइ नो तं समयं पुरिसवेदं वेदेइ। जं समयं पुरिसवेदं वेदेइ नो तं समयं इत्थिवेदं वेदेइ।

*लय—दया भगोती छै सुखदाई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५७. इत्थि-वेद ना उदय करी नैं, पुंवेद भोगवै नांही।
पुरुष-वेद ना उदय करी नैं, न भोगवै स्त्री-वेद त्यांही ॥

५८. इम निश्चै करि नैं इक जंतु, एक समय रै मांह्यो।
एक वेद प्रतै वेदे अछै, ते स्त्री तथा पुरिस कहायो ॥

५९. स्त्री छै ते स्त्री-वेद उदय थयां थी, पुरुष प्रतै वांछंतो।
पुरुष छै ते पुरुष-वेद उदय थयां, स्त्री तणी वांछा करंतो।

६०. ए बिहुं मांहो मांहै इम वांछै, स्त्री पुरुष प्रतै जाणी।
अथवा पुरिस वांछै इत्थि प्रति, ए जिन वयण पिछाणी ॥

६१. देश पचीसमां अंक तणो ए, गुणचालीसमीं ढालो।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' संपति मालो ॥

५७. इत्थिवेदस्स उदएणं नो पुरिसवेदं वेदेइ, पुरिसवेदस्स उदएणं नो इत्थिवेदं वेदेइ।

५८. एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं वेदं वेदेइ, तं जहा—इत्थिवेदं वा, पुरिसवेदं वा।

५९. इत्थी इत्थिवेदेणं उदिण्णेणं पुरिसं पत्थेइ। पुरिसो पुरिसवेदेणं उदिण्णेणं इत्थिं पत्थेइ।

६०. दो वि ते अण्णमण्णं पत्थेंति, तं जहा—इत्थी वा पुरिसं, पुरिसे वा इत्थिं। (श० २।८०)

ढाल : ४०

दूहा

१. पूर्वे परिचारण कही, परिचारण थी जाण।
गर्भ हुवै मनु तिरि तणैं, गर्भ प्रश्न हिव आण ॥

२. उदक गर्भ भगवंत जी! कालान्तर करि ताम।
जल वर्षण हेतू जिको, पुद्गल नो परिणाम ॥

३. ते उदक-गर्भ इम काल थी, कितो काल ह्वै जास।
जिन कहै इक समयो जघन, उत्कृष्टो षट् मास ॥

१. परिचारणायां किल गर्भः स्यादिति गर्भप्रकरणम्। (वृ०-प० १३३)

२, ३. उदगब्भे णं भंते! उदगब्भे त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?
गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा ॥ (श० २।८१)

२. तत्रोदकगर्भः—कालान्तरेण जलप्रवर्षणहेतुः पुद्गल-परिणामः। (वृ०-प० १३३)

४. वृत्तिकार कह्यो मृगसिरे, पोष प्रमुख रै मांहि।
अंत वैशाख विषै हुवै, संध्या-रागादि ताहि ॥

४. अयं च मार्गशीर्षपौषादिषु वैशाखान्तेषु सन्ध्यारागमेघोत्पादादिलिंगो भवति। (वृ०-प० १३३)

*सूरिजन! श्री जिन-वच सुखदाई। (ध्रुपद)

५. तिर्यंचणी गर्भ हे भगवंत जी! तिर्यंचणी गर्भपणेह।
काल थकी कितो काल हुवै ए, गर्भ विषै रहै एह रे ॥

६. श्री जिन भाखै जघन्य थकी ए, अंतर्मुहूर्त्त कहाइ।
उत्कृष्टो ते आठ वर्ष लग, रहै गर्भ रै मांहि ॥

७. गर्भ मनुष्यणी नों हे भगवंत जी!, मणुस्सी गर्भपणेह।
काल थकी ए किता काल लग, गर्भ विषै रहै जेह?

८. श्री जिन भाखै जघन्य थकी ए, अंतर्मुहूर्त्त कहाय।
उत्कृष्टो ते बार वर्ष लग, गर्भ विषै रहिवाय ॥

५. तिरिक्खजोणियगब्भे णं भंते! तिरिक्खजोणियगब्भे त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

६. गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अट्ठ संवच्छराइं। (श० २।८२)

७. मणुस्सीगब्भे णं भंते! मणुस्सीगब्भे त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

८. गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बारस संवच्छराइं। (श० २।८३)

*लय—आधाकर्मी थानक मैं साधु रहै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. काय - भवस्थ हे भगवंतजी ! काय - भवस्थपणेहे।
काल थकी किता काल लगै ए रहै, गर्भ नां तनु नैं विषेहे ।।

वा०—काय-भवस्थ किण नैं कहियै ? काय ते माता ना उदर नैं विषे रह्यो जे निज शरीर, भव कहितां जन्म ते काय-भव। तेहनैं विषै रहै कायभवस्थ। ते काय भवस्थ इम एणे पर्याये करी। एतलै माता नां उदर नैं विषै गर्भ नो शरीर तेहनैं विषै जीव कितो काल रहै ?

१०. श्री जिन भाखै जघन्य थकी ए, अंतर्मुहूर्त्त कहीव।
उत्कृष्टो जे वर्ष चउवीसज रहै, गर्भ नां तनु विषै जीव ।।

९. कायभवत्थे णं भंते ! कायभवत्थे त्ति कालओ केवच्चिरं होइ ?

वा०—कायभवत्थे—जनन्युदरमध्यव्यवस्थितनिजदेह एव यो भवो—जन्म स कायभवस्तत्र तिष्ठति यः स कायभवस्थः, स च कायभवस्थ इति, एतेन पर्यायेणेत्यर्थः।
(वृ०-प० १३३)

१०. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं चउवीसं संवच्छराइं। (श० २।८४)

सोरठा

११. स्त्री नां उदर विषेह, गर्भ विषै वर्ष बार रही।
मरि निज तनु उपजेह, बार वर्ष वले ते रहै ।।
१२. इम चउवीसज वास, जे माता नां उदर में।
गर्भ शरीरे जास, जीव रहै उत्कृष्ट थकी ।।
१३. केइ कहै वर्ष बार, रही वली अन्य बीज करि।
तेहिज शरीर मझार, उपजी द्वादश वर्ष स्थिति ।।

११, १२. स्त्रीकाये द्वादश वर्षाणि स्थित्वा पुनर्मृत्वा तस्मिन्नेवात्मशरीरे उत्पद्यते द्वादशवर्षस्थितिकतया, इत्येवं चतुर्विंशतिर्वर्षाणि भवन्ति। (वृ०-प० १३३)

१३. केचिदाहुः—द्वादश वर्षाणि स्थित्वा पुनस्तत्रैवान्यबीजेन तच्छरीरे उत्पद्यते, द्वादशवर्षस्थितिरिति।
(वृ०-प० १३३)

१४. *मनुष्य पंचेंद्रिय तिर्यंच नैं प्रभु, बीज ते वीर्य कहाय।
अणविणट्ठो जे योनि विषै छै, ते कितो काल रहिवाय ?

१४. मणुस्स-पंचेंदियतिरिक्खजोणियबीए णं भंते ! जोणिब्भूए केवतियं कालं संचिट्ठइ ?

१५. जिन कहै अंतर्मुहूर्त्त जघन्य थी, उत्कृष्ट मुहूर्त्त बार।
तिहां लग सन्नी मनु तिरि उपजै, पछै सन्नी न ऊपजै लिगार ।।

१५. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता। (श० २।८५)

१६. एक जीव प्रभु ! इक भव मांहै, केतला नो कहिवाय।
पुत्रपणैं शीघ्र आवी उपजै, किता पिता तणो पुत्र थाय ?

१६. एगजीवे णं भंते ! एगभवग्गहणेणं केवइयाणं पुत्तत्ताए हव्वमागच्छइ ?

१७. श्री जिन भाखै जघन्य एक नों, तथा बे त्रिण नो सुत थाय।
उत्कृष्ट पृथक्-सौ नों सुत ह्वै, एतलै जनक पृथक्-सौ ताय ।।

१७. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कस्स वा दोण्ह वा तिण्ह वा, उक्कोसेणं सयपुहत्तस्स जीवा णं पुत्तत्ताए हव्वमागच्छंति। (श० २।८६)

सोरठा

१८. मनुष्य अनै तिर्यंच, तसुं वीर्य ते बीज छै।
बार मुहूर्त्त लग संच, योनिभूत रह्यु योनि में ।।
१९. पृथक्-सौ नों जेह, बीज हीज वीरज तिको।
गाय प्रमुख नी तेह, योनि विषै पैठुं रह्यु ।।
२०. ते बीज-समुदाये ताय, एक जीव कोइ ऊपजै।
तेह जीव कहिवाय, सर्व तणो सुत ह्वै तिको ।।
२१. ते माटे इम ख्यात, उत्कृष्ट पृथक्-सौ तणो।
पुत्र तेह विख्यात, पिता पृथक्-सौ इम हुवै ।।

१८. मनुष्याणां तिरश्चां च बीजं द्वादश मुहूर्त्तान् यावद्योनिभूतं भवति। (वृ०-प० १३४)
१९. ततश्च गवादीनां शतपृथक्त्वस्यापि बीजं गवादियोनिप्रविष्टं बीजमेव। (वृ०-प० १३४)
२०. तत्र च बीजसमुदाये एको जीव उत्पद्यते, स च तेषां बीजस्वामिनां सर्वेषां पुत्रो भवति। (वृ०-प० १३४)
२१. अत उक्तम्—उक्कोसेणं 'सयपुहत्तस्से' त्यादि।
(वृ०-प० १३४)

*लय—आधाकर्मी थानक में साधु रहै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—बे थी मांडी नव तांइ पृथक् (प्रत्येक) संज्ञा छै। तिण कारण बे सौ थी लेइ नव सौ नैं पृथक्-सौ कहियै। इण न्याय नव सौ नों पिण पुत्र संभवै।

एक जीव नव सौ नो पुत्र किम हुइ? ते कहै छै—नव सौ सांड प्रमुख नों वीर्य छै ते एक गाय प्रमुख नी योनि मांहि पेठु, एतलै नवसौ तिर्यंच भोगवी तेहनुं बीज एकठुं थयुं। तिण मांहि एक जीव ऊपनों, ते जीव नव सौ नो पुत्र थयो, नव सौ नां बीज में ऊपनां माटै।

२२. *एक जीव नैं हे भगवंतजी! एकण भव रै मांय।
जीव केतला पुत्रपणै जे, शीघ्र ऊपजै आय?

२३. श्री जिन भाखै जघन्य एक वा, बे तथा तिण सुत थाय।
उत्कृष्टा पृथक्-लक्ष जीवा, शीघ्र सुतपणैं ऊपजै आय॥

सोरठा

२४. मत्स्यादिक नैं जेह, एक संयोगे पिण जिके।
मछली योनि विषेह, तेह तणां जे गर्भ में॥

२५. पृथक्-लक्ष उपजेह, निपजै जनमै पिण वली।
तिण सूं एक भवेह, इक नैं पृथक्-लक्ष सुत॥

२६. फुन मनु योनि विषेह, एक संयोगे पिण जिके।
पृथक्-लक्ष उपजेह, पिण निपजै जनमैं नहिं बहु॥

२७. *ते किण अर्थे? इम कहियै प्रभु, जाव शीघ्र उपजेह।
गर्भ विषै पृथक् लक्ष जीवा?, ए गोयम प्रश्न करेह॥

२८. जिन कहै—स्त्री नैं वलि पुरुष नैं, कर्म कृता योनि मांही॥
मिथुनवत्तिए नाम संयोग उपजै, विहु नों रुधिर शुक्र रहै त्यांही।

२९. तिहां जघन्य एक तथा बे, अथवा तिण जीव ऊपजै आय।
उत्कृष्टा पृथक्-लक्ष जीवा, शीघ्र सुतपणैं उपजाय॥

वा०—स्त्री पुरुष नैं कर्मकडा नाम कर्म-निवर्त्तित योनि नैं विषै, अथवा कर्म—मदनोद्दीपक व्यापार कीधो जेहनैं विषै तिका कर्म-कृता योनि मिथुन नी प्रवृत्ति छै जेहनैं विषै ते मिथुन-वृत्ति कहिइ अथवा मिथुन प्रत्यय—हेतु छै जेहनैं विषै ते मैथुनप्रत्ययिक संजोए—संजोग, संपर्क ते स्त्री पुरुष विहुं थकी स्नेह—शुक्र, रुधिर लक्षण तेह प्रतै, तिणे एकत्र तिहां संबंध थया नैं विषै जघन्य थकी एक अथवा दोय अथवा तीन जीव पुत्रपणैं गर्भ मांहै उपजै। उत्कृष्ट थी नव सत-सहस्र पृथक् संज्ञा छै। ते नव लाख जीव पुत्रपणैं उपजै इत्यर्थः।

३०. ते इण अर्थे करिनैं हे गोतम, जाव शीघ्र ही आय।
पुत्रपणैं नव लक्ष ऊपजै, ए सन्नी तणी अपेक्षाय॥

वा०—इहां कोई पूछै भरत नैं सवा कोड पुत्र थया ते किम? उत्तर—रुधिर, शुक्र बिहुं मिल्या तेहनैं विषै उत्कृष्ट नव लक्ष जीव गर्भे ऊपजै ते एक माता नीं अपेक्षाय नव लक्ष संभवै, वली बहुश्रुत कहै ते सत्य।

*लय—आधाकर्मी थानक में साधु रहै

२२. एगजीवस्स णं भंते! एगभवग्गहणेणं केवइया जीवा पुत्तत्ताए हव्वमागच्छंति?

२३. गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं सयसहस्सपुहत्तं जीवा णं पुत्तत्ताए हव्वमागच्छंति। (श० २।८७)

२४, २५. मत्स्यादीनामेकसंयोगेऽपि शतसहस्रपृथक्त्वं गर्भे उत्पद्यते निष्पद्यते चेत्येकस्यैकभवग्रहणे लक्षपृथक्त्वं पुत्राणां भवतीति। (वृ०-प० १३४)

२६. मनुष्ययोनौ पुनरुत्पन्ना अपि बहवो न निष्पद्यन्त इति। (वृ०-प० १३४)

२७. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जाव हव्वमागच्छंति?

२८. गोयमा! इत्थीए पुरिसस्स य कम्मकडाए जोणीए मेहुणवत्तिए नामं संजोए समुप्पज्जइ। ते दुहओ सिणेहं चिणंति, चिणित्ता

२९. तत्थ णं जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं सयसहस्सपुहत्तं जीवा णं पुत्तत्ताए हव्वमागच्छंति।

वा०—'कम्मकडाए जोणीए' त्ति नामकर्मनिर्वर्तितायां योनौ, अथवा कर्म—मदनोद्दीपको व्यापारस्तत् कृतं यस्यां सा कर्मकृताऽतस्तस्यां मैथुनस्य वृत्तिः—प्रवृत्तिर्यस्मिन्नसौ मैथुनवृत्तिको मैथुनं वा प्रत्ययो—हेतुर्यस्मिन्नसौ मैथुनप्रत्ययिकः···'संयोगः' संपर्कः, 'ते' इति स्त्रीपुरुषौ 'दुहओ' त्ति उभयतः 'स्नेहं' रेतः शोणितलक्षणं 'संचिनुतः' सम्बन्धयतः इति। (वृ०-प० १३४)

३०. से तेणट्ठेणं जाव हव्वमागच्छंति। (श० २।८८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

३१. पूर्वे मिथुनज ख्यात, तेह मिथुन प्रति सेवतां।
किसो असंयम थात, तेह परूपण हिव कहै।।

३१. 'मेहुणवत्तिए नामं संजोए' त्ति प्रागुक्तं, अथ मैथुनस्यैवा-संयमहेतुताप्ररूपणसूत्रम्—

३२. *मिथुन सेवतां थकां प्रभुजी, केहवो असंयम करंत?
तव भगवंत कहै हे गोतम! यथानाम दृष्टंत।।

३२. मेहुणण्णं भंते! सेवमाणस्स केरिसए असंजमे कज्जइ?
गोयमा! से जहानामए

३३. कोई पुरुष वंश तणी भूंगली, भरी रूई सूं तेह।
अथवा बूर वनस्पति अवयव, तेह थकी भरी जेह।।

३३. केइ पुरिसे रूयनालियं वा बूरनालियं वा
रूतं—कर्पासविकारस्तद्भृता नालिका—शुषिरवंशा-दिरूपा रूतनालिका ताम्, एवं बूरनालिकामपि, नवरं बूरं—वनस्पतिविशेषावयवविशेषः। (वृ०-प० १३४)

३४. तप्त जाज्वलमान अग्नि तपावी, लोह-शलाका ताय।
तेह भूंगली मांहै चांपै ते, रूई बूर विध्वंसज थाय।।

३४. तत्तेणं कणएणं समभिद्धंसेज्जा,

३५. इम कहवो हे गोतम! मिथुन सेवतां करै असंयम तेह।
योनि विषै जे जीव रह्यां प्रति हणै पुरुष-लिंगेह।।

३५. एरिसएणं गोयमा! मेहुणं सेवमाणस्स असंजमे कज्जइ।
(श० २।८९)
एवं मैथुनं सेवमानो योनिगतसत्त्वान् मेहनेनाभिध्वंस-येत्। (वृ०-प० १३४)

३६. सेवं भंते! सेवं भंते! जाव गोतम विचरंत।
तिण अवसर प्रभु श्रमण तपस्वी महावीर भगवंत।।

३६. सेवं भंते! सेवं भंते! जाव विहरइ। (श० २।९०)
तए णं समणे भगवं महावीरे

३७. नगर राजगृह गुणसिल बाग थी निकलै निकली तेह।
बाहिर जनपद देश विषै प्रभु, विहार करी विचरेह।।

३७. रायगिहाओ नगराओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिनिक्ख-मइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।
(श० २।९१)

३८. अंक पचीस नुं देश कह्यो ए, ढाल चालीसमीं ताजी।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय प्रसादे, 'जय-जश' संपति जाझी।।

ढाल : ४१

दूहा

१. पूर्वं तिर्यंच मनुष्य नीं, उत्पत्ति तणो विचार।
हिवै उत्पत्ति देव नीं, विचारणा अधिकार।।

१. पूर्वं तिर्यङ्मनुष्योत्पत्तिर्विचारिता, अथ देवोत्पत्ति-विचारणायाः प्रस्तावनायेदमाह— (वृ०-प० १३४)

२. तिण कालै नैं तिण समय, पवर तुंगिया नाम।
नगरी हुंती वर्णक तसुं, उववाई थी ताम।।

२. तेणं कालेणं तेणं समएणं तुंगिया नामं नयरी होत्था—वण्णओ। (श० २।९२)

३. ते तुंगिया नगरी बाहिरे, ईशाण कूंण रै मांय।
नाम पुष्पवति चैत्य थो, वर्णक तसुं अधिकाय।।

३. तीसे णं तुंगियाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसी-भागे पुप्फवतिए नामं चेइए होत्था—वण्णओ।
(श० २।९३)

४. ते तुंगिया नगरी विषै, श्रावक घणां वसेह।
आढ्या परिपूर्णा अछै, धन्य धान्यादि करेह।।

४. तत्थ णं तुंगियाए नयरीए बहवे समणोवासया परिवसंति —अड्ढा,
'अड्ढ' त्ति आढ्या धनधान्यादिभिः परिपूर्णाः।
(वृ०-प० १३४)

*लय—आधाकर्मी थानक में साधु रहै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. दित्ता दीप्त प्रसिद्ध है, दर्प्पवंत वा देख।
विस्तीर्णा विस्तारवंत, बहु घर भवन विशेख॥

५. दित्ता वित्थिण्णविपुलभवण
दीप्ताः—प्रसिद्धाः दृप्ता वा—दर्प्पिताः···विस्तीर्णानि —विस्तारवन्ति विपुलानि—प्रचुराणि भवनानि गृहाणि। (वृ०-प० १३४, १३५)

६. शयन पल्यंकादिक बलि, आसन वाजोटादि।
यान वाहन रथ हय प्रमुख, तिणं आकीर्ण सुवादि॥

६. सयणासण-जाणवाहणाइण्णा

७. तथा विपुल आसन शयन और भवन विस्तीर्ण।
यान अनै वाहन विविध उपकरणे आकीर्ण॥

८. बहु धन गणिमादिक तसु, वली घणूं घर मांय।
जातरूप सुवरण वरण, रजत रूप्य अधिकाय॥

८. बहुधण-बहुजायरूव-रयया
बहु—प्रभूतं धनं—गणिमादिकं तथा बहु एव जातरूपं —सुवर्णं रजतं च—रूप्यं येषां ते तथा।
(वृ०-प० १३५)

९. दुगुणादिक करवा भणी, धन दै ते आयोग।
प्रयोग व्यापारादि फुन, तिण करि सहित सुयोग॥

९. आयोग-पयोगसंपउत्ता
आयोगो—द्विगुणादिवृद्ध्यार्थप्रदानं प्रयोगश्च—कलान्तरं तौ संप्रयुक्तौ—व्यापारितौ यैस्ते तथा।
(वृ०-प० १३५)

१०. विविध प्रकार न्हाखीजतो, विपुल घणो अन पान।
बहू लोक जीमण थकी, शेष वधै अति जान॥

१०. विच्छड्डियविपुलभत्तपाणा
विच्छर्दितं—विविधमुज्झितं बहुलोकभोजनत उच्छिष्टा-वशेषसम्भवात् विच्छर्दितम्। (वृ०-प० १३५)

११. बहु दासी नैं दास फुन, बलि वृषभ नैं गाय।
महिष गवेलक अज अजा, गाडर पिण बहु ताय॥

११. बहुदासी-दास-गो-महिस-गवेलयप्पभूया
गवेलका—उरभ्राः। (वृ०-प० १३५)

१२. अति धनवंतपणां थकी, घणां लोक नैं ताय।
पराभव्या जावै नहीं—जीत्या ते नहिं जाय॥

१२. बहुजणस्स अपरिभूया
बहोर्लोकस्यापरिभवनीयाः। (वृ०-प० १३५)

१३. *जीव-अजीव नैं जाणिया, ओलखिया पुन्य पाप।
आश्रव संवर निर्जरा, स्थिर चित सेती थाप॥

१३. अभिगयजीवाजीवा उवलद्धपुण्ण-पावा आसव-संवर-निज्जर-

१४. काइयादिक क्रिया कही, फुन अधिकरण यंत्रादि॥
बंध मोक्ष नैं जाणवै, अति निपुण अगाधि।

१४. किरियाहिकरणबंध-पमोक्खकुसला
क्रियाः—कायिक्यादिकाः अधिकरणं गन्त्रीयन्त्रकादि।
(वृ०-प० १३५)

१५. असहेज्ज पाठ तणो इहां, अर्थ टीका मांय।
इण रीते कीधो अछै, ते सुणज्यो चित ल्याय॥

१५. असहेज्जा

सोरठा

१६. असहेज्ज पाठ नां जाण, अर्थ दोय है वृत्ति में।
आपद पड़यै सुजाण, स्हाज न वंछै देव नों॥

१६. आपद्यपि देवादिसाहय्यकानपेक्षाः। (वृ०-प० १३५)

१७. पोते कीधा पाप, ते पोतेइज भोगवै।
अदीन मनोवृत्ति स्थाप, एक अर्थ तो इम कियो॥

१७. स्वयं कृतं कर्म स्वयमेव भोक्तव्यमित्यदीनमनोवृत्तय इत्यर्थः। (वृ०-प० १३५)

१८. बलि पाखंडी आय, चालै समकित आदि थी।
तो नहिं वंछै स्हाय, समर्थ स्वयम् हटायवा॥

१९. बलि जिन-शासन मांय, अत्यंत भावित आसथा।
ते माटै असहाय, अर्थ दूजो इम वृत्ति में॥

१८, १९. पाषण्डिभिः प्रारब्धाः सम्यक्त्वाविचलनं प्रति न परसाहाय्यमपेक्षन्ते, स्वयमेव तत्प्रतिघातसमर्थ-त्वाज्जिनशासनात्यन्तभावितत्वाच्चेति।
(वृ०-प० १३५)

*लय—प्रभवो मन में चिंतवै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०. 'तुंगिया नैं अधिकार, उभय अर्थ ए आखिया।
तास न्याय सुविचार, चित्त लगाई सांभलो ।।

२१. दूजो अर्थ पिछाण, सम्यक्त्व व्रत सेंठापणो।
प्रवर मूल गुण जाण, ए अवश्य गुण चाहिजै ।।

२२. ए गुण खंडित थाय, तो होय विराधक पांत में।
शुद्ध हुआं सूं ताय, आराधक पद आखियो ।।

२३. जो पाखंडी नैं जेह, जाब देवा समरथ नहीं।
पर सहाय विण तेह, तास चलायो नां चलै ।।

२४. तो पिण मूल गुण तास, तेहनों न गयो सर्वथा।
सम्यक्त्व व्रत नी राश, अखंडपणैं राखी तिणैं ।।

२५. आपद पडियां आय, सुर सहाय वांछै नहीं।
ए धुर अर्थ कहाय, उत्तर-गुण ते जाणवूं ।।

२६. मुनि धुर पहर सझाय, द्वितिय पहर में ध्यान वर।
तृतिय गोचरो जाय, चउथै पहर सझाय फुन ।।

२७. उत्तर-गुण ए च्यार, कह्या विचक्षण मुनि तणै।
जो न करै अणगार, तो संजम में भंग नहिं ।।

२८. तिम श्रावक रै एह, उत्तर गुण असहायता।
सुर सहाय वंछेह, तो सम्यक्त्व विषै न भंग तसु ।।

२९. आनंदादिक सार, 'असहेज्ज' पाठ कह्यो तिहां।
छह छंडी आगार, देवाभिओगे पाठ में ।।

३०. अन्यतीर्थी नैं धार, तथा देव जे तेहनां।
श्रद्धा-भ्रष्ट अणगार, आनंद कह्युं ए त्रिहुं भणी ।।

३१. न करूं वंदन ताहि, नमस्कार पिण नां करूं।
पहिलां बोलूं नांहि, असणादिक देवूं नहीं ।।

३२. अभिग्रह एह विशेष, छ छंडी आगार त्यां।
राजा नैं आदेश, तथा कुटंब आदेश थी ।।

३३. बलवंत तणैं प्रयोग, देव तणैं परवसपणैं।
कुटंब वड़ा नैं जोग, अटवी विषेज कारणैं ।।

३४. ए षट् तणैं प्रकार, अन्यतीर्थादिक त्रिहुं भणी।
वंदे करि नमस्कार, असणादिक दै तेहनैं ।।

३५. जाणै सावज तास, पिण सम्यक्त्व व्रत नां गया।
सुर आगार विमास, असहेज्जा पिण पाठ त्यां ।।

३६. आपद उपजै आय, अथवा तेहनां भय थकी।
वांछै देव - सहाय, जाणैं सावज तेहनैं ।।

३७. तसुं सम्यक्त्व किम जाय, सम्यक्त्व तो श्रद्धा अछै।
हियै विचारो न्याय, श्रद्धा कारज जूजुआ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८. छ छंडी बिण त्याग, ए पिण गुण अधिकाय छै।
अधिकेरो वैराग, व्रत सांकडा जेहनां।।

३९. इक त्रस नां पचखाण, कीधां सूं श्रावक हुवै।
शतक सतरमैं जाण, द्वितिय उद्देशै भगवती।।

४०. अनर्थदंड परिहार, एह आठमों व्रत कह्यो।
अर्थ तणो आगार, न्याय हिवै तेहनों सुणो।।

४१. अर्थ-दंड में एह, आठ आगारज आखिया।
द्वितिय सुयगडांगेह, द्वितिय अध्ययने देख लो।।

४२. आत्म, ज्ञात, घर तेथ, परिवार नैं मित्र कारणे।
नाग, भूत, यक्ष हेत, हिंसादिक आरंभ करै।।

४३. अर्थ-दंड रै मांहि, ए आठूंइ आखिया।
नाग, भूत, यक्ष ताहि, श्रावक रै आगार छै।।

४४. धारणी नों तिहवार, अकाल-घन दोहला अरथ।
देखो अभयकुमार, ज्ञाता सुर आराधियो।।

४५. कृष्णे पिण सुविशेख, लघु बंधव रै कारणैं।
देव आराध्यो देख, अंतगड मांहै कह्यो।।

४६. चक्री भरत सुसोय, देवी देव भणी तिणै।
जंबूद्वीपपन्नत्ती जोय, अट्ठम कर आराधिया।।

४७. बलि सूत्रया छै बाण, नमस्कार सुर नैं लिख्यो।
ए प्रत्यक्ष ही पहिछाण, वंछ्यो सहाय देव नो।।

४८. बलि चक्री भरतेश, चक्र तणी पूजा करी।
इमहिज सुर संपेख, पूजै स्वारथ कारणैं।।

४९. शांति कुंथु अर जाण, चक्र रत्न पूज्यो क नां?
षट खंड साधत पाण, अट्ठम तेर किया क नां?

५०. लवणसुट्ठियो देव, कृष्णे पिण आराधियो।
ज्ञाता सोलम भेव, सुर सहाय वांछ्या तिणै।।

५१. पूर्वोक्त पहिछाण, देव सहायज वांछवै।
सम्यग् दृष्टी जाण, सावज लौकिक कृत्य करै।।

५२ सम्यक्त्व तास न जाय, नवि जावै श्रावकपणो।
जो सुर पूजै नांय, तो गुण अधिकेरो अछै।।

५३. नारद केरा पाय, द्रुपद-सुता प्रणम्या नथी।
ए गुण छै अधिकाय, पिण पंडु प्रणमन करी।।

५४. जाव शब्द रै मांहि, कृष्णे पिण नारद भणी।
प्रणमन कीधी ताहि, पिणतसुं समकित नवि गई।।

५५. प्रत्यक्ष ही पहिछाण, समदृष्टि श्रावक तिकै।
शीस नमावै जाण, म्लेच्छां नां राजा प्रतै।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६. तिमहिज डरता ताय, अथवा स्वारथ कारणैं।
प्रणमैं सुर नां पाय, ते मारग लौकीक छै।।
५७. ते माटे पहिछाण, पाखंडी थी नहिं चलै।
दृढ़ आसथा जाण, मूल अर्थ असहेज्ज नों।।
५८. सूत्र उववाई मांहि, अम्मड नैं अधिकार पिण।
जाव शब्द में ताहि, असहेज्जा ए पाठ है।।
५९. तास अर्थ वृत्ति मांय, एक ईज कीधो अछै।
आपद सुर असहाय, एह अर्थ कीधो नथी।।
६०. कुतीर्थिक प्रेरित्त, सम्यक्त्व सूं अविचलपणो।
पर सहाय नत्रि चित्त, उववाइ-वृत्ति में कह्यो।।
६१. रायप्रश्नेणि वृत्त, असहेज्जा नों अरथ।
कीधो अधिक पवित्त, चित्त लगाई सांभलो।।
६२. कुतीर्थिक प्रेरित्त, सम्यक्त्व थी अविचलपणो।
पर सहाय नहिं चित्त, ए अर्थ इक ईज त्यां।।
६३. आपद सुर असहाय, एह अर्थ कीधो नथी।
कुतीर्थिक थीं ताय, न चलै एहिज अर्थ त्यां।।
६४. तुंगिया नगर पिछाण, श्रावक नां वर्णन मझे।
असहेज्जा नां जाण, दोय अर्थ है वृत्ति में।।
६५. उववाई नी वृत्त, रायप्रश्नेणि वृत्ति में।
असहेज्जा नों पवित्त, अर्थ एक कीधो अछै।।
६६. ए वे साख विचार, तुंगिया नां श्रावक गुणे।
असहेज्जा नों धार, द्वितिय अर्थ तो अवश्य ह्वै।।
६७. आपद सुर असहाय, ए गुण ह्वै अथवा न ह्वै।
कारण तिण नों नांय, विहुं उपंग-वृत्ति देखतां।।
६८. बलि जे कहै इम वाण, सुर सहाय नहिं वांछणो।
तो चउवीस जिन नां जाण, चउवीस यक्ष यक्षणी कहै।।
६९. सासण-देव सहाय, तसुं थुइ पडिकमणैं पढै।
बलि सेत्रूंजे ताय, पूजै केम चक्रेश्वरी?
७०. जती थका प्रत्यक्ष, गोरा काला भैरवै।
माणभद्रादि यक्ष, आराधै रक्षा भणी।।
७१. ए लेखै तो जोय, सहाय देव नों वांछवै।
निज श्रद्धा अवलोय, तुम गुरु पिण नहिं समकती।।
७२. पूजै भैरू आद, श्रावक परणीजै तदा।
शीतलादि अहलाद, तुझ लेखै नहिं श्रावकपणो।।
७३. तिण सूं इहां असहाय, सम्यक्त्व नों सेंठापणो।
श्रावक तुंगिया मांय, नियम नहीं गुण अधिक नों।।
(ज० स०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७४. *देव वैमानिक जाणियै, असुर नागकुमार।
सुवर्ण कहियै जोतिषी, यक्ष राक्षस धार॥

७५. किंनर किंपुरुष व्यंतर कह्या, गरुड-ध्वज ते सुवन्न।
भवनपति नों विशेष ए, गंधर्व महोरग जन्न॥

७४, ७५. देवासुरनागसुवण्णजक्खरक्खस्सकिन्नरकिंपुरिस-गरुलगंधव्वमहोरग
देवा—वैमानिकाः,...'सुवण्ण' त्ति सद्वर्णाः ज्योतिष्काः, यक्षराक्षसकिंनरकिंपुरुषाः—व्यन्तरविशेषाः, 'गरुल' त्ति गरुडध्वजाः सुपर्णकुमाराः—भवनपतिविशेषाः, गन्धर्वा महोरगाश्च—व्यन्तरविशेषाः।
(वृ०-प० १३५)

७६. आदि देई सुर-गण तिकै, निर्ग्रंथ प्रवचन्न।
तेहथी चलावी सकै नहीं, रक्त जिन-शासन्न॥

७६. आदिएहिं देवगणेहिं निग्गंथाओ पावयणाओ अणतिक्कमणिज्जा,

सोरठा

७७. 'असहेज्ज' पाठ पवित्त, मनुष्य चलावी नां सकै।
इहां सुर करि अचलित्त, बिहुं पद सम्यक्त्व दृढ़पणुं॥

७८. *निर्ग्रंथ ना प्रवचन नैं, संका रहित सुतेह।
अन्य दर्शन वंछा नहीं, धर्म फले निसंदेह॥

७८. निग्गंथे पावयणे निस्संकिया निक्कंखिया निव्वितिगिच्छा,

७९. लद्धट्ठा अर्थ लाधा जिणे, सांभलवा थी सोय।
गहियट्ठा अर्थ ग्रह्या बलि, हियै धारण थी जोय॥

७९. लद्धट्ठा गहियट्ठा
'लद्धट्ठ' त्ति अर्थश्रवणात् 'गहियट्ठ' त्ति अर्थावधारणात्। (वृ०-प० १३५)

८०. पुच्छियट्ठा अर्थ पूछिया, संशय ऊपनैं जेह।
पूछ्या अर्थ जाणवा थकी, अभिगहियट्ठा कहेह॥

८०. पुच्छियट्ठा अभिगयट्ठा
'पुच्छियट्ठ' त्ति सांशयिकार्थप्रश्नकरणात् 'अभिगहियट्ठ' त्ति प्रश्नितार्थस्याभिगमनात्। (वृ०-प० १३५)

८१. विणिच्छियट्ठा अर्थ नैं, निश्चय कीधा विशेख।
अर्थ तणां पर्याय नैं, जाणवा थी संपेख॥

८१. विणिच्छियट्ठा
'विणिच्छियट्ठ' त्ति ऐदम्पर्यार्थस्योपलम्भाद्।
(वृ०-प० १३५)

८२. हाड मींजा रंगी तेहनीं, जिन प्रवचन मांय।
प्रेम प्रीति कसूंबादि करि, रंग्या जिम कहिवाय॥

८२. अट्ठिमिंजपेम्माणुरागरत्ता
प्रेमानुरागेण—सर्वज्ञप्रवचनप्रीतिरूपकुसुम्भादिरागेण।
(वृ०-प० १३५)

बा०—'अट्ठिमिंजपेम्माणुरागरत्ता'—हाड-मिंजा ते हाड मध्यवर्ती धातु सर्वज्ञ-वचन प्रीतिरूप कुसुंबादि रागे करी रंगवा नी परै रंग्या छै जेहना, अथवा अस्थि, मिंजा नैं विषै जिनशासन-गत प्रेमानुरागरक्त छै जिके, अथवा अट्ठि असंख्याता प्रदेश अनैं मिंजा कहितां तेहनैं मध्यवर्त्ती अष्ट रुचक प्रदेश ते सर्वज्ञ वचन-प्रीत रूप कसूंभादि रागे करी रंगवा नी परै रंग्या छै।

बा०—'अट्ठिमिंजपेम्माणुरागरत्ता' अस्थीनि च—कीकसानि मिञ्जा च—तन्मध्यवर्त्ती धातुरस्थिमिञ्जास्ताः प्रेमानुरागेण—सर्वज्ञप्रवचनप्रीतिरूपकुसुम्भादिरागेण रक्ता इव रक्ता येषां ते तथा, अथवाऽस्थिमिञ्जासु जिनशासनगतप्रेमानुरागेण रक्ता ये ते तथा। (वृ०-प० १३५)

८३. पुत्रादिक नै इम कहै, अहो आउखावंत।
एह निर्ग्रंथ प्रवचन ते, अर्थ परम-अर्थ तंत॥

८३. अयमाउसो! निग्गंथे पावयणे अट्ठे अयं परमट्ठे
आयुष्मन्निति पुत्रादेरामन्त्रणं। (वृ०-प० १३५)

८४. ए निर्ग्रंथ प्रवचन विना, धन धान्य सुत मित्त।
कलत्रे अनै पाखंडिका, ते अनर्थ अपवित्त॥

८४. सेसे अणट्ठे,
शेषं—निर्ग्रन्थप्रवचनव्यतिरिक्तं धनधान्यपुत्रकलत्रमित्रकुप्रवचनादिकमिति। (वृ०-प० १३५)

*लय—प्रभवो मन में चितवै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८५. उसिहफलिहा नुं अर्थ ए, उन्नत अधिक पवित्त।
स्फटिक तणी पर तेहना, निर्मल छै अति चित्त॥

८६. मौनींद्र प्रवचन नै विषे, मन अतिहि संतुष्ट।
वृद्ध व्याख्या नुं अर्थ ए, जिन-धर्म मांहै पुष्ट॥

८७. अन्य आचारज इम कहै, ऊंची आगल कीध।
घर नां द्वार जड़ै नहीं, भिक्षु अर्थे प्रसीध।

८८. अवंगुयद्वारा कह्या, कपाटादि करेह।
घर नां द्वार जड़ै नहीं, राखै उघाड़ा जेह॥

८९. शुद्ध सम्यक्त्व लाभे करी, किणहि पाखंडी सूं जेह।
डरता किंवाड़ जड़ै नहीं, वृद्ध - व्याख्या अर्थ एह॥

९०. अन्य आचारज इम कहै, भिक्षु प्रवेशन काज।
घर नां द्वार जड़ै नहीं, अतिहि उदार समाज॥

सोरठा

९१. 'द्वितिय सूयगडांग मांहि, दूजा अध्ययन नैं विषे।
ए बिहुं पद नों ताहि, अर्थ दीपिका में इसो॥

९२. उसियफलिहा ताम, उच्च स्फटिक चित जेहना।
वर्द्धमान परिणाम, एकहीज ए अर्थ त्यां॥

९३. बलि अवंगुयद्वार, घर नां द्वार जड़ै नहीं।
पाम्या सुध मग सार, न करै भय किणही थकी॥

९४. इम इक अर्थ उदार, पिण भिक्षु प्रवेश नों अरथ।
न कियो तिहां लिगार, निर्णय कीज्यो चतुर नर॥

९५ सप्तम अध्ययन मांहि, कियो दीपिका में अरथ।
उसिहफलिहं ताहि, निर्मल स्फटिक तणी परै॥

९६. बलि अवंगुयद्वार, घर नां द्वार जड़ै नहीं।
परतीर्थिक पिण धार, तसु घर पैसी धर्म कहै॥

९७. तसुं परिजन पिण जेह, सम्यक्त्व थकी चलायवा।
समर्थ नहीं छै तेह, तसुं डरतो द्वार जड़ै नहीं॥

९८. बिहुं पद नों पहिछाण, अर्थ कियो इण रीत सूं।
पिण भिक्षू नों जाण, नाम तिहां आख्यो नथी॥

९९. हेमविमलसूरि सीस, हर्षकुशल कृत दीपिका।
तपा - गच्छ सुजगीस, अर्थ कियो तिम आखियो॥

८५. ऊसियफलिहा
उच्छ्रितम्—उन्नतं स्फटिकमिव स्फटिकं चित्तं येषां ते उच्छ्रितस्फटिकाः। (वृ०-प० १३५)

८६. मौनीन्द्रप्रवचनावाप्त्या परितुष्टमानसा इत्यर्थ इति वृद्धव्याख्या। (वृ०-प० १३५)

८७. अन्ये त्वाहुः उच्छ्रिताः—अर्गलास्थानादपनीयोर्ध्वीकृताः...परिघाः—अर्गला येषां ते उच्छ्रितपरिघाः, अथवोच्छ्रितो—गृहद्वारादपगतःपरिघो येषां ते उच्छ्रितपरिघाः औदार्यातिशयादतिशयदानदायित्वेन भिक्षुकाणां गृहप्रवेशनार्थमनर्गलितगृहद्वारा इत्यर्थः। (वृ०-प० १३५)

८८. अवंगुयदुवारा
अप्रावृतद्वाराः—कपाटादिभिरस्थगितगृहद्वारा इत्यर्थः। (वृ०-प०-१३५)

८९. सद्दर्शनलाभेन न कुतोऽपि पाषण्डिकाद्बिभ्यति, शोभनमार्गपरिग्रहेणोद्घाटशिरसस्तिष्ठन्तीति भाव इति वृद्धव्याख्या। (वृ०-प० १३५)

९०. अन्ये त्वाहुः—भिक्षुकप्रवेशार्थमौदार्यादस्थगितगृहद्वारा इत्यर्थः। (वृ०-प० १३५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१००. अथवा वृत्ति मझार, द्वितीय अध्ययन अर्थ इम।
उसिहफलिहा सार, स्फटिक जेम अंतःकरण॥
१०१. इहां कह्यु छै एह, मौनींद्र दर्शण पामवै।
अति ही तुष्टपणेह, मन छै ते श्रावक तणां॥
१०२. वलि अवंगुयद्वार, घर नां द्वार जड़ै नहीं।
रहै उघाड़ै द्वार, तसु कारण आगल कहै॥
१०३. सम्यग् दर्शण पाय, डरै नहीं किणही थकी।
शोभन मारग ताय, ते प्रति आदरवै करी॥
१०४. बली सातमें झयण, जाव शब्द में पाठ ए।
उसिहफलिहा वयण, स्फटिक तणी पर निमल जश॥
१०५. तथा अवंगुयद्वार, घर नों द्वार जड़ै नहीं।
परतीर्थिक पिण धार, तसु घर में पैसी करी॥
१०६. जो कोइ भाखै जेह, तसु परिजन पिण छै तिकै।
सम्यक्त्व थकीज तेह, चलायवा समरथ नहीं॥
१०७. शीलंकाचार्य ताम, बिहुं पद अर्थ कियो इसो।
न कह्यो भिक्षुक नाम, संवत् सात सौ ते थया॥
१०८. ए चिहुं ठामै सार, अर्थ एकहिज आखियो।
पिण भिक्षुक नों धार, द्वितिय अर्थ कोधो नथी॥
१०९. भगवती - वृत्ति मझार, अन्य आचार्य नों कथन।
द्वितीय अर्थ विस्तार, भिक्षु - प्रवेश नों कियो॥
११०. मुनि नैं दे चिहुं आ'र, अप्रासुक अनेषणीक।
अष्टम शतक मझार, अल्प पाप बहु निर्जरा॥
१११. तिहां वृत्ति रै मांय, कारण पडियां थी कह्यो।
अन्य आचारज वाय, कारण बिण पिण थापियो॥
११२. ए बिहुं विरुद्ध कहाय, मानैं कारण सूं जिकै।
अन्य आचारज वाय, निकारणैं मानैं न किम॥
११३. मानै भिक्षु प्रवेश, अन्य आचार्य नों कथन।
बिण कारण दै एस, ते पोतै पिण मानै नथी॥
११४. वृत्ति विषै जे वाय, सूत्र थकी मिलतो अरथ।
तेह मानणो ताय, अणमिलतो नहि मानणो॥
११५. भिक्षू मुनि नै काज, द्वार उघाड़ा राखवै।
ए पिण अर्थ समाज, मिलै न्याय इण रीत सूं॥
११६. सहजै खुल्या किवाड़, जड़ै नहीं ते द्वार प्रति।
मुनी भावना सार, भावै श्रावक दान नीं॥
११७. वलि अपर भेषधार, पट खोली मांहै धसे।
मुनि नांवै खोल किवाड, तिण सूं ए कहि भावना॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११८. असणादिक अवलोय, निर्ग्रंथ नैं प्रतिलाभता।
विचरै श्रावक सोय, आगल एहवो पाठ छै॥

११९. पिण अन्य भिक्षु प्रतेह, विचरै दान देता छता।
इसो पाठ न कहेह, तिण सूं मुनि नैं अर्थ ह्वै॥

१२०. आणंद श्रावक सार, जाव शब्द में पाठ है।
उसिह - फलिहा धार, अवंगुयद्वारा बली॥

१२१. अन्यतीर्थी नैं दान, देवण देवावण तणा।
आणंद त्याग सुजान, प्रत्यक्ष आख्यो पाठ में॥

१२२. अन्यतीर्थि नां ताहि, भिक्षु प्रति देवै नहीं।
बली दिवावै नाहिं, विचरै मुनि प्रतिलाभतो॥

१२३. तिण सूं आनंद जोय, द्वार उघाड़ा राखवै।
ए किण अर्थे होय?, बुद्धिवंत न्याय विचारजो॥

१२४. द्वितीय अंग नी ताय, वृत्ति दीपिका नैं विषै।
सम्यक्त्व दृढ़ सवाय, अर्थ एकहिज आखियो॥

१२५. शीलंकाचार्य सोय, अर्थ बिहुं पद नों कियो।
अति सम्यक्त्व दृढ़ जोय, बली दीपिका नैं विषै॥

१२६. अन्य आचारज वाय, वार - वार मुख आणता।
पिण शीलांक सुहाय, कह्यु तिको मानै न किम॥

१२७. श्रावक जश नैं काज, दान दियै अन्य भिक्षु प्रति।
पिण धर्म पुन्य सुख साज, तिण मांहै जाणै न ते॥

१२८. *इहां तुंगिया अधिकार, उसिहफलिहा आखिया।
वलि अवंगुयद्वार, तास न्याय ओलखाविया'॥
(ज० स०)

१२९. प्रीतिकारक लोकां भणी, प्रतीतिकारक थाय।
अन्तःपुर वा घर विषै, प्रवेश छै अधिकाय॥

१३०. अतिहि धार्मिकपणैं करी, सर्व स्थान विषेह।
गयां आशंका न ऊपजै, प्रीति हीज उपजेह॥

वा०—अन्य आचार्य कहै छै—तेहना घर मां कोई सत्पुरुष प्रवेश करै तो तेहथी तेहनैं अप्रीति न हुवै, कारण तेहनैं ईर्ष्या भाव नथी। अथवा अप्रीतिकारिया अंतःपुर अनैं पर-घर नैं विषै प्रवेश छांड्यो छै जिणै।

तथा दूजै श्रुतखंध सूयगडांग अध्येन सातवैं की वृत्ति में शीलंकाचार्य कह्यो ते कहै छै—निषेध्यो अन्य जन नों प्रवेश जे स्थानक—भंडार, अंतःपुरादिक, तेहनैं विषै पिण प्रसिद्ध श्रावक नां गुणैं करी अस्खलित प्रवेश छै जेहनों।

१३१. पर्व दिवस अनुष्ठान ते, पोसह अरु उपवास।
चउदश नैं फुन अष्टमी, पूनम अमावस तास॥

*लय—प्रभवो मन में चितवै

१२९. चियत्तंतेउरघरप्पवेसा
'चियत्तो' त्ति लोकानां प्रीतिकर एवान्तःपुरे वा गृहे वा प्रवेशो येषां ते तथा। (वृ०-प० १३५)

१३०. अतिधार्मिकतया सर्वत्रानाशङ्कनीयास्त इत्यर्थः। (वृ०-प० १३५)

वा०—अन्ये त्वाहुः—'चियत्तो' त्ति नाप्रीतिकरोऽन्तःपुरगृहयोः प्रवेशः—शिष्टजनप्रवेशनं येषां ते तथा, अनीर्ष्यालुताप्रतिपादनपरं चेत्थं विशेषणमिति, अथवा 'चियत्तो' त्ति त्यक्तोऽन्तःपुरगृहयोः परकीययोर्यथाकथञ्चित्प्रवेशो यैस्ते तथा। (वृ०-प० १३५, १३६)

१३१. चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु
पौषधं—पर्वदिनानुष्ठानं तत्रोपवासः—अवस्थानं पौषधोपवासः...'उद्दिट्ठ' त्ति उद्दिष्टा—अमावस्या। (वृ०-प० १३६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३२. प्रतिपूर्ण पोसह भलो, आहार तनु-संस्कार।
अब्रह्म व्यापार छांडवै, पालतां छतां सार॥

१३२. पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा,
'पडिपुण्णं पोसहं' ति आहारादिभेदाच्चतुर्विधमपि सर्वतः। (वृ०-प० १३६)

१३३. श्रमण तपस्वी निर्ग्रंथ नैं, फासु एषणीक चिहुं आ'र।
वस्त्र पात्र कांबलो, रजोहरण उदार॥

१३३. समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं।

१३४. पीढ़ अनैं फलग पाटियो, सेज्या स्थानक उदार।
दर्भादिक लघु साथ रै, ओषध भेषज सार॥

१३४. पीढ-फलग-सेज्जा संथारएणं ओसह-भेसज्जेणं

वा०—ओषधि ते एक द्रव्य आश्रय, भेषज्य ते द्रव्य-समुदाय रूप। तथा ओषधि ते त्रिफलादि, भेषज्य ते पथ्य।

१३५. इम मुनि नैं प्रतिलाभतां, ग्रह्या जे यथाजोग।
ते तप करि आतम भावता, विचरै सुप्रयोग॥

१३५. पडिलाभेमाणा...
अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरति। (श० २।६४)

१३६. अंक पच्चीस नुं देश ए, इकचालीसमीं ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' संपति न्हाल॥

ढाल : ४२

दूहा

१. तुंगिया नां श्रावक भला, पालै व्रत पचखाण।
कवण प्रकार थयो तदा, सांभलजो सुविहाण॥

*आज आनन्दा रे। (ध्रुपदं)

२. तिण कालै नैं तिण समय आनंदा रे, पार्श्वसंतानिया जान कै,
आज आनंदा रे।
स्थविरा श्रुत-वृद्धा जिके आनन्दा रे, भगवंत महिमावान कै,
आज आनंदा रे॥

२. तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो
'थेर' त्ति श्रुतवृद्धाः। (वृ०-प० १३६)

३. जाति-संपन्ना जाणवा, जाति—माता नों पक्ष।
संपन्ना उत्तम युक्त ही, कुल—पितृ-पक्ष सुदक्ष॥

३. जातिसंपन्ना कुलसंपन्ना

४. बल-संपन्ना आखिया, रूप-संपन्ना सार।
विनय-संपन्ना विमल ही, ज्ञान-संपन्ना उदार॥

४. बलसंपन्ना रूवसंपन्ना विणयसंपन्ना नाणसंपन्ना

सोरठा

५. बल संघयण विशेख, तेह थकी जे ऊपनों।
प्राण जोर सपेख, संपन्न तिण कर युक्त ही॥

६. रूप-संपन्ना एस, शोभन जे आचार करि।
युक्त मुनि नैं वेस, अथवा तनु सुंदर पणो॥

६. 'रूवसंपन्न' त्ति इह रूपं—सुविहितनेपथ्यं शरीरसुंदरता वा तेन सम्पन्नाः।

*लय—बाड़ी फली अति भली मन भमरा रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. *विनय, ज्ञान, दर्शन वलि, चरित्त-संपन्ना समाज।
लज्जा-संपन्ना प्रसिद्ध ही, अथवा संजम लाज॥

८. फुनि मुनि लाघव-संपन्ना, द्रव्य थी अल्प उपधि।
भाव थी तीन गारव तज्या, छोड़ी अहंकार नी बुद्धि॥

९. ओयंसी मन-वल युक्त है, तेयंसी तनु-प्रभा जन्न।
वच्चंसी विशिष्ट प्रभाव ही, अथवा विशिष्ट वचन्न॥

१०. जसंसी जशवंत प्रसिद्ध ही, जीता क्रोध जोता मान।
जीता माया जीता लोभ नैं, जीता निद्रा जान॥

११. जीता इंद्रिय नैं मुनि, जीता परीसह जेह।
क्रोधादि उदय आयां प्रतै, निर्फल करिवै जीतेह॥

१२. जीवण री आशा नहीं, मरण तणो भय नांय।
जाव कुत्रिकापण जिसा, महामोटा मुनिराय॥

सोरठा

१३. इहां जाव शब्द रै मांहि, तपसा करी प्रधान है।
गुण संयम-गुण ताहि, तिण कर प्रधान ते स्थविर॥

१४. इहां तप सयम ग्रहण, ते बिहुं प्रधान आखिया।
शिव-अंग श्री जिन वयण, तसु फल अघ तोड़ै रुकै॥

१५. करणे करी प्रधान, पिंडविशुद्धचादिक करी।
चरण-प्रधान सुजाण, ते महाव्रतादिक करी॥

१६. निग्रह-प्रधान जेह, दंड अन्याय करै जसुं।
अनाचार सेवेह, तास निषेधी दंड दियै॥

१७. निश्चय करी प्रधान, अवश्यमेव करिवूं जिको।
करै मुनी गुणखान, तथा तत्त्व-निर्णय प्रवर॥

१८. मार्दव करी प्रधान, तेह मान-निग्रह करी।
आर्जव प्रधान जान, ए माया-निग्रह करी॥

१९. जितक्रोधादि पणेह, मार्दव आदि गुणां तणो।
प्रधानपणों जणेह, तो स्यूं मार्दव आदि फुन?

२०. जितक्रोधादि विषेह, क्रोधादी उपजै कदा।
तथापि तेह प्रतेह, करै विफलता महामुनि॥

२१. मार्दव आदि सुजान, प्रधानपणां विषै बली।
उदय-अभाव पिछाण, तिण सूं मार्दव आदि फुन॥

वा०—अथवा जे भणी ए क्रोधादिक जीता छै, इण कारण थकीज क्षमादि प्रधान, इम हेतु-हेतुवान् भाव थकी विशेष छै।

*लय—बाड़ी फली अति भली मन भमरा रे

७. दंसणसंपन्ना चरित्तसंपन्ना लज्जासंपन्ना
लज्जा—प्रसिद्धा संयमो वा। (वृ०-प० १३६)

८. लाघवसंपन्ना
लाघवं—द्रव्यतोऽल्पोपधित्वं भावतो गौरवत्यागः। (वृ०-प० १३६)

९. ओयंसी तेयंसी वच्चंसी
'ओजस्विनो' मानसावष्टम्भयुक्ताः 'तेजस्विनः' शरीर-प्रभायुक्ताः 'वर्चस्विनः' विशिष्टप्रभावोपेताः 'वचस्विनो वा' विशिष्टवचनयुक्ताः। (वृ०-प० १३६)

१०. जसंसी जियकोहा जियमाणा जियमाया जियलोभा जियनिद्दा
'जसंसी' ति ख्यातिमन्तः। (वृ०-प० १३६)

११. जिइंदिया जियपरीसहा

१२. जीवियास-मरणभयविप्पमुक्का जाव कुत्तियावणभूया

१३, १४. इह यावत्करणादिदं दृश्यं—'तवप्पहाणा गुणप्प-हाणा' गुणाश्च संयमगुणाः, तपः संयमग्रहणं चेह तपः-संयमयोः प्रधानमोक्षांगताभिधानार्थं। (वृ०-प० १३६)

१५. करणप्पहाणा चरणप्पहाणा
तत्र करणं—पिण्डविशुद्धयादि, चरणं—व्रतश्रमण धर्मादि। (वृ०-प० १३६)

१६. निग्गहप्पहाणा
निग्रहः—अन्यायकारिणां दण्डः। (वृ०-प० १३६)

१७. निच्छयप्पहाणा
निश्चयः—अवश्यंकरणाभ्युपगमस्तत्त्वनिर्णयो वा। (वृ०-प० १३६)

१८. 'मद्दवप्पहाणा अज्जवप्पहाणा'

१९. ननु जितक्रोधादित्वान्मार्दवादिप्रधानत्वमवगम्यत एव तत्किं मार्दवेत्यादिना? (वृ०-प० १३६)

२०, २१. उच्यते, तत्रोदयविफलतोक्ता मार्दवादिप्रधानत्वे तूदयाभाव एवेति। (वृ०-प० १३६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. लाघव करी प्रधान, दक्षपणूंज क्रिया विषै।
क्षांति प्रधान जान, तेह क्रोध-निग्रह करी॥

२२. लाघवप्पहाणा खंतिप्पहाणा
लाघवं—क्रियासु दक्षत्वं। (वृ०-प० १३६)

२३. गुप्ति[1] कर सुप्रधान, मनोगुप्ति आदिक करी।
मुक्ति प्रधान जान, ते निर्लोभपणैं करी॥

२३. मुत्तिप्पहाणा

२४. विद्या करी प्रधान, ते प्रज्ञप्ती आदि करि।
देवी साधन जान, अक्षर अनुकेडै तिका॥

२४. विज्जाप्पहाणा

२५. मंत्रे करी प्रधान, हरिणगमेषी प्रमुख ही।
अधिष्ठित सुविधान, तेह तणा पिण जाण मुनि॥

२५. मंतप्पहाणा

२६. अथवा विद्या सोय, साधना करी सहित जे।
मंत्र जिको अवलोय, साधना करी रहित ते॥

२७. वेद करी सुप्रधान, आगम चिहुं वेदज्ञ वा।
ब्रह्म प्रधान सुजान, ब्रह्म कुशल अनुष्ठान वा॥

२७. वेयप्पहाणा बंभप्पहाणा

२८. फुन नय करी प्रधान, नैगमादि वा नीतिवर।
नियम प्रधान पिछाण, अभिग्रह कर उत्तम पवर॥

२८. नयप्पहाणा नियमप्पहाणा

२९. सत्य करी सुप्रधान, सम्यग् वादे कर पवर।
शौच प्रधान सुजान, द्रव्य भाव भेदे करी॥

२९. सच्चप्पहाणा सोयप्पहाणा

३०. द्रव्य शौच गुण एह, वर निर्लोभपणैं करी।
वा निर्लेपपणेह, भाव शौच आचार शुद्ध॥

३१. चारू वण्णा हीर, वर्ण-कीर्त्ति जेहनी भली।
वा गौरादि शरीर, अथवा प्रज्ञा जसुं भली॥

३१. चारुवण्णा

३२. शुद्धि हेतु भावेह, अथवा सुहृद मित्र छै।
सर्व जीव नैं जेह, सोही रव नों अर्थ ए॥

३२. सोही

३३. निर्मल भावे तेह, शोधी कहियै तेहनै।
अथवा सुहृद जेह, मित्र सर्व जीवां तणा॥

३३. शुद्धिहेतुत्वेन शोधयः सुहृदो वा—मित्राणि जीवानामिति गम्यम्। (वृ०-प० १३६)

३४. बलि नियाणा रहीत, वर्जित उत्सुक भाव फुन।
संजम पवर वदीत, तेहथी बाहिर लेश नहिं॥

३४. अणियाणा अप्पुस्सुया अवहिल्लेसा

३५. भला चारित्र में रक्त, प्रश्न अनै व्याकरण जसुं।
वच निर्दूषण व्यक्त, तथा विरल छेटी नथी॥

३५. सुसामण्णरया अच्छिद्दपसिणवागरणा

३६. जाव शब्द में जान, पाठ वृत्ति में आखिया।
तेह थकी पहिछान, एह अर्थ दाख्या इहां॥

३७. कुत्रिक - आपण भूत, स्वर्ग मृत्यु[2] पाताल भू।
लोक त्रिहूं नी सूत, वस्तू जसुं हाटै लहै॥

३७. कुत्तियावणभूया
कुत्रिकं—स्वर्गमर्त्यपातालल्लक्षणं भूमित्रयं तत्सम्भवं वस्त्वपि कुत्रिकं तत्सपादक आपणो—हट्टः कुत्रिकापणः। (वृ०-प० १३६)

---

१. अंगसुत्ताणि भाग २ श० २।९५ में 'गुत्तिप्पहाणा' पाठ नहीं है। टीका में भी यह पद व्याख्यात नहीं है। जयाचार्य ने इस पाठ की जोड़ की है। संभव है उन्हें कोई ऐसा आदर्श प्राप्त था, जिसमें उक्त पाठ रहा है।

२. मर्त्य लोक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८. तेह सरीखा स्वाम, वंछित अर्थ पमाडवा।
लब्धि युक्त करि ताम, तथा सर्व गुण सहित जे ।।

वा०—कु कहितां भूमि, त्रिक कहितां स्वर्ग, मृत्यु, पाताल लक्षण, एतलै स्वर्ग मृत्यु पाताल ए त्रिहुं पृथ्वी नैं विषे जे वस्तु हुई ते इहां लाभै, तेह थी ते कुत्रिकापण। ए हाट देवाधिष्ठित छै ते माटै वंछित वस्तु मिलै। ते सरीखा स्थविर वंछित अर्थ पमाडवानी लब्धियुक्त पणैं करी, अथवा सकल गुण सहित पणैं करी ते ओपमा।

३९. *घणां सूत्र ना जाण छै, वलि जसुं बहु परिवार।
पांच सौ संत संघात ही, परिवरया परिकर सार।।

४०. जिम अनुक्रमैं चालता थका, गमन करता ग्रामानुग्राम।
सुखे सुखे विचरता थका, निज इच्छा करि ताम।।

४१. जिहां तुंगिया नगरी अछै, जिहां पुष्पवती चैत्य।
तिहां आवै आवी करी, साधु नां वृंद समेत्य।।

४२. यथा जोग्य अवग्रह प्रतै, आज्ञा लेइनै जेह।
संजम तप करि आतमा, भावंता विचरेह।।

४३. तुंगिया नगरी में तदा, स्थान सिंघाड़ आकार।
त्रिक त्रिण पंथ जिहां मिलै, चउक्क मिलै पंथ च्यार।।

४४. चच्चर[1] पंथ घणा मिलै, राजमार्ग महापंथ।
जाव एक दिशि सामनैं, लोक घणा जावंत।।

४५. श्रावक सुण ए वारता, हरष संतोष सुपाय।
जाव मांहोमांहि तेड़ी करी, बोलै एहवी वाय।।

४६. इम निश्चै देवानुप्रिया ! पास-संतानिया जाण।
स्थविर भगवंत पधारिया, जाति-संपन्न गुणखाण।।

४७. जाव यथायोग्य आज्ञा ग्रही, संजम तप करि सोय।
आत्मा नैं भावता छता, विचरै छै अवलोय।।

४८. महाफल हे देवानुप्रिया ! तथारूप स्थविर भगवंत।
तास नाम गोत्र सांभल्यां, गुण सुण हरष धरंत।।

४९. तो किसूं कहिवो साहमो जायनैं, वंदणा नैं नमस्कार।
प्रश्न पूछण सेवा तणो, जाव ग्रहिवा अर्थ सार।।

५०. ते भणी हे देवानुप्रिया ! चालो स्थविरां पास।
नमस्कार वंदणा करां, जाव सेवा करां तास।।

३८. तद्भूताः समीहितार्थसम्पादनलब्धियुक्तत्वेन सकलगुणोपेतत्वेन वा तदुपमाः। (वृ०-प० १३६, १३७)

३९. बहुस्सुया बहुपरिवारा पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडा

४०. अहाणुपुव्वि चरमाणा गामाणुगामं दूइज्जमाणा सुहंसुहेणं विहरमाणा

४१. जेणेव तुंगिया नगरी जेणेव पुप्फवइए चेइए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता

४२. अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता णं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति। (श० २।९५)

४३. तए णं तुंगियाए नयरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क
'सिंघाडग' त्ति शृंगाटकफलाकारं स्थानं त्रिकं—रथ्यात्रयमीलनस्थानं चतुष्कं—रथ्याचतुष्कमीलनस्थानम्।
(वृ०-प० १३७)

४४. चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु जाव एगदिसाभिमुहा निज्जायंति। (श० २।९६)
चत्वरं—बहुतररथ्यामीलनस्थानं महापथो—राजमार्गः। (वृ०-प० १३७)

४५. तए णं ते समणोवासया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा हट्ठतुट्ठ जाव सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

४६. एवं खलु देवाणुप्पिया ! पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो जातिसंपन्ना

४७. जाव अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता णं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

४८. तं महाफलं खलु देवाणुप्पिया ! तहारूवाणं थेराणं भगवंताणं नामगोयस्स वि सवणयाए,

४९. किमंग पुण अभिगमण-वंदण-नमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए जाव गहणयाए ?

५०. तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! थेरे भगवंते वंदामो नमंसामो जाव पज्जुवासामो।

*लय—बाडी फली अति भली मन भमरा रे

१. बहुत से आदर्शों में चच्चर के बाद चउम्मुह पाठ नहीं है। अंगसुत्ताणि भाग २ श० २।९६ में यह पाठ है। पर जयाचार्य को प्राप्त आदर्श में संभवतः यह पाठ नहीं था। टीका में भी इसकी कोई व्याख्या नहीं है। इसलिए इस पाठ की जोड़ प्राप्त नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५१. ए सेवा अम्ह नैं हुसी, इह-भव पर-भव मांय।
जावत् साथे आवसी, सेवा फल सुखदाय।।

५२. इम कहिनैं मांहो मांहि नों, वचन करी अंगीकार।
आप आपणा घर मझै, आया सहु तिण वार।।

५३. अंक पचीस नुं देस ए, बयालीसमीं ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' हरष विशाल।।

५१. एयं णे पेच्चभवे इहभवे य जाव आणुगामियत्ताए भविस्सति

५२. इति कट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति,पडिसुणेत्ता जेणेव सयाइं-सयाइं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति

ढाल : ४३

दूहा

१. स्नान करि बलि-कर्म कृत, तास अर्थ वृत्तिकार।
कीधो छै गृह-देवता, देखो हियै विचार।।

२. 'केइक इहां गृह देवता, जिन-प्रतिमा कहै हेव।
पिण इतलो जाणै नहीं, ए किण घर नां देव।।

३. तीर्थंकर तो छै सही, तीन लोक नां देव।
ते किम जिन-प्रतिमा भणी, घर नां देव कहेव।।

४. जिन-प्रतिमा जिन सारिखी, इम पिण कहिता जाय।।
बलि स्थापै घर-देवता, ए किम मिलसी न्याय?

५. कदापि कुल-देवी प्रतै, कहियै घर नां देव।
लौकिक हेतै पूजता, श्रावक पिण स्वयमेव।।

१. ण्हाया कयबलिकम्मा
स्नानान्तरं कृतं बलिकर्म यैः स्वगृहदेवतानां ते तथा।
(वृ०-प० १३७)

वा०—शतक ७ में उ० ९ में वृत्ति में ण्हाया 'कयबलिकम्मा' बलि-कर्म ते देवता नां इम कह्यो, ए किसा देवता? जिन-प्रतिमा हुवै तो जिन-प्रतिमा कहिता, पिण देवता कहिवा रो कांइ प्रयोजन?

दूहा

६. बलि-कर्म नों अर्थ धर्म-सी, स्नान तणोज विशेष।
कोधो बलि-कर्म शब्द करी, आया कारज शेष।।

७. ज्ञाता अध्येन दूसरे, सुत वांछा नैं हेत।
नागभूत यक्ष पूजवा, गई सुभद्रा तेथ।।

८. पोखरणी में स्नान करि, कीधा बलि-कर्म आम।
बाव मध्य किण देव नीं, प्रतिमा पूजी ताम।।

९. भीनी साड़ी ओढणो, एहवी छतीज तेह।
कमल वहु ग्रही नीकली, पुष्करणी थी जेह।।

१०. बहु पुष्प गंध धूपणो, माल्य प्रमुख अवलोय।
कांठे जे मूक्या प्रथम, तेह गृही नैं सोय।।

११. पाछै नाग घर आयनै, प्रतिमा पूजी आम।
जाव वेसमण नी बलि, पूजी आखी ताम।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. बलि-कर्म पोखरणी विषै, कीधो धुर आख्यात।
ते पुष्करणी नै विषै, किसा देव नीं जात?

सोरठा

१३. मल्लि पिता रै पास, आवंतां न्हाया कह्यो।
जाव शब्द में तास, बलिकम्मा ए पाठ छै॥
१४. बलि मल्लि पट राजान, समझावा आवी तदा।
जाव शब्द में जान, बलिकम्मा ए पाठ छै॥
१५. देखो मल्लि भगवान, प्रतिमा पूजी केहनीं।
अध्येन अष्टम जान, आख्यो ज्ञाता नैं विषै॥
१६. बलिकम्मा नों जाण, अर्थ कहै पूजा तणो।
ए जिन-प्रतिमा नी माण, कै पूजा कुल-देव नी?
१७. जो स्थापै जिन-बिंब, तो मल्लि तीर्थंकर छता।
पूजै तेह अचंभ, बलि प्रतिमा किण जिन तणी॥
१८. जिन-प्रतिमा नीं ताय, मल्लिनाथ पूजा करी।
तो भावे मुनि पाय, देखी प्रणमैं कै नहीं?
१९. बलि अढी द्वीप रे मांय, भावे जिन उत्कृष्ट थी।
इक सो सित्तर थाय, जघन्य बीस थी नहिं घटै॥
२०. तिहां द्रव्य-जिन घर मांय, भावै-जिन वंदै क नहीं?
बलि तसु वाण सुहाय, तसु लेखै किम नहिं सुणै?
२१. मल्लिनाथ घर मांहि, जिन-प्रतिमा पूजी कहै।
तो द्रव्य-जिन पिण ताहि, भावे-जिन वंदै न किम?
२२. जो थापै कुल-देव, मल्लिनाथ पूजा करी।
सुर सहाय स्वयमेव, किम न करै श्रावक समकती?
२३. स्नान तणोज विशेष, अर्थ करै बलिकर्म नों।
तो टल्यो क्लेश अशेष, सहु ठाम विशेषण स्नान नों॥

दूहा

२४. भगवती नवमा शतक में, तेतीसम उद्देश।
जमाली मज्जनघरे, स्नान बलिकर्म शेष॥
२५. अलंकार कर नीकल्यो, मज्जनघर थी हेव।
इण न्हावा नैं घर विषै, केहो पूज्यो देव?
२६. वर्णनाग जे नत्तुओ, मज्जन-घर में स्नान।
बलिकर्म करिनै नीकल्यो, मज्जन-घर थी जान॥
२७. शतक सातमैं भगवती, नवम उद्देशै हेव।
तिण न्हावा नैं घर मझै, केहो पूज्यो देव?
२८. देवानंदा ब्राह्मणी, बलिकर्म मज्जन गेह।
तिण न्हावा नैं घर किसो, पूज्यो देव कहेह॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९. द्वितीय उपंग प्रदेशि नृप, देव पूजवा जाय।
पहिलां न्हावा घर विषै, बलिकर्म कीधो ताय॥
३०. ज्ञाता अध्येन सोलमै, द्रोपदी मज्जन - गेह।
स्नान बलिकर्म कोतुका, प्रवर वस्त्र पहिरेह॥
३१. मज्जन-घर सूं नीकली, आवी जिन - घर मांय।
इतरा सूधी पाठ छै, देख विचारो न्याय॥
३२. पहिला तो न्हावो कह्यो, पछै कह्यो बलिकर्म।
पछै वस्त्र पहिरचा कह्या, हिव जोवो ए मर्म॥
३३. स्त्री जाति स्वभावे नग्न थइ, न्हावा बैठी हेव।
त्यां न्हावा नै घर मझै, केहो पूज्यो देव?

सोरठा

३४. आपात चिलाती न्हाय, कय बलिकम्मा पाठ त्यां।
जंबूद्वीपपण्णती मांय, किसो देव तिहां पूजियो?

दूहा

३५. कोणक जिन वंदन गयो, कह्यो स्नान विस्तार।
बलिकर्म शब्दज मूलगो, नत्थि तिहां अवधार[1]॥

सोरठा

३६. बलिकर्म शब्दे जेह, पूजा जिन-प्रतिमा तणी।
तो कोणिक अधिकारेह, जिन-वंदन समये न किम?
३७. बलि जंबूद्वीपपण्णत्ती मांहि, भरतेश्वर न्हाया तिहां।
कोणक नी परै ताहि, बलिकर्म शब्द न मूलगो॥
३८. स्नान तणो जिण स्थान, विस्तर पणै न वर्णव्यो।
तिहां बलिकम्मा जान, पाठ देख निर्णय करो॥
३९. जलांजली परमुख, स्नान करंतो जे करै।
कुरलादिक परतख, स्नान विशेषण एह छै॥
४०. ते माटै अवलोय, बलिकम्मा जे पाठ नुं।
स्नान विशेषण सोय, अर्थ धर्मसी इम कियो॥

---

१. ओवाइयं सू० ६३

जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ अणुपविसित्ता समत्तजालाउलाभिरामे विचित्तमणिरयणकुट्टिमतलेरमणिज्जेण्हाणमंडवंसि नाणामणिरयणभत्तिचित्तंसि ण्हाणपीढंसि सुहणिसण्णे सुहोदएहिं गंधोदएहिं पुप्फोदएहिं सुद्धोदएहिं पुणो-पुणो कल्लाणग-पवरमज्जणविहीए मज्जिए तत्थ कोउयसयएहिं बहुविहेहिं कल्लाणग-पवरमज्जणावसाणे पम्हलसुकुमालगंधकासाइलूहियंगे सरससुरहिगोसीसचंदणाणुलित्तगत्ते अहयसुमहग्घदूसरयणसुसंवुए सुइमालावण्णगविलेवणे य आविद्धमणिसुवण्णे कप्पियहारद्धहारतिसरय-पालंब-पलंबमाणकडिसुत्तसुकयसोभे पिणद्धगेवेज्जग अंगुलिज्जगललियंगयललियकयाभरणे...।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१. वृत्तिकार कह्यु ताहि, बलिकर्म ते गृह देवता।
तसु पूजा करि ताहि, इहां कुल देवी संभवै ।।
४२. स्नान विशेषण सोय, वा पूजी गृह देवता।
उभय अर्थ अवलोय, सत्य सर्वज्ञ वदै तिको' ।।

(ज० स०)

दूहा

४३. हिव श्रावक तुंगिया तणा, स्नान बलिकर्म कीध।
बलि कोतुक कीधा तिणे, तिलकादि सुप्रसीध ।।
४४. मंगलीक नैं अर्थ बलि, सरसव दही अक्षत।
दूब अंकुरादिक ग्रहै, वृत्तिकार ए कृत ।।
४५. जिम ए मग लोकीक है, सावज्ज कारज जाण।
बलिकम्मे पिण इमज है, न्याय हिया में आण ।।
४६. दुःसुपनादिक टालिवा, करिवा योग्य अवश्य।
ते कार्य मंगलीक करी, लोकिक मग ए रहस्य ।।

वा०—सुद्धप्पावेसाइंति। सुद्धप्पा कहितां शुद्ध आत्मा ते महान आत्मा, वेसाइं कहितां जोग्य वेस। अथवा सुद्धप्पावेसाइं कहितां राजादिक नीं सभा नैं विषै प्रवेश करवा जोग्य प्रवर मंगलीक वस्त्र पहिर्या।

४७. नृपति प्रमुख नीं जे सभा, प्रवेश योग्य पिछाण।
शुद्ध वस्त्र मंगलीक वर, पहिरचा उत्तम जाण ।।
४८. वस्त्र पवर बहु पहिरिया, ए प्रथम पाठ अर्थ पेख।
पवर हुवै जिम पहिरिया, द्वितीय पाठ अर्थ देख ।।

४९. अल्प भार अरु मोल बहु, अलंकृत करि देह।
निज-निज घर सूं नीकल्या, थया एकठा तेह ।।
५०. पग विहारचारी थका, तुंगिया नैं मध्य होय।
पुष्फवती जिहां चैत्य है, तिहां आया अवलोय ।।

*हो म्हारा तिरण तारण जिनराज पार्श्व ना स्थविर संतानिया सारं।

(ध्रुपदं)

५१. स्थविर भगवंत नैं पंच प्रकारैं, अभिगमण साचवंत।
सचित द्रव्य नैं अलगा मेल्या, पुष्पादि जेह तजंत ।।

४३, ४४. कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता
कौतुकानि— मषीतिलकादीनि, मंगलानि तु—सिद्धार्थ-कदध्यक्षतदूर्वाकुरादीनि। (वृ०-प० १३७)

४६. दुःस्वप्नादिविघातार्थमवश्यकरणीयत्वात्। (वृ०-प० १३७)

वा०—'सुद्धप्पावेसाइं' त्ति शुद्धात्मनां वैष्याणि—वेषोचितानि अथवा शुद्धानि च तानि प्रवेश्यानि च—राजादिसभाप्रवेशोचितानि शुद्धप्रवेश्यानि। (वृ०-प० १३७)

४७. सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिया

४८. 'वत्थाइं पवराइं परिहिय' त्ति क्वचित्दृश्यते, क्वचिच्च 'वत्थाइं पवरपरिहिय' त्ति, तत्र प्रथमपाठो व्यक्तः, द्वितीयस्तु प्रवरं यथाभवत्येवं परिहिताः प्रवरपरिहिताः। (वृ-प० १३७)

४९. अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा सएहिं-सएहिं गिहेहिंतो पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता एगयओ मेलायंति,

५०. पायविहायचारेणं तुंगियाए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति निग्गच्छित्ता जेणेव पुप्फवतिए चेइए तेणेव उवागच्छंति,

५१. थेरे भगवंते पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छंति, तं जहा—सच्चित्ताणं दव्वाणं विओसरणयाए सच्चित्ताणं त्ति पुष्पताम्बूलादीनां। (वृ०-प० १३७)

---

*लय—हो म्हारा राजा रा गुरुदेव बाबाजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५२. अचित्त द्रव्य वस्त्रादिक अणतजिवे, छत्र[1] पानही शस्त्रादि छोडै।
इक पट वस्त्रे उत्तरासंग कीधो, देख्यै छतै विहुं कर जोडै॥

५३. चंचल मन नैं एकत्व कीधो, स्थविर भगवंत पै आया।
जीमणा कर थी प्रारंभी प्रदक्षिण, करै तीन वार हुलसाया॥

५४. जाव करै तिहुं जोग थी सेवा, स्थविर भगवंत तिवार।
ते श्रमणोपासक तेहवी मोटी परषद में, च्यार याम धर्म कहै सार॥

५५. केसी श्रमण जिम वाण प्रकासी, जाव पाली श्रावक नों धर्म।
आज्ञाए करो आराधक होवै, जाव धर्म कह्यु पर्म॥
५६. तिण अवसर ते वहुला श्रावक, ते स्थविर भगवंत रे पाह्यो।
धर्म सुणी फुन हृदय धरी नैं, पाया हरष संतोष सवायो॥
५७. जाव हियो विकस्यो छै तेहनुं, तीन वार सुविचार।
दक्षिण कर थी प्रारंभी प्रदिक्षण, करै करीनै तिवार॥
५८. जाव करै तिहुं जोग थी सेवा, इम बोल्या अवलोय।
हे भगवंत संजम नों स्यूं फल?, स्वामी! तप नो फल स्यूं होय?
५९. तव स्थविर भगवंत कहै श्रावका नैं, अहो आर्य संजम फल सोय।
नवा कर्म अणउपजायवूं ते, अनाश्रवपणो संवर होय॥

६०. तप नुं फल वोदाण कह्यो छै, पूर्व कृत अवलोय।
कर्म रूप वन गहन प्रतै जे, लूणवूं छेदवूं होय॥

६१. अथवा जेह पूर्वलो कीधो, कचरो कर्म रूप जेह।
तास शोधन ते अलगा करिवूं, आतम प्रति शुद्ध करेह॥

५२. अचित्ताणं दव्वाणं अविओसरणयाए, एकसाडिएणं उत्तरासंगकरणेणं चक्खुप्फासे अंजलिप्पग्गहेणं।
'अचित्ताणं' ति वस्त्रमुद्रिकादीनाम् अविउसरणयाए त्ति अत्यागेन। (वृ०-प० १३७)
५३. मणसो एगत्तीकरणेणं जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेंति करेत्ता
५४. जाव तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासंति। (श० २।९७)
तए णं ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं तीसे महइ-महालियाए महच्चपरिसाए चाउज्जामं धम्मं परिकहेंति,
५५. जहा केसिसामिस्स, जाव समणोवासियत्ताए आणाए आराहए भवति जाव धम्मो कहिओ। (श० २।९८)
५६. तए णं ते समणोवासया थेराणं भगवताणं अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा
५७. जाव हरिसवसविसप्पमाणहियया तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेंति,
५८. करेत्ता एवं वयासी—संजमेणं भंते! किंफले? तवे किंफले? (श० २।९९)
५९. तए णं ते थेरा भगवंतो ते समणोवासए एवं वयासी—संजमे णं अज्जो! अणण्हयफले।
'अणण्हयफले' त्ति न आश्रवः अनाश्रवः, अनाश्रवो—नव कर्म्मानुपादानं फलमस्येत्यनाश्रवफलः संयमः।
(वृ०-प० १३८)
६०. तवे वोदाणफले (श० २।१००)
व्यवदानं—पूर्वकृतकर्म्मवनगहनस्य लवनम्।
(वृ०-प० १३८)
६१. प्राक्कृतकर्म्मकचवरशोधनं वा फलं यस्य तद्व्यवदानफलं तप इति। (वृ०-प० १३८)

---

१. पांच अभिगमों में एक है 'अचित्ताणं अविउसरणाए' टीकाकार ने इस पाठ की व्याख्या करते हुए लिखा है—'अचित्ताणं ति वस्त्रमुद्रिकादीनाम्, अविउसरणयाए त्ति अत्यागेन' जयाचार्य ने इस व्याख्या के अनुरूप जोड़ करके आगे लिखा है—'छत्र पानही शस्त्रादि छोडै' यह अर्थ न तो मूल पाठ से निकलता है और न टीका के आधार पर ही। संभव है यहां जयाचार्य ने अपनी स्वतन्त्र मनीषा से यह रहस्य निकाला है। आगम-सम्पादन के समय हमारे सामने यह पाठ आया था। उस समय एक चिन्तन आया कि अचित्त द्रव्यों को नहीं छोड़ना अभिगम कैसे हो सकता है? यदि इस पाठ के स्थान पर अचित्ताणं अ (च) विउसरणयाए पाठ हो तो छत्र, जूते, शस्त्र आदि के छोड़ने की बात सम्मत हो सकती है। जयाचार्य कृत उक्त जोड़ से भी यह तथ्य पुष्ट होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६२. स्थविरां प्रतै तब श्रावक बोल्या, अनाश्रव-फल संजम जोय।
तप-फल बोदाण तो किण कारण, देवलोक उपजवूं होय?

६३. संयम सूं आवता कर्म रोके, तप सूं पूर्व कर्म खपाय।
स्वर्ग तणां कारण नहिं दोनूं, तिण सूं निःकारणे स्वर्ग जाय॥

६४. तिहां कालिक-पुत्र स्थविर कहै आर्यो! पूर्व-तप सूं स्वर्ग मांहि जायो।
वीतराग - तप नी अपेक्षाए, पूर्व सराग-तप कहिवायो॥

६५. तिहां मेहिल नामै स्थविर कहै आर्यो! पूर्व-संजम करि सुर थाय।
वीतराग - संजम री अपेक्षा, पूर्व सराग - संयम आय॥

६६. तिहां आणंदरक्षित नाम स्थविर जे, श्रावका नैं कहै इम वाय।
हे आर्यो! जे कर्मपणैं करि सुर हूवै तथा कर्म शेष रह्यां थाय॥

६७. कासव स्थविर कहै हे आर्यो! संग-भाव करी सुर थाय।
संयम-युक्त पिण द्रव्यादि ऊपर, संग करतां मुक्ति नहिं जाय॥

६८. सराग-तपसा सराग-संजम कर, कर्म करी संग कर ताह्यो।
देवलोक देवजन विषै आर्यो! सुरपणै ऊपजै जायो॥

६९. सत्य अर्थ ए च्यारूंइ आख्या, निज अभिप्राय थी कह्या नांह्यो।
अभिमान बुद्धि थकी अम्हे न कह्या, परमार्थ थी कहिवायो॥

७०. तिण अवसर ते श्रावक बहुला, स्थविर भगवंते एहो।
एहवे रूपे वर अर्थ प्रश्न ना, कह्या छता हरषेहो॥

७१. तुष्टमान थइ स्थविर भणी ते, वंदी करी नमस्कार।
प्रश्न पूछै प्रश्न प्रति पूछी नैं, अर्थ ग्रहै अर्थ ग्रही सार॥

७२. ऊभा[1] थायवै करी ऊठै ऊठी, स्थविर भगवंत नैं तिणवार।
वंदै वचन स्तुति नमस्कार करै, वंदी करी नमस्कार॥

७३. स्थविर भगवंत समीप थकी जे, पुष्फवती सुखदाय।
चैत्य थकी निकलै निकली नैं, आया जिण दिशि जाय॥

७४. ताम स्थविर अन्यदा तुंगिया थी, पुष्फवति चैत्य थी जेह।
नीकलै नीकली बाहिर जनपद, विहार करी विचरेह॥

६२. तए णं ते समणोवासया थेरे भगवंते एवं वयासी—जइ णं भंते! संजमे अणण्हयफले, तवे वोदाणफले। किंपत्तियं णं भंते! देवा देवलोएसु उववज्जंति?
(श० २।१०१)

६३. निष्कारणमेव देवा देवलोकेषूत्पद्यन्ते तपः संयमयोरुक्तनीत्या तदकारणत्वादित्यभिप्रायः। (वृ०-प० १३८)

६४. तत्थ णं कालियपुत्ते नामं थेरे ते समणोवासए एवं वयासी—पुव्वतवेणं अज्जो! देवा देवलोएसु उववज्जंति। पूर्वतपः—सरागावस्थाभावि तपस्या, वीतरागावस्थाऽपेक्षया सरागावस्थायाः पूर्वकालभावित्वात्।
(वृ०-प० १३८)

६५. तत्थ णं मेहिले नामं थेरे ते समणोवासए एवं वयासी—पुव्वसंजमेणं अज्जो! देवा देवलोएसु उववज्जंति।

६६. तत्थ णं आणंदरक्खिए नामं थेरे ते समणोवासए एवं वयासी—कम्मियाए अज्जो! देवा देवलोएसु उववज्जंति।

६७. तत्थ णं कासवे नामं थेरे ते समणोवासए एवं वयासी—संगियाए अज्जो! देवा देवलोएसु उववज्जंति।

६८. पुव्वतवेणं, पुव्वसंजमेणं, कम्मियाए, संगियाए अज्जो! देवा देवलोएसु उववज्जंति।

६९. सच्चे णं एस अट्ठे, नो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए।
(श० २।१०२)

७०. तए णं ते समणोवासया थेरेहिं भगवंतेहिं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरिया समाणा हट्ठतुट्ठा

७१. थेरे भगवंते वंदंति नमंसंति, पसिणाइं पुच्छंति, अट्ठाइं उवादियंति, उवादिएत्ता

७२ उट्ठाए उट्ठेंति उट्ठेत्ता थेरे भगवंते तिक्खुत्तो वंदंति नमंसंति वंदित्ता नमंसित्ता

७३. थेराणं भगवंताणं अंतियाओ पुप्फवतियाओ चेइयाओ पडिणिक्खमंति। जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया। (श० २।१०३)

७४. तए णं ते थेरा अण्णया कयाइं तुंगियाओ नयरीओ पुप्फवतियाओ चेइयाओ पडिनिग्गच्छंति, बहिया जणवयविहारं विहरंति। (श० २।१०४)

१. 'उट्ठाए...पडिनिक्खमंति' अंगसुत्ताणि भाग २ श० २।१०३ में यह पाठ नहीं है। जयाचार्य ने इसकी जोड़ की है। अंगसुत्ताणि में यह पाठान्तर के रूप में स्वीकृत किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूहा

७५. तिण काले नैं तिण समय, नगर राजगृह जान।
जाव परिषदा पडिगता, जिन वंदी निज स्थान॥

*हो म्हारा तिरण तारण महावीर प्रभु नां शिष्य इंद्रभूती अणगारं॥
(ध्रुपदं)

७६. तिण कालै तिण समय विषै, जे वीर तणां सुविशेष।
जेष्ठ अंतेवासी इन्द्रभूती ते, जाव संखित्त-विपुल तेय-लेश॥

७७. अंतर-रहित करै तप छट्ठ-छट्ठ, संजम तप करि सोय।
जावत् आतमा भावत विचरै, हिव छट्ठ पारणै जोय॥

७८. पहिली पोहरसी सझाय कीधी, बीजी पोहरसी ध्यानज ध्याया।
तीजै पोहर काय मन अचपलता, असंभ्रांतपणै मुनिराया॥

७९. मुख-वस्त्रिका पडिलेहै पडिलेही, भाजन वस्त्र पडिलेही।
भाजन पूंजै भाजन प्रति पूंजी, भाजन ग्रहण करेही॥

८०. जिहां प्रभु तिहां आवै, आवी नै स्वाम प्रतै सुखदाय।
वंदै वंदी नमस्कार करीनैं, इम बोलै मुनिराय॥

८१. वांछूं हे पूज्य! तुम्हारी आज्ञा थी, छठ पारणै राजगृह मांय।
ऊंच-नीच मज्झम कुल बहु घर नी, भिक्षाचरी अटन कराय॥

सोरठा

८२. बहु घर भिक्षा लेह, समुदाणिक भिक्षा भणी।
भिक्खायरियाए जेह, भिक्षा वर आचर करी॥

८३. *हे देवानुप्रिया! जिम सुख तिम कर, जेज न कीजै लिगार।
ताम गोतम भगवंत प्रभु नी, आज्ञा थयै छतै सार॥

८४. श्रमण भगवंत महावीर कनां थी, गुणसिल चैत्य थी ज्यांही।
नीकलै त्वरितपणों न काया नों, मन नी चपलता नांही॥

८५. असंभ्रांत थका चाल्या गोतमजी, जुगंतर झूसर प्रमाण।
भूमि प्रते देखै दृष्टि करी नैं, आगल ईर्या सोधता जान॥

वा०—'जुगंतर पलोयणाए दिट्ठीए' जुग कहितां झूसरो तेह प्रमाण, अंतर कहितां आपणा देह रूप देश नैं जे भूमिका नैं विषै दृष्टि पड़ै ते दृष्टिपात देश नैं विचालै, पलोयणाए कहितां देखै एहवी दृष्टि करि।

*लय—हो म्हारा राजा रा गुरुदेव बाबाजी

७५. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नगरे होत्था—सामी समोसढे जाव परिसा पडिगया। (श० २।१०५)

७६. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे जाव संखित्तविपुलतेयलेस्से

७७. छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। (श० २।१०६)
तए णं भगवं गोयमे! छट्ठक्खमणपारणगंसि

७८. पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बीयाए पोरिसीए झाणं झियाइ, तइयाए पोरिसीए अतुरियमचवलमसंभंते

७९. मुहपोत्तियं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता भायणवत्थाइं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता भायणाइं पमज्जइ, पमज्जित्ता भायणाइं उग्गाहेइ उग्गाहेत्ता

८०. जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

८१. इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे छट्ठक्खमणपारणगंमि रायगिहे नगरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्तए।

८२. गृहेषु समुदानं—भैक्षं गृहसमुदानं तस्मै गृहसमुदानाय 'भिक्खायरियाए' त्ति भिक्षासमाचारेण।
(वृ०-प० १४०)

८३. अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं। (श० २।१०७)
तए णं भगवं गोयमे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे

८४, ८५. समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता अतुरियमचवलमसंभंते जुगंतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओ रियं सोहेमाणे-सोहेमाणे
'अतुरिय' ति कायिकत्वरारहितम् 'अचवलं' ति मानसचापल्यरहितम्। (वृ०-प० १४०)
वा०—'जुगंतरपलोयणाए' त्ति युगं—यूपस्तत्प्रमाणम्, अन्तरं—स्वदेहस्य दृष्टिपातदेशस्य च व्यवधानं प्रलोकयति या सा युगान्तरप्रलोकना तया दृष्ट्या।
(वृ०-प० १४०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८६. *जिहां राजगृह नगर तिहां आवै, आवी नगर राजगृह मांहि ।।
ऊंच नीच मज्झम कुल घर नैं विषै, भिक्षा अर्थे फिरै ताहि ।

८७. राजगृह नगर विषै तव गौतम, जावत् अटन करंता ।
घणां मनुष्य नां मुख थी शब्द जे, सांभलै महा - मतिमंता ।।
८८. इम निश्चै देवानुप्रिया ! जे तुंगिया नगरी बार ।
पुष्फवती चैत्य विषै पार्श्व नां, स्थविर भगवंत नैं सार ।।
८९. श्रमणोपासक इम एहवे रूपे, पूछ्या प्रश्न नां अर्थ उदार ।
हे भगवंत ! संजम नों फल स्यूं ? स्यूं तप - फल सुखकार ?
९०. ताम स्थविर श्रावकां नै कह्यूं, इम अहो आर्य ! सुणो वाय ।
संजम - फल अनाश्रवपणुं छै, तप - फल कर्म खपाय ।।
९१. तिमहिज जाव सराग तपे करि, सराग संजम करि सोय ।
शेष कर्म करी संग करी नैं, देवलोक विषै सुर होय ।।
९२ सत्य ए अर्थ ए नहि अभिमाने, किम ए स्थविर नीं वाय ।
गोतम बहु जन पास सुणी ए, श्रद्धा प्रवर्ती ताय ।।

९३. यावत् अति ही कोतुहल उपनों, ग्रही पूर्ण भिक्षा समुदाणं ।
नगर थकी जाव ईर्या सोधंता, आया वीर समीपै जाणं ।।

९४. नहीं अति दूर न निकट वीर थी, गमनागमन पडिक्कमेह ।
एषणीक बहिर्यो अनेषणीक छोड्यो, तेह प्रतै आलोवेह ।।

९५. भात-पाणी देखावी जिन वंदी, जाव बोल्या इम वाय ।
हे प्रभु ! हूं तुझ आज्ञा लेइनैं, नगर राजगृह मांय ।।

९६. ऊंच नीच मज्झिम कुल फिरता, शब्द सुण्या बहु जन पास ।
तुंगिया बाग पार्श्व स्थविरां नैं, पूछ्या श्रावकां प्रश्न प्रकाश ।।

९७. संजम स्यूं फल ? स्यूं फल तप नो ? तिमज जाव सर्व जाणी ।
सत्य अर्थ ए नहिं अभिमाने, ए पुर-जन पै सुणी वाणी ।।
९८. हे प्रभु ! स्थविर भगवंत समर्थ छै, श्रावकां नैं अवलोय ।
एहवा प्रश्न नां उत्तर देवा, कै समर्थ नहीं छै सोय ?

८६. जेणेव रायगिहे नगरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रायगिहे नगरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियं अडइ। (श० २।१०८)
८७. तए णं भगवं गोयमे रायगिहे नगरे जाव अडमाणे बहुजणसद्दं निसामेइ—
८८. एवं खलु देवाणुप्पिया ! तुंगियाए नयरीए बहिया पुप्फवइए चेइए पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो
८९. समणोवासएहिं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं पुच्छिया—संजमे णं भंते ! किंफले ? तवे किंफले ?
९०. तए णं ते थेरा भगवंतो ते समणोवासए एवं वयासी—संजमे णं अज्जो ! अणण्हयफले, तवे वोदाणफले
९१. तं चेव जाव पुव्वतवेणं, पुव्वसंजमेणं, कम्मियाए, संगियाए अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति।
९२. सच्चे णं एस मट्ठे, नो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए। से कहमेयं मन्ने एवं। (श० २।१०९)
तए णं भगवं गोयमे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे जायसड्ढे
९३. जाव समुप्पन्नकोउहल्ले अहापज्जत्तं समुदाणं गेण्हइ, गेण्हित्ता रायगिहाओ नयराओ पडिनिक्खमइ अतुरिय जाव सोहेमाणे-सोहेमाणे जेणेव गुणसिलए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ,
९४. उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते गमणागमणाए पडिक्कमइ, पडिक्कमित्ता एसणमणेसणं आलोएइ,
९५. भत्तपाणं पडिदंसेइ, पडिदंसेत्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ जाव एवं वदासी—एवं खलु भंते ! अहं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे रायगिहे नयरे
९६. उच्च-नीय-मज्झिमाणि कुलाणि घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे बहुजणसद्दं निसामेमि—एवं खलु देवाणुप्पिया ! तुंगियाए नयरीए बहिया पुप्फवइए चेइए पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो समणोवासएहिं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं पुच्छिया—
९७. संजमे णं भंते ! किंफले ? तवे किंफले ? तं चेव जाव सच्चे णं एस मट्ठे, नो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए।
९८. तं पभू णं भंते ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरेत्तए ? उदाहु अप्पभू ?

*लय—हो म्हारा राजा रा गुरुदेव बाबाजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९९. सम्यक् हे प्रभु ! स्थविर भगवंत ए, श्रावकां नै अवधार।
इम ए प्रश्न नां उत्तर देवा, अथवा असम्यक् उच्चार ?

वा०—समियाणं कहितां सम्यग् शब्द प्रशंसा वाची निपात है। तिण करिकै सम्यक्पणां नैं विषै स्थविरे प्रश्न ना अर्थ उत्तर देवूं वर्त्तै। अविपर्यास ते भ्रांति रहित अथवा समंचंतीति सम्मंचए—अंच् धातु गति अर्थ नैं विषै, गति अर्थ ते ज्ञानार्थे सम्यक् प्रकारे ज्ञानवंत अथवा समिता ते सम्यक् प्रवृत्ति, अथवा श्रमिता ते भलीभांत अभ्यासवंत।

१००. हे प्रभु ! उपयोगवंत जाणै छै, पार्श्व स्थविर भगवंत।
श्रावकां नै जाव देवै एहवा, अथवा अणउपयोगवंत ?

१०१. प्रभु ! समस्त प्रकारे उपयोगवंत छै, स्थविर भगवंतज ज्यांही।
श्रावकां नै जाव देवै एहवा, अथवा सर्वथा जाणै नांही ?

१०२. सराग-तप-संजम कर्म संग करि, देवलोक में जाय।
सत्य अर्थ पिण नहि अभिमाने, एहवा जाव दिया वर न्याय ॥

१०३. जिन कहै स्थविर भगवंत समर्थ छै, तेहवा श्रावक नै सोय।
इम ए प्रश्न नां उत्तर देवा, असमर्थ नहीं छै कोय ॥

१०४. तिमिज जाणवूं सर्व थाकतूं[1], जाव समर्थ सम्यक् जान।
उपयोगी अति उपयोगवंता, जाव सत्यार्थ नहीं अभिमान ॥

१०५. हूं पिण गोतम ! इम कहूं भाखूं, पन्नवूं परूपूं एम।
पूर्व-तप कर देवलोक में, देव हुवै छै तेम ॥

१०६. पूर्व-संजम करि सुर ह्वै, फुन शेष कर्म थी जानं।
संग करी सुर ह्वै देवलोके, ए सत्य अर्थ, नहिं मानं ॥

१०७. अंक पचीस नों देश अर्थ ए, तीन चालीसमी ढालं।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' हरष विशालं ॥

९९. समिया णं भंते ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरेत्तए ? उदाहु असमिया ?

वा०—'समिया णं' ति सम्यगिति प्रशंसार्थो निपातस्तेन सम्यक् ते व्याकर्तुं वर्त्तन्ते अविपर्यासास्त इत्यर्थः समञ्चन्तीति वा सम्यंचः समिता वा—सम्यक्प्रवृत्तयः, श्रमिता वा—अभ्यासवन्तः। (वृ०-प० १४०)

१००. आउज्जिया णं भंते ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरेत्तए ? उदाहु अणाउज्जिया ?

१०१. पलिउज्जिया णं भंते ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरेत्तए ? उदाहु अपलिउज्जिया ?

१०२. पुव्वतवेणं अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति। पुव्वसंजमेणं, कम्मियाए, संगियाए, अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति। सच्चे णं एस मट्ठे, नो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए।

१०३. पभू णं गोयमा ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरेत्तए, नो चेव णं अप्पभू।

१०४. तह चेव नेयव्वं अविसेसियं जाव पभू समियं आउज्जियपलिउज्जिय जाव सच्चे णं एस मट्ठे, नो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए।

१०५. अहं पि णं गोयमा ! एवमाइक्खामि, भासामि, पण्णवेमि, परूवेमि—पुव्वतवेणं देवा देवलोएसु उववज्जंति।

१०६. पुव्वसंजमेणं देवा देवलोएसु उववज्जंति। कम्मियाए देवा देवलोएसु उववज्जंति। संगियाए देवा देवलोएसु उववज्जंति।...सच्चे णं एस मट्ठे, नो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए। (श० २।११०)

---

१. अवशेष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ४४

दूहा

१. समण तणी पर्युपासना, कह्युं विधानक तास।
हिव सेवा नां फल तणों, गोयम प्रश्न प्रकाश॥

२. तथारूप जे श्रमण प्रति, वा माहण प्रति जान।
सेवंतां नै हे प्रभु! स्यूं फल पर्यवसान?

वा०—तथारूप जे योग्य स्वभाववंत. श्रमण वा कहितां तप-युक्त। उपलक्षण पणां थकी ए श्रमण उत्तर गुणवंत। माहण वा कहितां माहन, पोतै हणवा ना निवृतपणा थकी, अन्य प्रति कहै मत हणो। उपलक्षणपणा थकीज मूल गुण युक्त। बे ठिकाणै वा शब्द ते समुच्चय अर्थ नै विषै, इम वृत्ति में प्रथम अर्थ कियो। ते शुद्ध छै। पछै दूजो अर्थ कियो ते कहै छै—अथवा श्रमण—साधु, माहण—श्रावक ए दूजो अर्थ अशुद्ध।

३. 'पर्युपासन साधू तणी, सूतर में बहु ठाम।
श्रावक नीं पर्युपासना, किहांई न चली ताम॥

४. कल्लाणं मंगलं देवयं, चैत्य नाम चिउं जास।
जिन ना वा मुनि ना कह्या, तास कही पर्युपास॥

५. ठाम-ठाम सूत्रे कह्या, जिन मुनि ना ए नाम।
पर्युपासना पिण तसुं, आखी छै बहु ठाम॥

६. ए चिहुं नाम श्रावक तणा, किणहि सूत्रे नांहि।
पर्युपासना पिण तसुं, किहांई न कही ताहि॥

७. जिन मुनि ना चिहुं नाम त्यां, पाठ कह्यो पर्युपास।
पिण श्रमणोपासक तणी, पर्युपास नहिं तास॥

८. कल्लाणं मंगलं देवयं, चेइयं नै पज्जुवास।
दूजे शतक उदेश धुर, इहां जिन सेव हुलास॥

९. कल्लाणं मंगल देवयं, चेइयं नै पज्जुवास।
तुंगिया नैं अधिकार पिण, सेव स्थविर नीं ताम॥

१०. कल्लाणं मंगलं देवयं, चेइयं नैं पज्जुवास।
निरावलिया पहिलै झयण, जाव शब्द में तास॥

११. कल्लाणं मंगल देवयं, चेइयं नै पज्जुवास।
जिन सेवा नवमे शतक, जाव शब्द में तास॥

१२. कल्लाणं मंगलं देवयं, चेइयं नै पज्जुवास।
सूयगडांग तेवीस में, त्यां श्रमण माहण मुनि तास॥

१३. कल्लाणं मंगलं देवय, चेइयं नै पज्जुवास।
पंचम शतक उद्देश छठ, त्यां श्रमण माहण मुनि तास॥

१४. कल्लाणं मंगलं देवयं, चेइयं नै पज्जुवास।
श्रमण माहण नै त्यां कह्यो, शतक पनरमे जास॥

१. अनन्तरं श्रमणपर्युपासनासंविधानकमुक्तम्, अथ सा यत्फला तद्दर्शनार्थमाह— (वृ०-प० १४०)

२. तहारूवं णं भंते! समणं वा माहणं वा पज्जुवासमाणस्स किंफला पज्जुवासणा?

वा०—'तथारूपम्' उचितस्वभावं कंचन पुरुषं श्रमणं वा तपोयुक्तम्. उपलक्षणत्वादस्योत्तरगुणवन्तमित्यर्थः, 'माहनं वा' स्वयं हननानिवृत्तत्वात्परं प्रति मा हनेतिवादिनम्, उपलक्षणत्वादेव मूलगुणयुक्तमिति भावः, वाशब्दौ समुच्चये,
अथवा 'श्रमणः' साधुः 'माहनः' श्रावकः।(वृ०-प० १४१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. इत्यादिक बहु सूत्र में, ए पांचूं पद जाम।
जिन मुनि नैं स्थानक कह्या, श्रावक नैं नहि ताम।।

१६. प्रतिमा तथा कुटुंब में, बडो पुरुष कहिवाय।
ते स्थानक ए पंच पद, लौकिक खाते आय।।

१७. माहण नाम मुनी तणो, हिंसा छोडी आप।
अन्य भणी कहै मत हणो, आगम साख मिलाप।।

१८. तिण सूं श्रमण माहण तणी, पर्युपासना सेव।
ए सेवा जिन मुनि तणी, पिण श्रावक नों नहि भेव।।

१९. तथारूप श्रमण माहण भणी, दे सचित्त असूझतुं आहार।
अल्प आउ पंचम शतक, छठा उद्देश मझार।।

२०. जो माहण कहै श्रावक भणी, दे सचित्त असूझतुं आहार।
तसुं लेखै अल्प आउखो, बंध निगोद अपार।।

२१. जो सुर अल्पायु कहै, तो सेवै हिंसा झूठ।
तसुं पिण अल्पायू कह्यो, तसुं श्रद्धा गइ ऊठ।।

२२. मुनि ना चवदै नाम में, माहण मुनि नों नाम।
श्रुत-खंध दूजै सुयगडांग, प्रथम उद्देशै ताम।।

२३. सर्व पाप सूं निवर्त्यो, माहण कहियै तास।
सूयगडांग सोलम झयण, माहण संत बिमास।।

२४. श्रमण माहण नैं आपणी, ऋद्धि दिखावा जेह।
ठाणांग तीजै कह्यो, सुर तारारूप करेह।।

२५. श्रमण माहण श्रुत परम तसुं, तिण चक्षू कहिवाय।
तृतिय ठाण उद्देश तुर्य, पूरवधर मुनिराय।।

२६. परम अवधिवंत नै कह्या, श्रमण माहण ठाणंग।
तृतिय ठाण उद्देश तुर्य, माहण संत सुचंग।।

२७. श्रमण माहण पै इक वचन, धारयां थी सुर होय।
ते धर्माचारज थकी ऊरण किण विध जोय?

२८. दुर्भिक्ष रोग अरण्य दुख, मेटयां ऊरण नांहि।
ऊरण धर्म पमाय फिर, ठाणांग तीजा मांहि।।

२९. कला-शिल्प-धर्म-आयरिया, रायप्रश्नेणी मांहि।
तिण सूं धर्माचार्य नैं, इहां माहण कह्या ताहि।।

३०. ज्ञाति संग बंधव तज्या, आश्रव पंच तजेण।
तिण जोगे ब्रह्म माहण ते, पणवीसम उत्तरज्झेण।।

३१. ज्ञाति पेज्ज बंध ना मिट्यो, पडिमा ग्यारमी मांहि।
दशाश्रुतखंध छठै कह्यु, तिण सूं श्रावक माहण नांहि।।

३२. गौतम उदक प्रतै कह्यो, अहो उदक आउखावंत!
जे श्रमण माहण त्रसभूत इम, कहि पचखाण करंत।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३. निश्चै अम्ह नै नहि रुचै, ते समणा वा निर्ग्रंथ।
अशुद्ध भाषा कहियै तसुं, पर अनुताप करंत।।

३४. सुयगडांग तेवीस में, माहण शब्द नैं ठाम।
निर्ग्रंथ शब्द कह्यो अछै, तिण सूं माहण निर्ग्रंथ नुं नाम।।

३५. सिलोग नाम श्लाघनीक ते, समण माहण कहिवाय।
सर्व अतिथि तणो कह्यो अनुयोगद्वार रे मांय।।

३६. ते माटै अन्य मत तणा, श्रमणादिक कहंत।
माहण ब्राह्मण नैं कह्यूं, जग में गुरु वाजंत।।

३७. हे श्रावक! हे धर्मप्रिय! हे उपासक! धार्मिक!
आचारांग दूजे कह्यो, पिण माहण न कथिक।।

३८. तिण कारण श्रावक भणी, माहण कहिजै नांय।
माहण मुनिवर तेहनीं, सेवा फल सुखदाय।।

३९. श्रमण माहण नै दुख दियै, कोप्यो मूकै तेज।
तथा तेज सुर मूकतो, तथा उभय मूकेज।।

४०. ठाणांग दशमें ठाण ए, समण माहण मुनि एक।
बीजो सुर ए विहुं कह्या, पिण श्रावक न कह्यो पेख।।

४१. विशेषण समुच्चय अर्थ ए, वा शब्द कह्यूं विचार।
श्रमण विशेष्य पद अछै, माहण विशेषण सार।।

४२. श्रमण माहण वीतराग रै, ऊपर मूकै तेय।
मूकण वाला में धसै, दशमैं ठाण कहेय।।

४३. इत्यादिक बहु स्थानकै, श्रमण माहण मुनि नाम।
वा रव समुच्चय अर्थ है, जोय विचारो ताम।।

४४. श्रमण माहण नी सेव नुं, सिद्ध गमन फल अंत।
ते सेवा मुनिनीज है, जोवो सूत्र सिद्धंत[1]।।

वा०—पूर्वे समण माहण ना च्यार नाम अनै तेहनी पर्युपासना अनै साधु नों समण माहण नाम संक्षेपे करि कह्यूं, हिवै तेहिज सूत्रार्थे करि कहै छै—

ज्ञाता अध्ययन १।९९ में कह्यो मेघकुमार भगवंत नै देखी पंच अभिगमन साचव

---

१. समणं वा माहणं वा' ये दोनों शब्द पर्यायवाची हैं, मुनि के वाचक हैं किन्तु टीकाकार ने उसका एक अर्थ यह भी किया है—समण—साधु, माहण—श्रावक। कुछ सम्प्रदायों ने इस अर्थ को मान्यता दे दी। जयाचार्य ने इस अभिमत से अपनी असहमति व्यक्त करने के लिए बहुत गंभीर समीक्षा की है। भगवती के प्रथम शतक ढाल २२ गाथा २८-११६ तक ८९ पद्यों में 'समणं वा माहणं वा' पर समीक्षा लिखने पर भी उन्हें संतोष नहीं हुआ। उन्होंने श० २।१११ पर लम्बी समीक्षा करते हुए पहले ४२ पद्यों में (ढाल ४४ गाथा ३-४१) और उसके बाद एक विस्तृत वार्तिका में आगम के पचीसों प्रमाण देकर इस तथ्य को सिद्ध किया है कि माहण नाम श्रावक का नहीं, साधु का है। इसे पढ़ने से जयाचार्य के आगम-सम्बन्धी अगाध और तलस्पर्शी अध्ययन तथा आगमों के प्रति प्रगाढ़ आस्था का परिचय प्राप्त होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वंदणा नमस्कार करी एहवो पाठ कह्यो—"नच्चासन्ने नाइदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे अंजलिउडे अभिमुहे विणएणं पज्जुवासति"। इहां पिण तीर्थंकर नी पर्युपासना—सेवा कही १।

तथा ज्ञाता अध्येन ५।१७ कृष्ण अरिष्टनेमि कनैं आया तिहां एहवो पाठ—'जाव पज्जुवासइ'। अरिष्टनेमि नी पर्युपासना—सेवा कही २।

तथा ज्ञाता अध्येन १३।१० में नंदण भगवान कनैं आयो तिहां एहवो पाठ कह्यो—'जाव पज्जुवासइ'। इहां महावीर स्वामी नी पर्युपासना—सेवा कही ३।

तथा छट्ठे अंगे दूजे श्रुतखंधे अ० १।३ राजगृह महावीर स्वामी पधार्या तिहां कह्यो—"परिसा निग्गया जाव परिसा पज्जुवासइ। इहां पिण महावीर स्वामी नी पर्युपासना—सेवा कही ४।

तथा छट्ठे अंगे श्रु०२ वर्ग १ अध्येन १।१६ पार्श्वनाथ भगवंत पधार्या 'परिसा निग्गया जाव पज्जुवासइ। इम धर्मकथा में घणी जागां परिसा निग्गया जाव पज्जुवासइ पाठ कह्यो ५।

तथा अंतगड १।३ में कह्यो—आर्य सुधर्म स्वामी समवसर्या 'अज्ज जंबू जाव पज्जुवासति' ६।

तथा अणुत्तरोववाइ १।१ में कह्यो—'अज्ज सुहम्मस्स समोसरणं जाव जंबू पज्जुवासइ' ७।

तथा विन्हिदसा सू० १६ में कह्यो—अरिष्ट नेमनाथ पधार्या कृष्ण वासुदेव 'जाव पज्जुवासइ' ८।

तथा उपासग-दसा अध्येन २।४३ में कह्यो—महावीर स्वामी पधार्या कामदेव श्रावक 'जहा संखे जाव पज्जुवासइ' ९।

तथा निरियावलिया अध्येन १।४ में कह्यो—सुधर्म स्वामी पधार्या तिवारै भगवंत जंबू नैं ऊपनी प्रश्न पूछवानी श्रद्धा 'जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी' १०।

तथा भगवती शतक १ उ० ६ सू० २८९ में कह्यो—रोहा अणगार नैं ऊपनी श्रद्धा 'जाव पज्जुवासमाणे एवं वदासी' ११।

तथा भगवती शतक १२ में उ० १ सू० २ में कह्यो—सावत्थी नगरी भगवंत महावीर स्वामी पधार्या 'परिसा जाव पज्जुवासइ', तिवारे ते संख आदि श्रावक ए वार्ता सुण्यां 'जहा आलभियाए जाव पज्जुवासंति' १२।

तथा भगवती शतक ११।१ राजग्रही नैं विषै गौतम स्वामी जाव पर्युपासना करता इम बोल्या १३।

तथा भगवती शतक १२ उ० २ सू० ३९ कोसंबी नगरी भगवंत महावीर स्वामी पधार्या, तिवारे मृगावती जयंति श्राविका जिम देवानंदा जाव वंदी नमस्कार करी उदाई राजा नैं आगल करी नैं 'ठिया चेव जाव पज्जुवासइ' १४।

तथा भगवती शतक ११ उ० ११ सू० ११५, ११६ में वाणिया ग्राम महावीर स्वामी पधार्या 'जाव परिसा पज्जुवासइ', तिवारै सुदर्शण सेठ पिण वीर पै आवी पंच अभिगमन साचवी 'तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासइ' १५।

तथा भगवती शतक २ उ० १ सू० ३९ खंधक विचार्यो—श्रेय मुझ नैं श्रमण भगवंत महावीर नैं वंदणा नमस्कार करी सत्कारी सनमानी कल्याणीक मंगलीक दैवत चैत्य एहवा भगवंत नीं पर्युपासना सेवा करि ए प्रश्न पूछूं। इहां महावीर स्वामी नी पर्युपासना कही ते तीर्थंकर ना ए च्यार नाम कह्या वलि खंधक गौतम नैं कह्यो—चालो गौतम ! थारा धर्माचार्य धर्म-उपदेशक नैं वंदणा नमस्कार करां जाव पर्युपासना सेवा करां। इहां तीर्थंकर नी सेवा कही १६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा उपासगदसा अध्येन १।२० भगवान बाग आयां सुं आणंद विचार्यो—तथारूप अरिहंत भगवंत नों नाम गोत्र सुण्यां पिण महाफल है तो किसुं कहिवुं सन्मुख जइ वंदणा नमस्कार करवा नो, प्रश्न पूछवा नों—पर्युपासना, सेवा करवा नों, विस्तीर्ण अर्थ ग्रहण नों, तो हूं जावूं जाव पर्युपासना—सेवा भगवंत नी करूं। इहां पिण भगवंत नी पर्युपासना—सेवा कही, ते सेवा नो मोटो फल कह्यो १७।

तथा उपासगदसा अ० ७।१० में कह्यो सकडाल-पुत्र नैं देवता कह्यो—काले महामाहण पुरुष उत्पन्न-केवलज्ञान-दर्शनधर तीन काल ना जाण इत्यादिक गुण करी कह्यो, देवता मनुष्य नैं अच्चणिज्जे पूयणिज्जे वंदणिज्जे णमंसणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासणिज्जे तच्चकम्म-संपयासंपउत्ते तं णं तुमं वंदेज्जाहि जाव पज्जुवासेज्जाहि'—इहां कह्यो देवता मनुष्य नैं अर्च्चिवा जोग्य, वांदवा जोग्य, पूजिवा जोग्य, सत्कारवा जोग्य, सनमान देवा जोग्य, किल्लाणीक, मंगलीक, दैवत, चैत्य एहवा भगवंत नी सेवा करिवा जोग्य छै ते माटै तूं वंदजै जाव पर्युपासना—सेवा कीजै। इहां भगवान ना च्यार नाम कह्या तेहनी पर्युपासना—सेवा कही १८।

तथा सुयगडांग द्वितीय श्रुतखंधे उद्देशै ७।३३ में गौतम उदक पेढाल-पुत्र नैं कह्यो ते पाठ—"आउसंतो! उदगा! जे खलु तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा णिसम्म अप्पणो चेव सुहमाए पाडेलेहाए अणुत्तरं जोगखेमपयं लंभिए समाणे सो वि ताव तं आढाइ पडिजाणेइ वंदइ नमंसइ सक्कारेइ सम्माणेइ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासइ। इहां गौतम कह्यो—

ए आउखावंत उदक! जे निश्चै तथारूप श्रमण माहण कनैं एक पिण आर्य धर्ममय भलो वचन सांभली हियै धारी आत्माइं सूक्ष्म बुद्धि करी आलोची नैं प्रधान—रूडो मुक्ति साधन जोग क्षेम पद लाभे छतैं, ते पिण ते श्रमण माहण प्रतै आदर देवै, भलुं जाणै वंदणा-नमस्कार करै, सत्कार दियै, सन्मान दियै, कल्याण-कारी ते कल्याण, विघन उपसम नां हेतुपणां थकी—मंगलीक, ए धर्मदेव ते माटै देवयं चित्त प्रसन्नता नों हेतु ए साधु ते चैत्य, इसुं जाणी 'पज्जुवासइ' पर्युपासना—सेवा करै। इहां पिण कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं ए ४ नाम श्रमण माहण ना कह्या। अनै तेहनी पर्युपासना—सेवा कही १९।

तथा भगवती शतक १५ सू०१०४ में सर्वानुभूति गोसाला नैं कह्यो ते पाठ—जे वि ताव गोसाला! तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतियं एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं निसामेति, से वि ताव वंदति नमंसति जाव कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासति। इहां कह्यो—जे पिण हे गोसाला! तथारूप श्रमण माहण कनैं एक पिण आर्य धर्ममय भलो वचन सुणी धारै ते पिण ते प्रतै वंदै, नमस्कार करै, जाव कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं एहवा श्रमण माहण नी सेवा करै। इहां पिण ए ४ नाम श्रमण माहण ना कह्या, तेहनी सेवा कही २०।

तथा भगवती शतक ५ उ० ६ सू० १२७ में एहवूं पाठ—कहण्णं भंते? जीवा सुभदीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति? गोयमा! नो पाणे अइवाएत्ता नो मुसं वइत्ता तहारूवं समणं वा माहणं वा वंदित्ता नमंसित्ता जाव पज्जुवासित्ता "अण्णयरेणं मणुण्णेणं, पीतिकारएणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेत्ता—एवं खलु जीवा सुभदीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति। इहां कह्यो—जीव न हणै, झूठ न बोले, तथारूप श्रमण माहण प्रति वंदी नैं जाव पर्युपासना करी नैं अनेरो मनगमतो प्रीति-कारियो असणादिक ४ प्रतिलाभी नैं, इम तीन प्रकारै शुभ दीर्घ आउखो बांधै। इहां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पिण जाव शब्द में कल्लाणं आदि ४ नाम श्रमण माहण ना कह्या अनैं तेहनी पर्युपासना सेवा कही,तेहनैं श्रवणादिक प्रतिलाभ्यां शुभ दीर्घ आउखो बांधै कह्यो २१।

तथा रायप्रश्नेणी सू० ६ (पाठान्तर) में कह्यो---आमलकप्पा नगरी ना बाग में भगवान पधार्या, सुरियाभ विचार्यो ते पाठ---तं महाफलं खलु तहारूवाणं अरहंताणं णामगोयस्स वि सवणयाए किमंग पुण अभिगमण-वंदण-णमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणाए ? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ? तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं 'वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि'। एयं मे पेच्चा हियाए सुहाए खमाए णिस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सति।

इहां कह्यो---ते मोटो फल अरिहंत भगवंत नो नाम गोत्र सुणवै करी, तो किसुं कहिवुं सन्मुख जइ वंदणा नमस्कार करवा नो, प्रश्न पूछवा नो, अनैं पर्युपासना---सेवा करवा नो, एक पिण आर्य धर्ममय भलुं वचन सुणवा नो मोटो फल, तो किसुं कहिवो विस्तीर्ण अर्थ ग्रहवै करी ? तो हूं जावूं श्रमण भगवंत महावीर प्रते वंदणा नमस्कार करूं। कल्याणकारी माटै भगवान नैं कल्लाणं कह्या। विघ्न उपशम हेतु पणा थकी भगवंत नै मंगल कह्या। तीन लोक ना अधिपतिपणा थकी भगवंत नैं देवयं कह्या। अति सुप्रसन्न मन ना हेतुपणा थकी भगवंत नै चैत्य कह्या। एहवा भगवंत नी हूं पर्युपासना---सेवा करूं ए सेवा म्हारै परलोक नैं हित नैं अर्थे, सुख नैं अर्थे, क्षम---समर्थपणा नैं अर्थे, मोक्ष नैं अर्थे, अनैं परलोक में सेवा ना फल साथे आसी इम सुरियाभे कह्युं २२।

उववाई सू० ५२ में कह्यो---तं महप्फलं खलु भो देवाणुप्पिया ! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं णामगोयस्स वि सवणयाए किमंग पुण अभिगमण-वंदण-णमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए ? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ? तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महावीरं वंदामो णमंसामो सक्कारेमो सम्माणेमो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामो। एयं णे पेच्चभवे इहभवे य हियाए खमाए निस्सेयसाए अणुगामियत्ताए भविस्सइ।" इहां पिण महावीर स्वामी नी पर्युपासना---सेवा नों मोटो फल कह्यो। अनैं भगवंत ना कल्लाणं आदि ४ नाम कह्या। अनैं जे भगवंत नी पर्युपासना---सेवा परभवे इहभव नैं विषै हित, सुख, क्षम, मोक्ष नैं अर्थे भव अनैं नी परंपराइं शुभ अनुबंध भणी हुस्यै इम बहु जन नैं कह्युं २३।

भगवती शतक ६ उद्देशे ३३ सू० १३६ में कह्यो---तं महप्फलं खलु देवाणुप्पिए ! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं णामगोयस्स वि सवणयाए किमंग पुण अभिगमण-वंदण-णमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए ? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए किमंग पुण विपुलस्स अट्ठस्स गहणयाए ? तं गच्छामो णं देवाणुप्पिए ! समणं भगवं महावीरं वंदामो जाव पज्जुवासामो। एयं णे इहभवे य परभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ। इहां पिण महावीर स्वामी नीं पर्युपासना---सेवा नों मोटो फल कह्यो। अनैं भगवंत ना कल्लाणं आदि ४ नाम जाव शब्द में कह्या। अनैं भगवंत नी पर्युपासना---सेवा इहभव, परभव नैं विषै हित, सुख, क्षम अनैं भव नी परंपराइं शुभ अनुबंध भणी हुस्यै इम ऋषभदत्त देवानंदा नैं कह्युं २४।

तथा भगवती शतक २ उद्देशे ५ सू० ६७ में कह्यो ते पाठ---तं महाफलं खलु देवाणुप्पिया ! तहारूवाणं थेराणं भगवंताणं नामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुण अभिगमण-वंदण-णमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए जाव गहणयाए ? तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! थेरे भगवंते वंदामो णमंसामो जाव पज्जुवासामो। एयं णे इहभवे वा परभवे वा आणुगामियत्ताए जाव भविस्सति। इहां पिण स्थविरां नी पर्युपासना—सेवा नो मोटो फल कह्यो। अनै स्थविरां ना कल्लाणं आदि ४ नाम जाव शब्द में कह्या। अनै जे स्थविरां नी सेवा नों फल इहभव, परभव नैं विषै तथा आणुगामियत्ताए—भव नी परंपराइं शुभ अनुबंध भणी हुस्यै। इम तुंगिया नगरी नां श्रावकां कह्यु २५।

इम अनेक ठामे तीर्थंकर नी तथा स्थविरां नी तथा समण माहण नी पर्युपासना—सेवा कही। अनै तेहनी सेवा नों मोटो फल कह्यु। इहभव परभव नैं विषै हियाए आदि मोक्ष नैं अर्थे, अनै आणुगामियत्ताए कह्यो। इहभवे मोक्ष ते दलद्र नो मुकायवो, ते दलद्र नी मोक्ष इहभव नैं विषै हुइं। अनै परभव नैं विषै कर्म नों मुकायवो, ते कर्म नी मोक्ष ए सेवा नो फल हुइं। अनै तीर्थंकर स्थविर समण माहण ना कल्लाण आदि ४ नाम ठाम-ठाम कह्या पिण श्रावक ना ए ४ नाम न कह्या। अनै श्रावक नी पर्युपासना पिण न कही। अनै श्रावक री पर्युपासना नों महाफल तथा इहभव, परभव नैं विषै हियाए आदि, मोक्ष अर्थे अनै आणुगामियत्ताए नथी कह्यो। अनै इहां बीजै शतक पंचमे उद्देशे पिण गौतम पूछ्यूं—तथारूप समण-माहण साधु नी पर्युपासना—सेवा कियां छेहड़ै स्यूं फल हुइं? तिवारे भगवान कहै—सुणवो पामै, पछै ज्ञान-विज्ञानादिक छेहड़ै 'सिद्धिपज्जवसाणफला पण्णत्ता' एहवुं पाठ कह्यु। सिद्धिगमन-पर्यवसान ते छेहडै ए फल कह्यु। इहां श्रमण माहण नी सेवा नों मोक्ष रूप फल कह्यु ते माटै समण माहण साधु छै, पिण श्रावक नहीं।

सूत्र में घणे ठिकाणे माहण नाम साधु रो कह्यो छै ते केतला एक पाठ लिखिये छै—

किं नामे ? किं गोत्ते ? कस्सट्ठाए व माहणे ?

(उत्त० १८।२१)

इहां पिण क्षत्रिय राजऋषि संजती नैं पूछ्यो—स्यूं नाम ? स्यूं गोत्र ? किण अर्थे माहण—साध तूं थयो ? इहां पिण माहण नाम साधु नुं कह्यो छै।

तयसं व जहाइ से रयं, इइ संखाय मुणी न मज्जइ।
गोयण्णतरेण माहणे, अहउसेयकरी अण्णेसि इंखिणी॥

(सूयगडो० श्रु० १।२।२३)

इहां कह्यो—जिम सर्प आपणी त्वचा—कांचली छांडै तिम साधु कर्म-रज छांडै। वले मद करी न माचै—गोत्रादिक नो मद न करै ते माहण कह्यो। इहां शीलाङ्काचार्य कृत टीका में माहण नों अर्थ साधु कियो। अनै टब्बा में ब्राह्मण कियो।

दूरं अणुपस्सिया मुणी, तीयं धम्ममणागयं तहा।
पुट्ठे फरुसेहि माहणे, अवि हण्णू समयंसि रीयइ॥

(सूयगडो १।२।२७)

इहां कह्यो—धर्म बिना मोक्ष दूर, अतीत काले रुलवा रो सभाव, तिम तिम अनागत काले जे जीव स्वरूप जाणी नै लज्यावंत मद न करै, कठोर परिसह फरस्यै क्रोध न करै ते माहण कह्यो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पण्णसमत्ते सया जए, समता धम्ममुदाहरे मुणी।
सुहमे उ सदा अलूसए, णो कुज्झे णो माणि माहणे।।

(सूयगडो १।२।२८)

इहां कह्यो---प्रज्ञावंत पंच समिते करी संपूर्ण, सदा यत्नवंत, कषाय रहित समभावै करी अहिंसादिक धर्म कहै। मुनि संजम ना पालक, सदा अविराधक क्रोध न करै, मान न करै, एहवा गुणां सहित नैं माहण कह्यो।

भगवती शतक ५ उद्देशो ६ सूत्र १२४ में अल्प आउखा नैं अधिकारे कह्यो ते पाठ---

कहण्णं भंते ! जीवा अप्पाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ?
गोयमा ! पाणे अइवाइत्ता, मुसं वइत्ता, तहारूवं समणं वा माहणं वा अफासुएणं अणेसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेत्ता---एवं खलु जीवा अप्पाउयत्ताए कम्मं पकरेंति।

(भग० ५।१२४)

इहां कह्यो---जीव हणैं, झूठ बोलै, तथारूप श्रमण माहण नैं अप्रासुक-अनेषणीक प्रतिलाभै तो अल्प आउखो बांधै। जे माहण शब्द नों अर्थ श्रावक करै तेहनैं लेखै तो श्रावक नैं अप्रासुक-अनेषणीक प्रतिलाभ्यां अल्पायु निगोद नों बंधै। जीव हणैं, झूठ बोलै तेहनैं जोड़ै श्रमण माहण नैं अप्रासुक-अनेषणीक प्रतिलाभै एहवुं कह्युं। ते भणी ए त्रिहुं बोले करी अशुभ अल्पायु बंधै पिण शुभ अल्पायु न बंधै। वलि इहां श्रमण माहण नों अर्थ वृत्तिकार कर्युं ते वृत्ति लिखियै छै।

समणं व'त्ति श्राम्यते---तपस्यतीति श्रमणोऽतस्त, माहणं व'त्ति मा हनेत्येवं योऽन्यं प्रति वक्ति स्वयं हननानिवृत: सन्नऽ सौ माहन:, ब्रह्म वा ब्रह्मचर्यं कुशलानुष्ठानं वाऽस्याऽस्तीति ब्राह्मणोऽतस्त वा शब्दो समुच्चये।

(व्याख्या-प्र० वृ०-प० २२६)

इहां समण माहण बेहुं शब्दे साधु नैं फलाव्या। श्रमण ते तप सहित, तप ते उत्तर-गुण जाणवो। अनैं माहन ते अन्य प्रति कहै 'म हणो' अनैं पोतै हिंसा थकी निवर्त्यो ए मूल-गुण जाणवो, ते भणी वा शब्द कह्यो।

तथा सूयगडांग श्रुतखंध २ उद्देशै ७ में गोतम स्वामी उदक पेढाल-पुत्र नैं कह्यो---तथारूप श्रमण माहण कनैं एक वचन ही धारै तिण नैं सूक्ष्म दृष्टि करी परम उपगारी जाणी वंदना-नमस्कार करै, सत्कार-सनमान देवै, कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासति एहवा पाठ कह्या। तिहां माहण रो अर्थ टीकाकार शीलाङ्काचार्य इम कियो---तथाभूतश्रमणस्य ब्राह्मणस्य चांतिके। इहां माहण नों अर्थ ब्राह्मण कियो, पिण स्थूल प्राणातिपात थकी निवर्त्यो न कह्यो तथा परम गीतार्थ श्रावक नैं न कह्यो। इण लेखै माहण नों अर्थ श्रावक कहै ते विरुद्ध।

वलि सूयगडांग श्रुतखंध २ उदेशै ७ सू० ३१ में गोतम उदक नैं कह्यो---जे खलु समणं वा माहणं वा परिभासइ---जे समण माहण नैं निंदै, अनैरा जीवां सू मित्री-पणो मानै, ज्ञान-दर्शण-चारित्रियो घणो गुणवंत पिण समण माहण नैं निंदवा थी परलोक नो तथा संजम नो विराधक थाय। अनैं जे ज्ञान-दर्शण-चारित्रवंत घणो गुणवंत छै ते श्रमण माहण नैं न निंदै तो परलोक नो तथा संजम नो आराधक थाय। इहां शीलाङ्काचार्य टीका में श्रमण माहण रो अर्थ इम कियो---श्रमणं ते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथोक्त क्रिया ना करणहार, माहण ते भला ब्रह्मचर्य सहित, इमहीज अर्थ दीपका मे कियो, पिण माहण नों अर्थ श्रावक नथी कियो। ते भणी माहण नों अर्थ श्रावक कहै ते विरुद्ध छै।

तिवारे कोई कहै प्राणातिपात थी पोतै निवर्त्यो ते माहण अथवा देश थकी ब्रह्मचर्यवंत ते ब्राह्मण, देशविरती ए माहण शब्द नों अर्थ छै, इम मरोड़ी अर्थ करै ते विरुद्ध छै। सूत्र में सर्व प्राणातिपातादिक थकी निवर्त्यो तथा सर्व थकी ब्रह्मचर्यवंत ते माहण—ब्राह्मण। ए माहण शब्द नों अर्थ सूत्रे कह्यु छै ते लिखियै छै—उत्तराध्ययन अ० २५ में जयघोष मुनि विजयघोष नैं कह्यु ते पाठ—

तसे पाणे वियाणेत्ता, संगहेण य थावरे।
जो न हिंसइ तिविहेणं, तं वयं बूम माहणं॥

(उत्तर० २५।२२)

अथ इहां कह्यो—त्रस थावर जीव नैं त्रिविधे-त्रिविधे न हणै, तेहनैं अम्है माहण—ब्राह्मण कहूं छूं।

कोहा वा जइ वा हासा, लोहा वा जइ वा भया।
मुसं न वयई जो उ, तं वयं बूम माहणं॥

(उत्तर० २५।२३)

अथ इहां कह्यो—क्रोध थकी हास थकी लोभ थकी भय थकी मृषा न बोलै, तेहनैं अम्है माहण—ब्राह्मण कहूं छूं।

चित्तमंतमचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहुं।
न गेण्हइ अदत्तं जो, तं वयं बूम माहणं॥

(उत्तर० २५।२४)

अथ इहां कह्यो—सचित्त अथवा अचित्त अल्प अथवा बहु वस्तु अणदीधां न लियै, तेहनैं अम्है माहण—ब्राह्मण कहूं छूं।

दिव्वमाणुसतेरिच्छं, जो न सेवइ मेहुणं।
मणसा कायवक्केणं, तं वयं बूम माहणं॥

(उत्तर० २५।२५)

अथ इहां कह्यो—देव मनुष्य तिर्यंच संबंधिया **मिथुन** मन वचन कायाइं करी न सेवै, तेहनैं अम्है माहण—ब्राह्मण कहूं छूं।

जहा पोमं जले जायं, नोवलिप्पइ वारिणा।
एवं अलित्तो कामेहिं, तं वयं बूम माहणं॥

(उत्तर०२५।२६)

अथ इहां कह्यो—जिम कमल जल नैं विषै ऊपनों पिण पाणी करकै लिपावै नहीं। इम कामभोगे करी अलिप्त, तेहनैं अम्है माहण—ब्राह्मण कहूं छूं।

अलोलुयं मुहाजीवी, अणगारं अकिंचणं।
असंसत्तं गिहत्थेसु, तं वयं बूम माहणं॥

(उत्तर० २५।२७)

अथ इहां कह्यो—लोलपणा-रहित अज्ञात कुल नीं गोचरी करै। घर-रहित परिग्रह-रहित ग्रहस्थ सूं संसर्ग-रहित अणगार, तेहनैं अम्है माहण—ब्राह्मण कहूं छूं। इण वचने पडिमाधारी श्रावक नैं पिण माहण—ब्राह्मण न कहियै।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहित्ता पुव्व संजोगं, नाइसंगे य बंधवे ।
जो न सज्जइ एएहि, तं वयं बूम माहणं ।।

(उत्तर० २५।२७ के बाद)

अथ इहां कह्यो- पूर्व संजोग ज्ञाती संजोग बंधवादिक तजी नैं काम भोग नैं विषै गृद्धपणो न करै तेहनें अम्है माहण- --ब्राह्मण कहूं छूं।

इम अनेक प्रकारे करी माहण--ब्राह्मण नाम साधु नों कह्यो। ए तो प्रत्यक्ष पाठ मे साधु नैं माहण---ब्राह्मण कह्या, पिण श्रावक नैं न कह्या। अनैं शीलांकाचार्य माहण नों अर्थ ब्राह्मण कियो ते भणी माहण नाम साधु नों छै पिण श्रावक नो नथी। इहां पंच महाव्रतधारी नैं माहण कह्यो ते माटै पडिमाधारी श्रावक नैं पिण माहण न कहिवो। इण लेखै स्थूल प्राणातिपात थकी निवर्त्यो तथा देश थकी ब्रह्मचर्यव्रत ए माहण शब्द नों अर्थ करै ते विरुद्ध छै। वलि कोइ कहै- -समणं वा माहणं वा ए बिहुं शब्दे साधु छे तो वा शब्द क्यूं कह्यो? तेहनों उत्तर—ए साधु नों बीजो नाम, तेहनी अपेक्षा वा शब्द कह्यु छै, एहवा पाठ घणै ठिकाणै कह्या छै। तथा सूयगडांग श्रुतखंध १ अध्येन १६ में कह्यो ते पाठ—

अहाह भगवं—एवं से दंते दविए वोसट्ठकाए त्ति वच्चे—माहणे त्ति वा १ समणे त्ति वा २ भिक्खू ति वा ३ निग्गंथे त्ति वा ४

पूर्वोक्त पनरमा अध्येन नैं विषै जे अनुष्ठान भाख्यो छै तेहनों करणहार निग्रंथ कहियै। इम भगवंते कह्ये हुंते शिष्य बोल्यो- -भगवन्! किम दांत—वोसरावै जे काय-विभूषा, ते मुक्त-गमन-योग्य इम कहिवो?

पडिआह—भंते! कहं दंते दविए वोसट्ठकाए त्ति वच्चे—माहणे त्ति वा? १ समणे त्ति वा? २ भिक्खू त्ति वा? ३ निग्गंथे त्ति वा? ४ तं णो बूहि महामुणी! इतिविरतसव्वपावकम्मे पेज्ज-दोस-कलह-अब्भक्खाण - पेसुण्ण-परपरिवाद - अरतिरति-मायामोस-मिच्छादंसण-सल्ले विरते समिए सहिए सयाजए, णो कुज्झे णो माणी 'माहणे' त्ति वच्चे।

(सूयगडो १।१६।१-३)

अथ इहां माहणेति वा समणेति वा भिक्खूति वा निग्गंथेति वा ए नाम साधु नां कह्या। तिहां च्यारूं ठिकाणै अन्य नाम नीं अपेक्षाए वा शब्द कह्यो। अनैं निवर्त्यो सर्व पाप थकी राग द्वेष कलह अभ्याख्यन पैशुन्य परपरिवाद अरति रति माया-मोसो मिथ्यादर्शणसल्ल यां थकी निवर्त्यो, पंच सुमतिवंत, ज्ञान दर्शण चारित्र सहित, सदा संजम ना यत्नवंत, क्रोध न करै, मान न करै तेहनैं माहण प्रत्यक्ष पाठ में कह्यो। ते भणी स्थूल प्राणातिपातादिक ना त्यागी नैं तथा देश थकी ब्रह्मचर्यवंत नैं माहण कहै ते अर्थ विरुद्ध छै। तथा सूयगडांगे साधु रा चवदै नाम कह्या ते पाठ लिखियै छै- -

एवं से भिक्खू परिण्णायकम्मे परिण्णायसंगे परिण्णायगेहवासे उवसंते समिए सहिए सयाजए। से एय-वयणिज्जे तं जहा—समणे ति वा १ माहणे ति वा २ खंते ति वा ३ दंते ति वा ४ गुत्ते ति वा ५ मुत्ते ति वा ६ इसी ति वा ७ मुणी ति वा ८ कती ति वा ९ विदू ति वा १० भिक्खू ति वा ११ लूहे ति वा १२ तीरट्ठी ति वा १३ चरण करण पारविउ त्ति १४ वेमि।

(सूयगडो श्रु० २।१।७२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इहां कह्यो—ग्रहस्थावास छोड्यो, इंद्रिय नों दमणहार, पंच सुमतिवंत, तीन गुप्तिवंत, ज्ञान दर्शण चारित्र सहित एहवा साधु तेहनैं एतलै नामैं करी बोलाविय्यै। तिण में माहण नाम साधु नों आयो ते भणी माहण नाम श्रावक नो नथी। अनैं इहां बीच में सर्व ठिकाणैं अन्य नाम नी अपेक्षाए वा शब्द कह्यो जिम च शब्द किहांक तो अन्य वस्तु नी अपेक्षाय अनैं किहांक च शब्द एक वस्तु नों दूजो नाम छै। ते नामंतर नी अपेक्षाय नवमां तीर्थंकर ना बे नाम छै—सुविध अनैं पुष्पदंत, लोगस्स में एहवूं पाठ छै—

'सुविहिं च पुप्फदंतं' नवमा सुविध च पुनः वलि दूजो नाम पुप्फदंत। इहां एक तीर्थंकर ना दूजा नाम नी अपेक्षाय च शब्द कह्यूं। तिवारे कोइ कहै—पुष्प जिसा दांत ते माटैं पुप्फदंत कह्या, पिण सुविध नो पुष्पदंत बीजो नाम नथी। तेहनों उत्तर—ठाणांग ठाणैं २ उ० ४ दोय तीर्थंकर नो श्वेत वर्ण कह्यो—चंद्रप्रभ अनैं पुष्पदंत। इहां सुविध नो नाम पुष्पदंत कह्यो।

तथा भगवती शतक २० उदेशै ८ सू० ६७ में कह्यो ते पाठ—इमीसे ओसप्पिणीए कति तित्थगरा पण्णत्ता ? गोयमा ! चउवीसं तित्थगरा पण्णत्ता तं जहा—

उसभ १ अजिय २ संभव ३ अभिनंदण ४ सुमति ५ सुप्पभ ६ सुपास ७ ससि ८ पुप्फदंत ९ सीयल १० सेज्जंस ११ वासुपुज्ज १२ विमल १३ अणंत १४ धम्म १५ संति १६ कुंथु १७ अर १८ मल्लि १९ मुणिसुव्वय २० नमि २१ नेमि २२ पास २३ वद्धमाणा २४।

अथ इहां चउवीस तीर्थंकरां ना चउवीस नाम कह्या। तिहां नवमां तीर्थंकर नो पुष्पदंत नाम कह्यो। जिम तेवीस तीर्थंकर ना २३ नाम तिम नवमां तीर्थंकर नो पुप्फदंत नाम जाणवो। तथा हेमी नाममाला प्रथम कांडे नवमा तीर्थंकर ना बे नाम कह्या। सुविधिस्तु पुष्पदंतो। इहां प्रथम सुविधि नाम अनैं पुष्पदंत बीजो नाम कह्यो। जिम चंद्रमा नी परैं प्रभा—सौम्य लेश्या जेहनी ते चंद्रप्रभ आठमा तीर्थंकर नो गुण-निष्पन्न नाम, तिम पुष्प नी कली नी परैं मनोहर दांत जेहना ते पुष्पदंत, ए पिण नवमा तीर्थंकर नुं गुण-निष्पन्न बीजूं नाम जाणवूं। ते माटैं लोगस्स में सुविहिं च पुप्फदंतं ए नवमा तीर्थंकर ना बे नाम कह्या। अनैं बीजा नाम नी अपेक्षाय च शब्द कह्यो। तिमहिज समणं वा माहणं वा साधु रा ए बे नाम घणैं ठिकाणैं कह्या छै। अनैं बीजा नाम नी अपेक्षाय समुच्चय अर्थ नैं विषै वा शब्द जाणवो। तथा भगवती शतक २० उ० २ में जीव रा २३ नाम कह्या छै, तिहां सर्व ठिकाणैं अन्य नाम नी अपेक्षाय वा शब्द कह्यो छै। तथा तीन प्रकारे ऊरण हुवै ठाणांग ठाणैं ३ उ० १ में कह्यो, तिहां तीजा बोल नों एहवो पाठ कह्यो छै—

केनि तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतियं एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा णिसम्म कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववण्णे। तए णं से देवे तं धम्मायरियं दुब्भिक्खाओ वा देसाओ सुभिक्खं देसं साहरेज्जा, कंताराओ वा णित्तारेज्जा, दोहकालिएण वा रोगातंकेण अभिभूतं समाणं विमोएज्जा तेणावि तस्स धम्मायरियस्स दुप्पडियारं भवति।

(ठाणं ३।१।८७)

अथ इहां कह्यो—तथारूप श्रमण माहण कनैं धर्ममय एक पिण सुवचन सुणी धारी देवता थई ते धर्माचार्य रो कष्ट मेटै तो पिण ऊरण नहीं हुवै। इहां माहण शब्द नों अर्थ टब्बा में ब्राह्मण कियो अनैं उत्तराध्ययन अ० २५ में पंच महाव्रत-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धारी नैं ब्राह्मण कह्यो ते माटे ए माहण शब्दे साधु छै। वलि इहां श्रमण माहण नैं धर्माचार्य पिण कह्या। ए धर्माचार्य पंच पद मे छै। धर्माचार्य नो लक्षण रायप्रश्नेणी में कह्यो ते पाठ—

जत्थेव धम्मारियं पासिज्जा तत्थेव वंदेज्जा णमंसेज्जा सक्कारेज्जा सम्माणेज्जा कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासेज्जा फासुएसणिज्जेणं असण-पाण-खाईम-साइमेणं पडिलाभेज्जा पाडिहारिएणं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं उवनिमंतेज्जा,

(रायपसेणइय सू० ७७६)

इहां कल्लाणं आदि ४ नाम ए धर्माचार्य ना कह्या। वलि तेहनी पर्युपासना कही, वलि प्रासुक-एषणीक प्रतिलाभै कह्यो, वलि ते धर्माचार्य नैं पाडिहारा पीढ फलग सेज्या संथारो निमंत्रै। ए प्रासुक-एषणीक आहार ना भोजी अनै पाडिहारा पीढादिक ना भोगवणहार धर्माचार्य साधु जाणवा, ते माटै श्रमण माहण नैं धर्माचार्य कह्या। ते श्रमण माहण साधु जाणवा। इहां पिण वा शब्द अन्य नाम नीं अपेक्षाय छै।

तथा ठाणांग ठाणै ३ उ०१ में तीन प्रकारै देवता विज्जुतारा रूप करै। वैक्रिय करतो छतो १ परिचारणा करतो छतो २ तथारूप श्रमण माहण नैं ऋद्धि द्युति जश बल वीर्य पुरुषाकार पराक्रम देखाड़तो छतो इहां श्रमण माहण ते साधु जाणवा।

तथा सुयगडांगे गोतम उदक पेढाल-पुत्र नैं कह्यो ते पाठ—

आउसंतो! उदगा! णो खलु अम्हं एयं एवं रोयइ। जे ते समणा वा माहणा वा एवमाइक्खंति जाव परूवेंति।
णो खलु ते समणा वा णिग्गंथा वा भासं भासंति अणुतावियं खलु ते भासं भासंति।

(सूयगडो २।७।११)

इहां कह्यो—जे श्रमण अथवा माहण भूत शब्द धारी त्रस जीव नों पचखाण कीजै, इम परूपै ते श्रमण निर्ग्रंथ शुद्ध भाषा न भाखै, उपताप नी भाषा भाखै। इहां पहिलां तो श्रमण माहण कह्यो पछै श्रमण निर्ग्रंथ कह्यो। माहण नैं ठिकाणै निर्ग्रंथ शब्द आयो ए तो प्रत्यक्ष माहण नाम साधु नो ठहर्यो। साधु ना अनेक नाम छै समणं वा माहणं वा साधु ना बीजा नाम नीं अपेक्षाय वा शब्द कह्यो। समणा वा णिग्गंथा वा इहां पिण वा शब्द कह्यो छै। तिम समणं वा माहणं वा अनेक ठिकाणै वा शब्द कह्यो ते जाणवो।

तथा क्रिया रे ठिकाणै एहवूं कह्यूं ते पाठ—

इच्चेताइं दुवालस किरियाट्ठाणाइं दविएणं समणेणं वा माहणेणं वा सम्मं सुपरिजाणियव्वाणि भवंति।

(सूयगडो २।२।१५)

अथ इहां बारै क्रिया ना स्थानक मुक्ति गमन योग्य संजमवंत तपस्वी साध मा हुवो एहवी प्रवृत्ति छै जेहनी तेणै सम्यक् प्रकारै संसार ना कारण जाणी नै प्रत्याख्यान-परिज्ञाइं परिहरवा हुई। इहां पिण समण माहण साधु नैं कह्या। शीलाङ्काचार्य पिण टीका में समण माहण साधु नैं फलाव्या। इहां पिण वा शब्द कह्यो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा ठाणांग ठाणै दसमें कह्यो ते पाठ—

दसहिं ठाणेहिं सह तेयसा भासं कुज्जा, तं जहा—केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा से य अच्चासातिते समाणे परिकुविते तस्स तेयं णिसिरेज्जा। से तं परितावेति से तं परितावेत्ता तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

(ठाणं १०।१५६)

इहां कह्यो—श्रमण माहण नी असातना कीधां ते श्रमण माहण कोप्यो छतो तेजू लेस्या काढै तेहनैं परितापना उपजावी तिण नैं तेजू करकै भस्म करै। इहां समण माहण नों अर्थ वृत्तिकार कियो, ते टीका लिखियै छै -

के इति कश्चिदनार्यकर्म्मकारी पापात्मा तथारूपं तेजोवृद्धिप्राप्तं श्रमणं तपोयुक्तं माहनं मा विनाशयेत्येवंप्ररूपणाकारिणं वा शब्दो विशेषण-समुच्चयार्थावित्याशातयेदात्यंतिकीमाशातनां तस्य कुर्यात्।

इहां वा शब्द कह्यो—समण ते तपोयुक्त अनैं माहण ते मत विणास एहवी परूपणा नों करणहार वे ठिकाणै वा शब्द ते विशेषण-समुच्चय नैं अर्थ कह्यु। तथा अनुयोगद्वार में एहवो कह्यो ते पाठ लिखियै छै—

से किं तं सिलोगनामे ? समणे माहणे सव्वातिही।

(अणुओगदाराइं सू० ३६१)

अथ इहां श्रमण माहण सर्व-अतिथि नो नाम कह्यो पिण श्रावक नों नाम श्रमण माहण न कह्यो। जे जैन में गुरु तेहनों नाम समण माहण तथा अन्य मत में जे गुरु समण साक्यादिक, माहण ब्राह्मण ते पिण गुरु बाजै, ते माटै सर्व अतिथि नैं समण माहण कह्या। पिण श्रावक नैं माहण कह्या नथी।

तथा आचारंग श्रुत० २ अ० ४ उ० १ में कह्यो ते पाठ—

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा पुमं आमंतेमाणे आमंतिते वा अपडिसुणेमाणे एवं वएज्जा अमुगे ति वा आउसो ति वा आउसंतो ति वा सावगे ति वा उपासगे ति वा धम्मिए ति वा धम्मपिये ति वा—एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव अभूतोवघाइयं अभिकंख भासेज्जा।

(आयार चूला ४।१३)

अथ इहां एतलै नामे करी बोलावणो कह्यो तिण में नाम लेइ बोलावणो तथा हे श्रावक ! हे उपासक ! हे धार्मिक ! हे धर्मप्रिय ! ए नाम कह्या। पिण हे माहण इसो श्रावक रो नाम न कह्यो।

तथा ठाणांग ठाणै ३ उद्देश ४ में कह्या ते पाठ—

तिविधे अभिसमागमे पण्णत्ते तं जहा—उड्ढं अहं तिरियं। जया ण तहा रूवस्स वा समणस्स वा माहणस्स वा अतिसेसे णाण-दंसणे समुप्पज्जति से णं तप्पढमताए उड्ढमभिसमेति ततो तिरियं ततो पच्छा अहे। अहोलोगे णं दुरभिगमे पण्णत्ते समणाउसो !

(ठाणं ३।५००)

इहां पिण परम अवधिवंत नैं श्रमण माहण कह्यो तिहां वा शब्द अन्य नाम नी अपेक्षाइं कह्यो इत्यादिक अनेक ठामे सूत्र में माहण शब्दे साधु नैं कह्यु, पिण श्रावक नैं माहण नथी कह्यो। ते माटै साधु नीं सेवा नो इहां भगवती श० २ उ० ५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में छेहड़ै मोक्ष नो फल कह्यो छै। तेहनों अर्थ 'दरियापुरी धर्मसी कृत भगवती' नो यंत्र, ते मध्ये पिण साधुहिज फलायो छै। तथा लूंका री सूत्रां री ५८ बोलां री हुंडी ते मध्ये जे समणं वा माहणं वा एक साधु नै विहुं नामे करी कह्या। तथा वा शब्द पिण कह्यु एहवुं कह्यु। तिहां सूयगडांग १७ अध्ययन नीं साख दीधी छै। समणे ति वा माहणे ति वा इत्यादिक साधु रा नाम कह्या तिहां तेरै ठिकाणै वा शब्द कह्यु छै। एहवुं ते हुण्डी मध्ये पिण कह्यु छै। इम अनेक ठामे सूत्र नै विषे समणं वा माहणं वा साधु नै कह्या छै। अनै तेहनी सेवा नो मोक्ष नुं फल कह्यो छै। तथा अन्यतीर्थी ना ए बे नाम कह्या छै पिण श्रावक ना नथी कह्या। विवेक-लोचनै करी विचारी जोइज्यो।

अनै वृत्ति में इहां दूजो अर्थ माहण शब्दे श्रावक कह्यु तथा भगवती श० १ उ० ७ में सांभलवा नै अधिकारे स्थूल प्राणातिपातादिक थकी निवर्त्यो तै श्रावक नै माहण कह्यो। तथा रायप्रश्नेणी नीं वृत्ति में परम गीतार्थ श्रावक नै माहण कह्यो। अनै उत्तराध्ययन अध्येन २५ में सर्वथा प्रकारे पंच आश्रव त्याग्या, पंच महाव्रतधारी, न्याती-सग पूर्व-संजोग छोड्या, तेहनै माहण कह्यो।

तथा सूयगडांग अध्येन १६ में सर्व पाप थी निवर्त्यो तेहनै माहण कह्यो। इम अनेक ठामै सूत्रे माहण साधु कह्या ते पाठ देखतां वृत्ति में माहण शब्दे श्रावक कह्यो ते विरुद्ध। वृत्ति चूर्णि में तो अनेक बारता विरुद्ध कही छै। ते केतलाएक बोल लिखिये छै।

आचारंग श्रु० २ अ० १ उ० १ कारणे आधाकर्मीआदि लेणो वृत्ति में कह्यो ते कहै छै—

तथाप्रकारमेवंजातीयमशुद्धमशनादि चतुर्विधमप्याहारं परहस्ते दातृहस्ते परपात्रे वा स्थितं अप्रासुकं सचित्तम् अनेषणीयम् आधाकर्मादि दोषदुष्टम् इति एवं मन्यमानः स भावभिक्षुः सत्यपि लाभे न प्रति-गृह्णीयादित्युत्सर्गतः अपवादस्तु द्रव्यादि ज्ञात्वा प्रतिगृह्णीयादपि, तत्र द्रव्यं दुर्लभद्रव्यं, क्षेत्रं साधारणद्रव्यलाभरहितं सरजस्कादिभावितं वा, कालो दुर्भिक्षादि, भावो ग्लानतादिः इत्यादिभिः कारणैरुपस्थिते-ऽल्पबहुत्वं पर्यालोच्य गीतार्थो गृह्णीयादिति।

(आचारांग-वृत्ति पत्र ३२१)

इम शीलांकाचार्य टीका में नीलण-फूलण तस-जीव सहित उत्सर्ग मार्गे न लेणो अनै कारण पडियां लेणो कह्यो। आधाकर्मी प्रमुख दोष दुष्ट उत्सर्ग मार्गे न लेणो अनै कारण पडियां द्रव्य क्षेत्र काल भाव, थोड़ो घणो टोटो आलोची गीतार्थ ग्रहै, इम कह्यु ते प्रत्यक्ष विरुद्ध छै।

भगवती शतक १८ उद्देशे १० सोमल नै महावीर स्वामी सचित्त नै असूझतो आहार साधु नै अभक्ष कह्यु। तथा पुष्फिया उपंगे पिण सोमल नै पार्श्वनाथ सचित्त अनै असूझतो आहार साधु नै अभक्ष कह्यु। तथा थावरचा-पुत्रे पिण सुखदेव नै सचित्त नै असूझतो आहार साधु नै अभक्ष कह्यु। एहवो आहार साधु कारण पडियां किम लेवै? अनै श्रावक सचित्त असूझतो साधु रै कारण जाणी किम वहिरावै?

उववाई, रायप्रश्नेणी, भगवती, उपासगदशा प्रमुख सूत्रे श्रावक साधु नै प्रासुक एषणीक बहिरावै एहवूं कह्यु, पिण कारण पडियां अप्रासुक अनेषणीक देवै एहवो नथी कह्यु।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा भगवती शतक ५ उद्देशे ६ आधाकर्मी प्रमुख ए निर्वद्य छै इम मन में साधु धारै तो विराधक कह्यु। ते भणी सचित्त असूझतो तथा आधाकर्मी कारणै लेणो थाप्यो ते टीका विरुद्ध छै।

आचारांग श्रुतखंध १ अध्येन ६ उद्देशे ४ कह्यो—हीण-आचारी ते इम कहै—जेणे गिलाणपणो पामै, जेहनै टालवा भणी आधाकर्मी आदिक आहार पिण लै, ए पिण करिवो इत्यादिक विपरीतपणै पहुंचै इम बड़ा टब्बा में कह्यो। तथा टीकाकार पिण इमहिज कह्यो—

यो येन ग्लायति तस्य तदपनयनार्थमाधाकर्म्माद्यपि कार्यं, स्यादेतत्—किं तेषां नाख्याताः कुशीलानां प्रत्यपायाः यथाज्ञातनाबहुलानां दीर्घः संसार इति।

(आचारांग वृत्ति-पत्र ३४६)

ग्लायते कहितां गिलानपणो पामै। तस्य कहितां ते साधु नैं, तदपनयनार्थं कहितां ते गिलानपणो टालिवा नै अर्थे, आधाकर्म्मादि कहितां आधाकर्मी आदि पिण लै। कार्यं स्यात् कहितां ए पिण करिवो। ते कुशीलिया नै आसातना-बहुल नैं दीर्घ संसार हुवै, एहवूं शीलांकाचार्य कृत टीका में कह्यो। तेणै लेखै पिण इहां आधाकर्मी कारणे लेणो कह्यु ते विरुद्ध।

तथा भगवती शतक १५ सू० १५२ में कोहला पाक भगवान नैं अर्थे कियो ते लेवा नीं भगवान आज्ञा न दीधी। तिहां एहवो पाठ कह्यो—

तत्थ णं रेवतीए गाहावतिणीए ममं अट्ठाए दुवे कवोय-सरीरा उवक्खडिया, तेहिं नो अट्ठो।

इहां कह्यो—रेवती गाथापतणी म्हारै अर्थे दोय कपोत-शरीर कोहला ना फल ते रांध्या तेहथी अर्थ नहीं। तिहां टीकाकार इम कह्यु—तेहिं नो अट्ठोत्ति बहुपापत्वात्। इहां भगवंत नैं इसो मोटो कारण त्यांरे अर्थे कीधो तिण में महा-पाप कह्यो। अनैं भगवान लेवा नीं आज्ञा दीधी नहीं। ते भणी अप्रासुक-अनेषणीक आधाकर्मी आदिक कारणे लेणो कहै ते विरुद्ध जाणवो।

तथा व्यवहार सूत्रे नवमैं उद्देशके मलयगिरि कृत टीका तेहनों सारोद्धार तेहनैं विषै इम कह्यु ते कहै छै—

साधूनामाम्राणि सचित्तत्वात् न कल्पन्ते, सूरिराह—तेषामाम्रफलानां ग्लानत्वे अध्वनि शेषभिक्षाया अलाभे अवमौदर्ये च ग्रहणं दर्शितं कथितं महर्षिभिः।

इहां कह्यो—आंबा सचित्तपणा थकी साधु नैं न कल्पै। सूरि कहै छै—ते ग्लानपणो पामै छतै, मार्ग नैं विषै, शेष भिक्षा ना अलाभ छतै वली ऊणोदरी छतै आंबा ना फल नों ग्रहण करिवूं। एहवूं महाऋषि कह्यु। ए मलयगिरि व्यवहार नीं टीका ना सारोद्धार मध्ये सचित्त आंबा नो फल कारणे लेणो थाप्यो ते प्रत्यक्ष विरुद्ध छै।

तथा जिनदास गणि कृत निशीथ नी चूर्णि अठावीसहजारी तेहनैं विषै उद्देशे १५ में इम कह्यु ते कहै छै—

'जे भिक्खू सचित्तं अंबं भुंजइ' इत्यादि सचित्ते सचित्तपतिट्ठिए य दोसु वि सुत्तेसु इमो अववातो—विनियपद गाहा—४६६५ खेत्तादिगो अणप्पज्झो वा भुंजति, सेहो अविकोवियत्तणओ अजाणंतो, रोगोव-समणिमित्तं वेज्जुवदेसितो गिलाणो वा भुंजे, अद्धाणोमेसु वा असंथरंता भुंजंता विसुद्धा।

(४६६५ की चूर्णि)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इहां पिण सचित्त आंबो शिष्य अपंडित अथवा रोग-निमित्त ग्लान वैद्य उपदेश थकी भोगवै। अथवा मार्ग नैं विषै ऊणोदरी छतै अणसरतै भोगवै तो विशुद्ध। इम सचित्त आंबो भोगवणो थाप्यो ते सूत्र थकी विरुद्ध ३।

तथा ववहार नी टीका ना सारोद्धारे नवमैं उद्देशै इम कह्यु ते कहै छै—

'दंडको दीर्घः स्थविरश्च ततस्तं दुर्गे व्याघ्रादिपरिवारणनिमित्तं परिवहति' इहां कह्यो दीर्घ दांडो स्थविर राखै विषम जायगां व्याघ्रादिक नैं निवारण अर्थे। ते विरुद्ध ४।

तथा बृहत्कल्प नी वृत्ति में अथवा चूर्णि में रात्रि भोजन करवो कह्यो ते लिखिये छै—

इदाणिं कप्पया भणइ अणाभोगे दार-गाहा—अणाभोगेणं वा राइभत्तं भुंजेज्ज गिलाणकारणेण वा अद्धापडिसेवणं वा दुल्लह दव्वं वट्टनो वा १ उत्तमट्ठपडिवण्णो राया भणइ रायाभत्तं भुंजेज्जा य म कालंमि गच्छानुकंपियाए वा रायाभत्ताणुण्णा सुतत्थविसारए वा रायभत्ता-णुण्णा एस संखेवत्थो।

इहां बृहत्कल्प नी चूर्णि तथा निशीथ नी चूर्णि नैं विषै कह्यो। रोगादिक कारणैं रात्रिभोजन करणो अनैं बृहत्कल्प उद्देशे ५ में साधु निरोग शरीर नों धणी समर्थवंत नैं तथा रोगे करी सहित एहवा असमर्थवंत नैं पिण सूर्य ऊगां थी आहार लेवा नी वृत्ति कही। आथम्यो नहीं तठा ताइं भोगवणो कह्यो। आहार बहिर्यां पछै जाण्यो सूर्य न ऊगो तथा मूंहढा में घाल्या पछै आथम्यो जाण्यो तो मूंहढा मांहि हुवं तथा हाथ नैं विषै तथा पात्रा मांहि हुवं ते परठणो कह्यु। भोगवै तो चोमासी प्रायश्चित कह्यो। ए तो प्रत्यक्ष असमर्थवंत नैं पिण रात्रि-भोजन वर्ज्यो। ते माटै चूर्णि मध्ये रात्रि-भोजन थाप्यो ते विरुद्ध छै।

तथा वलि ते चूर्णि मध्ये अनंतकाय नो दांडो साधु नैं ग्रहण करिवू कह्यु ते लिखिये छै—

गिलाणो बालो उवही पलंबाणि वा अद्धाणे वुज्झंति सावयभए णिवारणट्ठा घेप्पंति, उवहि सरीराण वहणट्ठा तेणगपडिणीय साणमादीण णिवारणट्ठा पुव्व अचित्त पच्छा मीसं सेसा परित्ताणंता पुव्वं परित्त जाव पच्छा अनंतं।

(नि० भा० गा० २०००)

इहां कह्यो- -मार्गे स्वापद ना भय निवारण अर्थे, उपधि शरीर वहण नैं अर्थे चोर, प्रत्यनीक, श्वान आदि नैं निवारण अर्थे प्रथम अचित्त, ते न मिलै तो पछै मिश्र परित्त काय नो, ते न मिलै तो पछै अनंतकाय नो दांडो धारण करै, एह मध्यै वार्त्ता कही ते प्रत्यक्ष विरुद्ध। ते न्यायवादी किम मानै ६।

तथा निशीथ उद्देशै ६ चूर्णि मध्यै राजा नैं अभियोगे करी करिवो कह्यो ते पाठ अर्थ लिखियै छै—

हिवै अभियोगद्वार कहै छै—

इयाणिं 'अभिओगे' त्ति दारं कुलवंसम्मि—भा० गाहा (२२४२) अभियोगे ण पडिसेवेज्जा। तत्थिमं उयाहरणं—कोइ अपुत्तो राया अमच्चेहिं भणिओ अपुत्तस्स तुज्झ कुलवंसे पहीणे अकुमारस्स य परो पेल्लेहिति रज्ज, किं कज्जउ, भणइ—"तुज्झ बुद्धीए पाहुणं वट्टति"।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंतीहिं भणियं—अंतपुरे कोइ खिप्पउ, तुह खेत्तज्जायया तुह ते पुत्ता। राया भणइ—अयसो मे भविस्सति। ते भणंति "जहा अयसो ण भवति तहा कज्जति। इमे समणा णिग्गंथा ण कस्सति कहेंति, एते पक्खिप्पंतु। एवं कीरउ। ताहे जे तरुणसंजता ते गहिया एक्कम्मि पासाए छूढा। तरुणीण—गाहा (२२४३)। सुट्ठुल्लसिते—गाहा (२२४४) एव ता अहिओगेण पडिसेवतस्स जयणा भणिया।

(नि० भा० गा० २२४२-२२४४)

इहां राजा नै अभियोगे करी कुशील सेवै तेहनै जयणा कही पिण अणाचार न कह्यो। एहवा प्रत्यक्ष विरुद्ध वचन अणाचार्यां ना कह्या ते किम मानियै? जे कहै अम्हारै पंचांगी प्रमाण छै ते पंचांगी नै विषै चूर्णि मध्ये एहवा विरुद्ध वचन कह्या ते किम मानियै? अनै पचांगी नै विषै वृत्ति पिण, ते आचारांग नी वृत्ति में अप्रासुक—सचित्त आधाकर्मी आदिक दोष-दुष्ट कारणे लेणो कह्यो। वले वृत्ति चूर्णि मध्ये कारणे सचित्त अंब फल खाणो अनै रात्रि भोजन करवो कह्यो। इत्यादिक अनेक विरुद्ध वातां कही ते माटै ए पंचांगी ना बोल प्रमाण किम कीजै। विवेक लोचने विचारी जोइज्यो।

तथा समवायांग मे कह्यो—ऋषभ, भरत, बाहुबल, ब्राह्मी, सुंदरी ए ५ नो सरीखो आउखो ८४ लाख पूर्व नो छै। अनै आवश्यक-निर्युक्ति मध्ये कह्यो—ऋषभ ९९ पुत्र सहित एक भरत टाली नै अनै भरत ना आठ पुत्र ए १०८ उत्कृष्टी अवगाहनावंत एक समै सिद्धा, ते गाथा—

उसहो उसहसुया, भरहेण विवज्जिया नवनवइ।
भरहस्स अट्ठ सुया, सिद्धा एगंमि समयंमि॥

तथा ऋषिमंडल में पिण कह्यो। निनाणुं ऋषभ ना पुत्र आठ भरत ना पुत्र संयुक्त ऋषभदेव सहित—१०८ एक समय मैं सिद्ध कह्या, ते गाथा—

निन्नाणू रिसहसुयं, अट्ठं भरहस्स पुत्त-संजुत्तं।
एगसमएण सिद्धं, रिसहजुयं तं च पणमामि॥१॥

इहां ऋषभ अनै बाहुबल सरीखा आउखा ना धणी साथे सिद्धा कह्या ए विरुद्ध, तथा ठाणांग ठाणे ४ भरत चक्रवर्ती गजसुखमाल, सनतकुमार चक्रवर्ती, मरुदेवी माता नैं अंतक्रिया कही अनैं आवश्यक-निर्युक्ति में तथा ठाणांग नी टीका में तीजै देवलोक कहै छै। ए सूत्र विरुद्ध। उववाइ, भगवती, पन्नवणा में कह्यो पांच सौ धनुष्य उपरंत न सीजै, उपरंत युगलियो कहियै। अनै आवश्यक-निर्युक्ति में कह्यो जे मरुदेवी माता नी अवगाहना सवा पांच सौ धनुष नी, ते सिद्धा कहै, ए विरुद्ध। (ज०स०)

४५. श्रमण माहण साधू तणी, सेवा कीधां सोय।
स्यूं फल ह्वै? तब जिन कहै, सांभलजो अवलोय॥

*श्री जिनवर भणै (ध्रुपद)

४६. जिन भाखै गोयम! सेवा थी सोयो रे।
श्रवण सिद्धांत नो, धुर फल ए जोयो रे॥

४६. गोयमा! सवणफला।
सिद्धान्तश्रवणफला। (वृ०-प० १४१)

*लय—भावै भावना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७. सुणवा नों स्यूं फल? तब भाखै स्वामी।
सुण वा थी लहै, वर ज्ञान अमामी॥

४८. प्रभु ज्ञान नों स्यूं फल? जिन कहै विज्ञानो।
पामै ज्ञान थी, हेयोपादेय जानो॥

४९. विज्ञान नो स्यूं फल? जिन कहै पचखाणो।
विशिष्ट ज्ञान थी, अघ त्याग पिछाणो॥

५०. पचखाण नों स्यूं फल? जिन कहै संजम्मो।
त्याग कियै छतै, हुवै संजम-धम्मो॥

५१. संयम नों स्यूं फल? अनाश्रव संधो।
जे संयम थकी, नवुं कर्म अबंधो॥

५२. अनाश्रव नों स्यूं फल? तप फल जिन भाखै।
आवता रूंधियां, तप नैं अभिलाखै॥

५३. स्यूं फल है तप नो? जिन, कहै वोदाणं।
तप कीधै छतै, निर्जरै पुराणं॥

५४. निर्जरा नुं स्यूं फल? जिन कहै अकिरिया।
योग - निरोध ते, वर फल अनुचरिया॥

५५. अकिरिया नो स्यूं फल? सिद्धि लक्षण सारो।
छेहड़ै एह ते, फल कह्यो उदारो॥

सोरठा

५६. श्रवण ज्ञान विज्ञान, पचक्खाण संजम बली।
अनाश्रव तप वोदाण, पुनः अकिरिया नै सिद्धि॥

५७. तथारूप मुनिराय, तसुं सेवा ना फल कह्या।
अतथारूप नीं ताय, सेवा कीधां फल नहीं॥

५८. तथारूप वर रीत, श्रमण माहण नीं सेवनुं।
आख्यो फल संगीत, पर्यवसान सिद्धी-गमन॥

५९. असत्यभाषी जेह, तसुं सेवा नुं फल नहीं।
अन्ययूथिक छै तेह, कहियै तास परूपणा॥

६०. *प्रभु अन्यतीर्थिक, भाखै इम वाणी।
राजगृह बाहिरै, गिरि वेभार जाणी॥

६१. तिण पर्वत हेठै, इक मोटो तामो।
हरए द्रह अछै, 'अधे' तसु नामो॥

---

*लय—भावै भावना

४७. से णं भंते! सवणे किंफले? नाणफले।
श्रवणाद्धि श्रुतज्ञानमवाप्यते। (वृ०-प० १४१)

४८. से णं भंते! नाणे किंफले? विण्णाणफले।
श्रुतज्ञानाद्धि हेयोपादेयविवेककारि विज्ञानमुत्पद्यत एव।
(वृ०-प० १४१)

४९. से णं भंते विण्णाणे किंफले? पच्चक्खाणफले।
विशिष्टज्ञानो हि पापं प्रत्याख्याति। (वृ०-प० १४१)

५०. से णं भंते! पच्चक्खाणे किंफले? संजमफले।
कृतप्रत्याख्यानस्य हि संयमो भवत्येव। (वृ०-प० १४१)

५१. से णं भंते! संजमे किंफले? अणण्हयफले।
संयमवान् किल नवं कर्म नोपादत्ते। (वृ०-प० १४१)

५२. से णं भंते! अणण्हए किंफले? तवफले।
अनाश्रवो हि लघुकर्मत्वात् तपस्यतीति।
(वृ०-प० १४१)

५३. से णं भंते! तवे किंफले? वोदाणफले।
तपसा हि पुरातनं कर्म निर्जरयति। (वृ०-प० १४१)

५४. से णं भंते वोदाणे किंफले? अकिरियाफले।
कर्मनिर्जरातो हि योगनिरोधं कुरुते। (वृ०-प० १४१)

५५. सा णं भंते! अकिरिया किंफला? सिद्धिपज्जवसाण-फला—पण्णत्ता गोयमा!
सकलफलपर्यन्तवर्त्ति फलं यस्यां सा तथा।
(वृ०-प० १४१)

५६. सवणे णाणे य विण्णाणे, पच्चक्खाणे य संजमे।
अणण्हए तवे चेव, वोदाणे अकिरिया सिद्धी॥
(२।१११ संगहणी-गाहा)

५७. तथारूपस्यैव श्रमणादेः पर्युपासना यथोक्तफला भवति, नातथारूपस्य। (वृ०-प० १४१)

५९. असम्यग्भाषित्वादिति असम्यग्भाषितामेव केषांचित् दर्शयन्नाह— (वृ०-प० १४१)

६०, ६१. अन्नउत्थिया णं भंते! एवमाइक्खंति, भासंति, पण्णवेंति, परूवेंति—एवं खलु रायगिहस्स नयरस्स बहिया वेभारस्स पव्वयस्स अहे, एत्थ णं महं एगे हरए अधे पण्णत्ते—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६२. वलि किहांइक हरए, ए पाठ न दीसै।
अधे इण स्थानके, अप्पे रव हींसै॥

६२. क्वचित्तु 'हरए' त्ति न दृश्यते, अधेत्यस्य च स्थाने 'अप्पे' त्ति दृश्यते। (वृ०-प० १४१)

सोरठा

६३. अप्पे तणुंज अर्थ, अप नीं उत्पत्ति छै तिहां।
कहियै अप्प तदर्थ, द्रह ईज ए जाणवूं॥

६३. तत्र चाप्यः—अपां प्रभवो ह्रद एवेति। (वृ०-प० १४१)

६४. *बहु योजन लांबो, चोडो सुविशेषो।
नाना तरु करि, मंडित तसुं देशो॥

६४. अणेगाइं जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, नाणादुमसंडमंडिउद्देसे,

६५. सिरि सोभ सहित छै, जावत् प्रतिरूपो।
जोवा जोग्य ए, रमणीक अनूपो॥

६५. सस्सिरीए जाव पडिरूवे।

६६. तिहां बहु विस्तीर्ण, मेह बादल निपजै।
उपजवा तणैं, सन्मुख फुन उपजै॥

६६. तत्थ णं बहवे ओराला बलाहया संसेयंति संमुच्छंति वासंति।

सोरठा

६७. संसेयंति कहेह, उपजवा सन्मुख थयो।
संमुच्छंति उपजेह, वासंते रखे उदक॥

६७. 'संसेयंति' 'संस्विद्यन्ति' उत्पादाभिमुखीभवन्ति 'संमुच्छंति' त्ति 'संमूर्च्छन्ति' उत्पद्यन्ते। (वृ०-प० १४१)

६८. *तिहां मेह रखै छै, द्रह पूरण पानी।
अधिकपणां थकी, सदा समित पिछाणी॥

६८, ६९. तव्वइरित्ते य णं सया समियं उसिणे-उसिणे आउकाए अभिनिस्सवइ। (श० २।११२)

६९. अप उष्ण उष्ण ते, नीसरतो जाणी।
अन्यतीर्थिक इसो, भाखै छै वाणी॥

७०. ते किम ए वच प्रभु! हिव भाखै नाणी।
अन्यतीर्थिक तणीं, मिथ्या ए वाणी॥

७०. से कहमेयं भंते! एवं? गोयमा! जं णं ते अण्णउत्थिया एवमाइक्खंति जाव जे ते एवमाइक्खंति, मिच्छं ते एवमाइक्खंति।

सोरठा

७१. मिथ्यापणुंज तास, गिर तल बहु जोजन वली।
तेहनुं कथन विमास, सर्वज्ञ वच थी विरुद्ध॥

७१. मिथ्यात्वं चैतदाख्यानस्य विभंगज्ञानपूर्वकत्वात् प्रायः सर्वज्ञवचनविरुद्धत्वात्। (वृ०-प० १४२)

७२. फुन व्यवहारिक जान, प्रत्यक्ष करिकै तेहना।
बहुलपणैं पहिछाण, वचन अन्यथा जाणवा॥

७२. व्यावहारिकप्रत्यक्षेण प्रायोऽन्यथोपलम्भाच्चावगन्तव्यम्। (वृ०-प० १४२)

७३. *हूं पिण इम कहूं छूं, भाखूं सामानो।
पन्नवूं छूं वलि, परूपूं जानो॥

७३. अहं पुण गोयमा! एवमाइक्खामि, भासामि, पण्णवेमि, परूवेमि—

७४. इम निश्चै करिनै, राजगृह वारो।
गिरि वैभार छै, तेहथी सुविचारो॥

७५. अति दूर नहीं फुन, अति नजीक नांही।
एत्थ णं ते इहां, जिन कथने ज्यांही॥

७४, ७५. एवं खलु रायगिहस्स नयरस्स बहिया वेभारस्स पव्वयस्स अदूरसामंते, एत्थ णं

चौपाई

७६. महातपोपतीर प्रभव इह नाम, प्रश्रवण झरणो मोटो ताम।
महातप नं उपतीरे जोय, प्रभव ते उत्पत्ति जिहां होय॥

७६. महातवोवतीरप्पभवे नामं पासवणे पण्णत्ते—

*लय—भावै भावना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—आतप नीं परै आतप—उष्णता, महा इसो आतप ते महाआतप । महातप नै उपतीर ते तीर समीपै, प्रभव कहितां उत्पाद जे पर्वत नै विषे तिको महातपोपतीर प्रभव नामै प्रश्रवण झरणो परूप्यो ।

वा०— आतप इवातपः—उष्णता महांश्चासावातपश्चेति महातपः महातपस्योपतीरं—तीरसमीपे प्रभव—उत्पादो यत्रासौ महातपोपतीरप्रभवः, प्रश्रवति—क्षरतीति प्रश्रवणः प्रस्यन्दन इत्यर्थः । (वृ०-प० १४२)

७७. *ते धनुष पांच सौ, लंब चोड विशेषो ।
नाना तरु करी, मंडित तसु देशो ।।

७७. पंच धणुसयाइं आयाम-विक्खंभेणं, नाणादुमसंडमंडिउद्देसे

७८. सोभायमान ते, चित थाय प्रसन्नो ।
जोवा जोग्य छै, मनोहर जन्नो ।।

७८. सस्सिरीए पासादीए दरिसणिज्जे अभिरूवे

७९. प्रतिरूप देखतां, तृप्ति नहि थायो ।
त्यां बहु ऊपजै, उदकपणै आयो ।।

७९, ८०. पडिरूवे । तत्थ णं बहवे उसिणजोणिया जीवा य पोग्गला य उदगत्ताए वक्कमंति विउक्कमंति

८०. बहु उष्णयोनिया, पुद्गल नैं जीवा ।
उपजै नै विणसियै, जलपणै अतीवा ।।

८१. एहीज अर्थ हिव, विपर्यय कजियै ।
तेह चवै अछै, फुन ऊपजियै ।।

८१. चयंति उववज्जंति ।

८२. तिहां जल अधिको हुवै, उष्ण अपकायो ।
सदा श्रवै झरै, सुण गोयम ! वायो ।।

८२, ८३. तव्वइरित्ते वि य णं सया समियं उसिणे-उसिणे आउयाए अभिनिस्सवइ । एस णं गोयमा ! महातवोवतीरप्पभवे पासवणे । एस णं गोयमा ! महातवोवतीरप्पभवस्स पासवणस्स अट्ठे पण्णत्ते । (श० २।११३)

८३. महातपोपतीरज, प्रभव पासवणो ।
तेहनों अर्थ ए, भाख्यो छै निरणो ।।

८४. सेवं भंते ! सेवं भंते ! सुविचारो ।
गोतम वीर नैं, वंदै नमस्कारो ।।

८४. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ । (श० २।११४)

८५. ए दूजा शत नैं, पंचम उद्देशे ।
आख्यो अर्थ ए, वारू सुविशेषे ।।

८६. ढाल चोमालीसमी, भिक्खू भारीमालो ।
ऋषराय प्रसाद थी, 'जय-जश' सुविशालो ।।

द्वितीयशते पंचमोद्देशकार्थः ।।२।५।।

ढाल : ४५

सोरठा

१. पंचमुदेशे अंत, मिथ्याभाषी अन्ययुथ ।
हिव छट्ठै पभणंत, भाषा स्वरूपज सांभलो ।।

१. पञ्चमोद्देशकस्यान्तेऽन्ययूथिका मिथ्याभाषिण उक्ताः, अथ षष्ठे भाषास्वरूपमुच्यते । (वृ०-प० १४२)

+प्रभु वच वारू जी,
हे देव ! जिनेन्द्र ! दयाल जन्म सुधारू जी (ध्रुपदं)
गोयम प्रश्न दियै जिन उत्तर[1] ।। (ध्रुपदं)

---

*लय—भावै भावना

+लय—साचू बोलोजी तथा प्रभवो चोर चोरां नै समझावै

१. पैंतालीसवीं ढाल की लय दो प्रकार की दी गई है, इसीलिए वहां 'ध्रुपद' भी दो प्रकार का है, प्रथम पद पहली लय के अनुसार लिया जाता है और दूसरा पद दूसरी लय के अनुसार ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. से नूणं भंते ! तसुं अर्थज, से कहितां अथ जाणी जी।
अथ शब्द ते वाक्य तणां जे उपन्यासे पहिछाणी जी ।।

२. से नूणं भंते !
सेशब्दोऽथशब्दार्थे स च वाक्योपन्यासे। (वृ०-प० १४२)

३. उपमान अवधारण तर्के, प्रश्न हेतु में जोयो।
नूनं शब्द एणे अर्थे छै, इहां अवधारण होयो ।।

३. 'नूनम्' 'उपमानावधारणतर्कप्रश्नहेतुषु' इह अवधारणे।
(वृ०-प० १४२)

४. हे भदंत ! ए शब्द कह्यु जे, गुरु आमन्त्रण काजो।
इह विध विनय करीनैं पूछै, भाषा प्रश्न समाजो ।।

४. 'भदन्त' इति गुर्वामन्त्रणे। (वृ०-प० १४२)

सोरठा

५. पूरव जे आख्यात, पद नुं अर्थ कह्यूं तिको।
वाक्य अर्थ विख्यात, कहियै छै हिव आगलै ।।

६. *अथ भदंत ! हूं इम मानूं छूं, इम जाणूं छूं जेहो।
एह अवश्य अवधारिणी भाषा, अवबोध-बीजभूत तेहो ।।

६. मन्नामी ति ओहारिणी भासा ?
'मन्ये' अवबुध्ये इति, एवमवधार्यते—अवगम्यतेऽनयेत्यवधारणी, अवबोधबीजभूतेत्यर्थः। (वृ०-प० १४२)

वा०—इहां शिष्य पूछै ए जीव अजीवादिक पदार्थ हूं इम मानूं छूं। हूं इम जाणूं छूं। ए पदार्थ जाणवा नी भाषा अवबोध बीजभूत कहियै। अवबोध ते ज्ञान छै, तेहिज बीजभूत माटै अवबोध बीजभूत जाणवी।

७. सूत्र पन्नवणा नुं भाषा पद, एकादशमों आख्यो।
द्रव्य क्षेत्र काल भाव प्रमुख करि, ते इहां सहु अभिलाख्यो ।।

७. एवं भासापदं भाणियव्वं। (श० २।११५)
एवममुना सूत्रक्रमेण भाषापदं प्रज्ञापनायामेकादशं भणितव्यमिह स्थाने, इह च भाषा द्रव्यक्षेत्रकालभावैः सत्यादिभिश्च भेदैरन्यैश्च बहुभिः पर्यायैर्विचार्यते ।।
(वृ०-प० १४२)

८. बीजा शतक नों छठो उदेशो, भाषा नो विस्तारो।
ते भाषा-विशुद्धि थी देवपणो ह्वै, तिण सूं सप्तम सुर अधिकारो ।।

८. भाषाविशुद्धेर्देवत्वं भवतीति देवोद्देशकः सप्तमः समारभ्यते। (वृ०-प० १४२)

द्वितीयशते षष्ठोद्देशकार्थः ।।२।६।।

९. हे प्रभु ! देवा कितै प्रकारै ? जिन कहै चउविध देवा।
भवनपति, वाणव्यंतर, जोतिषी, वैमानिक पिण लेवा ।।

९. कति णं भंते ! देवा पण्णत्ता ?
गोयमा ! चउव्विहा देवा पण्णत्ता, तं जहा—भवणवइ-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया। (श० २।११६)

१०. किहां प्रभु ! भवनपति ना स्थानक, स्थान-पदे जे बीजै।
देव विस्तार सहु इहां भणवो, णवरं भवण भणीजै ।।

१०. कहि णं भंते ! भवणवासीणं देवाणं ठाणा पण्णत्ता ?
गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए जहा ठाणपदे देवाणं वत्तव्वया सा भाणियव्वा।

११. ऊपजवै करि लोक तणो जे, असंख्यातमै भागै।
एवं सर्व भणीजै यावत्, सिद्धि-गंडिका सागै ।।

११. उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे एवं सव्वं भाणियव्वं, जाव सिद्धगंडिया समत्ता।

१२. वृत्तिकार कहै णवरं भणवा, ए पद दीसै त्यांही।
तेहना फल सम्यक् प्रकारै, म्है नवि जाणियै ज्यांही ।।

१२. नवरं 'भवणा पण्णत्त' त्ति क्वचिद् दृश्यते, तस्य च फलं न सम्यगवगम्यते। (वृ०-प० १४२)

*लय—साचू बोलोजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

१३. स्थान तणों अधिकार, पूरव जे आख्यो अछै।
आगल वलि अवधार, अपर स्थान पिण आखियै ।।

१३. इह च देवस्थानाधिकारे यत्सिद्धगण्डिकाभिधानं तत्स्थानाधिकारवलादित्यवसेयं, तथेदमपरमपि जीवाभिगमप्रसिद्धं वाच्यं। (वृ०-प० १४३)

१४. *सर्व कल्प केहनैं आधारे, विमान नों महि-पिंडो।
जाडपणो तसुं ऊंचपणो जे, वलि संठाण सुमंडो ।।

१४. कप्पाण पइट्ठाणं, बाहुल्लुच्चत्तमेव संठाणं।

१५. जीवाभिगम विषै कह्यु यावत्, वैमाणिक उद्देशे।
ते इहां सगलोइ कहिवो, वारू रीत विशेषे ।।

१५. जीवाभिगमे जो वेमाणिउद्देसो सो भाणियव्वो सव्वो। (श० २।११७)

सोरठा

१६. ते इह विध सुविचार, विमान बे धुर कल्प नां।
घनोदधि आधार, वलि आगल इम आखियै ।।

१७. घन - वायू आधार, तीजो चोथो पंचमो।
उभय आधार विचार, षष्ठम सप्तम अष्टमो ।।

१६, १७. घणउदहिपइट्ठाणा सुरभवणा होंति दोसु कप्पेसु।
तिसु वाउपइट्ठाणा तदुभयसुपइट्ठिया तिसु य ।। (वृ०-प० १४३)

१८. ऊपर स्वर्ग अठार, आणत थकी अनुत्तरा।
सहु आकाश आधार, महि-पिंड जाड़पणो हिवै ।।

१८. तेण परं उवरिमगा आगासंतरपइट्ठिया सव्वे। तथा 'बाहल्ल' त्ति विमानपृथिव्याः पिण्डो वाच्यः। (वृ०-प० १४३)

१९. सौधर्म नैं ईशाण, कल्प विमान नी पृथ्वी।
सत्तावीसौ जाण, योजन जाड़पणै कही ।।

२०. तृतीय तुर्य महि-पिंड, छब्बीसौ योजन बाहल्य।
पंचम षष्ठम मंड, पणवीसौ योजन तणी ।।

२१. महाशुक्र सहस्रार, चउवीसौ योजन बाहल्य।
ऊपर कल्पज च्यार, तेवीसौ योजन तणी ।।

१९-२१. सत्तावीस सयाइं आइमकप्पेसु पुढ़वीबाहल्लं।
एक्किक्कहाणि सेसे दु दुगे य दुगे चउक्के य ।। (वृ०-प० १४३)

२२. ग्रैवेयक महि - पिंड, बावीसौ योजन बाहल्य।
पंच अनुत्तर मंड, इकवीसौ योजन मही ।।

२२. ग्रैवेयकेषु द्वाविंशतियोजनानां शतानि, अनुत्तरेषु त्वेकविंशतिरिति। (वृ०-प० १४३)

२३. ऊंचपणो हिव जाण, सौधर्म नैं ईशाण नों।
पंच सया परिमाण, ऊंचा महिल सुहामणां ।।

२४. सनतकुमार महिंद, छह सौ योजन महिल छै।
ब्रह्म लंतक सुख-कंद, ऊंचा योजन सात सौ ।।

२५. महाशुक्र सहस्रार, ऊंचा योजन आठ सौ।
ऊपर कल्पज च्यार, नव सौ योजन महिल तसुं ।।

२३-२५. पंचसउच्चत्तेणं आइमकप्पेसु होंति उ विमाणा।
एक्केक्कवुड्ढि सेसे दु दुगे य दुगे चउक्के य ।। (वृ०-प० १४३)

२६. नव ग्रैवेयक धार, ऊंचा योजन सहस्र नां।
पंच अनुत्तर सार, ग्यारा सौ जोजन महिल ।।

२६. ग्रैवेयकेषु दश योजनशतानि अनुत्तरेषु त्वेकादशेति। (वृ०-प० १४३)

२७. हिव विमान-संस्थान, सौधर्म नैं ईशाण में।
जे आवलिकाबद्ध जान, वट्ट तंस चउरंस ते ।।

२८. जे आवलिका बार, ते नाना संठाण छै।
एवं जाव विचार, विमाण ग्रैवेयक तणां ।।

२७, २८. विमानसंस्थानं वाच्यं, तच्चैवम्—'सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाणा किंसंठिया पण्णत्ता ? गोयमा ! जे आवलियापविट्ठा, ते वट्टा तंसा चउरंसा, जे आवलियाबाहिरा ते नाणासंठिय' त्ति। (वृ०-प० १४३)

*लय—साचू बोलो जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९. अनुत्तरे आख्यात, आवलिकाबद्ध ईज छै।
फूल बिखरिया थात, तिण आकारै छै नहीं॥

३०. आवलिकाबद्ध जाण, द्विविध तेह अनुत्तरा।
वट्ट तंस संठाण, पिण चउरंस तिहां नथी॥

३१. विमाण तणों प्रमाण, वर्ण प्रभा गंधादि जे।
इत्यादिक पहिछाण, जीवाभिगम विषै तिमिज॥

३१. जीवाभिगमेत्यादि, स च विमानानां प्रमाणवर्णप्रभागन्धादिप्रतिपादनार्थः। (वृ०-प० १४३)

३२. *दूजा शतक नों सप्तमुद्देशो, अर्थ थकी ए आख्यो।
पन्नवण जीवाभिगम भलावण, अति हितकर अभिलाख्यो॥

द्वितीयशते सप्तमोद्देशकार्थः॥२।७॥

सोरठा

३३. कह्या देव नां स्थान, तेह तणा अधिकार थी।
चमरचंचा अभिधान, सुर स्थानादिक अष्टमे॥

३३. अथ देवस्थानाधिकाराच्चमरचञ्चाभिधानदेवस्थानादिप्रतिपादनायाष्टमोद्देशकः। (वृ०-प० १४३)

३४. *किहां प्रभु! चमर असुर नां इंद्र नीं, असुर तणां राजा नीं।
सभा सुधर्मा आप प्ररूपी, अन्य जिन पिण आख्यानी॥

३४. कहि णं भंते! चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सभा सुहम्मा पण्णत्ता?

सोरठा

३५. कह्यो इहां असुरिंद, हुवै ईश्वरता मात्र पिण।
असुरराज आखिद, वस छै असुर निकाय जसु॥

३५. असुरेन्द्रस्य, स चेश्वरतामात्रेणापि स्यादित्याह—असुरराजस्य, वशवर्त्यसुरनिकायस्येत्यर्थः। (वृ०-प० १४४)

३६. *श्री जिन भाखै सांभल गोयम! जंबूद्वीप ए नामो।
तेह द्वीप ना मंदरगिर थी, दक्षिण दिश में तामो॥

३६. गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं

३७. तिरछा द्वीप समुद्र असंख जे, अतिक्रमी नैं सोयो।
द्वीप अरुणवर नी बाहिरली, वेदिका अंत थी जोयो॥

३७. तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीईवइत्ता अरुणवरस्स दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ

३८. अरुणोदय समुद्र प्रतै जे, योजन सहस्र बयाली।
अवगाही नैं इहां चमर नुं, तिगिंच्छ कूट सुविशाली॥

३८. अरुणोदयं समुद्दं बायालीसं जोयणसयसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तिगिंछिकूडे नामं

३९. तिगिंच्छ कूट उत्पात-पर्वत ते, तिरछो आवा काजो।
तिहां आवी नैं आगल जइयै, तिण सुं गिरि उत्पात समाजो॥

३९. उप्पायपव्वए पण्णत्ते—
तिर्यग्लोकगमनाय यत्रागत्योत्पतति स उत्पातपर्वत इति। (वृ०-प० १४४)

४०. सतरै सौ इकवीस योजन नों, ऊंचपणै गिरि जाणी।
च्यार सौ तीस योजन नैं कोस इक, भूमि विषै पहिछाणी॥

४०. सत्तरसएक्कवीसे जोयणसए उड्ढं उच्चत्तेणं चत्तारितीसे जोयणसए कोसं च उव्वेहेणं

४१. मूल विषै दश सय नैं बावीस, जोजन चोडो गिरवर।
मध्य च्यार सौ चउवीस योजन, सात सौ तेवीस ऊपर॥

४१. मूले दसबावीसे जोयणसए विक्खंभेणं, मज्झे चत्तारि चउवीसे जोयणसए विक्खंभेणं, उवरिं सत्ततेवीसे जोयणसए विक्खंभेणं,

*लय—साचू बोलोजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२. मूल विषै तीन सहस्र योजन नीं, दोय सौ नै बत्तीसं।
कांइक ऊणी परिधि कहीजै, हिव मध्य परिधि जगीसं॥

४३. मध्य विषै इक सहस्र तीन सय, जोजन वलि इकतालीं।
कांइक विशेषज ऊणी परिधिज, वारू न्याय विशालीं॥

४४. ऊपर दोय सहस्र नैं वे सय, योजन फर छयासी।
किंचित् विशेष अधिक जिन आखी, परिधिपणै सुविमासी॥

४५. वृत्ति विषै भाखयो इग रीते, पुस्तकांतरे ताह्यो।
ए सगलो विस्तार कह्यो छै, किहांइ गोस्तुभ भलायो॥

४६. गोस्तुभ लवण-समुद्र मध्य छै, पूर्व दिशि रै मांह्यो।
नाग-राजा नों आवास पर्वत, तेह प्रमाण कहिवायो॥

४७. णवरं जे प्रमाण ऊपरलो, ते इहां मध्य भणीजै।
जाव मूल चोडो मध्य सांकडुं, ऊपर विशाल गुणीजै॥

वा०—गोथूभस्स इत्यादि—तिहां गोस्तुभ लवण-समुद्र मध्ये पूर्व दिशि नैं विषै नाग राजा नों आवास पर्वत, तेहनों आदि मध्य अंत नैं विषै विष्कंभ प्रमाण इम—विष्कंभ ते गोस्तुभ पर्वत एक हजार बावीस जोजन आदि नैं विषे चोडो, चार सौ चोबीस जोजन मध्य विषै चोडो, सात सौ तेवीस योजन ऊपर चोडो। ए गोस्तुभ पर्वत नो विष्कंभपणो कह्यो।

अनैं इहां ए तिगिच्छ-कूट उत्पात-पर्वत नों विशेष कहै छै—नवरं इत्यादि गोस्तुभ पर्वत नों ऊपरलो विक्खंभ परिमाण ते तिगिच्छ-कूट उत्पात-पर्वत ना मध्य नैं विषे विष्कंभ परिमाण कहिवो। जाव मूल नैं विषे विस्तार, मध्य नैं विषै सांकड़ो, ऊपरे विशाल, तेह थकी विष्कंभ परिमाण इम पाम्यो। मूल नैं विषै एक हजार बावीस जोजन विष्कंभ, मध्य नैं विषै च्यार सौ चोवीस योजन विष्कंभ, ऊपरे सात सौ तेवीस योजन विष्कंभ, ए तिगिच्छ-कूट उत्पात-पर्वत नुं विष्कंभपणुं कह्युं।

हिवै एहनीं परिधि कहै छै—मूल नैं विषै तीन हजार दोय सौ बतीस योजन किंचित् विशेष ऊणी परिधि, मध्य नैं विषे एक हजार तीन सौ इकतालीस जोजन किंचित् विशेष ऊणी परिधि, ऊपरै दोय हजार दोय सौ छयालीस जोजन किंचित् विशेषाधिक परिधि, अनैं पुस्तकांतर नैं विषै ए सर्व छै हीज।

४८. वर वज्र आकारे मध्य कृश छै, मोटा मुकंद संठाणो।
सर्व रत्नमय अच्छ निर्मल यावत्, प्रतिरूप पिछाणो॥

वा०—इहां जाव शब्द थकी इम जाणवुं—सण्हे—श्लक्षण कोमल पुद्गल निर्वृत्तपणां थकी। लण्हे—मसृण घट्ठे—घृष्ट नीं परै घृष्ट, खरशाण कहिता तीक्ष्ण शाण करी घसी प्रतिमा नीं परै। मट्ठे मठार्या नी परै मठार्यो—सुकुमार सुंहाली शाण करी घसी प्रतिमा नीं परै। अथवा पूंजणी करिकै प्रमार्जन करै तेहनी परै शोधित, इण कारण थकी हीज नीरए—रज रहित। निम्मल—कठिन मल रहित। निप्पंक—आला मल रहित। निक्कंकडच्छाए—निरावरण दीप्ति। सप्पभे—भली प्रभा। समरिईए—किरण सहित। सउज्जोए—नजीक वस्तु नैं उद्योतक। पासादीए ४।

४२. मूले तिण्णि जोयणसहस्साइं, दोण्णि य बत्तीसुत्तरे जोयणसए किंचि विसेसूणे परिक्खेवेणं,

४३. मज्झे एगं जोयणसहस्सं तिण्णि य इगयाले जोयणसए किंचि विसेसूणे परिक्खेवेणं,

४४. उवरिं दोण्णि य जोयणसहस्साइं, दोण्णि य छलसीए जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं,

४७. मूले वित्थडे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं विसाले।

वा०—तत्र गोस्तुभो लवणसमुद्रमध्ये पूर्वस्यां दिशि नागराजावासपर्वतस्तस्य चादिमध्यान्तेषु विष्कम्भप्रमाणमिदम्—

मूले दसबावीसे जोयणसए विक्खंभेणं।
मज्झे चत्तारि चउवीसे उवरिं सत्ततेवीसे॥

'मूले तिण्णि जोयणसहस्साइं दोण्णि य बत्तीसुत्तरे जोयणसए किंचि विसेसूणे परिक्खेवेणं, मज्झे एगं जोयणसहस्सं तिण्णि य इगयाले जोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं, उवरिं दोण्णि य जोयणसहस्साइं दोण्णि य छलसीए जोयणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं' पुस्तकान्तरे त्वेतत्सकलमस्त्येवेति। (वृ०-प० १४४, १४५)

४८. वरवइरविग्गहिए महामउंदसंठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे जाव पडिरूवे।

वा०—'सण्हे' श्लक्ष्णः श्लक्ष्णपुद्गलनिर्वृत्तत्वात्, 'लण्हे' मसृणः 'घट्ठे' घृष्ट इव घृष्टः खरशानया प्रतिमेव 'मट्ठे' मृष्ट इव मृष्टः सुकुमारशानया प्रतिमेव, प्रमार्जनिकयेव वा शोधितः अतः एव 'नीरए' नीरजा रजोरहितः 'निम्मले' कठिनमलरहितः 'निप्पंके' आर्द्रमलरहितः 'निक्कंकडच्छाए' निरावरणदीप्तिः 'सप्पभे' सत्प्रभावः 'समरिईए' सकिरणः 'सउज्जोए' प्रत्यासन्नवस्तूद्योतकः पासाईए ४। (वृ०-प० १४५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४९. ते इक पद्मवर-वेदिका करकै, इक वनखंड करि जाण्यो।
सर्व प्रकारे सगलै वींट्यो, वर्णक विहुं नो बखाण्यो॥

वा०—पद्मवर-वेदिका नों अनै वनखंड नो वर्णक जाणवो। तिहां वेदिका नो वर्णक इम सा णं पउमवरवेइया अद्धं जोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं पंच धणुसयाइं विक्खंभेणं सव्वरयणामई तिगिच्छिकूड उवरितलपरिक्खेवसमा परिक्खेवेणं, तिगिच्छ कूट नां ऊपरला तला नीं परिधि नीं परै बींटी रही छै। ते पद्मवर-वेदिका केहवी छै—तीसे णं पउमवरवेइयाए इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, वर्णकव्यास ते वर्णक-विस्तर। वइरामया नेमा—वज्रमय नेमा ते थांभा नां मूल पाया। परिक्खेवेणं इत्यादि। अनै वनखंड नों वर्णक ते इम—से णं वणसंडे इत्यादि। किण्हा कहितां कृष्ण वर्ण, किण्हाभासे कहितां कृष्ण वर्ण द्युति इत्यादि।

४९. से णं एगाए पउमवरवेइयाए, वणसंडेण य सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। पउमवरवेइयाए वणसंडस्स य वण्णओ। (श० २।११८)

५०. ते तिगिच्छ-कूट उत्पात-पर्वत रै, ऊपर बहु सम जाणी।
अत्यंत - सम - रमणीक - भूमिभाग, वर्णक तास पिछाणी॥

वा०—मृदंग जो जे मुख ते सरिखे वा भूमिभाग का वर्णक—से जहा नामए 'आलिंगपुक्खरेइ वा' मुरज वाजंत्र विशेष तेहनो जे मुख ते सरिखो, 'मुयंगपुक्खरेइ वा' 'सरतलेइ वा' पाणी सूं भर्यो तलाव नों तलो ते सरीखो, 'करतलेइ वा' हाथ ना तला सरीखो, 'आयंसमंडलेइ वा' आरीसा नां मंडल सरीखो, 'चंदमंडलेइ वा' चंद्रमंडल सरीखो, इत्यादि।

५०. तस्स णं तिगिंछिकूडस्स उप्पायपव्वयस्स उप्पिं बहुसम-रमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते—वण्णओ।
(श० २।११९)

५१. ते बहु-सम-रमणीक भूमिभाग नैं, बहु मध्य देश भागे हो।
प्रासाद-अवतंसक इक मोटो, मुकुट सरीखो तेहो॥

५२. अढी सौ योजन ऊंच पणै ते, सवा सौ जोजन चोड़ो।
प्रासाद-वर्णक, उल्लोक-वर्णक, बलि भूमि नों वर्णक जोड़ो॥

५१. तस्स णं बहुसम-रमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे, एत्थ णं महं एगे पासायवडेंसए पण्णत्ते—

५२. अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पणुवीसं जोयणसयं विक्खंभेणं। पासायवण्णओ। उल्लोयभूमि-वण्णओ।

सोरठा

५३. अति ही ऊंचो प्राप्त, प्रकर्ष हसित तणी परै।
प्रभा-पटल परिव्याप्त, तिण करिकै प्रहसित अछै॥

५४. अथवा प्रभा करेह, सित ते शुक्ल कहीजियै।
अथवा संबद्ध एह, पाठ पहसिए अर्थ तिण॥

५५. मणी चंद्रकांतादि, सुवर्ण रत्न तणीं वलि।
भांति करी प्रासादि, चित्र इत्यादि सुवर्णक॥

५६. ते प्रासादवतंस, तसुं ऊपरला भाग नुं।
वर्णक इसो प्रसंस, प्रभु परूप्यो ते सुणो॥

५७. पद्म-लता नी भांति, तिण करि चित्रित जाव सहु।
तवणिज्जमए सुकांति, अच्छ जाव प्रतिरूप जे॥

५८. ते प्रासादवतंस, तेहनुं बहु-सम-रमणीय।
भूमिभाग सुप्रसंस, आख्यो छै ते सांभलो॥

५३. अभ्युद्गतश्चासावुच्छ्रितश्चेत्यभ्युद्गतोच्छ्रितः, अत्यर्थ-मुच्च इत्यर्थः, तथा प्रहसित इव प्रभापटलपरिगततया प्रहसितः। (वृ०-प० १४५)

५४. प्रभया वा सितः—शुक्लः संबद्धो वा प्रभासित इति।
(वृ०-प० १४५)

५५. मणिकनकरत्नानां भक्तिभिः—विच्छित्तिभिश्चित्रो विचित्रो वः स तथा। (वृ०-प० १४५)

५६. उल्लोचवर्णकः प्रासादस्योपरिभागवर्णकः, स चैवम्—
(वृ०-प० १४५)

५७. पउमलयभत्तिचित्ते जाव सव्वतवणिज्जमए अच्छे जाव पडिरूवे। (वृ०-प० १४५)

५८. तस्स णं पासायवडिंसयस्स बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते। (वृ०-प० १४५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५९. मुरज वाजित्र विशेख, तेहनुं मुख ते सारिखूं।
अति ही सम संपेख, इत्यादिक वर्णक तमुं॥

६०. *आठ जोजन मणि तणी पीठिका, चमर सींहासण धारो।
वलि तेहना परिवार तणा पिण, भणवा भद्रासण सारो॥

वा०—ते चमर नां सींहासण नैं वायव्यकूणे अनैं ईशाणकूणे चमर नां चौसठ हजार सामानिक नां चौसठ हजार भद्रासण परूप्या। इम पूर्व दिशे पंच अग्रमहेसी परिवार सहित नां पांच भद्रासण परिवार सहित, अग्निकूणे अभितर परिषदा नां चौबीस हजार देवता नां चौबीस हजार भद्रासण, इम दक्षिण दिशे मज्झिम परिषदा नां अठ्ठाईस हजार देवता नां अठ्ठाईस हजार भद्रासण, नैऋत्यकूण बाहिरली परिषदा नां बत्तीस हजार देवता नां बत्तीस हजार भद्रासण, पश्चिम दिशे सात अनीकाधिपति नां सात भद्रासण, चिहुं दिशि नैं विषै दोय लाख छप्पन हजार आत्मरक्षक देवता नां दोय लाख छप्पन हजार भद्रासण। तिण में एकेकी दिशि चोसठ-चोसठ हजार आत्मरक्षक देवता नां चोसठ-चोसठ हजार भद्रासण कह्या। 'तेत्तीसं भोम त्ति वाचनांतरे दृश्यते' तिहां तेतीस भोम ते विशिष्ट स्थान अनैं अन्य आचार्य कहै नगर नैं आकार छै।

६१. ते तिगिंच्छ-कूट सूं दक्षिण दिशि में, जोजन छ सय कोड़ो।
पचपन कोड पैंतीस लक्ष वलि, सहस्र पचास भुजोड़ो॥

६२. अरुणोदय समुद्र में तिरछो, अतिक्रमी नैं त्यांही।
हेठे रत्नप्रभा पृथ्वी नैं, चालीस सहस्र योजन अवगाही॥

६३. इहां चमर असुरेन्द्र तणी छै, चमरचंचा राजधानी।
इम लख योजन लांबी चोड़ी, जंबूद्वीप प्रमाणै जानी॥

६४. प्राकार ऊंचपणै दोढ़सौ योजन, मूले पचास जोजन विस्तारो।
ऊपर साढा बारा जोजन, विवखंभ विस्तार विचारो॥

६५. कोसीसा[1] अर्द्ध जोजन लांबा, कोश एक विवखंभो।
देसूण अर्द्ध जोजन ऊंचा, पेखत पामैं अचंभो॥

६६. इक-इक पासैं पंच पंच सौ, दरवाजा सुख रंभो।
अढोसौ जोजन ऊंचपणै ते, सवासौ योजन विवखंभो॥

६७. उपकारिका-लयण सोल सहस्र योजन, लंब विवखंभ सुरूढो।
पचास सहंग पच सौ सत्ताणूं, किंचित् ऊणी परिढो॥

५९. आलिंगपुक्खरे इ वेत्यादि। (वृ०-प० १४५)

६०. अट्ठजोयणाइं मणिपेढिया। चमरस्स सीहासणं सपरिवारं भाणियव्वं। (श० २।१२०)

वा०—'तस्स णं सिंहासणस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरच्छिमेणं एत्थ णं चमरस्स चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीणं चउसट्ठीए भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, एवं पुरच्छिमेणं पंचण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं पंच भद्दासणाइं सपरिवाराइं दाहिणपुरच्छिमेणं अब्भितरियाए परिसाए चउव्वीसाए देवसाहस्सीणं चउव्वीसं भद्दासणसाहस्सीओ, एवं दाहिणेणं मज्झिमाए अट्ठावीसं भद्दासणसाहस्सीओ, दाहिणपच्चत्थिमेणं बाहिरियाए बत्तीसं भद्दासणसाहस्सीओ पच्चत्थिमेणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं सत्त भद्दासणाइं चउद्दिसिं आयरक्खदेवाणं चत्तारि भद्दासणसहस्सचउसट्ठीओ' त्ति, 'तेत्तीसं भोम' त्ति वाचनान्तरे दृश्यते, तत्र भौमानि—विशिष्टस्थानानि, नगराकाराणीत्यन्ये। (वृ०-प० १४५, १४६)

६१. तस्स णं तिगिंछिकूडस्स दाहिणेणं छक्कोडिसए पणवन्नं च कोडीओ पणतीसं च सयसहस्साइं पण्णासं च सहस्साइं

६२. अरुणोदए समुद्दे तिरियं वीइवइत्ता अहे रयणप्पभाए पुढवीए चत्तालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता,

६३. एत्थ णं चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चमरचंचा नामं रायहाणी पण्णत्ता एगं जोयणसयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं जंबूदीवप्पमाणा।

६७. ओवारियलेणं सोलसजोयणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं, पण्णासं जोयणसहस्साइं पंच य सत्ताणउए जोयणसए किंचि विसेसूणे परिक्खेवेणं,

*लय—साचू बोलोजी

१. कपिशीर्ष—प्राकार के ऊपर का भाग।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

६८. चमर-प्रासाद अमूल्य, तेह प्रमुख नीं पीठिका।
गृह-पीठि बंध तुल्य, ते उपकारिक-लयन छै॥

वा०—ते बहु सम रमणीक भूमिभाग ना बहु मध्य देश भाग नैं विषै इहां अतिहि मोटो उपकारिका-लयन परूप्यो। ते चमर असुरेन्द्र संबंधी प्रसादावतंसकादिक नीं पीठिका अनैं अन्य स्थानके ए उपकार्य उपकारिका इति प्रसिद्धा।

६८. 'उवयारियलेणं' ति गृहस्य पीठबन्धकल्पं।
(वृ०-प० १४६)

६९. *वैमानिक नां विमान गढ नो, प्रासाद सभादि प्रमाणो।
तेह थी अर्ध प्रमाण कह्यो छै, राजधानी में जाणो॥

वा०—सौधर्म वैमानिक नां विमान नों प्राकार—गढ़ तीन सौ जोजन ऊंचपणैं अनैं ए चमर नी राजधानी नों प्राकार—गढ़ दोढ़ सौ जोजन ऊंचपणैं। तथा सौधर्म वैमानिक नों मूल प्रासाद पांच सौ जोजन ऊंचापणैं। ते मूल प्रासाद नैं चउफेर च्यार प्रासाद अढाई सौ योजन ऊंचपणैं। तेहनैं चउफेर सोलै प्रासाद सवा सौ योजन ऊंचपणैं। तेहनैं चउफेर चउसठ प्रासाद साढ़ा बासठ जोजन ऊंचपणैं। तेहनैं चउफेर दोय सौ छप्पन्न प्रासाद सवा इकतीस जोजन ऊंचपणैं। ए सुधर्म देवलोक ना विमान नीं च्यार परपाटी कही।

इहां चमर नीं राजधानी में उपकारिकालयन ते पीठिका नैं विषै चमर नों मूल प्रासाद अढी सौ जोजन ऊंचपणैं, तेहनैं चउफेर च्यार प्रासाद सवा सौ योजन ऊंचपणैं, तेहनैं चउफेर १६ प्रासाद ६२॥ योजन ऊंचपणैं, तेहनैं चउफेर ६४ प्रासाद सवा इकतीस योजन ऊंचपणैं, तेहनैं चउफेर २५६ प्रासाद १५ योजन, एक जोजन ना ८ भाग कीजै ते मांहिला ५ भाग एतलो ऊंचपणैं।

एहिज वाचनांतरे कह्यु—'चत्तारि परिवाडीओ पासायवडेंसगाणं अद्धद्धहीणाओ' ए च्यार परिपाटी नैं विषै ३४० प्रासाद अनैं एक मूल प्रासादावतंसक ए ३४१ हुवै। ए प्रासाद थकी ईशाणकूणे सुधर्मा-सभा, सिद्धायतन, उपपात-सभा, द्रह, अभिषेक-सभा, अलंकार-सभा, व्यवसाय-सभा ते पुस्तक-सभा, ए चमर नीं सौधर्म सभादिक छै। ते सौधर्म वैमानिक सभादिक प्रमाण थकी अर्द्ध प्रमाण छै। ते भणी इहां ए चमर संबंधी सभादि ऊंचपणैं ३६ योजन, लांबपणैं ५० जोजन, चोड़पणैं २५ जोजन छै।

६९. सव्वप्पमाणं वेमाणियप्पमाणस्स अद्धं नेयव्वं।
(श० २।१२१)

वा०—सौधर्मवैमानिकानां विमानप्राकारो योजनानां त्रीणि शतान्युच्चत्वेन, एतस्यास्तु सार्द्धं शतं, तथा सौधर्मवैमानिकानां मूलप्रासादः पञ्च योजनानां शतानि तदन्ये चत्वारस्तत्परिवारभूताः सार्द्धे द्वे शते ४, प्रत्येकं च तेषां चतुर्णामप्यन्ये परिवारभूताश्चत्वारः सषादशतम् १६, एवमन्ये तत्परिवारभूताः सार्द्धा द्विषष्टिः ६४, एवमन्ये सषादैकत्रिंशत् २५६,
इह तु मूलप्रासादाः सार्द्धे द्वे योजनशते एवमर्द्धार्द्धहीनास्तदपरे यावदन्तिमाः पञ्चदश योजनानि पञ्च च योजनस्याष्टांशाः।

एतदेव वाचनान्तरे उक्तम्—चत्तारि परिवाडीओ पासायवडेंसगाणं अद्धद्धहीणाओ त्ति एतेषां च प्रासादानां चतुष्वपि परिपाटीषु त्रीणि शतान्येकचत्वारिंशदधिकानि भवन्ति, एतेभ्यः प्रासादेभ्यः उत्तरपूर्वस्यां दिशि सभा सुधर्मा सिद्धायतनमुपपातसभा ह्रदोऽभिषेकसभाऽलङ्कारसभा व्यवसायसभाचेति, एतानि च सुधर्मसभादीनि सौधर्मवैमानिकसभादिभ्यः प्रमाणतोऽर्द्धप्रमाणानि, ततश्चोच्छ्रय इहैषां षट्त्रिंशत्योजनानि पञ्चाशदायामो विष्कम्भश्च पंचविंशतिरिति।
(वृ०-प० १४६)

७०. "सभा सुधर्मा थी ईशाणे, जिण-घर तिहां कहिवायो।
बलि उपपात सभा पिण कहिवी, बलि द्रह वर्णन आयो॥

७१. बलि अभिषेक सभा पिण त्यां छै, राजा बेसै तिहां आवी।
बलि अलंकार सभा पिण त्यां छै, अलंकार तनु भावी॥

७२. जिम विजय सुर नों ऊपजवो, जीवाभिगम मझारो।
आख्यो छै विस्तार तिमिज ते, इहां कहिवुं अधिकारो॥

७३. उपपात सभा में नवो ऊपनों, चिंतवियो मन मांह्यो।
पहिलां पछै मुझ नैं स्यूं करिवूं? राज तणी विध त्यांह्यो॥

७२. सर्वं च जीवाभिगमोक्तं विजयदेवसम्बन्धि चमरस्य वाच्यं। (वृ०-प० १४६)

७३. उपपातसभायां सद्यःकल्पश्चाभिनवोत्पन्नस्य किं मम पूर्वं पश्चाद्वा कर्तुं श्रेयः? (वृ०-प० १४६)

*लय—प्रभवो चोर चोरां नैं

"लय—साचू बोलोजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७४. नवो ऊपनों तेह स्थान नीं, विध नीं खबर न कायो।
तास सामानिक परिषदा ना सुर, कार्य सर्व बतायो॥

७५. ताम ऊठ द्रह स्नान करीनै, सभा अभिषेकज आयो।
मह ऋद्धि करि सामानिक प्रमुख, राज-अभिषेक करायो॥

७५. अभिषेकश्चाभिषेकसभायां महद्ध्यां सामानिकादिदेवकृतः। (वृ०-प० १४६)

७६. अलंकार सभा में आवी नै, किया सर्व अलंकारो।
वस्त्रादि करी अधिक विभूषित, पेखत पामै प्यारो॥

७६. विभूषणा च वस्त्रालंकारकृताऽलंकारसभायां। (वृ०-प० १४६)

७७. बलि व्यवसाय सभा में आवी, पुस्तक वांचै ताह्यो।
धम्मियं जे व्यवसाय कह्या छै, ते कुल-धर्म कहायो॥

७७. व्यवसायश्च व्यवसायसभायां पुस्तकवाचनतः। (वृ०-प० १४६)

७८. 'दशमें ठाणै धर्म कह्या दश, त्यां कुल-धर्म कहायो।
आर्य नव कह्या पन्नवण धुर पद, पिण धर्म नहीं सहु मांह्यो॥

७९. कर्म आर्य वस्त्र ना व्यापारी, सूत कपास व्यापारी।
तास कार्य करिवा नै डाहा, ते कर्म-आर्य अधिकारी॥

८०. शिल्प आर्य वस्त्र नै तूणै, डाहा वस्त्र बणेवा।
लेप, चित्र लिखवा नै डाहा, ए शिल्प आर्य में लेवा॥

८१. तिम धम्मियं व्यवसाय कह्या ते, कुल धर्म कहिवायो।
ज्ञान दर्शण चारित्र आर्य ते, सूत्र चारित्र धर्म मांह्यो'॥
(ज० स०)

८२. सिद्धायतन सिद्ध शाश्वती प्रतिमा प्रमुख अर्चन करनै।
सभा सुधर्मा आवै सुर-वृंद, एहवी ऋद्धि चमर नै॥

८२. अर्चनिका च सिद्धायतने सिद्धप्रतिमादीनां, सुधर्मसभागमनं च सामानिकादिपरिवारोपेतस्य चमरस्य। (वृ०-प० १४६)

८३. वृत्तिकार कह्यु एवमहिड्ढिए, इत्यादि वच करि ताह्यो।
इहां न कह्यो पिण कहिवू एहनै, पाठ सहू सुखदायो॥

८३. ऋद्धिमत्त्वं च 'एवंमहिड्ढिए' इत्यादिवचनैर्वाच्यमस्येति। (वृ०-प० १४६)

८४. अन्य वाचना विषै बली ए, अर्थ थकी अधिकारो।
बहुलपणै करि अवलोकित छै, वारू न्याय विचारो॥

८४. एतद् वाचनान्तरेऽर्थतः प्रायोऽवलोक्यत एवेति। (वृ०-प० १४६)

८५. द्वितीय शतक नै अष्टमुद्देशे, पंच चालीसमी ढालो।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय प्रसादे, 'जय-जश' हरष विशालो॥

द्वितीतशते अष्टमोद्देशकार्थः॥२।८॥

ढाल : ४६

दूहा

१. चमरचंचा नो क्षेत्र कह्यु, अष्टमुद्देशा मांय।
क्षेत्र तणा अधिकार थी, समयक्षेत्र हिव आय॥

१. चमरचञ्चालक्षणं क्षेत्रमष्टमोद्देशके उक्तम्, अथ क्षेत्राधिकारादेव नवमे समयक्षेत्रमुच्यत इत्येवसम्बन्धस्यास्येदं सूत्रम्। (वृ०-प० १४६)

२. समय—काल तेणे करी, उपलक्षित जे खेत।
समयक्षेत्र कहियै तसुं, तास प्रश्न हिव एथ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*प्रभुजो जशधारी। (ध्रुपदं)

३. प्रभु ! समयक्षेत्र स्यूं कहियै ? समय काल भणीज सद्दहियै हो।
ते दिवस मासादिक रूप, ऋतु हेमंतादि तद्रूप हो॥
गोयम गुणधारी। (ध्रुपदं)

४. जिन भाखै द्वीप अढ़ाई, वलि दोय समुद्र धुर आई।
इतो समयक्षेत्र ए कहियै, अद्धा दिवस मासादिक लहियै॥

५. रवि गति थी भूम ऊपर जानं, ओ तो मनुष्य-क्षेत्र में मान।
मनुष्य-क्षेत्र रै बारं, नहि चन्द्र सूर्य नो चारं॥

६. त्यां ए जंबूद्वीपज नाम, ए तो द्वीप अछै अभिराम।
सर्व द्वीप समुद्रां मांय, अभितर ए कहिवाय॥

७. इम जीवाभिगमे जाणं, सहु वक्तव्यता पहिछाणं।
जाव अभितर पुक्खरार्द्ध लहिइं, ज्योतिषि वार्त्ता नहिं कहिइं॥

सोरठा

८. अन्य वाचना मांहि, जोइसअट्ठविहूणं इसो।
पाठ दीसै छै ताहि, एहवुं आख्यो वृत्ति में॥

९. *ज्योतिषि ते रवि शशि जाणं, तेहनी संख्या पहिछाणं।
ते जीवाभिगम मझार, ते वर्जी इहां विचार॥

१०. जिन समय बादर विजु गाज, बादल नै अग्नि समाज।
आगर निहि नइ ग्रहण रवि चारं, नहि अयन अढी द्वीप बारं॥

११. बीजा शतक नों नवमों उद्देश, कह्यो क्षेत्र विस्तार सुलेश।
ते अस्तिकाय नों देश, हिवै अस्तिकाय कहेस॥

द्वितीयशते नवमोद्देशकार्थः॥२।९॥

१२. प्रभु ! केतली कही अस्तिकाय ? अस्ति शब्दे प्रदेश कहाय।
तसुं काय—राशि छै सोय, ते अस्तिकायज होय॥

दूहा

१३. अथवा अस्ति निपात है, कहै काल त्रिहुं तास।
थयो अछै थास्यैज ए, काय प्रदेशज-राश॥

१४. *जिन कहै पंच अस्तिकाय, धर्मास्तिकाय कहाय!
अधर्मास्तिकाय है बीजी, आगासत्थिकाय छै तीजी॥

३. किमिदं भंते ! समयखेत्ते त्ति पवुच्चति ?
समयः—कालस्तेनोपलक्षितं क्षेत्रं समयक्षेत्रं, कालो हि दिनमासादिरूपः। (वृ०-प० १४६)

४. गोयमा ! अड्ढाइज्जा दीवा, दो य समुद्दा, एस णं एवइए समयखेत्तेति पवुच्चति। (श० २।१२२)

५. सूर्यगतिसमभिव्यङ्ग्यो मनुष्यक्षेत्र एव न परतः, परतो हि नादित्याः संचरिष्णव इति। (वृ०-प० १४६, १४७)

६. तत्थ णं अयं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीव-समुद्दाणं सव्वब्भंतरे।

७. एवं जीवाभिगमवत्तव्वया नेयव्वा जाव अब्भितर-पुक्खरद्धं जोइसविहूणं। (श० २।१२३)

८. वाचनान्तरे तु 'जोइसअट्ठविहूणं' ति इत्यादि बहु दृश्यते। (वृ०-प० १४७)

१०. अरहंत समय वायर विज्जू, थणिया बलाहगा अगणी।
आगर निहि नइ उवराग निग्गमे वुड्ढिवयणं च॥
(वृ०-प० १४७)

११. अनन्तरं क्षेत्रमुक्तं तच्चास्तिकायदेशरूपमित्यस्तिकायाभिधानपरस्य दशमोद्देशकस्यादिसूत्रम्—
(वृ०-प० १४७)

१२. कति णं भंते ! अत्थिकाया पण्णत्ता ?
अस्तिशब्देन प्रदेशा उच्यन्तेऽतस्तेषां काया—राशयोऽस्तिकायाः। (वृ०-प० १४८)

१३. अथवाऽस्तीत्ययं निपातः कालत्रयाभिधायी, ततोऽस्तीति—सन्ति आसन् भविष्यन्ति च ये कायाः—प्रदेशराशयस्तेऽस्तिकाया इति। (वृ०-प० १४८)

१४-१६. गोयमा ! पंच अत्थिकाया पण्णत्ता, तं जहा—धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए, जीव-

*लय—खटमल मेवासी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. जीवास्तिकाय सुजाणं, पुद्गलास्तिकाय पिछाणं।
धर्मास्तिकाय में तास, किता वर्ण गंध रस फास?
१६. जिन कहै अवर्ण अगंध, अरस अफर्श प्रबंध।
ते सास्वत अरूपी अजीव, अवस्थित लोक द्रव्य कहीव॥

१७. संक्षेप थी पंच प्रकार, द्रव्य थकी क्षेत्र थी धार।
काल थकी भाव थी जाणं, वलि गुण थी कीजै पिछाणं॥
१८. द्रव्य थी धर्मास्तिकाय, इक द्रव्य कहीजै ताय।
क्षेत्र थकी लोक प्रमाणं, पिण अलोक में नहि जाणं॥
१९. काल थी त्रिहुं काल रे मांहि, नित्य सासती कहिजै ताहि।
भाव थी वर्णादि रहितं, गुण थकी गमन गुण सहितं॥

२०. एवं अधर्मास्तिकाय, णवरं गुण ठाण कहाय।
जीव पुद्गल दृढ़ समाज, तमुं स्थिर रहिवा नुं स्हाज॥

२१. एवं आगासत्थिकाय, णवरं क्षेत्र थकी कहिवाय।
लोकालोक अनंत, गुण अवगाहण हुंत॥

२२. प्रभु! जीवास्तिकाय में तास, किता वर्ण गंध रस फास?
जिन कहै—वर्ण नहीं पाय, यावत् अरूपी कहाय॥
२३. जीव द्रव्य सासतो वेद, अवस्थित पर्याय न भेद।
वधवुं घटवुं छै नांय, ए द्रव्य जीव अपेक्षाय॥
२४. ते संक्षेप थी पंच प्रकार, द्रव्य थी जाव गुण थी धार।
द्रव्य थी जीवास्तिकाय, जीव द्रव्य अनंत कहाय॥

२५. क्षेत्र लोक प्रमाण निहालं, काल थकी नित्य त्रिहुं कालं।
भाव थकी वर्णादि रहीतं, गुण थी उपयोग वदीतं॥

२६. पुद्गलास्तिकाय में तास, प्रभु! किता वर्ण जाव फास?
जिन कहै—वर्ण रस पंच, वे गंध अठ फास विरंच॥
२७. रूपी अजीव शाश्वतो जाणी, अवस्थित लोक द्रव्य माणी।
ते संक्षेप थी पंच प्रकार, द्रव्य थी जाव गुण थी धार॥

२८. द्रव्य थकी पोग्गलत्थिकाय, तसुं द्रव्य अनंता थाय।
लोक प्रमाणे खित्त, काल थी त्रिहुं काल में नित्त॥

त्थिकाए, पोग्गलत्थिकाए। (श० २।१२४)
धम्मत्थिकाएणं भंते! कतिवण्णे? कतिगंधे? कतिरसे? कतिफासे?
गोयमा! अवण्णे, अगंधे, अरसे, अफासे;
अरूवी, अजीवे, सासए, अवट्ठिए लोगदव्वे।

१७. से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ।

१८. दव्वओ णं धम्मत्थिकाए एगे दव्वे।
खेत्तओ लोगप्पमाणमेत्ते,

१९. कालओ न कयाइ न आसि, न कयाइ जाव णिच्चे।
भावओ अवण्णे, अगंधे, अरसे, अफासे। गुणओ गमण-गुणे। (श० २।१२५)

२०. अधम्मत्थिकाए एवं चेव नवरं गुणओ ठाणगुणे।
(श० २।१२६)
जीवपुद्गलानां स्थितिपरिणतानां स्थित्युपष्टम्भहेतुः।
(वृ०-प० १४८)

२१. आगासत्थिकाए वि एवं चेव नवरं खेत्तओ णं आगासत्थिकाए लोयालोयप्पमाणमेत्ते अणंते चेव जाव गुणओ अवगाहणागुणे। (श० २।१२७)

२२, २३. जीवत्थिकाए णं भंते! कतिवण्णे? कतिगंधे? कतिरसे? कतिफासे?
गोयमा! अवण्णे, जाव अरूवी, जीवे, सासए, अवट्ठिए लोगदव्वे।

२४. से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ जाव गुणओ।
दव्वओ णं जीवत्थिकाए अणंताइं जीवदव्वाइं।

२५. खेत्तओ लोगप्पमाणमेत्ते। कालओ न कयाइ न आसि, जाव णिच्चे। भावओ अवण्णे, अगंधे, अरसे, अफासे। गुणओ उवओगगुणे।
(श० २।१२८)

२६. पोग्गलत्थिकाए णं भंते! कतिवण्णे? जाव कतिफासे?
गोयमा! पंचवण्णे, पंचरसे, दुगंधे, अट्ठफासे;

२७. रूवी, अजीवे, सासए, अवट्ठिए लोगदव्वे।
से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ कालओ, भावओ, गुणओ।

२८. दव्वओ णं पोग्गलत्थिकाए अणंताइं दव्वाइं।
खेत्तओ लोयप्पमाणमेत्ते।
कालओ न कयाइ न आसि, जाव णिच्चे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९. भाव थकी वर्णमंत कहियै, वलि गंध फर्श रस लहियै।
गुण थकी ग्रहण गुण ताहि, संबंधन मांहोमांहि ।।

३०. प्रभु ! धर्मास्तिकाय नुं जोय, इक प्रदेश नै अवलोय।
धर्मास्तिकाय वदीजै, जिन भाखै नहीं कहीजै ।।

३१. बे तिण चिउं पंच छ एम, सत अठ नव दश पिण तेम।
जाव असंख प्रदेश नै ताय, न कहियै धर्मास्तिकाय ।।

३२. एक प्रदेश ऊणो भंत !, धर्मास्तिकाय वदंत ?
तव भाखै श्री जिनराय, एह अर्थ समर्थ न थाय ।।

३३. प्रभु ! किण अर्थे ए वाय, एक प्रदेश धर्मास्ति नांय।
जाव ऊणो एक प्रदेश, धर्मास्ति नहीं कहेश ।।

३४. जिन शिष्य नै पूछे अवक्र, खंड चक्र कै सगलो चक्र ?
प्रभु ! सगलो चक्रज कहियै, पिण खांडो चक्र न लहियै ।।

३५. इम छत्र चर्म दंड जाण, वस्त्र आयुध मोदक माण।
तिण अर्थे ए इम वाय, खंध आश्री कहियै नांय ।।

३६. इहां अर्थ कियो वृत्ति मांय, ए निश्चै नय अभिप्राय।
ववहार नये इक देश, ऊणो धर्मास्ति कहेस ।।

३७. खांडो पिण घड़ो कहीजै, छिन्न-कर्णो श्वान वदीजै।
इक देश विकृत छै जेह, अन्यवत् नहीं छै तेह ।।

३८. से किंखाइ णं भंते !, से कहितां अथ ए वदंते।
खाइ ते पुनः विचार, णं ते वाक्यालंकार ।।

३९. भंते ! कहितां भगवंत, धर्मास्तिकाय वदंत।
धर्मास्तिकाय स्यूं कहियै ? हिवै श्री जिन उत्तर दइयै ।।

४०. धर्मास्तिकाय अशेष, तसुं असंख्यात प्रदेश।
सर्वे ते सर्व समस्तु, कसिणा संपूरण वस्तु ।।

४१. पडिपुण्णा ते प्रतिपूर्ण, निरवशेष ते नहिं न्यून।
एक शब्द धर्मास्तिकाय, तेणे करी गृहीत कहाय ।।

२९. भावओ वण्णमंते गंधमंते, रसमंते, फासमंते।
गुणओ गहणगुणे। (श० २।१२९)
ग्रहणं—परस्परेण सम्बन्धनं जीवेन वा औदारिकादिभिः प्रकारैः। (वृ०-प० १४८)

३०. एगे भंते ! धम्मत्थिकायपदेसे धम्मत्थिकाएत्ति वत्तव्वं सिया ? गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे। (श० २।१३०)

३१. एवं दोण्णि, तिण्णि, चत्तारि, पंच, छ, सत्त, अट्ठ, नव, दस, संखेज्जा, असंखेज्जा। भंते ! धम्मत्थिकायपदेसा धम्मत्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया ? गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे। (श० २।१३१)

३२. एगपदेसूणे वि य णं भंते ! धम्मत्थिकाए धम्मत्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे। (श० २।१३२)

३३. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—एगे धम्मत्थिकायपदेसे नो धम्मत्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया जाव एगपदेसूणे वि य णं धम्मत्थिकाए नो धम्मत्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया ?

३४. से नूणं गोयमा ! खंडे चक्के ? सगले चक्के ?
भगवं ! नो खंडे चक्के, सगले चक्के।

३५. एवं छत्ते चम्मे दंडे दूसे आउहे मोदए। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—एगे धम्मत्थिकायपदेसे नो धम्मत्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया जाव एगपदेसूणे वि य णं धम्मत्थिकाए नो धम्मत्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया। (श० २।१३३)

३६. एवं धर्मास्तिकायः प्रदेशेनाप्यूनो न धर्मास्तिकाय इति वक्तव्यः स्याद्, एतच्च निश्चयनयदर्शनं, व्यवहारनयमतं तु—एकदेशेनोनमपि वस्तु वस्त्वेव। (वृ०-प० १४९)

३७. यथा खण्डोऽपि घटो घट एव, छिन्नकर्णोऽपि श्वा श्वैव, भणन्ति च—'एकदेशविकृतमनन्यवदिति। (वृ०-प० १४९)

३८. से किंखाइ णं भंते !
अथ किं पुनरित्यर्थः। (वृ०-प० १४९)

३९. धम्मत्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया ?

४०. गोएमा ! असंखेज्जा धम्मत्थिकायपदेसा, ते सव्वे कसिणा

४१. पडिपुण्णा निरवसेसा एकग्गहणगहिया—
एक ग्रहणेन—एक शब्देन धर्मास्तिकाय इत्येवं लक्षणेन गृहीता। (वृ०-प० १४९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२. एक शब्द अभिधेया, अथवा ए एकार्थक ज्ञेया।
ए धर्मास्तिकाय कहाय, एवं अधर्मास्तिकाय ।।

४३. आकाशास्ति जीवास्तिकाय, पोग्गलत्थि त्रिहुं इम ताय।
णवरं प्रदेश अनंता, तिमहिज शेष विरतंता ।।

सोरठा

४४. जीवां तणां प्रदेश, पूर्वे आख्या छै इहां।
उपयोग - गुण सुविशेष, पूर्वे ते पिण आखिया ।।

४५. जीव तणो हिव तेह, देशभूत गुण छै जिको।
उत्थानादिक एह, प्रश्न तास गोयम करै ।।

४६. *हे भदंत ! जीव विचार, उट्ठाण सहित अवधार।
कर्म कार्य सहित सुजोय, बल सहित तिको अवलोय ।।

४७. वलि वीर्य सहित वदीत, पुरुषाकार पराक्रम सहीत।
ए जीव संसारी जाण, तिको जोग सहित पहिछाण ।।

४८. आत्म भाव करीनै तेह, उत्थान शयन करि जेह।
गमन भोजन आदि संपेख, तेह आत्म-भाव करि देख ।।

४९. जीवपणुं चेतनपणुं तास, देखाड़ै करै प्रकाश ?
हां गोतम ! जीव उठाणै, यावत् देखाड़ै जाणै ।।

५०. किण अर्थे ए संपेख ? जीवपणुं देखावै विशेख।
तसु न्याय कहै भगवंत, मति ज्ञान ना पज्जव अनंत ।।

५१. इम पज्जवा श्रुत ना जोय, वलि अवधि ज्ञान ना होय।
मन-पज्जव केवल केरा, पर्याय अनंत घणेरा ।।

५२ त्रिहुं अज्ञान चिउदर्शण ना, पर्याय अनंत उच्चरणा।
जीव उट्ठाणादि विषेह, उपयोग प्रतै पामेह ।।

५३. उपयोग चेतना विशेख, ते प्रति पामै संपेख।
उपयोग लक्षण करि जेह, जीवपणों दिखाड़ै तेह ।।

४२. एस णं गोयमा ! धम्मत्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया।
(श० १।१३४)
एवं अधम्मत्थिकाए वि।
एक शब्दाभिधेया इत्यर्थः, एकार्था वैते शब्दाः।
(वृ०-प० १४६)

४३. आगासत्थिकाय-जीवत्थिकाय-पोग्गलत्थिकाया वि एवं चेव, नवरं- -तिण्हं पि पदेसा अणंता भाणियव्वा। सेसं तं चेव। (श० २।१३५)

४४. उपयोगगुणो जीवास्तिकायः प्राग्दर्शितः।
(वृ०-प० १४६)

४५. अथ तद्देशभूतो जीव उत्थानादिगुण इति दर्शयन्नाह—
(वृ०-प० १४६)

४६, ४७. जीवे णं भंते ! सउट्ठाणे सकम्मे सबले सवीरिए सपुरिसक्कार-परक्कमे

४८. आयभावेणं
आत्मभावेन—उत्थानशयनगमनभोजनादिरूपेणात्म-परिणामविशेषेण। (वृ०-प० १४६)

४९. जीवभावं उवदंसेतीति वत्तव्वं सिया ?
हंता गोयमा ! जीवे णं सउट्ठाणे जाव उवदंसेतीति वत्तव्वं सिया। (श० २।१३६)
'जीवभाव'ंति जीवत्वं चैतन्यम् उपदर्शयति प्रकाशयतीति। (वृ०-प० १४६)

५०, ५१. से केणट्ठेणं जाव वत्तव्वं सिया ? गोयमा ! जीवे णं अणंताणं आभिणिबोहियनाणपज्जवाणं, अणंताणं सुयनाणपज्जवाणं, अणंताणं ओहिनाणपज्जवाणं, अणंताणं मणपज्जवनाणपज्जवाणं, अणंताणं केवलनाण-पज्जवाणं,

५२. अणंताणं मइअण्णाणपज्जवाणं अणंताणं सुयअण्णाण-पज्जवाणं, अणंताणं विभंगनाणपज्जवाणं, अणंताणं चक्खुदंसणपज्जवाणं, अणंताणं अचक्खुदंसणपज्जवाणं, अणंताणं ओहिदंसणपज्जवाणं, अणंताणं केवलदंसण-पज्जवाणं उवओगं गच्छइ।

५३. उवओगलक्खणे णं जीवे।

*लय—खटमल मेवासी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—अथ जो उत्थानादिक आत्म-भाव विषै वर्त्ततो थको जीव मति ज्ञानादिक उपयोग प्रतै प्राप्त हुवै, ते स्यूं एतला मात्र थीज जीव भाव प्रतै दिखाड़ै इसो कहिवूं जोइए? इसी आशंका करै, तिवारे भगवान कहै—'उवओगलक्खणे णं जीवे' जीव नों लक्षण उपयोग छै, इण कारण थकी उपयोग-रूप जीवत्वे उत्थानादिक आत्म-भाव करिकै देखाड़ै, इम कहिवूं जोइएज।

५४. तिण अर्थे उट्ठाणादि सहीत, जाव जीवपणोज कहीत।
कह्यूं जीव सूत्र सुविमास, हिवै तसुं आधार आकाश॥

वा०—'उवओगे' त्यादि, अत उपयोगलक्षणं जीवभावमुत्थानाद्यात्मभावेनोपदर्शयतीति वक्तव्यं स्यादेवेति।
(वृ०-प० १४६)

५४. से एएणट्ठेणं एवं वुच्चइ—गोयमा! जीवे णं सउट्ठाणे जाव...जीवभावं उवदंसेतीति वत्तव्वं सिया।
(श० २।१३७)

अनन्तरं जीवचिन्तासूत्रमुक्तम्, अथ तदाधारत्वेनाकाशचिन्तासूत्राणि। (वृ०-प० १४६)

५५. प्रभु! कतिविध कह्यूं आकाश? जिन भाखै द्विविध तास।
लोकाकाश ते लोक-मझार, अलोकाकाश लोक नै बार॥

५५. कतिविहे णं भंते! आगासे पण्णत्ते? गोयमा! दुविहे आगासे पण्णत्ते, तं जहा—लोयागासे य अलोयागासे य। (श० २।१३८)

५६. प्रभु! लोकाकाशे जीवा, स्यूं खंध रूप कहीवा?
कै जीव तणा छै देश? वलि जीव ना बहु प्रदेश?

५६. लोयागासे णं भंते! किं जीवा? जीवदेसा? जीवप्पदेसा?

५७. कै अजीव, अजीव ना देश, कै अजीव ना बहु प्रदेश?
ए षट प्रश्न पूछंत, हिव जिन भाखै सुण संत॥

५७. अजीवा? अजीवदेसा? अजीवप्पदेसा?

५८. लोक विषै जीव खंध जाण, जीव देश-प्रदेश पिछाण।
अजीव अजीव ना देश, छै अजीव ना प्रदेश॥

५८. गोयमा! जीवा वि, जीवदेसा वि, जीवप्पदेसा वि; अजीवा वि अजीवदेसा वि, अजीवप्पदेसा वि।

५९. जे जीवा ते नियमा एगिंदिया, बेइंदिया नै तेइंदिया।
चउरिंदिया नै पंचेंदिया, वलि सिद्ध प्रमुख अणिंदिया॥

५९. जे जीवा ते नियमा एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया अणिंदिया।

६०. जे जीव-देशा सुविशेषा, ते नियमा एगिंदिय-देशा।
जाव अणिंदिय-देशा, ए सिद्ध प्रमुखज कहेसा॥

६०. जे जीवदेसा ते नियमा एगिंदियदेसा जाव अणिंदियदेसा।

सोरठा

६१. जीव तणाज संवाद, बुद्धि परिकल्पित अछै।
विभाग जे बे आद, जीव तणां बहु देश ते॥

६१. जीवस्यैव बुद्धिपरिकल्पिता द्व्यादयो विभागाः।
(वृ०-प० १५०)

६२. धर्मास्तिकायादि द्रव्य एक, तेहनां देश कह्या नथी।
अनंत जीव द्रव्य पेख, बुद्धि परिकल्पित देश तसुं॥

६३. *जे जीव तणा परदेशा, ते नियमा एकेन्द्री पएसा।
जाव अणिंदिय प्रदेशा, ए सिद्धि प्रमुख गणेशा॥

६३. जे जीवप्पदेसा ते नियमा एगिंदियपदेसा जाव अणिंदियपदेसा।

६४. जे अजीव ते बे प्रकारा, रूपी नै अरूपी सारा।
रूपी चिउं विध खंध देशा, प्रदेश परमाणु विशेषा॥

६४. जे अजीवा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—रूवी य अरूवी य। जे रूवी ते चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—खंधा, खंधदेसा, खंधपदेसा, परमाणुपोग्गला।

६५. अरूपी पंचविध ताय, खंध आश्री धर्मास्तिकाय।
धर्मास्ति नो नहीं देश, धर्मास्ति नां बहु प्रदेश॥

६५. जे अरूवी ते पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—धम्मत्थिकाए, नो धम्मत्थिकायस्स देसे, धम्मत्थिकायस्स पदेसा,

*लय—खटमल मेवासी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६६. खंध आथी अधर्मास्तिकाय, अधर्मास्ति नों देश नांय।
अधर्मास्ति नां प्रदेशा, अद्धा समय काल सुविशेषा ॥

६७. अलोक आकाश में जेम, म्यूं जीवा ? पूछा तेम।
जिन भाखै जीव न कहेवा, जाव अजीव प्रदेश न लेवा ॥

६८. एक अजीव द्रव्य आकाश, तसुं देश अगुरुलघु जास।
स्व - पर्याय पर - पर्याय, गुण अगुरुलघु कहिवाय ॥

६९. एहवा अगुरुलघु गुण अनंता, तिण गुण संयुक्त कहंता।
सर्व आकाश पिछाणं, ऊणो भाग अनंतमो जाणं ॥

७०. लोकाकाशेणं हे भगवंत ! किता वर्ण ? गोयम पूछंत।
अवर्ण जाव अफर्श कहाय, इक अजीव द्रव्य देश थाय ॥

७१. एक अजीव द्रव्य आकाश, तसुं देश अगुरुलघु जास।
स्व - पर्याय पर - पर्याय, गुण अगुरुलघु कहिवाय ॥

७२. एहवा अगुरुलघु गुण अनंता, तिन गुण संयुक्त कहंता।
सर्व आकाश पिछाणं, तिण सूं भाग अनंतमो जाणं[1] ॥

७३. धर्मास्तिकायादिक जाण, पूर्वे आख्या पहिछाण।
तेहिज प्रमाण थी जोय, हिव प्रश्न तास अवलोय ॥

७४. हे प्रभु ! धर्मास्तिकाय कितली मोटी कहिवाय।
जिन भाखै लोक मझार, ते लोक प्रमाण विचार ॥

७५. लोक फर्श्यो निज प्रदेश, लोक फरशी रहै विशेष।
एवं अधर्मास्तिकाय, इम लोकाकाश जणाय ॥

७६. जीवास्ति पोग्गलत्थिकाय, इम पंच आलावा कहिवाय।
फर्शन अधिकार ते साधी, हिव फर्शन अधोलोकादी ॥

७७. अधोलोक अहो भगवान ! धर्मास्तिकाय पिछान।
कितलुं फर्श ते कहियै ? जिन कहै साधिक अर्ध लहियै ॥

७८. प्रश्न तिरछा लोक नुं कीधूं, तव जिन उत्तर इम दीधूं।
लोक तणो सुविचार, भाग असंख्यातमो धार ॥

७९. प्रश्न ऊर्ध्व लोक नो जेह, तसुं जिन उत्तर इम देह।
फर्श देसूण अर्द्ध लोय, सात राज[2] मठेरो होय ॥

८०. प्रभु ! रत्नप्रभा पृथ्वी ताय, फर्श धर्मास्तिकाय।
स्यूं संख्यातमो भाग कहियै, कै असंख्यातमो लहियै ॥

६६. अधम्मत्थिकाए, नो अधम्मत्थिकायस्स देसे, अधम्मत्थिकायस्स पदेसा, अद्धासमए। (श० २।१३६)

६७. अलोयागासे णं भंते ! किं जीवा ? पुच्छा तह चेव।
गोयमा ! नो जीवा जाव नो अजीवप्पदेसा;

६८. एगे अजीवदव्वदेसे अगरुयलहुए

६९. अणंतेहिं अगरुयलहुयगुणेहिं संजुत्ते सव्वागासे अणंतभागूणे। (श० २।१४०)

७३. अनन्तरोक्तान् धर्मास्तिकायादीन् प्रमाणतो निरूपयन्नाह— (वृ०-प० १५१)

७४. धम्मत्थिकाए णं भंते ! केमहालए पण्णत्ते ?
गोयमा ! लोए लोयमेत्ते लोयप्पमाणे

७५, ७६. लोयफुडे लोयं चेव फुसित्ता णं चिट्ठइ। (श० २।१४१)

एवं अधम्मत्थिकाए लोयाकासे जीवत्थिकाए पोग्गलत्थिकाए पंच वि एक्काभिलावा। (श० २।१४२-१४५)

स्पर्शनाऽधिकारादधोलोकादीनां धर्मास्तिकायादिगतां स्पर्शनां दर्शयन्निदमाह— (वृ० प० १५१)

७७. अहोलोए णं भंते ! धम्मत्थिकायस्स केवइयं फुसति ?
गोयमा ! सातिरेगं अद्धं फुसति। (श० २।१४६)

७८. तिरियलोए णं भंते ! धम्मत्थिकायस्स केवइयं फुसति ?
गोयमा ! असंखेज्जइभागं फुसति। (श० २।१४७)

७९. उड्ढलोए णं भंते ! धम्मत्थिकायस्स केवइयं फुसति ?
गोयमा ! देसूणं अद्धं फुसति। (श० २।१४८)

देशोनसप्तरज्जुप्रमाणत्वादूर्ध्वलोकस्येति। (वृ०-प० १५२)

८०. इमा णं भंते ! रयणप्पभापुढवी धम्मत्थिकायस्स किं संखेज्जइभागं फुसति ? असंखेज्जइभागं फुसति ?

१. ४६वीं ढाल में ७०-७२ तक पद्यों का आधारभूत पाठ वर्तमान आदर्शों में उपलब्ध नहीं है। संभव है, जयाचार्य के पास जो आदर्श था, उसमें यह पाठ रहा होगा अथवा इस सन्दर्भ में इन पद्यों को लिखने का और भी कोई कारण हो सकता है। हमने जोड़ के तीनों पद्यों को उसी रूप में प्रस्तुत किया है।

२. रज्जु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८१. कै घणा संख्याता भाग, कै घणा असंख्याता लाग।
कै सर्व लोक फर्शाय ? हिव उत्तर दे जिनराय ।।

८२. रत्नप्रभा पृथ्वी ताय, फर्शे धर्मास्तिकाय।
भाग असंख्यातमो हुंत, चिहुं प्रश्ने नहि फर्शत ।।

८३. प्रभु ! रत्नप्रभा पहिछाणं, तेह तणो घनोदधि जाणं।
फर्शे धर्मास्तिकाय ? तसुं पंच प्रश्न पूछाय ।।

८४. कह्यूं रत्नप्रभा नैं जेह, तिम घनोदधि पिण एह।
इमहिज कहियै घनवाय, तनवाय तिमज छै ताय ।।

८५. प्रभु ! रत्नप्रभा नों जाण, आकाशांतर पहिछाण।
फर्शे धर्मास्तिकाय, तसुं प्रश्न पंच पूछाय ।।

८६. जिन कहै संख्यातमो भाग, फर्शे छै ए इम लाग।
चिउं प्रश्ने नवि फर्शत, तसुं न्याय जाणैं बुद्धिवंत ।।

८७. जिम रत्नप्रभा नो आकाश, इम सहु आकाश विमास।
इम जाव सातमी केरा, पूर्ववत् न्याय समेरा ।।

८८. जंबूद्वीप आदि दे जाण, सहु द्वीप-समुद्र पिछाण।
इहु विध सुभमं सुर लोग, जाव मुक्ति-शिला लग योग ।।

८९. सहु असंख्यातमैं भाग, फर्शे धर्मास्ति लाग।
चिउं शेष प्रश्न रह्या सोय, नहि फर्शे ते अवलोय ।।

९०. एवं अधर्मास्तिकाय, इम लोकाकाश कहाय।
इहां संग्रह-गाथा आखी, पुढवोदही आदि सुभाखी ।।

९१. पृथ्वी घनोदधि घनवाय, तनवाय वार कल्प ताय।
नव ग्रैवेयक सुविचारा, पंच अनुत्तर इसिपब्भारा ।।

९२. एहना आकाशांतर ताय, संख्यातमो भाग फर्शाय।
शेष असंख्यातमैं भाग, ए अक्षरार्थ नो विभाग ।।

९३. 'अनुत्तर-विमान नुं धार, सिद्ध-शिला योजन बार।
ते अंतर धर्मास्ति नुं ताय, असंख्यातमो भाग फर्शाय ।।

९४. इहां सूत्र गाथा में सुभाग, अंतर संख्यातमैं भाग।
ते अन्य अन्तर अपेक्षाय, पिण सिद्ध-शिला नो नांय ।।

९५. पृथ्वी[1] घनोदधि[2] घनवाय[3], तनुवाय[4] कहीजै ताय।
सात पृथ्वी सहित च्यार च्यार, ए अठावीस अवधार[5] ।।

८१. संखेज्जे भागे फुसति ? असंखेज्जे भागे फुसति ? सव्वं फुसति ?

८२. गोयमा ! णो संखेज्जइभागं फुसति, असंखेज्जइभागं फुसति, णो संखेज्जेभागे फुसति, णो असंखेज्जे भागे फुसति, णो सव्वं फुसति। (श० २।१४९)

८३. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदही धम्मत्थिकायस्स किं संखेज्जइभागं फुसति ? असंखेज्जइभागं फुसति ? संखेज्जे भागे फुसति ? असंखेज्जे भागे फुसति ? सव्वं फुसति ?

८४. जहा रयणप्पभा तहा घणोदही-घणवाय-तणुवाया वि। (श० २।१५०)

८५. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए ओवासंतरे धम्मत्थिकायस्स किं संखेज्जइभागं फुसति ? असंखेज्जइ भागं फुसति ? संखेज्जे भागे फुसति ? असंखेज्जे भागे फुसति ? सव्वं फुसति ?

८६. गोयमा ! संखेज्जइभागं फुसति, नो असंखेज्जइ भागं फुसति, नो संखेज्जे भागे फुसति, नो असंखेज्जेभागे फुसति, नो सव्वं फुसति।

८७. ओवासंतराइं सव्वाइं। (श० २।१५१)
जहा रयणप्पभाए पुढवीए वत्तव्वया भणिया एवं जाव अहेसत्तमाए।

८८. जंबुद्दीवाइया दीवसमुद्दा एवं सोहम्मे कप्पे जाव इसीपब्भारा पुढवी—

८९. एते सव्वे वि असंखेज्जइभागं फुसंति। सेसा पडिसेहियव्वा। (श० २।१५२)

९०. एवं अधम्मत्थिकाए, एवं लोयाकासे वि।

९१, ९२. पुढवोदही घण-तणू, कप्पा गेवेज्जणुत्तरा सिद्धी।
संखेज्जइभागं अंतरेसु सेसा असंखेज्जा।
(श० २।१५३ संगहणी-गाहा)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९६. जंबूद्वीपादि द्वीप असंख[९], लवणादि समुद्र अवंक[९०]।
सौधर्मादि कल्प बार[९१], त्रिण ग्रैवेयक त्रिक धार[९२]॥
९७. पंच अनुत्तर जेह[९३], सिद्धसिला एकावन[९४] एह।
ए धर्मास्तिकाय नो ताय, असंख्यातमो भाग फर्शाय॥
९८. सातूं नरक ना अंतर सात[९५], बारै कल्प ना आठ विख्यात[९६]।
ए पनरै अंतर सुचीन, त्रिण त्रिक ना अंतर तीन[९७]॥
९९. ग्रैवेयक थी पंच अनुत्तर, विचलो एक आकाशांतर।
ए धर्मास्तिकाय नुं ताय, संख्यातमुं भाग फर्शाय॥
१००. अनुत्तर सिद्धसिला विचालै, द्वादश योजन अंतरालै।
ते धर्मास्तिकाय नुं ताय, असंख्यातमुं भाग फर्शाय'॥
(ज० स०)
१०१. बीजा शतक नो दशमों उद्देश, छयालीसमी ढाल अशेष।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय, 'जय-जश' संपति सुख पाय॥

गीतक छंद

१. श्री पंचमांग विषै रह्या बहु शतक सरस सुहामणा।
महासूत्र पिंड अछै जिहां ते अधिक ही रलियामणा॥
२. सद्गुरु प्रसाद सूत्रार्थ ज्ञाता वचन अनुसारे करी।
शत द्वितीय अर्थ विचारियो म्है जोड़ रूपज चित धरी॥
द्वितीयशते दशमोद्देशकार्थः॥२।१०॥

१, २. श्रीपञ्चमाङ्गे गुरुसूत्रपिण्डे,
शतं स्थितानेकशते द्वितीयम्।
अनैपुणेनापि मया व्यचारि,
सूत्रप्रयोगज्ञवचोऽनुवृत्त्या॥ (वृ०-प० १५२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय शतक

ढाल : ४७

सोरठा

१. दूजा शतक मझार, आखी अस्तिकाय नैं।
तसुं विशेष हिव धार, विविध धर्म जीवास्ति नुं॥

१. अनन्तरशतेऽस्तिकाया उक्ताः, इह तु तद्विशेषभूतस्य जीवास्तिकायस्य विविधधर्मा उच्यन्ते।
(वृ०-प० १५३)

दूहा

२. चमर विकुर्वण शक्ति धुर, चमरोत्पात पिछान।
क्रिया काइयादी तृतीय, मुनि जाणै सुर-यान॥
३. स्त्रियादि विकुर्वै मुनि, राजगृहे विकुर्वत।
लोकपाल चिउं नां वर्णन, सुर-अधिपती उदंत॥
४. नवमुं इंद्रिय-विषय नुं, परषद दशम विशेष।
तृतीय शत उद्देश दश, हिव पहिलुं उद्देश॥

२-४. १. केरिसविउव्वणा २. चमर ३. किरिय ४, ५. जाणित्थि ६. नगर ७. पाला य। ८. अहिवइ ९. इंदिय १०. परिसा,
ततियम्मि सए दसुद्देसा॥ (श० ३।१ संगहणी-गाहा)

५. तिण कालै नैं तिण समय, मोया नगरी जान।
पुर बाहिर ईशाण में, नंदण चैत्य उद्यान॥

५. तेणं कालेणं तेणं समएणं मोया नामं नयरी होत्था—वण्णओ। (श० ३।१)
तीसे णं मोयाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे—नंदणे नामं चेइए होत्था वण्णओ। (श० ३।२)

६. तिण कालै नैं तिण समय, समवसर्या वर्द्धमान।
परषद वंदन नीकली, वच सुण आवी स्थान॥

६. तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे। परिसा निग्गच्छइ, पडिगया परिसा। (श० ३।३)

*भव जीवां रे, रूडा लागै स्वाम वच सार।
भव जीवां रे, रूडा लागै गोयम गणधार॥ (ध्रुपदं)

७. तिण कालै नैं तिण समय रे लाल, भगवंत श्री महावीर।
तसुं अंतेवासी दूसरो रे लाल, अग्निभूति गुण-हीर॥
८. गोयम नाम गोत्र करी, सप्त हस्त देहमान।
जाव सेव करता छता, इम बोलै गुणखान॥
९. चमर प्रभु! असुरेंद्र ते, असुर तणो जे राय।
केहवो महाऋद्धिवंत छै, केहवी कांति कहाय?
१०. केहवो महाबल नों धणी, के महायश महासुक्ख।
केहवो महाअनुभाग छै, दक्षिण असुर-प्रमुक्ख॥

७. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स दोच्चे अंतेवासी अग्गिभूई नामं अणगारे
८. गोयमे गोत्तेणं सत्तुस्सेहे जाव पज्जुवासमाणे एवं वदासि—
९. चमरे णं भंते! असुरिंदे असुरराया केमहिड्ढीए? केमहज्जुतीए?
१०. केमहाबले? केमहायसे? केमहासोक्खे? केमहाणुभागे?

*लय—भवि जीवां रे रूडो लागै जीत मुनिंद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. किसूं सामर्थ विकुर्ववा? हिव भाखै जिनराय।
चमर असुर नो इंद्र ते, महाऋद्धिवान कहाय॥

१२. जावत् महानुभाव छै, भवन लाख चउतीस।
चउसठ सहस्र सामानिका, मंत्रीस्वर तेतीस॥

१३. जावत् विचरै विलसतो, एहवो महर्द्धिक जाव।
एहवो महानुभाव छै, प्रभाव सहित कहाव॥

१४. हिव इतरी विकुर्वणा, करवा समर्थ जेह।
ते केहवी विकुर्वणा, सांभलज्यो गुण-गेह॥

१५. यथा दृष्टांते स्त्री प्रतै, हस्ते करी युवान।
हस्त ग्रहे काम वस थकी, हस्तांगुल करि जान॥

१६. अथवा नाभी चक्र नीं, आरे करी सहीत।
तिम बहु देव देवी करी, जंबू द्वीप भरै इण रीत॥

१७. वृद्ध-व्याख्या यात्रा विषै, युवती युवान ताय।
हस्ते प्रतिबद्धा छता, उचित प्रदेशे जाय॥

१८. इम बहु रूप विकुर्वता, इक कर्तरि प्रतिबद्ध।
चक्र नाभि इक बहु अरा, यथा हुवै संबद्ध॥

१९. इण दृष्टांते गोयमा! चमर असुर-इंद सार।
समुद्घात वैक्रिय करी, निज प्रदेश विस्तार॥

२०. इम निज तन प्रतिबद्ध करी, देव देवी करि तेह।
पूरे संक्षेपे कह्यो, हिव विस्तार करेह॥

२१. संख्याता योजन तणों, ऊर्ध्व दंड निसरंत।
बाहल्य शरीर प्रमाण ते, जीव प्रदेश काढंत॥

२२. सोलै जाति नां रत्न तें, बादर तजै असार।
सूक्ष्म पुद्गल सार ते, करै तास अंगीकार॥

२३. वृत्तिकार कहै रत्न नां, पुद्गल औदारीक।
समुद्घात वैक्रिय विषै, वैक्रिय ग्रहिवा ठीक॥

२४. तो पिण पुद्गल रत्न नां, तेहनीं पर जे सार।
इम तसुं उपमाये करी, कह्यो रत्न अधिकार॥

२५. अन्य आचार्य इम कहै, औदारिक पिण रीत।
ग्रह्या छता वैक्रियपणै, परिणमै छै धर प्रीत॥

११, १२. केवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए?
गोयमा! चमरे णं असुरिंदे असुरराया महिड्ढीए जाव महाणुभागे। से णं तत्थ चोत्तीसाए भवणावाससय-सहस्साणं, चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीणं, तायत्तीसाए तावत्तीसगाणं,

१२. 'तायत्तीसगाणं' ति मंत्रिकल्पानाम्। (वृ०-प० १५४)

१३. जाव विहरइ। एमहिड्ढीए जाव एमहाणुभागे।

१४. एवतियं च णं पभू विकुव्वित्तए।

१५. से जहानामए—जुवती जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा, कामवशाद्गाढतरग्रहणतो निरन्तरहस्तांगुलितयेत्यर्थः। (वृ०-प० १५४)

१६. चक्कस्स वा नाभी अरगाउत्ता सिया,
'एवमेव' त्ति...प्रभुर्जम्बूद्वीपं बहुभिर्देवादिभिराकीर्णं कर्त्तुमिति योगः। (वृ०-प० १५४)

१७. वृद्धैस्तु व्याख्यातं—यथा यात्रादिषु युवतिर्यूनो हस्ते लग्ना—प्रतिबद्धा गच्छति बहुलोकप्रचिते देशे। (वृ०-प० १५४)

१८. एवं यानि रूपाणि विकुर्वितानि तान्येकस्मिन् कर्त्तरि प्रतिबद्धानि, यथा वा चक्रस्य नाभिरेका बहुभिररकैः प्रतिबद्धा घना निश्छिद्रा। (वृ०-प० १५४)

१९. एवामेव गोयमा! चमरे असुरिंदे असुरराया वेउव्विय-समुग्घाएणं समोहण्णइ,
समुपहन्ति—प्रदेशान् विक्षिपति। (वृ०-प० १५४)

२०. एवमात्मशरीरप्रतिबद्धैरसुरदेवैर्देवीभिश्च पूरयेदिति। (वृ०-प० १५४)

२१. संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरइ,
शरीरबाहल्यो जीवप्रदेशकर्मपुद्गलसमूहः। (वृ०-प० १५४)

२२. तं जहा—रयणाणं जाव रिट्ठाणं अहाबायरे पोग्गले परिसाडेइ, परिसाडेत्ता अहासुहुमे पोग्गले परियायइ,

२३. इह च यद्यपि रत्नादिपुद्गला औदारिका वैक्रियसमुद्-घाते च वैक्रिया एव ग्राह्या भवन्ति। (वृ०-प० १५४)

२४. तथाऽपीह तेषां रत्नादिपुद्गलानामिव सारताप्रतिपाद-नाय रत्नानामित्याद्युक्तं। (वृ०-प० १५४)

२५. अन्ये त्वाहुः—औदारिका अपि ते गृहीताः सन्तो वैक्रि-यतया परिणमन्तीति। (वृ०-प० १५४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६. बीजी वार वलि वैक्रिय-समुद्घात करि सोय।
रूप निपावा कारणै, चमर असुर-इंद जोय॥

२७. केवल-कल्प जंबूद्वीप नैं, केवल ते परिपुण्ण।
कल्प—स्वकार्य करण नैं समर्थ सहित सुजन्न॥

२८. अथवा केवल-कल्प ते, केवलज्ञान सरीस।
ते परिपूर्णपणें करी, सरीखापणों कहीस॥

२९. अथवा केवल-कल्प ते, संपूरण नो ताम।
पर्यायवाची नाम है, अन्य नाम ते पर्याय नाम॥

३०. केवल-कल्प जंबूद्वीप नैं, बहुला असुरकुमार।
देवता नैं देवी करी, कड़ोकड़ भरैं तिह वार॥

३१. आइण्णं आकीर्ण ते, वितिकिण्णं इत्यादि।
एकार्थ ए शब्द छै, अतिव्याप्ति देखाडण साधि॥

३२. असंख्यात द्वीप-समुद्र ते, बहु देव देवी करि सोय।
विषयमात्र विकुर्विवा, क्रिया-शून्य अवलोय॥

३३. गए काल ए संपदा, विकुर्वी नहीं ताहि।
वर्त्तमान नहीं विकुर्वै, विकुर्वसे पिण नांहि॥

३४. प्रभु! चमर असुरेंद्र ते, इसो महाऋद्धिवान।
यावत् इति विकुर्वणा, करवा समर्थ जान॥

३५. तो सामानिक चमर नां, केहवा प्रभु ऋद्धिवान।
जावत् वैक्रिय करण नैं, समर्थ किसा सुजान?

३६. जिन भाखै जे चमर नां, सामानिक सुर साव।
महाऋद्धिवान अछै घणां, जावत् महानुभाव॥

३७. अपणां-अपणां भवन में, निज-निज सामानीक।
निज-निज अग्रमहेषियै, तेह संघात सधीक॥

३८. यावत् देव संबंधिया, भोग भोगवा जोग।
भोगवता विचरै तिहां, महर्द्धिक इसा प्रयोग॥

३९. जाव समर्थ वैक्रिय इति, यथा दृष्टांते ख्यात।
युवान ते युवती प्रनै, हस्ते करी ग्रहै हाथ॥

४०. चक्र नाभि आरे करी, छिद्र न दीसै येन।
सामानिक जे चमर नां, वैक्रिय समुद्घातेन॥

४१. जावत् बीजी वार ते, करि वैक्रिय समुद्घात।
रूप करण समर्थ अछै, सुण गोयम! अवदात॥

२६. दोच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णति।
चिकीर्षितरूपनिर्माणार्थम्। (वृ०-प० १५५)

२७. 'केवलकप्पं' ति केवलः—परिपूर्णः कल्पत इति कल्पः—स्वकार्यकरणसामर्थ्योपेतः। (वृ०-प० १५५)

२८. अथवा 'केवलकल्पः' केवलज्ञानसदृशः परिपूर्णता-साधर्म्यात्। (वृ०-प० १५५)

२९. सम्पूर्णपर्यायो वा केवलकल्प इति शब्दः।(वृ०-प०१५५)

३०. पभू णं गोयमा! चमरे असुरिंदे असुरराया केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य

३१. आइण्णं वितिकिण्णं उवत्थडं संथडं फुडं अवगाढावगाढं करेत्तए।
'आइन्न' मित्यादय एकार्था अत्यन्तव्याप्तिदर्शनायोक्ताः। (वृ०-प० १५५)

३२. ...तिरियमसंखेज्जे दीव-समुद्दे बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहि देवीहि य आइण्णे...एस णं गोयमा! चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो अयमेयारूवे विसए विसयमेत्ते बुइए, 'विसयमेत्ते' त्ति विषय एवविषयमात्रं—क्रियाशून्यम्। (वृ०-प० १५५)

३३. णो चेव णं संपत्तीए विकुव्विसु वा विकुव्वंति वा विकुव्विस्संति वा। (श० ३।४)

३४. जइ णं भंते! चमरे असुरिंदे असुरराया एमहिड्ढीए जाव एवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए,

३५. चमरस्स णं भंते! असुरिंदस्स असुररण्णो सामाणिया देवा केमहिड्ढीया? जाव केवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए?

३६. गोयमा! चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो सामाणिया देवा महिड्ढीया जाव महाणुभागा।

३७. ते णं तत्थ साणं-साणं भवणाणं, साणं-साणं सामाणियाणं, साणं-साणं अग्गमहिसीणं

३८. जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति। एमहिड्ढीया

३९. जाव एवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए। से जहानामए—जुवती जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा,

४०. चक्कस्स वा नाभी अरगाउत्ता सिया, एवामेव गोयमा! चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो एगमेगे सामाणियदेवे वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ

४१. जाव दोच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ। पभू णं गोयमा!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२. चमर असुर नां इंद्र नों, सामानिक इक एक।
जंबूद्वीप प्रतै तिको, संपूर्ण सुविशेख ।।

४३. घणां असुर देवे करी, देवी करि आइन्न।
वितिकिन्नादि पाठ जे, एकार्थेज सुचिन्न ।।

४४. वैक्रिय देव देवी करी, जंबूद्वीप भरंत।
हिवै बीजो समर्थपणों, सामानिक नों कहंत ।।

४५. असंख्यात द्वीप-समुद्र नैं, भरवा नीं समर्थाय।
भरचा भरै भरसी नहीं, तीन काल रै मांय ।।

४६. प्रभु ! चमर असुरिंद नां, सामानिक सुर ताय।
महर्द्धिक इम यावत् तसु, इति वैक्रिय समर्थाय ।।

४७. तावतीसक प्रभु चमर नां, केहवा महर्द्धिक देव।
जिम सामानिक आखिया, तिम तावतीसक पिण भेव ।।

४८. लोकपाल तिमहिज अछै, नवरं जे संख्यात।
द्वीप समुद्र भरवा तणीं, वैक्रियकरण विख्यात ।।

४९. लोकपाल प्रभु ! चमर नां, एहवा महर्द्धिक जाव।
वलि करवा विकुर्वणा, समर्थ इसा कहाव ।।

५०. तो अग्रमहेषी चमर नीं, केहवी महाऋधवंत।
जाव किती विकुर्वणा, करवा समर्थ हुंत ?

५१. जिन कहै अग्रमहेषियां, महाऋद्धिवान कहाय।
जावत् महानुभाव छै, निज-निज भवनैं ताय ।।

५२. निज-निज सहस्र सामानिका, निज निज महत्तरिकाय।
निज-निज परषद जाव इम, महर्द्धिक इसी कहाय ।।

५३. अन्य सहु विस्तार ते, लोकपाल जिम जाण।
संपूर्ण कहिवो इहां, अग्रमहेषी आण ।।

५४. सेवं भंते ! कही वीर नैं, कर वंदना-नमस्कार।
वायुभूति गोतम कन्है, आया अग्निभूति अणगार ।।

५५. अंक इकतीस नुं देश ए, सैंतालीसमी ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' संपति माल ।।

४२, ४३. चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो एगमेगे सामाणियदेवे केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य आइण्णं वितिकिण्णं...करेत्तए।

४४. एवतियं च णं पभू विउव्वित्तए जाव केवलकप्पं जंबुद्दीवं। (वृ०-प० १५८)

४५. ...तिरियमसंखेज्जे दीव-समुद्दे बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य आइण्णे...करेत्तए।
...नो चेव णं संपत्तीए विकुव्विसु वा विकुव्वंति वा, विकुव्विस्संति वा। (श० ३।५)

४६. जइ णं भंते ! चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो सामाणियदेवा एमहिड्ढीया जाव एवतियं च णं पभू विकुव्वित्तए,

४७. चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुररण्णो तावत्तीसया देवा केमहिड्ढीया ? तावत्तीसया जहा सामाणिया तहा नेयव्वा।

४८. लोयपाला तहेव, नवरं—संखेज्जा दीव-समुद्दा भाणियव्वा। (श० ३।६)

४९. जइ णं भंते ! चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो लोगपाला देवा एमहिड्ढीया जाव एवतियं च णं पभू विकुव्वित्तए,

५०. चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो अग्गमहिसीओ देवीओ केमहिड्ढियाओ जाव केवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए ?

५१. गोयमा ! चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो अग्गमहिसीओ देवीओ महिड्ढियाओ जाव महाणुभागाओ। ताओ णं तत्थ साणं-साणं भवणाणं,

५२. साणं-साणं सामाणियसाहस्सीणं, साणं-साणं महत्तरियाणं, साणं-साणं परिसाणं जाव एमहिड्ढीयाओ।

५३. अण्णं जहा लोगपालाणं अपरिसेसं। (श० ३।७)

५४. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति भगवं दोच्चे गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव तच्चे गोयमे वायुभूती अणगारे तेणेव उवागच्छइ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ४८

दूहा

१. अग्निभूति तिण अवसरै, कहै वायुभूति नै वाय।
चमर महाऋद्धिवंत छै, तिमज सर्व कही ताय।।

२. अणपूछ्यां सहु वारता, दीधी तास सुणाय।
जाव अग्रमहिषी तणी, विवरा सुध बताय।।

३. वायुभूति तिण अवसरै, वचन न सरध्यो तास।
प्रतीतियो रुचियो नहीं, आयो प्रभु रै पास।।

४. जाव सेव करि इम कहै, इम निश्चै भगवान।
अग्निभूति मुझ नैं कहै, चमर महाऋद्धिवान।।

५. तिमज सर्व जावत् कही, अग्रमहिषी लग वात।
ते किम छै भगवंत ए? तब बोल्या जगनाथ।।

६. हे गोतम! इम आदि दे, भगवंत श्री महावीर।
तीजा गोतम नैं कहै, सुणज्यो साहस धीर।।

*वीर कहै सुण गोयमा रे। (ध्रुपदं)

७. दूजा गोतम तुझ नैं कही रे, अग्निभूति अणगारो रे।
हे गोयम! चमर महऋद्धिक छै रे, जाव अग्र महिषि लग सारो रे।।

८. एह अर्थ साचो सहु, हूं पिण कहूं इण रीतो।
चमर महर्द्धिक तिमहिज सहु, बीजो आलावो वदीतो।।

९. यावत् अग्रमहेषी लगै, सर्व अर्थ ए साचो।
वे वार सेवं भंते! कही, प्रभु वांदै वायुभूति जाचो।।

१०. दूजा गोयम पासै आय नैं, करै वंदना नै नमस्कारो।
ए अर्थ सम्यक्पणैं सही, खामै विनय करी वारंवारो।।

११. तीजा गोतम तिण अवसरै, अग्निभूती नै संघातो।
वीर प्रभु पै आय नैं, जाव सेवा करै जोडी हाथो।।

*लय--राजा दशरथ दीपतो रे

१, २. तच्चं गोयमं वायुभूतिं अणगारं एवं वदासि—एवं खलु गोयमा! चमरे असुरिंदे असुरराया एमहिड्ढीए तं चेव एवं सव्वं अपुट्ठवागरणं नेयव्वं अपरिसेसियं जाव अग्गमहिसीणं वत्तव्वया समत्ता। (श० ३।८)

३. तेणं से तच्चे गोयमे वायुभूती अणगारे दोच्चस्स गोयमस्स अग्गिभूतिस्स अणगारस्स एवमाइक्खमाणस्स... एयमट्ठं नो सद्दहइ नो पत्तियइ नो रोएइ, एयमट्ठं असद्दहमाणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ

४. जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी—एवं खलु भंते! दोच्चे गोयमे अग्गिभूई अणगारे ममं एवमाइक्खइ भासइ पण्णवेइ परूवेइ—एवं खलु गोयमा! चमरे असुरिंदे असुरराया महिड्ढीए

५. जाव महाणुभागे। से णं तत्थ चोत्तीसाए भवणावाससयसहस्साणं तं चेव सव्वं अपरिसेसं भाणियव्वं जाव अग्गमहिसीणं वत्तव्वया समत्ता। (श० ३।९)
से कहमेयं भंते! एवं?

६. गोयमादि! समणे भगवं महावीरे तच्चं गोयमं वायुभूतिं अणगारं एवं वयासी—

७. जं णं गोयमा! तव दोच्चे गोयमे अग्गिभूई अणगारे एवमाइक्खइ...एवं खलु गोयमा! चमरे असुरिंदे असुरराया महिड्ढीए तं चेव सव्वं जाव अग्गमहिसीओ।

८. सच्चे णं एसमट्ठे। अहं पि णं गोयमा! एवमाइक्खामि...एवं खलु गोयमा! चमरे असुरिंदे असुरराया महिड्ढीए तं चेव

९. जाव अग्गमहिसीओ। सच्चे णं एसमट्ठे। (श० ३।१०)
सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति तच्चे गोयमे वायुभूई अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ,

१०. जेणेव दोच्चे गोयमे अग्गिभूई अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दोच्चं गोयमं अग्गिभूइं अणगारं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो भुज्जो खामेइ। (श० ३।११)

११. तए णं से तच्चे गोयमे वायुभूति अणगारे दोच्चे णं गोयमेणं अग्गिभूतिणा अणगारेणं सद्धिं जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ जाव पज्जुवासमाणे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. वायुभूति पूछै भगवान नैं, जो चमर इसो ऋद्धिवानो।
जाव एहवी विकुर्वणा, करिवा समर्थ भगवानो॥

१३. तो प्रभु ! दक्षिण नां असुर थी, विशिष्ट रोचन दीपंदो।
उत्तर दिशि नां असुर नों, वली वैरोचन - इंदो॥

१४. केहवो महा ऋद्धिवान छै, यावत् केहवी जाणी।
विकुर्वणा करिवा तणी, समर्थाइ पहिछाणी?

१५. जिन भाखै बली नाम छै, वेरोचन नों राजा।
महर्द्धिक जाव भवन तसुं, तीस लाख है ताजा॥

१६. साठ सहस्र सामानिका, शेष चमर जिम लेखो।
तिम वली नैं पिण जाणियै, णवरं इतलो विशेखो॥

१७. जाझो जंबूद्वीप नै, शेष तिमज सर्व ताह्यो।
णवरं भवण सामानिका, नानापणों कहिवायो॥

१८. वे वार सेवं भंते ! कही, तीजा गोतम तिण वारो।
वायुभूति तिण अवसरै, जावत् विचरै सारो॥

१९. बीजा गोतम तिण अवसरै, अग्निभूति अणगारो।
वीर प्रतै वांदी करी, बोलै करी नमस्कारो॥

२०. जो वली वैरोचन इंद्र ते, एहवो महाऋद्धिवानो।
जाव इतो विकुर्विवा, समर्थ छै भगवानो॥

२१. तो प्रभु धरण दक्षिण दिशै, नागकुमार नो रायो।
केहवो महाऋद्धिवान छै, जाव वैक्रिय समर्थायो?

२२. जिन कहै धरण नागेंद्र ते, एहवो महाऋद्धिवंतो।
जाव भवन तेहना तिहां, लाख चम्मालीस तंतो॥

२३. सामानिक षट सहस्र छै, तावतीसक तेतीसो।
लोकपाल चिउं तेहनैं, छ अग्रमहिषि जगीसो॥

२४. सपरिवार महिषियां, परषद तीन विख्यातो।
अणीकटक[1] तसुं सात छै, सप्त अणिक नां नाथो॥

२५. आत्मरक्षक देवता, चउवीस सहस्र उदारो।
अन्य सुर बहु नों अधिपति, यावत् विचरै सारो॥

२६. विकुर्विवा समर्थ इसूं, यथा दृष्टांत कहातो।
युवान पुरुष युवती प्रतै, ग्रहै हस्त करि हाथो॥

---

१. सेना।

१२. एवं वयासी—जइ णं भंते ! चमरे असुरिंदे असुरराया एमहिड्ढीए जाव एवतियं च णं पभू विकुव्वित्तए,

१३. बली णं भंते ! वइरोयणिंदे वइरोयणराया 'वइरोयणिंदे' त्ति दाक्षिणात्यासुरकुमारेभ्यः सकाशाद् विशिष्टं रोचनं—दीपनं येषामस्ति ते वैरोचना—औदीच्यासुरास्तेषु मध्ये इन्द्रः—परमेश्वरो वैरोचनेन्द्रः। (वृ०-प० १५७)

१४. केमहिड्ढीए ? जाव केवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए ?

१५. गोयमा ! बली णं वइरोयणिंदे वइरोयणराया महिड्ढीए जाव महाणुभागे।
से णं तत्थ तीसाए भवणावाससयसहस्साणं। (वृ०-प० १५६)

१६. सट्ठीए सामाणियसाहस्सीणं सेसं। (वृ०-प० १५६)
जहा चमरस्स तहा बलिस्स वि नेयव्वं, नवरं---

१७. सातिरेगं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं भाणियव्वं, सेसं तं चेव निरवसेसं नेयव्वं, नवरं---नाणत्तं जाणियव्वं भवणेहिं सामाणिएहि य। (श० ३।१२)

१८. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति तच्चे गोयमे वायुभूई अणगारे जाव पज्जुवासइ। (श० ३।१३)

१९. तते णं से दोच्चे गोयमे अग्निभूई अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

२०. जइ णं भंते ! बली वइरोयणिंदे वइरोयणराया एमहिड्ढीए जाव एवतियं च णं पभू विकुव्वित्तए,

२१. धरणे णं भंते ! नागकुमारिंदे नागकुमारराया केमहिड्ढीए ? जाव केवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए ?

२२. गोयमा ! धरणे णं नागकुमारिंदे नागकुमारराया महिड्ढीए जाव महाणुभागे। से णं तत्थ चोयालीसाए भवणावाससयसहस्साणं,

२३. छण्हं सामाणियसाहस्सीणं, तायत्तीसाए तावत्तीसगाणं, चउण्हं लोगपालाणं, छण्हं अग्गमहिसीणं,

२४. सपरिवाराणं, तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणियाणं, सत्तण्हं अणियाहिवईणं,

२५. चउव्वीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं, च जाव विहरइ।

२६. एवतियं च णं पभू विउव्वित्तए। से जहानामए जुवती जुवाणे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७. जाव भरै जंबूद्वीप नै, तिरछा दीप-समुद्र संखेज्जो।
विषय कही भरवा तणी, पिण त्रिहुं काले न कहेज्जो ॥

२८. सामानिक तावतीसगा, अग्रमहिषि लोकपालो।
चमर नां जेम धरण तणां, एहवा महर्द्धिक न्हालो ॥

२९. णवरं इतलो विशेष छै, दीप-समुद्र संख्याता भणवा।
इम जाव थणियकुमार नै, व्यंतर जोतिषी पिण इम थुणवा ॥

३०. णवरं दक्षिण दिशि तणां, अग्निभूति पूछंतो।
उत्तर दिशि नां सर्व नों, पूछै वायुभूति धर खंतो ॥

२७. जाव पभू केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं जाव तिरियं संखेज्जे दीव-समुद्दे बहूहि नागकुमारीहिं जाव विकुव्विस्संति वा।

२८. सामाणिया तावत्तीस-लोगपालग्गमहिसीओ य तहेव जहा चमरस्स,

२९. नवरं—संखेज्जे दीव-समुद्दे भाणियव्वे। (श० ३।१४)
एवं जाव थणियकुमारा, वाणमंतरा जोईसिया वि,

३०. नवरं—दाहिणिल्ले सव्वे अग्गिभूई पुच्छइ, उत्तरिल्ले सव्वे वायुभूई पुच्छइ। (श० ३।१५)

सोरठा

३१. व्यंतरेंद्र पिण जाण, कहिवा धरणेंद्र नीं परे।
सपरिवार पहिछाण, बे बे इंद्रज तेहनां ॥

३२. ते व्यंतर नैं न्हाल, वलि ज्योतिषि नैं पिण न छै।
तावतीसक लोकपाल, तिण सूं ते भणवा नथी ॥

३३. सामानिक छै तास, च्यार सहस्र संख्या करी।
आत्मरक्ष विमास, सामानिक थी चिहुं गुणा ॥

३४. अग्रमहेसी च्यार, ए सहु दक्षिण-इंद्र नों।
वलि रवि नुं विस्तार, अग्निभूति पूछा करी ॥

३५. उत्तर - इंद्र उदार, वली चंद्र नो जाणवुं।
वायुभूति विचार, पूछा कीधी छै इहां ॥

३६. ए दक्षिण सहु इंद, वलि सूर्य केवल-कल्प।
जंबूद्वीप भरंद, इत्यादिक विस्तार जे ॥

३७. उत्तर नां सहु इंद, वली चंद्र पिण अधिक ही।
जंबूद्वीप भरंद, इत्यादिक कहिवो सहु ॥

३८. इहां वाचना मांहि, प्रगट एह आख्यो नथी।
वाचनांतर थी ताहि, ए विस्तारज जाणवूं ॥

३९. काल - इंद्र नुं जाण, आलावो इम आखियै।
काल प्रभु ! पहिछाण, पिसाच नुं जे इंद्र ते ॥

४०. केहवु महाऋद्धिवान, शक्ती किती विकुर्विवा ?
तब भाखै भगवान, काल महा ऋद्धिवंत छै ॥

४१. नगर असंखज लाख, सामानिक चिहुं सहस्र तसुं।
आत्मरक्ष वर साख, सोल सहस्र छै तेहनैं ॥

४२. अग्रमहेषी च्यार, सपरिवार अछै तिकै।
अन्य बहु अधिक उदार, पिसाच नां सुर सुरि तणो ॥

३१. व्यन्तरेन्द्रा अपि धरणेन्द्रवत्सपरिवारा वाच्याः।
(वृ०-प० १५७)

३२. एतेषां ज्योतिष्काणां च त्रायस्त्रिंशा लोकपालाश्च न सन्तीति ते न वाच्याः। (वृ०-प० १५८)

३३. सामानिकास्तु चतुःसहस्रसंख्याः, एतच्चतुर्गुणाश्चात्मरक्षाः। (वृ०-प० १५८)

३४. अग्रमहिष्यश्चतस्र इति, एतेषु च सर्वेष्वपि दाक्षिणात्येष्विन्द्रानादित्यं चाग्निभूतिः पृच्छति।
(वृ०-प० १५८)

३५. उदीच्येष्वन्द्रं च वायुभूतिः। (वृ०-प० १५८)

३६. तत्र च दाक्षिणात्येष्वादित्ये च केवलकल्पं जम्बूद्वीपं संस्तृतमित्यादि। (वृ०-प० १५८)

३७. औदीच्येषु च चन्द्रे च सातिरेकं जम्बूद्वीपमित्यादि च वाच्यं। (वृ०-प० १५८)

३८. यच्चेहाधिकृतवाचनायामसूचितमपि व्याख्यातं तद्वाचनान्तरमुपजीव्येति भावनीयमिति। (वृ०-प० १५८)

३९. तत्र कालेन्द्रसूत्राभिलाप एवं—काले णं भंते पिसाइंदे पिसायराया। (वृ०-प० १५८)

४०. केमहिड्ढीए केवइयं च णं पभू विउव्वित्तए ? गोयमा ! कालेणं महिड्ढीए। (वृ०-प० १५८)

४१. से णं तत्थ असंखेज्जाणं नगरवाससयसहस्साणं चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं।
(वृ०-प० १५८)

४२. चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं अण्णेसिं च बहूणं पिसायाणं देवाणं देवीण य। (वृ०-प० १५८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३. अधपतिपणों करंत, जावत् विचरै छै तिको।
एहवो छै ऋद्धिवंत, महद्युति प्रमुखज बोल षट।।

४४. इती शक्ति है तास, वैक्रिय नीं जावत् कही।
केवल - कल्प विमास, जंबूद्वीप प्रतै भरै।।

४५. जावत् तिरछो जाण, संख्याता द्वीपोदधि।
इत्यादिक पहिछाण, वृत्ति थकी ए वारता।।

४६. *हे भगवंत ! इह विध कही, दूजा गोतम अग्निभूती।
नमस्कार वंदना करी, प्रश्न करै विधि हुंती।।

४७. जो प्रभु ! इंद्र जोतिषि तणों, एहवो महाऋद्धिवानो।
जाव इति विकुर्वणा, करिवा समर्थ जानो।।

४८. हे प्रभु ! शक्र देवेंद्र ते, केहवो महाऋद्धिवंतो।
जाव केहवी विकुर्वणा, करिवा समर्थ अत्यंतो।।

४९. जिन कहै शक्र देवेंद्र ते, महऋद्धिवान सुजानो।
यावत् महानुभाग छै, बत्तीस लाख विमानो।।

५०. चोरासी लाख सामानिका, जाव चोगुणां आत्मरक्षो।
अन्य बहु सुर नों अधिपति, जावत् विचरै मुदक्षो।।

५१. एहवो महाऋद्धिवान छै, जाव एहवी समर्थाइ।
जेम चमर तिम एह छै, णवरं दो जंबू भराइ।।

५२. असंख्याता द्वीप समुद्र नैं, भरिवा नी समर्थाइ।
न भरया न भरै भरसी नहीं, ए विषय मात्र कहिवाइ।।

५३. अंक इकतीस नों देश ए, अड़तालीसमीं ढालो।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' हरष विशालो।।

४३. आहेवच्चं जाव विहरइ एवं महिड्ढीए।(वृ०-प० १५८)

४४. एवतियं च णं पभू विउव्वित्तए जाव केवलकप्पं जंबूद्दीवं। (वृ०-प० १५८)

४५. जाव तिरियं संखेज्जे दीवसमुद्दे इत्यादि।
(वृ०-प० १५८)

४६. भंतेत्ति ! भगवं दोच्चे गोयमे अग्गिभूई अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

४७. जइ णं भंते ! जोइसिंदे जोइसराया एमहिड्ढीए जाव एवतियं च णं पभू विकुव्वित्तए,

४८. सक्के णं भंते ! देविंदे देवराया केमहिड्ढीए ? जाव केवतियं च णं पभू विकुव्वित्तए ?

४९. गोयमा ! सक्के णं देविंदे देवराया महिड्ढीए जाव महाणुभागे। से णं बत्तीसाए विमाणावाससयसहस्साणं,

५०. चउरासीए सामाणियसाहस्सीणं...चउण्हं चउरासीणं, आयरक्खसाहस्सीणं, अण्णेसिं च जाव विहरइ।

५१. एमहिड्ढीए जाव एवतियं च णं पभू विकुव्वित्तए, एवं जहेव चमरस्स तहेव भाणियव्वं, नवरं—दो केवलकप्पे जंबुद्दीवे दीवे,

५२. अवसेसं तं चेव।
एस णं गोयमा ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो इमेयारूवे विसए विसयमेत्ते बुइए, नो चेव णं संपत्तीए विकुव्विसु वा विकुव्वति वा विकुव्विस्सति वा। (श० ३।१६)

ढाल : ४९

दूहा

१. जो प्रभु ! शक्र देवेंद्र ते, एहवो महाऋद्धिवान।
जाव इति विकुर्वणा, करिवा समर्थ जान।।

२. इम निश्चै करि आपरो, अंतेवासी सोय।
प्रकृति-भद्र अणगार ते, जाव विनीत सुजोय।।

१. जइ णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया एमहिड्ढीए जाव एवतियं च णं पभू विकुव्वित्तए,

२. एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी तीसए नामं अणगारे पगइभद्दए जाव विणीए

*लय—राजा दशरथ दीपतो रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*म्हारा प्रभुजी रै, ज्ञान रो पार पामै नहीं। (ध्रुपदं)

३. होजी स्वामी ! तीसक नामै महामुनि,
होजी स्वामी ! छठ छठ अंतर-रहीत।
होजी स्वामी ! तप करि आतम भावतो,
होजी स्वामी ! चरण वर्ष अठ प्रीत।।

३. छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णाइं अट्ठ संवच्छराइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता,

४. होजी प्रभु ! मास तणो जी संलेखणा, साठ भक्त अणसण छेद।
होजी प्रभु ! आलोवणा निज मन करी, गुरु कनै पडिकमी संवेद।।

४. मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेत्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइय-पडिक्कंते

५. पाम्या समाधि मुनीस्वरू, काल मासे करि काल।
सुधर्म - कल्पे ऊपनों, निज विमाण विशाल।।

५. समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे सयंसि विमाणंसि

६. ऊपजवा नीं सभा विषै, देव सेज्या नैं अनुराग।
देव - दूष्य नैं अंतरे, आंगुल नै असंख्यातमैं भाग।।

६. उववायसभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसंतरिए अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्तीए ओगाहणाए

७. शक्र सुरिंद्र सुरराय नों, सामानिकपणें उपन्न।
तीसक सुर ततकाल नों, पंच पर्याप्ति-प्रतिपन्न।।

७. सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सामाणियदेवत्ताए उववण्णे। तए णं तीसए देवे अहुणोववण्णमेत्ते समाणे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गच्छइ

८. आहार शरीर नैं इंद्रिय, सास उस्सास कहाव।
भाषा-मन पर्याप्ती पंच, पाम्यो पर्याप्त भाव।।

८. तं जहा—आहारपज्जत्तीए, सरीरपज्जत्तीए, इंदिय-पज्जत्तीए, आणापाणुपज्जत्तीए, भासा-मणपज्जत्तीए।

९. होजी सुगुणा ! वृति में कह्यो सर्व स्थानके, आखी छै पर्याप्ति सुहाय।
होजी सुगुणा ! भाषा मन इक सुर नै गिणी, बहुश्रुत किणहिक न्याय।।

९. सा चान्यत्र षोढोक्ता, इह तु पंचधा, भाषामनः पर्याप्त्योर्बहुश्रुताभिमतेन केनापि कारणेनैकत्वविवक्षणात्।
(वृ०-प० १५९)

१०. होजो स्वामी ! सामानिक परषद देवता, करतल जोडी दश नक्ख।
होजी स्वामी ! मस्तक आवर्त्तन करी, जय विजय बधावै प्रतक्ख।।
११. अंजलि करि नैं इम कहै, आश्चर्यकारी अभ्रांति।
दिव्य ऋद्धि देवानुप्रिया तणी, दिव्य देव नी कांति।।

१०, ११. तए णं तं तीसयं देवं पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गयं समाणं सामाणियपरिसोववण्णया देवा करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धाविंति वद्धावित्ता एवं वयासी—अहो णं देवाणुप्पिएहिं दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई

१२. दिव्य प्रधान सुदेव नों, लाधो पाम्यो अनुभाव।
सन्मुख आया सुख भला, पाम्या छै आप सुसाव।।

१२. दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए।

१३. जेहवी ऋद्धि देवानुप्रिया तणी, तेहवी ऋद्धि शक्र तणी सोय।
जेहवी छै ऋद्धि शक्र इंद्र नीं, तेहवी ऋद्धि आपरी होय।।

१३. जारिसिया णं देवाणुप्पिएहिं दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए, तारिसिया णं सक्केण वि देविंदेण देवरण्णा दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमण्णागए। जारिसिया णं सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमण्णागए, तारिसिया णं देवाणुप्पिएहिं दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमण्णागए।

१४. तीसक नामै देव ते, केहवो छै महाऋद्धिवान।
यावत् केहवी विकुर्वणा, करिवा नै समर्थ सुजान ?

१४. से णं भंते ! तीसए देवे केमहिड्ढीए जाव केवतियं च णं पभू विकुव्वित्तए ?

*लय—ऐसी जोगणी री जोग युक्ति जाणें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. हां रे गोयम ! वीर कहै सुण गोयमा ! तीसक महाऋद्धिवान ।
हां रे गोयम ! यावत् महानुभाग छै, ते तिहां पोता नै विमान ।।

१६. च्यार सहंस सामानिक अछै, अग्रमहेषी च्यार ।
सपरिवारे सोभती, परषद तीन उदार ।।

१७. सात अणीक छै जेहनै, सात अणीक नां नाथ ।
आत्मरक्षक देवता, सोलै सहंस आख्यात ।।

१८. अन्य घणां वैमाणीक जे, देव देवी नों नाथ ।
अधिपतिपणों करतो छतो, यावत् विचरै विख्यात ।।

१९. एहवो महाऋद्धिवंत तेह छै, जाव एहवी समर्थाय ।
जेम युवान युवती प्रतै, हस्ते करि हस्त ग्रहाय ।।

२०. जेम कह्यो छै शक्र नै, तिमहिज तीसक देव ।
जाव असंख द्वीप विषय छै, काल तिहुं न भरेव ।।

२१. होजी स्वामी ! महाऋद्धिवान तीसक इसो, जाव विषय इति जान ।
होजी स्वामी ! शेष सामानिक शक्र नां, केहवा महऋद्धि शक्तिमान ?

२२. हां रे गोयम ! तिमज सर्व जाव एहवी, शक्र सामानिक इक एक ।
हां रे गोयम ! विषय असंख द्वीप-समुद्र नीं, पूर्वे कह्यो ज्यूं अशेष ।।

२३. तावतीसक लोकपाल ते, अग्रमहेषी पिण जोय ।
जेम चमर तणां तेम ए, णवरं जंबूद्वीप दोय ।।

२४. होजी सुगुणा ! वृत्ति विषै कह्यूं चमर नां,
लोकपाल अग्रमहीष ।
होजी सुगुणा ! विषय संख्याता द्वीप-समुद्र नीं,
तिम इहां संख्याता कहीस ।।

२५. होजी स्वामी ! वे वार सेवं भंते ! कही,
दूजा गोयम गणधार ।
होजी स्वामी ! जाव विचरै आतम भावता,
हिव तीजा गोयम प्रश्न सार ।।

२६. हे भदंत ! इह विध कही, तीजा गोयम भगवान ।
वायुभूति भगवंत नै, जाव वदै इम वान ।।

२७. जो शक्र यावत् महर्द्धिक इसो, यावत् इति समरथाय ।
ईशाण इंद्र महर्द्धिक किसो ? एवं तहेव कहाय ।।

१५. गोयमा ! महिड्ढीए जाव महाणुभागे । से णं तत्थ सयस्स विमाणस्स,

१६. चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं, चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं, तिण्हं परिसाणं,

१७. सत्तण्हं अणियाणं, सत्तण्हं अणियाहिवईणं, सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं,

१८. अण्णेसिं च बहूणं वेमाणियाणं, देवाणं देवीणं य जाव विहरइ ।

१९. एमहिड्ढीए जाव एवतियं च णं पभू विकुव्वित्तए । से जहानामए जुवती जुवाणे हत्थेण हत्थे गेण्हेज्जा,

२०. जहेव सक्कस्स तहेव जाव एस णं गोयमा ! तीसयस्स देवस्स अयमेयारूवे विसए विसयमेत्ते वुइए, णो चेव णं संपत्तीए विकुव्विंसु वा विकुव्वंति वा विकुव्विस्संति वा । (श० ३।१७)

२१. जइ णं भंते ! तीसए देवे महिड्ढीए जाव एवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए, सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो अवसेसा सामाणिया देवा केमहिड्ढीया ?

२२. तहेव सव्वं जाव एस णं गोयमा ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो एगमेगस्स सामाणियस्स देवस्स इमेयारूवे विसए विसयमेत्ते वुइए, णो चेव णं संपत्तीए विकुव्विंसु वा विकुव्वंति वा विकुव्विस्संति वा ।

२३. तावत्तीसय---लोगपालग्गमहिसी णं जहेव चमरस्स, नवरं---दो केवलकप्पे जंबुद्दीवे दीवे, अण्णं तं चेव ।
(श० ३।१८)

२४. 'जहेव चमरस्स' त्ति, अनेन लोकपालाग्रमहिषीणां 'तिरियं संखेज्जे दीवसमुद्दे' ति वाच्यमिति सूचितम् ।
(वृ०-प० १५९)

२५. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति दोच्चे गोयमे जाव विहरइ ।
(श० ३।१९)

२६. भंतेति ! भगवं तच्चे गोयमे वायुभूई अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वदासी—

२७. जइ णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया महिड्ढीए जाव एवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए, ईसाणे णं भंते ! देविंदे देवराया केमहिड्ढीए ? एवं तहेव,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८. हां रे गोयम ! नवरं जे एतलो विशेष छै, अधिक जंबूद्वीप दोय ।
हां रे गोयम ! अवशेष सर्व विस्तार ते, पूर्वली पर जोय ।।

२९. होजी स्वामी ! ईशाण देवेंद्र महर्द्धिक इसो, जाव एहवी समर्थाय ।
होजी स्वामी ! निश्चय अंतेवासी आपरो, कुरुदत्त-पुत्र मुनिराय ।।

३०. प्रकृति भद्रिक जाव विनीत ते, अठम-अठम अंतर-रहीत ।
पारणै आयंबिल आदरी, तप करि आतम लीधी जीत ।।

३१. ऊंची बाहु रवि सन्मुखे, आतापना पिण तास ।
छ मास चारित्र पालनै, संलेखणा अर्ध मास ।।

३२. तीस भक्त अणसण छेद नै, आलोई पडिकमी सुजाण ।
पाय समाधि काल करी हुओ, ईशाणे निज विमाण ।।

३३. हां रे गोयम ! तीसक मुनि नीं जे वार्ता, कुरुदत्त पुत्र नी तिम हीज ।
गोयम ! णवरं जंबू दोय अधिक छै, अवशेष तिमज कहीज ।।

३४. एवं सामानिक तावतीसगा, लोकपाल अग्रमहीष ।
जाव ईशाण सुर इंद्र नीं, इक इक अग्रमहिषी दीस ।।

३५. विषय संख्याता द्वीप-समुद्र नीं, भरै नहीं त्रिहुं काल ।
इमहिज सनतकुमार पिण, णवरं चिउं जंबूद्वीप निहाल ।।

३६. अर्थ अदुत्तरं पाठ नो, बीजै प्रकार थी जोय ।
तिरछा असंख्य द्वीपोदधि, विषय मात्र अवलोय ।।

३७. एवं सामानिक जाणजो, तावतीसक लोकपाल ।
अग्रमहिषी भोग अपेक्षया, असंख्य द्वीपोदधि न्हाल ।।

३८. हां रे सुगुणा ! सूत्र सामान्य कह्यो इहां, अग्रमहिषी आय ।
हां रे सुगुणा ! सूत्र विशेष आगल हिवै, तिहां अग्रमहिषी कही नांय ।।

३९. उपजै बे कल्पे अपरिग्रही, ते आवै ऊपरला रै भोग ।
तिण सूं अग्रमहिषि कही सनत नै, विषय संखेज्ज दीसै जोग ।।

४०. समयाधिक पल्य थी दश पल्य लगै, सुधर्म नी अपरिग्रही सोय ।
भोग आवै तीजा तणै, वृत्ति मांहै अवलोय ।।

४१. हां रे गोयम ! सनतकुमार थी आदि दे, ऊपरला लोकपाल ।
हां रे गोयम ! असंख द्वीपोदधि विषय छै, इहां अग्रमहिषी दीधी टाल ।।

२८. नवरं—साहिए दो केवलकप्पे जंबुद्दीवे दीवे, अवसेसं तहेव । (श० ३।२०)

२९. जइ णं भंते ! ईसाणे देविंदे देवराया एमहिड्ढीए जाव एवतियं च णं पभू विकुव्वित्तए, एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी कुरुदत्तपुत्ते नामं अणगारे

३०. पगतिभद्दए जाव विणीए अट्ठमंअट्ठमेणं अणिक्खित्तेणं, पारणए आयंबिलपरिग्गहिएणं तवोकम्मेणं

३१. उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे बहुपडिपुण्णे छम्मासे सामण्ण-परियागं पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेत्ता,

३२. तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा ईसाणे कप्पे सयंसि विमाणंसि...

३३. जा तीसए वत्तव्वया सच्चेव अपरिसेसा कुरुदत्तपुत्ते वि, नवरं—सातिरेगे दो केवलकप्पे जंबुद्दीवे दीवे, अवसेसं तं चेव ।

३४. एवं सामाणिय-तावत्तीसग - लोगपाल - अग्गमहिसीणं जाव एस णं गोयमा ! ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो एगमेगाए अग्गमहिसीए देवीए

३५. अयमेयारूवे विसए विसयमेत्ते वुइए, नो चेव णं संपत्तीए विकुव्विसु वा विकुव्वति वा विकुव्विस्सति वा ।
(श० ३।२१)
एवं सणंकुमारे वि, नवरं—चत्तारि केवलकप्पे जंबुद्दीवे दीवे,

३६. अदुत्तरं च णं तिरियमसंखेज्जे ।

३७. एवं सामाणिय-तावत्तीसग-लोगपाल-अग्गमहिसीणं । असंखेज्जे दीव-समुद्दे सव्वे विकुव्वंति,

४०. समयाधिकपल्योपमादिदशपल्योपमान्तस्थितयोऽपरिगृहीतदेव्यस्ताः सनत्कुमारदेवानां भोगाय संपद्यन्ते ।
(बृ०-प० १६०)

४१. सणंकुमाराओ आरद्धा उवरिल्ला लोगपाला सव्वे वि असंखेज्जे दीव-समुद्दे विकुव्वंति । (श० ३।२२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२. एवं माहिंदे णवरं एतलुं, जाझा जंबूद्वीप च्यार।
ब्रह्मलोक पिण इमज छै, णवरं अठ जंबूद्वीप उदार॥

४३. इमहिज लंतक णवरं एतलुं, जाझा अठ जंबू विचार।
सोलै जंबू महाशुक्र छै, जाझा सोलै सहस्सार॥

४४. एवं पाणत णवरं इतो, केवल जंबू बत्तीस।
एवं अच्चू णवरं इतो, जाझा बत्तीस जगीस॥
४५. तिमहिज अन्य विस्तार छै, विमान सामानिक में फेर।
दक्षिण दूजा गोतम पूछिया, उत्तर वायुभूती हेर॥
४६. होजी स्वामी ! बे वार सेवं भंते ! कही, वायुभूति अणगार।
होजी स्वामी ! वीर प्रतै वंदी नमी, यावत् विचरै ध्यान मझार॥

४७. हां रे सुगुणा ! भगवंत श्री महावीर जी, अन्य दिवस तिणवार।
हां रे सुगुणा ! सोया नां नंदनवन थी तदा, जनपद देश विहार॥

४८. अंक इकतीस नों देश ए, गुणपचासमी ए ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' हरष विशाल॥

४२. एवं माहिंदे वि, नवरं—सातिरेगे चत्तारि केवलकप्पे जंबुद्दीवे दीवे।
एवं बंभलोए वि, नवरं—अट्ठ केवलकप्पे।

४३. एवं लंतए वि, नवरं—सातिरेगे अट्ठ केवलकप्पे। महासुक्के सोलस केवलकप्पे। सहस्सारे सातिरेगे सोलस।

४४. एवं पाणए वि, नवरं- बत्तीसं केवलकप्पे। एवं अच्चुए वि, नवरं- सातिरेगे बत्तीसं केवलकप्पे जंबुद्दीवे दीवे।
४५. अण्णं तं चेव। (श० ३।२३)

४६. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति तच्चे सोयमे वायुभूई अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ जाव विहरइ।
(श० ३।२४)

४७. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ सोयाओ नयरीओ नंदणाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ। (श० ३।२५)

ढाल : ५०

दूहा

१. इंद्रां नीं वैक्रिय शक्ति, आखी पूर्वे ताय।
ईशानेंद्र वैक्रिय हिवै, तेजू लेस कहाय॥

२. तिण कालै नैं तिण समय, राजगृह महावीर।
जाव परषदा वीर नी, सेव करै गुणहीर॥
३. तिण कालै नैं तिण समय, कल्प इशाणे ईश।
सूलपाणी वाहन वृषभ, उत्तरड्ढ लोक-अधीश॥
४. लख अठवीस विमाणपति, वस्त्र निमल रज-रहित।
यथास्थानके ओपता, माला मुकुट सहित॥
५. सुवर्ण नवो मनोहरं, वलि चित्राम सहीत।
चपल इसा कुंडल तणीं, रेख गलस्थल रीत॥
६. यावत् दसुं दिशि नैं विषै, अति उद्योत करंत।
प्रभा तेज करि दीपतो, कल्प ईशाणै हुंत॥
७. ईशाण अवतंसक भलो, प्रवर विमाणं न्हाल।
रायप्रश्नेणी मांहि जिम, तिम कहिवो सुविशाल॥

१. इन्द्राणां वैक्रियशक्तिप्ररूपणप्रक्रमादीशानेन्द्रेण प्रकाशितस्यात्मीयस्य वैक्रियरूपकरणसामर्थ्यस्य तेजोलेश्यासामर्थ्यस्य चोपदर्शनायेदमाह— (वृ०-प० १६०)
२. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नगरे होत्था—वण्णओ जाव परिसा पज्जुवासइ। (श० ३।२६)
३. तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविंदे देवराया सूलपाणी वसभवाहणे उत्तरड्ढलोगाहिवई
४. अट्ठावीसविमाणावाससयसहस्साहिवई अरयंबरवत्थधरे आलइयमालमउडे
५. नवहेमचारुचित्तचंचलकुंडलविलिहिज्जमाणगंडे
६. जाव दस दिसाओ उज्जोवेमाणे पभासेमाणे ईसाणे कप्पे
७. ईसाणवडेंसए विमाणे जहेव रायप्पसेणइज्जे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. जाव प्रभु पै आयनैं, नाटक पाड़्यो ताय।
जाव आयो जिह दिशि थकी, तिणहिज दिशि प्रति जाय।।

९. हे भदंत ! इम वच कही, वीर प्रभु नैं ताम।
नमस्कार वंदना करी, पूछै गोतम स्वाम।।

१०. *अहो आश्चर्य हे भगवान ! महर्द्धिक ईशाण सुर राजान।
प्रभुजी ! तेहनी दिव्य ऋद्धि, किहां गई क्यां पैठी समृद्धि ?

११. जिन भाखै शरीर मझार, प्रवेश करंती सार।
किण अर्थे प्रभु इम कहियै, तनु मांहि प्रवेशज लहियै ?

१२. तब भाखै श्री जिनराय, यथानाम दृष्टांत कहाय।
शिखर नैं आकार जे शाल, कूटाकार ते न्हाल।।
१३. विहुं दिशि लिप्त ते छोहै, गुप्त द्वार तसु सोहै।
अतही वायु करनैं रहीत, निरवात गंभीर संगीत।।
१४ ते कूट आकारे शाल, इहां जाव शब्द है विचाल।
कूटाकार शाल नों दृष्टंत, भणवो कहिवो मतिवंत।।
१५. हिवै गोतमजी धर खंत, इण रो पाछल भव पूछंत।
प्रभु ! ईशाण देवेंद्र जाण, देवता नों राजा पिछाण।।
१६. तिका दिव्य देव तणी ऋद्धि, दिव्य सुर द्युति कांति समृद्धि।
दिव्य देव तणों जे प्रभाव, किण हेतु करी लाधो साव ?
१७. किम पाम्यो ए ऋद्धि किम आवी, कुण हुंतो पूर्व भव भावी ?
अथवा हुंतो एहनो स्यूं नाम, स्यूं गोत्र हुंतो अभिराम ?
१८. कुण ग्राम नगर विषै वास, यावत् सन्निवेस विषै तास ?
किसूं दीधो सुपात्र दान ? असणादिक चिउं विध जान ?

१९. किसूं भोगवियो अंत-प्रांत ? कीधो तप शुभ ध्यानादि शांत।
किसूं समाचरयो जिनराज, जीव नीं जयणादिक स्हाज ?

२०. कुण तथारूप जे जोग्य, श्रमण तपस्वी उत्तर गुण प्रयोग्य।
माहण ते मूल गुण करि सहीत, एहवा मुनि नैं समीप सुरीत।।
२१. आचरिवा जोग्य इण पिण सार, धर्म-वचन सांभल हियै धार।
जेहथी ईशाण देवेंद्र जान, पायो देव नी ऋद्धि प्रधान ?

२२. तब भाखै श्री जिनराय, पूर्व भव ईशाणेंद्र नुं ताय।
इम निश्चै गोयम ! सार, तिण काले तिण समय विचार।।

*लय—एकण रै दे रे चपेटी

८. जाव...दिव्वं बत्तीसइबद्धं नट्टविहिं उवदंसित्ता जाव जामेव दिसिं पाउब्भूए, तामेव दिसिं पडिगए।
(श० ३।२७)

९. भंतेति ! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वदासी—

१०. अहो णं भंते ! ईसाणे देविंदे देवराया महिड्ढीए जाव महाणुभागे। ईसाणस्स णं भंते ! सा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुती दिव्वे देवाणुभागे कहिं गते ? कहिं अणुपविट्ठे ?

११. गोयमा ! सरीरं गते, सरीरं अणुपविट्ठे। (श० ३।२८)
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—सरीरं गते ? सरीरं अणुपविट्ठे ?

१२. गोयमा ! से जहानामए कूडागारसाला सिया
कूटाकारेण—शिखराकृत्योपलक्षिता (वृ०-प० १६३)

१३. दुहओ लित्ता गुत्ता गुत्तदुवारा णिवाया णिवायगंभीरा।

१४. तीसे णं कूडागारसालदिट्ठंतो भाणियव्वो।
(श० ३।२९)

१५, १६. ईसाणेणं भंते ! देविंदेणं देवरण्णा सा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुती दिव्वे देवाणुभागे किण्णा लद्धे ?

१७. किण्णा पत्ते ? किण्णा अभिसमण्णागए ? के वा एस आसि पुव्वभवे ? किंनामए वा ? किंगोत्ते वा ?

१८. कयरंसि वा गामंसि वा नगरंसि वा जाव सण्णिवेसंसि वा ? किं वा दच्चा ?
दत्वाऽशनादि (वृ०-प० १६३)

१९. किं वा भोच्चा ? किं वा किच्चा ? किं वा समायरित्ता ?
भुक्त्वाऽन्नप्रान्तादि, कृत्वा तपः शुभध्यानादि, समाचर्य च—प्रत्युपेक्षाप्रमार्जनादि (वृ०-प० १६३)

२०. कस्स वा तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए

२१. एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा निसम्म ? जं णं ईसाणेणं देविंदेणं देवरण्णा सा दिव्वा देविड्ढी... लद्धे...? (श० ३।३०)

२२. एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. एहिज जंबूद्वीप भरतखेत, तामलिप्ति नगरी सुहेत ।
तामली नामै मोरिज-पूत, गाथापति हुंतो वर सूत ।।

२४. ऋद्धिवंत दीप्तवंत देख, यावत् बहु जन नैं सुविशेख ।
कोइ पराभवी सकै नांय, घणु ऋद्धिवंत माटै कहिवाय ।।
२५. ते तामली मोरिज-पुत्र नैं सोय, एकदा मध्य-रात्रि में जोय ।
कुटंब चिंतवणा करतां ताय, ऊपनां एहवा अध्यवसाय ।।

२६. म्हारै छै पूर्व भव में कीधा, पुराणा दानादिक प्रसीधा ।
भला पराक्रम शुभ जाण, अनर्थ-उपशम हेतु कल्याण ।।

२७. एहवा कीधा कर्म पुन्य हेतु, तेहनां कल्याण फल हूं लभेतु ।
जेणे दानादिक करि जोय, हूं तो हुओ ऋद्धिवंत सोय ।।
२८. अणघडिया सुवर्ण कर ताय, हूं तो वाध्यो अधिक सवाय ।
बध्यो घट ते सुवर्ण करि शेष, धन धान्य करी वध्यो देख ।।
२९. पुत्र करी बध्यो अधिकाय, पशु गाय प्रमुख करि ताय ।
पूर्व कह्यो तेहिज अर्थ लहियै, सुविशेष थकी हिव कहियै ।।
३०. विस्तीर्ण धन गणिमादि जाण, कनक सुवर्ण ते पहिछाण ।
रत्न कर्केतनादिक जोय, मणि चंद्रकांतादि होय ।।

३१. मुक्ताफल दक्षिणावर्त्त-शंख, शिला प्रवाल ते विद्रुमंक ।
अन्य कहै शिला राजपट्ट, प्रवाल विद्रुम सुवट्ट ।।

३२. रक्त-रत्न ते पद्मरागादि, विद्यमान सार द्रव्य साधि ।
तेणे करी घणुं घणुं ताय, हूं तो बध्यो अछू अधिकाय ।।

३३. ते हूं पुरा पुराण सुचरित्त, जाव करचा कर्म परिणित्त ।
विचरूं छूं एकांते क्षय करतो, नवा शुभ कर्म अणआदरतो ।।

३४. जिहां लगै सुवर्ण करि सोय, वृद्धि पाम्यो छूं अवलोय ।
जाव पूर्वे कही वस्तु ताय, तिण सूं घणुं घणुं वृद्धि पाय ।।
३५. मुझ नैं ज्यां लग मित्र सखाई, न्याती सजातिया कहिवाई ।
नियग ते इक गोत्र नां ताय, संबंधि मातृ-पक्ष कहिवाय ।।

२३. इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे तामलित्ती नामं नयरी होत्था—वण्णओ । (श० ३।३१)
तत्थ णं तामलित्तीए नयरीए तामली नामं मोरियपुत्ते गाहावई होत्था---
२४. अड्ढे दित्ते जाव बहुजणस्स अपरिभूए यावि होत्था । (श० ३।३२)
२५. तए णं तस्स मोरियपुत्तस्स तामलिस्स गाहावइस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुटुंब-जागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—
२६. अत्थि ता मे पुरा पोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरक्कंताणं सुभाणं कल्लाणाणं
'सुचिण्णाणं' ति दानादिसुचरित रूपाणां,'सुपरक्कंताणं' ति सुष्ठु पराक्रान्तं...सुभानामर्थावहत्वेन कल्याणा-नामनर्थोपशमहेतुत्वेनेति (वृ०-प० १६३)
२७. कडाणं कम्माणं कल्लाणफलवित्तिविसेसे, जेणाहं

२८. हिरण्णेणं वड्ढामि सुवण्णेणं वड्ढामि, धणेणं वड्ढामि, धण्णेणं वड्ढामि,

२९. पुत्तेहिं वड्ढामि, पसूहिं वड्ढामि,

३०. विपुलधण-कणग-रयण-मणि
इह धनं—गणिमादि रत्नानि—कर्केतनादीनि मणयः—चन्द्रकान्ताद्याः । (वृ०-प० १६३)
३१. मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-
शिलाप्रवालानि—विद्रुमाणि, अन्येत्वाहुः—शिला-राजपट्टादिरूपाः प्रवालं—विद्रुमम् । (वृ०-प० १६३)
३२. रत्तरयण-संतसारसावएज्जेणं अतीव-अतीव अभि-वड्ढामि,
रक्तरत्नानि---पद्मरागादीनि, एतद्रूपं यत् 'संत' त्ति विद्यमानं सारं—प्रधानं । (वृ०-प० १६३)
३३. तं किं णं अहं पुरा पोराणाणं सुचिण्णाणं जाव कडाणं कम्माणं एगंतसो खयं उवेहमाणे विहरामि ?
नवानां शुभकर्म्मणामनुपार्जनेन । (वृ०-प० १६३)
३४. तं जावताव अहं हिरण्णेणं वड्ढामि जाव अतीव-अतीव अभिवड्ढामि,
३५. जावं च मे मित्त-नाति-नियग-सयण-संबंधि-
तत्र मित्राणि—सुहृदो ज्ञातयः---सजातीयाः निजका—गोत्रजाः सम्बन्धिनो—मातृपक्षीयाः । (वृ०-प० १६३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६. अथवा संबंधी श्वसुर कुलीन, परिजन ते दासादि स्व आधीन ।
सहु आदर दे अधिकाय, स्वामीपणैं जाणैं छै ताय ।।

३७. देवैं सत्कार नैं सनमान, कल्याणकारी मंगलीक जान ।
देवता नी परै मुझ मान, वारू विनय करी सुविहान ।।

३८. चित्त अह्लादकारी विचार, म्हारी सेव करै इहवार ।
मुझ नैं त्यां लग श्रेय छै सोय, काले प्रगट प्रभात सुहोय ।।

३९. जाव जाज्वलमान समाज, रवि ऊगते करिवूं ए काज ।
स्वयमेव पोतेईज सोय, काष्ठ नों पात्रो करिनैं जोय ।।

४०. विस्तीर्ण चिउं आहार रंधाय, मित्र न्याती निजग कहिवाय ।
स्वजन संबंधी परिजन ताय, यां सगलां नैं बोलाय ।।

४१. ते मित्र न्याती प्रमुख परिजन नैं, विस्तीर्ण चिहुं आहारज करनैं ।
वस्त्र गंध माला अलंकार, सत्कार सन्मान नैं सार ।।

४२. मित्र न्याती प्रमुख आगै सार, जेष्ठ सुत नै स्थापी घर भार ।
त्यां नैं पूछी काष्ठपात्र लेय, वलि मस्तक मुंड करेय ।।

४३. प्रव्रज्या प्राणाम सुहाय, मुझ आदरवी श्रेय ताय ।
आदरियै छतैं तेह पवज्जा, करिवूं एहवूं अभिग्रह सकज्जा ।।

४४. कल्पै जावजीव लग जोय, छठ-छठ निरंतर सोय ।
सूर्य साहमी ऊंची बाहु स्थाप, आतापन - भूमि आताप ।।

४५. छठ पारणैं हरष धरी नैं, आतापन-भूमिका थी वली नैं ।
काष्ठपात्र ग्रही नैं ताहि, तामलिप्ती नगरी मांहि ।।

४६. ऊंच नीच मझम कुल मांय, बहु घर भिख्या अटन कराय ।
शुद्ध उदन कूर इक अन्न, लेवूं पिण शाकादिक तजन्न ।।

४७. ते कूर प्रतैं एकवीस वार, पाणी करि पखाली ते आहार ।
तठा पछै आहार करिवूं मोय, इम चिंतवणा करी सोय ।।

४८ दूजै दिन प्रगटी प्रभा जान, जाव सूर्य उदय पिछान ।
पोते काष्ठपात्र करी ताय, विस्तीर्ण असणादिक रंधाय ।।

४९. कीधा स्नान अनै वलिकर्म, कीधा कोतुक तिलकादि मर्म ।
ए तो लौकिक हेतैं पिछान, तिम अन्य स्थान पिण जान ।।

५०. दही द्रोव अक्षत मंगलीक, दुःस्वप्न टालण तहतीक ।
वलि पहिरया वस्त्र प्रधान, मोल मूंहघा नैं हलका जान ।।

५१. एहवा आभरण करी अमीर, अलंकृत कियो है शरीर ।
भोजन-मंडप भोजन-वेला, सुख-आसन बैठा समेला ।।

३६. परियणो आढाति परियाणाइ
श्वसुरकुलीना वा परिजनो—दासादिः । 'परिजाणइ' त्ति परिजानाति स्वामितया । (वृ०-प०१६३)

३७. सक्कारेइ सम्माणेइ कल्लाणं मंगलं देवयं विणएणं

३८. चेइयं पज्जुवासइ, तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए

३९. जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते सयमेव दारुमयं पडिग्गहगं करेत्ता

४०. विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेत्ता, मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं आमंतेत्ता,

४१. तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं विउलेणं असण-पाण-खाइम साइमेणं वत्थ-गंध-मल्लालंकारेण य सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता,

४२. तस्सेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स पुरओ जेट्ठपुत्तं कुटुंबे ठावेत्ता तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि—परियणं जेट्ठपुत्तं च आपुच्छित्ता, सयमेव दारुमयं पडिग्गहगं गहाय मुंडे भवित्ता,

४३. पाणामाए पव्वज्जाए पव्वइत्तए । पव्वइए वि य णं समाणे इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हिस्सामि

४४. कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स विहरित्तए,

४५. छट्ठस्स वि य णं पारणयंसि आयावणभूमीओ पच्चोरुभित्ता सयमेव दारुमयं पडिग्गहगं गहाय तामलित्तीए नयरीए

४६. उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्ता सुद्धोदणं पडिग्गाहेत्ता

४७. तं तिसत्तक्खुत्तो उदएणं पक्खालेत्ता तओ पच्छा आहारं आहारित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ,

४८. कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्मिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते सयमेव दारुमयं पडिग्गहगं करेइ, करेत्ता विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेइ,

४९. तओ पच्छा ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउय-

५०. ५१. मंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर परिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे भोयणवेलाए भोयणमंडवंसि सुहासणवरगए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५२. मित्र ज्याती निजक नैं स्वजन्न, संबंधी परिजन सुमन्न।
तेह साथ विपुल असणादि, आस्वादतो ईषत् स्वादि ।।

५३. विसादेमाणे स्वाद विशेख, परिभाए ते देवो पेख।
परिभुंजेमाणे भोगवतो, एह रीत करी नैं विचरतो ।।

५४ इम जीमी नैं तृप्ति होय, चलू करी चोखो थयो सोय।
परम शुचिभूत इम थाय, मित्र जाव परिजन नैं ताय ।।

५५. विस्तीरण पुष्प वस्त्र सुगंध, मल्ल अलंकार करि संध।
इम सर्व भणी सत्कार, वलि सन्मानी नैं सार ।।

५६. तेज मित्र ज्यातीला जाण, जाव परिजन आगै पिछाण।
जेष्ठ-पुत्र प्रतै तिणवार, थापै कुटंब विषै तसु भार ।।

५७. मित्र ज्याती जाव परिजन नैं, वस्त्र गंध माला अलंकर नैं।
देइ सन्मान नैं सत्कार, जेष्ठ-सुत थापी कुटंब अधिकार ।।

५८. मित्र ज्याती जाव परिजन नैं, वलि पूछी जेष्ठ-सुतन नैं।
मुंड थइ प्रव्रज्या प्राणाम लेवै एहवो अभिग्रह ताम ।।

५९. कल्पै जावजीव मुझ सोय, छठ-छठ निरंतर जोय।
जाव शुद्धोदन इकवीस वार, जल सूं धोई करिवूं आहार ।।

६०. एहवो अभिग्रह जावजीव धार, छठ-छठ निरंतर सार।
दोनूं वाहू प्रतै ऊंची थाप, लेवै सूर्य साहमी आताप ।।

६१. छठ पारणा नैं विषै ताय, आतापन-भूमि थी पाछो आय।
काष्ठपात्र ग्रही संचरतो, तामलिप्ती तिहुं कुल फिरतो ।।

६२. घणां घर सीं भिक्षा सुध अन्न, कूर ग्रहै शाकादि तजन्न।
धोई उदक सूं इकवीस वार, तठा पछै भोगवै ते आहार ।।

६३. तोजै शतक पहिला नो देश, ढाल पचासमी सुविशेष।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय, 'जय' संपति तास पसाय ।।

५२. तेणं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणेणं सद्धिं तं विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं आसादेमाणे 'आसाएमाणे' त्ति ईषत्स्वादयन्। (वृ०-प०१६३)

५३. वीसादेमाणे परिभाएमाणे परिभुंजेमाणे विहरइ।
'वीसाएमाणे' त्ति विशेषेण स्वादयन् स्वाद्यविशेषं 'परिभावेमाणे' त्ति ददत्। (वृ०-प० १६३)

५४. जिमियभुत्तुत्तरागए वि य णं समाणे आयंते चोक्खे परमसुइब्भूए तं मित्त जाव परियणं

५५. विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-गंधमल्लालंकारेण य सक्कारेइ सम्माणेइ,

५६. तस्सेव मित्त-नाइ जाव परियणस्स पुरओ जेट्ठपुत्तं कुटुंबे ठावेइ,

५८. तं मित्त-नाइ जाव परियणं जेट्ठपुत्तं च आपुच्छइ, आपुच्छित्ता मुंडे भवित्ता पाणामाए पव्वज्जाए पव्वइए। पव्वइए वि य णं समाणे इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ—

५९. कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं जाव आहारित्तए

६०. इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हित्ता जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अनिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे विहरइ।

६१, ६२. छट्ठस्स वि य णं पारणयंसि आयावणभूमीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता सयमेव दारुमयं पडिग्गहगं गहाय तामलित्तीए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडइ,
अडित्ता सुद्धोयणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत्ता तिसत्तक्खुत्तो उदएणं पक्खालेइ, पक्खालेत्ता तओ पच्छा आहारं आहारेइ। (श० ३।३३)
'सुद्धोयणं' ति सूपशाकादिवर्जितं कूरं 'तिसत्तखुत्तो' त्ति त्रिसप्तकृत्वः एकविंशतिवारानित्यर्थः। (वृ०-प० १६३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ५१

दूहा

१. किण अर्थे प्रभु ! इम कह्यो, प्रव्रज्या दीक्षा प्राणाम।
जिन कहै प्राणाम प्रव्रज्या ते, लीधै छतेज ताम॥

२. जे काले जे देश में, इंद्र देख स्वयमेव।
खंधक ते कार्तिक अछै, रुद्र तिको महादेव॥

३. व्यंतर विशेष शिव प्रतै, तथा रुद्र साकार।
तेहनैं शिव कहिवूं इहां, वली वेसमण सार॥

४. प्रशांत रूपे चंडिका, आर्या कहियै ताय।
रौद्र रूप जे चंडिका, कोट्टकिया कहिवाय॥

५. राजा यावत् सार्थवाह, काक स्वान चंडाल।
उच्च पूज्य प्रति देख नैं, अधिक प्रणाम विशाल॥

६. नीच अपूज्य निहाल नैं, अल्प प्रणाम करंत।
जे जिम देखै तिम तसुं, करै प्रणाम नमंत॥

७. तिण अर्थे करि गोयमा ! इम कहियै प्राणाम।
जाव प्रव्रज्या एहवूं, अर्थ पाठ नों ताम॥

*देव जिनेंद्र कहै गोयम नैं। (ध्रुपदं)

८. तामली मोर्यपुत्र तिण अवसर, तप वांछा रहित उदार।
विस्तीर्ण बहु दिवस ते माटै, प्रयत्न गुरु आज्ञा धार॥

९. बहुमाने करि नैं ते संग्रह्यूं, एहवा बाल तपे करि तामो।
निरसपणां थी ते तन सूको, भूख तणैं वस आमो॥

१०. जाव नाड़ी नों समूह व्याप्त ते, एहवो दुर्बल थयो सोयो।
तामली बाल-तपस्वी नैं अन्यदा, मध्य रात्रे अवलोयो॥

११. शरीरादिक नुं अनित्य चिंतविवूं, ते अनित्य चिंतवणा करतां।
एहवा अध्यवसाय जाव ऊपनां, मन में विचारणा धरतां॥

१२. ए म्हैं उदार विस्तीर्ण तप करि, जाव दिन-दिन तप वृद्धि।
चढतै परिणामै तप उत्तम, महानुभाव करि सिद्धि॥

१. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—पाणामा पव्वज्जा ? गोयमा ! पाणामाए णं पव्वज्जाए पव्वइए समाणे

२. जं जत्थ पासइ—इंदं वा खंदं वा रुद्दं वा
स्कन्दं वा—कार्त्तिकेयं 'रुद्दं' वा महादेवं। (वृ०-प०१६४)

३. सिवं वा वेसमणं वा
'सिवं व' त्ति व्यन्तरविशेषं, आकारविशेषो दृश्यः, आकारविशेषधरं रुद्रमेव। (वृ०-प० १६४)

४. अज्जं वा कोट्टकिरियं वा
आर्यां प्रशान्तरूपां चण्डिकां 'कोट्टकिरियं व' त्ति चण्डिकामेव रौद्ररूपां। (वृ०-प० १६४)

५. रायं वा जाव सत्थवाहं वा काकं वा साणं वा पाणं वा—
उच्चं पासइ उच्चं पणामं करेइ,
'उच्चं' ति पूज्यं 'उच्चं पणमति' अतिशयेन प्रणमतीत्यर्थः। (वृ०-प० १६४)

६. नीयं पासइ नीयं पणामं करेइ, जं जहा पासइ तस्स तहा पणामं करेइ।
'नीयं' ति अपूज्यं 'नीयं पणमति' अनत्यर्थं प्रणमतीत्यर्थः। (वृ०-प० १६४)

७. से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ पाणामा पव्वज्जा। (श० ३।३४)

८. तए णं से तामली मोरियपुत्ते तेणं ओरालेणं विपुलेणं पयत्तेणं

९. पग्गहिएणं बालतवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे

१०. जाव धमणिसंतए जाए यावि होत्था। (श० ३।३५)
तए णं तस्स तामलिस्स बालतवस्सिस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि

११. अणिच्चजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—

१२. एवं खलु अहं इमेणं ओरालेणं विपुलेणं जाव उदग्गेणं उदत्तेणं उत्तमेणं महाणुभागेणं

*लय—पर नारी नो संग न कीजै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. एहवा तप करि सूखो भूखो, जाव चर्म वींट्यां नाडो।
छै मुझ उठाण कम्म बल वीर्य, यावत् पराक्रम पुरुषाकारो ।।

१४. तावत श्रेय अछै मुझ कल्पे, जाव ज्वलंत सूर्य उदयेहो।
तामलिप्त नगरी रै मांहि, देखी बोलाव्या तेहो ।।

१५. अथवा पाखण्ड मांहि रह्या जे, गृह में अथवा रहायो।
गृहस्थ थकां हुंता मुझ मित्र, दीक्षा लियां पछै हुवा ताह्यो ।।

१६. दीक्षा ना पर्याय करी सरिखा, साथ भण्या सुखदायो।
ते सहु नैं पूछी प्रभाते, तामली बीचै थइ ताह्यो ।।

१७. पादुका कुंडिका प्रमुख उपकरण, काष्ठपात्र वलि जाणो।
ए सहु नैं एकांत न्हाखी नैं, तामलिप्ति थी ईशाणो ।।

१८. निवर्त्तन क्षेत्र-मान-विशेषे, तथा निज शरीर प्रमाणो।
मंडल आलेखी करवी संलेखना, भात-पाणी नों पचखाणो ।।

१९. अणसण पाओपगमन करीनैं, मरण वांछा अणकरतो।
मुझ नैं विचरिवूं श्रेय इसी विध, रात्रि चिंतवणा धरतो ।।

२०. एहवो विचार करी प्रभाते, जाव सहु नैं पूछी नैं।
सहु उपकरण एकांत न्हाखी नैं, जाव पादोपगमन करीनैं ।।

२१. अंक इगतीस नुं देश कह्यो ए, एकावनमी ढालो।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय प्रसादे, 'जय-जश' हरष विशालो ।।

१३. तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे जाव धमणिसंतए जाए, तं अत्थि जा मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे

१४. तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते तामलित्तीए नगरीए दिट्ठाभट्ठे य
'दिट्ठा भट्ठे य' त्ति दृष्टाभाषितान्। (वृ०-प० १६७)

१५. पासंडत्थे य गिहत्थे य पुव्वसंगतिए य परियायसंगतिए य
'पुव्वसंगतिए' त्ति पूर्वसंगतिकान् गृहस्थत्वे परिचितान्। (वृ०-प० १६७)

१६. आपुच्छित्ता तामलित्तीए नगरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छित्ता

१७. पादुग-कुंडिय-मादीयं उवगरणं दारुमयं च पडिग्गहगं एगंते एडित्ता तामलित्तीए नगरीए उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए

१८. णियत्तणिय-मंडलं आलिहित्ता संलेहणाझूसणा झूसियस्स भत्तपाणपडियाइक्खियस्स
निवर्त्तनं—क्षेत्रमानविशेषस्तत्परिमाणं निवर्त्तनिकं, निजतनुप्रमाणमित्यन्ये। (वृ०-प० १६७)

१९. पाओवगयस्स कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ,

२०. संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जाव आपुच्छइ आपुच्छित्ता तामलित्तीए एगंते एडेइ जाव भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगमणं निवण्णे।
(श० ३।३६)

ढाल : ५२

दूहा

१. तिण काले नैं तिण समय, बलिचंचा रजधानि।
थइ इंद्र-रहित पुरोहित-रहित, नहि शांति कर्मकर जानि ।।

२. बलिचंचा नां तिह समय, वसिवा वाला सोय।
असुर देव देवी घणां, अवधे तामली जोय ।।

१. तेणं कालेणं तेणं समएणं बलिचंचा रायहाणी अणिंदा अपुरोहिया या वि होत्था। (श० ३।३७)
'अपुरोहिय' त्ति शांतिकर्मकारिरहिता।(वृ०-प० १६७)

२. तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य तामलिं बालतवस्सिं ओहिणा आभोएंति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. अण्णमण्ण तेडी इम कहै, इम निश्चै संगीत।
बलिचंचा रजधान ते, इंद्र पुरोहित रहीत॥

४. अम्है देवानुप्रिया! अछां, इंद्र तणैं वस साज।
इंद्र तणैज अधिष्ठिता, इंद्र तणैं वस काज॥

५. ते भणी देवानुप्रिया! एह तामली बाल।
तामलिप्ति रै बाहिरै, ईशाण-कूण विचाल॥

६. स्व तनु प्रमाण मंडलो, आलेखी नैं सार।
भक्त-पाण पचखी करी, पादोपगमन उदार॥

७. ते कारण श्रेय अम्ह भणी, तामली प्रतै विचार।
निदान बलिचंचा तणो, करावियै इह वार॥

८. अन्योऽन्य ए अर्थ प्रतै, अंगीकार करी भेव।
बलिचंचा मध्य-मध्य थइ, नीकलिया ते देव॥

९. रुचकेंद्र उत्पात-गिरि, तिर्यग् लोक मग ख्यात।
तिहां आवै आवी करी, करि वैक्रिय समुद्घात॥

१०. जाव उत्तर-वेकै करी, विकुर्वे अन्य रूप।
उत्कृष्ट उत्कर्ष गति करी, आकुल त्वरित तद्रूप॥

११. काया चपल चपला कही, चंड रोद्र गति जाण।
जयणा अन्य गति जीपवै, छेक निपुण गति आण॥

१२. सींह गति सम अरु गति उद्धतया[1] दर्प्प-सहीत।
दिव्य प्रधान गती करी, आवै तन मन प्रीत॥

१३. तिरछा द्वीप समुद्र ते, असंख्यात मध्य होय।
जंबूद्वीप जिहां अछै, जिहां भरत अवलोय॥

१४. जिहां तामलिप्ती अछै, जिहां तामली जेह।
मोरिजपुत्र तिहां सहु, आव्या छै धर नेह॥

३. अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया! बलिचंचा रायहाणी अणिंदा अपुरोहिया,

४. अम्हे य णं देवाणुप्पिया! इंदाहीणा, इंदाहिट्ठिया, इंदाहीणकज्जा

५. अयं च णं देवाणुप्पिया! तामली बालतवस्सी तामलित्तीए नगरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभागे

६. नियत्तणिय-मंडलं आलिहित्ता संलेहणाझूसणाझूसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगमणं निवण्णे,

७. तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं तामलिं बालतवस्सिं बलिचंचाए रायहाणीए ठितिपकप्पं पकरावेत्तए त्ति कट्टु

८. अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता बलिचंचाए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति,

९. जेणेव रुयगिंदे उप्पायपव्वए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णंति,

१०. जाव उत्तरवेउव्वियाइं रूवाइं विकुव्वंति, विकुव्वित्ता ताए उक्किट्ठाए तुरियाए
त्वरितया' आकुलतया। (वृ०-प० १६७)

११. चवलाए चंडाए जइणाए छेयाए
'चपलया' कायचापलोपेतया 'चण्डया' रौद्रया तथाविधोत्कर्षयोगेन 'जयिन्या' गत्यन्तरजेतृत्वात् 'छेकया' निपुणया उपायप्रवृत्तितः। (वृ०-प० १६७)

१२. सीहाए सिग्घाए उद्धुयाए दिव्वाए देवगइए
'सिंहया' सिंहगतिसमानया श्रमाभावेन 'शीघ्रया' वेगवत्या 'दिव्यया' प्रधानया उद्धतया वा सदर्प्पया।
(वृ०-प० १६७)

१३. तिरियं असंखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणा-वीईवयमाणा जेणेव जंबुद्दीवे दीवे जेणेव भारहे वासे

१४. जेणेव तामलित्ती नगरी जेणेव तामली मोरियपुत्ते तेणेव उवागच्छंति,

---

१. अंगसुत्ताणि भाग २ श० ३।३८ में देवों की गति के साथ अनेक विशेषण पद हैं। उनमें एक पद है उद्धूयाए। वृत्तिकार अभयदेव सूरि ने इस पद की व्याख्या करते हुए लिखा है—'उद्धूतया' वस्त्रादीनामुद्धूतत्वेन, उद्धतया वा सदर्प्पया। (वृ० प० १६७) जयाचार्य ने भगवती की जोड़ में वैकल्पिक पाठ को स्वीकार कर उसी का प्रयोग किया है। संभव है, उनके पास जो आदर्श था उसमें केवल 'उद्धयाए' पाठ रहा होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*अहो तापस स्वामी ! म्हारी अरज सुणो अंतरजामी ! (ध्रुपदं)

१५. तामली बाल तपस्वी रे जानो, रह्या ऊपरे चिउं दिशि स्थानो।
दिव्य सुर ऋद्धि दिव्य सुर कांति, दिव्य सुर अनुभाव सुशांति।।

१६. दिव्य मनहर वर प्रधानो, नाटक बत्तीस विध पहिछानो।
कह्या रायप्रश्नेणी मझारो, तिम देखाडै विविध प्रकारो।।

१७. तामली बाल-तपस्वी नैं तेही, तीन वार प्रदक्षिण देई।
करी वंदना नै नमस्कारो, विनय सहित बोलै तिणवारो।।

१८. अहो देवानुप्रिया ! सुण प्यारा, अम्हे बलिचंचा नां रहिणहारा।
घणां असुरकुमार सुजाणी, ए तो देव देवी पहिछाणी।।

१९. अहो देवानुप्रिय ! तुझ तामो, म्है तो वंदां करां गुणग्रामो।
नमस्कार करां सिर नामी, जाव सेव करां सुख-धामी।।

२०. अहो देवानुप्रिया ! अम्हारी, राजधानी बलिचंचा सारी।
थइ इंद्र-रहित इहवारी, नहीं पुरोहित शांति-कर्मकारी।।

२१. म्हारो इंद्र हुंतो ते चव्यो तासो, तिण सूं हुआ अत्यंत उदासो।
अम्है इंद्र तणां छां अधीनो, वलि इंद्र अधिष्ठित चीनो।।

२२. ए तो इंद्र अधिष्ठित सारा, स्वामी सर्व कार्य छै म्हारा।
ते इंद्र विना करां केमो, तिण सूं सर्व दुखी थया एमो।।

२३. तिण सूं अर्ज करां म्है तुम्हनै, आप आदर दीजै अम्ह नैं।
बलिचंचा राजधानी, करो अंगीकार दिल आनी।।

२४. वलै स्वामीपणैं थे जाणो, मन मांहै समरण आणो।
प्रयोजन निश्चय कीजै, म्हारी वीनतडी मानीजै।।

२५. वलि कीजै आप नियाणो, प्रार्थना विशेष सुजाणो।
राजधानी बलिचंचा ऊपर, स्थिति-संकल्प करि मन में धर।।

२६. कृपानिधि ! कृपा कीजै, या तो अर्ज म्हारी मानीजै।
एहवो नियाणो चित धरी नैं, काल अवसर काल करी नैं।।

२७. बलिचंचा राजधानी, तिहां ऊपज-स्यो गुणखानी।
तुम्है थासो इंद्र अम्हारा, अहो प्राणवलभ सुण प्यारा।।

२८. जब आप अम्हारे संघातो, देव संबंधिया विख्यातो।
भोगविवा योग्य सुभोगो, भोगवता विचरस्यो सुजोगो।।

२९. तामली बाल-तपस्वी तिवारै, एहवा वचन सुणी नैं जिवारै।
एह अर्थ आदरै नांही, स्वामीपणों न जाणै कांई।।

१५. तामलिस्स बालतवस्सिस्स उप्पिं सपक्खिं सपडिदिसिं ठिच्चा दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवज्जुतिं दिव्वं देवाणुभागं 'सपक्खिं' ति समाः सर्वे पक्षाः—पार्श्वाः पूर्वापरदक्षिणोत्तरा यत्र स्थाने तत्सपक्षम्। (वृ०-प० १६७)

१६. दिव्वं बत्तीसतिविहं नट्टविहिं उवदंसेंति,

१७. तामलिं बालतवस्सिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेंति, करेत्ता वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

१८. एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हे बलिचंचारायहाणीवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य

१९. देवाणुप्पियं वंदामो नमंसामो जाव पज्जुवासामो।

२०. अम्हण्णं देवाणुप्पिया ! बलिचंचा रायहाणी अणिंदा अपुरोहिया,

२१, २२. अम्हे य णं देवाणुप्पिया ! इंदाहीणा इंदाहिट्ठिया इंदाहीणकज्जा,

२३. तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! बलिचंचं रायहाणिं आढाह,

२४. परियाणह, सुमरह, अट्ठं बंधह,

२५. निदाणं पकरेह, ठितिपकप्पं पकरेह,

२६. तए णं तुब्भे कालमासे कालं किच्चा

२७. बलिचंचाए रायहाणीए उववज्जिस्सह, तए णं तुब्भे अम्हं इंदा भविस्सह,

२८. तए णं तुब्भे अम्हेहिं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरिस्सह। (श० ३।३८)

२९. तए णं से तामली बालतवस्सी तेहिं बलिचंचारायहाणिवत्थव्वएहिं बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य एवं वुत्ते समाणे एयमट्ठं नो आढाइ, नो परियाणेइ,

*लय—सुण चिरताली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०. मौन धरी नैं रहीयो, इण तो नियाणो मूल न कीयो।
वले बलिचंचा ना वसवान, घणां असुर सुरा सुरी जान।।

३१. तामली मोरियपुत्र प्रतै धारो, वले बीजी वार तीजी वारो।
जीमणां पासा थी लेवै, तीन वार प्रदक्षिणा देवै।।

३२. जाव अम्है देवानुप्रिया जानी, आ तो बलिचंचा राजधानी।
आतो इंद्र विहूणी कहीजै, जाव स्थिति नो प्रकल्प करीजै।।

३३. जाव बीजी वार तीजी वारो, इम कहै थकै सुविचारो।
जाव रहै अणबोल्यो, ओ तो तामली मूल न डोल्यो।।

३४. तामली अणआदर दीधै, यां रो वांछित कार्य अणसीधै।
बहु असुर देव देवी ताह्यो, ए तो आया जिण दिशि जायो।।

३५. तामली बाल-तपस्वी रै जाणो, इण रै आई अधिक रसाणो।
तप सेती कर्म बहु तोड्या, छेहडै परिणाम अधिका जोडचा।।

३६. अंक इकतीसमां नुं देशो, ढाल बावनमी सुविशेषो।
भिक्खु भारीमाल ऋषरायो, 'जय' संपति तास पसायो।।

३०. तुसिणीए संचिट्ठइ। (श० ३।३९)
तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य

३१. तामलिं मोरियपुत्तं दोच्चं पि तच्चं पि तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेंति

३२. जाव अम्हं च णं देवाणुप्पिया! बलिचंचा रायहाणी अणिंदा जाव ठितिपकप्पं पकरेह

३३. जाव दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे एयमट्ठं नो आढाइ, नो परियाणेइ, तुसिणीए संचिट्ठइ। (श० ३।४०)

३४. तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य तामलिणा बालतवस्सिणा अणाढाइज्जमाणा अपरियाणिज्जमाणा जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया। (श० ३।४१)

ढाल : ५३

दूहा

१. तिण कालै नैं तिण समय, दूजो कल्प ईशाण।
थयो इंद्र करि रहित तब, अपुरोहित पिण जाण।।

२. तिण अवसर ते तामली, बाल-तपस्वी ताय।
साठ सहस्र वर्ष प्रतिपूर्ण, पाली नैं पर्याय।।

३. संलेखणा बे मास नीं, भक्त एक सौ बीस।
अणसण नैं छेदी करी, काल कियो सुजगीस।।

४. ईशाण कल्प ईशानावतंसक प्रवर विमाण।
उपजवानी सभा विषै, देव-सेज्या में जाण।।

५. देवदूष नैं अंतरे, आंगुल नैं पहिछाण।
असंख्यातमां भाग नीं, अवगाहन देह माण।।

६. ईशाण सुरेंद्र नो विरह, काल समय तिह वेल।
ईशाण सुरेंद्रपणै सही, ऊपजियो रंगरेल।।

७. ईशाण सुरेंद्र तिण अवसरे, ऊपजियो तत्काल।
पंच पज्जत्तीए लहचों, पज्जत्तिभाव विशाल।।

१. तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे कप्पे अणिंदे अपुरोहिए या वि होत्था। (श० ३।४२)

२. तए णं से तामली बालतवस्सी बहुपडिपुण्णाइं सट्ठिं वाससहस्साइं परियागं पाउणित्ता,

३. दो मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सवीसं भत्तसयं अणसणाए छेदित्ता कालमासे कालं किच्चा

४. ईसाणे कप्पे ईसाणवडेंसए विमाणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि

५. देवदूसंतरिए अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्तीए ओगाहणाए

६. ईसाणदेविंदविरहियकालसमयंसि ईसाणदेविंदत्ताए उववण्णे। (श० ३।४३)

७. तए णं से ईसाणे देविंदे देवराया अहुणोववण्णे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गच्छइ। (श० ३।४४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*चतुर नर ! कडुआ क्रोध विपाक । (ध्रुपदं)

८. इण अवसर बलिचंचा तणा रे, रहिण वाला देवी देव ।
तामली बाल-तपस्वी प्रतै रे, काल गयो जाणी स्वयमेव ।।

८. तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य तामलिं बालतवस्सिं कालगतं जाणित्ता,

९. ईशाण कल्पै ऊपनो, इंद्रपणैं अवलोय ।
महा शीघ्र कोप क्रोध उदय थी, रुद्र रूप प्रगट ही जोय ।।

९. ईसाणे य कप्पे देविंदत्ताए उववण्णं पासित्ता आसुरुत्ता रुट्ठा कुविया चंडिक्किया
'आसुरुत्ता:' शीघ्रं कोपविमूढबुद्धय:, 'कुविय' त्ति जातकोपोदया: 'चंडक्किय' त्ति प्रकटितरौद्ररूपा: ।
(वृ०-प० १६७)

१०. देदीप्यमान क्रोध अग्नि थी, बलिचंचा विच होय ।
उत्कृष्टी गति कर आविया, जाव भरतक्षेत्र जिहां जोय ।।

१०. मिसिमिसेमाणा बलिचंचाए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव जेणेव भारहे वासे
'मिसिमिसेमाणे' त्ति देदीप्यमाना: क्रोधज्वलनेनेति ।
(वृ०-प० १६७)

११. तामलिप्ति नगरी जिहां, तामली तणों शरीर ।
तिहां आवै डावा पग नणै, डोरडी बांधै भीर ।।

११. जेणेव तामलित्ती नयरी जेणेव तामलिस्स बालतवस्सिस्स सरीरए तेणेव उवागच्छंति, वामे पाए सुंबेण बंधंति,

१२. तीन बार थूकै मुख नैं विषै, तामली नगरी मांय ।
सिंघोडा नैं आकारे स्थान छै, तिक चउक चच्चर कहिवाय ।।
१३. चोमुख महापथ पंथ में, उरहो - परहो घींसाल ।
मोटै मोटै शब्दै करी, करै उदघोषणा तिणकाल ।।

१२, १३. तिक्खुत्तो मुहे निट्ठुहंति, तामलित्तीए नगरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु आकड्ढ-विकड्ढिं करेमाणा, महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वयासी—

१४. अहो लोको ! ए कुण किसो, पोते लिंग ग्रह्यो अपछंद ।
तामली प्रव्रज्या गुरु विना, किसो ईशाण सुर-इंद ?

१४. केस णं भो ! से तामली बालतवस्सी सयंगहियलिंगे पाणामाए पव्वज्जाए पव्वइए ? केस णं से ईसाणे कप्पे ईसाणे देविंदे देवराया ?

१५. इम कही तामली नां तनु भणी, जात्यादि दोष हीलंत ।
निंदै तास मनैं करी, वच स्वसाखे खिसंत ।।

१५. इति कट्टु तामलिस्स बालतवस्सिस्स सरीरयं हीलंति निंदंति खिसंति
'हीलेंति' त्ति जात्याद्युद्घाटनत: कुत्सन्ति, 'निंदंति' त्ति चेतसा कुत्सन्ति 'खिसंति' त्ति स्वसमक्षं वचनै: कुत्संति ।
(वृ०-प० १६७)

१६. गरहा लोक साखे करी, करै अवज्ञा अपमानंत ।
तर्जे अंगुली करि शिर भणी, हस्तादि करि ताडंत ।।

१६. गरहंति अवमण्णंति तज्जेंति तालेंति
'गरहंति' त्ति लोकसमक्षं कुत्सन्त्येव 'अवमण्णंति' त्ति अवमन्यन्ते—अवज्ञाऽऽस्पदं मन्यन्ते, 'तर्जयंति' त्ति अंगुलीशिरश्चालनेन 'तालेंति' ताडयन्ति हस्तादिना ।
(वृ०-प० १६७)

१७. करै सर्व थी कदर्थना, अतिही व्यथा उपजाय ।
घींसी एकांते न्हाखी करी, आया जिण दिशि जाय ।।

१७. परिवहेंति पव्वहेंति, आकड्ढ-विकड्ढिं करेंति, हीलेत्ता जाव आकड्ढ-विकड्ढिं करेत्ता एगंते एडेंति, एडेत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया ।
(ज० ३।४५)
'परिवहेंति' त्ति सर्वतो व्यथन्ते कदर्थयन्ति 'पव्वहंति' त्ति प्रव्यथन्ते प्रकृष्टव्यथामिवोत्पादयन्ति ।
(वृ०-प० १६७)

* लय—भविक जन ! लोभ बुरो संसार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. तिण अवसर ईशाण नां, बहु देव देवी तिणवार।
एहवो विरतंत देखनैं, कोप्या शीघ्र अपार॥

१९. ईशाण देविंद्र पैं आयनैं, बे कर जोड़ तिवार।
दश नख शिर आवर्त्त नैं, करि अंजली नमस्कार॥

२०. जय विजय एहवा शब्द थी, वधावी बोलंत।
हे स्वामी! बलिचंचा तणां, बहु देव देवी मति-भ्रंत॥

२१. काल गया जाणी आपनैं, ईशाणेंद्रपणैं पेख।
कोप्या शीघ्र ऊंतावला, जाव एकांते न्हाखी विशेख॥

२२. करी शरीर कदर्थना, आया जिण दिशि जाय।
ईशाण-इंद्र सुण कोपियो, जाव मिसमिसे थाय॥

२३. ते मेज्या ऊपर बेठौ थको, तिवलि भृकुटी निलाड।
बलिचंचा राजधानी प्रतैं, चौफेर जोवै तिवार॥

२४. बलिचंचा तिण अवसरे, थइ अंगार समान।
अग्नि नां कणिया सारिखी, भोभर सरिखी जान॥

२५. तप्त कवेलु सारिखी, अति ताती अग्नि सरीस।
एहवी बलिचंचा थई, देव प्रभावे जगीस॥

२६. अंक इकतीस नु देश ए, ए तेपनमीं ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' हरष विशाल॥

१८. तए णं ते ईसाणकप्पवासी बहवे वेमाणिया देवा य देवीओ य बलिचंचारायहाणिं वत्थव्वएहिं बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य तामलिस्स बालतवस्सिस्स सरीरयं हीलिज्जमाणं निंदिज्जमाणं जाव आकड्ढविकड्ढिं कीरमाणं पासंति पासित्ता आसुरुत्ता

१९. ...जेणेव ईसाणे देविंदे देवराया तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु

२०. जएणं विजएणं वद्धावेंति वद्धावेत्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया! बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य

२१. देवाणुप्पिए कालगए जाणित्ता ईसाणे य कप्पे इंदत्ताए उववण्णे पासेत्ता आसुरुत्ता जाव एगंते एडेंति, एडेत्ता

२२. जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया। (श० ३।४६)

तए णं ईसाणे देविंदे...एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे

२३. तत्थेव सयणिज्जवरगए तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु बलिचंचारायहाणिं अहे सपक्खिं सपडिदिसिं समभिलोएइ। (श० ३।४७)

२४. तए णं सा बलिचंचा रायहाणी...दिव्वप्पभावेणं इंगालब्भूया मुम्मुरब्भूया छारियब्भूया तत्तकवेल्लकब्भूया तत्ता समजोइब्भूया जाया यावि होत्था। (श० ३।४८)

ढाल : ५४

दूहा

१. बहु देव देवी बलिचंचा तणां, अग्नि सरीखी जान।
बलिचंचा नैं देखनैं, भय पाया असमान॥

२. कंपण लाग्या भय करी, आनंद रस सोषंत।
मन उद्वेग लह्यु घणुं, अतिही भय उपजंत॥

१. तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य तं बलिचंचं रायहाणिं इंगालब्भूयं जाव समजोइब्भूयं पासंति, पासित्ता भीआ

२. तत्था तसिआ उव्विग्गा संजायभया
'उत्त्रस्ताः' भयाज्जातोत्कम्पादिभयभावाः 'सुसिय' त्ति शुषिताऽऽनन्दरसाः। (वृ०-प० १६७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. सर्व विदिशि दिशि नै विषै, दोडै सर्व प्रकार।
अन्योऽन्य काया मझै, करै प्रवेश तिवार॥

३. सव्वओ समंता आधावेंति परिधावेंति, आधावेत्ता परिधावेत्ता अण्णमण्णस्स कायं समतुरंगेमाणा—समतुरंगेमाणा चिट्ठंति। (श० ३।४६)
'समतुरंगेमाण' त्ति समाश्लिष्यन्तः अन्योऽन्यमनुप्रविशन्त इति वृद्धाः। (वृ०-प० १६७)

४. बलिचंचा-वासी तदा, देव देवी बहु ताम।
ईशाण-सुर-इंद्र कोपियो, जाण लियो तिण ठाम॥

४. तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य ईसाणं देविंदं देवरायं परिकुवियं जाणित्ता

५. ईशाण-सुर-इंद्र नीं तदा, दिव्य देव ऋद्धि कंत।
देव प्रभाव प्रधान बलि, तेजू-लेस असहंत॥

५. ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो तं दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवज्जुइं दिव्वं देवाणुभागं दिव्वं तेयलेस्सं असहमाणा

६. सर्व विदिशि-दिशि में रही, करतल जोडी तेह।
दश नख सिर आवर्त्तनं, मस्तक विषै करेह॥

६. सव्वे सपक्खिं सपडिदिसिं ठिच्चा करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए

७. अंजली प्रतै करनै बलि, जय-विजय करी वधाय।
अधिक विनय इम साचवी, बोलै एहवी वाय॥

७. अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति वद्धावेत्ता एवं वयासी—

*महाराजा! आप छो दुख भंजणा जी,
होजो थांरी महिमा महि पर भारी।
महाराजा! आप दुख भय भंजणाजी। (ध्रुपदं)

८. आश्चर्यकारी ऋद्धि तिहांरी, होजी आ तो दिव्य देव ऋद्धि भारी।
दिव्य देव कांति अधिक उदारी, होजी आतो दिव्यानुभाव विचारी॥

८. अहो! णं देवाणुप्पिएहिं दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे

९. एहवो ऋद्धि कांति लाधी नै पांमी, सनमुख थई अमामी।
देखी दिव्यर्द्धि देवाणुप्पिया री, जाव सनमुख थइ सारी॥

९. लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए, तं दिट्ठा णं देवाणुप्पियाणं दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमण्णागए

१०. आप तणां जश डंका बाजै, थांरा नाम थकी अरि भाजै।
एहवी ऋद्धि कांति ते नहिं छानी, निश्चय करि म्है जानी॥

११. आप तणी जिण पर कुमया थावै, निश्चय सजा ते पावै।
कोप हुवै जिण सेती तुम्हारो, तास न कोइ आधारो॥

१२. म्हैं कीधा जिसा फल पाया स्वामी! मोटी पडी म्हामै खामी।
ए अपराध खमावां छां तुम्ह नैं, गुनहो बगसीजै अम्हनैं॥

१२. तं खामेमो णं देवाणुप्पिया!

१३. हे देवानुप्रिया! खमो तुम्है सारो, कीधो अपराध अपारो।
खमवा नैं योग्य तुम्हैं गुण हीरा, आप गुणकर गैहर गंभीरा॥

१३. खमंतु णं देवाणुप्पिया! खंतुमरिहंति णं देवाणुप्पिया!

१४. काम इसो अम्है कदेयन करिस्यां, नित्य प्रति डरता रहिस्यां।
आप तणीं सुभ निजर म्हे चावां, तुझ सरण थकी सुख पावां॥

१४. णाइ भुज्जो एवं करणयाए
नैव भूय एवंकरणाय संपत्स्यामहे। (वृ०-प० १६७)

१५. एम कही देव देवी तिवारा, बलिचंचा नै रहिणहारा।
एह प्रयोजन भलै प्रकार, खामैं विनय करी वारंवार॥

१५. इति कट्टु एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामेंति। (श० ३।५०)

१६. स्वाम ईशाण देवेंद्र प्रसिद्धी, जाव तेजू लेस्या खांच लीधी।
ते दिन थी बलिचंचा नां वासी, बहु देव देवी सुविमासी॥

१६. तए णं से ईसाणे देविंदे देवराया...जाव तेयलेस्सं पडिसाहरइ। तप्पभिति च णं गोयमा! ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य

*लय—आज अंबाजी रै नोपत बाजै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. आदर ईशाण देवेंद्र नैं देवै, जावत् तिणनै सेवै।
ईशाण देव देवेंद्र राजा नी, आज्ञा मानै चित आनी॥

१८. ए तुझ कार्य करिवूं ए आणा, उपपात ते सेव सुजाणा।
वचन अभियोग-पूर्वक आदेश, कार्य भलावै अशेष॥

१९. निर्देश पूछ्यां नों उत्तर देवो, आज्ञादिक नै विषै रहेवो।
ईशाण देवेंद्र इम ऋद्धि पामी, गोयम नै कहै स्वामी॥

प्रभुजी! आप भव दुख-भंजना जी। (ध्रुपदं)

२०. हे प्रभु! ईशाण देव-राजा नी, होजी प्रभु! केतली स्थिति कहानी?
उत्तर वीर दियै इम हेरी, सागर दोय जाझेरी॥

२१. ईशाण देवेंद्र हे भगवान! देवलोक थी जान।
आउ-क्षय जावत् पहिछान, उपजसी किण स्थान?

२२. वीर कहै सुण गोयम! वानी, खेत्त विदेह सुजानी।
चारित लेइनैं सीजेस्यै, यावत् अंत करेस्यै॥

२३. अंक इकतीस नु आख्यो ए देश, ढाल चोपनमीं कहेस।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय पसायो, सुख'जय-जश'हरष सवायो॥

१७. ईसाणं देविंदं देवरायं आढंति जाव पज्जुवासंति, ईसाणस्स य देविंदस्स देवरण्णो

१८. आज्ञा—कर्त्तव्यमेवेदमित्याद्यादेशः उपपातः—सेवा वचनं—अभियोगपूर्वकं आदेशः।
(वृ०-प० १६७, १६८)

१९. निर्देशः—प्रश्निते कार्ये नियतार्थमुत्तरं।
(वृ०-प० १६८)
आणा-उववाय-वयण-निद्देसे चिट्ठंति। एवं खलु गोयमा! ईसाणेणं देविंदेणं देवरण्णा सा दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमण्णागए। (श० ३।५१)

२०. ईसाणस्स भंते! देविंदस्स देवरण्णो केवतियं कालं ठिई पण्णत्ता? गोयमा! सातिरेगाइं दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। (श० ३।५२)

२१. ईसाणे णं भंते! देविंदे देवराया ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं जाव कहिं गच्छिहिति? कहिं उववज्जिहिति?

२२. गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव अंतं काहिति। (श० ३।५३)

ढाल : ५५

दूहा

१. ईशाणेंद्र नो वारता, कही हिवै पिण तेह।
जाव उद्देशक अंत लग, सूत्र-समूह कहेह॥

२. हे प्रभु! शक्र-विमाण थी, ईषत् उच्च प्रमाण—
गुण करि कांयक उन्नत ते, ईशाणेंद्र विमाण?

३. तथा ईशाण देवेंद्र नां, विमाण थी पहिछाण।
ईषत् नीचो निम्नतर, शक्र देवेंद्र विमाण?

४. प्रभु कहै हंता गोयमा! वलि शिष्य पूछै वाय।
किण अर्थे आख्यो प्रभु! दीजै मोय बताय॥

१. ईशानेन्द्रवक्तव्यताप्रस्तावात्तद्वक्तव्यतासंबद्धमेवोद्देशक-समाप्ति यावत् सूत्रवृन्दमाह— (वृ०-प० १६८)

२. सक्कस्स णं भंते! देविंदस्स देवरण्णो विमाणेहिंतो ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो विमाणा ईसिं उच्चतरा चेव ईसिं उन्नयतरा चेव?
उच्चत्वं प्रमाणतः उन्नतत्वं गुणतः, अथवा उच्चत्वं प्रासादापेक्षम्। (वृ०-प० १६९)

३. ईसाणस्स वा देविंदस्स देवरण्णो विमाणेहिंतो सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो विमाणा ईसिं णीयतरा चेव ईसिं निण्णतरा चेव?

४. हंता गोयमा! सक्कस्स तं चेव सव्वं नेयव्वं।
(श० ३।५४)
से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. जिन कहै हस्ततला विषै, देश उच्च उन्नत्त।
देश नीच ह्वै निम्नतर, तिण अर्थे ए वत्त ।।

५. गोयमा ! से जहानामए करयले सिया—देसे उच्चे, देसे उन्नए। देसे णीए, देसे निण्णे। से तेणट्ठेणं गोयमा ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो जाव ईसिं निण्णतरा चेव। (श० ३।५५)

*परम ज्ञान आगला प्रभुजी। (ध्रुवदं)

६. हे प्रभु ! शक्र देवेंद्र ते, जिनवरजी ! ईशाणेंद्र नैं पास हो, निस्नेही।
आविवा नै समर्थ अछै, साहिबजी ! जिन कहै हंता तास हो, निस्नेही ।।

६. पभू णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो अंतियं पाउब्भवित्तए ? हंता पभू।
(श० ३।५६)

७. ते प्रभु ! स्यूं समर्थ अछै, आदर दै बोलाय।
अथवा ते अणबोलाविया, समर्थ शक्र कहिवाय ?

७. से भंते ! किं आढामाणे पभू ? अणाढामाणे पभू ?

८. प्रभु भाखै आदर दियां, समर्थ छै सक-इंद।
अणबोलायां समर्थ नहीं, इम भाखै जिन-चंद ।।

८. गोयमा ! आढामाणे पभू, नो अणाढामाणे पभू।
(श० ३।५७)

९. प्रभु ! ईशाण सुरेंद्र ते शक्र देवेंद्र नैं पास।
आविवा नै समर्थ अछै ? जिन कहै हंता तास ।।

९. पभू णं भंते ! ईसाणे देविंदे देवराया सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अंतियं पाउब्भवित्तए ? हंता पभू।(श०३।५८)

१०. हे प्रभु ! स्यूं तेडाविया, कै अणतेडया आय ?
जिन कहै समर्थ तेडिया, अणतेडया पिण जाय ।।

१०. से भंते ! किं आढामाणे पभू ? अणाढामाणे पभू ?
गोयमा ! आढामाणे वि पभू, अणाढामाणे वि पभू।
(श० ३।५९)

११. हे प्रभु ! शक्र देवेंद्र ते, ईशाणेंद्र नैं सोय।
चिउं दिशि तिणनैं जोयवा, समर्थ छै अवलोय ?

११. पभू णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया ईसाणं देविंदं देवरायं सपक्खिं सपडिदिसिं समभिलोइत्तए ?

१२. जिम आवा नां अखिया, शक्र ईशाण नां सोय।
तिमहिज अवलोकन तणां, कहियै आलावा दोय ।।

१२ जहा पादुब्भवणा तहा दो वि आलावगा णेयव्वा।
(श० ३।६०-६३)

१३. हे प्रभु ! शक्र देवेंद्र ते, ईशाण इंद्र नैं साथ।
एक वार, वार-बार ते, समर्थ करिवा बात ?

१३. पभू णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया ईसाणेणं देविंदेणं देवरण्णा सद्धिं आलावं वा संलावं वा करेत्तए ?

१४. जिन भाखै समर्थ अछै, जिम आवा नां दोय।
आलावा जे आखिया, तिमज संभाषण जोय ।।

१४. हंता पभू। (श० ३।६४)
जहा पादुब्भवणा तहा दो वि आलावगा णेयव्वा।
(श० ३।६५-६७)

१५. छै प्रभु ! शक्र ईशाण नैं, कृत्य प्रयोजन जाण।
कार्य करिवा योग्य ते ? हंता कहै जिन भाण ।।

१५. अत्थि णं भंते ! तेसिं सक्कीसाणाणं देविंदाणं देवराईणं किच्चाइं करणिज्जाइं समुप्पज्जंति ? हंता अत्थि।
(श० ३।६८)
'किच्चाइं' ति प्रयोजनानि 'करणिज्जाइं' ति विधेयानि।
(वृ०-प० १६६)

१६. अथ किम ते कार्य करै ? जिन कहै शक्र सुरराय।
आवै ईशाण इंद्र पै, ईशाणेंद्र शक्र पै आय ।।

१६. से कहमिदाणिं पकरेंति ?
गोयमा ! ताहे चेव णं से सक्के देविंदे देवराया ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो अंतियं पाउब्भवति, ईसाणे वा देविंदे देवराया सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अंतियं पाउब्भवति

१७. ए कार्य भो आमंत्रणे, शक्रेंद्र ! सुरराय !
दक्षिणार्द्ध लोक नां अधिपति ! ईशाणेंद्र वदै वाय ।।

१७. इति भो ! सक्का ! देविंदा ! देवराया ! दाहिणड्ढलोगाहिवई !

*लय—शीतल जिन शिवदायका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. ए कार्य भो आमंत्रणे, ईशाणेंद्र ! सुरराय !
उत्तरार्ध लोक नां अधिपति ! शक्र वदै इम वाय ।।

१९. भो इति आमंत्रण कही, प्रयोजने मांहोमांय ।
कार्य करिवा योग्य ते, करता विचरै राय ।।

२०. हे प्रभु ! शक्र ईशाण नैं, देवराजा नैं ताय ।
विवाद मांहोमांहे ऊपजै ? जिन कहै हंता थाय ।।

२१. ते किम विवाद-काले करै, जिन कहै शक्र ईशाण ।
सुरेंद्र सनतकुमार नैं, मन में धारै जाण ।।

२२. शक्र ईशाण सुरेंद्र ते, मनसा कीधै ताय ।
सनतकुमार देवेंद्र ते, उभय कनै झट आय ।।

२३. आज्ञा उपपात वचन ते, निर्देश सनतकुमार ।
भाखै तेह विषै रह्या, उभय इंद्र तिणवार ।।

२४. हे प्रभु ! सनतकुमार ते, देवराजा सुविहान ।
ते स्यूं छै भवसिद्धियो, कै अभवसिद्धियो जान ?

२५. समदृष्टी कै मिच्छदिट्ठी, परित्त - अनंत-संसार ।
सुलभ-दुर्लभ-बोधि अछै, आराधक विराधक धार ?

२६. चरिम अछै कै अचरिम छै, पूछ्या द्वादश बोल ।
एह वर्तमान काल नीं, पूछा कीधी अमोल ।।

२७. जिन कहै सनतकुमार ते, भवसिद्धियो छै सोय ।
नहीं छै ते अभवसिद्धियो, इम समदृष्टी जोय ।।

२८. परित्त-संसारी ते अछै, सुलभ - बोधी तेह ।
आराधक चरिम सुरभवे, प्रशस्त बोल षट एह ।।

२९. किण अर्थे प्रभु ! ए कह्या, बोल भला षट ताय ।
जिन कहै सनतकुमार ते, देवेंद्र देव नों राय ।।

३०. बहु समण अनै समणी तणों, बहु श्रावक श्रावकां नो ताय ।
हित सुख प्रति वंछै अछै, सनतकुमार सुर - राय ।।

३१. पत्थकामए पाठ ए, दुक्ख-त्राण अर्थ वृत्ति मांहि ।
दुख नां हेतु कर्म छै, ते टलवा वांछै ताहि ।।

३२. आणुकंपिए कृपावान छै, निःश्रेयस मोक्ष कहाय ।
तेह विषै नियुक्त नीं परै, णिस्सेसि कह्यं ताय ।।

३३. हित जे सुख अदुख कह्यु, ते सर्व नों वंछणहार ।
सनतकुमार सुरेंद्र ते, एहवुं छै अधिक उदार ।।

१८. इति भो ! ईसाणा ! देविंदा ! देवराया ! उत्तरड्ढ-लोगाहिवई !

१९. इति भो ! इति भो ! त्ति ते अण्णमण्णस्स किच्चाइं करणिज्जाइं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति । (श० ३।६९)

२०. अत्थि णं भंते ! तेसिं सक्कीसाणाणं देविंदाणं देवराईणं विवादा समुप्पज्जंति ? हंता अत्थि । (श० ३।७०)

२१. से कहमिदाणिं पकरेंति ?
गोयमा ! ताहे चेव णं ते सक्कीसाणा देविंदा देवरायाणो सणंकुमारं देविंदं देवरायं मणसीकरेंति ।

२२. तए णं से सणंकुमारे देविंदे देवराया तेहिं सक्कीसाणेहिं देविंदेहिं देवराईहिं मणसीकए समाणे खिप्पामेव सक्कीसाणाणं देविंदाणं देवराईणं अंतियं पाउब्भवति,

२३. जं से वदइ तस्स आणा-उववाय-वयण-निद्देसे चिट्ठंति । (श० ३।७१)

२४. सणंकुमारे णं भंते ! देविंदे देवराया किं भवसिद्धिए ? अभवसिद्धिए ?

२५, २६. सम्मद्दिट्ठी ? मिच्छद्दिट्ठी ? परित्तसंसारिए ? अणंतसंसारिए ? सुलभबोहिए ? दुल्लभबोहिए ? आराहए ? विराहए ? चरिमे ? अचरिमे ?

२७. गोयमा ! सणंकुमारे णं देविंदे देवराया भवसिद्धिए, नो अभवसिद्धिए । सम्मद्दिट्ठी नो मिच्छद्दिट्ठी ।

२८. परित्तसंसारिए, नो अणंतसंसारिए । सुलभबोहिए, नो दुल्लभबोहिए । आराहए, नो विराहए । चरिमे, नो अचरिमे । (श० ३।७२)

२९. से केणट्ठेणं भंते !
गोयमा ! सणंकुमारे णं देविंदे देवराया

३०. बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं हियकामए सुहकामए

३१. पत्थकामए
पथ्यं—दुःखत्राणं । (वृ०-प० १६९)

३२. आणुकंपिए निस्सेयसिए
'आणुकंपिए' त्ति कृपावान्, निश्रेयसं—मोक्षस्तत्र नियुक्त इव नैःश्रेयसिकः । (वृ०-प० १६९)

३३. हिय-सुह-निस्सेसकामए ।
हितं यत्सुखम्—अदुःखानुबन्धमित्यर्थः तन्निःशेषाणां—सर्वेषां कामयते—वांछति यः सः । (वृ०-प० १६९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

३४. च्यार तीर्थ नैं सार, वंछै हित सुख पथ्य शिव।
लक्षण एह उदार, विशिष्ट समदृष्टी तणां।।

३५. *तिण अर्थे करि गोयमा! सनतकुमार सुरराय।
भवसिद्धियो जाव चरिम छै, अचरिम कहियै नांय।।

३५. से तेणट्ठेणं गोयमा ! सणंकुमारे णं देविंदे देवराया भवसिद्धिए जाव चरिमे नो अचरिमे। (श० ३।७३)

सोरठा

३६. 'सनतकुमार सुरराय, देवभवे चिउं तीर्थ नों।
हित प्रमुख कहिवाय, वांछै छै इहां इम कह्यो।।

३७. केइ अज्ञानी धार, कहै पाछल भव नैं विषै।
च्यार तीर्थ नैं आ'र-पोख्या तिण सूं इंद्र हुओ।।

३८. इहां आख्यो वर्तमान, सुर भव केरी वारता।
पिण पाछिल भव नीं जान, न कही सनतकुमार नीं।।

३९. पाछिल भव नीं जाण, पूछा ईशाण-इंद्र नी।
तीजै शतक पिछाण, प्रथम उद्देशे पाठ[1] ए।।

४०. किण्णालद्धे आद, पाठ कह्या छै सूत्र में।
किण करणी ऋद्धि लाध, पूर्वभव में कुण हुंतो।।

४१. कवण नाम कुण गोत, कवण ग्राम नगरे हुंतो।
जाव सन्निवेसे होत, एहवी पूछा छै तिहां।।

४२. तीजै शतक पिछाण, दूजै उद्देशै वली।
चमर पूर्वभव जाण, त्यां पिण एहवा पाठ छै।।

४३. अठारमै शतक सोहंद, दूजै उद्देशै वली।
पूरवभव सक इंद, त्यां पिण एहवा पाठ छै।।

४४. सुबाहु मृगापूत, विपाक मांहै वारता।
प्रश्न पूर्वभव सूत, त्यां पिण एहवा पाठ है।।

४५. शुक्र चंद्रमा सूर, पूरवभव बहुपुत्तिया।
पुप्फिया उपंग पंडूर, जाव शब्द में पाठ ए।।

४६. इत्यादिक बहु ठाम, पूर्वभव नां पाठ ते।
इहां नहिं आख्या नाम, देखो ज्ञान दृष्टे करी।।

४७. सनतकुमार अधिकार, एहवा पाठ कह्या नहीं।
तिण सूं पूर्वभव विस्तार, नहीं छै सनतकुमार नों।।

४८. ए वर्तमान-भव वात, पत्थ-काम दुख-त्राण ए।
हित विशेष आख्यात, पिण इहां पत्थ ते आहार नहिं।।

---

*लय—शीतल जिन शिवदायका

१. ईसाणेणं भंते ! देविंदेणं...किण्णा लद्धे ? किण्णा पत्ते ? किण्णा अभिसमण्णागए ? के वा एस आसि पुव्वभवे ? किंनामए वा ? किंगोत्ते वा ? कयरंसि वा गामंसि वा नगरंसि वा जाव सण्णिवेसंसि वा ?... (श० ३।३०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४९. चवदम उत्तराझेण, गाथा अडतालीसमीं।
पत्थ ते हित अर्थेण, पिण अर्थ आहार नों त्यां नहीं ।।

५०. भगवती पनरमै पेख, पत्थकामए नों अरथ।
आनंद कारण देख, पत्थ इव पत्थ कह्यो तिहां ।।

५१. तिम इहां पिण अवलोय, पत्थकामए नों अरथ।
दुःख-त्राण आख्यो सोय, पिण इहां आहार कह्यो नहीं ।।

५२. सनतकुमार देवेंद, वांछै छै हित सुख प्रमुख।
एहवो पाठ अमंद, इह विध आख्यो इंद्र नैं ।।

५३. तिण सूं वांछा एह, इंद्र तणां भव नींज छै।
वलि पट बोल कहेह, ते पिण इंद्र तणै भवै ।।

५४. पूर्वभव कह्यो नांय, वर्तमान भव ए कह्यो।
हिव निसुणो सुखदाय, भव-स्थिति अरु आगामिके' ।। (ज०स०)

५५. *सनतकुमार देवेंद्र नीं, किता काल नी स्थित्त ?
जिन कहै सात सागर तणी, परम आउखो पवित्त ।।

५५. सणंकुमारस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता ?
गोयमा ! सत्त सागरोवमाणि ठिती पण्णत्ता ।
(श० ३।७४)

५६. प्रभु ! आयु-भव-स्थिति क्षय करी, चव जासी किण ठाम ?
जिन कहै महाविदेह सीझसी, सेवं भंते ! स्वाम ।।

५६. से णं भंते ! ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ? गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव अंतं करेहिति । (श० ३।७५)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! (श० ३।७६)

५७. छठ अठम मास अर्द्धमास नों, आठ वर्ष पट मास।
तीसक, कुरुदत्त-पुत्र नैं, तप अणसण दीक्षा तास ।।

५७. छट्ठट्ठमासो अद्धमासो वासाइं अदु छम्मासा।
तीसग-कुरुदत्ताणं, तव-भत्तपरिण्ण-परियाओ ।।

५८. विमान नुं ऊंचापणुं, प्रगट थायवो तसुं पेख।
संभाषण कार्य विवाद ए, सनतकुमार भव्य देख ।।

५८. उच्चत्त विमाणाणं, पाउब्भव पेच्छणा य संलावे।
किच्च विवादुप्पत्ती, सणंकुमारे य भवियत्तं ।।
(श० ३।७६ संगहणी-गाहा)

५९. अर्थ अंक इकतीस नुं, पच्चावनमीं ढाल।
भिक्खू भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' संपति माल ।।

तृतीयशते प्रथमोद्देशकार्थः ।।३।१।।

ढाल : ५६

दूहा

१. पढमुद्देश सुर-विकुर्वण, द्वितीये तास विशेख।
असुर तणीं गति-शक्ति नीं, जेह परूपणा देख ।।

१. प्रथमोद्देशके देवानां विकुर्वणोक्ता, द्वितीये तु तद्विशेषाणामेवासुरकुमाराणां गतिशक्तिप्ररूपणायेदमाह—
(वृ०-प० १६६)

*लय—शीतल जिन शिवदायका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. तिण कालै नै तिण समय, नगर राजगृह नाम।
जावत् परषद् वीर नीं, सेव करै गुण-धाम॥

३. तिण कालै नै तिण समय, चमर असुर-इंद्र जान।
चमरचंचा रजधानीए, सभा सुधर्मा मान॥

४. चमर सिंघासण नै विषै, चउसठ सहस्र सामान[1]।
जाव नाटक देखाल नै, गयो आपणै स्थान॥

५. हे भदंत! इह विध कही, कर वंदना नमस्कार।
भगवंत गोतम वीर नैं, इम बोल्या गुणधार॥

*प्रभुजी! थांरी वचनामृत झरी प्यारी,
वचनामृत झरी प्यारी भविक! सुण,
तन मन हरष अपारी॥ (ध्रुपदं)

६. छै प्रभु! रत्नप्रभा पृथ्वीतल, असुर वसै सुख भेटं?
वीर कहै अर्थ समर्थ नांही, इम जाव तमतमा हेठं हो॥

७. सुधर्म-कल्प हेठ इम यावत्, सिद्ध-शिला तल जाणी?
जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं ए, इहां असुरकुमार न ठाणी॥

८. हे भगवन्! अथ वलि किहां प्रभु! असुरकुमार वसाइं?
जिन कहै इक लक्ष असी सहस्र, मही योजन रत्नप्रभाइं॥

९. इक सहस्र योजन ऊपर तल, मूकी विच तसुं वासं।
एम असुर नीं वक्तव्यता ते, जाव विचरै करत विलासं॥

१०. छै प्रभु! असुर नों अधोगति-विषय? जिन कहै हंता जाणी।
हे प्रभु! कितरो असुर तणों तल-गमन-विषय पहिछाणी?

११. जिन कहै रत्नप्रभा थी मांडी, विषय सातमीं तांई।
तीजी मही लग पूर्वे गया छै, जास्यै अनागत ज्यांही॥

१२. किसै कारण प्रभु तीजी मही लग, असुर गया नैं जासी?
जिन कहै पूर्वभव अरि-नारक, देवा तसुं दुख-रासी॥

१३. अथवा कोइक जीव पूर्वभव, मित्र-नरक दुख-रासी।
वेदन तास मिटावा अर्थे, तृतिय गया नैं जासी॥

---

१. सामानिक देव
*लय—असवारी नीं

२. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नगरे होत्था जाव परिसा पज्जुवासइ। (श० ३।७७)

३. तेणं कालेणं तेणं समएणं चमरे असुरिंदे असुरराया चमरचंचाए रायहाणीए, सभाए सुहम्माए,

४. चमरंसि सीहासणंसि, चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीहिं जाव नट्टविहिं उवदंसेत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए। (श० ३।७८)

५. भंतेत्ति! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी---

६. अत्थि णं भंते! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे असुरकुमारा देवा परिवसंति?
गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे। (श० ३।७९)
एवं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए,

७. सोहम्मस्स कप्पस्स अहे जाव अत्थि णं भंते! ईसिप्पब्भाराए पुढवीए अहे असुरकुमारा देवा परिवसंति?
णो इणट्ठे समट्ठे। (श० ३।८०)

८. से कहिं खाइ णं भंते? असुरकुमारा देवा परिवसंति?
गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए

९. एवं असुरकुमारदेववत्तव्वया जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति। (श० ३।८१)

१०. अत्थि णं भंते! असुरकुमाराणं देवाणं अहे गतिविसए?
हंता अत्थि। (श० ३।८२)
केवतियण्णं भंते! असुरकुमाराणं देवाणं अहे गतिविसए पण्णत्ते?

११. गोयमा! जाव अहेसत्तमाए पुढवीए। तच्चं पुण पुढविं गया य गमिस्संति य। (श० ३।८३)

१२. किं पत्तियण्णं भंते! असुरकुमारा देवा तच्चं पुढविं गया य गमिस्संति य?
गोयमा! पुव्ववेरियस्स वा वेदणउदीरणयाए,

१३. पुव्वसंगतियस्स वा वेदणउवसामणयाए---एवं खलु असुरकुमारा देवा तच्चं पुढविं गया य गमिस्संति य। (श० ३।८४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. छै प्रभु ! तिरछो गमन-विषय तसुं ? जिन कहै हंता जाणी।
हे प्रभु ! कितरो असुर तणो, तिरिच्छ-गति-विषय पिछाणी ?

१५. जिन कहै जाव असंख द्वीपोदधि, विषय - मात्र ए जाणी।
द्वीप नंदीस्वर गया जायस्यै, हिव तसुं न्याय पिछाणी ॥

१६. असुर दक्षिण नां उत्तर कानी, द्वीप नंदीस्वर जावै।
उत्तर नां पिण दक्षिण कानी, नंदीश्वर लग धावै ॥

१७. किण कारण प्रभु ! असुर नंदीस्वर, द्वीप गया नै जासी ?
जिन कहै अरिहंत भगवंत केरा, जन्म - महोत्सव रासी ॥

१८. दीक्षा-महोत्सव केवल-महोत्सव, महिमा वलि निरवाणं।
असुर नंदीस्वर गया जायस्यै, इम निश्चै कर जाणं ॥

१९. छै प्रभु ! ऊर्ध्व गति-विषय तेहनों ? जिन कहै हंता जाणी।
हे प्रभु ! कितरो असुर देव नों, ऊर्ध्व-गति-विषय ठाणी ?

२०. जिन कहै यावत् अचू-कल्प लग, सुधर्म गया रु जासी।
किसै कारण प्रभु ! गया सुधर्मे, वलि जास्यै सुखरासी ?

२१. जिन कहै असुर वैमानिक सुर रै, भव - प्रत्यय जे वैरो।
क्रोध करी महारूप विकुर्वे, तास डरावण केरो ॥
२२. तथा भोग पर - देवी संगे, आतम - रक्षक नैं तपावै।
रत्न लघु ले एकांते जावै, मोटा रत्न गोपवणी नावै ॥

२३. छै प्रभु ते वैमानिक सुर नै, नान्हा रत्न सुयोग्य ?
श्री जिन भाखै हंता अत्थि, छै लघु रत्न प्रयोग्य ॥
२४. रत्न लेइ एकांत गया पछै, वैमानिक सुर सोय।
रत्न तणां जे लेणहार नै, कवण करै अवलोय ?

२५. जिन कहै तेह असुर नां तनु नैं, हणै पीड उपजावै।
जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्टो, छ मासे दुख पावै ॥

१८. अत्थि णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं तिरियं गति-विसए पण्णत्ते ?
हंता अत्थि। (श० ३।८५)
केवतियण्णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं तिरियं गति-विसए पण्णत्ते ?
१५. गोयमा ! जाव असंखेज्जा दीव-समुद्दा,
नंदिस्सरवरं पुण दीवं गया य गमिस्संति य।
(श० ३।८६)

१७. किं पत्तियण्णं भंते ! असुरकुमारा देवा नंदिस्सरवरं दीवं गया य गमिस्संति य ?
गोयमा ! जे इमे अरहंता भगवंतो, एएसि णं जम्मण-महेसु वा,
१८. निक्खमणमहेसु वा, नाणुप्पायमहिमासु वा, परिनिव्वाणमहिमासु वा—एवं खलु असुरकुमारा देवा नंदिस्सरवरं दीवं गया य गमिस्संति य। (श० ३।८७)
१९. अत्थि णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं उड्ढं गति-विसए ? हंता अत्थि। (श० ३।८८)
केवतियण्णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं उड्ढं गति-विसए ?
२०. गोयमा ! जाव अच्चुतो कप्पो, सोहम्मं पुण कप्पं गया य गमिस्संति य। (श० ३।८९)
किं पत्तियण्णं भंते ! असुरकुमारा देवा सोहम्मं कप्पं गया य गमिस्संति य ?
२१, २२. गोयमा ! तेसिं णं देवाणं भवपच्चइए वेराणुबंधे, ते णं देवा विकुव्वेमाणा परियारेमाणा वा आयरक्खे देवे वित्तासेंति अहालहुसगाइं रयणाइं गहाय आयाए एगंतमंतं अवक्कमंति। (श० ३।९०)
'विउव्वेमाणा 'व' त्ति संरम्भेण महद्वैक्रियशरीरं कुर्वन्तः 'परियारेमाणा व' त्ति परिचारयन्तः परकीय-देवीनां भोगं कर्तुकामा इत्यर्थः। (वृ०-प० १७४)
२३. अत्थि णं भंते ! तेसिं देवाणं अहालहुसगाइं रयणाइं ?
हंता अत्थि। (श० ३।९१)
२४. से कहमिदाणिं पकरेंति ?
अथ किमिदानीं रत्नग्रहणानन्तरमेकान्तापक्रमणकाले प्रकुर्वन्ति वैमानिका रत्नादातृणामिति।
(वृ०-प० १७४)
२५. तओ से पच्छा कायं पव्वहंति। (श० ३।९२)
तेषां च प्रव्यथितानां वेदना भवति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कृष्टतः षण्मासान् यावत्। (वृ०-प० १७४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६. तेह असुर सुरलोक रह्यो छतो, ते अपछर साथै ज्यांही।
भोग भोगविवा समर्थ छै प्रभु! जिन कहै समर्थ नांही॥

२७. निज भवने ल्यावै अपछर नैं, अपछर आदर देवै।
तो तिण सेती भोग भोगविवा समर्थ मिथुनज सेवै॥

२८. देवी असुर नैं आदर न दियै, स्वामीपणैं न जाणैं।
अपछर साथे भोग भोगविवा, समर्थ नहीं ते टाणैं॥

२९. असुर सुधर्म गया जास्यै इम, बलि शिष्य प्रश्न विमासी।
काल कितै प्रभु ऊंचो यावत्, सुधर्म गया रु जासी?

३०. श्री जिन भाखै काल इतो थयां, अव-उत्सर्पिणी अनंती।
आश्चर्यभूत अच्छेरग जग में, असुर सुधर्म जंती॥

३१. किण नेश्राये असुर सुधर्म, जिन कहै दे दृष्टंद।
सवर बवर ढंकण चुचु पल्हव, देश अनार्य पुलिंद॥

३२. एक महाअटवी में गर्त्ता, दुर्ग जले करि ताय।
गुफा विषम पर्वत नेश्राये, ते जुद्ध करिवा जाय॥

३३. महा हय गय रथ सुभट धनुर्धर, बल प्रति हूं जीतेसूं।
इम चिंतवनैं जाय अनार्य, भागां ल्यां छिप रहेसूं॥

३४. असुरकुमारा देवा पिण जे, इण दृष्टांते ताह्यो।
तीन सरण बिण अन्य सरण थी, स्वर्ग सुधर्म न जायो॥
३५. अरिहंत अथवा अरिहंत-चैत्यज, तथा भावितात्म अणगार।
यां नेश्राये ऊंचो जावै, जाव सुधर्मे सार॥

सोरठा

३६. केवलज्ञान - सहीत, ते अरिहंत पहिलो सरण।
छद्मस्थ - जिन संगीत, चैत्य सामान्यज्ञानी तिको॥

२६. पभू णं भंते! असुरकुमारा देवा तत्थ गया चेव समाणा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरित्तए?
णो इणट्ठे समट्ठे।

२७. ते णं ततो पडिनियत्तंति, ततो पडिनियत्तित्ता इहमागच्छंति। जइ णं ताओ अच्छराओ आढायंति परियाणंति, पभू णं ते असुरकुमारा देवा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरित्तए।

२८. अह णं ताओ अच्छराओ नो आढंति, नो परियाणंति, नो णं पभू ते असुरकुमारा देवा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरित्तए।

२९. एवं खलु गोयमा! असुरकुमारा देवा सोहम्मं कप्पं गया य गमिस्संति य। (श० ३।९३)
केवइयकालस्स णं भंते! असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मं कप्पं गया य गमिस्संति य?

३०. गोयमा! अणंताहिं ओसप्पिणीहिं, अणंताहिं उस्सप्पिणीहिं समतिक्कंताहिं अत्थि णं एस भावे लोयच्छेरयभूए समुप्पज्जइ, जं णं असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो। (श० ३।९४)

३१. किं निस्साए णं भंते! असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो?
गोयमा! से जहानामए इहं सबरा इ वा बब्बरा इ वा टंकणा इ वा चुचुया इ वा, पल्हा इ वा पुलिंदा इ वा
शबरादयोऽनार्यविशेषाः। (वृ०-प० १७४)

३२. एगं महं रण्णं वा गड्ढं वा दुग्गं वा दरिं वा विसमं वा पव्वयं वा नीसाए
'गड्ढं व' त्ति गर्त्ता 'दुग्गं व' त्ति जलदुर्गादि।
(वृ०-प० १७४)

३३. सुमहल्लमवि आसबलं वा हत्थिबलं वा जोहबलं वा धणुबलं वा आगलेंति,
आकलयन्ति जेष्याम इत्यध्यवस्यन्तीति।
(वृ०-प० १७४)

३४, ३५. एवामेव असुरकुमारा वि देवा नण्णत्थ अरहंते वा अरहंतचेतियाणि वा अणगारे वा भाविअप्पणो निस्साए उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो।
(श० ३।९५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७. तीजै वर अणगार, भावित संजम तप करी।
ए त्रिहुं शरण विचार, असुर सुधर्मे गति कही।।

३८. चमर गयो सुधर्म, शक्रे मूक्यो वज्र तब।
पछै विचारचो मर्म, इह शरणे आवै चमर।।

३९. अरिहंत, अरिहंत-चैत, भावित-आत्मा मुनिवरू।
मूक्यो वज्र सुहेत, ते माटै होवै रखे।।

४०. अरिहंत नैं भगवंत, आसातना अणगार नी।
चैत्य ठाम ए तंत, आख्यो छै भग पाठ ए।।

४१. इहां भग कहियै ज्ञान, चैत्य स्थान भग पाठ है।
तिण सूं अर्थ चैत्य जान, ज्ञान होवै इह कारणैं।।

४२. तिण सूं चउनाणी अरिहंत, अरिहंत-चैत्यज जाणवा।
ए दूजो शरण कहंत, तीजै शरणै अन्य मुनि।।

४३. ए त्रिहुं नीं नेश्राय, सुधर्म जाये असुर जे।
यां सरणां विण नहि जाय, वलि हिव गोयम प्रश्न इम'।।
(ज० स०)

४४. *सहु पिण असुरकुमारा देवा, हे प्रभु ! ऊंचा जाई?
जाव सौधर्म-कल्प तव जिन कहै, अर्थ समर्थ ए नांही।।

४५. महाऋद्धिवंतज असुरकुमारा, देवा ऊंचा जाई।
जाव सौधर्म-कल्प लग जाणी, ए जिन-वाण सुहाई।।

४६. ए प्रभु ! चमरज ऊंचो पूर्वे, जावत् गयो सुधर्म।
श्रीजिन भाखै हंता गोयम ! इह भव आथो मर्म।।

४७. आश्चर्यकारी प्रभु ! चमर नीं, महाऋद्धि नैं महाकांत।
जाव किहां पहुट्टी ? तव जिन कहै, कूटागारसाला नो दृष्टांत।।

४८. अंक बत्तीस नुं देश कह्यूं ए, ढाल छपनमी वारू।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय प्रसादै, 'जय-जश' संपति सुधारू।।

४४. सव्वे वि णं भंते ! असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो ? गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

४५. महिड्ढिया णं असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो। (श० ३।९६)

४६. एस वि य णं भंते ! चमरे असुरिंदे असुरराया उड्ढं उप्पइयपुव्वे जाव सोहम्मो कप्पो ?
हंता गोयमा ! एस वि य णं चमरे असुरिंदे असुरराया उड्ढं उप्पइयपुव्वे जाव सोहम्मो कप्पो। (श० ३।९७)

४७. अहो णं भंते ! चमरे असुरिंदे असुरराया महिड्ढीए महज्जुईए जाव कहिं अणुपविट्ठे ? कूडागारसाला-दिट्ठंतो भाणियव्वो। (श० ३।९८)

ढाल : ५७

दूहा

१. चमर प्रभु ! असुरेंद्र ते, ते सुर ऋद्धि प्रधान।
तं चेव तिमहिज किम लही, किम पामी भगवान ?

१. चमरेणं भंते ! असुरिंदेणं असुररण्णा सा दिव्वा देविड्ढी तं चेव किण्णा लद्धे ? पत्ते ? अभिसमण्णागए ?
(श० ३।९९)

*लय—असवारी नीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. वीर कहै सुण गोयमा ! इम निश्चै करि जान ।
पाछिल भव कहूं चमर नों, सुणो सूरत दे कान ।।

*पूर्वभव कह्यूं चमर नों रे । (ध्रुपदं)

३. गोतम ! तिण कालै ने तिण समै रे,
एहिज जंबू भरत सुविशेष रे, गोयम !
विजगिरी मूल नैं विषै रे,
विभेल नाम सन्निवेस रे, गोयम !

४. तिहां पूरण गाथापति वसै, ऋद्धिवंत दीप्ति विख्यात ।
जेम तामली नीं वारता, तिम पूरण नों अवदात ।।

५. णवरं चिहुं पुड छै जेहनैं विषै, एहवो काष्ठ पात्र करी ताम ।
जाव विपुल असणादि निपाय नैं, जावत् तेह पात्र ग्रही आम ।।

६. मुंड थइ दानमय प्रव्रज्या, तिमहिज जाव आतापन-भूम ।
तेहथी पाछो वली नै चउ-पुडो, काष्ठ-पात्र ग्रही तज नूम ।।

७. आवि बिभेल नामैं सन्निवेस में, ऊंच नीच मझम कुल मांहि ।
बहु घर समुदाय भिक्षाचरी, अटन करी आहार ग्रही ताहि ।।

८. पडै पडगां ना पहिला पुड विषै, ते पंथी पथग नैं देवूं आहार ।
आहार पडै दूजा पुड नैं विषै, काग स्वान नै देवूं तिवार ।।

९. तीजा पुड में पदार्थ पडै तिको, मच्छ कच्छप नैं देवूं ताय ।
चउथा पुड में पडै ते कल्पै मुझै, पोतै आहार करेवूं काय ।।

१०. इम रात्रि समै चिंतवी करी, काले प्रगटी प्रभा गइ रात ।
तिमहिज सर्व चउथे पुड पडै, पोतै आहार करै विख्यात ।।

११. पूरण बाल-तपस्वी तदा, ते तो वांछा-रहित उदार ।
विपुल दिवस घणां नु तप तिको, गुरु-आज्ञा प्रयत्न विचार ।।

१२. पग हिएणं वहुमाने ग्रह्यूं, बाल-तप करिवै करी तेह ।
तिमहिज जाव विभेल सन्निवेस में, मध्योमध्य थइ निकलेह ।।

१३. पादुका कुंडिका आदि दे, उपधि काष्ठ-पात्र अवलोय ।
सर्व एकांते न्हाखी करी, हिवै अणसण धारै सोय ।।

१४. विभेल नामैं सन्निवेस थी, ओ तो अग्निकूण मांहै जाय ।
अर्ध निज तनु मात्र मंडल प्रतै, आलेखी नैं संलेखणा ठाय ।।

१५. भात-पाणी पचखी करी, ओ तो पाओवगमन सुपेख ।
अणसण धार रहै तिहां, इण रा मन मांहि हरष विशेख ।।

*तथ—हंसा नदिय किनारै रूंखडो रे हंसा

३. एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबूदीवे दीवे भारहे वासे विंझगिरिपायमूले बेभेले नामं सण्णिवेसे होत्था—वण्णओ । (श० ३।१००)

४. तत्थ णं बेभेले सण्णिवेसे पूरणे नामं गाहावई परिवसइ—अड्ढे दित्ते जहा तामलिस्स वत्तव्वया तहा नेतव्वा,

५. नवरं चउप्पुडयं दारुमयं पडिग्गहयं करेत्ता, जाव विउलं असणपाणखाइमसाइमं जाव सयमेव चउप्पुडयं दारुमयं पडिग्गहगं गहाय—

६. मुंडे भवित्ता दाणामाए पव्वज्जाए पव्वइत्तए । पव्वइए वि य णं समाणे तं चेव जाव आयावणभूमीओ पच्चोरुभित्ता सयमेव चउप्पुडयं दारुमयं पडिग्गहगं गहाय

७. बेभेले सण्णिवेसे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्ता

८. जं मे पढमे पुडए पडइ, कप्पइ मे तं पंथे पहियाणं दलइत्तए । जं मे दोच्चे पुडए पडइ, कप्पइ मे तं काग-सुणयाणं दलइत्तए ।

९. जं मे तच्चे पुडए पडइ कप्पइ, मे तं मच्छ-कच्छभाणं दलइत्तए । जं मे चउत्थे पुडए पडइ कप्पइ मे तं अप्पणा आहारं आहारेत्तए—

१०. एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए तं चेव निरवसेसं जाव जं से चउत्थे पुडए पडइ तं अप्पणा आहारं आहारेइ । (श० ३।१०१, १०२)

११. तए णं से पूरणे बालतवस्सी तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं

१२. पग्गहिएणं बालतवोकम्मेणं तं चेव जाव बेभेलस्स सण्णिवेसस्स मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ

१३. पादुग-कुंडिय-मादीयं उवगरणं चउप्पुडयं दारुमयं च पडिग्गहगं एगंते एडेइ, एडेत्ता

१४. बेभेलस्स सण्णिवेसस्स दाहिणपुरत्थिमे दिसीभागे अद्धनियत्तणियमंडलं आलिहित्ता संलेहणा-झूसणाझूसिए

१५. भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगमणं निवण्णे ।
(श० ३।१०३, १०४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. तिण कालै नैं तिण समय, म्हारै हुंतो छद्मस्थ काल।
दीक्षा लियां नै वर्ष ग्यारै थया, अंतर-रहित छठ-छठ न्हाल॥

१७. संजम तप करि आतमा, भावतो ते वसावतो सार।
पूर्वानुपूर्वे चालतो, ग्रामानुग्राम करतो विहार॥
१८. जिहां सुंसुमार पुर नामैं नगर छै, जिहां अशोक वन खंड उद्यान।
जिहां अशोक प्रवर सुवृक्ष छै, जिहां पृथ्वी-सिला-पट्ट जान॥
१९. तिहां हूं आयो तिण अवसरे, अशोक-तरु-तल जाण।
पृथ्वी-सिला-पट्ट नैं विषै, अट्ठम-भक्त ग्रही धरचो ध्यान॥
२०. जिन-मुद्राए वे पग संहरी, प्रलंबित-भुज लांबी बांहि।
एक पुद्गल विषै दृष्टि स्थाप नैं, नासाग्रे दृष्टि अर्ध मांहि॥

२१. चक्षु भणी अटमकारवै, आगल थकी थोडो नम्यों सुलक्ष।
गात स्थाप्यूं यथावस्थितपणैं, सर्व-इंद्रिय-गुप्त प्रत्यक्ष॥

२२. एक रात्रि नीं महापडिमा प्रतै, अंगीकार करी विचरंत।
भिक्खु-पडिमा ए बारमी, बारू धर्म शुक्ल चित शंत॥
२३. आख्यो अंक बत्तीस नुं देश ए, बारू सात पचासमीं ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय थी, सुख संपति 'जय-जश' न्हाल॥

१६. तेणं कालेणं तेणं समएणं अहं गोयमा! छउमत्थकालियाए एक्कारसवासपरियाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं
१७. संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे
१८. जेणेव सुंसुमारपुरे नगरे जेणेव असोयसंडे उज्जाणे जेणेव असोयवरपायवे जेणेव पुढवीसिलावट्टए
१९. तेणेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स हेट्ठा पुढवीसिलावट्टयंसि अट्ठमभत्तं पगिण्हामि,
२०. दो वि पाए साहट्टु वग्घारियपाणी एगपोग्गलनिविट्ठदिट्ठी
'वग्घारियपाणि' त्ति प्रलम्बितभुजः। (वृ०-प० १७४)
२१. अणिमिसणयणे ईसिपब्भारगएणं काएणं, अहापणिहिएहिं गत्तेहिं, सव्विंदिएहिं गुत्तेहिं
'ईसिपब्भारगएणं' ति प्राग्भारः—अग्रतोमुखमवनतत्वम्। (वृ०-प० १७४)
२२. एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जेत्ता णं विहरामि। (श० ३।१०५)

ढाल : ५८

दूहा

१. तिण कालै नै तिण समय, चमरचंचा अभिधान।
राजधानी हुइ इंद्र विण, पुरोहित-रहित पिछान॥
२. पूरण बाल तपस्वी तदा, दान-प्रव्रज्या देख।
बार वर्ष पाली करी, मास संलेखण पेख॥

३. साठ-भक्त अणसण प्रतै, छेदी नैं करि काल।
चमरचंचा रजधानीए, उपपात-सभा विशाल॥
४. जाव इंद्रपणै ऊपनों, अधुनोत्पन्न चमरंद।
पंच पर्याप्ति करी हुओ, पर्याप्तो सुखकंद॥

१. तेणं कालेणं तेणं समएणं चमरचंचा रायहाणी अणिंदा अपुरोहिया यावि होत्था। (श० ३।१०६)
२. तए णं से पूरणे बालतवस्सी बहुपडिपुण्णाइं दुवालसवासाइं परियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेत्ता,
३. सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता, कालमासे कालं किच्चा चमरचंचाए रायहाणीए उववायसभाए
४. जाव इंदत्ताए उववण्णे। (श० ३।१०७)
तए णं से चमरे असुरिंदे असुरराया अहुणोववण्णे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गच्छइ। (श० ३।१०८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*आवै सुधर्म असुराधिप चमरिंद। (ध्रुपदं)

५. पंच पर्याप्ति करी पर्याप्त-भाव प्रतै असुरिंद।
पाम्यैं छतैं ऊर्ध्व सहज स्वभावे, अवधि करी जोविंद ।।

५. तए णं से चमरे असुरिंदे असुरराया पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गए, समाणे उड्ढं वीससाए ओहिणा आभोएइ

६. जाव सुधर्म-कल्प अवलोकै, तिहां शक्र सुरेंद्र पहिछान।
मेघमाली सुर छै वस जेहनैं, तिण सूं नाम मघवान ।।

६. जाव सोहम्मो कप्पो, पासइ य तत्थ—
सक्कं देविंदं देवरायं मघवं
'मघवं' ति मघा—महामेघास्ते यस्य वशे सन्त्यसौ मघवानतस्तं। (वृ०-प० १७४)

७. पाक नामैं बलवंत रिपु जे, निराकरंतो तास।
पाकशासन कहियैं इण कारण, एहवो है शक्र प्रकास ।।

७. पाकसासणं।
पाको नाम बलवान् रिपुस्तं यः शास्ति—निराकरोत्यसौ पाकशासनोऽतस्तं। (वृ०-प० १७४)

८. पडिमा पंचम बूहो सौ वेला, कार्त्तिक भव अपेक्षाय।
तिण कारण शतक्रतु नाम छै, एहवो शक्र महाराय ।।

८. सयक्कतुं
शतं क्रतूनां—प्रतिमानामभिग्रहविशेषाणां श्रमणोपासकपञ्चमप्रतिमारूपाणां वा कार्त्तिकश्रेष्ठिभवापेक्षया यस्यासौ शतक्रतुरतस्तं। (वृ०-प० १७४)

दूहा

९. 'वृत्ति विषै कह्यूं पंचमी, पडिमा जे सौ वार।
कीधी छै तिह कारणैं, शतक्रतु नाम उदार ।।

१०. धुर पडिमा दर्शन विषै, द्वितीय बार व्रत धार।
सामायिक तीजी विषै, देशावगासी सार ।।

११. षट पोसा इक मास में, पडिमा तुर्य सुजोय।
ए तो चिहुं पडिमा सदा, हुवैज छै अवलोय ।।

१२. तिण सूं पडिमा ए चिहुं, सौ वेलांज करेह।
एहवो नियम नथी तसुं, न्याय विचारी लेह ।।

१३. बारू पडिमा पंचमी, करी वार सौ ताय।
तिण सुं शतक्रतु नाम तसुं, इसो संभवै न्याय' ।।
(ज० स०)

१४. *मंत्री पंच सय इंद्र तणैं सुर, सहस्र-चक्षु छै ताय।
इंद्र तणैं प्रयोजन वर्त्तै, तिण सूं सहस्राक्ष इम वृत्ति मांय ।।

१४. सहस्सक्खं
इन्द्रस्य किल मन्त्रिणां पंच शतानि संति, तदीयानां चाक्षणामिन्द्रप्रयोजनव्यापृततयेन्द्रसम्बन्धित्वेन विवक्षणात्तस्य सहस्राक्षत्वमिति। (वृ०-प० १७४)

१५. अथवा सहस्र-चक्षु नो तेज छै, एहवो तेज सुलीह।
इंद्र तणों चक्षु नो लहियैं, एम कह्यो धर्मसीह ।।

१६. वज्र आयुध कर छै तिण कारण, वज्रपाणी कहिवाय।
असुर नां पुर नै विदारै तिण सूं, कह्यो पुरंदर ताय ।।

१६. वज्जपाणिं पुरंदरं।
'पुरंदरं' ति असुरादिपुराणां दारणात् पुरन्दरस्तम्।
(वृ०-प० १७४)

१७. यावत् इंद्र दशूं दिशि मांहै, तन आभरण नीं जाण।
कांति करीनैं उद्योत करतो, प्रभा तेज पहिछाण ।।

१७. जाव दस दिसाओ उज्जोवेमाणं पभासेमाणं

*लय—आवै लवणांकुस सझ साझा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. सुधर्म नामा कल्प विषै ते, सुधर्मावतंसक विमान।
सभा सुधर्मा शक्र सिंघासण, तिहां ते सुर-राजान॥

१९. जाव प्रधानज देव संबंधिया, भोग भोगवतो देख।
एहवो अध्यात्म चिंतित मन में, संकल्प[1] ऊपनों विशेख॥

२०. कुण रे एह अपस्थिय-पत्थए, मरण - वांछक विपरीत।
दुरंत पंत दुष्ट लक्षण नों धणी, लज्जा लक्ष्मी रहीत॥

२१. हीणपुन्य चउदसि नों ऊपनों, काली बूली अमावस-जायो।
जेह भणी मुझ ए एहवा, एहवै रूप करि युक्त ताह्यो॥

२२. दिव्य प्रधान जे देव तणी ऋद्धि, जावत् दिव्य प्रधान।
देव तणों अनुभाव लाधो अम्है, बलि पाम्यो सुविधान॥

२३. सन्मुख भोगविवा नै थयुं फुन, ते मुझ ऊपर एह।
अल्प थोडो छै ओत्सुक्य जेहनैं, भोग भोगवतो विचरेह॥

२४. इम चिंतव सामानिक परषद नां, सुर तेडी कहिवाय।
एह कवण रे अपत्थ-पत्थए, जाव भोग भोगवै ताय?

२५. ताम सामानिक परषद नां सुर, चमर तणी सुण वाय।
हरष संतोष पाया मन अधिको, जाव हियो विगसाय॥

२६. हाथ जोडी दश नख कर एकठा, मस्तक नैं विषै ताह्यो।
सिर आवर्त्तन करी साचै मन, बलि अंजलि अधिकायो॥

२७. जय-विजय करीनैं वधावी, बोलै हे देवानुप्रिया! एह।
शक्र देवेंद्र देव नों राजा, यावत् ए विचरेह॥

२८. ताम चमर ए वचन सुणी नैं, कोप्यो शीघ्र अपार।
रूठो, क्रोध नों उदय थयो अति रूद्र रूप हुओ तिणवार॥

२९. देदीप्यकाय थइ क्रोधे करि, सामानिक नैं ताय।
बलै परषद नां ऊपना सुर नैं, बोलै इह विध वाय॥

३०. अहो सामानिक! अछै अनेरो, शक्र सुरेंद्र सुरराय।
अहो सामानिक! अछै अनेरो, चमर असुर इंद ताय॥

१. चमरेन्द्र के मन में संकल्प उत्पन्न हुआ।

१८. सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए सक्कंसि सीहासणंसि

१९. जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणं पासइ, पासित्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—

२०. केस णं एस अपत्थियपत्थए दुरंतपंतलक्खणे हिरिमिरिपरिवज्जिए
'दुरंतपंतलक्खणे' त्ति दुरन्तानि—दुष्टावसानानि अत एव प्रान्तानि—अमनोज्ञानि लक्षणानि यस्य स तथा। (वृ०-प० १७४)

२१. हीणपुण्णचाउद्दसे जं णं ममं इमाए एयारूवाए
'हीणपुन्नचाउद्दसे' त्ति हीनायां पुण्यचतुर्दश्यां जातो हीनपुण्यचातुर्दशः, किल चतुर्दशी तिथिः पुण्या जन्माश्रित्य भवति, सा च पूर्णा अत्यन्तभाग्यवतो जन्मनि भवति अत आक्रोशतयोक्तम्। (वृ०-प० १७४)

२२, २३. दिव्वाए देविड्ढीए जाव दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए उप्पिं अप्पुस्सुए दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ—

२४. एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता सामाणियपरिसोववण्णए देवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—केस णं एस देवाणुप्पिया! अपत्थियपत्थए जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ? (श० ३।१०९)

२५. तए णं ते सामाणियपरिसोववण्णगा देवा चमरेणं असुरिंदेणं असुररण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ जाव हियया

२६. करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु

२७. जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावेत्ता एवं वयासी—एस णं देवाणुप्पिया! सक्के देविंदे देवराया जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ। (श० ३।११०)

२८. तए णं से चमरे असुरिंदे असुरराया तेसिं सामाणियपरिसोववण्णगाणं देवाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए

२९. मिसिमिसेमाणे ते सामाणियपरिसोववण्णगे देवे एवं वयासी—

३०. अण्णे खलु भो! से सक्के देविंदे देवराया, अण्णे खलु भो! से चमरे असुरिंदे असुरराया,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१. अहो सामानिक ! छै महाऋद्धिवंत, शक्र सुरेंद्र सुरराय।
अहो सामानिक ! छै अल्प ऋद्धिवंत, चमर असुर-इंद्र ताय ।।

३२. ते भणी हूं वंछूं छूं शक्र नीं, देवेंद्र देव राजा नीं।
आशातना करवी इम कहीनैं, थयो उष्ण उष्णभूत जानी ।।

३१. महिड्ढीए खलु भो ! से सक्के देविंदे देवराया, अप्पिड्ढीए खलु भो ! से चमरे असुरिंदे असुरराया,

३२. तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! सक्कं देविंदं देवरायं सयमेव अच्चासाइत्तए त्ति कट्टु उसिणे उसिणब्भूए जाए यावि होत्था। (श० ३।११९)

सोरठा

३३. उष्ण कोप संताप, तेह थकी जे ऊपनों।
उष्ण भाव प्रति व्याप, स्वभाव थी पिण ते हुवै ।।

३३. 'उसिणे' त्ति उष्णः कोपसन्तापात्, कोपसन्तापजं चोष्णत्वं कस्यचित् स्वभावतोऽपि स्यादित्याह—
(वृ०-प० १७५)

३४. तिण सूं आगल ताम, उष्णभूत ए क्रोध करि।
उष्णपणुं ए पाम, स्वाभाविक ए उष्ण नहिं ।।

३४. 'उसिणब्भूए' त्ति अस्वाभाविकमौष्ण्यं प्राप्त इत्यर्थः।
(वृ०-प० १७५)

३५. *ताम चमर ते असुर तणो इंद्र, अवधि करी अवलोय।
मुझनैं देख इसो अध्यातम, जावत् ऊपनों सोय ।।

३५. तए णं से चमरे असुरिंदे असुरराया ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता ममं ओहिणा आभोएइ, आभोएत्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—

३६. श्रमण भगवंत महावीर निश्चै इम, जंबूद्वीप भरत सुंसुमार।
अशोक वन खंड अशोक तरु तल, पृथ्वी-शिला-पट्ट सार ।।

३६. एवं खलु समणे भगवं महावीरे जंबूदीवे दीवे भारहे वासे सुंसुमारपुरे नयरे असोगसंडे उज्जाणे असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलावट्टयंसि

३७. एक रात्रि नीं महापडिमा प्रति, विचरै कर अंगीकार।
श्रेय मुझ वीर नेश्राय शक्र नीं, करूं आशातना इह वार ।।

३७. अट्ठमभत्तं पगिण्हित्ता एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरति, तं सेयं खलु मे समणं भगवं महावीरं णीसाए सक्कं देविंदं देवरायं सयमेव अच्चासाइत्तए

३८. इम चिंतव सेज्या थी ऊठी, देवदूष्य पहिरंत।
जे उपपात-सभा नैं पूरव-द्वार करी निकलंत ।।

३८. इति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता देवदूसं परिहेइ, परिहेत्ता

३९. जिहां सुधर्मा सभा बलि छै, जिहां चोफाल प्रहरण कोश।
ए आयुध नीं शाल अछै जिहां, आवै धरतो जोस ।।

३९. जेणेव सभा सुहम्मा जेणेव चोप्पाले पहरणकोसे तेणेव उवागच्छइ,

४०. भोगल नैं आकार एहवुं, फलिह-रयण ग्रही हाथ।
सखाइया विण चाल्यो एकलो, बीजो को नहीं साथ ।।

४०. फलिहरयणं परामुसइ, एगे अबीए

सोरठा

४१. इहां एक कहिवाय, बहु परिवार विषै अपि।
वंछित नहीं सहाय, ते पिण इक ववहार थी ।।

४२. अथवा आगल एह, बीजो को नहिं इम कह्यो।
पिंड मात्र पिण तेह, द्वितीय तणाज अभाव थी ।।

४१, ४२. एकत्वं च बहुपरिवारभावेऽपि विवक्षित सहायाभावाद् व्यवहारतो भवतीत्यत आह—'अबिइए' त्ति अद्वितीयो पिंडरूपमात्रस्यापि द्वितीयस्याभावादिति।
(वृ०-प० १७५)

४३. *परिघ ग्रही महाअमरस धरतो, चमरचंचा रजधानी।
मध्य थइ आयो तिगिच्छकूटे, गिरि-उत्पात पिछानी ।।

४३. फलिहरयणमायाए महया अमरिसं वहमाणे चमरचंचाए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव तिगिंछिकूडे उप्पायपव्वए तेणेव उवागच्छइ,

४४. जावत् दूजी बार वैक्रिय, समुद्घात करि सोय।
ताम चमर संख्यात जोजन नों, दंड करै अवलोय ।।

४४. उवागच्छित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ,

*लय—आवै लवणांकुस सभ साभा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४५. जाव उत्तर वैक्रिय रूप ते, नवो विकूर्वे शरीर।
ते उत्कृष्टी गति करि यावत्, आयो म्हारै तीर॥

४६. तीन प्रदक्षिण दे मुझ वंदी, नमण करी कहै वाय।
वांछूं प्रभु ! तुझ नेश्राय शक्र नीं, करवी आशातन ताय॥

४७. इम कही ईशाण कूण में जइ नैं, करि वैक्रिय - समुद्घात।
जाव बीजी वार समुद्घात करि, मोटी देह रची विख्यात॥

४८. इक महा घोर डरावण रूप जे, बीहामणो आकार।
भय उपजावणहार भीम ते, आकार भयदातार॥

४९. भासुर ते देदीप्यमान छै, भय हेतु सेन्य सरीस।
उल्का स्फुलिंगादिक सेन्या, बिखरचा अवयव दीस॥

५०. याद आयां पिण उद्वेग ऊपजै, अमावस्या अर्ध रात।
उडद नीं रास सरीखी काया, योजन लक्ष विख्यात॥

५१. एहवी मोटी देह विकुर्वी, कर-आस्फोटन करतो।
दोनूंइ हाथ भेला कर पीटै, भूमि आलिंगन धरतो॥

५२. शब्द गर्जारव करै घन सरीखो, गज नी पर गुलगुलाट।
हय नीं पर हींसारव करतो, रथ नीं पर घणघणाट॥

५३. पगे करी पृथ्वी आस्फोटन, करतो अधिक अपार।
भूमि चपेटा प्रहार करीनैं, विदारै तिणवार॥

५४. सीहनाद रव सिंघ तणी पर, दै आगल मुख नै चपेटा।
पूठ थकी पिण दियै चपेटा, रूप विकराल सुधेटा॥

५५. रंग-भूमिका विषै मल्ल जिम, त्रिपदी छेद करंतो।
विविध प्रकारै करै कुचेष्टा, पिण किण सूं न डरंतो॥

५६. वामी भुजा प्रतै करि ऊंची, जीमणा कर नों जोय।
अंगूठा नां नख सूं तिरछो, मुख विटंबै सोय॥

५७. मोटे शब्दै कलकल करतो, एकलो अवर न साथ।
फलिह नामै रत्न लेइनैं, गगने चलियो जात॥

४५. समोहणित्ता जाव उत्तरवेउव्वियं रूवं विकुव्वइ, विकुव्वित्ता ताए उक्किट्ठाए...जेणेव मम अंतिए तेणेव उवागच्छइ,

४६. उवागच्छित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ जाव नमंसित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भंते ! तुब्भं नीसाए सक्कं देविंदं देवरायं सयमेव अच्चासाइत्तए

४७. इति कट्टु उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमेइ, अवक्कमेत्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णति, समोहणित्ता जाव दोच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ

४८. एगं महं घोरं घोरागारं भीमं भीमागारं
'घोरं' ति हिंस्रां, कथम् ?—यतो 'घोराकारां' हिंस्राकृतिं 'भीमं' ति 'भीमां' विकरालत्वेन भयजनिकां, कथम् ?—यतो 'भीमाकारां' भयजनकाकृतिं। (वृ०-प० १७५)

४९. भासुरं भयाणीयं गंभीरं
'भासुरं' त्ति भास्वरां 'भयं भयहेतुत्वादनीकं—तत् परिवारभूतमुल्कास्फुलिंगादि सैन्यं यस्याः सा भयानीका, 'गंभीरं' ति गंभीरां विकीर्णावयवत्वात्। (वृ०-प० १७५)

५०. उक्कासहस्सइं पमुंचमाणं पमुंचमाणं जोयणसयसाहस्सीयं
स्मरणेनाप्युद्वेगजनिकां। (वृ०-प० १७५)

५१. महावोंदिं विउव्व इविउव्वित्ता, अप्फोडेइ
'महावोंदिं' न्ति महाप्रभावतनुम् 'अप्फोडेइ' त्ति करास्फोटं करोति। (वृ०-प० १७५)

५२. वग्गइ गज्जइ, हयहेसियं करेइ, हत्थिगुलगुलाइयं करेइ, रहघणघणाइयं करेइ,

५३. पायदद्दरगं करेइ, भूमिचवेडयं दलयइ,
'पायदद्दरगं' ति भूमेः पादेनास्फोटनम्।(वृ०-प० १७५)

५४. सीहणादं नदइ, उच्छोलेइ पच्छोलेइ
'उच्छोलेइ' त्ति अग्रतोमुखां चपेटां ददाति 'पच्छोलेइ' त्ति पृष्ठतोमुखां चपेटां ददाति। (वृ०-प० १७५)

५५. तिवइं छिंदइ,
'तिवइं छिंदइ' त्ति मल्ल इव रंगभूमौ त्रिपदीच्छेदं करोति। (वृ०-प० १७५)

५६. वामं भुयं ऊसवेइ, दाहिणहत्थपदेसिणीए अंगुट्ठणहेण य वितिरिच्छं मुहं विडंवेइ,
'ऊसवेइ' त्ति उच्छ्रितं करोति 'विडंवेइ' त्ति विवृतं करोति। (वृ०-प० १७५)

५७. महया-महया सद्देण कलकलरवं करेइ एगे अबीए फलिहरयणमायाए उड्ढं वेहासं उप्पइए—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८. अधोलोक खोभावतो जाणक, जाणै मेदनीतल कंपातो।
जन थी आकर्षतो तिरछा-लोक नै, सुधर्म स्वर्गे जातो॥

५९. जाणक अंबर तल फोडंतो, किणही स्थान गाजंतो।
किणही स्थानक बीजल नी पर, चमकत नैं झबकंतो॥

६०. किणही स्थानक मेह वरसावै, रजो वृष्टि किहां करतो।
अंधकार ते तमसकाय प्रति, किणही स्थानके धरतो॥

६१. व्यंतर-सुर नैं त्रास विशेषै, उपजावतो हरषावै।
जोतिषि बे भागे करतो, बीच निकलतो जावै॥

६२. आत्मरक्षक नैं त्रास पमावत, करतो अति तोफान।
परिघ आयुध नैं आकाशतल में, उलालतो द्युतिमान॥

६३. ते उत्कृष्टी गति कर चालत, जाव तिरछा असंख्यात।
द्वीप समुद्र नैं मध्य थइ नैं, उलांघतो थको जात॥

६४. जिहां सुधर्म-कल्प सुधर्म-अवतंसक बीच ए शक्र विमाण।
जिहां सुधर्मा शक्र सभा छै, तिहां आयो धर माण॥

६५. इक पग पद्मवेदिका ऊपर, सुधर्मा-सभा पग एक।
अजाणचकरो[1] आवी ऊभो, रूप विकराल विशेख॥

६६. परिघ रत्न ते आयुध करिकै, मोटै मोटै रव ताय।
प्रतोली कपाट युग मध्य प्रतै ए, तीन बार कूटी कहै वाय॥

६७. किहां रे शक्रसुर इंद सुरराजा, किहां सामानिक चउरासी हजारं।
किहां तावतेतीसक देवता, लोकपाल किहां च्यारं॥

६८. किहां आत्म-रक्षक तीन लाख अरु, ऊपर छतीस हजारं।
अनेक अपछरा कोडांगमैं ते, किहां गई इहवारं॥

६९. हणस्यूं आज मथूं दही नीं पर, वध करूं हूं आज।
पूर्वे वस नहीं जेह अपछरा, मुझ वस थइ नमियै समाज॥

७०. इम कहीनै अनिष्ट अकांतज, अप्रिय असुभ अगमता।
मन में नहीं रुचै तेहवा कठण वच, निशंकपणै इम वमता॥

७१. अंक बत्तीस नुं देश कह्यूं ए, अठावनमीं ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादै, 'जय-जश' मंगलमाल॥

५८. खोभंते चेव अहेलोयं कंपेमाणे व मेइणीतलं साकड्ढंते व तिरियलोयं

५९. फोडेमाणे व अंबरतलं कत्थइ गज्जंते, कत्थइ विज्जुयायंते,

६०. कत्थइ वासं वासमाणे, कत्थइ रयुग्घायं पकरेमाणे, कत्थइ तमुक्कायं पकरेमाणे,

६१. वाणमंतरे देवे वित्तासेमाणे-वित्तासेमाणे जोइसिए देवे दुहा विभयमाणे-विभयमाणे,

६२. आयरक्खे देवे विपलायमाणे-विपलायमाणे, फलिहरयणं अंबरतलंसि वियट्टमाणे-वियट्टमाणे, विउब्भाएमाणे-विउब्भाएमाणे

६३. ताए उक्किट्ठाए जाव तिरियमसंखेज्जाणं दीव-समुद्दाणं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणे-वीईवयमाणे

६४. जेणेव सोहम्मे कप्पे जेणेव सोहम्मवडेंसए विमाणे, जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव उवागच्छइ

६५. एगं पायं पउमवरवेइयाए करेइ, एगं पायं सभाए सुहम्माए करेइ,

६६. फलिहरयणेणं महया-महया सद्देणं तिक्खुत्तो इंदकीलं आउडेइ आउडेत्ता एवं वयासी—
'इंदकील' त्ति गोपुरकपाटयुगसन्धिनिवेशस्थानम्।
(वृ०-प० १७५)

६७. कहि णं भो! सक्के देविंदे देवराया? कहि णं ताओ चउरासीइसामाणियसाहस्सीओ? कहि णं ते तायत्तीसयतावत्तीसगा? कहि णं ते चत्तारि लोगपाला?

६८. कहि णं ताओ चत्तारि चउरासीईओ आयरक्खदेवसाहस्सीओ? कहि णं ताओ अणेगाओ अच्छराकोडीओ?

६९. अज्ज हणामि, अज्ज महेमि, अज्ज वहेमि, अज्ज मम अवसाओ अच्छराओ वसमुवणमंतु

७०. इति कट्टु तं अणिट्ठं अकंतं अप्पियं असुभं अमणुण्णं अमणामं फरुसं गिरं निसिरइ। (श० ३।११२)

---

१. अचानक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ५९

दूहा

१. शक्र देवेंद्र तिण अवसरै, अनिष्ट शब्द अपार।
जावत् अणगमता घणां, चित अणरुचता धार॥

१. तए णं से सक्के देविंदे देवराया तं अणिट्ठं जाव अमणामं

२. पूर्वे कदेइ नां सुण्या, वचन इसा सुण कान।
कोप्यो शीघ्र ऊतावलो, जाव मिसमिसायमान॥

२. अस्सुयपुव्वं फरुसं गिरं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे

३. *प्रबल क्रुध अनल जल सबल कल शक्र नों,
शीघ्र मुख अरुण अति रोस जानं।
प्रगट ही क्रोध नों उदय अति दीसतुं,
जाज्वलमान देदीप्यमानं॥

४. तिवलियं तिण जे वलय सल चाटनैं, भृकुटी तिसूल जे दृष्टि स्थाप।
तेह निलाड नैं विषै चढाय नैं, चमर असुरेंद्र नैं कहै आप॥

४. तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु चमरं असुरिंदं असुरायं एवं वदासी—

५. हं भो चमरा! असुरेंद्र! असुराधिप! अपत्थियपत्थिया! मरणकामी!
अंत अति प्रांत जे लक्षण नां धणी, लज्जा लक्ष्मी-रहित तूं हरामी॥

५. हं भो! चमरा! असुरिंदा! असुरराया! अपत्थियपत्थया! दुरंतपंतलक्खणा! हिरिसिरिपरिवज्जिया!

६. हीणपुण्ण चउदसि अमावस्य जाइयो, आज तूं नहीं तुझ सुक्ख नांही।
इम कही तेह सिंघासण ते छतुं, हाथ में वज्र लीधो छै त्यांही॥

६. हीणपुण्णचाउद्दसा! अज्ज न भवसि, नाहि ते सुहमत्थीनि कट्टु तत्थेव सीहासणवरगए वज्जं परामुसइ,

७. जाज्वलमान ते वज्र जलतो छतो, प्रगट ही फुट-फुट शब्द करतो।
तट-तट शब्द बलि वज्र करतो छतो, सहस्रगमे उलकपात झरतो॥

७. तं जलंतं फुडंतं तडतडंतं उक्कासहस्साइं विणिम्मुयमाणं-विणिम्मुयमाणं,

८. सहस्रगमे ही ज्वाला प्रति मूंकतो, वखेरतो सहस्रगमे अंगारा।
फुलिंग ते अग्नि नां कणिया ज्वाला तसुं, माल पंक्ति जसुं सहस्र धारा॥

८. जालासहस्साइं पमुंचमाणं-पमुंचमाणं, इंगालसहस्साइं पविक्खिरमाणं-पविक्खिरमाणं फुलिंगजालामालासहस्सेहिं

९. चक्षु-विक्षेप भ्रम ऊपजै नेत्र में, दृष्टि-प्रतिघात दर्शन अभावो।
तेह प्रकर्षे अतिहीज करतो छतो, एहवो वज्र अरि हणण दावो॥

९. चक्खुविक्खेवदिट्ठिपडिघातं पि पकरेमाणं
चक्षुर्विक्षेपश्च—चक्षुर्भ्रमः दृष्टिप्रतिघातश्च—दर्शनाभावः चक्षुर्विक्षेपदृष्टिप्रतिघातं। (वृ०-प० १७५)

१०. अग्नि थकी पिण अधिक तेजे करी, देदीप्यमान जयी वेगवंत।
फूल्या केसूला नों वृक्ष ते सारिखो, महाभय नुं उपजावणहार मंत॥

१०. हुयवहअइरेगतेयदिप्पंतं जइणवेगं फुल्लकिंसुयसमाणं महब्भयं
'जइणवेगं' ति जयी शेषवेगवद्वेगजयी वेगो यस्य।
(वृ०-प० १७५)

११. भयंकर भय तणुं एह कर्त्ता अछै, एहवो वज्र ले शक्र हाथ।
मूकियो तामस अधिक कोपे करी, चमर असुरेंद्र नीं करण घात॥

११. भयंकरं चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो वहाए वज्जं निसिरइ। (श० ३।११३)
'भयंकरं' भयकर्तृ। (वृ०-प० १७५)

१२. ताम असुराधिप चमर असुरेंद्र ते, जलत् यावत् भय करणहारो।
एहवा वज्र नैं सन्मुख आवतो, देखी नैं करवा लागो विचारो॥

१२. तए णं से चमरे असुरिंदे असुरराया तं जलंतं जाव भयंकरं वज्जमभिमुहं आवयमाणं पासइ, पासित्ता

१३. झियाइ ए स्यूं आवै? इम चितवै, पिहाइ कहितां अभिलाष धरतो।
आयुध एहवूं म्हारै ह्वै तो भलुं, तथा स्वस्थान गमन अभिलाष करतो॥

१३. झियाइ पिहाइ,
'झियाइ' त्ति 'ध्यायति' किमेतत्? इति चिन्तयति, तथा 'पिहाइ' त्ति 'स्पृहयति' यद्येवंविधं प्रहरणं ममापि स्यादित्येवं तदभिलषति स्वस्थानगमनं वाऽभिलषति।
(वृ०-प० १७५)

*लय—कडखा नीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. अथवा पिहाइ ते आंख ढांकै वलि, पिहाइ झियाइ वलि पाठ आख्यो ।
पूर्वे क्रिया कहि तेहिज बे वार ही, अधिक आकुलपणों तास दाख्यो ।।

१५. ध्यावतो तिमज तत्काल पाछो वल्यो, भागो छै मुकुट-विस्तार रचना ।
हस्त नां आभरण हालता कर ग्रहै, अधोमुख गमन वसथीज लछना ।।

१६. ऊर्ध्व पग मस्तक नीचो है जेहनों, कक्ष विषै ज्यूं प्रसेद आवै ।
ओपम ए कही अधिक भय थी लही, सुर नें पसेवो तो नांहि भावै ।।

१७. गति उत्कृष्ट वेग करि भाजतो, जाव तिरछा असंखेज्ज जाणी ।
द्वीप-समुद्र नै मध्ये-मध्ये करी, अधिक उलांघतो त्रास आणी ।।
१८. जिहां जंबूनामा द्वीप जिहां भरत छै, जाव अशोक तरु छै प्रधानं ।
मुझ कनै आवियो अधिक भय पामतो, भय करी गगर वदत वानं ।।

१९. हे भगवंत ! तुझ सरण मुझ नै अछै, एम वच वदत असुरेंद्र आपो ।
मुझ पग उभय अंतर बिचै शीघ्र थी,वेग करि छिप रह्यूं मन संतापो ।।
२०. शक्र देवेंद्र सुरराज तिण अवसरै, चित विचार इम ताम करतो ।
सक्त समर्थ अरु विषय नहीं चमर नीं, आपणी नेश्राय आय अडतो ।।

२१. उड्ढं उप्पइत्ता ते ऊंचो आवी करी, जाव सौधर्म - कल्पेज आयं ।
तीन नेश्राय विण अन्य नेश्राय थी, चमर नीं पोंहच नहीं छै ताह्यं ।
२२. अरिहंत, अरिहंत-चैत्य, अणगार नीं, नेश्राय जाव सुधर्म आवै ।
महादुख अरिहंत भगवंत अणगार नीं,आसातन सोभ थी भ्रंस थावै ।।

२३. इम कही अवधि प्रजूंज मुख देखियो, हा ! हा ! ए खेद वचने कहायो ।
अहो ! ए आश्चर्य-वचन शक्रे कह्यूं, हूं हणाणुं छूं इम कहिनै ध्यायो ।।
२४. ते उत्कृष्ट गति वेगवती करी, जाव दिव्य देवगति करि अथायो ।
वज्र नां मार्ग केड जाते थके, द्वीपोदधि असंख मध्य थइनै ताह्यो ।।

२५. यावत् वृक्ष अशोक अछै जिहां, मुझ समीप इम शीघ्र आयो ।
मुझ थकी वज्र चउ आंगुल अलग प्रति, संहरै शक्र सौधर्म-रायो ।।

१४. पिहाइ झियाइ,
अथवा 'पिहाइ' त्ति अक्षिणी पिधत्ते---निमीलयति, 'पिहाइ झियाइ' त्ति पूर्वोक्तमेव क्रियाद्वयं व्यत्ययेन करोति अनेन च तस्यातिव्याकुलतोक्ता ।(वृ०-प०१७५)
१५. झियाइत्ता पिहाइत्ता तहेव संभग्गमउडविडवे सालंबहत्थाभरणे
'तहेव' त्ति यथा ध्यातवांस्तथैव तत्क्षण एवेत्यर्थः 'संभग्गमउडविडवे' त्ति संभग्नो मुकुटविटपः शेखरकविस्तारो यस्य स तथा 'सालंबहत्थाभरणे' त्ति सहआलम्बेन-प्रलम्बेन वर्तन्ते सालम्बानि तानि हस्ताभरणानि यस्याधोमुखगमनवशादसौ सालम्बहस्ताभरणः ।
(वृ०-प० १७५)
१६. उड्ढंपाए अहोसिरे कक्खागयसेयं पिव विणिम्मुयमाणे-विणिम्मुयमाणे
भयातिरेकात् कक्षागतं स्वेदमिव मुञ्चयन्, देवानां किल स्वेदो न भवतीति संदर्शनार्थः पिवशब्दः ।
(वृ०-प० १७५)
१७. ताए उक्किट्ठाए जाव तिरियमसंखेज्जाणं दीव-समुद्दाणं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणे-वीईवयमाणे
१८. जेणेव जंबूदीवे दीवे जाव जेणेव असोगवरपायवे जेणेव मम अंतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भीए भयगग्गरसरे
१९. भगवं सरणं इति वुयमाणे ममं दोण्ह वि पायाणं अंतरंसि झत्ति वेगेणं समोवडिए । (श० ३।११४)
२०. तए णं तस्स मक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—नो खलु पभू चमरे असुरिंदे असुरराया, नो खलु समत्थे चमरे असुरिंदे असुरराया, नो खलु विसए चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो अप्पणो निस्साए
२१. उड्ढं उप्पइत्ता जाव सोहम्मो कप्पो,

२२. नण्णत्थ अरहंते वा, अरहंतचेइयाणि वा, अणगारे वा भाविअप्पाणो नीसाए उड्ढं उप्पयइ जाव सोहम्मो कप्पो, तं महादुक्खं खलु तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं अणगाराण य अच्चासायणाए
२३. इति कट्टु ओहिं पउंजइ, ममं ओहिणा आभोएइ, आभोएत्ता हा ! हा ! अहो ! हतो अहमंसि त्ति कट्टु
२४. ताए उक्किट्ठाए जाव दिव्वाए देवगईए वज्जस्स वीहिं अणुगच्छमाणे-अणुगच्छमाणे तिरियमसंखेज्जाणं दीव-समुद्दाणं मज्झंमज्झेणं
२५. जाव जेणेव असोगवरपायवे, जेणेव ममं अंतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ममं चउरंगुलमसंपत्तं वज्जं पडिसाहरइ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६. अंक बत्तीस नुं देश आख्यो इहां, तीस गुणतीसमीं ढाल ताजी।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय प्रसाद थी, 'जय-जश' संपति सरस जाझी ।।

ढाल : ६०

दूहा

१. अति वेगे करि गोयमा ! वज्र ग्रहण नै काज।
मुष्टि-वाय करि मांहरा, केशाग्र वीजिया साज ।।

१. अवियाइं मे गोयमा ! मुट्ठिवाएणं केसग्गे वीइत्था।
(श० ३।११५)

२. मुष्टि बांधवै करि तदा, उपनों वायू ताय।
तिण मुष्टी-वाये करी, मुझ केश अग्र कंपाय ।।

*गोयम ! चित लगाय नै सांभलो। (ध्रुपदं)

३. शक्र देविंद्र तिण अवसरै, रूडो ते सुरराय हो, गोयम !
शीघ्र वज्र प्रति संहरी, तुरत ग्रही वज्र ताय हो, गोयम !

३. तए णं से सक्के देविंदे देवराया वज्जं पडिसाहरित्ता

४. मुझ तीन वार तीखे मनै, दक्षिण कर थी देख।
प्रदक्षिणा दे प्रेम सूं, वंदै हरष विशेख ।।

४. ममं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ

५. नमस्कार चित निरमलै, वारू कर कहै वाय हो, प्रभुजी !
इम निश्चै भगवंत हूं, इण कारण इहां आय हो, प्रभुजी !
[हूं अरज करूं छूं वीनती]

५. नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासि—एवं खलु भंते !

६. तुझ नेश्राये चमर ते, असुरिंद सुधर्मे आय।
आपणपेज आसातना, कीधी मुझ अधिकाय ।।

६. अहं तुब्भं नीसाए चमरेणं असुरिंदेणं असुर रण्णा सयमेव अच्चासाइए।

७. तव हूं कोप्यो तुरत ही, मूक्यो वज्र महाराय।
चमर हणेवा चित करी, भारी द्वेष भराय ।।

७ तए णं मए परिकुविएणं समाणेणं चमरस्स असुरिंदस्स असुर रण्णो वहाए वज्जे निसट्ठे।

८. वज्र मूक्यां पछै मुझ वली, पाम्यो संकल्प पूज्य।
नहीं शक्ति ए चमर नों, यावत् अवधि प्रयुज्य ।।

८. तए णं ममं इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—नो खलु पभू चमरे असुरिंदे असुर राया तहेव जाव ओहिं पउंजामि,

९. अवधि करी अवलोकिया, देवानुप्रिय देख।
हा ! हा ! इति खेदे कही, यावत् सर्व संपेख ।।

९. देवाणुप्पिए ! ओहिणा आभोएमि, आभोएत्ता हा ! हा ! अहो ! हतो अहमंसि त्ति कट्टु ताए उक्किट्ठाए जाव

१०. हे देवानुप्रिया नै कनै, निश्चै आयो हूं आज।
आंगुल च्यार अणपामिया, संहरियो वज्र साज ।।

१०. जेणेव देवाणुप्पिए तेणेव उवागच्छामि, देवाणुप्पियाणं चउरंगुलमसंपत्तं वज्जं पडिसाहरामि,

११. वज्र प्रतै ग्रहिवा भणी, आयो इहां चलाय।
ईणहिज तिरछा लोक में, अवर कारण नहिं आय ।।

११. वज्जपडिसाहरणट्ठयाए णं इहमागए

१२. ए सुंसुमारपुर नगर नै विषै, समोसरचो अवधार।
संप्राप्त थयो स्वामजी ! उद्याने इह वार ।।

१२. इह समोसढे इह संपत्ते

*लय—स्वामी म्हारा राजा नै धर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. अज्ज पाठ नों अर्थ ए, आज दिवस अवधार।
अथवा आरज ! हे मुनि ! विरुआ पाप थी वार।।

१३. इहेव अज्ज
'अज्जे' ति 'अद्य' अस्मिन्नहनि अथवा हे आर्य ! पाप-कर्मवहिर्भूत ! (वृ०-प० १७६)

१४. अंगीकार कर आपनै, विचरूं हूं इण वार।
ते माटै खमाऊं तुझै, देवानुप्रिय ! धार।।

१४. उवसंपज्जित्ता णं विहरामि। तं खामेमि णं देवाणुप्पिया !

१५. खमो तुम्है देवानुप्रिया ! ए म्हारो अपराध।
खमवा योग्य तुम्है खरा, सम दम भाव समाध।।

१५. खमंतु णं देवाणुप्पिया ! खंतुमरिहंति णं देवाणुप्पिया !

१६. आज पछै काम एहवो, वलि न करूं दूजी वार।
इम कही मुझ नै इंद्र ते, वंदै स्तुति विचार।।

१६. नाइ भुज्जो एवं करणयाए त्ति कट्टु ममं वंदइ

१७. नमस्कार करि नै तदा, जइ ईशाण कोण जिवार।
पग डावै पृथ्वी प्रतै, विदारै त्रिण वार।।

१७. नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, वामेणं पादेणं तिक्खुत्तो भूमिं विदलेइ,

१८. वलि शक्र चमर नै इम वदै, अहो चमर ! असुरिंद !
मूक्यो छै तुझनै अम्है, स्वाम प्रभावे सोहिंद।।

१८. विदलेत्ता चमरं असुरिंदं असुररायं एवं वदासि—मुक्को सि णं भो चमरा ! असुरिंदा ! असुरराया ! समणस्स भगवओ महावीरस्स पभावेणं—

१९. हिवडां तुझनै भय नहीं, मुझ सेती मत ल्याय।
एम कही शक्र इंद्र ते, आयो जिण दिशि जाय।।

१९. नाहि ते दाणिं ममातो भयमत्थि त्ति कट्टु जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए। (श० ३।११६)

२०. अंक बत्तीस नुं देश ए, ए ढाल साठमीं होय।
भिक्खु भारीमाल ऋषरायथी, 'जय-जश' संपति जोय।।

ढाल : ६१

दूहा

१. पुद्गल पाषाणादि प्रति, न्हाखी नैं नर तेह।
जाता प्रतै वलि झेलवा, समर्थ नहि दीसेह।।

१. इह लेष्ट्वादिकं पुद्गलं क्षिप्तं गच्छन्तं क्षेपकमनुष्य-स्तावद्ग्रहीतुं न शक्नोतीति दृश्यते। (वृ०-प० १७६)

२. सुर स्यूं ते समर्थ हुवै ? जिण कारण ते जोय।
वज्र मूकनैं शक्र वलि, संहर ग्रह्योज सोय।।

२. देवस्तु किं शक्नोति ? येन शक्रेण वज्रं क्षिप्तं संहृतं च। (वृ०-प० १७६)

३. तथा वज्र तिण संहरयो, तो चमर भणी तिणवार।
किम न ग्रह्यो शक्रे तदा, ए अभिप्राय उदार।।

४. तेहना ए प्रस्ताव तैं, प्रश्नोत्तर पहिछाण।
निसुणो चित्त लगाय नैं, वारू अर्थ विनाण।।

३, ४. तथा वज्रं चेद्गृहीतं चमरः कस्मान्न गृहीत इत्यभिप्रायतः प्रस्तावनोपेतं प्रश्नोत्तरमाह—(वृ०-प० १७६)

५. हे भदंत ! इण विध कही, वीर प्रभु प्रति वंद।
नमस्कार करनै वलि, कहै गोयम सुखकंद।।

५. भंतेत्ति ! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वदासी—

*जय-जय ज्ञान जिनेंद्र तणो छै। (ध्रुपदं)

६. हे भगवंत ! देव महाऋद्धिवंत, जावत् महानुभाव सुजोय।
पहिलां पुद्गल न्हाखी ते पुद्गल नैं, पूठ जइ ग्रहवा समर्थ होय ?

६. देवे णं भंते ! महिड्ढीए जाव महाणुभागे पुव्वामेव पोग्गलं खिवित्ता पभू तमेवं अणुपरियट्टित्ता णं गेण्हित्तए ?

*लय—आ अणुकंपा जिन आज्ञा में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. हंता जिन कहै समर्थ होवै, किण अर्थे प्रभुजी ! कहिवाय ।
जिन कहै पुद्गल न्हाख्यो थको जे, पूर्व शीघ्र हुवै गति ताय ।।

८. पहिलां उतावलो चाली नैं पुद्गल, हलवै हलवै पछै मंद-गति हालै ।
महर्द्धिक सुर पहिलां नैं पछै पिण, ते शीघ्र अत्यंत शीघ्र गति चालै ।।

९. त्वरित त्वरित-गति मन उत्सुक तैं, शीघ्र त्वरित ते एकार्थ सोय ।
तिण अर्थे करि गोयम ! यावत्, समर्थ पुद्गल ग्रहण सुजोय ।।

१०. जो प्रभु ! देवेंद्र महर्द्धिक यावत्, पुद्गल ग्रहण करै पूठे जाय ।
तो प्रभु ! शक्र स्व-हस्त करी नैं, चमर ग्रहण किम समर्थ नांय ?

११. जिन कहै असुर नों अधोगति-विषय, शीघ्र-शीघ्र त्वरित-त्वरित विशेख ।
ऊर्ध्वगति - विषय अल्प-अल्प छै, मंद-मंद ते अतिमंद पेख ।।

१२. वैमानिक नीं ऊर्ध्वगति-विषय, शीघ्र-शीघ्र त्वरित-त्वरित विशेख ।
अधोगति-विषय अल्प-अल्प छै, मंद-मंद ते अधिक मंद पेख ।।

१३. शक्र देवेंद्र ते एक समय में, जेतलो खेत्र ऊंचो जाय चीन ।
तेतलुं क्षेत्र वज्र बे समये, जे वज्र बे समय ते चमर नैं तीन ।।

१४. सर्व थोडो काल लागै शक्र नैं, ऊर्ध्व-लोक जातां कालखंड ।
अति शीघ्रपणां थकी कालखंड तसुं, समय रूप कहियै छै सुमंड ।।

१५. तेहथी अधोलोक जातां थकां जे, संख्यातगुणो दुगुणो कालखंड ।
अधोलोक गमन विषै शक्र नैं, मंद-गति छै तेहथी ए मंड ।।

१६. चमर असुरेंद्र ते एक समय में, जेतलो खेत्र नीचो जावै चीन ।
ते क्षेत्र शक्र बे समय में जावै, जे शक्र बे समय ते वज्र नैं तीन ।।

१७. सर्व थोडो काल लागै चमर नैं, अधोलोक जातां कालखंड ।
अति शीघ्रपणां थकी कालखंड ते, समय रूप कहियै छै सुमंड ।।

१८. तेहथी ऊर्ध्वलोक जातां चमर नैं, संख्यातगुणो कालखंड सोय ।
अधोलोक कालखंड नीं अपेक्षा, ऊर्ध्वलोक जातां दुगुणो काल होय ।।

१९. इम निश्चै गोयम शक्र देविंद्र ते, चमर असुरिंद्र असुरराजा नैं ।
पोतै नैं हाथे करी नैं प्रत्यक्ष, समर्थ नहीं छै तास ग्रहिवा नैं ।।

७. हंता पभू । (श० ३।११७)

से केणट्ठेणं जाव गेण्हित्तए ? गोयमा ! पोग्गले णं खित्ते समाणे

८. पुव्वामेव सिग्घगई भवित्ता ततो पच्छा मंदगती भवति, देवे णं महिड्ढीए जाव महाणुभागे पुव्विं पि पच्छा वि सीहे सीहगति चेव

९. तुरिए तुरियगती चेव । से तेणट्ठेणं जाव पभू गेण्हित्तए । (श० ३।११८)

'त्वरितगतिः' मानसौत्सुक्यप्रवर्तितवेगवद्गतिरिति । (वृ-प० १७८)

१०. जइ णं भंते ! देवे महिड्ढीए जाव पभू तमेव अणुपरियट्टित्ता णं गेण्हित्तए, कम्हा णं भंते ! सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा चमरे असुरिंदे असुरराया नो संचाइए साहित्थं गेण्हित्तए ?

११. गोयमा ! असुरकुमाराणं देवाणं अहे गइविसए सीहे-सीहे चेव तुरिए-तुरिए चेव, उड्ढं गइविसए अप्पे-अप्पे चेव मंदे-मंदे चेव ।

१२. वेमाणियाणं देवाणं उड्ढं गइविसए सीहे-सीहे चेव । तुरिए-तुरिए चेव, अहे गइविसए अप्पे-अप्पे चेव मंदे-मंदे चेव ।

१३. जावतियं खेत्तं सक्के देविंदे देवराया उड्ढं उप्पयइ एक्केणं समएणं, तं वज्जे दोहिं, जं वज्जे दोहिं तं चमरे तिहिं ।

१४. सव्वत्थोवे सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो उड्ढलोयकंडए, 'सर्वस्तोकं' स्वल्पं शक्रस्य ऊर्ध्वलोकगमने खण्डकं—कालखण्डं ऊर्ध्वलोककण्डकं ऊर्ध्वलोकगमनेऽतिशीघ्रत्वात्तस्य । (वृ-प० १७८)

१५. अहेलोयकंडए संखेज्जगुणे ।

अधोलोकगमने कण्डकं—कालखण्डमधोलोककण्डकं संख्यातगुणं, ऊर्ध्वलोककण्डकापेक्षया द्विगुणमित्यर्थः अधोलोकगमने शक्रस्य मंदगतित्वात् । (वृ-प० १७८)

१६. जावतियं खेत्तं चमरे असुरिंदे असुरराया अहे ओवयइ एक्केणं समएणं, तं सक्के दोहिं, जं सक्के दोहिं, तं वज्जे तीहिं ।

१७. सव्वत्थोवे चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो अहेलोयकंडए,

१८. उड्ढलोयकंडए संखेज्जगुणे

१९. एवं खलु गोयमा ! सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा चमरे असुरिंदे असुरराया नो संचाइए साहत्थिं गेण्हित्तए । (श० ३।११९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०. हे प्रभु ! शक्र देवेंद्र तणी जे, ऊर्ध्व अधो तिरि गति-विषयेह।
गति नों विषय कुण-कुण थी अल्प छै, कुण-कुण थी बहु तुल्य अधिकेह ?

२१. जिन कहै सर्व थी थोडो खेत्र जे, एक समय शक्र नीचो जाय।
गति मंदपणां थकी क्षेत्र आश्रयै, इक समय नीचो थोडो जावै ताय ॥
२२. तेहथी तिरछो संख्यात भाग जायै, इहां कल्पना करि देखाडै।
इक समये एक योजन नीचो जावै, तिरछो जाय दोढ जोजन तिवारै ॥

२३. ऊर्ध्व संख्या ते भाग अधिक गति-कल्पना ए दोय योजन कहाय।
जोजन एक नां भाग करणा वे, इक-इक भाग अधिक इण न्याय ॥

२४. हे प्रभु ! चमर असुरिंद्र तणी जे, ऊर्ध्व अधो तिरि गति-विषयेह।
गति-विषय कुण-कुण थी अल्प है, कुण-कुण थी बहु तुल्य अधिकेह ?

२५. जिन कहै सर्व थी थोडो खेत्र जे, चमर ऊर्ध्व इक समये जाय।
गति मंदपणां थकी क्षेत्र आश्रये, इक समये ऊर्ध्व अल्प जावै ताय ॥
२६. तेह थी तिरछो भाग संख्याते जावै, नीचो संख्यातमै भाग निहाल।
सूत्र मांहि इम समचै भाख्यो, बुद्धिवंत न्याय मेलै सुविशाल ॥
२७. वज्र नैं जेम शक्र नैं कह्यो तिम, णवरं विसेसाहिए कहिवाय।
वृत्ति मांहि कह्यो वाचनांतरे, साख्यात पाठ अछै इम ताय ॥
२८. हे प्रभु ! वज्र तणों गति-विषय, ऊंचो नीचो तिरछो छै तेह।
गति-विषय कुण-कुण थी अल्प है, कुण-कुण थी बहु तुल्य अधिकेह ?

२९. जिन कहै सर्व थी थोडो खेत्र जे, एक समय वज्र नीचो जाय।
तिरछो विशेष अधिक खेत्र जाय तेहथी, ऊंचो विशेष अधिक खेत्र ताय ॥

३०. एक योजन नां बारै भाग लेहवा, एक समय मांहै शक्र तिवार।
ऊंचो तो भाग चउवीस जायै छै, तिरछो अठारै नैं नीचो बार ॥
३१. वज्र समय में बारै भाग ऊंचो, तिरछो दस नीचो आठ जगीस।
चमर ऊंचो आठ भाग जाय छै, तिरछो सोलै नीचो भाग चउवीस ॥
३२. ए भाग नी बात अर्थ में कही छै, सूत्र मांहै तो समचै वाय।
पाठ सूं मिलतो तिका मान लेणी, अणमिलतो नहीं मानणी ताय ॥

२०. सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो उड्ढं अहे तिरियं च गइविसयस्स कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा ? बहुए वा ? तुल्ले वा ? विसेसाहिए वा ?
२१. गोयमा ! सव्वत्थोवं खेत्तं सक्के देविंदे देवराया अहे ओवयइ एक्केणं समएणं
२२. तिरियं संखेज्जे भागे गच्छइ,
कल्पनया किलैकेन समयेन योजनमधो गच्छति शक्रः, तत्र च योजने द्विधाकृते द्वौ भागौ भवतः, तयोश्चैकस्मिन् द्विभागे मीलिते त्रयः संख्येया भागा भवन्ति अतस्तान् तिर्यग् गच्छति, सार्द्धं योजनमित्यर्थः। (वृ०-प० १७८)
२३. उड्ढं संखेज्जे भागे गच्छइ। (श० ३।१२०)
यान् किल कल्पनया त्रीन् द्विभागांस्तिर्यग्गच्छति तेषु चतुर्थेऽन्यस्मिन् द्विभागे मीलिते चत्वारो द्विभागरूपाः संख्यातभागाः संभवन्ति अतस्तान् ऊर्ध्वं गच्छति।
(वृ०-प० १७८)
२४. चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुररण्णो उड्ढं अहे तिरियं च गइविसयस्स कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा ? बहुए वा ? तुल्ले वा ? विसेसाहिए वा ?
२५. गोयमा ! सव्वत्थोवं खेत्तं चमरे असुरिंदे असुरराया उड्ढं उप्पयइ एक्केणं समएणं
२६. तिरियं संखेज्जे भागे गच्छइ, अहे संखेज्जे भागे गच्छइ। (श० ३।१२१)
२७. वज्जं जहा सक्कस्स तहेव नवरं विसेसाहियं कायव्वं। (वृ०-प० १७७)
२८. वज्जस्स णं भंते ! उड्ढं अहे तिरियं च गइविसयस्स कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा ? बहुए वा ? तुल्ले वा ? विसेसाहिए वा ?
२९. गोयमा ! सव्वत्थोवं खेत्तं वज्जे अहे ओवयइ एक्केणं समएणं, तिरियं विसेसाहिए भागे गच्छइ, उड्ढं विसेसाहिए भागे गच्छइ। (श० ३।१२२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३. कह्यो गति-विषय क्षेत्र नों अल्प बहुपणुं,
हिव अल्पबहुत्व गति काल नों देख।
प्रभु ! शक्र नैं ऊंचो नैं नीचो गमनकाल,
कुण थी अल्प बहु तुल्य विशेष ?

३३. सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो ओवयणकालस्स य, उप्पयणकालस्स य कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा ? बहुए वा ? तुल्ले वा ? विसेसाहिए वा ?

३४. सर्व थी थोडो शक्र सुरेंद्र नैं, ऊंचो जावा नैं काल सुजेह।
शक्रनीं ऊंची घणी गति तिण सूं, नीचो आवा नों काल संखेज्ज गुणेह ।।

३४. गोयमा ! सव्वत्थोवे सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो उप्पयणकाले, ओवयणकाले संखेज्जगुणे। (श० ३।१२३)

३५. धर्मसीह कह्यो थोडी वेला माहै,
शक्र ऊंचो बहु जोजन जाय ।।
जिम इक चिपटी[1] माहै चोवीस योजन,
हेठो बारै योजन इक चिपटी में आय ।।

३६. चमर नैं जेम शक्र नैं कह्यो तिम,
णवरं सर्व थोडो नीचो आवा नों काल।
नीची शीघ्र-गति तिण सूं काल थोडो छै,
संख्यातगुणो ऊंचो जावा नों न्हाल ।।

३६. चमरस्स वि जहा सक्कस्स, नवरं सव्वत्थोवे ओवयणकाले, उप्पयणकाले संखेज्जगुणे। (श० ३।१२४)

३७. वज्र नीं पूछा जिन दियै उत्तर, सर्व थोडो ऊंचो जावा नों काल।
नीचो आवा नों काल विशेषाधिक, गति मंद थी अद्धा अधिक निहाल ।।

३७. वज्जस्स पुच्छा
गोयमा ! सव्वत्थोवे उप्पयणकाले, ओवयणकाले विसेसाहिए। (श० ३।१२५)

३८. हिव तीनूंइ नीं अल्पाबहुत्व नों प्रश्न,
प्रभु ! वज्र शक्र वलि चमर नैं पेख।
नीचो आवा नुं ऊंचो जावा नुं काल ते,
कुण थी अल्प बहु तुल्य विशेख ?

३८. एयस्स णं भंते ! वज्जस्स, वज्जाहिवइस्स, चमरस्स य असुरिंदस्स असुररण्णो ओवयणकालस्स य, उप्पयणकालस्स य कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा ? बहुए वा ? तुल्ले वा ? विसेसाहिए वा ?

३९. जिन कहै शक्र नैं ऊर्ध्वगमन-अद्धा, चमर नैं हेठो ऊतरवा नुं काल।
ए विहुं तुला सर्व थी थोडो, निज स्थान बेहुं सम न्हाल ।।

३९. गोयमा ! सक्कस्स य उप्पयणकाले, चमरस्स य ओवयणकाले—एए णं दोण्णि वि तुल्ला सव्वत्थोवा।

४०. शक्र नैं नीचो उतरवा नुं अद्धा, वज्र नैं ऊंचो जावा नुं काल।
ए विहुं तुल्य छै पूर्व कह्या थी, अथवा संख्यातगुणो संभाल ।।

४०. सक्कस्स य ओवयणकाले, वज्जस्स य उप्पयणकाले—एस णं दोण्ह वि तुल्ले संखेज्जगुणे।

४१. चमर नैं ऊंचो जावा नुं काल, वज्र नैं नीचो ऊतरवा नुं काल।
ए विहुं तुल्ये विशेषाधिक छै, ए अल्प बहुत्व तीनूं नीं निहाल ।।

४१. चमरस्स य उप्पयणकाले, वज्जस्स य ओवयणकाले—एस णं दोण्ह वि तुल्ले विसेसाहिए। (श० ३।१२६)

४२. तीजै शतक दूजा उद्देशा नो देशज, एक नैं साठमी ढाल रसाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय प्रसादै, 'जय-जश' संपति मंगलमाल ।।

ढाल : ६२

दूहा

१. असुर-इंद्र तिण अवसरै, वज्र - भये विप्रमुक्त।
अधिक शक्र अपमानियै, तुझ मूक्यो इम उक्त ।।

१. तए णं से चमरे असुरिंदे असुरराया वज्जभयविप्पमुक्के, सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा महया अवमाणेणं अवमाणिए समाणे

१. एक चुटकी बजाने जितना काल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. चमरचंचा रजधानिए, सभा सुधर्मा सोय।
बैठो चमर सिंघासणे, अति अर्ती अवलोय॥

३. चित संकल्प विचार जे, हुयो दर्प हर्षादि।
चिंता - सोग - समुद्र में, बैठो मन असमाधि॥

४. अधोमुख करतल विषै, स्थाप्यो छै तिणवार।
ध्यावै आर्त्तध्यान नैं, दृष्टि भूमि इकधार॥

५. *सामानिक परिषद सुरा, अपहृत मन चमर नों,
कांइ यावत् ध्यावतो देखी, हो लाल।
करतल जाव बधाय नैं, शिर आवर्त्तन करी नैं,
कांइ बोल्या एम विशेखी हो लाल॥

६. किण कारण हे देवानुप्रिया! मन नों संकल्प हुणाणो,
जावत् ध्यावो केमो?
असुर-इंद्र तिण अवसरै, सामानिक परिषद नां,
सुर प्रतै कहै छै एमो॥

७. इम निश्चै हे देवानुप्रिया! शक्र तणो आशातन,
म्है करी वीर-नेश्रायो।
ताम शक्र कोप्यो छतो, मुझ वध्र काजै मूक्यो,
वज्र आयुध अधिकायो॥

८. ते भणी हे देवानुप्रिया! वीर प्रभु नैं थावो,
मंगलीक भद्र कल्याणं।
जेहनैं प्रभाव आयो इहां, निर्वेदन अताडित,
परितापन-रहित पिछाणं॥

९. इहां समोसरचो स्थान पामियो, ए स्थान अंगीकर विचरूं,
प्रशस्त थइ नैं वारू।
ते भणी हे देवानुप्रिया! आपण सगला जइयै,
वंदा भगवंत उदारू॥

१०. नमस्कार प्रभु नैं करी, यावत् पर्युपासना,
सेवा करियै साची।
एम कही असुरेंद्र ते, चउसठ सहस्र सामानिक,
यावत् सगली ऋद्धि जाची॥

११. जाव अशोक तरु तिहां, जिहां मुझ पासे आवी नैं तिणवारै।
मुझ नैं दक्षिण दिशि थी, दे तीन वार प्रदक्षिण यावत् नमैं तिवारै॥

१२. नमस्कार कर इम कहै, इम निश्चै हे प्रभुजी! हूं आप तणी नेश्रायो।
कीधी शक्र-आशातना, जाव देवानुप्रिया! तुझ भद्र कल्याण सुथायो॥

*लय—पातक छानो नहीं रहै

२. चमरचंचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरंसि सीहासणंसि

३. ओहयमणसंकप्पे चिंतासोयसागरसंपविट्ठे

४. करयलपल्हत्थमुहे अट्टज्झाणोवगए भूमिगयदिट्ठीए झियाति। (श० ३।१२७)

५. तए णं चमरं असुरिंदं असुररायं सामाणियपरिसोववण्णया देवा ओहयमणसंकप्पं जाव झियायमाणं पासंति, पासित्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं, वद्धावेंति वद्धावेत्ता एवं वयासी—

६. किं णं देवाणुप्पिया! ओहयमणसंकप्पा जाव झियायह? (श० ३।१२८)
तए णं से चमरे असुरिंदे असुरराया ते सामाणियपरिसोववण्णए देवे एवं वयासी—

७. एवं खलु देवाणुप्पिया! मए समणं भगवं महावीरं वीसाए सक्के देविंदे देवराया सयमेव अच्चासाइए। तए णं तेणं परिकुविएणं समाणेणं ममं वहाए वज्जे निसट्ठे।

८. तं भद्दण्णं भवतु देवाणुप्पिया! समणस्स भगवओ महावीरस्स जस्सम्हि पभावेणं अकिट्ठे अव्वहिए अपरिताविए
'अकिट्ठे' त्ति 'अकृष्टः' अविलिखितः अक्लिष्टो वा—अबाधितो निर्वेदनमित्यर्थः। (वृ०-प० १८०)

९. इहमागए इह समोसढे इह संपत्ते इहेव अज्ज उवसंपज्जित्ता णं विहरामि।

१०. तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया! समणं भगवं महावीरं वंदामो नमंसामो जाव पज्जुवासामो त्ति कट्टु चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीहिं जाव सव्विड्ढीए

११. जाव जेणेव असोगवरपायवे, जेणेव ममं अंतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं जाव...

१२. नमंसित्ता एवं वयासि—एवं खलु भंते! मए तुब्भं नीसाए सक्के देविंदे देवराया सयमेव अच्चासाइए जाव तं भद्दण्णं भवतु देवाणुप्पियाणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. जेहनें प्रभाव करी अम्हे, निर्वेदन छतो विचारी जावत् विचरूं इहवारी।
तिण सूं खमाऊं हे देवानुप्रिया! जावत् एम कहीनें आयो ईशाण उदारी।।

१३. जस्सम्हि पभावेणं अकिट्ठे जाव विहरामि। तं खामेमि णं देवाणुप्पिया जाव उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ,

१४. यावत् बत्तीस प्रकार नां, नाटक-विधि देखाडै,
देखाडी नैं तिहवारै।
जिण दिशि थी आयो हुंतो, तिह दिशि स्व स्थाने,
पाछो गयो तिवारै।।

१४. जाव बत्तीसइबद्धं नट्टविहिं उवदंसेइ, उवदंसेत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए। (श० ३।१२६)

१५. इम निश्चै करि गोयमा! चमर असुर नों राजा,
दिव्य देव ऋद्धि भारी।
लाधी नैं पामी भली, जावत् सन्मुख थइ छै,
भोगविवा नैं इह वारी।।

१५. एवं खलु गोयमा! चमरेणं असुरिंदेणं असुररण्णा सा दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमण्णागए।

१६. स्थिति एक सागर तणीं, महाविदेह सिझिस्यै,
यावत् दुख अंत करिस्यै।
भव-प्रत्यय वेर कह्यो असुर नों, तेहनैं विषैज हेतु,
अन्य कहिवा हिव उचरिस्यै।।

१६. ठिई सागरोवमं महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ जाव अंतं काहिइ। (श० ३।१३०)

१७. हे प्रभु! असुर किण कारणैं, ऊंचो जायै यावत्
स्वर्ग सुधर्म भावै।
जिन कहै तत्काल नों ऊपनो, अथवा चवन अवसरै,
तसुं विचारणा इम आवै।।

१७. किपत्तियं णं भंते! असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो? गोयमा! तेसिं णं देवाणं अहुणोववण्णाणं वा चरिमभवत्थाणं वा इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जइ—

१८. अहो! आश्चर्य अर्थे, अम्हे दिव्य देव ऋद्धि लाधी,
पामी आश्चर्यकारी।
जावत भोगविवा भणी, सन्मुख थइ उदारी,
एहवी ऋद्धि छै म्हारी।।

१८. अहो! णं अम्हेहिं दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमण्णागए,

१९. जेहवी म्है दिव्य ऋद्धि लही, तेहवी शक्र सुरेंद्रज,
दिव्य देव ऋद्धि लाधी।
जेहवी शक्र दिव्य ऋद्धि लही, तेहवी म्हैं पिण लाधी,
एहवी मन मांहि साधी।।

१९. जारिसिया णं अम्हेहिं दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमण्णागए, तारिसिया णं सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमण्णागए। जारिसिया णं सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा जाव अभिसमण्णागए, तारिसिया णं अम्हेहिं वि जाव अभिसमण्णागए।

२०. ते माटै जावूं अम्हे, शक्र देव-राजा नैं
समीपै प्रगट थाऊं।
देखूं हूं ऋद्धि शक्र नीं, अम्हे पायो ऋद्धि भारी,
ए शक्र भणी देखाऊं।।

२०. तं गच्छामो णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अंतियं पाउब्भवामो पासामो ताव सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो दिव्वं देविड्ढिं जाव अभिसमण्णागयं,

२१. जाणूं हूं ऋद्धि शक्र नीं, म्हे पिण दिव्य ऋद्धि पामी,
ते शक्र भणी जणाऊं।
इम निश्चै करि गोयमा! असुर सुधर्मे जावै,
सेवं भंते! हुलसाऊं।।

२१. पासउ ताव अम्ह वि सक्के देविंदे देवराया दिव्वं देविड्ढिं जाव अभिसमण्णागयं। तं जाणामो ताव सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो दिव्वं देविड्ढिं जाव अभिसमण्णागयं, जाणउ ताव अम्ह वि सक्के देविंदे देवराया दिव्वं देविड्ढिं जाव अभिसमण्णागयं। एवं खलु गोयमा असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो। (श० ३।१३१)

सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श० ३।१३२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. तीजा शतक नों दूजो उदेशो कह्यो, ढाल बासठमीं वारू,
आखी अधिक उदारू।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' मंगल माल,
संपति संघ सुधारू॥

तृतीयशते द्वितीयोद्देशकार्थः॥३।२॥

ढाल : ६३

दूहा

१. द्वितीय उदेश विषै कह्यु, चमर तणो उत्पात।
ते तो क्रियाज रूप है, तीजै क्रिया कहात॥

२. तिण कालै नैं तिण समय, नगर राजगृह नाम।
जाव परिषदा जिन वचन, सुण पोंहती निज ठाम॥

३. तिण कालै नैं तिण समय, जाव वीर शिष्य जाण।
मंडियपुत्र नामैं मुनि, प्रकृति-भद्र पहिछाण॥

४. जाव सेव करतो छतो, वीर प्रतै इम वाय।
वोलै जोडी कर विहुं, सांभलज्यो सुखदाय॥

५. *क्रिया कितो भगवान ! जिन भाखै इम जान।
हे मंडिपुत्र ! पंच क्रिया परूपी मही॥

६. काइया ते क्रिया करि हुवै जान, अहिकरणिया अशुभ अनुष्ठान।
हे मंडिपुत्र ! अथवा शस्त्र थकी कही॥

७. पाउसिया ते मच्छर थी व्याप, परितावणिया ते परिताप।
हे मंडिपुत्र ! पाणाइवाय हणैं तसुं॥

८. ए पांचूंई पिछाण, ज्यांरा भेद जुआ जुआ जाण।
आछे लाल, मंडियपुत्र पूछै इसूं॥

९. प्रभु ! काइया कितलै प्रकार, वीर कहै तिणवार।
हे मंडिपुत्र ! द्विविध काइया क्रिया कही॥

१०. अव्रत सर्व थी चोथा लग जाण, वलि अशुभ जोग नीं पिछाण।
हे मंडिपुत्र ! ए छठा गुणठाण लगै लही॥

---

*लय—आछे लाल री देशी

१. द्वितीयोद्देशके चमरोत्पात उक्तः स च क्रियारूपोऽतः क्रियास्वरूपाभिधानाय तृतीयोद्देशकः। (वृ०-प० १८१)

२. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था जाव परिसा पडिगया। (३।१३३)

३. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी मंडिअपुत्ते नामं अणगारे पगइभद्दए

४. जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी—

५. कइ णं भंते ! किरियाओ पण्णत्ताओ ?
मंडिअपुत्ता ! पंच किरियाओ पण्णत्ताओ तं जहा—

६. काइया, अहिगरणिआ
अधिकरणं—अनुष्ठानविशेषः बाह्यं वा वस्तु चक्रखड्गादि तत्र भवा तेन वा निर्वृत्तेत्याधिकरणिकी। (वृ०-प० १८१)

७. पाओसिआ, पारियावणिआ, पाणाइवायकिरिया। (श० ३।१३४)
प्रद्वेषो—मत्सरस्तत्र भवा तेन वा निर्वृत्ता स एव वा प्राद्वेषिकी। (वृ०-प० १८१)

९. काइया णं भंते ! किरिया कइविहा पण्णत्ता ?
मंडिअपुत्ता ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१०. अणुवरयकायकिरिया य, दुप्पउत्तकायकिरिया य। (श० ३।१३५)
अनुपरतः—अविरतस्तस्य कायक्रियाऽनुपरतकायक्रिया, इयमविरतस्य भवति। (वृ०-प० १८१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. प्रभु ! अहिकरणिया एह, कितै प्रकार कहेह ?
हे मंडिपुत्र ! द्विविध जिन इम भाखता ।।
१२. पूर्व नीपनां एकठा करंत, तेह संयोजवूं हुंत ।
आछे लाल, बलि शस्त्र नवा निपजावता ।।

११. अहिगरणिआ णं भंते ! किरिया कइविहा पण्णत्ता ?
मंडिअपुत्ता ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१२. संजोयणाहिगरणकिरिया य, निवत्तणाहिगरणकिरिया य । (श० ३।१३६)
संयोजनं—हलगरविषकूटयन्त्राद्यङ्गानां पूर्वनिर्वर्त्तितानां मीलनं तदेवाधिकरणक्रिया संयोजनाधिकरणक्रिया, निर्वर्त्तनं—असिशक्तितोमरादीनां निष्पादनं तदेवाधिकरणक्रिया निर्वर्तनाधिकरणक्रिया ।
(वृ०-प० १८२)

१३. पाउसिया पहिछाण, भेद किता जगभाण !
आछे लाल, द्विविध जिन इम वागरै ।।
१४. जीव-पाउसिया देख, जीव ऊपर करै धेष ।
हे प्यारे लाल, अजीव-पाउसिया अजीव ऊपरै ।।

१३. पाओसिआ णं भंते ! किरिया कइविहा पण्णत्ता ? मंडिअपुत्ता ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१४. जीवपाओसिआ य, अजीवपाओसिआ य ।(श०३।१३७)
जीवस्य—आत्मपरतदुभयरूपस्योपरि प्रद्वेषाद् या क्रिया प्रद्वेषकरणमेव वा, अजीवस्योपरि प्रद्वेषाद्या क्रिया प्रद्वेषकरणमेव वा । (वृ०-प० १८२)

१५. प्रभु ! पारितावणिया पेख, कितै प्रकार विशेख ?
आछे लाल, द्विविध कहै त्रिभुवन-धणी ।।
१६. सहत्थपरितावणिया सोय, स्व हस्ते करि जोय ।
हे मंडिपुत्र ! पीड करै निज पर भणी ।।

१५. पारियावणिआ णं भंते ! किरिया कइविहा पण्णत्ता ?
मंडियपुत्ता ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१६. सहत्थपारियावणिआ य
स्वहस्तेन स्वस्य परस्य तदुभयस्य वा परितापनाद्—अमातोदीरणाद्या क्रिया परितापनाकरणमेव वा सा स्वहस्तपारितापनिकी । (वृ०-प० १८२)

१७. परहत्थपरितावणिया पेख, पर हस्ते करि देख ।
हे नीके लाल, पीड करै निज पर तणैं ।।
१८. इम बे भेद पाणाइवाय, स्व कर बेहुं हणैं ताय ।
आछे लाल, पर कर थी निज पर हणैं ।।

१७. परहत्थपारियावणिआ य । (श० ३।१३८)

१८. पाणाइवायकिरिया णं भंते ! किरिया कइविहा पण्णत्ता ?
मंडिअपुत्ता ! दुविहा पण्णत्ता तं जहा—सहत्थपाणाइवायकिरिया य, परहत्थपाणाइवायकिरिया य
(श० ३।१३९)

१९. पूर्व क्रिया आख्यात, वेदन तेहथी थात ।
हे मंडिपुत्र ! ए बेहुं अधिकार कहै अछै ।।
२०. पहिलां क्रिया भगवान, पछै वेदना जान ।
आछे लाल, कै पहिलां वेदन क्रिया पछै ?
२१. जिन कहै पहिलां क्रिया जोय, पछै वेदन अवलोय ।
हे मंडिपुत्र ! पहिलां वेदना पछै क्रिया नहीं ।।
२२. क्रिया—करणं ते जीव-व्यापार, तेहथी ऊपना कर्म तिवार ।
आछे लाल, तिण सूं कर्म नैं पिण क्रिया कही ।।
२३. अथवा क्रियते क्रिया—कर्म जाण, ए कही टीका में वाण ।
आछे लाल, हिवै क्रिया नां स्वामी भणी ।।
२४. छै श्रमण निर्ग्रंथ नैं भदंत ! क्रिया थी कर्म बंधत ?
हे मंडिपुत्र ! हंता अत्थि कहै त्रिभुवन-धणी ।।

१९. उक्ता क्रिया, अथ तज्जन्यं कर्म तद्वेदनां चाधिकृत्याह—
(वृ०-प० १८२)

२०. पुव्वि भंते ! किरिया, पच्छा वेदणा ? पुव्वि वेदणा, पच्छा किरिया ?

२१. मंडिअपुत्ता ! पुव्वि किरिया, पच्छा वेदणा । णो पुव्वि वेदणा, पच्छा किरिया । (श० ३।१४०)

२२. क्रिया—करणं तज्जन्यत्वात्कर्मापि क्रिया ।
(वृ०-प० १८२)

२३. अथवा क्रियत इति क्रिया कर्मैव...क्रियामेव स्वामिभावतो निरूपयन्नाह— (वृ०-प० १८२)

२४. अत्थि णं भंते ! समणाणं निग्गंथाणं किरिया कज्जइ ?
हंता अत्थि । (श० ३।१४१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. प्रभु ! श्रमण निर्ग्रंथ नैं सोय, किम क्रिया—कर्म-बंध होय।
हे मंडिपुत्र ! जिन कहै प्रमाद जोग निमित्त सूं ।।

२५. कहण्णं भंते ! समणाणं निग्गंथाणं किरिया कज्जइ ?
मंडिअपुत्ता ! पमायपच्चया, जोगनिमित्तं च।

२६. इहां धर्मसी कह्यो एम, पांचूं क्रिया आथी तेम।
आछे लाल, मंडियपुत्र पूछ्यूं इसूं ।।

२७. ए पांचूंइ क्रिया जान, साधु नैं किम लागै भगवान ?
आछे लाल, जिन कह्यो प्रमादे करी ।।

२८. जोग निमित्त असुभ जोग जाण, प्रमाद नों संघाती पिछाण।
आछे लाल, तिण सूं जोग ते अशुभ इहां धरी ।।

२९. प्रमाद नैं अशुभ जोग जोय, बोल सेवै ए दोय।
आछे लाल, तिण में आज्ञा नहीं केवली तणी ।।

३०. मुनि रै अशुभ जोग री जोय, आलोवणा अवलोय।
आछे लाल, पिण अव्रत नहीं साधु भणी ।।

३१. इम साधु रै क्रिया होय, अंक तेतीस नों देश जोय।
हे नीके लाल, ढाल तेसठमी ए कही ।।

३१. एवं खलु समणाणं निग्गंथाणं किरिया कज्जइ।
(श० ३।१४२)

३२. भिक्खु भारीमाल ऋषराय, तास पसाय सवाय।
हे प्यारे लाल, 'जय-जश' सुख संपति लही ।।

ढाल : ६४

दूहा

१. क्रिया तणां अधिकार थी, क्रिया प्रश्न हिव जोय।
जीवे णं भंते ! कह्यो, एक वचन अवलोय ।।

१. क्रियाधिकारादिदमाह— (वृ०-प० १८२)

२. वर्त्ते जे आरंभ नैं विषै, प्रश्न तास पहिछाण।
मंडियपुत्र पूछचो मुनि, उत्तर पिण तसुं जाण ।।

*गुणगेहा मुनि-जन परम नाण खप कीजियै। (ध्रुपदं)

३. प्रभु ! जीव प्रमाण सहित सदा कंपतो, वलि विविध प्रकार कंपायो जी।
एक स्थानक थी अन्य स्थानके, जावै तेह चलित कहिवायो जी ।।

३. जीवे णं भंते ! सया समितं एयति वेयति चलति
'समियं' ति सप्रमाणं 'एयइ' त्ति एजते—कम्पते 'वेयइ' त्ति 'व्येजते विविधं कम्पते 'चलइ' त्ति स्थानान्तरं गच्छति। (वृ०-प० १८३)

४. फंदति ते किंचित् चलै, घटति सहु दिशि में चलायो।
अथवा अन्य पदार्थ फर्शै, खुब्भइ पैसै पृथ्वी मांह्यो ।।

४. फंदइ घट्टइ खुब्भइ
'फंदइ' त्ति स्पन्दते किञ्चिच्चलति 'घट्टइ' त्ति सर्वदिक्षु चलति पदार्थान्तरं वा स्पृशति 'खुब्भइ' त्ति क्षुभ्यति पृथिवीं प्रविशति। (वृ०-प० १८३)

५. उदीरति ते अन्य पदारथ, प्रेरे तास विशेखो।
अथवा अन्य पदार्थ प्रतै जे, अंगीकार करै पेखो ।।

५. उदीरइ
'उदीरइ' त्ति प्राबल्येन प्रेरयति पदार्थान्तरं प्रतिपादयति वा। (वृ०-प० १८३)

*लय—वाल्हा वारी रे अब लग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. हिव शेष क्रिया नां भेद नैं, संग्रहण नैं अर्थ कहीजै।
तं तं भावं परिणमइ, ए पाठ नों अर्थ सुणीजै॥

७. ते ते भाव प्रतै परिणमैं, वैसण ऊठण लेवो देवो।
संकोचवो नैं पसारणादिक, परिणाम प्रतै पामेवो॥

८. हंता मंडियपुत्र ! जिन भाखै, जीव सदा परिमाण सहीतो।
कंपै जाव ते ते भाव नैं परिणमै छेज वदीतो॥

९. हे प्रभु ! ज्यां लग जीव तिको नित्य, समित जाव परिणामै।
तिहां लगै मरणंते ते स्यूं, अन्तक्रिया नैं पामै ?

१०. श्री जिन भाखै एह अर्थ ते, समर्थ नहीं छै ताह्यो।
वृत्तिकार कहै 'सकल-कर्म-क्षय', ते अंत-क्रिया कहिवायो॥

सोरठा

११. 'ठाणांग चौथे ठाण, पहिला उद्देशा मझे।
अंत-क्रिया चिउं जाण, प्रत्यक्ष देखो पाठ में॥

१२. त्यां चक्री सनतकुमार, तेहनैं अंत-क्रिया कही।
सकल-कर्म-क्षयकार, इण लेखे शिव गति लही॥

१३. तिहां कह्यु टीकाकार, चक्री सनतकुमार नैं।
गयो तीजा कल्प मझार, एह अर्थ विपरीत छै[1]॥

६. शेषक्रियाभेदसंग्रहार्थमाह— (वृ०-प० १८३)

७. तं तं भावं परिणमइ ?
उत्क्षेपणावक्षेपणाकुञ्चनप्रसारणादिकं परिणामं याती-त्यर्थः। (वृ०-प० १८३)

८. हंता मंडिअपुत्ता ! जीवे णं सया समितं एयति जाव तं तं भावं परिणमइ। (श० ३।१४३)

९. जावं च णं भंते ! से जीवे सया समितं जाव परिणमइ, तावं च णं तस्स जीवस्स अंते अंतकिरिया भवइ ?
'अंते' त्ति मरणान्ते। (वृ०-प० १८३)

१०. नो इणट्ठे समट्ठे। (श० ३।१४४)
'अंतकिरिय' त्ति सकलकर्मक्षयरूपा। (वृ०-प० १८३)

---

१. स्थानांग की मुद्रित वृत्ति में सनत्कुमार की अन्तक्रिया के सन्दर्भ में तीसरे कल्प का उल्लेख नहीं है। वहां यही बतलाया गया है कि सनत्कुमार चक्रवर्ती भवान्तर में सिद्ध होंगे। वह पूरा प्रसंग इस प्रकार है—यथाऽसौ सनत्कुमार इति चतुर्थ-चक्रवर्ती, स हि महातपा महावेदनश्च सरोगत्वात् दीर्घतरपर्यायेण सिद्धः, तद्भवे सिद्धत्वभावेन भवान्तरे सेत्स्यमानत्वादिति। (स्थानांग वृ०-प० १७२)

किन्तु आवश्यक-निर्युक्ति में सनत्कुमार चक्रवर्ती के तीसरे स्वर्ग में उत्पन्न होने का उल्लेख मिलता है—

मघवं सणंकुमारा सणंकुमारं गया कप्पं।
(आवश्यक-निर्युक्ति गा० ४२३)

उत्तराध्ययन की सुखबोधा वृत्ति में भी यही उल्लेख मिलता है।
(सुखबोधा पत्र २४२)

जयाचार्य ने इस प्रसंग में समीक्षा करते हुए लिखा है—

तिहां कह्यु टीकाकार, चक्री सनतकुमार नैं।
गयो तीजा कल्प मझार, एह अर्थ विपरीत है॥

इस पद में तिहां शब्द का प्रयोग है। इसका सीधा अर्थ होता है—स्थानांग की वृत्ति में तीसरे कल्प में जाने का उल्लेख है। किन्तु स्थानांग की मुद्रित वृत्ति में यह उल्लेख उपलब्ध नहीं है। हो सकता है जयाचार्य के सामने इस उल्लेख वाली कोई प्रति रही हो।

दूसरा विकल्प यह है कि तिहां का अर्थ इस प्रसंग में करें तो उसके साथ आवश्यक-निर्युक्ति और सुखबोधा के मत को उद्धृत किया जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. कह्यूं अंत-क्रिया सूत्र मांय, तृतीय स्वर्ग वृत्तिकार कहै।
ते नवि मिलतो न्याय, पक्ष छोड निर्णय करो।।
१५. अर्थ अंत-क्रिया नों अनूप, इहां पिण एहवो आखियो।
सकल - कर्म - क्षय रूप, त्यां पिण ए अर्थ कीजियै'।।
(ज० स०)

१६. *किण अर्थे प्रभुजी ! इम कहियै, जिहां लग जीव सदाई।
जाव मरण नैं अंते तेहनैं, अंत - क्रिया नहिं थाई।।
१७. जिन भाखै ते जीव सदाई, समित जाव परिणमंतो।
करै आरंभ सारंभ समारंभ तिहां लगै, बलै तीनूं विषै वरतंतो।।

१८. †सारंभ ते हणवा तणुं मन, समारंभ परितापना।
आरंभ ते जीवां हणैं, सर्व विशुद्ध नय नीं स्थापना।।

१९. *आरंभ सारंभ समारंभ करतो, वले वर्त्ततो तीनूं मांह्यो।
घणां प्राण भूत जीव सत्व नैं, वर्ते दुख उपजावा ताह्यो।।

सोरठा

२०. दुख ते मरण कहाय, इष्टवियोगादिक तथा।
दुख हेतू कहिवाय, वर्ते तेह पमायवा।।

२१. *सोग ते दीनपणां नैं पमावै, तेह विषै पहिछाणी।
सोग अधिक थी शरीर जीरणता, ते झूरावण जाणी।।

२२. तिप्पावणया आंसू न्हाखवा विषै, पिट्टावणयाए पहिछाणो।
परितावणयाए परितापना, पमावा विषै वर्त्त जाणो।।

२३. तिण अर्थे करी इम कह्यूं, जिहां लग जीव कंपायो।
जाव परिणमैं त्यां लगै, अंते अंत-क्रिया नहि थायो।।

सोरठा

२४. वृत्ति मांहि इम वाय, क्वचित् पठ्यते दुक्खणयाए।
इत्यादिक कहिवाय, किलामणयाए बलि कह्यूं।।
२५. उद्दवणयाए जास, अधिक पाठ कहियै विहुं।
किलामना अरु त्रास, अर्थ एहनों जाणियै।।

१६. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—जावं च णं से जीवे सया समितं जाव अंते अंतकिरिया न भवति ?
१७. मंडिअपुत्ता ! जावं च णं से जीवे सया समितं जाव परिणमइ, तावं च णं से जीवे—आरभइ सारभइ समारभइ, आरंभे वट्टइ सारंभे वट्टइ समारंभे वट्टइ,
१८. 'संरभते' तेषु विनाशसंकल्पं करोति, 'समारंभइ' त्ति 'समारभते' तानेव परितापयति, आह च—
सकप्पो संरंभो परितावकरो भवे समारंभो।
आरंभो उद्दवओ, सव्वनयाणं विसुद्धाणं।।
(वृ०-प० १८३, १८४)
१९. आरभमाणे सारभमाणे समारभमाणे, आरंभे वट्टमाणे सारंभे वट्टमाणे समारंभे वट्टमाणे बहूणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं दुक्खावणयाए

२०. 'दुःखापनायां' मरणलक्षणदुःखप्रापणायाम् अथवा इष्टवियोगादिदुःखहेतुप्रापणायां वर्तत इति योगः।
(वृ०-प० १८४)
२१. सोयावणयाए जूरावणयाए
'शोकापनायां' दैन्यंप्रापणायां 'जूरावणताए' त्ति शोकातिरेकाच्छरीरजीर्णताप्रापणायां। (वृ०-प० १८४)
२२. तिप्पावणयाए पिट्टावणयाए परियावणयाए वट्टइ।
'तेपापनायां' शोकातिरेकादेवाश्रुलालादिक्षरणप्रापणायां...परितापनायां शरीरसन्तापे वर्त्तते।
(वृ०-प० १८४)
२३. से तेणट्ठेणं मंडिअपुत्ता ! एवं वुच्चइ—जावं च णं से जीवे सया समितं एयति जाव परिणमइ, तावं च णं तस्स जीवस्स अंते अंतकिरिया न भवति।(श०३।१४५)

२४, २५. क्वचित् पठ्यते 'दुक्खणयाए' इत्यादि, तच्च व्यक्तमेव, यच्च तत्र 'किलामणयाए उद्दवणयाए' इत्यधिकमभिधीयते तत्र किलामणयाए' त्ति ग्लानिनयने 'उद्दवणयाए त्ति' उत्त्रासने। (वृ०-प० १८४)

*लय—वाल्हा वारी रे अब लग
†लय—पूज मोटा भांजै टोटा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६. 'ए कंपन कह्यु जाण, अर्थ धर्मसी इम कियो।
आरंभे वर्तमान, ते आरंभी मूलगो।।
२७. छट्ठा थी अवधार, जीवठाणा तेरमा लगै।
हालै छै अणगार, तो स्यूं आरंभी थया?
२८. पिण चालै सुभ जोग, तिण सूं आरंभी नहीं।
असुभ जोग दुःप्रयोग, तेहनीं वात जुदी अछै।।
२९. इहां आख्यूं छै एह, ते आरंभी मूलगो।
हालंतो पिण जेह, आरंभ में वर्त्तै अछै।।
३०. अणारंभी अणगार, सव्व-जग-जीव-वच्छलकरा।
ते माटै सुविचार, ए आरंभी नहिं मूलगा।।
३१. तिण कारण इम जोय, मुनि आथी ए पाठ नहीं।
अर्थ इसो अवलोय, धर्मसीह कीधो अछै।।
३२. जीवे ण पहिछाण, एक वचन तिण कारणै।
चवदम विण गुणठाण, कंपै पिण सहु नहिं इहां।
३३. आरंभे वर्त्तमान, तेहिज लेखवियो इहां।
अणारंभे कंपान, ते इहां लेखवियो नथी'।।
(ज० स०)

३४. कह्यो चलन अधिकार, तास विपर्जय हिव कहूं।
कंपै नहिं अणगार, प्रश्न तास निमुणो सहु।।

३५. *हे प्रभु! ते जीवडो, सदा समित सोभंतो।
कंपै नहीं यावत् वलि, ते ते भाव नही परिणमंतो?

३६. जिन कहै हंता जीव जे, सदा परमाण सहीतो।
यावत् भाव न परिणमैं, ए अयोगी आश्री प्रतीतो।।

३७. प्रभु! ज्यां लग जीव कंपै नहीं, यावत् परिणमैं नांही।
त्यां लग मरणंते तसु, अंत-क्रिया स्यूं थाई?

३८. जिन कहै हंत जावत् हुवै, किण अर्थे कर ताह्यो?
यावत् अंत-क्रिया हुवै? हिव उत्तर दे जिणरायो।।

३९. जेतले कालै जीव ते, सदा समित न कंपायो।
यावत् भाव न परिणमैं, तिहां लग आरंभादि लिहुं नांह्यो।।

४०. तीनूं विषै वर्त्तै नहीं, ए लिहुं न करतो सोयो।
ए तीनूं विषै अणवर्त्तंतो, किणरी हिंसा न करै कोयो।।

३४. उक्तार्थविपर्ययमाह— (वृ०-प० १८४)

३५. जीवे णं भंते! सया समितं नो एयति जाव नो तं तं भावं परिणमइ?

३६. हंता मंडिअपुत्ता! जीवे णं सया समितं जाव नो तं तं भावं परिणमइ। (श० ३।१४६)
शैलेशीकरणे योगनिरोधान्नो एजत इति।
(वृ०-प० १८४)

३७. जावं च णं भंते! से जीवे नो एयति जाव नो तं तं भावं परिणमइ, तावं च णं तस्स जीवस्स अंते अंतकिरिया भवइ?

३८. हंता जाव भवइ। (श० ३।१४७)
से केणट्ठेणं जाव भवइ?

३९. मंडिअपुत्ता! जावं च णं से जीवे सया समितं नो एयति जाव नो तं तं भावं परिणमइ, तावं च णं से जीवे नो आरभइ नो सारभइ नो समारभइ,

४०. नो आरंभे वट्टइ, नो सारंभे वट्टइ, नो समारंभे वट्टइ, अणारभमाणे असारभमाणे असमारभमाणे, आरंभे अवट्टमाणे सारंभे अवट्टमाणे समारंभे अवट्टमाणे

*लय—वाल्हा वारी रे अब लग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१. घणां प्राण भूत जीव सत्व नैं, दुख पमावै नांही।
यावत् परितापन विषै, ए वर्त्तै नहिं कांई॥

४२. जोग-निरोध शुक्ल-ध्यान सूं, सकल - कर्म - क्षय रूपो।
अंत-क्रिया होवै तिहां, दृष्टंत दोय अनूपो॥

४३. जिम कोइ नर सूका तृण तणो पूलो प्रक्षेपै अग्नि मझारो।
हे मंडियपुत्र! अग्नि में न्हाखै छतै, शीघ्र दहन हुवै तिणवारो॥

४४. इम पूछ्यै थकै मंडिपुत्र कहै, हां प्रभु! शीघ्र वलंतो।
वलै दूजो दृष्टंत देवै करी, प्रश्न करै भगवंतो॥

४५. कोइ अय-तप्त कडाहलै विषै, जल-बिंदु प्रक्षेपै सोयो।
हे मंडियपुत्र! ते प्रक्षेपियां, शीघ्र विध्वंसज होयो॥

४६. मंडिपुत्र कहै हां प्रभु! शीघ्र विध्वंसज थायो।
हिवै उपनय थी देखाडियै, सामर्थ्य जोग कहायो॥

४७. इम कंपन कर रहित नैं, शुक्ल ध्यान तणों चोथो पायो।
तेह रूप अग्ने करी, पूलो कर्म रूप जल जायो॥

४८. हिवै क्रिया-रहित नैं इज हुवै, अंत - क्रिया सुखदायो।
नावा नैं दृष्टंते करी, भाखै छै जिणरायो॥

४९. यथा दृष्टांते द्रह जिको, पूर्ण जलभृत हुंतो।
पूर्ण-प्रमाण ऊणो नथी, तल उलसत वेल वधतो॥

५०. वोसट्टमाणे चिहुं दिशै, पसरयो जल - विस्तारो।
जिम घडो भरयो तिम द्रह भरयो, इम द्रह तिष्ठै तिवारो॥

५१. अथ कोइ पुरुष ते द्रह विषै, इक मोटी नाव कहायो।
सदा थवती लघु-महा-छिद्र ते, मेली द्रह रै मांह्यो॥

५२. हे मंडिपुत्र! नावा तिका, आश्रव द्वारे करीनैं भराई।
लिगार मात्र ऊणी नहीं, वेल वृद्धि तलो हुलसाई॥

५३. ऊपर चिउं दिशि पसरती, रहै भरया घडा जिम ताह्यो।
'हंता चिट्ठंति' इसो पाठ, किणहि पडत मांह्यो॥

४१. बहूणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं अदुक्खावणयाए जाव अपरियावणयाए वट्टइ।

४२. योगनिरोधाभिधानशुक्लध्यानेन सकलकर्मध्वंस-रूपाऽन्तक्रिया भवति तत्र दृष्टान्तद्वयमाह—
(वृ०-प० १८४)

४३. से जहानामए केइ पुरिसे सुक्कं तणहत्थयं जायतेयंसि पक्खिवेज्जा, से नूणं मंडिअपुत्ता! से सुक्के तणहत्थए जायतेयंसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव ममसमाविज्जइ?

४४. हंता! ममसमाविज्जइ।

४५. से जहानामए केइ पुरिसे तत्तंसि अयकवल्लंसि उदयबिंदुं पक्खिवेज्जा, से नूणं मंडिअपुत्ता! से उदयबिंदू तत्तंसि अयकवल्लंसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव विद्धंस-मागच्छइ?

४६. हंता विद्धंसमागच्छइ।
इह च दृष्टान्तद्वयस्याप्युपनयार्थः सामर्थ्यगम्यः।
(वृ०-प० १८४)

४७. यथा—एवमेजनादिरहितस्य शुक्लध्यानचतुर्थभेदानलेन कर्मदाह्यदहनं स्यादिति। (वृ०-प० १८४)

४८. अथ निष्क्रियस्यैवान्तक्रिया भवतीति नौदृष्टांतेनाह—
(वृ०-प० १८४)

४९. से जहानामए हरए सिया पुण्णे पुण्णप्पमाणे वोलट्टमाणे

५०. वोसट्टमाणे समभरघडत्ताए चिट्ठति।

५१. अहे णं केइ पुरिसे तंसि हरयंसि एगं महं नावं सयासवं सयच्छिद्दं ओगाहेज्जा,

५२. से नूणं मंडिअपुत्ता! सा नावा तेहिं आसवदारेहिं आपूरमाणी-आपूरमाणी पुण्णा पुण्णप्पमाणा वोलट्ट-माणा

५३. वोसट्टमाणा समभरघडत्ताए चिट्ठति?
हंता चिट्ठति।

---

१. जयाचार्य ने आगमों का पद्यानुवाद करते समय मूल पाठ के साथ पाठान्तर और वृत्ति का भी मुक्त-मन से उपयोग किया है। कुछ स्थलों पर उनका उपयोग मूल पाठ के प्रवाह में किया गया है और कहीं-कहीं उसकी सूचना भी दी गई है। भगवती-जोड़ की ६४वीं ढाल की ५३वीं गाथा में पाठान्तर का उल्लेख करते हुए जयाचार्य ने लिखा है—
'हंता चिट्ठंति' इसो पाठ किणहि पडत मांह्यो।
(शेष अग्रिम पृष्ठ पर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५४. हिवै कोइ पुरुष ते नाव नैं, सर्व थी समस्त प्रकारो।
पाणी आवा नां द्वार नैं, ढांकी नैं तिणवारो ।।

५५. जल उलीचवा नां भाजन करी, काढे उदक उलीची बारो।
ते उदक वारै काढ्यां छतै, शीघ्र ऊंची आवै तिणवारो ।।

५६. इम वीर प्रभु पूछ्यै थकै, वर मंडियपुत्र कहै वायो।
हंता हां आवै, प्रभु ! तव भाखै जिनरायो ।।

५७. इण दृष्टांते हे मंडियपुत्र ! मुनि ! आतम-संवृत अणगारो।
ईर्ष्या-समिति करि सहित छै, जाव गुप्त - ब्रह्मचारो ।।

५८. उपयोग सहित चालतो थको, संवृत संत वदीतो।
उपयोग सहित ऊभो रहै, बेसै सूवै रूडी रीतो ।।

५९. वस्त्र पात्र वलि कंबलो, पायपूछणो ते रजोहरणं।
लेतां मेलंतां छता, उपयोग सहित आचरणं ।।

६०. जाव चक्खुपम्हणिवायमवि, आंख टमकारै इतरो कालो।
सूक्ष्म इरियावही क्रिया कही, ते बेमात्राइं न्हालो ।।

६१. अंतरमुहूर्त्त आदि दे, देश ऊणो पूर्व कोड थाई।
क्रिया काल नां विचित्रपणां थकी, विविध मात्रा बेमात्रा कहाई ।।

सोरठा

६२. वृत्तौ वृद्ध आख्यात, स्तोक - मात्र बेमात्र ते।
चक्षू - पम्ह - निपात, इतै काल पिण जे क्रिया ।।

६३. *किहां बेमाया पाठ नैं स्थानके, 'संपेहाए'[1] पाठ दीसंतो।
चक्खुपम्हणिवाय स्व इच्छा करी, पर इच्छा किंचित न करंतो ।।

५४. अहे णं केइ पुरिसे तीसे नावाए सव्वओ समंता आसव-दाराइं पिहेइ, पिहेत्ता

५५. नावा-उस्सिंचणएणं उदयं उस्सिंचेज्जा से नूणं मंडिअपुत्ता ! सा नावा तंसि उदयंसि उस्सित्तंसि समाणंसि खिप्पामेव उदाइ ?

५६. हंता उदाइ।

५७. एवामेव मंडिअपुत्ता ! अत्तत्ता-संवुडस्स अणगारस्स इरियासमियस्स जाव गुत्तबंभयारिस्स,

५८. आउत्तं गच्छमाणस्स चिट्ठमाणस्स निसीयमाणस्स तुयट्टमाणस्स,

५९. आउत्तं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणं गेण्हमाणस्स निक्खिवमाणस्स

६०. जाव चक्खुपम्हनिवायमवि वेमाया सुहुमा इरियावहिया किरिया कज्जइ—

६१. 'वेमाय' त्ति विविधमात्रा, अन्तर्मुहूर्त्तादिर्देशोनपूर्वकोटी-पर्यन्तस्य क्रियाकालस्य विचित्रत्वात् । (वृ०-प० १८४)

६२. वृद्धाः पुनरेवमाहुः—यावता चक्षुषो निमेषोन्मेषमात्रापि क्रिया क्रियते तावताऽपि कालेन विमात्रया स्तोक-मात्रयाऽपि। (वृ०-प० १८४)

६३. क्वचिद् विमात्रेत्यस्य स्थाने 'सपेहाए' त्ति दृश्यते तत्र च 'स्वप्रेक्षया' स्वेच्छया चक्षुपक्ष्मनिपातो न तु परकृतः। (वृ०-प० १८४)

अंगसुत्ताणि ३।१४८ में 'हंता चिट्ठति' ऐसा पाठ है। जयाचार्य ने जिस आदर्श के आधार पर जोड़ की रचना की, उससे अतिरिक्त किसी प्रति में उनको चिट्ठंति पाठ मिला होगा अथवा कुछ आदर्शों में संक्षिप्त पाठ की दृष्टि से ऐसे स्थलों को अनुल्लिखित ही छोड़ दिया जाता है। जयाचार्य द्वारा प्रयुक्त आदर्श में यह पाठ न हो और उन्हें उपलब्ध किसी अन्य आदर्श में हो तो उसकी सूचना देने के लिए उन्होंने 'हंता चिट्ठति' पाठ उद्धृत किया हो, किन्तु लिपिदोष के कारण चिट्ठति पर अनुस्वार लग गया हो, यह भी संभव लगता है। प्रस्तुत प्रकरण की दृष्टि से 'चिट्ठति' पाठ ही शुद्ध प्रतीत होता है।

*लय—वाल्हा वारी रे अब लग

१. भगवती-जोड़ की ६४वीं ढाल की ६३वीं गाथा में जयाचार्य ने 'वेमाया' पाठ के पाठान्तर का उल्लेख करते हुए 'संपेहाए' पाठ उद्धृत किया है। वृत्तिकार ने इस स्थान पर 'सपेहाए' पाठ लिखकर उसका संस्कृत रूपान्तर किया है—'स्वप्रेक्षया'। इस दृष्टि से 'सपेहाए' पाठ ही अधिक संगत प्रतीत होता है। जयाचार्य को उपलब्ध किसी आदर्श में 'संपेहाए' पाठ रहा होगा, यह उनके उक्त निर्देश से स्पष्ट होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६४. सूक्ष्म - इरियावहि बंधै तिका, कर्म साता-वेदनी सुसंधो।
उपशांत-मोह क्षीण-मोह रै, सजोगी केवली रै बंधो॥

६५. ए तीनूं गुणठाणै वीतरागपणैं, सक्रियपणां थी सोयो।
साता - वेदनी कर्म नों, बंध होवै अवलोयो॥

६४, ६५. 'सुहुम' त्ति सूक्ष्मबन्धादिकाला 'ईरियावहिय' त्ति ईर्यापथो—गमनमार्गस्तत्र भवा ऐर्यापथिकी केवलयोग-प्रत्ययेति भावः 'किरिये' त्ति कर्म सातवेदनीयमित्यर्थः 'कज्जइ' त्ति क्रियते भवतीत्यर्थः, उपशान्तमोहक्षीण-मोहसयोगिकेवलिलक्षणगुणस्थानकत्रयवर्ती वीत-रागोऽपि हि सक्रियत्वात् सातवेद्यं कर्म बध्नातीति भावः। (वृ०-प० १८४)

६६. पहिलै समय बंधै क्रिया तिका, जीव - प्रदेशे ते फर्शायो।
बीजै समय उदय ते वेदवूं, तीजै निर्जर दूर थायो॥

६६. सा पढमसमयबद्धपुट्ठा, बितियसमयवेइया, ततिय-समयनिज्जरिया।
बद्धा कर्मतापादनात् स्पृष्टा जीवप्रदेशैः स्पर्शनात्।
(वृ०-प० १८४)

६७. पछै आगमिया काल विषै ए, कर्म रहित पिण होई।
गहवी बात कही छै सूत्रे, इहां वृत्तिकार कह्यो सोई॥

६७. सा बद्धा पुट्ठा उदीरिया वेइया निज्जिण्णा सेयकाले अकम्मं वावि भवति।

सोरठा

६८. तठा पछै अवलोय, अकर्म आगामिक अद्धा।
इण वचने करि होय, अकर्मता चोथै समय॥

६८. ततश्च 'सेयकाले' त्ति एष्यत्काले 'अकम्मं वावि' त्ति अकर्माऽपि च भवति। (वृ०-प० १८५)

६९. यद्यपि तिहांज ख्यात, तृतीय समय अघ निर्जरै।
इण वचने करि थात, अकर्मता तीजै समय॥

७०. द्वितीय समय रै मांय, भाव कर्म अति निकट थी।
तीजै समय कहाय, द्रव्य कर्म सुद्ध द्रव्य नय॥

६९, ७०. इह च यद्यपि तृतीयेऽपि समये कर्माकर्म भवति तथाऽपि तत्क्षण एवातीतभावकर्मत्वेन द्रव्यकर्मत्वात् तृतीये निर्जीर्ण कर्मेति व्यपदिश्यते। (वृ०-प० १८५)

७१. *तिण अर्थ मंडियपुत्र ! इम कह्यूं, ज्यां लग जीव सदा सप्रमाणो।
न कंपै जाव तेहनै अंते, अंत-क्रिया हुवै जाणो॥

७१. से तेणट्ठेणं मंडिअपुत्ता ! एवं वुच्चइ—जावं च णं से जीवे सया समितं नो एयति जाव अंते अंतकिरिया भवइ। (श० ३।१४८)

सोरठा

७२. 'कह्यो इहां धर्मसी एम, जीव जिको हालै नहीं।
अछै अजोगी खेम, अंत-क्रिया तेहिज करै॥

७३. जोग मध्ये वे लंभ, सुभ अनैं बलि असुभ छै।
सुभ जोगे अणारंभ, असुभ जोगे आरंभ छै॥

७४. तिम हालतां नीं वे जात, सुभ जोगे मुनि हालतो।
अणारंभी पिण थात, अंत-क्रिया न करै तिको॥

७५. असुभ जोगे हालंत, तसुं आरंभी पिण कह्यूं।
अंत-क्रिया न करंत, ए तो प्रत्यक्ष ईज छै॥

७६. सुक तृण अग्नि दहंत, तप्त कडाहे जल-बिंदु।
शीघ्र विध्वंसज हुंत, भस्म करै इम मुनि कर्म॥

७७. द्रह में सछिद्र नाव, पाणी भर तल बूडिइं।
तिम मिथ्यात्वादि भाव, आश्रव द्वारज छिद्र सम॥

*लय—वाल्हा वारी रे अब लग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७८. ए संसार मझार, काणी नावा सारिखो।
कर्म-उदक करि भार, भ्रमण करै इम बूडियै ।।

७९. नाव छिद्र रूंधंत, उदक उलिची काढियै।
नाव नहीं बूडंत, शीघ्र आवै जल ऊपरै ।।

८०. तिम मिथ्यात्वादि-छिद्र, सम्यक्त्व संवर आदि दे।
संवर पंच अखुद्र, तेहथी आश्रव रूंधियै ।।

८१. पूर्व संचित जेह, आवश्यकादिक तप करी।
कर्म-उदक काढेह, मरणंते सहु कर्म क्षय'।। (ज०स)

दूहा

८२. श्रमण तणां अधिकार तें, प्रमत्त - संजती न्हाल।
वलि अप्रमत्त - मुनि तणों, कहियै छै हिव काल ।।

८३. *प्रमत्त-संजती हे प्रभु ! प्रमत्त-संजम वर्त्तमानो।
सहु पिण प्रमत्त अद्धा तिको, काल थकी केवच्चिरं जानो ?

सोरठा

८४. वृत्ति विषै इम न्हाल, प्रमत्त अद्धा नों अरथ।
प्रमत्त गुणस्थानक काल, काल थकी काल आश्रयी ।।

८५. केवच्चिर वलि ख्यात, कितो काल जावत् हुई।
ए प्रश्न अवदात, मंडितपुत्रे पूछियो ।।

वा०—इहां ए तर्क कीधी—केवच्चिरं एणे कहिवै करी काल थकी नों अर्थ प्राप्त थयो। तो काल थकी कहिवा नों स्यूं प्रयोजन ? एहनों उत्तर—क्षेत्रतः ते क्षेत्र थकी एह भाव टालेवा नैं अर्थे क्षेत्रतः केवच्चिरं क्षेत्र केतलो काल इसो पिण प्रश्न हुई, जिम अवधिज्ञान क्षेत्रतः केवच्चिरं—क्षेत्र थकी केतलो काल हुई, तेतीस सागरोपम अनुत्तर विमान क्षेत्र नैं विषै अवधिज्ञान हुई अनै काल थकी ६६ सागरोपम जाझेरो हुई ते माटै इहां काल थकी कहिनैं केवच्चिरं पाठ कह्यो।

८६. *जिन भाखै मंडियपुत्त ! सांभले, एक जीव आश्री इम जोडो।
जघन्यपणें इक समय ह्वै, उत्कृष्ट देसूण पुव्व - कोडो ।।

सोरठा

८७. प्रमत्त-संजम पाय, समयानंतर हीज मृति।
तेह थकी कहिवाय, जघन समय इक इम वृत्तौ ।।

८८. जघन्य समय इक न्हाल, तास न्याय पूर्वे कह्यो।
हिव उत्कृष्टज काल, देसूण पूरव कोड किम ?

८२. अथ यदुक्तं श्रमणानां प्रमादप्रत्यया क्रिया भवतीति, तत्र प्रमादपरत्वं तद्विपक्षत्वात्तदितरत्वं संयतस्य कालतो निरूपयन्नाह— (वृ०-प० १८५)

८३. पमत्तसंजयस्स णं भंते ! पमत्तसंजमे वट्टमाणस्स सव्वा वि य णं पमत्तद्धा कालओ केवच्चिरं होइ ?

८४. 'प्रमत्ताद्धा' प्रमत्तगुणस्थानककालः 'कालतः' प्रमत्ताद्धासमूहलक्षणं कालमाश्रित्य। (वृ०-प० १८५)

८५. 'कियच्चिरं' कियन्तं कालं यावद् भवतीति प्रश्नः।
(वृ०-प० १८५)

वा०—ननु कालत इति वाच्यं, कियच्चिरमित्यनेनैव गतार्थत्वात्, नैवं, क्षेत्रत इत्यस्य व्यवच्छेदार्थत्वात्, भवति हि क्षेत्रतः कियच्चिरमित्यपि प्रश्नः, यथाऽवधिज्ञानं क्षेत्रतः कियच्चिरं भवति ? त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, कालतस्तु सातिरेका षट्षष्टिरिति।
(वृ०-प० १८५)

८६. मंडिअपुत्ता ! एगं जीवं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

८७. 'एक्कं समयं' ति, कथम् ? उच्यते, प्रमत्तसंयमप्रतिपत्तिसमयसमनन्तरमेव मरणात्। (वृ०-प० १८५)

*लय—वाल्हा वारी रे अब लग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८९. *इहां वृत्तिकार कह्यूं प्रमत्त अप्रमत्त, बेहुं गुणठाणै लहै।
कहै अन्य आचार्य काल ए सहु, छठै गुणठाणेंज ह्वै ॥

८९. 'देसूणा पुव्वकोडि' त्ति किल प्रत्येकमन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणे एव प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानके। (वृ०-प० १८५)

९०. 'नाना बहु जीव आश्रयै, छठा गुणठाणा रो कालो।
सदा काल रहै सासतो, च्यार नियंठा निहालो ॥

९०. नाणाजीवे पडुच्च सव्वद्धा। (श० ३।१४९)

९१. अप्रमत्त-संजती हे प्रभु! अप्रमत्त-संजमे वर्त्तमानो।
सर्व काल अप्रमत्त तणुं, रहे केतलुं काल पिछानो?

९१. अप्पमत्तसंजयस्स णं भंते! अप्पमत्तसंजमे वट्टमाणस्स सव्वा वि य णं अप्पमत्तद्धा कालओ केवच्चिरं होइ?

९२. जिन भाखै काल अप्रमत्त तणो, इक जीव आश्री जोडो।
अंतर्मुहूर्त्त जघन्य थी, उत्कृष्टो देसूण पुव्व-कोडो ॥

९२. गोयमा! एगं जीवं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी

९३. *इहां वृत्तिकार कह्यूं काल अप्रमत्त, अंतर्मुहूर्त्त रहै सही।
अंतर्मुहूर्त्त मांहि न मरै, तेहथी ए जघन्य ही ॥

९३. 'जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं' ति किलाप्रमत्ताद्धायां वर्तमानस्यान्तर्मुहूर्तमध्ये मृत्यु र्न भवतीति। (वृ०-प० १८५)

९४. चूर्णिकार-मत—प्रमत्त वरजी, संजती जे सर्व ही।
अप्रमत्त कहियै तिणा नैं, प्रमत्त-भाव तिहां नहीं ॥

९४. चूर्णिकारमतं तु प्रमत्तसंयतवर्जः सर्वोऽपि सर्वविरतोऽप्रमत्त उच्यते, प्रमादाभावात्। (वृ०-प० १८५)

९५. एह उपसम-श्रेण चढतो, मुहूर्त्त नैं भीतर सही।
काल करतो छतो पामै, जघन्यकाल इतोज ही ॥

९५. स चोपशमश्रेणीं प्रतिपद्यमानो मुहूर्त्ताभ्यन्तरे कालं कुर्वन् जघन्यकालो लभ्यत इति। (वृ०-प० १८५)

वा०—ए अप्रमादी उपशम-श्रेणि चढै तिको जीव ग्रहिवो, जो आठमैं गुणठाणैं उपशम-श्रेणि चढतो प्रथम समय मरै तो पिण सातमैं गुणठाणैं अप्रमत्तपणैं अंतर्मुहूर्त्त रह्यो ते माटै जघन्य अंतर्मुहूर्त्त, इहां उपशम-श्रेणी चढै तिको अप्रमत्त ग्रह्यो। पिण अन्य अप्रमत्त ग्रहण न कियो।

९६. काल उत्कृष्ट अप्रमत्त नों, देसूणों पूर्व कोड है।
तेरमैं गुणठाण गुणियै, वृत्ति थी ए जोड है ॥

९६. देसोनपूर्वकोटी तु केवलिनमाश्रित्येति। (वृ०-प० १८५)

९७. +अप्रमत्त नाना जीव आसरी, सदा काल केवली रै न्यायो।
सेवं भंते! सेवं भंते! कही, मंडियपुत्त ऋषिरायो ॥

९७. नाणाजीवे पडुच्च सव्वद्धं। (श० ३।१५०)
सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति भगवं मंडिअपुत्ते अणगारे

९८. वंदना नमस्कार करि वीर नैं, संजम तप कर ताह्यो।
आत्मा नैं भावता थका, विचरै महामुनिरायो ॥

९८. समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरति। (श० ३।१५१)

दूहा

९९. काल कह्यूं अप्रमत्त तणुं, हिवै सर्वकाल में जेह।
भावी भावांतर तणुं, गोयम प्रश्न करेह ॥

९९. अथ सर्वाद्धाभाविभावान्तरप्ररूपणायाह— (वृ०-प० १८५)

१००. +हे भदंत! इह विध कही, वीर नैं गोयम वंदी।
नमस्कार करिनैं वलि, इम बोल्या आनंदी ॥

१००. भंतेत्ति! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

१०१. हे प्रभुजी! किण कारणैं, लवणोदधि जल रासी।
चवदस आठम नैं विषै, अमावस्या पूर्णमासी ॥

१०१. कम्हा णं भंते! लवणसमुद्दे चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु

*लय—पूज मोटा भांजै तोटा

+लय—वाल्हा वारी रे अब लग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०२. अनेरी तिथि नीं अपेक्षया, ए पट तिथि नैं मांह्यो।
जल अधिक वधै अथवा घटै, हे प्रभु ! ते किण न्यायो ?

१०३. जीवाभिगम मांहै कह्यूं, लवणोदधि विस्तारो।
जावत् लोक नीं स्थिति लगै, इहां कहिवूं अधिकारो।।

१०४. +लवणुदधि मध्य भाग चिउं दिशि, पाताल-कलशा चिउं अछै।
भाग त्रिण तसुं तले वायु, ऊपर जल विच उभय छै।।

१०५. वलि लघु कलशा सप्त सहस्रज, अठ सय चउरासीइं।
त्रिण भाग तसुं तल वायु विच उभय, ऊर्ध्व जल इम वासीइं।।

१०६. वायु नां विक्षोभ सेती, वृद्धि हानी जल तणीं।
अष्टम्यादिक तिथि विषै छै, लोक स्थिति थकी भणीं।।

१०७. लवणोदधि नैं जल करी ए, जंबू लोपातो नथी।
पीड अणउपजावतो, जिन प्रमुख पुन्य प्रभाव थी।।

१०८. 'इक-उदक ते निश्चैज न करै, लोक नुं अनुभाव ही।
सेवं भंते ! कही गोयम, जाव विचरंता सही।।

१०९. *अर्थ अंक तेतीस नुं, ढाल चोसठमी चंगी।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' संपति सुरंगी।।

तृतीयशते तृतीयोद्देशकार्थः।।३।३।।

१०२. अतिरेगं वड्ढइ वा ? हायइ वा ?
'अतिरेगं ति' तिथ्यन्तरापेक्षया अधिकतरमित्यर्थः।
(वृ०-प० १८६)

१०३. लवणसमुद्दवत्तव्वया नेयव्वा जाव लोयट्ठिई, लोयाणुभावे। (श० ३।१५२)
'लवणसमुद्दवत्तव्वया नेयव्व' त्ति जीवाभिगमोक्ता, कियद्दूरं यावदित्याह—जाव लोयट्ठिईत्यादि।
(वृ०-प० १८६)

१०४. लवणसमुद्रस्य मध्यभागे दिक्षु चत्वारो महापातालकलशाः। (वृ०-प० १८६)

१०५. तथाऽन्ये क्षुद्रपातालकलशा योजनसहस्रप्रमाणाश्चतुरशीत्युत्तराष्टशताधिकसप्तसहस्रसंख्या वाय्वादियुक्तविभागवन्तः सन्ति। (वृ०-प० १८६)

१०६. तदीयवातविक्षोभवशाज्जलवृद्धिहानी अष्टम्यादिषु स्याताम्। (वृ०-प० १८६)

१०७. अथ कस्माल्लवणो जम्बूद्वीपं नोत्प्लावयति ? अर्हदादिप्रभावाल्लोकस्थितिर्वैषा इति। (वृ०-प० १८६)

१०८. णो चेव णं एगोदगं करेइ लोयाणुभावे।
(वृ०-प० १८६)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरति।
(श० ३।१५३)

ढाल : ६५

दूहा

१. पूर्वे उद्देशे कहि क्रिया, तेहनों ईज विशेष।
विचित्रपणों दिखाडवा, कहियै ए उद्देश।।

२. •हे भदंत ! अणगार रे, संजम तप करी।
भावित-आतम तणों धणी ए।।

१. अनन्तरोद्देशके क्रियोक्ता, सा च ज्ञानवतां प्रत्यक्षेति तदेव क्रियाविशेषमाश्रित्य विचित्रतया दर्शयंश्चतुर्थोद्देशकमाह—
(वृ०-प० १८६)

२. अणगारे णं भंते ! भाविअप्पा

+लय—पूज मोटा भांजै टोटा

१. जलमय न बनाना

*लय—वाल्हा वारी रे अब लग

•लय—बे कर जोडी ताम रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. आख्यो इम वृत्तिकार, बहुलपणैं करी।
अवधि ज्ञानादिक ते भणी ।।

३. एवंविधानामनगाराणां हि प्रायोऽवधिज्ञानादिलब्धयो भवन्तीति कृत्वा भावितात्मेत्युक्तं। (वृ०-प० १८६)

४. धर्मसीह कह्यो एम, मिथ्यात्वी पिण हुवै।
नियम नहीं मुनिवर तणों ।।

५. घर तजवै अणगार, ते निज मत करी।
तसुं भावित आतमपणो ।।

६. शतक चवदमैं पेख, प्रथम उद्देशके।
बाल-तपस्वी नैं कह्यूं ।।

७. भावितात्म अणगार, असुर में ऊपजै।
विभंग अज्ञान तिणैं लह्यूं ।।

८. सुर वैक्रिय-समुद्घात, तेणे करि कियो।
उत्तर-वैक्रिय तनु छतो ।।

८. देवं, वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहयं
'समोहयं' ति विहितोत्तरवैक्रियशरीरमित्यर्थः।
(वृ०-प० १८६)

९. शिविकादि आकार, विमान वेसनैं।
किणहिक स्थानक जावतो ।।

९. जाणरूवेणं जामाणं
'जाणरूवेणं' ति यानप्रकारेण शिविकाद्याकारवता वैक्रियविमानेनेत्यर्थः 'जायमाणं' ति यान्तं गच्छन्तं।
(वृ०-प० १८६)

१०. ते सुर जातां प्रति सोय, जाणैं छै प्रभु !
वलि देखै दर्शन करी ?

१०. जाणइ-पासइ ?
'जाणइ' त्ति ज्ञानेन 'पासइ' त्ति दर्शनेन।
(वृ०-प० १८६)

११. तब जिन भाखै एम, सांभल गोयमा !
चिउं भंगे इहां अनुसरी ।।

१२. कोइयक तिहां देखंत, देव जातां प्रतै।
विमाण नैं देखै नहीं ।।

१२. गोयमा ! अत्थेगइए देवं पासइ, नो जाणं पासइ।

१३. कोई एक अणगार, देखै जान नै।
सुर नैं नहि देखै सही ।।

१३. अत्थेगइए जाणं पासइ, नो देवं पासइ।

१४. कोइ एक वलि अणगार, देखै देव प्रतै।
यान प्रतै पिण देखतो ।।

१४. अत्थेगइए देवं पि पासइ, जाणं पि पासइ।

१५. कोइ एक वलि अणगार, न देखै देव नैं।
यान प्रतै नहिं पेखतो ।।

१५. अत्थेगइए नो देवं पासइ, नो जाणं पासइ।
(श० ३।१५४)

१६. हे भदंत ! अणगार, भावित-आतमा।
दर्शण अवधि तणो धणी ।।

१६. अणगारे णं भंते ! भाविअप्पा

१७. उत्तर-वैक्रिय रूप, विमान वेसनै।
देखै सुरी जाती भणी ।।

१७. देविं वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहयं जाणरूवेणं जामाणिं जाणइ-पासइ ?

१८. एवं ए चिउं भंग, देव तणां कह्या।
इम देवी नां जाणियै ।।

१८. गोयमा ! एवं चेव। (श० ३।१५५)

१९. हे भदंत ! अणगार, भावित-आतमा।
अवधि सहित पिछाणियै ।।

१९. अणगारे णं भंते ! भाविअप्पा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०. देवी सहित देव, करि उत्तर - वैक्रिय।
विमान में बैसी जिहां॥

२१. जातां प्रतै जिवार, ए अणगार हीं।
जाणै नैं देखै तिहां?

२२. कोइयक तिहां देखंत, देव देवी प्रतै।
विमान नैं देखै नहीं॥

२३. इण आलावै एह, चउभंगी इहां।
कहिवी पूर्ववत् सही॥

२४. प्रभु! भावितात्म अणगार, स्यूं देखै रूंख नों।
मध्य काष्ठ सारादि नैं॥

२५. कै बाह्य त्वचा पत्रादि, ते देखै अछै?
चउभंगी इहां कही जिनैं॥

२६. इम स्यूं देखै मूल? तिरछो जाय तें।
मूल कहीजै तेहनैं॥

२७. मूल ऊपरै जेह, गांठि अछै जिका।
कंद कहीजै तेहनैं॥

२८. मूल ए कंद नीं जाण, रूंख तणी कही।
प्रथम चउभंगी परवरी॥

२९. मूल भणी देखंत, देखै खंध नैं?
ए दूजी कहियै खरी॥

३०. इम यावत् पहिछाण, मूल करी इहां।
बीज संघातै पिण लही॥

३१. एवं कंद संघात, संयोजन अछै।
यावत् बीज संघात ही॥

३२. एवं यावत् जाण, पुष्प संघात ही।
बीज संघाते आखियै॥

३३. हिव एहनों विस्तार, जुदो जुदो कहूं।
ते श्रोता अभिलापियै॥

३४. सर्व चउभंगी जाण, पैंतालीस छै।
संक्षेपे सूत्रे लही॥

३५. [1]मूल-कंद नीं एक, [2]मूल रु खंध नी।
ते तो पूर्व कही सही॥

३६. [3]मूल-त्वचा नीं जाण, [4]मूल-शाखा तणी।
[5]मूल-प्रवाले पंचमी॥

३७. [6]मूल-पत्र पेखंत, [7]मूल रु पुष्प नीं।
[8]मूल रु फल नीं अष्टमी॥

२०. देवं सदेवीअं वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहयं जाणरूवेणं

२१. जामाणं जाणइ-पासइ?

२२. गोयमा! अत्थेगइए देवं सदेवीअं पासइ, नो जाणं पासइ।

२३. एतेणं अभिलावेणं चत्तारि भंगा। (श० ३।१५६)

२४. अणगारे णं भंते! भाविअप्पा रुक्खस्स किं अंतो पासइ?
'अंतो' त्ति मध्यं काष्ठसारादि। (वृ०-प० १८६)

२५. बाहिं पासइ? चउभंगो। (श० ३।१५७)
'बाहिं' ति बहिर्वर्ति त्वक्पत्रसंचयादि। (वृ०-प० १८६)

२६. अणगारे णं भंते! भाविअप्पा रुक्खस्स किं मूलं पासइ?

२७. कंदं पासइ?

२८. एवं किं मूलं पासइ? कंदं पासइ? चउभंगो।
(श० ३।१५८)

२९. मूलं पासइ? खंधं पासइ? चउभंगो। (श० ३।१५९)

३०. एवं मूलेणं जाव बीजं संजोएयव्वं। (श० ३।१६०)

३१. एवं कंदेण वि समं संजोएयव्वं जाव बीयं।
(श० ३।१६१)

३२. एवं जाव पुप्फेण समं बीयं संजोएयव्वं।
(श० ३।१६२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८. [1]मूल बीज नी होय, नवमीं चउभंगी।
ए मूल संघाते नव कही॥

३९. कंद संघाते आठ, [1]कंद रु खंध नी।
चउभंगी पहिली सही॥

४०. कंद[1]-त्वचा नीं जोय, [1]कंद-शाखा तणीं।
[1]कंद-प्रवाल चउथी लही॥

४१. [1]कंद-पत्र [1]कंद-पुष्प, [1]कंद-फल सातमीं।
[1]कंद-बीज अष्टमी सही॥

४२. खंध संघाते सात, [1]खंध-त्वचा तणी।
[1]खंध-शाखा [1]खंध-प्रवाल नीं॥

४३. [1]खंध-पत्र [1]खंध-पुष्प, [1]खंध-फल नी छठी।
सप्तमी [1]खंध नैं बीज नीं॥

४४. पट है त्वचा संघात, [1]त्वचा-शाखा तणी।
दूजी [1]त्वचा-प्रवाल नीं॥

४५. [1]त्वचा-पत्र [1]त्वच-पुष्प, [1]त्वच-फल नी वली।
छठी [1]त्वचा रु बीज नीं॥

४६. शाखा संघात पंच, [1]शाख-प्रवाल नी।
[1]शाख-पत्र दूजी जमी॥

४७. [1]शाखा-पुष्प पिछाण, [1]शाखा-फल तणी।
[1]शाखा-बीज ए पंचमी॥

४८. प्रवाल साथै च्यार, [1]प्रवाल-पत्र नीं।
[1]प्रवाल-पुष्प तणी वली॥

४९. [1]प्रवाल-फल नीं पेख, [1]प्रवाल-बीज नीं।
प्रवाल सूं ए चिउं मिली॥

५०. पत्र संघाते तीन, [1]पत्र रु पुष्प नीं।
[1]पत्र-फले [1]पत्र-बीज री॥

५१. पुष्प संघाते दोय, [1]पुष्प रु फल तणी।
[1]पुष्प-बीज नीं दूसरी॥

५२. फल संघाते एक, [1]फल नैं बीज नी।
पैंतालीस सर्व कही॥

५३. नव अठ सत पट पंच, चिउं त्रिण द्वि इक।
इम पैंतालीस लही॥

५४. हे भगवन! अणगार, भावित-आतमा।
फल देखै स्यूं तरु तणुं?

५४. अणगारे णं भंते! भाविअप्पा रुक्खस्स किं फलं पासइ?

५५. कहै देखै तसुं बीज, इहां पिण चउभंगी।
पैंतालीसमी ए भणुं॥

५५. बीयं पासइ? चउभंगो। (श० ३।१६३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौभंगी यंत्र

१. मूल-कंद २. मूल-स्कन्ध ३. मूल-त्वचा ४. मूल-शाखा ५. मूल-प्रवाल ६. मूल-पत्र ७. मूल-पुष्प ८. मूल-फल ९. मूल-बीज

१. कंद-स्कंध २. कंद-त्वचा ३. कंद-शाखा ४. कंद-प्रवाल ५. कंद-पत्र ६. कंद-पुष्प ७. कंद-फल ८. कंद-बीज

१. स्कंध-त्वचा २. स्कन्ध-शाखा ३. स्कन्ध-प्रवाल ४. स्कन्ध-पत्र ५. स्कन्ध-पुष्प ६. स्कन्ध-फल ७. स्कन्ध-बीज

१. त्वचा-शाखा २. त्वचा-प्रवाल ३. त्वचा-पत्र ४. त्वचा-पुष्प ५. त्वचा-फल ६. त्वचा-बीज

१. शाखा-प्रवाल २. शाखा-पत्र ३. शाखा-पुष्प ४. शाखा-फल ५. शाखा-बीज

१. प्रवाल-पत्र २. प्रवाल-पुष्प ३. प्रवाल-फल ४. प्रवाल-बीज

१. पत्र-पुष्प २. पत्र-फल ३. पत्र-बीज

१. पुष्प-फल २. पुष्प-बीज

१. फल-बीज

मूल के साथ नौ, कन्दर के साथ आठ, स्कन्ध के साथ सात, त्वचा के साथ छह, शाखा के साथ पांच, प्रवाल के साथ चार, पत्र के साथ तीन, पुष्प के साथ दो और फल के साथ एक चौभंगी करने से सब मिलकर पैंतालीस चौभंगी होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

५६. वैक्रिय - समुद्घात, पूर्वे देव तणो कह्यु ।
आगल वलि अवदात, वैक्रिय वाऊकाय नुं ।।

५६. 'विउव्वियसमुग्घाएणं समोहयं ति प्रागुक्तमतो वैक्रियाधिकारादिदमाह (वृ०-प० १८७)।

५७. *हे प्रभु ! वाऊकाय, इक महाऋद्धी तणो ।
तथारूप जे पुरुष नुं ।।

५७. पभू णं भंते ! वाउकाए एगं महं इत्थिरूवं वा पुरिसरूवं वा

५८. अथवा गज नों रूप, वलि गाडा तणों ।
युग गोल-देश प्रसिद्ध नुं ।।

५८. हत्थिरूवं वा जाणरूवं वा जुग्गरूवं वा
'जाण' त्ति शकटं 'जुग्गं' त्ति गोल्लविषयप्रसिद्धं ।
(वृ०-प० १८७)

५९. गज अंबाबाडी जोय, गिल्लि कहियै तसुं ।
हय-पलाण थिल्लि अखी ।।

५९. गिल्लिरूवं वा थिल्लिरूवं वा
'गेल्लि' त्ति हस्तिन उपरि कोल्लरूपा या मानुषं गिलतीव 'थिल्ली' ति लाटानां यदश्वपल्यानं तदन्यविषयेषु थिल्लीत्युच्यते । (वृ०-प० १८७)

६०. सिविका कूट-आकार, आच्छादित हुवै ।
संदमाणी ते पालखी ।।

६०. सीयरूवं वा संदमाणियरूवं वा
'सिय' त्ति शिविका कूटाकाराच्छादितो जम्पानविशेषः
'संदमाणिय' त्ति पुरुषप्रमाणायामो जम्पानविशेषः ।
(वृ०-प० १८७)

६१. विकुर्वे ए रूप ? इम पूछ्यै छतै ।
जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं ।।

६१. विउव्वित्तए ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

६२. वाऊ वैक्रिय रूप, इक मोटो तिहां ।
संठाण पताका नों सही ।।

६२. वाउकाए णं विकुव्वमाणे एगं महं पडागासंठियं रूवं विकुव्वइ । (श० ३।१६४)
महत् पूर्वप्रमाणापेक्षया पताकासंस्थितं ।
(वृ०-प० १८७)

६३. पताका नैं आकार, वाऊकाय नों ।
मूलपणैज शरीर छै ।।

६३. स्वरूपेणैव वायोः पताकाकारशरीरत्वाद् ।
(वृ०-प० १८७)

६४. वैक्रिय हुवै तिवार, वायू नां तदा ।
तेहिज आकार हुवै पछै ।।

६४. वैक्रियावस्थायामपि तस्य तदाकारस्यैव भावादिति ।
(वृ०-प० १८७)

६५. हे प्रभु ! वाऊकाय, इक मोटो तिहां ।
पताकाकारे विकुर्वी ।।

६५, ६६. पभू णं भंते ! वाउकाए एगं महं पडागासंठियं रूवं विउव्वित्ता अणेगाइं जोयणाइं गमित्तए ?
हंता पभू । (श० ३।१६५)

६६. जावा बहु जोजन, ते समर्थ छै ?
हंता इम जिन अनुभवी ।।

६७. ते भगवंत ! स्यूं जाय, आतम ऋद्धि करी ।
कै पर शक्ते जाइये ?

६७. से भंते ! किं आइड्ढीए गच्छइ ? परिड्ढीए गच्छइ ?

६८. जिन भाखै ते जाय, निज शक्ते करी ।
पर शक्ते नवि ध्याइये ।।

६८. गोयमा ! आइड्ढीए गच्छइ, नो परिड्ढीए गच्छइ ।
(श० ३।१६६)

*लय—बे कर जोडी ताम रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६९. जिम आतम ऋद्धि लब्धि, इमहिज जाइयै ।
निज आतम-किरिया करी ।।

६९. 'आइड्ढिए' त्ति 'आत्मद्धर्या' आत्मशक्त्याऽऽत्मलब्ध्या वा । (वृ०-प० १८७)

७०. इम आतम-प्रयोग, जावै ते सही ।
नहीं पर प्रयोग अनुसरी ।।

से भंते ! किं आयकम्मुणा गच्छइ ? परकम्मुणा गच्छइ ?
गोयमा ! आयकम्मुणा गच्छइ, नो परकम्मुणा गच्छइ ।
(श० ३।१६७)

७०. से भंते ! किं आयप्पयोगेणं गच्छइ ? परप्पयोगेणं गच्छइ ?
गोयमा ! आयप्पयोगेणं गच्छइ, नो परप्पयोगेणं गच्छइ ।
(श० ३।१६८)

७१. ते भगवंत ! स्यूं जाय, [1]ऊर्ध्व-पताक थी ।
कै [1]पडी-पताकाकार छै ?

७१. से भंते ! किं ऊसिओदयं गच्छइ ? पतोदयं गच्छइ ?

७२. जिन कहै ऊर्ध्वपताक, पडी पताक पिण ।
गति तसु बेहुं प्रकार छै ।।

७२. गोयमा ! ऊसिओदयं पि गच्छइ, पतोदयं पि गच्छइ ।
(श० ३।१६९)

७३. ते प्रभु ! [2]एक-पताक, कै [2]बेहुं-पताक नैं ।
आकारै ते जाइयै ।।

७३. से भंते ! किं एगओपडागं गच्छइ ? दुहओपडागं गच्छइ ?

७४. जिन कहै एक-पताक, आकारे गति ।
बेहुं पताक न थाइयै ।।

७४. गोयमा ! एगओपडागं गच्छइ, नो दुहओपडागं गच्छइ ।
(श० ३।१७०)

सोरठा

७५. एक दिशे अवलोय, ध्वजा—पताका छै जिहां ।
जिम दंड नैं ध्वज जोय, तेह पताका एक थी ।।

७५. 'एगओपडागं' ति एकतः—एकस्यां दिशि पताका यत्र तदेकतः पताकं । (वृ०-प० १८७, १८८)

७६. दुहओ पडाग देख, ते दंड नैं बिहुं दिशि विषै ।
केइ करै इम लेख, केइ कहै इक दिशि बेहुं ।।

७६. 'दुहओपडागं' ति द्विधापताकं । (वृ०-प० १८८)

७७. *ते प्रभु ! स्यूं कहिवाय, वाऊकाय छै ।
कै पताक कहियै सही ?

७७. से भंते ! किं वाउकाए ? पडागा ?

७८. तब भाखै जिनराज, वाऊकाय ते ।
पिण पताक निश्चै नहीं ।।

७८. गोयमा ! वाउकाए णं से, नो खलु सा पडागा ।
(श० ३।१७१)

७९. रूपांतर क्रिय जाण, तसु अधिकार थी ।
प्रश्न मेघ नुं हिव करै ।।

७९. रूपान्तरक्रियाधिकाराद्वलाहकसूत्राणि ।
(वृ०-प० १८८)

१. २. ३. ४.

*लय—बे कर जोडी रे ताम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८०. भंते ! प्रभु—समर्थ मेघ, इक महास्त्री तणों।
रूप परिणमावी जरै॥

८१. जाव पालखी रूप, परिणमवा भणी।
समर्थ स्वभाव एहवो ?

८२. हंता समर्थ होय, जिन भाखै इसो।
बादल स्वभाव तेहवो॥

८३. भंते ! प्रभु—समर्थ मेघ, इक महास्त्री तणो।
रूप परिणमावी पछै॥

८४. जावा बहु जोजन्न ? हंता जिन कहै।
ए स्वभाव घन नुं अछै॥

८५. हे भगवंत ! स्यूं तेह, जावै निज ऋद्धे।
कै पर शक्ते जाइयै ?

८६. जिन कहै नहि निज ऋद्धि, जावै पर ऋद्धे।
सुर, वायु थी ध्याइयै॥

८७. आत्म-शक्ति कर एम, समर्थ छै नहीं।
जावै पर-क्रिया करी॥

८८. नहीं आत्म-प्रयोग, नहीं निज उद्यमे।
पर-प्रयोग जावै फिरी॥

८९. ऊर्ध्व-पताक आकार, पड्यै-पताक ते।
जावै ते पर शक्ति थी॥

९०. हे प्रभु ! स्यूं ते मेघ, कै ते स्त्री अछै ?
जिन कहै मेघ पिण स्त्री नथी॥

९१. पुरुष-रूप इम जाण, हय गय रूप पिण।
स्त्री-रूप तिम जाणियै॥

९२. यान-रूप हिव जोय, तास विशेष छै।
ते हिव आगल आणियै॥

९३. हे भगवंत ! ए मेघ, इक मोटो तिहां।
सकट रूप परणमी पछै॥

९४. बहु जोजन लग जाण, जावा नैं तिहां।
मेघ तिको समर्थ अछै ?

८०, ८१. पभू णं भंते ! बलाहए एगं महं इत्थिरूवं वा जाव संदमाणियरूवं वा परिणामेत्तए ?

८२. हंता पभू। (श० ३।१७२)

८३, ८४. पभू णं भंते ! बलाहए एगं महं इत्थिरूवं परिणामेत्ता अणेगाइं जोयणाइं गमित्तए।
हंता पभू। (श० ३।१७३)

८५. से भंते ! किं आइड्ढीए गच्छइ ? परिड्ढीए गच्छइ ?

८६. गोयमा ! नो आइड्ढीए गच्छइ, परिड्ढीए गच्छइ।
(श० ३।१७४)
वायुना देवेन वा प्रेरितस्य तु स्यादपि गमनम्।
(वृ०-प० १८८)

८७. से भंते ! किं आयकम्मुणा गच्छइ ? परकम्मुणा गच्छइ ?
गोयमा ! नो आयकम्मुणा गच्छइ, परकम्मुणा गच्छइ।
(श० ३।१७५)

८८. से भंते ! किं आयप्पयोगेणं गच्छइ ? परप्पयोगेणं गच्छइ ?
गोयमा ! नो आयप्पयोगेणं गच्छइ, परप्पयोगेणं गच्छइ।
(श० ३।१७६)

८९. से भंते ! किं ऊसिओदयं गच्छइ ? पतोदयं गच्छइ ?
गोयमा ! ऊसिओदयं पि गच्छइ, पतोदयं पि गच्छइ।
(श० ३।१७७)

९०. से भंते ! किं बलाहए ? इत्थी ?
गोयमा ! बलाहए णं से, नो खलु सा इत्थी।
(श० ३।१७८)

९१. एवं पुरिसे, आसे, हत्थी। (श० ३।१७९)

९२. यानरूपसूत्रे विशेषोऽस्तीति तद्दर्शयति। (वृ०-प० १८८)

९३, ९४. पभू णं भंते ! बलाहए एगं महं जाणरूवं परिणामेत्ता अणेगाइं जोयणाइं गमित्तए ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९५. जिम भाख्यो स्त्री रूप, भणवो तिह विधे।
णवरं इतो विशेष छै॥

९६. चक्रवाल पिण एक, बे चक्रवाल पिण।
ए गाडा नुं पेडुं अछै॥

९७. जुग गिल्लि पिण जाण, थिल्लि सेवका[1]।
संदमाणी ते पालखी॥

९८. ए सर्व रूप परिणमाय, गति बहु जोजने।
स्त्री रूप जिम ए अखी॥

९९. अर्थ चोतीस नुं अंक, तेहनुं देश ए।
ढाल पैंसठमी निर्मली॥

१००. भिक्खु भारीमाल ऋषराय, तास प्रसाद थी।
'जय-जश' संपति रंगरली॥

९५. जहा इत्थिरूवं तहा भाणियव्वं। (श० ३।१८०)
नवरं

९६. एगओचक्कवालं पि दुहओचक्कवालं पि भाणियव्वं।
(श० ३।१८१)

९७. जुग्ग-गिल्लि-थिल्लि-सीया-संदमाणिया तहेव।
(श० ३।१८२)

९८. ततश्च युग्यगिल्लिथिल्लिशिबिकास्यन्दमानिकारूप-सूत्राणि स्त्रीरूपसूत्रवदध्येयानि। (वृ०-प० १८८)

ढाल : ९६

दूहा

१. परिणत नां अधिकार थी, प्रश्न गोयम पूछंत।
नरक उपजवा योग्य प्रभु! किण लेसे उपजंत?

२. जिन कहै जे लेश्या तणां, द्रव्य ग्रहण कर जेह।
भावे परिणामे मरी, ते लेस्ये उपजेह॥

३. कृष्ण नील कापोत ए, त्रिहुं मांहिली एक।
लेश विषै इज ऊपजै, नरके ए त्रिण पेख॥

४. भव नां प्रथम समय विषै, लेस्या नांवै कोय।
नांवै चरम समय विषै, सर्व जीव नै जोय॥

५. अंतर्मुहूर्त्त थाकतै[2], लेश्या आवै ताय।
परभव अंतर्मुहूर्त्त लग, ते लेश्या रहिवाय॥

१. परिणामाधिकारादिदमाह— (वृ०-प० १८८)
जीवे णं भंते! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते! किं लेस्सेसु उववज्जइ?

२. गोयमा! जल्लेस्साइं दव्वाइं परियाइत्ता कालं करेइ, तल्लेस्सेसु उववज्जइ,
'परियाइत्त' त्ति पर्यादाय परिगृह्य भावपरिणामेन कालं करोति—म्रियते। (वृ०-प० १८८)

३. तं जहा—कण्हलेस्सेसु वा, नीललेस्सेसु वा, काउलेस्सेसु वा।

४. लेस्साहिं सव्वाहिं, पढमे समयम्मि परिणयाहिं तु।
न वि कस्सवि उववाओ, परे भवे अत्थि जीवस्स॥
लेसाहिं सव्वाहिं, चरमे समयम्मि परिणयाहिं तु।
न वि कस्सवि उववाओ, परे भवे अत्थि जीवस्स॥
(उत्तरज्झयणाणि अ० ३४ गा० ५८, ५९)

५. अन्तमुहुत्तम्मि गए, अन्तमुहुत्तम्मि सेसए चेव।
लेसाहिं परिणयाहिं, जीवा गच्छंति परलोयं॥
(उत्तरज्झयणाणि अ० ३४ गा० ६०)

वा०—कृष्ण लेश्यावंत नारकी कृष्ण लेश्यावंत नारकी नैं विषै तथा पंचेंद्रिय तिर्यंचे जे लेश्यावंत नारकी नुं आयु बांध्यो हुवं तेहनैं अंतर्मुहूर्त्तायु थाकतैं ते लेस्या

१. शिविका
२. शेष रहने पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिणमैं। लेस्यावंत थको तिहां थी मरी नैं नारकी मां ऊपजै ते माटै। तथा कृष्ण लेश्यावंत थकोज उद्वर्त्तइ, नारकी नैं भव पर्यंत एक लेस्या हुवै अनै मरीनैं जिहां जाइ तिहां पिण अंतर्मुहूर्त्त लगै ते लेस्या हुवै ते माटै।

पर्याप्ता नों अंतर्मुहूर्त्त लहुडो अनै लेस्या नों अंतर्मुहूर्त्त मोटो जाणिवू, पिण पर्याप्तावस्थाइं परभव नीं ते लेस्या संभवै। अंतर्मुहूर्त्त ना असंख्याता भेद छै, इत्यर्थः।

दूहा

६. एवं नारक-सूत्रवत्, असुरादिक नै जाम।
जेहनै जे लेस्या हुवै, तसुं ते भणवी ताम॥

७. जावत् हे प्रभु! जीवडो, जेह जोतिषी मांय।
उपजावा नै जोग्य तसुं, लेश्य प्रश्न पूछाय॥

८. जे लेश्या नां द्रव्य ग्रहि, भाव परिणाम वसेण।
जोतिषि नै विषै ऊपजै, तेजू विषै सुथेण॥

९. हे प्रभु! वैमानिक में, जीव ऊपजवा जोग्य।
ते किण लेस्से ऊपजै? हिव जिन कहै प्रयोग्य॥

१०. जे लेश्या नां द्रव्य ग्रहि, भावे करि मर ताहि।
वैमानिक में ऊपजै, भली लेश त्रिहुं मांहि॥

११. कोइ कहै एवं कह्यूं, हुवै अर्थ नीं सिद्धि।
जोतिष वैमानिक पृथक् क्यूं करी सूत्र नीं वृद्धि?

१२. चरम सूत्र देखाडिवा, वैमानिक कहिवाय।
सूत्र जोतिषी नु वलि, ए कह्यूं किण न्याय?

१३. जोतिषि नै वैमानीक नै, लेश्या हुवै प्रशस्त।
ते देखाडण नै निमित्त, सूत्र विचित्रता स्वस्थ॥

१४. सुर परिणाम अधिकार थी, द्रव्य देव अणगार।
प्रश्न तास पूछै हिवै, श्री गोयम गणधार॥

१५. *हे प्रभुजी! अणगार, भावित-आतम धणी, प्रभुजी!
वारला पुद्गल जेह कै, अणलीधै सुणी, प्रभुजी!
औदारिक थी अन्य, पुद्गल जे जाणियै, प्रभुजी!
वारला पुद्गल तेह, वृत्ति में माणियै, प्रभुजी!

१६. समर्थ ते अणगार, वेभार नामैं गिरी, प्रभुजी!
एक वार वार-वार, उलंघवै फिरी? प्रभुजी!
श्री जिन भाखै समर्थ, नहीं छै अर्थ ए, गोयमजी!
वारला पुद्गल लेइ, उलंघण समर्थ ए, गोयमजी!

*लय—थारां महिलां ऊपर

६. एवं जस्स जा लेस्सा सा तस्स भाणियव्वा। जाव—
(श० ३।१८३)

'एवं' मिति नारकसूत्राभिलापेनेत्यर्थः 'जस्स' त्ति असुरकुमारादेर्या लेश्या कृष्णादिका सा लेश्या तस्यासुरकुमारादेर्भणितव्येति। (वृ०-प० १८८)

७. जीवे णं भंते! जे भविए जोइसिएसु उववज्जित्तए, से णं भंते किलेस्सेसु उववज्जइ?

८. गोयमा! जल्लेसाइं दव्वाइं परियाइत्ता कालं करेइ तल्लेस्सेसु उववज्जइ, तं जहा—तेउलेस्सेसु।
(श० ३।१८४)

९. जीवे णं भंते! जे भविए वेमाणिएसु उववज्जित्तए, से णं भंते! किलेस्सेसु उववज्जइ?

१०. गोयमा! जल्लेस्साइं दव्वाइं परियाइत्ता कालं करेइ तल्लेस्सेसु उववज्जइ, तं जहा—तेउलेस्सेसु वा, पम्हलेस्सेसु वा, सुक्कलेसे वा। (श० ३।१८५)

११. नन्वेतावतैव विवक्षितार्थसिद्धेः किमर्थं भेदेनोक्तं।
(वृ०-प० १८८)

१२. एवं तर्हि वैमानिकसूत्रमेव वाच्यं स्यान्न तु ज्योतिष्कसूत्रमिति। (वृ०-प० १८८)

१३. ज्योतिष्कवैमानिकाः प्रशस्तलेश्या एव भवन्तीत्यस्य दर्शनार्थं तेषां भेदेनाभिधानं। (वृ०-प० १८८, १८९)

१४. देवपरिणामाधिकारादनगारस्वरूपद्रव्यदेवपरिणामसूत्राणि। (वृ०-प० १८९)

१५. अणगारे णं भंते! भाविअप्पा बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता
'बाहिरए' त्ति औदारिकशरीरव्यतिरिक्तान् वैक्रियानित्यर्थः। (वृ०-प० १८९)

१६. पभू वेभारं पव्वयं उल्लंघेत्तए वा? पल्लंघेत्तए वा?
गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे। (श० ३।१८६)
अणगारे णं भंते! भाविअप्पा बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पभू वेभारं पव्वयं उल्लंघेत्तए वा? पल्लंघेत्तए वा?
हंता पभू। (श० ३।१८७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. हे प्रभु ! ते अणगार, पुद्गल लीधां विना,
जितरा राजग्रही में रूप, ते विकुर्वी घना।
वैभार-गिरि में पैस, भेदी सम विषम करै,
तथा विषम सम करण, समर्थाई धरै ?

१८. जिन कहै समर्थ नाहीं, आलावो दूसरो,
इमहिज णवरं पुद्गल लेइ समर्थ खरो।
हे प्रभु ! माई कषाई प्रमादी विकुर्वै,
अथवा अमाई अणगार नै विकुर्वणा हुवै ?

१९. जिन कहै माई प्रमादी कषाई विकुर्वै,
अमाई मुनि नै तो विकुर्वण नहीं हुवै।
हे प्रभु ! ते किण अर्थ कह्यो आप इण परे ?
माई विकुर्वै अमाई विकुर्वणा नहीं करै ?

२०. जिन कहै माई प्रणीत पाण अरु भोजनं,
गलत्-स्नेहबिंदु भोगवी वमन विरेचनं।
वर्ण बलादिक अर्थ सरस भोजन करी,
पुनः बलादिक अर्थ वमन रेचन धरी ।।

२१. कार्य करिवूं एह स्वभाव माईपणुं,
इम वैक्रिय करण स्वभाव पिण छै माई तणुं।
ते माई नै सरस पाणी भोजने करी,
हाड रु हाड नी मींजा पुष्ट घनो खरी ।।

२२. पातला लोही नै मंस हुवै छै तेहनां,
प्रणीत रस थी पुष्ट मींजा अस्थि जेहनां।
जे पिण थया योग्य बादर पुद्गल जेह तणै,
ते पिण परिणमैं तास पंच इंद्रीपणै ।।

२३. हाड मींजा केश मूंछ रोम वलि नखपणै,
शुक्र शोणितपणै परिणमै द्रव्य सरस घणै।
अमाई लूखो पाण भोजन करि नहीं वमै,
निरस भोजन जल करनै हाड पुष्ट नहीं जमै ।।

२४. हाड नै हाड नीं मींज, तास पतली हुवै,
मंस अनै वलि रुधिर बहुल तसु अनुभवै।
जे पिण यथायोग्य बादर पुद्गल जेह तणै,
ते परिणमैं मल मूत्र जाव शोणितपणै ।।

१७. अणगारे णं भंते ! भाविअप्पा बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता जावइयाइं रायगिहे नगरे रूवाइं, एवइयाइं विकुव्वित्ता वेभारं पव्वयं अंतो अणुप्पविसित्ता पभू समं वा विसमं वा करेत्तए ? विसमं वा समं करेत्तए ?

१८. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे। (श० ३।१८८)
एवं चेव बितिओ वि आलावगो नवरं परियातिइत्ता पभू। (श० ३।१८९)
से भंते ! किं माई विकुव्वइ ? अमाई विकुव्वइ ?
'मायी' ति मायावान्, उपलक्षणत्वादस्य सकषायः प्रमत्त इति यावत्। (वृ०-प० १८९)

१९. गोयमा ! माई विकुव्वइ, नो अमाई विकुव्वइ। (श० ३।१९०)
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—माई विकुव्वइ, नो अमाई विकुव्वइ ?

२०. गोयमा ! माई णं पणीयं पाण-भोयणं भोच्चा-भोच्चा वामेति।
प्रणीतं गलत्स्नेहबिन्दुकं 'भोच्चा-भोच्चा वामेति' वमनं करोति विरेचनां वा करोति वर्णबलाद्यर्थं, यथा प्रणीत-भोजनं तद्वमनं च। (वृ०-प० १८९)

२१. विकियास्वभावं मायित्वाद् भवति एवं वैक्रियकरणमपीति तात्पर्यं 'बहलीभवन्ति' घनीभवन्ति, प्रणीत-सामर्थ्यात्। (वृ०-प० १८९)
तस्स णं तेणं पणीएणं पाण-भोयणेणं अट्ठि-अट्ठिमिंजा बहलीभवंति,

२२. पयणुए-मंससोणिए भवति। जे वि य से अहाबायरा पोग्गला ते वि य से परिणमंति, तं जहा—सोइंदियत्ताए जाव फासिंदियत्ताए,

२३. अट्ठि-अट्ठिमिंजा-केस-मंसु-रोम-नहत्ताए, सुक्कत्ताए, सोणियत्ताए। अमाई णं लूहं पाण-भोयणं भोच्चा-भोच्चा णो वामेइ। तस्स णं तेणं लूहेणं पाण-भोयणेणं

२४. अट्ठि-अट्ठिमिंजा पयणुभवंति, बहले मंस-सोणिए। जे वि य से अहाबायरा पोग्गला ते वि य से परिणमंति, तं जहा—उच्चारत्ताए पासवणत्ताए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

२५. जाव शब्द थी जाण, खेल संघाण वमन पित ।
राधपणै पहिछाण, लूखा भोजनवंत नै ।।

२६. उच्चारादिपणेह , आहारादिक नां पोग्गला ।
परिणमै इण रीतेह, असार भोजन ते भणी ।।

२७. *तिण अर्थे करि गोयम ! इह विध दाखियै,
वैक्रिय माई करंत अमाई न आखियै ।
अथ आगल अवलोय माई अमाई तणां,
फल कहियै छै सोय जिन-वयण सुहामणा ।।

२८. माई ते स्थानक आलोयां पडिकमियां विना,
काल करै तो नहीं छै तास आराधना ।
भोजन सरस नै वमन तथा वैक्रिय तणुं,
स्थानक एह आलोयां विण विराधकपणुं ।।

२९. पूर्वे माईपणै वैक्रिय कीधो छै जिणे,
अथवा प्रणीत भोजन करिनै वमियो तिणे ।
पछै करो पिछचाताप दंड सन्मुख हुओ,
अमाई स्थानक तेह आलोई नै मूओ ।।

३०. सुध थयो ते एम छै तास आराधना,
सेवं भंते ! सेवं भंत ! गोयम शिव-साधना,
अंक चोतीस नुं अर्थ ढाल छयांसठमीं भली,
भिक्खु भारीमाल ऋषरायथी 'जय-जश' रंगरली ।।

तृतीयशते चतुर्थोद्देशकार्थः ।।३।४।।

२५. इह यावत्करणादिदं दृश्यम् । (वृ०-प० १८६)
खेलत्ताए सिंघाणत्ताए वंतत्ताए पित्तत्ताए पूयत्ताए सोणियत्ताए

२६. रूक्षभोजिन उच्चारादितयैवाहारादिपुद्गलाः परिणमंति अन्यथा शरीरस्यासारताऽनापत्तेरिति ।
(वृ०-प० १८६, १९०)

२७. से तेणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—माई विकुव्वई, नो अमाई विकुव्वई । (श० ३।१९१)
अथ माय्यमायिनोः फलमाह— (वृ०-प० १९०)

२८. माई णं तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते कालं करेइ, नत्थि तस्स आराहणा ।
तस्मात्स्थानाद्विकुर्वणाकरणलक्षणात्प्रणीतभोजनलक्षणाद् वा । (वृ०-प० १९०)

२९, ३०. अमाई णं तस्स ठाणस्स आलोइय-पडिक्कंते कालं करेइ, अत्थि तस्स आराहणा । (श० ३।१९२)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ३।१९३)
पूर्वं मायित्वाद्वैक्रियं प्रणीतभोजनं वा कृतवान् पश्चाज्जातानुतापोऽमायी सन् तस्मात्स्थानादालोचितप्रतिक्रान्तः सन् कालं करोति यस्तस्यास्त्याराधनेति ।
(वृ०-प० १९०)

ढाल : ६७

दूहा

१. चउथै उद्देशै कह्यु, विकुर्वणा - विस्तार ।
पंचम पिण तेहिज हिवै, विशेष थी अवधार ।।

१. चतुर्थोद्देशके विकुर्वणोक्ता, पंचमेऽपि तामेव विशेषत आह— (वृ०-प० १९०)

†सुगुणा ! स्वाम-वचन दिल ग्रहियै ।
स्वाम-वचन वर साचा जाचा, प्रीत धरी अवधार ।
सरध्यां शिव-सुख पामै सार, शंका कंखा दूर निवार ।।
सुगुणा ! स्वाम-वचन चित लहियै । (ध्रुपदं)

*लय—थारां महिलां ऊपर
†लय—नीकी सीखडी रे लहियै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. भावितात्म-अणगार प्रभुजी ! बाह्य पुद्गल अणलेय।
इक महास्त्री जाव रूप पालखी नों समर्थ विकुर्वेय ?

३. जिन कहै ए अर्थ समर्थ नाहीं, प्रथम आलावै ख्यात।
द्वितीय आलावै हिव कहुं आगल, सांभलज्यो अवदात॥
४. भावितात्म-अणगार समर्थ प्रभु ! बाह्य पुद्गल लेह।
इत्थी जाव संदमाणी विकुर्वण ? जिनवर हंत कहेह॥

५. अणगार हे प्रभु ! भावित-आतम, केतला स्त्री नां रूप।
वैक्रिय करवा ते समर्थ छै ? हिव जिन कहै तद्रूप॥
६. जिम युवती प्रति युवान पुरुष ते, हस्तै करि ग्रहै हाथ।
चक्र नीं नाभि अरा जिम भरिया, ए दूजो दृष्टांत आख्यात॥
७. इण दृष्टांते अणगार पिण जे, भावित-आतम सोय।
वेक्रै-समुद्घात करि गोयम ! रूप विकुर्वै जोय॥
८. भावितात्म-अणगार अछै ते, संपूर्ण जंबूदीप।
बहु इत्थी रूप करीनै आकीर्ण विकीर्ण अतिहि समीप॥
९. जाव विषय इति ते अणगार नीं, विषय-मात्र कही एह।
निश्चै करी इता रूप विकुर्वण, त्रिहुं काले न करेह॥

१०. स्त्री-रूप आख्यूं तेम पुरुष-रूप, आदि देइनै तद्रूप।
परिपाटी अनुक्रमेज जाणवुं, जाव संदमाणी रूप॥
११. यथा दृष्टांते कोइ पुरुष, असि-चर्म-पात्र ग्रही जाय।
भावितात्म-अणगार साधु पिण, इणहिज रीते ताय॥
१२. असि-चर्म-पात्र हस्त विषै जसु, कृत्य—कार्य गत ताय।
आतम करी ऊर्ध्व जाय आकाशे ? जिन कहै हंता जाय॥

सोरठा

१३. असि-चर्मपात्रेह, ढाल भणी कहियै अछै।
तथा असी खड्गेह, चर्मपात्र ते ढाल है॥
१४. कृत्य—सधादि-कार्य, गत—आश्रित ते कृत्यगत।
अमुक कार्य हित आर्य, असि-चर्मपात्र ग्रहि गगनगत॥
१५. अथवा असि-चर्म-पाय, कृत्वा—रूप करी तिको।
हस्त विषै कर ताय, स्वतः गगन में संचरै॥
१६. *भावितात्म अणगार प्रभु ! तिका, असि-चर्मपात्र हाथ।
कार्य ऊपनै रूप विकुर्वण समर्थ ? तव कहै नाथ॥

*लय—नीकी सीखडी रे लहियै

२. अणगारे णं भंते ! भाविअप्पा बाहिरए पोग्गले अपरियादित्ता पभू एगं महं इत्थीरूवं वा जाव संदमाणियरूवं वा विउव्वित्तए ?
३. नो इणट्ठे समट्ठे। (श० ३।१९४)

४. अणगारे णं भंते ! भाविअप्पा बाहिरए पोग्गले परियादित्ता एगं महं इत्थीरूवं वा जाव संदमाणियरूवं वा विउव्वित्तए ?
हंता पभू। (श० ३।१९५)
५. अणगारे णं भंते ! भाविअप्पा केवइआइं पभू इत्थिरूवाइं विउव्वित्तए ?
६. गोयमा ! से जहानामए—जुवइं जुवाणे हत्थेणं हत्थंसि गेण्हेज्जा, चक्कस्स वा नाभी अरगाउत्ता सिया,
७. एवामेव अणगारे वि भाविअप्पा वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ जाव पभू णं गोयमा !
८. अणगारे णं भाविअप्पा केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं बहूहिं इत्थिरूवेहिं आइण्णं वितिकिण्णं
९. जाव एस णं गोयमा ! अणगारस्स भाविअप्पणो अयमेयारूवे विसए, विसयमेत्ते वुइए, णो चेव णं संपत्तीए विउव्विसु वा, विउव्वति वा, विउव्विस्सति वा।
१०. एवं परिवाडीए नेयव्वं जाव संदमाणिया।
(श० ३।१९६)
११. से जहानामए केइ पुरिसे असिचम्मपायं गहाय गच्छेज्जा, एवामेव अणगारे वि भाविअप्पा
१२. असिचम्मपायहत्थकिच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ?
हंता उप्पएज्जा। (श० ३।१९७)

१३. असिचर्मपात्रं—स्फुरकः, अथवाऽसिश्च—खड्गः चर्मपात्रं च—स्फुरकः। (वृ०-प० १९१)
१४. तथा कृत्यं—संघादिप्रयोजनं गतः—आश्रितः कृत्यगतः अतस्तेनात्मना। (वृ०-प० १९१)
१५. अथवाऽसिचर्मपात्रं कृत्वा हस्ते कृतं येनासौ असिचर्मपात्रहस्तकृत्वाकृतस्तेन। (वृ०-प० १९१)
१६. अणगारे णं भंते ! भाविअप्पा केवइयाइं पभू असिचम्मपायहत्थकिच्चगयाइं रूवाइं विउव्वित्तए ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. जिम युवती प्रति पुरुष युवानज, ग्रहै हस्त करि हाथ।
तं चेव यावत् त्रिहुं काल नीं, विषय-मात्र कही वात ।।

१८. यथा दृष्टंते कोइ पुरुष बलि, एक दिशे कहिवाय।
ध्वजा—पताका छै तिहां एहवो, करिनै चाल्यो जाय ।।

१९. भावितात्म अणगार इसी विध, एक पताका हाथ।
कार्य ऊपनैं जाय आकाशे ? जिन कहै हंता जात ।।

२०. अणगार हे प्रभु! भावित-आतम, इक दिशि पताका हाथ।
रूप किता विकुर्वण समर्थ ? जाव त्रिहुं काल वात ।।

२१. बेहुं दिश कानीं पताका इह विध, ते दुहओ पहिछाण।
जिम दंड नैं ध्वज हुवै इक दिश, तेम बेहुं दिशि जाण ।।

२२. यथा दृष्टांते कोइ पुरुष, एक पास जनोई ताय।
एक जनोई सहित रूप करिनैं, मारग चाल्यो जाय ।।

२३. इम साधु पिण भावित-आतम, जनोई एक पास।
कार्य आश्री पोते जाय गगने ? जिन कहै हंता तास ।।

२४. भावितात्म अणगार प्रभु ! किता जनोई इक दिशि कृत्य।
रूप विकुर्वण समर्थ तिमहिज, जाव अद्धा त्रिहुं वृत्य ।।

२५. इम त्रिहुं पास जनोई कहिवी, से जहानाम दृष्टंत।
कोइ पुरुष एक पास पालथी, इम करि तिहां रहंत ।।

२६. इम साधु पिण भावित-आतम, तं चेव जाव त्रिकाल।
इम बेहुं दिशि थी पालथी वाली, बेसै ए पिण न्हाल ।।

२७. से जहानामए कोइ पुरुष, एक पास पल्यंक तिष्ठेहं।
तं चेव जाव विकुर्वण इतरी, काल त्रिहुं न करेह ।।

२८. इम त्रिहुं पास पल्यंक तणों पिण, कहिवो सूत्र विचार।
वलि मुनि लब्धि फोडवै तेहनों, आगल छै अधिकार ।।

२९. हे प्रभु ! अणगार भावित-आतम, लब्धिधारी छै जेह।
बाह्य पुद्गल अणलीधै साधु, समर्थ कहियै तेह ।।

१७. गोयमा ! से जहानामए—जुवइं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा, तं चेव जाव विउव्विसु वा, विउव्वति वा, विउव्विस्सति वा। (श० ३।१९८)

१८. से जहानामए केइ पुरिसे एगओपडागं काउं गच्छेज्जा,

१९. एवामेव अणगारे वि भाविअप्पा एगओपडागाहत्थकिच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ? हंता उप्पएज्जा। (श० ३।१९९)

२०. अणगारे णं भंते भाविअप्पा केवइयाइं पभू एगओपडागाहत्थकिच्चगयाइं रूवाइं विकुव्वित्तए ? एवं चेव जाव विकुव्विसु वा, विकुव्वति वा, विकुव्विस्सति वा। (श० ३।२००)

२१. एवं दुहओपडागं पि। (श० ३।२०१)

२२. से जहानामए केइ पुरिसे एगओजण्णोवइतं काउं गच्छेज्जा,

२३. एवामेव अणगारे वि भाविअप्पा एगओजण्णोवइतकिच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ?
हंता उप्पएज्जा। (श० ३।२०२)

२४. अणगारे णं भंते ! भाविअप्पा केवइयाइं पभू एगओजण्णोवइतकिच्चगयाइं रूवाइं विकुव्वित्तए ? तं चेव जाव विकुव्विसु वा, विकुव्वति वा, विकुव्विस्सति वा। (श० ३।२०३)

२५. एवं दुहओजण्णोवइयं पि। (श० ३।२०४)
से जहानामए केइ पुरिसे एगओपल्हत्थियं काउं चिट्ठेज्जा,

२६. एवामेव अणगारे वि भाविअप्पा एगओपल्हत्थियं किच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ? तं चेव जाव विकुव्विसु वा विकुव्वति वा विकुव्विस्सति वा। (श० ३।२०५)
एवं दुहओपल्हत्थियं पि। (श० ३।२०६)

२७. से जहानामए केइ पुरिसे एगओपलियंकं काउं चिट्ठेज्जा, एवामेव अणगारे वि भावियप्पा एगओपलियंककिच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ?
तं चेव जाव विकुव्विसु वा, विकुव्वति वा, विकुव्विस्सति वा। (श० ३।२०७)

२८. एवं दुहओपलियंकं पि। (श० ३।२०८)

२९. अणगारे णं भंते ! भाविअप्पा बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०. हय गज सिंघ व्याघ्र वृक चीतरो, अच्छ ते रींछ पिछाण।
तरच्छ विशेष ए व्याघ्र तणो छै, वलि अष्टापद जाण॥

३०. एगं महं आसरूवं वा हत्थिरूवं वा सीहरूवं वा वग्घरूवं वा विगरूवं वा दीवियरूवं वा अच्छरूवं वा तरच्छरूवं वा परासररूवं वा
'अच्छ' त्ति ऋक्षः 'तरच्छ' त्ति व्याघ्रविशेषः, 'परासर' त्ति सरभः। (वृ०-प० १६१)

३१. वाचनांतरे शृगालादिक, अभिजुंजित्तए ताय।
तेहमें प्रवेश करी व्यापरवुं, ते अभियोग कहाय॥
३२. विद्यादि समर्थपणां थी, पोतै प्रवेश करै तिण मांहि।
व्यापार करवा समर्थ छै प्रभु! जिन कहै समर्थ नांहि॥

३१, ३२. इहान्यान्यपि शृगालादिपदानि वाचनान्तरे दृश्यन्ते। (वृ-प० १६१)
अभिजुंजित्तए?
'अभिजुंजित्तए' त्ति अभियोक्तुं, विद्यादिसामर्थ्यतस्तदनुप्रवेशेन व्यापारयितुम्, यच्च स्वस्यानुप्रवेशनेनाभियोजनम्। (वृ०-प० १६१)
णो इणट्ठे समट्ठे। (श० ३।२०६)

सोरठा

३३. विद्यादि समरथाय, बाह्य पुद्गल विण लियै।
करणी नावै ताय, तिण सूं ए जिन वरजियो॥

३३. तद्विद्यादिसामर्थ्योपात्तबाह्यपुद्गलान् विना न स्यादितिकृत्वोच्यते। (वृ०-प० १६१)

३४. *बाहिरला पुद्गल ग्रहण करीनैं, अश्वादिक में प्रवेश।
विद्या समर्थपणां थी साधु, समर्थ छै सुविशेष॥

३४. अणगारे णं भंते! भाविअप्पा बाहिरिए पोग्गले परियादित्ता पभू एगं महं आसरूवं वा हत्थिरूवं वा सीहरूवं वा वग्घरूवं वा विगरूवं वा दीवियरूवं वा अच्छरूवं वा तरच्छरूवं वा परासररूवं वा अभिजुंजित्तए?
हंता पभू। (श० ३।२१०)

३५. हे प्रभु! अणगार भावित-आतम, अश्वरूप रै मांय।
अनुप्रवेश करीनैं समर्थ, अनेक योजन जाय?
३६. जिन कहै हंता समर्थ छै ते, वलि गोयम पूछंत।
ते स्यूं जायै निज समर्थाइ करि, कै पर ऋद्धि थी जंत?
३७. जिन कहै आतम ऋद्ध करि जावै, पर ऋद्धि करि नहि जाय।
इम आत्मा नीं क्रिया करि जावै, पर क्रिया थी न जवाय॥

३५. अणगारे णं भंते! भाविअप्पा पभू एगं महं आसरूवं वा अभिजुंजित्ता अणेगाइं जोयणाइं गमित्तए?
३६. हंता पभू। (श० ३।२११)
से भंते! किं आइड्ढीए गच्छइ? परिड्ढीए गच्छइ?
३७. गोयमा! आइड्ढीए गच्छइ, नो परिड्ढीए गच्छइ।
(श० ३।२१२)
एवं आयकम्मुणा नो परकम्मुणा

३८. आत्मा नैं उद्यमे करि जावै, पर उद्यमे न जवाय।
ऊर्ध्वपताक आकारे जावै, पड़ी पताक ही जाय॥
३९. हे प्रभु! तेहनैं स्यूं अणगार कहियै, कै हय कहियै तास?
जिन भाखै तसुं अणगार कहियै, निश्चै न कहियै आस॥

३८. आयप्पयोगेणं नो परप्पयोगेणं उस्सिओदयं वा गच्छइ पयोदयं वा गच्छइ। (श० ३।२१३-२१५)
३९. से णं भंते! किं अणगारे? आसे?
गोयमा! अणगारे णं से, नो खलु से आसे।
(श० ३।२१६)

४०. वृत्तिकार कह्यु तत्व थकी ते, छै निश्चै अणगार।
अश्वादिक में प्रवेश करी नैं, गमन थकी अवधार॥
४१. इम जाव अष्टापद नां रूप लग, कहिवो सर्व उदंत।
ते प्रभु! स्यूं मायी—प्रमत्त विकुर्वै, के अमायी विकुर्वंत?

४०. अनगार एवासौ तत्त्वतोऽनगारस्यैवाश्वाद्यनुप्रवेशेन व्याप्रियमाणत्वात्। (वृ०-प० १६१)
४१. एवं जाव परासररूवं वा। (श० ३।२१७)
से भंते! किं मायी विकुव्वइ? अमायी विकुव्वइ?

*लय—नीकी सीखडी रे लहियै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२. जिन कहै माई—प्रमत्त विकुर्वै, अमाई नहीं विकुर्वत।
छट्ठै गुणठाण करै ए कार्य, आगल नांहि करंत॥
४३. वृत्ति विषै माई अभिजुंजइ, पाठ इसो कहिवाय।
माई नों अर्थ कषायवान ते, अभिजुंजइ अभियोग कराय॥
४४. अधिकृत वाचना विषै दीसै छै, माई विकुव्वइ जाण।
तेह विषै अभियोग तिको पिण, विकुर्वणा पहिछाण॥
४५. विविध प्रकार तणों जे क्रिया, विक्रिया तास कहाय।
विक्रिय-रूपपणां थी तेहनैं, विकुर्वणा कहिवाय॥
४६. हे प्रभु! जे माई लब्धि फोडण रो, स्थानक नांहि आलोय।
विनां पडिकमियां काल करै ते, आभियोगिक सुर होय?

४७. आभियोगिक ते आदेशकारी, सेवग-देवता हुंत।
बारमा कल्प लगै सेवग में, एक विषै उपजंत॥
४८. विद्यादिक नों प्रजूंजवो वलि, लब्धि फोडवै कोय।
सेवग-देव थावा नां कारण, वृत्ति विशेष सुजोय॥
४९. प्रायश्चित्त सन्मुख थयां अमाई, आलोवी ते स्थान।
अणाभियोगिक देवलोक विषै ए, उपजै इक में जान॥

५०. हे गोतम! इम श्री जिन भाखै, छेहला प्रश्नज मांय।
उत्तर स्थान गोयम नाम नांयो, तिण सूं छेहडै आय[1]॥
५१. सेवं भंते! सेवं भंते! कह्यो छै, श्री गोयम गणधार।
हिवै उद्देशा नी संग्रहणी गाथा, संक्षेपे सुविचार॥
५२. इत्थि असि नैं पताका जनोई, पालथी अनैं पल्यंक।
अभियोग विकुर्वण माई, संग्रह-गाहा सुअंक॥

५३. अंक पैंतीसमुद्देश कह्यु ए, सात साठमीं ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय प्रसादै, 'जय-जश' गण गुणमाल॥

तृतीयशते पंचमोद्देशकार्थः॥३।५॥

४२. गोयमा! मायी विकुव्वइ, नो अमायी विकुव्वइ।
(श० ३।२१८)
४३. 'माई अभिजुंजइ' त्ति कषायवानभियुंक्त इत्यर्थः।
(वृ०-प० १९१)
४४. अधिकृतवाचनायां 'माई विउव्वइ' त्ति दृश्यते, तत्र चाभियोगोऽपि विकुर्वणेति मन्तव्यं। (वृ०-प० १९१)
४५. विक्रियारूपत्वात्तस्येति। (वृ०-प० १९१)

४६. मायी णं भंते! तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते कालं करेइ, कहिं उववज्जइ?
गोयमा! अण्णयरेसु आभियोगिएसु देवलोगेसु देवत्ताए उववज्जइ। (श० ३।२१९)
४७. 'अण्णयरेसु' त्ति आभियोगिकदेवा अच्युतान्ता भवन्तीति-कृत्वाऽन्यतरेष्वित्युक्तम्। (वृ०-प० १९१)
४८. करोति च विद्यादिलब्ध्युपजीवकोऽभियोगभावनाम्।
(वृ०-प० १९१)
४९. अमायी णं भंते! तस्स ठाणस्स आलोइय-पडिक्कंते कालं करेइ, कहिं उववज्जइ?
गोयमा! अण्णयरेसु अणाभियोगिएसु देवलोएसु देवत्ताए उववज्जइ। (श० ३।२२०)

५१. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति (श० ३।२२१)

५२. इत्थी असी पडागा, जण्णोवइए य होइ बोद्धव्वे।
पल्हत्थिय पलियंके, अभिओग विकुव्वणा मायी॥
(श० ३।२२१ संगहणी-गाहा)

---

१. अंगसुत्ताणि भाग २ श० ३।२१२-२२० के सभी प्रश्नों के उत्तर में गौतम को सम्बोधित कर उत्तर दिया गया है। संभव है जयाचार्य को उपलब्ध आदर्श में 'गोयमा' शब्द नहीं था, इसीलिए उन्होंने ढा० ६७।५० में सब प्रश्नों के अन्त में 'गौतम' शब्द उल्लिखित होने की सूचना दी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ६८

दूहा

१. विकुर्वण अधिकार थी, संबंधित संवाद।
छट्ठै उद्देशे कह्यूं, सुणज्यो धर अह्लाद॥

१. विकुर्वणाऽधिकारसंबद्ध एव षष्ठ उद्देशकः।
(वृ०-प० १९१)

२. *हे प्रभु! घर तजवै अणगार, पोता नां आगम अनुसार।
उपशम आदि गुणै करि सहितं, तेह थी भावित-आत्म सुकहितं॥

२. अणगारे णं भंते! भावियप्पा
'अणगारे ण' मित्यादि अनगारो गृहवासत्यागाद् भावितात्मा स्वसमयानुसारिप्रशमादिभिः। (वृ०-प० १९३)

३. माई मिथ्यादृष्टी जाण, कहिवो अन्यतीर्थि पहिछाण।
वीरियलब्धी वैक्रिय-लद्धी, विभंग-नाणलद्धी सुप्रसिद्धी॥

३. मायी मिच्छदिट्ठी वीरियलद्धीए वेउव्वियलद्धीए विभंगनाणलद्धीए
मिथ्यादृष्टिरन्यतीर्थिकः। (वृ०-प० १९३)

४. वेक्रै वाणारसि नगरी जेह, नगर राजगृह विषै छै तेह।
पशु प्रमुख नां रूप विशेषै, विभंग अवधि करि जाणै देखै?

४. वाणारसिं नगरिं समोहए, समोहणित्ता रायगिहे नगरे रूवाइं जाणइ-पासइ?
राजगृहे नगरे रूपाणि पशुपुरुषप्रासादप्रभृतीनि।
(वृ०-प० १९३)

सोरठा

५. वाणारसी रै मांय, राजगृही नगरी तणां।
जन बहु आया ताय, निज कार्य पशु प्रमुख ले॥

६. वाणारसी पहिछाण, नगरी विकुर्वतो छतो।
राजगृही नां जाण, रूप तिके पिण विकुर्वै॥

७. जाणै देखै तेह, इम गोतम पूछ्यै छतै।
हिव जिन उत्तर देह, चित्त लगाई सांभलो॥

८. *हंता गोयम! जाणै देखै, तथाभाव प्रति स्यूं प्रभु पेखै?
अन्यथाभाव प्रतै अवलोय, जाणै देखै छै ते सोय?

८. हंता जाणइ-पासइ। (श० ३।२२२)
से भंते! किं तहाभावं जाणइ-पासइ? अण्णहाभावं जाणइ-पासइ?

९. जिन कहै तथाभाव प्रति त्यांही, वस्तू जाणै देखै नांही।
अन्यथाभाव ते विपरीत जाणी, ते प्रति जाणै देखै अनाणी॥

९. गोयमा! नो तहाभावं जाणइ-पासइ, अण्णहाभावं जाणइ-पासइ। (श० ३।२२३)

१०. किण अर्थे प्रभु! भाख्यो एह? तथाभाव प्रति नहीं जाणेह।
अन्यथाभावे जाणैं देखै? हिव जिन उत्तर दै सुविशेखै॥

१०. से केणट्ठेणं भंते? एवं वुच्चइ---नो तहाभावं जाणइ-पासइ? अण्णहाभावं जाणइ-पासइ?

११. ते अन्यतीर्थी नैं एहवूं होय, म्हैं राजगृह नगर विकुळ्यो जोय।
अनैं वाणारसी नां रूप अनेक, जाणूं देखूं छूं सुविशेख॥

११. गोयमा! तस्स णं एवं भवइ---एवं खलु अहं रायगिहे नगरे समोहए, समोहणित्ता वाणारसीए नगरीए रूवाइं जाणामि-पासामि।

१२. इम दर्शण नैं विषै विपरीत होय, कोइ विभंग अज्ञानी सोय।
तिण अर्थे जाव अन्यथाभावो, जाणै देखै ए प्रथम आलावो॥

१२. मेस दंसण-विवच्चासे भवइ। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ---नो तहाभावं जाणइ-पासइ, अण्णहाभावं जाणइ-पासइ। (श० ३।२२४)

---

*लय— इण पुर कंवल कोय न लेसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

१३. अन्य रूप कूं जाण, अन्य भाव कर विकल्पित।
दिशा-मूढ जिम माण, पूरव नैं मानै पछिम ।।

१३. अन्यदीयरूपाणामन्यदीयतया विकल्पितत्वात्, दिग्मोहादिव पूर्वामपि पश्चिमां मन्यमानस्येति।
(वृ०-प० १९३)

१४. *से से दंसणे विवरीए विवच्चासे, किहांइक एहवुं दीसै जासे।
तिहां देखण में विपरीत तास, खेत्र विपरजय कर विप्रयास ।।

१४. क्वचित् 'से से दंसणे विवरीए विवच्चासे' इति दृश्यते तत्र च तस्य तद्दर्शनं विपरीतं क्षेत्रव्यत्ययेनेतिकृत्वा विपर्यासो---मिथ्येत्यर्थः। (वृ०-प० १९३)

१५. हिव दूजो आलावो कहियै, चित्त लगाई नैं सांभलियै।
हे भगवंत ! जिको अणगार, मायी मिथ्यादृष्टी धार ।।

१५. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा मायी मिच्छदिट्ठी

१६. जाव राजगृह विकुर्वी जेह, वाणारसी नैं विषै छै तेह।
पशु प्रमुख नां रूप विशेखै, विभंग-अवधि करि जाणैं देखै ?

१६. जाव रायगिहे नगरे समोहए, समोहणित्ता वाणारसीए नयरीए रूवाइं जाणइ-पासइ ?

१७. हंता जाणै देखै सोई, तं चेव जाव तास इम होइ।
म्हैं वाणारसी विकुर्वी अनूप, जाणूं देखूं राजगृह रूप ।।

१७. हंता जाणइ-पासइ। (श० ३।२२५)
तं चेव जाव तस्स णं एवं भवइ---एवं खलु अहं वाणारसीए नयरीए समोहए, समोहणित्ता रायगिहे नगरे रूवाइं जाणामि-पासामि।

१८. इण दर्शण नैज विषै विपरीत, कोइक विभंग अज्ञानी संगीत।
तिण अर्थे जाव अन्यथाभावो, जाणै देखै ए दूजो आलावो ।।

१८. सेस दंसण-विवच्चासे भवति। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ---नो तहाभावं जाणइ-पासइ, अण्णहाभावं जाणइ-पासइ। (श० ३।२२६, २२७)

१९. हे प्रभु ! भावित-आत्म अणगार, माई मिथ्यादृष्टि धार।
वीरियलब्धी- वैक्रिय-लब्धी, विभंग-अनाण-लब्धी प्रसिद्धी ।।

१९. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा मायी मिच्छदिट्ठी वीरियलद्धीए वेउव्वियलद्धीए विभंगनाणलद्धीए

२०. वाणारसी नगरी प्रति जोय, तथा राजगृह प्रति अवलोय।
तथा बिहु नैं विचालै विशेष, विकुर्वे इक महाजनपद देश ।।

२०. वाणारसिं नगरिं, रायगिहं च नगरं, अंतरा एगं महं जणवयग्गं समोहए,

२१. वाणारसी नगरी प्रति जोय, तथा राजगृह प्रति अवलोय।
तथा बिहुं बिच जनपद देश, तिहुं जाणैं देखै पूछेस ?

२१. समोहणित्ता वाणारसिं नगरिं रायगिहं च नगरं अंतरा एगं महं जणवयग्गं जाणति-पासति ?

२२. हंता गोयम ! जाणैं देखै, तथाभाव प्रति स्यूं प्रभु ! पेखै ।।
अन्यथाभाव प्रतै ते जोय, जाणैं देखै प्रश्न ए सोय ?

२२. हंता जाणति-पासति। (श० ३।२२८)
से भंते ! किं तहाभावं जाणइ-पासइ ? अण्णहाभावं जाणइ-पासइ ?

२३. जिन कहै तथाभाव प्रति त्यांही, वस्तू जाणै देखै नांही।
अन्यथाभाव ते विपरीत जाणी, ते प्रति जाणै देखै अनाणी ।।

२३. गोयमा ! नो तहाभावं जाणइ-पासइ, अण्णहाभावं जाणइ-पासइ। (श० ३।२२९)

२४. किण अर्थे प्रभु ! भाख्यो एह, तथाभाव प्रति नहिं जाणेह।
अन्यथा भावे जाणै देखै ? हिव जिन उत्तर दै सुविशेखै ।।

२४. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ---नो तहाभावं जाणइ-पासइ ? अण्णहाभावं जाणइ-पासइ ?

२५. ते अन्यतीर्थी एहवूं मानेह, वाणारसी निश्चै छै एह।
निश्चै एह राजगृह न्हाल, इक महाजनपद एह विचाल ।।

२५. गोयमा ! तस्स खलु एवं भवति---एस खलु वाणारसी नगरी, एस खलु रायगिहे नगरे, एस खलु अंतरा एगे महं जणवयग्गे,

२६. ए वीर्य-लब्धि निश्चै नहिं म्हारी, नहिं मुझ वैक्रिय-लब्धि उदारी।
विभंग-अनाण तणी पिण लद्धी, ते पिण नहिं छै म्हारी ऋद्धी ।।

२६. नो खलु एस महं वीरियलद्धी वेउव्वियलद्धी विभंगनाणलद्धी इड्ढी

२७. कांति अनै जश हेतू सार, बल वीरिय नैं पुरुषाकार।
प्राक्रम लाधो पाम्यो उदारो, सन्मुख हुओ ते नहिं म्हारो ।।

२७. जुती जसे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए

*लय—इण पुर कंबल कोइ य न लेसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८. नवा विकुर्वे छै तीनेइ, तीनूंइ नैं देखै तेही।
पिण ते इम जाणै मन मांही, एह विकुर्वण म्है करि नांही ।।

२९. स्वाभाविक छै एहवूं मानैं, दिशा-मूढ ज्यूं ते पिण जानैं।
इम दर्शण नैंज विषै विपरीत, कोइक विभंग-अज्ञानी संगीत ।।

२८. सेस दंसण-विवच्चासे भवति।
यतोऽसौ वैक्रियाण्यपि तानि मन्यते स्वाभावीकानीति।
(वृ०-प० १९३)

सोरठा

३०. 'विभंग-नाणी कोय, दिशा-मूढ जिम ते इस्यूं।
सगला नैं नहिं कोय, एहवूं इहां जणाय छै ।।

३१. जोवो शिव ऋषिराज, सप्त द्वीपोदधि देखिया।
मोगर विभंग समाज, देख्यो पंचम कल्प लग ।।

३२. असोच्चा अधिकार, जाणै देखै विभंग कर।
उत्कृष्टो अवधार, असंख्यात जोजन लगै ।।

३३. जाण्या जीव अजीव, वले पाखंडी जाणिया।
क्षयोपशम भाव अतीव, पाछै सम्यक्त्व पामियो ।।

३४. जो जाणै विपरीत, तो सम्यक्त्व ए किम लहै?
वारू न्याय वदीत, उत्तम चित आलोचियै ।।

३५. भली विचारण तास, करतां छतांज एहनैं।
तत्-आवरणी जास, क्षयोपशम थी विभंग है ।।

३६. वलि अनुयोगज द्वार, ज्ञानावरणी - कर्म नां।
क्षय-उपशम थी सार, चिउं ज्ञान अज्ञान रु पूर्व श्रुत ।।

३७. तिण कारण विपरीत, ते तो अन्य दीसै अछै।
क्षयोपशम भाव प्रतीत, ते तो उज्जल जीव छै ।।

३८. अवधि-ज्ञान नों सार, वलि विभंग - अन्नाण नों।
दर्शण अवधि उदार, ते विपरीत हुवैज किम?

३९. मोह-कर्म उदय थी होय, उदय-भाव सावज तिको।
पिण क्षयोपशम थी जोय, विपरीतज हुवै किण विधै?

४०. दर्शन विषै विचार, विप्रयास आख्यो इहां।
पिण दर्शण अवधि उदार, क्षय-उपशम नहिं विपर्यय ।।

४१. दर्शण विषैज ओर, उदय भाव छै तेहनैं।
विप्रयास जे घोर, ते विपरीतपणो अछै ।।

४२. सात कर्म बंधाय, निद्रा प्रचला लेवतां।
अशुभ योग तिण मांय, मोह - उदय थी बंध तसुं ।।

४३. द्रव्य निद्रा में ताय, अशुभ स्वप्न मोह कर्म थी।
तेहथी पाप बंधाय, पिण द्रव्य निद्रा थी नहीं ।।

४४. दर्शणावरणी - कर्म, निद्रा तास उदय थकी।
देखो एहनों मर्म, एहथी कर्म बंधै नथी ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४५. एतो दवियो जीव, तेहथी नहिं छै कर्म बंध।
बधै पाप अतीव, मोह कर्म नां उदय थी।।

४६. थीणोदी रै मांय, वासुदेव थी अर्ध बल।
बल थी अध न बंधाय, बल क्षयोपशम - भाव छै।।

४७. कर्म जिको अंतराय, तेहनां क्षयोपशम थकी।
वीर्य-लद्धी थी पाय, ते बल उज्जल जीव इम।।

४८. थीणोदी पिण जाण, दर्शणावरणी उदय थी।
तेहथी पिण पहिछाण, कर्म तणो बंध छै नथी।।

४९. थीणोदी रै मांय, मोह कर्म नां उदय थी।
सावज किरतव थाय, अघ नों कर्ता तेह छै।।

५०. तिम दर्शन में पेख, कर्म तणांज उदय थी।
जे विपरीत विशेख, तेह आश्रयी ए कथन।।

५१. चक्षू - दर्शन होय, दर्शणावरणी कर्म नां।
क्षयोपशम थी जोय, ते तो उज्जल जीव छै।।

५२. दिशा-मूढ अवलोय, पूरव नैं जाणै पछिम।
उदय-भाव ए जोय, पिण क्षयोपशम-भाव नहिं।।

५३. ह्वै चक्षु में रोग, वे चंदा देखै प्रमुख।
ते छै रोग प्रयोग, तिम विपरीतज जाणवो।।

५४. चक्षु-रोग मिट जाय, तठा पछै देखै तिको।
ए विहुं जुदा कहाय, रोग अनैं बल नेत्र ते।।

५५. उदय-भाव छै रोग, चक्षु क्षयोपशम - भाव छै।
ए विहुं जुदा प्रयोग, तिण विध ए पिण जाणवो।।

५६. छै क्षयोपशम - भाव, विभंग नों दर्शण अवधि।
विपरीतपणों कहाव, उदय-भाव कहिजै तसुं।।

५७. ते माटै इहां एम, दाख्यो दर्शण नैं विषै।
विपरीतपणुंज तेम, पिण ए दोनूं जूजुआ'।।
(ज० स०)

५८. *तिण अर्थे यावत् सुविशेखै, अन्यथाभावे जाणैं देखै।
आख्यो तीजो एह आलावो, मुनि समदृष्टि तणो हिव भावो।।

५९. हे भदंत ! अणगार सुभावित, संजम तप करि आतम वसावित।
मायी-समदृष्टि[1] ते जोय, अमायी-समदृष्टि कहै कोय।।

५८. से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—नो तहाभावं जाणइ-पासइ, अण्णहाभावं जाणइ-पासइ। (श० ३।२३०)

५९. अणगारे णं भंते ! भाविअप्पा अमायी सम्मदिट्ठी।

---

*लय—इण पुर कंबल कोइ य न लेसी

१. जयाचार्य के सामने 'मायी सम्मदिट्ठी' पाठ मुख्य रूप से रहा और वैकल्पिक रूप में 'अमायी सम्मदिट्ठी' पाठ भी रहा। उन्होंने सम्यग् दृष्टि के तीनों आलापकों में 'मायी' पाठ को स्वीकार किया। भगवती के पाठ शोधन के लिए प्रयुक्त आदर्शों में 'अमायी' पाठ ही मिला। प्रस्तुत आगम के अनेक स्थलों में 'अमायी सम्मदिट्ठी' पाठ मिलता है। पूर्वापर अनुसन्धान की दृष्टि से 'अमायी सम्मदिट्ठी' पाठ ठीक लगता है, किन्तु प्रस्तुत प्रकरण नाना रूप-निर्माण (माया) से सम्बद्ध है, इस दृष्टि से 'मायी' पाठ की सम्भावना को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६०. वीर्य लब्धि करि वैक्रिय लद्धी, अवधि ज्ञान लब्धि करि सिद्धी।
लब्धि फोडी नै मुनिवर जेह, वैक्रिय-समुद्घात करि तेह॥
६१. नगर राजगृह विकुर्वेह, तेणै रूप विकुर्वि जेह।
वाणारसी नगरी नां रूप, जाणै देखै अधिक अनूप?
६२. हंता गोयम! जाणै देखै, तथाभाव प्रति स्यूं प्रभु पेखै।
अन्यथाभाव प्रतै अवलोय, जाणै देखे छै ते सोय?

६३. जिन कहै तथाभाव प्रति जेह, वस्तू जाणै देखै तेह।
अन्यथाभाव ते विपरीत त्यांही, ते प्रति जाणै देखै नांही॥
६४. किण अर्थे प्रभु! भाख्यो एह? तथाभाव प्रति ते जाणेह।
अन्यथाभावे जाणै नांही, हिव जिन उत्तर भाखै त्यांही॥
६५. ते मुनिवर नै एहवूं होय, म्हैं राजगृह विकुर्व्यो जोय।
एणै रूप वाणारसी केरा, रूप जाणूं देखूं छूं घणेरा॥

६६. दर्शण विषै ते नहीं विपरीत, जिम छै तिम देखै सुवदीत।
जथातथ्य पिण तिमहिज भाखै, तिण कारण ते सम अभिलाखै॥
६७. तिण अर्थे इम कह्यो वदीत, तथाभाव देखै समरीत।
पिण नहिं छै तेहनै अन्यभावो, ए मुनिवर नों प्रथम आलावो॥
६८. बीजो आलावो पिण इमहीज, णवरं वाणारसी विकुर्वीज।
एणै रूप विकुर्वि विशेखै, रूप राजगृह नां जाणै देखै॥

६९. हिव तीजो आलावो कहियै, मायी समदृष्टी इम लहियै।
वीरिय-लब्धी वैक्रिय-लद्धी, अवधिज्ञान लब्धि करि सिद्धी॥
७०. नगर राजगृह प्रति अवलोय, तथा वाणारसी नगरी जोय।
तथा विहुं नै विचाल विशेष, विकुर्वै इक महाजनपद देश॥
७१. नगर राजगृह प्रतै ते सोय, वाणारसी प्रतै अवलोय।
तथा विहुं विच जनपद देश, त्रिहुं जाणै देखै? पूछेस॥
७२. हंता गोयम! जाणै देखै, तथाभाव प्रति स्यूं प्रभु! पेखै?
अन्यथाभाव प्रतै पहिछाणी, जाणै देखै ते वर नाणी?

७३. जिन कहै तथाभाव प्रति जेह, वस्तू जाणै देखै तेह।
अन्यथाभाव न जाणै न देखै, अवधिज्ञानी ए मुनि तिण लेखै॥
७४. किण अर्थे प्रभु! कह्यो विशेखै, तथाभाव प्रति जाणै देखै।
अन्यथाभाव न जाणै न पेखै? हिव जिन उत्तर दियै अशेषै॥
७५. ते मुनिवर नै इम मानेह, नगर राजगृह नहिं छै एह।
वाणारसी नगरी नहिं एस, नहिं विच इक महाजनपद देश॥

७६. ए वीरिय-लब्धी छै म्हारी, बलि मुझ वैक्रिय-लब्धि उदारी।
अवधि-ज्ञान नों पिण मुझ लद्धो, ए सगली छै म्हारी ऋद्धी॥

६०. वीरियलद्धीए वेउव्वियलद्धीए ओहिनाणलद्धीए

६१. रायगिहं नगरं समोहए, समोहणित्ता वाणारसीए नयरीए रूवाइं जाणइ-पासइ?
६२. हंता जाणइ-पासइ। (श० ३।२३१)
से भंते! किं तहाभावं जाणइ-पासइ? अण्णहाभावं जाणइ-पासइ?
६३. गोयमा! तहाभावं जाणइ-पासइ, नो अण्णहाभावं जाणइ-पासइ। (श० ३।२३२)
६४. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—तहाभावं जाणइ-पासइ, नो अण्णहाभावं जाणइ-पासइ?
६५. गोयमा! तस्स णं एवं भवइ—एवं खलु अहं रायगिहे नयरे समोहए, समोहणित्ता वाणारसीए नयरीए रूवाइं जाणामि-पासामि।
६६. सेस दंसण-अविच्चासे भवति।

६७. से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—तहाभावं जाणइ-पासइ, नो अण्णहाभावं जाणइ-पासइ।
६८. बितिओ वि आलावगो एवं चेव नवरं वाणारसीए समोहणा णेयव्वा। रायगिहे नयरे रूवाइं जाणइ-पासइ। (श० ३।२३३-२३६)
६९. अणगारे णं भंते! भाविअप्पा अमायी सम्मदिट्ठी वीरियलद्धीए वेउव्वियलद्धीए ओहिनाणलद्धीए
७०. रायगिहं नगरं, वाणारसिं च नगरिं, अंतरा एगं महं जणवयग्गं समोहए,
७१. समोहणित्तर रायगिहं नगरं, वाणारसिं च नगरिं, अंतरा एगं महं जणवयग्गं जाणइ-पासइ?
७२. हंता जाणइ-पासइ? (श० ३।२३७)
से भंते! किं तहाभावं जाणइ-पासइ? अण्णहाभावं जाणइ-पासइ?
७३. गोयमा! तहाभावं जाणइ-पासइ, नो अण्णहाभावं जाणइ-पासइ। (श० ३।२३८)
७४. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—तहाभावं जाणइ-पासइ? नो अण्णहाभावं जाणइ-पासइ?
७५. गोयमा! तस्स णं एवं भवति—नो खलु एस रायगिहे नगरे, नो खलु एस वाणारसी नगरी, नो खलु एस अंतरा एगे जणवयग्गे,
७६. एस खलु मम वीरियलद्धी वेउव्वियलद्धी ओहिनाणलद्धी इड्ढी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७७. कांति अनै जश हेतू सार, वल वीरिय नै पुरुषाकार।
प्राक्रम लाधो पाम्यो उदारो, सन्मुख हुओ ते सहु म्हारो।।

७८. नवा विकुर्वै छै तीनेई, तीनूंई नै देखै तेही।
पिण ते इम जाणै मन मांही, एह विकुर्वण म्है करि ताहि।।

७९. स्वभाविक नहिं एहवूं मानै, दिशा-मूढ ज्यूं ते नहिं जानै।
ते तसुं दर्श विषै सुविचार, अविपरीत हुवै अणगार।।

८०. तिण अर्थे इम कहियै सोय, तथाभाव जाणै अवलोय।
अन्यथाभाव न जाणै देखै, तीजो आलावो सुविशेखै।।

८१. हे भदंत ! अणगारज भावित, संजम तप करि आत्म वसावित।
वाहिर पुद्गल नै अणलेई, इक महा ग्राम रूप विकुर्वेई।।

८२. नगर रूप यावत् सन्निवेस, जाव शब्द में एह कहेस।
निगम राजधानी ना रूप, खेड कव्वड़ द्रोणमुह तद्रूप।।

८३. पाटण आगर रूप पिछाणी, आश्रम संवाहा रूप सुजाणी।
एता जाव शब्द में कहियै, सन्निवेस नों रूप सुलहियै।।

८४. ए विकुर्वण तणी समर्थाई? जिन कहै अर्थ समर्थ ए नांही।
बीजो आलावो णवरं एही, समर्थ वाहिर पुद्गल लेई।।

८५. हे प्रभु ! भावित-आत्म अणगार, केतला ग्राम रूप सुविचार।
विकुर्वण करिवा समर्थ? दृष्टांत दे जिन कहै तदर्थ।।

८६. काम वसे जिम युवति युवान, हस्त करी ग्रहै हस्त पिछान।
तिमहिज जाव विकुर्वण तास, काल त्रिहुं नै विषय विमास।।

८७. यावत् इम सन्निवेस नां रूप, विकुर्वण नी विषय तद्रूप।
शक्ति इसी पिण किणही न भरिया, विषय मात्र त्रिहुं काल उचरिया।।

८८. थोडा रूप विकुर्वै सोय, आलोयां थी आराधक होय।
एह वात बहु ठामैं आखी, तिण अनुसारै इहां म्है दाखी।।

८९. विकुर्वण नुं कह्यु अधिकार, विकुर्वण समर्थ सुर सार।
देव विशेष परूपण अर्थ, पूछै गोयम प्रश्न तदर्थ।।

९०. हे प्रभु ! चमर असुरराजा नां, केतला आत्म-रक्षक कहाना।
चोसठ सहस्र चोगुणां देव, आत्म-रक्षक इता जिन भेव।।

९१. आत्म-रक्षक वर्णन सार, रायप्रश्नेणी सूत्र मझार।
सर्व इंद्र नैं सामानीक, चोगुणा आत्म-रक्षक कथीक।।

९२. सेवं भंते ! छत्तीस नुं अंक, ए अडसठमीं ढाल सुभंक।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय प्रसाद, 'जय-जश' सुख संपति अहलाद।।

तृतीयशते षष्ठोद्देशकार्थः।।३।६।।

७७. जुती जसे बले वीरिए-पुरिसक्कार परक्कमे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए।

७९. सेस दंसण—अविच्चासे भवइ।

८०. से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—तहाभावं जाणइ-पासइ, नो अण्णहाभावं जाणइ-पासइ। (श० ३।२३९)

८१. अणगारे णं भंते ! भाविअप्पा वाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू एगं महं गामरूवं वा

८२, ८३. नगररूवं वा जाव सण्णिवेसरूवं वा विउव्वित्तए? 'नगररूवं' वा इह यावत्करणादिदं दृश्यं—'निगमरूवं वा रायहाणिरूवं वा खेडरूवं वा कव्वडरूवं मंडवरूवं वा दोणमुहरूवं वा पट्टणरूवं वा आगररूवं वा आसमरूवं वा संवाहरूवं व' त्ति। (वृ०-प० १९३)

८४. नो तिणट्ठे समट्ठे। (श० ३।२४०)
एवं वितिओ वि आलावगो नवरं वाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पभू। (श० ३।२४१)

८५. अणगारे णं भंते ! भाविअप्पा केवइयाइं पभू गामरूवाइं विकुव्वित्तए?

८६. गोयमा ! से जहानामए—जुवति जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा तं चेव जाव विकुव्विसु वा विकुव्वति वा विकुव्विस्सति वा। (श० ३।२४२)

८७. एवं जाव सण्णिवेसरूवं वा। (श० ३।२४३)

८९. विकुर्व्वणाधिकारात्तत्तत्समर्थदेवविशेषप्ररूपणाय सूत्राणि— (वृ०-प० १९३)

९०. चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुररण्णो कइ आयरक्खदेवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ?
गोयमा ! चत्तारि चउसट्ठीओ आयरक्खदेवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

९१. ते णं आयरक्खा—वण्णओ। (श० ३।२४४)
एवं सव्वेसिं इंदाणं जस्स जत्तिया आयरक्खा ते भाणियव्वा। (श० ३।२४५)

९२. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श० ३।२४६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ६६

दूहा

१. छठै उदेशै अंत में, आतम - रक्षक बात।
लोकपाल हिव इंद्र नां, कहियै तसुं अवदात॥

२. नगर राजगृह नै विषै, जाव करंता सेव।
बोल्या गोयम गणहरू, अलगो करि अहमेव॥

३. हे प्रभु ! शक्र देवेंद्र नैं, देवराय नैं देख।
लोकपाल कितला कह्या, जिन कहै चित्त संपेख॥

४. सोम जम तीजो वरुण, बली वैश्रमण सार।
हे प्रभु ! आं च्यारां तणै, किता विमाण उदार ?

५. जिन कहै च्यार विमाण छै, संझप्रभ वरशिष्ट।
पुनः सयंजल नै वग्गु, ए च्यारूंइ वरिष्ट॥

*जिनेश्वर, देव-जिनेंद्र दाखंत, प्रश्न पूछै रे गोयम श्रमण महंत।
(ध्रुपदं)

६. किहां प्रभु ! शक्र देवेंद्र नां, देवराजा नां जाण।
सोम महाराजा तणों, संझप्रभ रे नामैं महा विमाण॥

७. जिन कहै जंबूद्वीप नां, मेरु - गिरि थी माण।
दक्षिण दिशि मांहै अछै, सुणियै रे तास वखाण॥

८. रत्नप्रभा पृथ्वी विषै, भूमिभाग बहु-सम-रमणीक।
ते मेरु नै मध्य रह्यो, च्यारूं रे दिशि विच ठीक॥

९. भूमि विषै सहस्र जोजन रह्यो, पृथुलपणै पहिछान।
तिहां गोथण आकारे अष्ट प्रदेश नां, रुचक नामा रे भूतल स्थान॥

१०. तेह थकी ऊंचा अछै, रवि शशि ग्रह-समुदाय।
नक्षत्र तारारूप नैं, बहु जोजन रे ऊंचो ताय॥

११. जावत् पंच वडिंसगा, जाव शब्द में एह।
पाठ कह्या छै एतला, सुणियै रे श्रोता चित देह॥

१२. बहु जोजन नां सैकडां, बहु सहस्र जोजन जोड।
बहु लक्ष नै बहु कोड ते, जोजन रे बहु कोडाकोड॥

१३. ऊर्ध्व दूर इता अतिक्रमी, इहां सुधर्म देवलोग।
लांबो पूरव पश्चिमै, चोडो रे दक्षिण उत्तर जोग॥

१. षष्ठोद्देशके इन्द्राणामात्मरक्षा उक्ताः, अथ सप्तमोद्देशके तेषामेव लोकपालान् दर्शयितुमाह— (वृ०-प० १६४)

२. रायगिहे नगरे जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी—

३. सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो कति लोगपाला पण्णत्ता ?
गोयमा ! चत्तारि लोगपाला पण्णत्ता, तं जहा—

४. सोमे जमे वरुणे वेसमणे। (श० ३।२४७)
एएसि णं भंते ! चउण्हं लोगपालाणं कति विमाणा पण्णत्ता ?

५. गोयमा ! चत्तारि विमाणा पण्णत्ता, तं जहा—संझप्पभे वरसिट्ठे सयंजले वग्गू। (श० ३।२४८)

६. कहि णं भंते ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो संझप्पभे नामं महाविमाणे पण्णत्ते ?

७. गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं

८. इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ

१०. उड्ढं चंदिम-सूरिय-गहगण-नक्खत्त-तारारूवाणं बहूइं जोयणाइं

११. जाव
इह यावत्करणादिदं दृश्यम्। (वृ०-प० १६५)

१२. बहूहिं जोयणसयाइं बहूइं जोयणसहस्साइं बहूइं जोयणसयसहस्साइं बहूओ जोयणकोडीओ बहूओ जोयणकोडाकोडीओ। (वृ०-प० १६५)

१३. उड्ढं दूरं वीइवइत्ता एत्थ णं सोहम्मे णामं कप्पे पण्णत्ते पाईणपडीणायए उदीणदाहिणविच्छिन्ने।
(वृ०-प० १६५)

*लय—रावणराय आज्ञा अधिकी अथाय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. अर्द्ध - चंद्र संस्थान ते, अच्चिमाली किरण नीं श्रेण।
भास-राशि तेज नां समूह नीं, आभा रे प्रभा सुवर्णेण ।।

१५. असंख कोडाकोड जोजन तणो, लांबो पहुलो जोय।
परिधि असंख कोडाकोड जोजन तणी, इहां सुधर्म रे कल्प अवलोय ।।

१६. बत्तीस लक्ष विमाण छै, आख्या तेह विमाण।
सर्व रत्नमय छै अच्छा, यावत् रे प्रतिरूप पिछाण ।।

१७. ते सौधर्मज कल्प नै, बहु - मध्य देश - भाग।
जाव शब्द में एतला, कहियै रे पाठ सुभाग ।।

१८. वर विमाण तिहां शक्र नां, कह्या पंच अवतंस।
[1]अशोक [2]सप्तपर्ण [3]चंपक, [4]चूय मध्य रे [5]सुधर्म अवडंस ।।

१९. सुधर्मावतंसक महाविमान नै, पूर्व दिशि रै मांय।
सुधर्म-कल्प विषै अछै, जोजन रे असंख उलंघाय ।।

२०. इहां शक्र देवेंद्र नां, देवराजा नां जाण ।।
महाराय सोम लोकपाल नों, संझप्रभ रे महाविमाण ।।

२१. साढा बारै लाख जोजन तणो, लांबो पहुलो जेह।
त्रिगुणी जाझी परिधि अछै, तिणरो विवरो रे आगल लेह ।।

२२. गुणचालीस लक्ष योजन वलि, बावन सहस्र पिछाण।
आठ सौ अडतालीस ऊपरै, किंचत् जाझो रे परिधि प्रमाण ।।

२३. जिका सुर्याभ विमाण नीं, वक्तव्यता कही पेख।
तिका सर्व भणवी इहां, जावत् रे सभा अभिषेक ।।

२४. णवरं इतो विशेष छै, सोम देव कहिवाय।
हिवै सोम लोकपाल नी, रजधानी रे तिरछा लोक मांय ।।

२५. संझप्रभ महाविमान नै, नीचै तिर्यग् लोक मांहि।
सपक्खि सपडिदिसि, [1]असंख-लक्ष रे योजन अवगाहि ।।

२६. इहां शक्र देवेंद्र नां, देवराजा नां ताम।
सोम महाराजा तणी, रजधानी रे सोमा नाम ।।

२७. एक लक्ष जोजन तणी, लांबी पहुली जाण।
जंबूद्वीप प्रमाण छै, वैमानिक सूं रे अर्द्ध प्रमाण ।।

२८. वैमानिक सुधर्म विमान नुं, प्रासाद गढ द्वारादि।
जसुं प्रमाण कह्युं तेहथी, इण नगरी नों रे अर्ध सुसाधि ।।

यतनी

२९. सुधर्म विमान प्राकार, ऊंचो तीनसौ जोजन सार।
ते माटै एहनुं अवलोय, ऊंचो दोढसौ जोजन जोय ।।

१४. अद्धचंदसंठाणसंठिए अच्चिमालिभासरासिवन्नाहे।
(वृ०-प० १९५)

१५. असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ आयामविक्खंभेणं असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ परिक्खेवेणं एत्थ णं सोहम्माणं देवाणं। (वृ०-प० १९५, १९६)

१६. बत्तीसं विमाणावाससयसहस्साइं भवन्तीति अक्खाया, ते णं विमाणा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा।
(वृ०-प० १९६)

१७. तस्स णं सोहम्मकप्पस्स बहुमज्झदेसभाए।
(वृ०-प० १९६)

१८. पंच वडेंसया पण्णत्ता, तं जहा—असोगवडेंसए, सत्तवण्णवडेंसए, चंपयवडेंसए, चूयवडेंसए, मज्झे सोहम्मवडेंसए। (श० ३।२४९)

१९. तस्स णं सोहम्मवडेंसयस्स महाविमाणस्स पुरत्थिमे णं सोहम्मे कप्पे असंखेज्जाइं जोयणाइं वीइवइत्ता,

२०. एत्थ णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो संझप्पभे नामं महाविमाणे पण्णत्ते—

२१. अद्धतेरसजोयणसयसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं,

२२. उयालीसं जोयणसयसहस्साइं बावन्नं च सहस्साइं अट्ठ य अडयाले जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

२३. जा सूरियाभविमाणस्स वत्तव्वया सा अपरिसेसा भाणियव्वा जाव अभिसेओ,

२४. नवरं—सोमो देवो। (श० ३।२५०)

२५. संझप्पभस्स णं महाविमाणस्स अहे, सपक्खिं, सपडिदिसिं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता,

२६. एत्थ णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो सोमा नामं रायहाणी पण्णत्ता—

२७. एगं जोयणसयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं जंबुद्दीवप्पमाणा। वेमाणियाणं पमाणस्स अद्धं नेयव्वं

२८. वैमानिकानां सौधर्मविमानसत्कप्रासादप्राकारद्वारादीनां प्रमाणस्येह नगर्यामर्द्ध ज्ञातव्यं। (वृ०-प० १९६)

---

१. यहां अंगसुत्ताणी भाग २ श० ३।२५१ में 'जोयणसहस्साइं' पाठ है। उसके पाठान्तर में 'जोयणसयसहस्साइं' पाठ लिया गया है। जयाचार्य को प्राप्त आदर्श में यही पाठ रहा होगा, इसीलिए उन्होंने लाख योजन का उल्लेख किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०. प्रासाद द्वारादिक जोय, सोधर्म विषै अवलोय।
तेहथी अर्ध प्रमाण प्रासाद, द्वारादिक नुं संवाद ।।

३१. *जाव उवागरियलेणं ते, जोजन सोल हजार।
आयाम विखंभपणैं कह्यु, कहियै रे हिव परिधि प्रकार ।।

३१. जाव ओवारियलेणं सोलस जोयणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं,

३२. जोजन सहस्र पचास ते, पांचसौ सत्ताणुं पेख।
कांयक विशेष ऊणी कही, दाखी रे परिधि सुविशेख ।।

३२. पण्णासं जोयणसहस्साइं पंच य सत्ताणउए जोयणसते किंचि विसेसूणे परिक्खेवेणं पण्णत्तं।

३३. प्रवर तेह प्रासाद नों, च्यार परिपाटी श्रेण।
इहां मूल एक प्रासाद छै, ऊंचो रे जोजन अढीसौ पवरेण ।।

३३. पासायाणं चत्तारि परिवाडीओ नेयव्वाओ,

३४. मूल प्रासाद सुधर्म तणुं, पांचसौ जोजन मन्न।
तेहथी अर्ध ऊंचापणैं, ते माटै रे अढीसौ जोजन्न ।।

यतनी

३५. ऊंचपणैं ए मूल प्रासाद, अढाईसौ जोजन अहलाद।
तेहथी अर्ध-अर्ध हीन होय, हिवै आगल कहियै सोय ।।

३६. मूल प्रासाद नुं सुप्रकार, परिवार भूत है च्यार।
ते सवासौ जोजन कहियै, ए प्रथम परिपाटी लहियै ।।

३७. वलि च्यार तणों परिवार, सोलै प्रासाद छै सुखकार।
साढा बासठ जोजन जोय, ए बीजी परिपाटी होय ।।

३८. कह्यु सोलै नुं परिवारभूत, प्रासाद चोसठ सुभ सूत।
सदाइकतीस जोजन सार, ए तीजी परिपाटी उदार ।।

३९. चोसठ प्रासाद नुं परिवार, दोयसौ छप्पन सुविचार।
पनरै जोजन नै भाग पंच, जोजन नां आठां मांहिला संच ।।

४०. ए चिउं परिपाटी न्हाल, सर्व तीनसौ नैं इकताल।
सुधर्म थी सहु अर्ध ऊंचास, अन्य सूत्र थकी कह्या तास ।।

४१. *सुधर्मादिक सभा जिके, राजधानी में नांय।
ते तो उत्पत्ति स्थानक हुवै, तिण सूं भाख्यो रे सेसा नत्थि ताय ।।

४१. सेसा नत्थि। (श० ३।२५१)
सुधर्मादि सभा इह न सन्ति, उत्पत्तिस्थानेष्वेव तासां भावात्। (वृ०-प० १९६)

४२. शक्र देवेंद्र देव राजा तणां, महाराय सोम एह।
तसुं आज्ञाकारी देवता, उववाय रे सेव करेह ।।

४३. वयण कहितां वचन ते, अनियोग पूर्वक आदेश।
निर्देश उत्तर पूछ्यां तणो, एहनैं विषै रे रहै छै विशेष ।।

४२, ४३. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो इमे देवा आणा-उववाय-वयण-निद्देसे चिट्ठंति, तं जहा—

४४. सोमकाइया सोम नी जाति नां, सोम परिवार उदार।
सोमदेवतकाइया, सोम सामानिक रे प्रमुख परिवार ।।

४४. सोमकाइया इ वा, सोमदेवयकाइया इ वा
'सोमकाइय' त्ति सोमस्य कायो—निकायो येषामस्ति ते सोमकायिकाः—सोमपरिवारभूताः 'सोमदेवयकाइय' त्ति सोमदेवताः—तत्सामानिकादयस्तासां कायो येषामस्ति ते सोमदेवताकायिकाः सोमसामानिकादिदेव-परिवारभूता इत्यर्थः। (वृ०-प० १९६)

*लय—रावण राय आशा अधिको अथाय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४५. विज्जुकुमार सुरी सुरा, इमहिज अग्निकुमार।
इमहिज वाउकुमार छै, चंद्र सूर्य रे ग्रह नक्षत्र तार॥

४६. अन्य वलि तथा प्रकार नां, सगलाइ सुर तेह।
सोम नामैं लोकपाल नीं, भक्ति रे सेव करेह॥

४७. वले पक्षी छै तेहना, सोम प्रयोजन होय।
सहाय नां कारक अछै, सोम पक्षी रे ते माटे जोय॥

४८. सोम तणी भार्य्या नीं परै, अत्यंत वस छै तास।
तथा निवहै भार सोम नों, तिण सूं आख्यो रे तब्भारिया जास॥

४९. शक्र नीं आज्ञा मानता, सेव वचन निर्देश।
तेहनैं विषै रहै अछै, पूर्वे आख्या रे ए तो देव विशेष॥

५०. जंबूद्वीप पै मंदर नैं, दक्षिण दिशि रै मांय।
ए आगल कहिसै ते, ऊपजै ते तो जाणैं रे सोम महाराय॥

५१. ग्रह-दंड ग्रह-मुसल हुवै, ग्रह - गर्जित ग्रह - युद्ध।
वलि हुवै ग्रह-संघाडगा, ग्रह-अपसव्य रे हिवै अर्थ समुद्ध॥

५२. *दंड नीं पर त्रिछा लांबा, श्रेणि वृद्धि समाचरैं।
मंगलादिक तीन चिउं ना, दंड - ग्रह दंड उच्चरैं॥

५३. मुसल नीं पर नीचैं ऊपर, श्रेणि वृद्धि समाचरैं।
मंगलादिक तीन चिउं नां, ग्रह - मूसल उच्चरैं॥

५४. ग्रह नैं संचारवादिक, विषै घन नुं जाणियै।
शब्द गर्जित हुवै अधिको, ग्रह - गर्ज्जित आणियै॥

५५. इक नक्षत्र विषेज विहुं, दक्षिण दिश उत्तर करी।
श्रेण सम जे रहै तेहनैं, ग्रह - युद्धज उच्चरी॥

५६. सिंघोडा ना फल तणैं, आकार जे वहु ग्रह रहै।
ग्रह - संघाटकज कहियै, जाण तसुं वहुश्रुत लहै॥

५७. ग्रह नों जे वक्र जावो, न्याय तेहनुं इम लहै।
गमन करि नै जाय पाछो, ग्रह अपसव्य तसुं कहै॥

५८. *अभ्र वादला जे हुवै, वादल रूंख आकार।
संध्या फूलै ते सही, गगने रे व्यंतर कृत नगराकार॥

---

*लय—रावण राय आज्ञा अधिकी अथाय

+लय—पूज मोटा भांजै टोटा

४५. विज्जुकुमारा, विज्जुकुमारीओ, अग्गिकुमारा, अग्गिकुमारीओ, वायकुमारा, वायकुमारीओ, चंदा, सूरा, गहा, नक्खत्ता, तारारूवा—

४६. जे यावण्णे तहप्पगारा सव्वे ते तब्भत्तिया,
'तब्भत्तिय' त्ति तत्र—सोमे भक्तिः—सेवा बहुमानो वा येषां ते तद्भक्तिकाः। (वृ०-प० १९६)

४७. तप्पक्खिया,
'तप्पक्खिय' त्ति 'सोमपाक्षिकाः' सोमस्य प्रयोजनेषु सहायाः। (वृ०-प० १९६)

४८. तब्भारिया
'तब्भारिय' त्ति 'तद्भार्याः, तस्य सोमस्य भार्या इव भार्या अत्यन्तं वश्यत्वात्पोषणीयत्वाच्चेति तद्भार्याः, तद्भारो वा येषां वोढव्यतयाऽस्ति ते तद्भारिकाः। (वृ०-प० १९६)

४९. सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो आणा-उववाय-वयण-निद्देसे चिट्ठंति। (श० ३।२५२)

५०. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं जाइं इमाइं ममुप्पज्जंति, तं जहा—

५१. गहदंडा इ वा, गहमुसला इ वा, गहगज्जिया इ वा, गह-जुद्धा इ वा, गहसिंघाडगा इ वा, गहावसव्वा इ वा,

५२. 'गहदंड' त्ति दण्डा इव दण्डाः—तिर्यगायताः श्रेणयः ग्रहाणां—मंगलादीनां त्रिचतुरादीनां दण्डा ग्रहदण्डाः। (वृ०-प० १९६)

५३. एवं ग्रहमुशलादीनि नवरमूर्द्ध्वायताः श्रेणयः। (वृ०-प० १९६)

५४. 'गहगज्जिय' त्ति ग्रहसञ्चालादौ गर्जितानि—स्तनितानि ग्रहगर्जितानि। (वृ०-प० १९६)

५५. 'गहजुद्धाणि' ग्रहयोरेकत्र नक्षत्रे दक्षिणोत्तरेण समश्रेणितयाऽवस्थानानि। (वृ०-प० १९६)

५६. 'गहसिंघाडगाणि' ग्रहाणां सिंघाटकफलाकारेणावस्थानानि। (वृ०-प० १९६)

५७. 'गहावसव्वाणि' ग्रहाणामपसव्यगमनानि प्रतीपगमनानीत्यर्थः। (वृ०-प० १९६)

५८. अब्भा इ वा, अब्भरूक्खा इ वा, संझा इ वा, गंधव्व-नगरा इ वा,
अभ्रात्मका वृक्षा अभ्रवृक्षाः 'गंधर्वनगराणि' आकाशे व्यन्तरकृतानि नगराकारप्रतिविम्बानि।(वृ०-प० १९६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५९. रेखा सहित आकाश नैं, तथा उद्योत सहीत।
तारा नीं परपडिवो हुइं, उलका रे पात प्रतीत।

६०. दिशि दाह किणही इक दिशि, तल अंधकार तमीस॥
वलि ऊपरी प्रकाश ह्वै, महानगर रे वलतो तेह सरीस॥

६१. गाज वीज रज वृष्टि नैं, शुक्ल पक्ष रै मांय।
पडवादिक जे दिन त्रिहुं, संध्या फूलै रे ते यूप कहाय॥

६२. वलै आकाश विषे हुवै, व्यंतर कीधी आग।
जक्खालित्तए तेह छै, धूंयर रे महिया भाग॥

सोरठा

६३. धूंयर धूंसरवान, स्वेत वर्ण महिया कही।
अंतर इतलो जाण, धूंयर महिका में इहां॥

६४. *रज ते चिहुं दिशि नैं विषे, ते रजघात कहाय।
ग्रहण चंद्र सूर्य तणो, ते जाणैं रे सोम नामैं महाराय॥

६५. चंद्र सूर्य नीं पाखती, परिवेस कुंडालो भूर।
शशि ऊपर दूजो चन्द्रमा, रवि ऊपर रे दीसै दूजो सूर॥

६६. इंद्रधनुष गगने हुवै, इंद्रधनुष नां जाण।
गगने खंड दीसै घणां, तिणनैं कहियै रे उदक-मछ माण॥

६७. वादल विना ऊतावली, बीजल खिवै तिवार।
कपिहसिय इण पाठ नों, अर्थ कीधो रे टीकाकार॥

६८. गगने वानर मुख जिसो, विकृत - मुखे हसंत।
कपिहसिय इण पाठ नों, अन्य आचार्य रे अर्थ एम करंत॥

६९. उदय अस्त समय रवि किरण थी, उत्पन्न लाल कृष्ण जोह।
गाडा नी जे ओधि नैं, संस्थाने रे दंड तेह अमोह॥

७०. पुरव दिशि नों वायरो, पश्चिम दिशि नों वाव।
जाव संवर्त्तक वायरो, तृणादिक रे संवर्त्तन स्वभाव॥

*लय—रावण राय आशा अधिकी अथाय

५९. उक्कापाया इ वा,
'उल्कापाताः' सरेखा सोद्द्योता वा तारकस्येव पाताः।
(वृ०-प० १९६)

६०. दिसिदाहा इ वा,
'दिग्दाहाः' अन्यतमस्यां दिशि अधोऽन्धकारा उपरि च प्रकाशात्मका दह्यमानमहानगरप्रकाशकल्पाः।
(वृ०-प० १९६)

६१. गज्जिया इ वा, विज्जुया इ वा, पंसुवुट्ठी इ वा, जूवे इ वा,
'जूवय' त्ति शुक्लपक्षे प्रतिपदादिदिनत्रयं यावद्यैः सन्ध्याच्छेदा आक्रियन्ते ते यूपकाः। (वृ०-प० १९६)

६२. जक्खालित्तए त्ति वा, धूमिया इ वा, महिया इ वा,
'यक्षोद्दीप्तानि' आकाशे व्यन्तरकृतज्वलनानि।
(वृ०-प० १९६)

६३. धूमिकामहिकयोर्वर्णकृतो विशेषः, तत्र धूमिका—धूम्रवर्णा धूसरा इत्यर्थः, महिका त्वापाण्डुरेति।
(वृ०-प० १९६)

६४. रयुग्घाए त्ति वा, चंदोवरागा इ वा, सूरोवरागा इ वा,
'रउग्घाय' त्ति दिशां रजस्वलत्वानि 'चंदोवरागा सूरोवरागा' चन्द्रसूर्यग्रहणानि। (वृ०-प० १९६)

६५. चंदपरिवेसा इ वा, सूरपरिवेसा इ वा, पडिचंदा इ वा, पडिसूरा इ वा,
'पडिचंद' त्ति द्वितीयचन्द्राः। (वृ०-प० १९६)

६६. इंदधणू इ वा, उदगमच्छा इ वा,
'उदगमच्छ' त्ति इन्द्रधनुःखण्डानि। (वृ०-प० १९६)

६७. कपिहसिया इ वा,
'कविहसिय' त्ति अनभ्रे या विद्युत्सहसा तत् कपिहसितम्। (वृ०-प० १९६)

६८. अन्ये त्वाहुः—कपिहसितं नाम यदाकाशे वानरमुखसदृशस्य विकृतमुखस्य हसनम्। (वृ०-प० १९६)

६९. अमोहा इ वा,
'अमोह' त्ति अमोघा आदित्योदयास्तमययोरादित्यकिरणविकारजनिताः 'आताम्राः' कृष्णाः श्यामा वा शकटोद्धिसंस्थिता दण्डा इति। (वृ०-प० १९६)

७०. पाईणवाया इ वा, पडीणवाया इ वा, जाव संवट्टयवाया इ वा,
'संवर्त्तकवाताः' तृणादिसंवर्त्तनस्वभावा इति।
(वृ०-प० १९६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

७१. जाव शब्द में जाण, पन्नवण सूत्रे धुर पदे।
पेख्या पाठ पिछाण, कहियै तिण अनुसार थी ।।

७२. दक्षिण दिशि नों वाय, वलि उत्तर दिशि नों कह्यो।
ऊंची दिशि नो ताय, वलि नीची दिशि नों पवन ।।

७३. तिरछी दिशि नों वाय, विदिशि तणो वायू वलि।
वाउब्भामा ताय, अनवस्थित ए स्थिर नहीं ।।

७४. वाउ-उक्कलिया जेह, उक्कलि नै पड़तो छतो।
वाजै वायू तेह, उदधि उत्कलिकावत् तिको ।।

७५. वायमंडलिया ताय, मंडल नै आकार जे।
फुन उक्कलिया - वाय, रहि रहि नै वाजै तिको ।।

७६. वलि मंडलिका - वाय, ए वातोली रूप जे।
गुंजा - वाय कहाय, करतो गुंजारव शवद ।।

७७. झंझावायू ताय, अनिष्ट असुभज आकरा।
ए सगलाइ वाय, जाव शब्द में आखिया ।।

७८. *ग्राम जाव सन्निवेस नों, दाह हुवै अधिकाय।
ग्रह दंडादिक जे कह्या, तेहनुं रे हिव फल कहुं प्राय ।।

७९. प्राण क्षय वल क्षीण हुवै, जण धण कुल क्षय होय।
मनुष्य धन कुल क्षय हुवै, ग्रह दंडादिक नो रे ए फल जोय ।।

८०. कष्ट भूत आपद पडै, पापात्मिक अनार्य।
तथा आगमन अनार्य तणो, ए सरिखा रे वलि अन्य कार्य ।।

८१. ए सहु शक्र देवेंद्र नां, देव राजा नां ताहि।
सोम महाराजा तणैं, नहीं छै रे ए अणजाण्या ताहि ।।

८२. ते अणजाण्या नहीं तसुं, उन्मान तणी अपेक्षाय।
अणदेख्या नहीं तेहनैं, प्रत्यक्ष नीं रे अपेक्षाय ताय ।।

८३. पर वचने द्वारे करी, अणसुणिया नहि कोय।
अस्मृति असमरण करि नहीं, मन नीं रे अपेक्षाय जोय ।।

८४. अविज्ञातपणे नहीं सोम रै, अवधि तणी अपेक्षाय।
तथा सोम नीं जाति नां, तेहनैं रे अजाण्यादि नांय ।।

---

*लय—रावण राय आज्ञा अधिको अथाय

७२. दाहिणवाया इ वा, उदीणवाया इ वा, उड्ढवाया इ वा, अहोवाया इ वा,

७३. तिरियवाया इ वा, विदिसीवाया इ वा, वाउब्भामा इ वा,
इह 'वातोद्भ्रामाः' अनवस्थितवाताः। (वृ०-प० १९६)

७४. वाउक्कलिया इ वा,
'वातोत्कलिकाः' समुद्रोत्कलिकावत्। (वृ०-प० १९६)

७५. वायमंडलिया इ वा, उक्कलियावाया इ वा,
'वातमंडलिका' वातोत्थाः' 'उत्कलिकावाताः' उत्कलिकाभिर्ये वान्ति। (वृ०-प० १९६)

७६. मंडलियावाया इ वा, गुंजावाया इ वा,
मण्डलिकावाताः मण्डलिकाभिर्ये वान्ति 'गुञ्जवाताः' गुञ्जन्तः सशब्दं ये वान्ति। (वृ०-प० १९६)

७७. झंझावाया इ वा,
'झञ्झावाताः' अशुभनिष्ठुराः। (वृ०-प० १९६)

७८. गामादाहा इ वा, जाव सण्णिवेसदाहा इ वा,
अथानन्तरोक्तानां ग्रहदण्डादीनां प्रायिकफलानि दर्शयन्नाह— (वृ०-प० १९६, १९७)

७९. पाणक्खया, जणक्खया, धणक्खया, कुलक्खया,

८०. वसणब्भूया मणारिया—
ये चान्ये एतद्व्यतिरिक्तास्तत्प्रकाराः—प्राणक्षयादितुल्याः 'व्यसनभूताः' आपद्रूपाः 'अनार्याः' पापात्मकाः। (वृ०-प० १९७)

८१. जे यावण्णे तहप्पगारा ण ते सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो अण्णाया

८२. अदिट्ठा
'अण्णाय' त्ति अनुमानतः 'अदिट्ठ' त्ति प्रत्यक्षापेक्षया। (वृ०-प० १९७)

८३. असुया अमुया
'असुय' त्ति परवचनद्वारेण 'अमुय' त्ति अस्मृता मनोऽपेक्षया। (वृ०-प० १९७)

८४. अविण्णाया, तेसिं वा सोमकाइयाणं देवाणं।
(श० ३।२५३)
'अविण्णाय' त्ति अवध्यपेक्षयेति। (वृ०-प० १९७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

८५. इतले इम कहिवाय, ग्रह-दंडादिक प्रमुख जे।
जाण्या वर्त्तै ताय, वलि देख्या सुणिया जसुं ॥

८६. स्मृता मन कर न्हाल, विज्ञाता अवधे करी।
शक्र सोम दिग्पाल, सोमकाइया नै वलि ॥

८७. *शक्र देव राजा तणा, महाराय सोम नै सोय।
ए आगल कहिसै तिकै, पुत्र-स्थानक रे विनयवंत जोय ॥

८८. अंगारक वैतालिक, लोहिताक्ष शनि जान।
चंद्र सूर्य शुक्र बुद्ध गुरु, वलि राहु रे ए पुत्र नै स्थान ॥

८९. शक्र सुरिंद्र सुरराय नां, महाराय सोम नीं स्थित्त।
इक पल्य तीजो भाग पल्य तणों, इक पल्योपम रे सुत-स्थानक नीं ठित्त ॥

९०. पल्य अधिकेरी स्थिति छै, चंद्र सूर्य नीं जाण।
अल्प अधिक माटै नां गिणी, वृत्ति मांहै रे एहवी वाण ॥

९१. एहवो महाऋद्धिवान छै, यावत् महाअनुभाग।
लोकपाल पूर्व दिशि तणों, सोम महाराजा रे तिणरो अति आघ ॥

९२. अंक सैंतीस नुं देश ए, गुणंतरमीं ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय थी, वारू संपति रे 'जय-जश' मंगलमाल ॥

८७. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो इमे देवा अहावच्चा अभिण्णाया होत्था, तं जहा—
'अहावच्च'—त्ति यथाऽपत्यानि तथा ये ते यथाऽपत्या देवाः पुत्रस्थानीया इत्यर्थः। (वृ०-प० १९७)

८८. इंगालए वियालए लोहियक्खे सणिच्चरे चंदे सूरे सुक्के बुहे बहस्सई राहू। (श० ३।२५४)

८९. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो सतिभागं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता। अहावच्चाभिण्णायाणं देवाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

९०. एतेषु च यद्यपि चन्द्रसूर्ययोर्वर्षलक्षाद्यधिकं पल्योपमं तथाऽप्याधिक्यस्याविवक्षितत्वादङ्गारकादीनां च ग्रहत्वेनपत्योपमस्यैव सद्भावात् पल्योपममित्युक्तमिति।
(वृ०-प० १९७)

९१. एमहिड्ढीए जाव महाणुभागे सोमे महाराया।
(श० ३।२५५)

ढाल : ७०

दूहा

१. किहां प्रभु ! शक्र सुरिंद्र नां, सुर राजा नां जाण।
जम महाराजा तेहनों, वरसिट्ठ महाविमाण ?

२. जिन कहै—सोहम्म वडंसके, महाविमान ते जोय।
दक्षिण दिशि मांहै अछै, सुधर्म - कल्पै सोय ॥

३. असंख सहस्र जोजन गयां, शक्र सुरिंद्र नां जाण।
जम महाराजा नों अछै, वरसिट्ठ महाविमाण ॥

४. जोजन साढा बार लख, सोम विमान नीं सोय।
वक्तव्यता कही तिम इहां, जम नीं कहिवी जोय ॥

१. कहि णं भंते ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो जमस्स महारण्णो वरसिट्ठे नामं महाविमाणे पण्णत्ते ?

२. गोयमा ! सोहम्मवडेंसयस्स महाविमाणस्स दाहिणे णं सोहम्मे कप्पे

३. असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं वीईवइत्ता, एत्थ णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो जमस्स महारण्णो वरसिट्ठे नामं महाविमाणे पण्णत्ते—

४. अद्धतेरसजोयणसयसहस्साइं—जहा सोमस्स विमाणं तहा

*लय—रावण राय आज्ञा अधिकी अथाय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. जाव अभिषेक स्थापना, राजधानी तिमहीज।
जावत् पंक्ती ते चिउं, प्रासाद नीं जिमहीज ।।

६. शक्र सुरेंद्र सुरराय नां, जम महानृप नीं सेव।
आज्ञा वच निर्देश में, रहै एतला देव ।।

७. जमकाइया जम जाति नां, जम परिवार सुसाधि।
जम - देवत - काइया, जम-सामानिक आदि ।।

८. प्रेतकाइया — व्यंतरा, प्रेत - देवतकाय।
प्रेतसत्क जे सुर तणां, संबंधी कहिवाय ।।

५. जाव अभिसेओ। रायहाणी तहेव जाव पासायपंतीओ।
(श० ३।२५६)

६. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो जमस्स महारण्णो इमे देवा आणा-उववाय-वयण-निद्देसे चिट्ठंति, तं जहा—

७. जमकाइया इ वा, जमदेवयकाइया इ वा,

८. पेतकाइया इ वा पेतदेवयकाइया इ वा,
'पेयकाइय' त्ति 'प्रेतकायिका:' व्यन्तर विशेषा: 'पेयदेवतकाइय' त्ति प्रेतसत्कदेवतानां सम्बन्धिनः।
(वृ०-प० १९८)

९. असुर देव देवी वलि, कंदर्प क्रीडाकार।
नरकपाल सेवक सुरा, अन्य बलि तथा प्रकार ।।

१०. ते सहु भक्ता जमपक्षी, वल्लभ भार्या जेम।
जम नीं आज्ञा सेव वच निर्देशे रहै प्रेम ।।

९. असुरकुमारा, असुरकुमारीओ, कंदप्पा, निरयपाला, अभियोगा—जे यावण्णे तहप्पगारा

१०. सव्वे ते तब्भत्तिगा, तप्पक्खिया तब्भारिया सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो जमस्स महारण्णो आणा-उववाय-वयण-निद्देसे चिट्ठंति। (श० ३।२५७)

*निसुणे गोयमा ! जम महाराजा स्यूं नहीं छाना।
वलि जमराय नां जमकायिका थकी अछाना ।। (ध्रुपदं)

११. जंबूद्वीप नां मेरु-गिरि थी, दक्षिण दिशि रै मांह्यो।
एह ऊपजै ते सहु जाणैं, जम नामैं महारायो ।।

१२. डिंबा कहितां विघन ऊपजै, डमर ते इक राजे-
राजकुमारादिक नों कीधो, उपद्रव अधिक अकाजे ।।

११. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं जाइं इमाइं समुप्पज्जंति, तं जहा—

१२. डिंबा इ वा, डमरा इ वा,
डिम्बा—विघ्ना: 'डमर' त्ति एकराज्य एव राजकुमारादिकृतोपद्रवा:। (वृ०-प० १९८)

१३. कलह वचन नीं राडि कहीजै, बोला अर्थ विचारा।
अव्यक्त अक्षर नीं ध्वनि-समूहज, मच्छर परस्पर खारा ।।

१३. कलहा इ वा, बोला इ वा, खारा इ वा,
'कलह' त्ति वचनराट्य: 'बोल' त्ति अव्यक्ताक्षरध्वनिसमूहा: 'खार' त्ति परस्परमत्सरा:। (वृ०-प० १९८)

१४. चक्रादि-व्यूह रहित महायुद्ध, व्यूह रच महासंग्रामो।
महाशस्त्र खड्गादि पडै बलि, महापुरुष क्षय आमो ।।

१४. महाजुद्धा इ वा, महासंगामा इ वा, महासत्थनिवडणा इ वा, महापुरिसनिवडणा इ वा,
'महायुद्ध' त्ति महायुद्धानि व्यवस्थाविहीनमहारणा: 'महासंगाम' त्ति सव्यवस्थचक्रादिव्यूहरचनोपेतमहारणा: महाशस्त्रनिपातनादयस्तु त्रयो महायुद्धादिकार्यभूता:। (वृ०-प० १९८)

१५. घणां रुधिर—लोही नुं पडिवूं, धान्य मनुष्य प्रमुख नैं।
उपद्रव हेतू जूं नै माकण, उंदर तीड उप्पनैं ।।

१५. महारुहिरणिवडणा इ वा, दुब्भूया इ वा,
'दुब्भूय' त्ति दुष्टा—जनधान्यादीनामुपद्रवहेतुत्वाद् भूता:—सत्त्वा: यूकामत्कुणोन्दुरतिड्डप्रभृतयो दुर्भूता ईतय इत्यर्थ:। (वृ०-प० १९८)

१६. कुल अरु ग्रामै रोग ऊपजै, देश नगर में रोगा।
शिर चक्षु कर्ण दंत नख वेदन, उपजै अधिकी अजोगा ।।

१६. कुलरोगा इ वा, गामरोगा इ वा, मंडलरोगा इ वा, नगररोगा इ वा, सीसवेयणा इ वा, अच्छिवेयणा इ वा, कण्णवेयणा इ वा, नहवेयणा इ वा, दंतवेयणा इ वा,

*लय—हठीला कानजी ! छल्ला म्हैं नहीं छोड़ूं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७ इंद्रग्रहादिक उन्मत्त कारण, करै बावला जाणी।
इंद्रग्रह लागै हुवै विकल, वेदन अधिक पिछाणी॥

१८. खंधग्रह लागां हुवै गहिलो, इमहिज ग्रहकुमारो।
यक्षग्रहे पिण उन्मत्त कारण, भूतग्रह इम धारो॥

१९. एकांतर-जुर[1] आवै वलि, बेहिया[2] पुनः तेहिया[3] ताह्यो।
चतुराहिया[4] जुर आवै ते पिण, जाणै जम महारायो॥

२०. उद्वेग इष्ट विजोगे उपनों, कास श्लेष्म - रहीतं।
कास श्लेष्म सहित कहीजै सास, सोस विपरीतं॥

२१. जरा करै बल हीणज तनुं नै, दाह ते बले शरीरं।
कक्ष दुर्गंध हुवै अथवा, वन-पत्र सडै अति पीडं॥

२२. हुवै अजीर्ण रोग पांडु वलि, हरस भगंदर ताह्यो।
हृदय-सूल शिर-सूल ऊपजै, योनी-सूल अथायो॥

२३. पसवाडा में सूल ऊपजै, उदरै रोग ऊपजै।
ग्राम नगर अरु खेड कवड में, मारी रोग नोपजै॥

२४. द्रोणमुख मंडप[5] नै पट्टण, आश्रम नै संवाहो।
सन्निवेस में मरी[6] ऊपजै, ते जाणै जमनाहो॥

२५. बल-क्षय नर-क्षय धन-क्षय कुल-क्षय, कष्ट अनारज आयो।
अन्य वलि तेह सरीखा तेहनै, जाणै जम महारायो॥

२६. शक्र सुरिंद्र तणो जम नामैं, महाराजा नै जाणं।
अणजाण्या इत्यादिक नहिं छै, अथवा जमकाइयाणं॥

२७. महाराया जम ने सुत-स्थानक, विनयवंत ए हूआ।
काल लिहूं में पिण लेखवीइं, पनर नाम जे जूआ॥

२८. अंबे अंबरिसे सामे, सबले नै रुद्र रुखालु।
उपरुद्र काल महाकाल असिपत्त, धणु कुंभ नै बालु॥

२९. वेतरणी खर-सर महाघोषे, ए पनरै पहिछानं।
परमाधार्मिक जमराय नै, पुत्र तणं छै स्थानं॥

१. एक दिन छोड़कर आने वाला ज्वर।
२. दो दिन छोड़कर आने वाला ज्वर।
३. तीन दिन छोड़कर आने वाला ज्वर।
४. चार दिन छोड़कर आने वाला ज्वर।
५. मडंब
६. मारी

१७. इंदग्गहा इ वा,
इन्द्रग्रहादयः उन्मत्ततादेतवः। (वृ०-प० १९८)

१८. खंदग्गहा इ वा, कुमारग्गहा इ वा, जक्खग्गहा इ वा, भूयग्गहा इ वा,

१९. एगाहिया इ वा, बेहिया इ वा, तेहिया इ वा, चाउत्थया इ वा,
एकाहिकादयो ज्वरविशेषाः। (वृ०-प० १९८)

२०. उव्वेयगा इ वा, कासा इ वा, सासा इ वा, सोसा इ वा,
'उव्वेयग' त्ति उद्वेगका इष्टवियोगादिजन्याः।
(वृ०-प० १९८)

२१. जरा इ वा, दाहा इ वा, कच्छकोहा इ वा
'कच्छकोह' त्ति कक्षाणां—शरीरावयवविशेषाणां वन-गहनानां वा कोथाः—कुथितत्वानि शटितानि वा कक्षा-कोथाः कक्षकोथा वा। (वृ०-प० १९८)

२२. अजीरगा इ वा, पंडुरोगा इ वा, अरिसा इ वा, भगंदला इ वा, हिययसूला इ वा, मत्थयसूला इ वा, जोणिसूला इ वा,

२३. पासमूला इ वा, कुच्छिसूला इ वा, गाममारी इ वा, नगरमारी इ वा, खेडमारी इ वा, कव्वडमारी इ वा,

२४. दोणमुहमारी इ वा, मडंबमारी इ वा, पट्टणमारी इ वा, आसममारी इ वा, संवाहमारी इ वा, सण्णिवेसमारी इ वा,

२५. पाणक्खया, जणक्खया, धणक्खया, कुलक्खया, वसण-ब्भूया मणारिया जे यावण्णे तहप्पगारा

२६. ण ते सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो जमस्स महारण्णो अण्णाया अदिट्ठा असुया अमुया अविण्णाया, तेसिं वा जमकाइयाणं देवाणं। (श० ३।२५८)

२७. सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो जमस्स महारण्णो इमे देवा अहावच्चा अभिण्णाया होत्था, तं जहा—

२८, २९. अंबे अंबरिसे चेव, सामे सबले त्ति यावरे।
रुद्दोवरुद्दे काले य, महाकाले त्ति यावरे॥
असिपत्ते धणू कुंभे, वालुए वेतरणी त्ति य।
खरस्सरे महाघोसे, एते पण्णरसाहिया॥
(श० ३।२५९ संगहणी-गाहा)

२९. एते यमयथाऽपत्यदेवाः पञ्चदश आख्याताः।
(वृ०-प० १९८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०. शक्र तणां जम महाराजा नीं, स्थिति पल्योपम आखी।
पल्य नां तीजा भाग सहित वलि, पुत्र-स्थान पल्य भाखी॥

३८. एहवो छै महाऋद्धिवंत मोटो, जावत् जम महारायो।
तृतीय शतक नों सप्तमुद्देशो, देश थकी कहिवायो॥

३२. ए सित्तरमीं ढाल कही, भिक्षु भारीमाल ऋषरायो।
'जय-जश' सुख संपति गण-वृद्धि, दिन दिन अधिक सवायो॥

३०. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो जमस्स महारण्णो सतिभागं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता, अहावच्चाभिण्णायाणं देवाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

३१. एमहिड्ढीए जाव महाणुभागे जमे महाराया।
(श० ३।२६०)

ढाल : ७१

दूहा

१. किहां प्रभु! शक्र सुरिंद्र नां, सुर-राजा नां जाण।
वरुण महाराजा तणों, सयंजल महाविमाण?

२. जिन कहै सोहम्मवडंसक, महाविमान तै जोय।
पश्चिम दिशि मांहै अछै, सुधर्मे कल्पे सोय॥

३. असंख सहस्र जोजन गयां, शक्र सुरिंद्र नां जाण।
वरुण महाराजा तणों, सयंजल महाविमाण॥

४. जेम सोम नों तिम इहां, विमाण नै रजधानि।
जाव पासायवडिंसया, नवरं फेर नामानि॥

५. शक्र सुरिंद्र सुरराय नां, महाराय वरुण नीं सेव।
आज्ञा वच निर्देश में, रहै एतला देव॥

६. वरुणकाय वरुण जाति नां, वरुण - देवतकाय।
नागकुमार सुरा सुरी, उदधि थणित इम आय॥

७. अन्य वलि तथा प्रकार नां, भक्त पखी स्त्री जेम।
वरुण आण सेवा वचन, निर्देशे रहै प्रेम॥

*रे गोतम! सुण तूं चित्त लगाय।
वरुण तीजा लोकपाल रै रे जाणपणै रै मांय॥ (ध्रुपदं)

८. जंबूद्वीप नां मेरु थकी रे, दक्षिण दिशि रै मांय।
ए आगल कहिसै जे ऊपजै रे, ते जाणै वरुण महाराय॥

१. कहि णं भंते! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो वरुणस्स महारण्णो सयंजले नामं महाविमाणे पण्णत्ते?

२. गोयमा! तस्स णं सोहम्मवडेंसयस्स महाविमाणस्स पच्चत्थिमे णं सोहम्मे कप्पे

३. असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं वीईवइत्ता, एत्थ णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो वरुणस्स महारण्णो संयजले नामं महाविमाणे पण्णत्ते

४. जहा सोमस्स तहा विमाण-रायधाणीओ भाणियव्वा जाव पासादवडेंसया, नवरं—नामनाणत्तं।
(श० ३।२६१)

५. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वरुणस्स महारण्णो इमे देवा आणा-उववाय-वयण-निद्देसे चिट्ठंति, तं जहा—

६. वरुणकाइया इ वा, वरुणदेवयकाइया इ वा, नागकुमारा, नागकुमारीओ, उदहिकुमारा, उदहिकुमारीओ थणियकुमारा, थणियकुमारीओ—

७. जे यावण्णे तहप्पगारा सव्वे ते तब्भत्तिया, तप्पक्खिया, तब्भारिया सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो वरुणस्स महारण्णो आणा-उववाय-वयण-निद्देसे चिट्ठंति।
(श० ३।२६२)

८. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं जाइं इमाइं समुप्पज्जंति, तं जहा—

*लय—कपूर हुवै अति ऊजलो रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. घणी ऊंतावली वर्षा हुवै, हलवै वर्षा होय।
सुवृष्टि दुवृष्टि हुवै, वरुण जाणपणे जोय॥

१०. धान्य प्रमुख बहु नीपजै, तिणरो हेतु सुवृष्टि कहाय।
धान्य प्रमुख नहि नीपजै, तिणरो हेतु दुवृष्टि ताय॥

११. उदब्भेदा गिर तट आद थी, उदक नीकलिवूं तेह।
उदपीडा तलाव प्रमुख विषै, जल नुं समूह छै जेह॥

१२. ओवाहा उदक थोडो वहै. पवाहा बहुल वहंत।
ग्राम तांणीं जाय एहवा, वाहला अधिक वहंत॥

१३. जावत् ताणैं सन्निवेस में, वाहला एहवा पेख।
प्राण ते बल नां क्षय भणी, जल नां भेद अनेक॥

१४. जाव वरुण महाराय नैं, अणजाण्या नहि कोय।
तथा वरुणकाइया तणैं, जाणपणा में जोय॥

१५. शक्र सुरिंद्र सुरराय नां, महाराय वरुण नैं जाण।
जावत् सुत-स्थानक अछै, विनयवंत पहिछाण॥

१६. कर्कोटक नामैं गिरि अछै, लवणसमुद्र में जान।
ईशाण कूण में ओपतो, आवासभूत पिछान॥

१७. अनुवेलंधर नागराजा तणों, ते गिरि आवासभूत।
तेहनां वासी देवता, कर्कोटक सुभ सूत॥

१८. तिमज अग्निकूणे अछै, विद्युतप्रभ समाज।
आवासभूत गिरि तिहां, कर्दम नामैं नागराज॥

१९. वाउकुमार ना इंद्र नों, नाम वेलंब विचार।
लोकपाल तेहनों अछै, अंजन नामैं उदार॥

२०. नागकुमार नां इंद्र नों, धरण नाम कहिवाय।
लोकपाल तेहनों भलो, संखपाल सुखदाय॥

२१. पुंड पलास मोये जये, उदधिमुख अयंपुल ताहि।
कातरिक ए प्रसिद्ध नहीं, एम कह्यं वृत्ति मांहि॥

२२. शक्र सुरिंद्र सुरराय नैं, महाराय वरुण स्थिति जान।
देश ऊणी बे पल्य तणी, एक पल्य सुत-स्थान॥

९. अदवासा इ वा, मंदवासा इ वा, सुवुट्ठी इ वा, दुवुट्ठी इ वा,
'अतिवास' त्ति अतिजयवर्षा वेगवद्वर्षणानीत्यर्थः 'मंदवास' त्ति शनैर्वर्षणानि। (वृ०-प० १९९)

१०. 'सुवुट्ठि' त्ति धान्यादिनिष्पत्तिहेतुः 'दुवुट्ठि' त्ति धान्याद्यनिष्पत्तिहेतुः। (वृ०-प० १९९)

११. उदब्भेदा इ वा, उदप्पीला इ वा,
'उदब्भेय' त्ति उदकोद्भेदाः गिरितटादिभ्यो जलोद्भवाः 'उदप्पील' त्ति उदकोत्पीलाः—तडागादिषु जलसमूहाः। (वृ०-प० १९९)

१२. ओवाहा इ वा, पवाहा इ वा, गामवाहा इ वा,
'उद्वाह' त्ति अपकृष्टान्यल्पान्युदकवहनानि, तान्येव प्रकर्षवन्ति प्रवाहाः। (वृ०-प० १९९)

१३. जाव सण्णिवेसवाहा इ वा, पाणक्खया,

१४. जाव वरुणस्स महारण्णो अण्णाया अदिट्ठा असुया अमुया अविण्णाया, तेसिं वा वरुणकाइयाणं देवाणं। (श० ३।२६३)

१५. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वरुणस्स महारण्णो इमे देवा अहावच्चाभिण्णाया होत्था, तं जहा—

१६, १७. कक्कोडए
'कक्कोडए' त्ति कर्कोटकाभिधानोऽनुवेलन्धरनागराजावासभूतः पर्वतो लवणसमुद्रे ऐशान्यां दिश्यस्ति तन्निवासी नागराजः कर्कोटकः। (वृ०-प० १९९)

१८. कद्दमए
'कद्दमए' त्ति आग्नेय्यां तथैव विद्युत्प्रभपर्वतस्तत्र कर्दमको नाम नागराजः। (वृ०-प० १९९)

१९. अंजणे
अंजणे' त्ति वेलम्बाभिधानवायुकुमारराजस्य लोकपालोऽञ्जनाभिधानः। (वृ०-प० १४४)

२०. संखवालए
'सखवालए' त्ति धरणाभिधाननागराजस्य लोकपालः शंखपालको नाम। (वृ०-प० १९९)

२१. पुंडे
पलासे मोए जए,दहिमुहे अयंपुले कायरिए।(श०३।२६४)
शेषास्तु पुण्ड्रादयोऽप्रतीता इति। (वृ०-प० १९९)

२२. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वरुणस्स महारण्णो देसूणाइं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहावच्चाभिण्णायाणं देवाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. एहवो महाऋद्धिवंत छै, जाव वरुण महाराय।
लोकपाल ए तीसरो, पश्चिम दिशि रै मांय॥

२४. किहां प्रभु ! शक्र सुरिंद्र नां, सुरराजा नां जाण।
वेसमण महाराजा तणों, वग्गु महाविमाण ?

२५. जिन कहै सोहम्मवडेंसक, महा विमान तैं जोय।
उत्तर दिशि मांहै अछै, सुधर्म - कल्पै सोय॥

२६. सोम तणां विमान नीं, राजधानी नीं वात।
जिम कही तिम इहां जाणवी, जाव प्रासाद विख्यात॥

२७. शक्र सुरिंद्र सुरराय नां, देव कुबेर नी सेव।
आज्ञा वच निर्देश में, रहै एतला देव॥

२८. तेह कुबेर नीं जाति नां, तसुं सामानिक परिवार।
सुवन्नकुमार सुरा सुरी, इमहिज दिशाकुमार॥

२९. द्वीपकुमार देवी देवता, व्यंतर सुर सुरी जाण।
अन्य वलि तथा प्रकार ना, भक्ति जाव रहै आण॥

३०. जंबूद्वीप नां मेरु थकी, दक्षिण दिशि रै मांय।
ए आगल कहिसै जे ऊपजै, ते जाणै कुबेर महाराय॥

३१. लोह तणां आगर हुवै, तरुआ नां आगर जोय।
तांबा नां आगर वलि, सीसा नां आगर सोय॥

३२. हिरण तणां आगर हुवै, सुवर्ण आगर सार।
रत्न-आगर रलियामणा, वज्र-आगर थोकार॥

३३. जिन जन्मादिक नैं विषै, गगन थकी हुवै ताय।
द्रव्य वृष्टि तसुं सूत्र में, वसुधारा कहिवाय॥

३४. हिरण नीं अल्प वर्षा हुवै, ते रूपा नीं वर्षा देख।
अन्य आचार्य हिरण नैं, घडयो सोनो कहै पेख॥

३५. सुवर्ण नीं वर्षा हुवै, रत्न वर्षा सुविचार।
वज्र तणी अल्प वर्षा हुवै, आभरण वर्षा उदार॥

३६. पान फूल फल बीज नीं, गूंथ्या फूल नीं माल।
वर्ण तेह चंदन तणीं, वर्षा होवै तिण काल॥

३७. चूर्ण ते गंध द्रव्य नीं, कोष्ठपुडा ते गंध।
वस्त्र तेह कपडा तणी, वर्षा होवै मंद॥

३८. हिरण नीं बहु वृष्टि हुवै, सुवर्ण-वृष्टि थाय।
रत्न वज्र आभरण तणीं, वृष्टी हुवै सवाय॥

२३. एमहिड्ढीए जाव महाणुभागे वरुणे महाराया।
(श० ३।२६५)

२४. कहि णं भंते ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो वेसमणस्स महारण्णो वग्गू नाम महाविमाणे पण्णत्ते ?

२५. गोयमा ! तस्स णं सोहम्मवडेंसयस्स महाविमाणस्स उत्तरे णं

२६. जहा सोमस्स विमाण-रायहाणि-वत्तव्वया तहा नेयव्वा जाव पासादवडेंसया। (श० ३।२६६)

२७. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वेसमणस्स महारण्णो इमे देवा आणा-उववाय-वयण-निद्देसे चिट्ठंति, तं जहा—

२८, २९. वेसमणकाइया इ वा, वेसमणदेवयकाइया इ वा, सुवण्णकुमारा, सुवण्णकुमारीओ दीवकुमारा, दीवकुमारीओ, दिसाकुमारा, दिसाकुमारीओ, वाणमंतरा, वाणमंतरीओ—जे यावण्णे तहप्पगारा सव्वे ते तब्भत्तिया तप्पक्खिया तब्भारिया सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो वेसमणस्स महारण्णो आणा-उववाय-वयण-निद्देसे चिट्ठंति। (श० ३।२६७)

३०. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं जाइं इमाइं समुप्पज्जंति, तं जहा—

३१. अयागरा इ वा, तउयागरा इ वा, तंबागरा इ वा, सीसागरा इ वा,

३२. हिरण्णागरा इ वा, सुवण्णागरा इ वा, रयणागरा इ वा, वइरागरा इ वा,

३३. वसुहारा इ वा,
'वसुहारा इ व' त्ति तीर्थंकरजन्मादावाकाशाद्द्रव्य-वृष्टिः। (वृ०-प० २००)

३४. हिरण्णवासा इ वा,
हिरण्यं—रूप्यं घटितसुवर्णमित्यन्ये। (वृ०-प० २००)

३५. सुवण्णवासा इ वा, रयणवासा इ वा, वइरवासा इ वा, आभरणवासा इ वा,

३६. पत्तवासा इ वा, पुप्फवासा इ वा, फलवासा इ वा, बीयवासा इ वा, मल्लवासा इ वा, वण्णवासा इ वा,
माल्यं तु ग्रथितपुष्पाणि वर्णः—चन्दनं।(वृ०-प० २००)

३७. चुण्णवासा इ वा, गंधवासा इ वा, वत्थवासा इ वा,
चूर्णो गन्धद्रव्यसम्बन्धी गन्धाः—कोष्टपुटपाकाः।
(वृ०-प० २००)

३८. हिरण्णवुट्ठी इ वा, सुवण्णवुट्ठी इ वा, रयणवुट्ठी इ वा, वइरवुट्ठी इ वा, आभरणवुट्ठी इ वा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३९. पत्र फूल फल बीज नों, गूंथ्या फूल नी माल।
वर्ण तेह चंदन तणी, वृष्टी अधिक निहाल॥

४०. चूर्ण ते गंध द्रव्य नीं, कोष्टपुडादि गंध।
वस्त्र तेह कपडा तणो, वृष्टी अधिक प्रबंध॥

४१. चीर-वृष्टि किणहि परत में, चीर बहुमूल्य ताय।
वत्थ पाठ अल्प मूल्य ते, पिण नहीं छै वृत्ति मांय॥

४२. भाजन नीं वृष्टि हुवै, खीर वृष्टि पिण थाय।
अल्प तास वर्षा कही, वृष्टि महा कहिवाय॥

४३. वलिसुकाल दुकाल ह्वै, वस्तु अल्प-मूल्य होय।
वलि वस्तु महामूल्य ह्वै, जाणैं वेसमण सोय॥

४४. सुभिक्ष भिक्षा सोहरी मिलै, दुर्भिक्ष दुर्लभ तेह।
क्रय विक्रय व्यापार नों, तास कुबेर जाणेह॥

४५. सन्निधि संचय घृतादिक तणों, धान्य नुं संचय जान।
संचय लक्षादि द्रव्य नों, ते निधे संचय मान॥

४६. निधान ते भूमि रह्या, बहु द्रव्य संचय सोय।
ते निधान केहवा अछै, सांभलज्यो सहु कोय॥

४७. चिर पोराणाइं कह्या, घणां काल नां जेह।
थाप्या ते जूना थया, तेहिज हिवै कहेह॥

४८. पहीणसामियाइं वली, धन नां स्वामी जाण।
स्वल्पीभूत थया अछै, त्यां नैं जाणैं कुबेर सुजाण॥

४९. पहीणसेउयाइं वली, धन ना घालणहार।
सेवग तेह रह्या नहीं, अल्पीभूत अपार॥

५०. पहीणमग्गाइं वली, मारग पिण थया हीन।
अल्पीभूत थया तिकै, जाणैं कुबेर सुचीन॥

५१. पहीणगोत्तागार कह्या, धन नां स्वामी कथीन।
मनुष्य तणा जे गोत्र नां, घर नों थयो प्रक्षीन॥

३९. पत्तवुट्ठी इ वा, पुप्फवुट्ठी इ वा, फलवुट्ठी इ वा, बीयवुट्ठी इ वा, मल्लवुट्ठी इ वा, वण्णवुट्ठी इ वा,

४०. चुण्णवुट्ठी इ वा, गंधवुट्ठी इ वा, वत्थवुट्ठी इ वा,

४२. भायणवुट्ठी इ वा, खीरवुट्ठी इ वा,
वर्षोऽल्पतरो वृष्टिस्तु महतीति वर्षवृष्ट्योर्भेदः।
(वृ०-प० २००)

४३. सुकाला इ वा, दुक्काला इ वा, अप्पग्घा इ वा, महग्घा इ वा,

४४. सुभिक्खा इ वा, दुब्भिक्खा इ वा, कयविक्कया इ वा,
'सुभिक्खाइ व' त्ति सुकाले दुष्काले वा भिक्षुकाणां भिक्षासमृद्धयः दुर्भिक्षास्तूक्तविपरीताः।
(वृ०-प० २००)

४५. सण्णिही इ वा, सण्णिचया इ वा, निही इ वा,
'संनिहि' त्ति घृतगुडादिस्थापनानि 'संनिचय' त्ति धान्यसञ्चयाः 'निहीइ व' त्ति लक्षादिप्रमाणद्रव्यस्थापनानि।
(वृ०-प० २००)

४६. निहाणाइ वा—
'निहाणाइं व' त्ति भूमिगतमहस्रादिसंख्यद्रव्यस्य संचयाः किं विधानि ?
इत्याह—
(वृ०-प० २००)

४७. चिरपोराणाइ वा,
'चिरपोराणाइं' ति चिरप्रतिष्ठितत्वेन पुराणानि चिरपुराणानि।
(वृ०-प० २००)

४८. पहीणसामियाइ वा
'पहीणसामियाइं' ति स्वल्पीभूतस्वामिकानि।
(वृ०-प० २००)

४९. पहीणसेतुयाइ वा,
'पहीणसेउयाइं' ति प्रहीणाः—अल्पीभूताः सेक्तारः—सेचकाः—धनप्रक्षेप्तारो येषां तानि तथा।
(वृ०-प० २००)

५०. पहीणमग्गाइ वा,

५१. पहीणगोत्तागाराइ वा,
'पहीणगोत्तागाराइं' ति प्रहीणं—विरलीभूतमानुषं गोत्रागारं—तत्स्वामिगोत्रगृहं येषां तानि तथा।
(वृ०-प० २००)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५२. उच्छण्णसामियाइं कह्या, धन नां स्वामी जेह।
यथा विच्छेद अत्यंत ही, निःसत्ताक ते लेह॥

५२. उच्छण्णसामियाइ वा,
'उच्छिन्नसामियाइं' ति निःसत्ताकीभूतप्रभूणि।
(वृ०-प० २००)

५३. उच्छण्णसेउयाइं वली, धन ना घालणहार।
ते पिण उच्छेद पाम्या अछै, ते सेवग न रह्या लिगार॥

५३. उच्छण्णसेतुयाइ वा,

५४. उच्छण्णगोत्तागारा कह्या, धन नां स्वामी वेद।
मनुष्य तणा जे गोत्र नां, घर नों थयो विच्छेद॥

५४. उच्छण्णगोत्तागारा इ वा

५५. सिंघोडा नै आकारे स्थान छै, त्रिक चउक चिउं पंथ।
चच्चर ते बहु पंथ नैं, गाडी धन नीं ग्रंथ॥

५५. सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर

५६. वले चतुर्मुख स्थानके, महापंथ में जान।
नगर तणां खाला विषै, जल नीकलवा नैं स्थान॥

५६. चउम्मुह-महापह-पहेसु वा, नगरनिद्धमणेसु वा,
'नगरनिर्द्धमनेषु' नगर-जलनिर्गमनेषु।
(वृ०-प० २००)

५७. वलै मसाण-घर नां विषै, गिरि ऊपर घर जान।
कंदर गुफा घर नैं विषै, शांति-कर्म नों स्थान॥

५८. शैल पाषाणघर ढांकियो, आस्थान मंडप जोय।
तथा वैसवा नां घर विषै, गाड्यो धन अवलोय॥

५७, ५८. सुसाण-गिरि - कन्दर-संति - सेलोवट्ठाण-भवण - गिहेसु संनिक्खित्ताइं चिट्ठंति,
गृहशब्दस्य प्रत्येकं सम्बन्धात् श्मशानगृहं—पितृवनगृहं गिरिगृहं—पर्वतोपरिगृहं कन्दरगृहं—गुहा शांतिगृहं—शांतिकर्मस्थानं, शैलगृहं—पर्वतमुत्कीर्य यत्कृतं उपस्थानगृहं— आस्थानमण्डपः। (वृ०-प० २००)

५९. कुटंब वसिवा नां घर भणी, भवनघर कहिवाय।
इहां स्थानक धन गाडियो, जाणैं वेसमण राय॥

५९. भवनगृहं—कुटुम्बिवसनगृहमिति। (वृ०-प० २००)

६०. तास अजाणपणैं नहीं, अनुमान नीं अपेक्षाय।
प्रत्यक्ष नीं अपेक्षा करी, अणदीठा नहिं ताय॥

६०. न ताइं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो वेसमणस्स महारण्णो अण्णायाइं अदिट्ठाइं

६१. पर वचने द्वारे करी, अणसुणिया नहि कोय।
असमरवै करी नहीं, मन नीं अपेक्षा जोय॥

६१. असुयाइं अमुयाइं

६२. अविज्ञातपणैं नहीं, अवधि तणी अपेक्षाय।
तथा वेसमण जाति नां, तेहनैं छाना नांय॥

६२. अविण्णायाइं तेसिं वा वेसमणकाइयाणं देवाणं।
(श० ३।२६८)

६३. शक्र सुरिन्द्र तणो अछै, महाराय कुबेर नैं सोय।
पुत्र-स्थानक ए देवता, विनयवंत अति होय॥

६३. सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो वेसमणस्स महारण्णो इमे देवा अहावच्चाभिण्णाया होत्था, तं जहा—

६४. पूर्णभद्र नामैं भलो, माणिभद्र महिमान।
सालिभद्र सुखकारियो, सुमनभद्र सुख-स्थान॥

६४. पुण्णभद्दे माणिभद्दे सालिभद्दे सुमणभद्दे

६५. चक्करक्ष चारू घणो, पूर्णरक्ष प्रसिद्ध।
सर्वाण नैं सर्वजश कह्यो, सर्व काम समृद्ध॥

६५. चक्करक्खे पुण्णरक्खे सव्वाणे सव्वजसे सव्वकामे समिद्धे

६६. अमोह देव असंग वलि, शक्र सुरिन्द्र नां हेव।
वेसमण महाराय रै, पुत्र-स्थान ए देव॥

६६. अमोहे असंगे। (श० ३।२६९)

६७. स्थिति वेसमण राय नीं, दोय पल्योपम जान।
पुत्र-स्थानक ते देव नीं, एक पल्योपम मान॥

६७. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वेसमणस्स महारण्णो दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहावच्चाभिण्णायाणं देवाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६८. एहवो महाऋद्धिवान छै, जाव कुबेर महाराय।
सेवं भंते ! सेवं भंते ! कहै, गोयम हरष सवाय॥

६९. अर्थ अंक सैंतीस नों, एकोतरमीं ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' गण गुणमाल॥

तृततीयशते सप्तमोद्देशकार्थः॥३।७॥

६८. एमहिड्ढीए जाव महाणुभागे वेसमणे महाराया।
(श० ३।२७०)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श० ३।२७१)

ढाल : ७२

दूहा

१. सप्तम उद्देशै कही, देव वारता देख।
अष्टम उद्देशा विषै, तेहिज बात विशेख॥

१. देववक्तव्यताप्रतिबद्ध एवाष्टमोद्देशकः।(वृ०-प० २०१)

२. नगर राजगृह नैं विषै, यावत् करता सेव।
बोल्या गोयम गणहरू, अलगो करि अहमेव॥

२. रायगिहे नगरे जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी—

*जिन वाण भली, दूध मांहै जाणैं शाकर मिली।
जिन वाण भली, तीर्थ चिहुं केशर-क्यारी खिली।
जिन वाण भली, च्यार तीर्थ हद रंगरली॥(ध्रुपदं)

३. हे प्रभु ! असुरकुमार नैं जाण, देव किता कहियै अगवाण?
४. अधिपति स्वामीपणैं थइ सोय, जाव किता विचरै सुर जोय?
५. श्री जिन कहै दश देव सोहंत, अधिपतिपणैं यावत् विचरंत॥
६. चमर असुर इंद्र असुर नों राय, सोम जम वरुण वेसमण ताय॥
७. बली वेरोचन-इंद्र विशिष्ट, सोम जम वरुण वेसमण इष्ट[1]॥

३, ४. असुरकुमाराणं भंते ! देवाणं कइ देवा आहेवच्चं जाव विहरंति?
५. गोयमा ! दस देवा आहेवच्चं जाव विहरंति, तं जहा—
६. चमरे असुरिंदे असुरराया, सोमे, जमे, वरुणे, वेसमणे,
७. बली वइरोयणिंदे वइरोयणराया, सोमे, जमे, वेसमणे, वरुणे। (श० ३।२७२)

८. हे प्रभु ! नागकुमार नैं जाण, देव किता कहियै अगवाण?
९. अधिपति स्वामीपणैं थइ सोय, जाव किता विचरै सुर जोय?
१०. श्री जिन कहै दश देव सोहंत, अधिपतिपणैं यावत् विचरंत॥
११. धरण है नागकुमार नों इंद, दक्षिण दिशि नों एह दीपंद॥
१२. कालवाल कोलवाल नीहाल, शेलवाल नै वलि शंखवाल॥

८, ९. नागकुमाराणं भंते ! देवाणं कइ देवा आहेवच्चं जाव विहरंति?
१०. गोयमा ! दस देवा आहेवच्चं जाव विहरंति, तं जहा—
११. धरणे णं नागकुमारिंदे नागकुमारराया,
१२. कालवाले, कोलवाले, सेलवाले, संखवाले,

*लय—बाबा किशनपुरी तो विण मंढिया उजड़ी पड़ी

१. प्रस्तुत पद्य के सामने अंगसुत्ताणि भाग २ का पाठ उद्धृत है, पर प्रस्तुत पद्य के साथ उसका मेल नहीं है। जयाचार्य ने भगवती के आदर्शों के पाठ का अनुवाद किया है। वृत्तिकार ने भी आदर्शगत पाठ की व्याख्या की है। अंगसुत्ताणि का पाठ वृत्तिकार द्वारा पाठान्तर रूप में उल्लिखित है। जयाचार्य ने भी इस पाठान्तर का संकेत किया है। ढा० ७२ गा० ५४-५६ और उसके सामने का वृत्ति-पाठ।

भगवती वृत्ति का पाठान्तर तथा स्थानांग ४/१२२ का पाठ परस्पर संवादी है। इस दृष्टि से भगवती का मूल पाठ वही स्वीकृत है और प्रस्तुत प्रकरण में वही पाठ उद्धृत किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. भूतानंद नागकुमार नों इंद, उत्तर दिशि नों ए ओपंद ।।
१४. कालवाल कोलवाल सेलवाल, संखवाल ए चिउं लोकपाल ।।
१५. जिम ए नागकुमार नीं वात, आगल इम कहियै अवदात ।।

१६. सुवर्णकुमार रै इंद्र है दोय, दक्षिण वेणुदेव सुहोय ।।
१७. उत्तर वेणुदालि निहाल, इक-इक नै चिउं-चिउं लोकपाल ।।
१८. चित्र विचित्र चित्रपक्ष जोय, विचित्रपक्ष चिउं ए होय ।।
१९. विज्जुकुमार नां इंद बे शोभंत, दक्षिण दिशि नों छै हरिकंत ।।
२०. उत्तर दिशि नों हरिसह न्हाल, इक-इक नै चिउं-चिउं लोकपाल ।।
२१. प्रभ सुप्रभ प्रभकंत पेख, सुप्रभकंत कह्यु सुविशेख ।।
२२. अग्निकुमार नां इंद्र वे जाण, अग्निसीह अग्निमाणव पिछाण ।।
२३. लोकपाल तेउ नैं तेहसीह, तेउकंत तेउप्रभ अबीह ।।
२४. द्वीपकुमार ना इंद्र वे दिट्ठ, दक्षिणपूर्ण उत्तर विशिट्ठ ।।
२५. लोकपाल रूय नैं रूयंस, रूयकंत रूयप्रभ सुवंस ।।
२६. उदधिकुमार ना वे इंद लभ, जलकंत दक्षिण उत्तर जलप्रभ ।।
२७. लोकपाल जल जलरुय जाण, जलकंत नै जलप्रभ वखाण ।।
२८. दिशाकुमार नै इंद्र वे सुजन्न, अमियगइ नै अमियवाहन्न ।।
२९. लोकपाल तुरियगइ खिप्रगत्त, सीहगति सीहविक्रम उच्चत्त ।।
३०. वाउकुमार ना इंद छै दोय, वेलंव नै पभंजण जोय ।।
३१. लोकपाल काल नैं कालमेह, महाकाल अंजन रिट्ठ जेह ।।
३२. 'पंच नाम आख्या इह ठाम, ते बीजा रा दीसै वे नाम ।।
३३. चोथै ठाणै वाउ-दिगवाल, तिहां कालमेघ न कह्यो ते न्हाल ।।
३४. काल अनै महाकालज ताम, अंजन रिट्ठ कह्या चिहुं नाम' ।।
(ज० स०)
३५. थणियकुमार ना इंद्र बे पोष, दक्षिण घोष उत्तर महाघोष ।।
३६. लोकपाल आवत्त वेयावत्त, नंद्यावर्त्त महानंद्यावर्त्त ।।
३७. दस-दस ए सहु स्वामी देव, जेम असुर तिम कहिवो भेव ।।

वा०—सो का चि प्प ते रू ज तु का आ ए दश अक्षरे करी भवनपति नां दक्षिण दिशि नां इंद्र नां प्रथम लोकपाल नां नाम तेहनों प्रथम-प्रथम अक्षर ।

३८. सो कहितां सोम नामैं लोकपाल, असुर दक्षिण दिशि चमर नुं न्हाल ।।
३९. का कहितां कालवाल लोकपाल, नागकुमार इंद धरण नुं भाल ।।
४०. चि कहितां चित्र लोकपाल जोय, सुवर्ण वेणुदेव नुं होय ।।
४१. प्प कहितां प्रभ लोकपाल जेह, विजुकुमार हरिकंत नुं एह ।।
४२. ते कहितां तेउ लोकपाल देख, अग्निकुमार अग्निसीह नुं पेख ।।
४३. रू कहितां रूय लोकपाल नुं नाम द्वीपकुमार पूर्ण नुं ताम ।।
४४. ज कहितां जल नामैं लोकपाल, उदधिकुमार जलकंत नुं न्हाल ।।
४५. तु कहितां तुरियगइ लोकपाल दिशाकुमार अमितगति नुं न्हाल ।।

१३. भूयाणंदे नागकुमारिंदे नागकुमारराया,
१४. कालवाले, कोलवाले, संखवाले, सेलवाले ।(श ३।२७३)
१५. जहा नागकुमारिंदाणं एताए वत्तव्वयाए नीयं एवं इमाणं नेयव्वं—
१६. १७. सुवण्णकुमाराणं—वेणुदेवे, वेणुदाली,
१८. चित्ते, विचित्ते, चित्तपक्खे, विचित्तपक्खे ।
१९, २०. विज्जुकुमाराणं—हरिकंत-हरिस्सह-
२१. पभ-सुप्पभ-पभकंत-सुप्पभकंता ।
२२. अग्गिकुमाराणं—अग्गिसिह-अग्गिमाणव-
२३. तेउ-तेउसिह-तेउकंत-तेउप्पभा ।
२४. दीवकुमाराणं—पुण्ण-विसिट्ठ-
२५. रूय-रूयंस-रूयकंत-रूयप्पभा ।
२६. उदहीकुमाराणं—जलकंत-जलप्पभ-
२७. जल-जलरूय-जलकंत-जलप्पभा ।
२८. दिसाकुमाराणं—अमितगति-अमितवाहण-
२९. तुरियगति-खिप्पगति-सीहगति-सीहविक्कमगती ।
३०. वाउकुमाराणं—वेलंब-पभंजण-
३१. काल-महाकाल-अंजण-रिट्ठा ।
३५. थणियकुमाराणं—घोस-महाघोस-
३६. आवत्त-वियावत्त-नंदियावत्त-महानंदियवत्ता ।
३७. एवं भाणियव्वं जहा असुरकुमारा । (श० ३।२७४)

३८-४३. सोमे य महाकाले चित्त प्पभ तेउ तह रुए चेव ।
(वृ०-प० २०१)
४४-४७. जल तह तुरियगई य काले आउत्त पढमा उ ।।
(वृ०-प० २०१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६. का कहितां काल नामैं लोकपाल, वाउकुमार वेलंब नुं भाल ।।
४७. आ कहितां आवर्त्त ए लोकपाल, थणियकुमार घोष नुं न्हाल ।।
४८. दक्षिण दिशि ना ए दश इंद, लोकपाल धुर अक्षर प्रबंध ।।

४८. अनेनाक्षरदशकेन दक्षिणभवनपतीन्द्राणां प्रथमलोकपालनामानि सूचितानि । (वृ०-प० २०१)

४९. वाचनांतर विषै कहाय, ए दश नामा नीं गाथा ताय ।।
५०. दश भवनपति ना इंद्र है वीस, लोकपाल तसुं असी जगीस ।।
५१. वृत्तिकार कही इम वाय, पुस्तकांतर आगल कहाय ।।
५२. इक-इक इंद्र तणैं अधिकार, लोकपाल च्यार च्यार उदार ।।
५३. चमरादिक दश इंद्र नां देख, लोकपाल दक्षिण नां पेख ।।
५४. लोकपाल चिउं चिउं नां ताय, नाम दक्षिण दिशि तेह कहाय ।।
५५. उत्तर नां लोकपाल नां नाम, तीजा नैं ठामैं चोथो ताम ।।
५६. चोथा नैं ठामैं तीजो नाम, एह विशेष कह्यु अभिराम ।।
५७. पिसाच कुमारादि पृच्छेव, जिन कहै स्वामीपणैं वे देव ।।

४९. वाचनान्तरे त्वेतान्येव गाथायाम् । (वृ०-प० २०१)

५१. इह च पुस्तकान्तरेऽयमर्थो दृश्यते— (वृ०-प० २०१)

५४-५६. दाक्षिणात्येषु लोकपालेषु प्रतिसूत्रं यौ तृतीयचतुर्थौ तावौदीच्येषु चतुर्थतृतीयाविति । (वृ०-प० २०१)

५७. पिसायकुमाराणं भंते ! देवाणं कइ देवा आहेवच्चं जाव विहरंति ?
गोयमा ! दो देवा आहेवच्चं जाव विहरंति, तं जहा—

५८. काल अनैं महाकाल सुजाण, पिसाच नां ए इंद्र पिछाण ।।
५९. भूत-निकाय नां छै इंद दोय, सरूप नैं प्रतिरूप सुजोय ।।
६०. जक्ष नैं वे इंद्र पूर्णभद्र, अमर देवपति फुन माणभद्र ।।
६१. राखस नैं बे इंद्र विशेष, भीम अनैं महाभीम संपेख ।।

५८-६१. काले य महाकाले, सुरूव-पडिरूव-पुण्णभद्दे य ।
अमरवई माणिभद्दे, भीमे य तहा महाभीमे ।।
(श० ३।२७५ संगहणी-गाहा)

६२. किंनर-निकाय नां बे इंद्र सार, किंनर नैं किंपुरुष उदार ।।
६३. किंपुरुष-निकाय नां इंद्र दोय, सत्यपुरुष महापुरुष सुजोय ।।
६४. महोरग-निकाय नां बे इंद, अतिकाय महाकाय अमंद ।।
६५. गंधर्व-निकाय नां वे इंद्र जाण, गीतरति गीतजश पिछाण ।।

६२-६५. किन्नर-किंपुरिसे खलु,
सप्पुरिसे खलु तहा महापुरिसे ।
अइकाय - महाकाए,
गीयरई चेव गीयजसे ।।
(श० ३।२७५ संगहणी-गाहा)

६६. दक्षिण उत्तर नां ए कथिद, वाणव्यंतर ना सोलै इंद ।।

६६. एते वाणमंतराणं देवाणं । (श० ३।२७५)

६७. अणपन्नी पणपन्नी आद, छोटी ऋद्धि अठ अर्थ संवाद ।।
६८. पन्नवणा दूजा पद रै मांय, अणपन्नी प्रमुख अठ ताय ।।
६९. इक-इक नां बे-बे इंद दीस, एवं व्यंतर नां बत्तीस ।।
७०. जोतिषी नां अधिपति सुर दोय, चंद्र अनैं सूर्य अवलोय ।।

७०. जोइसियाणं देवाणं दो देवा आहेवच्चं जाव विहरंति तं जहा—चंदे य, सूरे य । (श० ३।२७६)

७१. सुधर्म ईशाण विषै भगवंत, कै अधिपति यावत् विचरंत ?

७१. सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु कइ देवा आहेवच्चं जाव विहरंति ?

७२. श्री जिन इम भाखै दश देव, यावत् विचरै छै स्वयमेव ।।
७३. शक्र सुरेंद्र सुरां नों राय, सोम जम वरुण वेसमण ताय ।।
७४. बलि ईशाण सुरिंद्र पिछाण, सोम जम वरुण वेसमण जाण ।।
७५. सुधर्म ईशाण विषै कही एह, सगला कल्प विषै इम लेह ।।

७२. गोयमा ! दस देवा आहेवच्चं जाव विहरंति तं जहा—
७३. सक्के देविंदे देवराया, सोमे, जमे, वरुणे, वेसमणे ।
७४. ईसाणे देविंदे देवराया, सोमे, जमे, वेसमणे, वरुणे ।
७५. एसा वत्तव्वया सव्वेसु वि कप्पेसु एए चेव भाणियव्वा । जे य इंदा ते य भाणियव्वा । (श० ३।२७७)
सौधर्मेशानोक्ता वक्तव्यता सर्वेष्वपि कल्पेषु इन्द्रनिवासभूतेषु भणितव्या । (वृ०-प० २०१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७६. वृत्ति विषै कह्यु सनतकुमार, प्रमुख युगम सुरलोके सार ।।
७७. पूर्व इंद्र तणी अपेक्षाय, उत्तर इंद्र तणां दिगराय ।।
७८. दक्षिण उत्तर नां लोकपाल, तीजा नै ठामै चउथो न्हाल ।।
७९. चोथा नैं ठामैं तीजो ताय, बहुश्रुत तास विचारै न्याय ।।
८०. च्यार कल्प छेहला इंद दोय, विमानिक नां इम दश होय ।।

८१. सेवं भंते ! सेवं भंत !, इम भाखै गोतम धर खंत ।।
८२. पुस्तकांतर टीका मांय, तेहनों प्रथम बतायो न्याय ।।
८३. वलि सूत्र नों हेतू जेह, सांभलज्यो भवियण ! धर नेह ।।
८४. ठाणांग रै चउथै ठाण, प्रथम उद्देशै कही इम वाण ।।
८५. चमर असुरिन्द्र नां चिउं लोकपाल, सोम जम वरुण वेसमण न्हाल ।।
८६. एवं बली नैं पिण है च्यार, सोम जम वेसमण वरुण सार ।।
८७. नागिंद्र धरण नैं चिउं लोकपाल, कालवाल नै दूजो कोलवाल ।।
८८. सेलवाल चोथो संखवाल, दक्षिण दिशि नां एह निहाल ।।
८९. नागिंद्र भूतानंद नै च्यार, कालवाल कोलवाल उदार ।।
९०. तीजो शंखवाल चउथो सेलवाल, उत्तर दिशि नां ए चिउं भाल ।।
९१. सुवन्न-इंद्र वेणुदेव नैं च्यार, चित्र अनै वलि विचित्र उदार ।।
९२. चित्रपक्ष चउथो विचित्रपक्ष, दक्षिण दिशि नां एह सुदक्ष ।।
९३. सुवन्न-इंद्र वेणुदालि नैं च्यार, चित्र अनै विचित्र प्रकार ।।
९४. विचित्रपक्ष चउथो चित्रपक्ष, उत्तर दिशि नां एह प्रत्यक्ष ।।
९५. विज्जु-इंद्र हरिकंत नैं च्यार, प्रभ अनैं सुप्रभ सुधार ।।
९६. प्रभकंत नैं सुप्रभकंत, दक्षिण दिशि नां ए द्युतिमंत ।।
९७. विज्जु-इंद्र हरिसह नैं च्यार, प्रभ अनैं सुप्रभ प्रकार ।।
९८. सुप्रभकंत अनैं प्रभकंत, दिशि उत्तर नां ए दीपंत ।।
९९. अग्नि-इंद्र अग्निसीह नैं च्यार, तेउ अनै तेउसीह विचार ।।
१००. तेउकंत चउथो तेउप्रभ, दक्षिण दिशि नां एह सुलभ ।।
१०१. अग्नि-इंद्र अग्निमाणव च्यार, तेउ अनै तेउसीह उदार ।।
१०२. तेउप्रभ चउथो तेउकंत, उत्तर दिशि नां ए पुन्यवंत ।।
१०३. द्वीप-इंद्र पूर्ण नैं च्यार, रूय अनैं रूयंस उदार ।।
१०४. रूयकंत चउथो रूयप्रभ, दक्षिण दिशि नां एह सुलभ ।।
१०५ द्वीप-इंद्र विशिष्ट नैं च्यार, रूय अनै रूयंस प्रकार ।।
१०६. रूयप्रभ चउथो रूयकंत, उत्तर दिशि नां ए ओपंत ।।
१०७. उदधि-इंद्र जलकंत नैं च्यार, जल नैं वलि जलरूय प्रकार ।।
१०८. जलकंत नैं चउथो जलप्रभ, दक्षिण दिशि नां एह सुलभ ।।
१०९. उदधि-इंद्र जलप्रभ नैं च्यार, जल नैं वलि जलरूप उदार ।।
११०. जलप्रभ नैं चउथो जलकंत, दक्षिण दिशि नां ए पुन्यवंत ।।
१११. दिशा-इंद्र अमियगइ च्यार, तुरियगति खिप्रगति उदार ।।

७६. सनत्कुमारादीन्द्रयुग्मेषु । (वृ०-प० २०१)

७७-७९. पूर्वेन्द्रापेक्षयोत्तरेन्द्रसम्बन्धिनां लोकपालानां तृतीयचतुर्थयोर्व्यत्ययो वाच्य इत्यर्थः । (वृ०-प० २०१)

८०. शक्रादयो दशेन्द्रा वाच्याः, अन्तिमे देवलोकचतुष्टये इन्द्रद्वयभावादिति । (वृ०-प० २०१)

८१. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ३।२७८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११२. सीहगति नैं सीहविक्रमगति, दक्षिण दिशि नां एह उप्पति ।।
११३. दिशा-इंद्र असियवाहन च्यार, तुरियगति खिप्रगति सुधार ।।
११४. सीह विक्रमगति नैं सीहगति, उत्तर दिशि ना एह उन्नति ।।
११५. वाउ-इंद्र वेलंब नैं च्यार, काल अनै महाकाल उदार ।।
११६. अंजन नैं चउथो रिठ जाण, दक्षिण दिशि ना एह पिछाण ।।
११७. वाउ-इंद्र प्रभंजण नैं च्यार, काल अनै महाकाल विचार ।।
११८. रिष्ट चोथो अंजन कहिवाय, उत्तर दिशि ना ए सुखदाय ।।
११९. थणित-इंद्र घोष नैं च्यार, आवर्त्त वेयावर्त्त विचार ।।
१२०. नंदियावर्त्त महानंदियावर्त्त, दक्षिण दिशि नां एह उचत्त ।।
१२१. थणित-इंद्र महाघोष नैं च्यार, आवर्त्त वेयावर्त्त उदार ।।
१२२. महानंदियावर्त्त नंदियावर्त्त, उत्तर दिशि नां एह पवित्त ।।
१२३. शक्र-सुरिन्द्रनैं चिउं लोकपाल, सोम जम वरुण वेसमण न्हाल ।।
१२४. ईशाण-इंद्र नैं चिउं लोकपाल, सोम जम वेसमण वरुण भाल ।।
१२५. इम इक-इक जे इंद्र अंतर जाण, जाव अच्यू तांई पहिछाण ।।
१२६. शक्र नां लोकपाल नुं नाम, तिमहिज तीजै पंचम ताम ।।
१२७. सप्तम दशम इंद्र लोकपाल, एक सरीखूं नाम निहाल ।।
१२८. ईशाणेंद्र लोकपाल नुं नाम, चोथे छठै अष्टम नुं ताम ।।
१२९. अच्युत तणां लोकपाल, एहना नाम सरीखा न्हाल ।।
१३०. ठाणांगे ए आखी वाय, पुस्तकांतरे भगवती मांय ।।
१३१. बिहुं नो एक सरीखो जेह, बहुश्रुति न्याय विचारै तेह ।।
१३२. अथवा चउथै शतक निहाल, ईशाणेंद्र नां जे लोकपाल ।।
१३३. सोम जम वेसमण वरुण ताय, तसुं स्थिति गाथा[1] तिहां कहिवाय ।।
१३४. इहां पिण दूजै कल्पै ताम, तीजा लोकपाल नुं नाम ।।
१३५. वेसमण कह्यो छै ताय, वरुण नाम चोथो कहिवाय ।।
१३६. स्थिति पिण वेसमण थी सुविशेख, वरुण तणी अधिकी ते देख ।।
१३७. तिण सूं पुस्तकांतर मांय, बहुश्रुत तास विचारै न्याय ।।
१३८. पुस्तक ते बहु परत मझार, ए अंतर देख्यो वृत्तिकार ।।
१३९. पुस्तक-अंतर आख्यूं तास, मेलै बहुश्रुत न्याय विमास ।।
१४०. अंक अडतीस तणुं अवधार, आख्यो अर्थ रूप अधिकार ।।

तृतीयशते अष्टमोद्देशकार्थः ।।३।८।।

दूहा

१४१. अवधि छतै पिण सुर तणें, छै इंद्रिय उपयोग ।
ते माटै इंद्रिय-विषय, नवम उद्देश प्रयोग ।।

१४१. देवानां चावधिज्ञानसद्भावेऽपीन्द्रियोपयोगोऽप्यस्तीत्यत इन्द्रियविषयं निरूपयन्नवमोद्देशकमाह—
(वृ०-प० २०१)

१. आदि दुय तिभागूणा पलिया धणयस्स होंति दो चेव ।
दो सतिभागा वरुणे, पलियमहावच्च देवाणं ।।
(श० ४।५ संगहणी-गाहा)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४२. नगर राजगृह जाव इम, बोल्या गोतम स्वाम।
कतिविध प्रभु ! इंद्रिय-विषय, पुद्गल नुं परिणाम ।।

१४३. श्री जिन भाखै पंच विध, इंद्रिय - विषय कहेह।
श्रोत इंद्रिय नीं विषय धुर, जिम जीवाभिगमेह ।।

१४४. जोतिष उद्देशक अरथ, सर्व जाणवो जेह।
आख्यो तीजा शतक नों, नवम उद्देशक एह ।।

तृतीयशते नवमोद्देशकार्थः ।।३।९।।

१४५. इंद्रिय-विषय कही इहां, विषयवंत है देव।
देव तणों अधिकार हिव, सांभलियै तसुं भेव ।।

१४६. नगर राजगृह जाव इम, बोल्या गोयम स्वाम।
चमर असुर-इंद्र नैं प्रभु ! किती परषदा ताम ?

१४७. जिन भाखै त्रिण परिषदा, समिया चंडा जाय।
इम अनुक्रम यावत् अच्युत- कल्प लगै कहिवाय ।।

१४८. *प्रकृति स्थिर उत्तमपणैं, वर वच करी निज स्वाम नैं।
उपसमावै कोप समिता, उद्धतवंत नहीं मनैं ।।

१४९. तथाविध मोटापणूं नहि, कोप थोडूं जेहनूं।
एह दूजी परिषदा छै, नाम चंडा तेहनूं ।।

१५०. स्वभाव कर मोटापणूं नहिं, कोपादिक नां स्थान ए।
नाम जाया तास कहियै, अधिक अवगुणवान ए ।।

१५१. एह क्रम अभ्यंतरा, मध्यमा बाह्या भावियै।
अभ्यंतर महर्द्धिक ते माटै, स्वाम तेडचा आवियै ।।

१५२. अभ्यंतरा जे परिषदा नां, सुर सहस्र चउवीस ही।
अठवीस सहस्रज मध्यमा नां, बाह्य सहस्र बतीस ही ।।

१५३. परिषदाभ्यंतर सुरी, साढा तीन सय पहिछाणियै।
सय तीन मध्य, बाह्य अमरी अढी सय बलि आणियै ।।

१५४. परिषदाभ्यंतर सुर स्थिति वर, अढी पल्योपम तणीं।
स्थिति मध्यमा सुर दोय पल नी, दोढ पल्य बाहिर भणीं ।।

१५५. परिषदाभ्यंतर स्थिति सुरी नीं, दोढ पल्योपम कही।
इक पल्य आखी मध्यमा नीं, अर्ध पल्यज बाह्य ही ।।

१५६. कार्य ऊपनां तास तेडै, जद समीपै जाइयं।
स्वाम तेहनैं कार्य पूछी, करै कुडव वधावियं ।।

*लय—पूज मोटा भांजै टोटा

१४२. रायगिहे जाव एवं वयासी—कइविहे णं भंते ! इंदियविसए पण्णत्ते ?

१४३, १४४. गोयमा ! पंचविहे इंदियविसए पण्णत्ते, तं जहा—सोतिंदियविसए चक्खिंदियविसए घाणिंदियविसए, रसिंदियविसए फासिंदियविसए। जीवाभिगमे जोइसियउद्देसओ नेयव्वो अपरिसेसो।
(श० ३।२७९)

१४५. प्रागिन्द्रियाण्युक्तानि तद्वन्तश्च देवा इति देववक्तव्यताप्रतिबद्धो दशम उद्देशकः। (वृ०-प० २०२)

१४६. रायगिहे जाव एवं वयासी—चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुररण्णो कइ परिसाओ पण्णत्ताओ ?

१४७. गोयमा ! तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—समिया, चंडा, जाया। एवं जहाणुपुव्वीए जाव अच्चुओ कप्पो। (श० ३।२८०)

१४८. 'समिय' त्ति समिका उत्तमत्वेन स्थिरप्रकृतितया समवती, स्वप्रभोर्वा कोपोत्सुक्यादिभावान् शमयत्युपादेयवचनतयेति शमिका शमिता वा अनुद्धता।
(वृ०-प० २०२)

१४९. 'चंड' त्ति तथाविधमहत्त्वाभावेनेषत्कोपादिभावाच्चंडा। (वृ०-प० २०२)

१५०. 'जाय' त्ति प्रकृतिमहत्त्ववर्जितत्वेनास्थानकोपादीनां जातत्वाज्जाता। (वृ०-प० २०२)

१५१. एषा च क्रमेणाभ्यन्तरा मध्यमा बाह्या चेति, तत्राभ्यन्तरा समुत्पन्नप्रयोजनेन प्रभुणा गौरवार्हत्वादाकारितैव पार्श्वे समागच्छति। (वृ०-प० २०२)

१५२. तत्राद्यायां चतुर्विंशतिर्देवानां सहस्राणि द्वितीयायामष्टाविंशतिः तृतीयायां द्वात्रिंशदिति।
(वृ०-प० २०२)

१५३. तथा देवीशतानि क्रमेणाध्युष्टानि त्रीणि सार्द्धे च द्वे इति।
(वृ०-प० २०२)

१५४. तथा तद्देवानामायुः क्रमेणार्द्धतृतीयानि पल्योपमानि द्वे सार्द्धे चेति। (वृ०-प० २०२)

१५५. देवीनां तु सार्द्धमेकं तदर्द्धं चेति। (वृ०-प० २०२)

१५६. तां चासौ अर्थपदं पृच्छति। (वृ०-प० २०२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५७. सुर जेह मध्यम परिषदा नां, तेडिया पिण जाइयै ।
अणतेडिया पिण जाय छै, ए अल्प गौरव पाइयै ।।

१५८. सुर अभ्यंतर परिषदा नां, मध्यमा नां सुर भणी ।
कार्य जेह भलाविय, शिर धरै आज्ञा तेह तणी ।।

१५९. बाह्य परषद तणां सुर, अणतेडियाइज आवियै ।
मध्यमा नां जे कहै ते, कार्य चित्त वसावियै ।।

१६०. बलि प्रमुख अच्युत-इंद्र, परषद स्थिति संख्या छै जिका ।
सूत्र जीवाभिगम मांहै, वक्तव्यता कहियै तिका ।।

१५७. मध्यमा तूभयथाऽप्यागच्छति अल्पतरगौरवविषयत्वात् । (वृ०-प० २०२)

१५८. अभ्यन्तरया चादिष्टमर्थपदं तया सह प्रबध्नाति—ग्रन्थिबन्धं करोतीत्यर्थः । (वृ०-प० २०२)

१५९. बाह्या त्वनाकारितैवागच्छति अल्पतमगौरवविषयत्वात् तस्याश्चार्थपदं वर्णयत्येव । (वृ०-प० २०२)

१६०. एवमच्युतान्तानामिन्द्राणां प्रत्येकं तिस्रः पर्षदो भवन्ति, नामतो देवादिप्रमाणतः स्थितिमानतश्च क्वचित् किञ्चिद् भेदेन भेदवत्यस्ताश्च जीवाभिगमादवसेयाः । (वृ०-प० २०२)

१६१. *सेवं भंते ! सेवं भंते ! एम, पभणै गोयम धर बहु प्रेम ।।

१६१. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ३।२८१)

१६२. तृतीय शतक नों दशम उद्देश, आख्यो तृतीय शतक सुविशेष ।।

१६३. ढाल बहोत्तरमीं सुविशाल, आखी सुखकर अधिक रसाल ।।

१६४. भिक्षु भारीमाल ऋषिराय पसाय, 'जय-जश' सुख संपति अधिकाय ।।

गीतक-छंद

१. कह्यु अभयदेवे तृतिय शत नीं वृत्ति नीं रचना करी ।
वारू पुराणी वृत्ति प्रति आश्रयी म्हैं ए विधि वरी ।।
तेहिज वृत्ति टबो सुदेखी सुख समझवा काजही ।
सद्गुरु प्रसादे प्रवर जोडज रची सखर समाज ही ।।

२. नर शक्तिवंत छतोपि यान सुखाभिलाष करी भजै ।
आश्चर्य नांहि अशक्त नर सुख अर्थ यान प्रतै सजै ।।
दृष्टांत ए वृत्तिकार दीधूं पुराणी वृत्ति वही ।
आश्रयी म्हैं ए वृत्ति कीधी इम तिणै आख्यू सही ।।

तृतीयशते दशमोद्देशकार्थः ।।३।१०।।

१, २. श्री पंचमांगस्य शतं तृतीयं,
व्याख्यातमाश्रित्य पुराणवृत्तिम् ।
शक्तोऽपि गन्तुं भजते हि यानं,
पान्थः सुखार्थं किमु यो न शक्तः ।।
(वृ०-प० २०२)

*लय—बाबा किशनपुरी तो विण मंढिया उजडी पडी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ शतक

ढाल : ७३

दूहा

१. तीजा शतक विषै कह्यो, प्रायें सुर अधिकार।
ते भणी बहुलपणें करी, बलि तेहिज सुविचार॥

१. तृतीयशते प्रायेण देवाधिकार उक्तोऽतस्तदधिकारवदेव चतुर्थं शतं। (वृ०-प० २०३)

२. च्यार उद्देश विमान नां, राजधानी नां च्यार।
नेरइया नें लेस्या तणां, चउथ शते दश सार॥

२. चत्तारि विमाणेहिं, चत्तारि य होंति रायहाणीहिं।
नेरइए लेस्साहि य, दस उद्देसा चउत्थसए॥
(श० ४ संगहणी-गाहा)

३. नगर राजगृह नें विषै, जावत् गोतम स्वाम।
वे कर जोडी वीर नें, इम बोल्या गुणधाम॥

३. रायगिहे नगरे जाव एवं वयासी—

*श्री जिन-वयण-रयण अमृत समा रे। (ध्रुपदं)

४. ईशाण-सुर-इंद सुरराजा तणें रे, हे प्रभु ! किता कह्या दिग्पाल रे ?
जिन कहै लोकपाल तसुं च्यार छै रे, सोम जम कुवेर वरुण विशाल रे॥

४. ईसाणस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो कइ लोगपाला पण्णत्ता ?
गोयमा ! चत्तारि लोगपाला पण्णत्ता, तं जहा—सोमे, जमे, वेसमणे, वरुणे। (श० ४।१)

५. हे प्रभु ! लोकपाल यां चिउं तणें, कितला आख्या छै पवर विमान।
श्री जिन भाखै च्यार विमाण छै, सुमन सर्वतोभद्र पिछान॥

५. एएसि णं भंते ! लोगपालाणं कइ विमाणा पण्णत्ता ?
गोयमा ! चत्तारि विमाणा पण्णत्ता, तं जहा—सुमणे, सव्वओभद्दे,

६. वल्गु सुवल्गु ए च्यारूं कह्या, पूछै बलि गोयम सीस सुजान।
किहां प्रभु ! ईशाण सुरराजा तणां, सोम महानृप नें सुमन विमान ?

६. वग्गू, सुवग्गू। (श० ४।२)
कहि णं भंते ! ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो सुमणे नामं महाविमाणे पण्णत्ते ?

७. श्री जिन भाखै जंबूद्वीप नां, मेरु थी उत्तर दिशि रै मांय।
रत्नप्रभा ए पृथ्वी नें विषै, जाव ईशाणकल्प में ताय॥

७. गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए जाव ईसाणे नामं कप्पे पण्णत्ते।

८. तिहां यावत् अवतंसक पंच विमान छै, अंक-अवतंसक फलिहवडेंस।
रत्न बलि जातरूप-अवतंसकै, विच में ईशाण नाम अवतंस॥

८. तत्थ णं जाव पंच वडेंसया पण्णत्ता, तं जहा—अंक-वडेंसए, फलिहवडेंसए, रयणवडेंसए, जायरूववडेंसए, मज्झे ईसाणवडेंसए। (श० ४।३)

९. ईशाण-अवतंसक महाविमान नें, पूर्व दिशि तिरछो पहिछाण।
असंख जोजन नां सहस्र अतिक्रमी, तिहां सोम महानृप नुं सुमन विमाण॥

९. तस्स णं ईसाणवडेंसयस्स महाविमाणस्स पुरत्थिमे णं तिरियमसंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं वीईवइत्ता, एत्थ णं ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो सुमणे नामं महाविमाणे पण्णत्ते।

*लय—धिन-धिन संत मुनीश्वर मोटका रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. साढा द्वादश लख योजन नुं कह्युं, तीजे शतके जिम शक्र विचार।
तेम ईशाण इंद्र नुं जाणवूं, जाव अच्चणिया सर्व निहार॥

११. सिद्धायतन जिन-प्रतिमादिक अर्चिवूं, अभिनव उत्पन्न सोम करेह।
राज बैसतां इह विध साचवै, संसार नां मंगलीक हेते जेह॥

१२. च्यारूंई लोकपाल छै तेहनां, विमाण-विमाण विषै उद्देश।
शक्र नां लोकपाल तेहनी परै, विमाण नां चिहुं उद्देश कहेश॥

१३. णवरं ए स्थिति विषै नानापणूं, सोम जम नों आयू पहिछाण।
एक पल्योपम नें बलि ऊपरै, भाग तीजो ऊणो पल्य जाण॥

१४. धनिंद नीं दोय पल्य स्थिति कही, वरुण नीं बे पल्य तीजो भाग।
पुत्र-स्थानक सुर नीं स्थिति पल्य तणी,ए च्यारूं उद्देशा कह्या सुभाग॥

चतुर्थशते प्रथमचतुर्णामुद्देशकानामर्थः॥४।१-४॥

१५. च्यार उद्देशा रजधानी विषै, यावत् एहवो महर्द्धिक सुविशेष।
जावत् वरुण नामैं महाराय छै, ए चउथा शतक नां आठ उद्देश॥

चतुर्थशते पंचमात्प्रभृति-अष्टमान्तोद्देशकार्थः॥४।५-८॥

दूहा

१६. कही देव - वक्तव्यता, तसु वैक्रिय तनु जाण।
ते साधर्म्य थकी हिवै, नरक प्रश्न पहिछाण॥

१७. *हे प्रभु! नेरइयो नरके ऊपजै, अनेरियो नरक विषै उपजंत?
जिन कहै नेरइयो नरके ऊपजै, अनेरइयो नरक विषै नहिं जंत॥

१८. †नरक आयू उदय आयो, प्रथम समय पिछाणियै।
तसुं वेदवा नुं काल ऋजुसूत्र - नये नेरिय जाणियै॥

१९. जिम बलै अग्नि पलाल न बलै, वचन ऋजुसूत्र नय इसुं।
नरक-उत्पत्ति-समय इम ए, नेरियो कहियै तसुं॥

२०. *पन्नवणा सतरम पद लेस्या तणों, तीजै उद्देशै भाख्यूं ताय।
किंहाइक द्वितीय उद्देश नों पाठ छै, वृत्ति विषै ते अपपाठ कहाय॥

२१. जावत् प्रभु! कितला ज्ञान विषै हुवै,कृष्णादिक लेस्या हिव जिन भास।
लेस्या षट बे त्रिण च्यारूं ज्ञान में, त्यां लग अंक ए गुणपच्चास॥

चतुर्थशते नवमोद्देशकार्थः॥४।९॥

दूहा

२२. लेस्या नां अधिकार थी, ते लेस्यावंत नुं जाण।
दशमा उद्देशक तणुं, आदि - सूत्र पहिछाण॥

१०. अद्धतेरसजोयणसयसहस्साइं जहा सक्कस्स वत्तव्वया तहियसए तहा ईसाणस्स वि जाव अच्चणिया समत्ता। (श० ४।४)

११. सिद्धायतने जिनप्रतिमार्चनमभिनवोत्पन्नस्य सोमाख्यलोकपालस्येति। (वृ०-प० २०३)

१२. चउण्ह वि लोगपालाणं विमाणे-विमाणे उद्देसओ, चउसु वि विमाणेसु चत्तारि उद्देसा अपरिसेसा,

१३, १४. नवरं—ठिईए नाणत्तं—
आदि दुय तिभागूणा, पलिया धणयस्स होंति दो चेव।
दो सतिभागा वरुणे, पलियमहावच्च देवाणं॥
(श० ४।५ संगहणी-गाहा)

१५. रायहाणीसु वि चत्तारि उद्देसा भाणियव्वा जाव एमहिड्ढीए जाव वरुणे महाराया। (श० ४।६)

१६. अनन्तरं देववक्तव्यतोक्ताऽथ वैक्रियशरीरसाधर्म्यान्नारकवक्तव्यताप्रतिबद्धो नवमोद्देशक उच्यते। (वृ०-प० २०४)

१७. नेरइए णं भंते! नेरइएसु उववज्जइ? अनेरइए नेरइएसु उववज्जइ?

१८. यस्मान्नारकादिभवोपग्राहकमायुरेवातो नारकाद्यायुःप्रथमसमयसंवेदनकाल एव नारकादिव्यपदेशो भवति ऋजुसूत्रनयदर्शनेन। (वृ०-प० २०५)

१९. पलालं न दहत्यग्निः। (वृ०-प० २०५)

२०. पण्णवणाए लेस्सापए तइओ उद्देसओ भाणियव्वो क्वचिद् द्वितीय इति दृश्यते स चापपाठ इति। (वृ०-प० २०४, २०५)

२१. जाव नाणाइं। (श० ४।७)
'जाव नाणाइं' ति, अयमुद्देशको ज्ञानाधिकारावसानोऽध्येतव्यः, स चायम्—कण्हलेस्से णं भंते! जीवे कयरेसु णाणेसु होज्जा? गोयमा! दोसु वा तिसु वा चउसु वा णाणेसु होज्जा। (वृ०-प० २०५)

२२. लेस्याधिकारात्तद्वत एव दशमोद्देशकस्येदमादिसूत्रं— (वृ०-प० २०५)

*लय—धिन-धिन संत मुनीश्वर मोटका रे।
†लय—पूज मोटा भांजै टोटका रे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. *से कहितां ते णूणं निश्चे करी, हे भगवंत ! लेस्या कृष्ण विद्रूप ।
नील-लेस्या प्रतै पामी करी, पामै ते नील-लेस्या नां रूप ।।
२४. ते वर्ण पिण पामै नील लेस्या तणां, लेस्या पद नों चउथो उद्देश ।
जाव परिणाम वण्ण रस गंध नों, इहां गाथा नो कहियै अर्थ विशेष ।।

सोरठा

२५. भगवती वृत्ति मझार, ते गंधपणै ते रसपणै ।
ते फर्शपणै वलि धार, भुज्जो-भुज्जो प्रभु ! परिणमैं ।।
२६. जिन कहै हंता जाण, कृष्ण-लेश्या द्रव्य नील प्रति ।
पामी नै पहिछाण, ते रूपपणै जे परिणमैं ।।
२७. इहां भावार्थ एह, जीव कृष्ण परिणत जदा ।
नील-लेश्य जोग्य जेह, द्रव्य प्रति ग्रहण करी मरै ।।
२८. तिण काले सुविचार, नील-लेश्या परिणत तको ।
उपजै छै अवधार, अन्य स्थान सूत्रे इसुं ।।
२९. जे लेश्या नां ताय, द्रव्य प्रति ग्रहण करी मरै ।
ते लेश्या रै मांय, उपजै छै ए वचन थी ।।
३०. ते माटै अवलोय, कारण तेहिज कार्य हुवै ।
कृष्ण-लेश्य द्रव्य सोय, नील-लेश्य पामी कह्यो ।।
३१ कृष्ण नील संवेद, ए दोनूं लेस्या तणां ।
इहां कह्या छै भेद, ते उपचार थकी अछै ।।
३२. प्रभु ! किण अर्थे ख्यात, कृष्ण-लेश्य जे नील प्रति ।
पामी तेह विख्यात, ते रूपपणै जाव परिणमै ?
३३. जिन कहै से जहानाम, दूध तक्र प्रति पाम नै ।
तथा निमल वस्थ पाम, रंग मजीठादिक प्रतै ।।
३४. ते रूप स्वभावपणेह, ते वर्ण गंध रस फर्शपणै ।
बार-बार परिणमेह, तिण अर्थे इम आखियो ।।
३५. कृष्ण-लेश्य जे ताम, नील-लेश्य जोग्य द्रव्य प्रतै ।
पामी नै तिण ठाम, ते रूपपणै जाव परिणमै ।।
३६. इम इण अभिलावेण, नील-लेश्य कापोत प्रति ।
काऊ तेजपणेह, तेजू पद्म प्रतै लहै ।।
३७. पद्म शुक्ल प्रति पाम, ते रूपपणै जाव परिणमै ।
इम कहिवुं अभिराम, हिव उद्देशक छै तिको ।।
३८. किता लगै कहिवाय, जाव परिणाम वर्णादिके ।
द्वार-गाथा रै मांय, तठा तांइ कहिवुं तिको ।।

*लय—धिन-धिन संत मुनीश्वर मोटका रे

२३, २४. से नूणं भंते ! कण्हलेस्सा नीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए तावण्णत्ताए तागंधत्ताए तारसत्ताए ताफासत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमति ?

हंता गोयमा ! कण्हलेस्सा नीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए, तावण्णत्ताए, तागंधत्ताए, तारसत्ताए ताफासत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमति । एवं चउत्थो उद्देसओ पण्णवणाए चेव लेस्सापदे नेयव्वो जाव—

परिणाम-वण्ण-रस-गंध-सुद्ध-अपसत्थ-संकिलिट्ठुण्हा ।
गइ-परिणाम-पएसोगाह-वग्गणाठाणमप्पबहुं ।।
(श० ४।८ संगहणी-गाहा)

२५. तागंधत्ताए तारसत्ताए ताफासत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमति ? (वृ०-प० २०५)

२६. हंता गोयमा ! कण्हलेसा नीललेसं पप्प तारूवत्ताए ५ भुज्जो भुज्जो परिणमति । (वृ०-प० २०५)

२७, २८. अयमस्य भावार्थः—यदा कृष्णलेश्यापरिणतो जीवो नीललेश्यायोग्यानि द्रव्याणि गृहीत्वा कालं करोति तदा नीललेश्यापरिणत उत्पद्यते । (वृ०-प० २०५)

२९. 'जल्लेसाइं दव्वाइं परियाइत्ता कालं करेइ तल्लेसे उववज्जइ' त्ति वचनात् । (वृ०-प० २०५)

३०. अतः कारणमेव कार्यं भवति, 'कण्हलेसा नीललेसं पप्पे' त्यादि । (वृ०-प० २०५)

३१. कृष्णनीललेश्ययोर्भेदपरमुपचारादुक्तमिति । (वृ०-प० २०५)

३२. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ किण्हलेसा नीललेसं पप्प तारूवत्ताए ५ भुज्जो भुज्जो परिणमइ ?(वृ०-प०२०५)

३३, ३४. गोयमा ! से जहानामए—खीरे दूसिं पप्प [तक्रमित्यर्थः] सुद्धे वा वत्थे रागं पप्प तारूवत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमइ । (वृ०-प० २०५)

३५. से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—कण्हलेसा इत्यादि । (वृ०-प० २०५)

३६-३८. एतेनैवाभिलापेन नीललेश्या कापोतीं कापोती तैजसीं तैजसी पद्मां पद्मा शुक्लां प्राप्य तद्रूपत्वादीनां परिणमतीति वाच्यं, अथ कियद्दूरमयमुद्देशको वाच्यः? इत्याह—'जावे' त्यादि 'परिणामे' त्यादि द्वारगाथोक्तद्वारपरिसमाप्ति यावदित्यर्थः । (वृ०-प० २०५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३९. हिव गाथा नों अर्थ, लिखियै छै ते सांभलो।
धुर परिणाम तदर्थ, प्रथम देखाडचोईज ते ।।

३९. तत्र परिणामो दर्शित एव। (वृ०-प० २०५)

४०. कृष्ण लेश्यादि पिछाण, नील लेश्यादिक प्रति लहै।
मनु तिरि भव ए जाण, पन्नवण-टीका में इसो ।।

४१. *वर्ण रस जुआ-जुआ लेश्या तणां, गंध धुरली तीनूं दुर्गंध।
द्रव्य-लेस्या नुं ए अधिकार छै, तेजु पद्म नै शुक्ल सुगंध ।।

४१. 'वन्न' त्ति कृष्णादिलेश्यानां वर्णो वाच्यः...'गंध' त्ति लेश्यानां गंधो वाच्यः, तत्राद्यास्तिस्रो दुरभिगन्धाः अन्त्यास्तु तदितराः। (वृ०-प० २०५)

४२. अविशुद्ध तीनूं विशुद्ध त्रिण कही, तीनूं अपसत्थ ते अशुभ पिछाण।
तेजु पद्म नै शुक्ल ए त्रिहुं, प्रशस्त द्रव्य भाव त्रिहुं जाण ।।

४२. 'सुद्ध' त्ति अन्त्याः शुद्धा आद्यास्त्वितराः, 'अप्पसत्थ' त्ति आद्या अप्रशस्ता अन्त्यास्तु प्रशस्ता.। (वृ०-प० २०५, २०६)

४३. धुरली तीनूं लेस्या संक्लिष्ट छै, अध्यवसाय अशुभ ए भाव।
अंत नीं तीनूं असंक्लिष्ट छै, शुभ अध्यवसाय भाव इण न्याव ।।

४३. 'संकिलिट्ठ' त्ति आद्याः संक्लिष्टा अन्त्यास्त्वितराः। (वृ०-प० २०६)

४४. शीत नै रुक्ष फर्शवंत धुर त्रिहुं, स्निग्ध नै उष्ण अंत त्रिहुं जोय।
आदि त्रिहुं लेस्या दुर्गतिगामनी, अंत त्रिहुं सुगतिगामनी होय ।।

४४. 'उण्ह' त्ति अन्त्या उष्णाः, स्निग्धाश्च आद्यास्तु शीता रूक्षाश्च 'गति' त्ति आद्या दुर्गतिहेतवोऽन्त्यास्तु सुगतिहेतवः। (वृ०-प० २०६)

४५. परिणाम ते छहूंइ लेस्या तणां, त्रिविध जघन्य मझम उत्कृष्ट।
नवविध सत्तावीस भेदे करी, तरतमपणां थी ए पिण इष्ट ।।

४५. 'परिणाम' त्ति लेश्यानां कतिविधः परिणामः? इति वाच्यं, तत्रासौ जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदात्त्रिधा उत्पादादिभेदाद्वा त्रिधेति। (वृ०-प०२०६)

४६. इक्यासी भेदे परिणामै परिणमै, वे सय नै तयांली भेदे देख।
अथवा बहु भेदे परिणामै करी, परिणमै लेस्या छहूं संपेख ।।

४७. प्रदेश अनंता छहूं लेस्या तणां, अवगाह्या असंख्यात प्रदेश।
वर्गणा कही अनंती छहूं तणीं, असंख स्थानक छहूं नां सुविशेष ।।

४७. 'पएस' त्ति आसां प्रदेशा वाच्यास्तत्र प्रत्येकमनन्तप्रदेशिका एता इति 'ओगाह' त्ति अवगाहना आसां वाच्या तत्रैता असंख्यातप्रदेशावगाढाः 'वग्गण' त्ति वर्गणा आसां वाच्याः, तत्र वर्गणाः कृष्णलेश्यादियोग्यद्रव्यवर्गणाः ताश्चानन्ता औदारिकादिवर्गणावत्, 'ठाण' त्ति तारतम्येन विचित्राध्यवसायनिबन्धनानि कृष्णादिद्रव्यवृन्दानि तानि चासंख्येयानि अध्यवसायस्थानानामसंख्यातत्वादिति। (वृ०-प० २०६)

४८. स्थानक नीं अल्पावहुत कही अछै, पन्नवण बहु विस्तार सुन्याव।
तेहथी संक्षेपे आख्यो छै इहां, देख्यो इहां गाथा नों प्रस्ताव ।।

४८. 'अप्पबहुं' ति लेश्यास्थानानामल्पबहुत्वं वाच्यं। (वृ०-प० २०६)

४९. सेवं भंते ! सेवं भंते ! कही, गोतम गणहर महा सुविनीत।
अति आदर देवै गुरु रा वचन नै, दशमों उद्देश कह्यो धर प्रीत ।।

४९. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श० ४।९)

५०. शतक चउथो ए संपूर्ण थयो, आखी ए तिहोत्तरमीं ढाल।
भिक्षु-पट भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' संपति मंगलमाल ।।

गीतक-छंद

१. कह्यु वृत्तिकारे तुर्य शत, स्वयमेव सहज सुबोध ही।
कितलीक व्याख्या रची, पय स्वादिष्ट स्वाभाविक मही ।।
सकरा-मिश्रण युक्त स्यूं नहिं? अपितु युक्त विकास ही।
तिमहीज ए म्हैं जोड कीधी, अल्प-धी तसुं अर्थ ही ।।
चतुर्थशते दशमोद्देशकार्थः ।।४।१०।।

१. स्वतः सुबोधेऽपि शते तुरीये,
व्याख्या मया काचिदियं विदग्धा।
दुग्धे मदा स्वादुतमे स्वभावात्,
क्षेपो न युक्तः किमु शर्करायाः?
(वृ०-प० २०६)

*लय—धिन-धिन संत मुनीश्वर मोटका रे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट

- पारिभाषिक शब्दानुक्रम
- विशेष नामानुक्रम
- शुद्धि-पत्रक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पारिभाषिक शब्दानुक्रम

अंगार—साधु के भोजन का एक दोष—खाद्य की प्रशंसा करते हुए भोजन करना
अंतक्रिया—मोक्ष
अंत-प्रान्त—बचा-खुचा बासी भोजन
अंतर्मुहूर्त्त—दो समय से अड़तालीस मिनिट का मध्यवर्ती समय
अंतेवासी—शिष्य

अकरणवीर्य—लब्धि रूप शक्ति
अकषायी—कषायमुक्त आत्मा
अकाम निर्जरा—मोक्ष के लक्ष्य बिना की गई तपस्या से होने वाला कर्मक्षय
अगुरुलघु—जिसमें हल्कापन और भारीपन न हो, जैसे आकाश
अचरिम (अचर्म)—जिसकी जन्म-परम्परा का कभी अन्त नहीं होता
अचित्त—निर्जीव
अचेल—वस्त्र-रहित
अजीव—चेतना शून्य पदार्थ
अजोगी—जिसके मन, वचन और शरीर की प्रवृत्ति नहीं होती
अज्ञान—मिथ्या दृष्टि युक्त ज्ञान
अट्ठमभक्त (अष्टम भक्त)—तीन दिन का उपवास
अट्ठिय कल्प } —देखें अस्थितकल्पिक
अट्ठिय कल्पी }
अढ़ाई द्वीप—जम्बूद्वीप, धातकी खंड और अर्ध पुष्करद्वीप
अणगार—गृहत्यागी मुनि
अणागार—(उपयोग) दर्शन, सामान्यग्राही अवबोध
अणागारोवउत्त—सामान्य अवबोध करने वाला
अणाभियोगिक—उच्च कोटि के देव
अणाभोग—अनुपयोग, आकस्मिक रूप से
अणारंभा (अणारंभी)—अहिंसक, हिंसा न करने वाला
अणाहारिक—जीव जिस समय आहार ग्रहण नहीं करता, जैसे मृत्यु के बाद अन्तराल गति में होने वाली वक्र गति के समय
अणिंदिय—इन्द्रिय रहित
अतिचार—स्वीकृत साधना का अतिक्रमण
अदत्त—चोरी
अद्धाकाल—समय
अधर्मास्तिकाय—स्थिति सहायक तत्त्व
अध्यवसाय—सूक्ष्म विचार
अनंतकाय—एक शरीर में रहने वाले अनंत जीव
अनंत संसार—जिस जीव को अन्तहीन काल तक संसार में परिभ्रमण करना है
अनर्थदण्ड—निष्प्रयोजन की जाने वाली हिंसा
अनशन—निराहार रहना, यह सावधिक और निरवधिक दोनों प्रकार से होता है
अनाचार—दोष-सेवन
अनानुपूर्वी—व्युत्क्रम, जिसमें किसी प्रकार का क्रम न हो
अनिहारिम—ऐसे स्थान में अनशन करना, जिससे शव को बाहर न निकालना पड़े
अनुभाग (कर्म)—जिनका वेदन फलदान के रूप में निश्चित है
अनुभाग बन्ध—तीव्र, मन्द आदि रस रूप में कर्मों का विपाक
अनुयोग—व्याख्या
अनेषणीक—मुनि के लिए अकल्पनीय
अन्यतीर्थी—अन्य मतावलम्बी
अप् (काय)—पानी के जीव
अपक्रमण—सम्यक्त्व आदि उत्तम गुणों से हीन होना
अपच्चक्खाणिया—अव्रत से होने वाला कर्मबन्ध
अपडिकम्मा—प्रायोपगमन नामक अनशन, जिसमें शरीर की सार-संभाल नहीं की जाती
अपडिसेवी—दोष का सेवन न करने वाला मुनि
अपर्याप्त—जिस जन्म में जितनी पर्याप्तियां प्राप्त करनी हों, वे जब तक प्राप्त न हुई हों
अपवर्तनकरण—जीव का वह प्रयत्न जिससे कर्मों की स्थिति में ह्रास होता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपवाद—विशेष विधान, सामान्य नियम में होने वाली छूट
अपाय—निर्णयात्मक ज्ञान
अप्रमत्त (संजती)—सातवें गुणस्थान का मुनि
अप्रासुक (अफासु)—अनभिलषणीय, सचित्त
अभवसिद्धिय (अभव्य)—जिस जीव में मोक्ष जाने की योग्यता न हो
अभासक—नहीं बोलने वाला
अभिगमण—गुरु के सम्मुख उपस्थित होने की औपचारिक विधि
अभिग्रह—विशेष संकल्प
अभिग्रहधारी—विशेष प्रतिज्ञा धारण करने वाला
अभिमुखनामजगोत्त—जिस गति के आयुष्य का बन्धन किया हो उसमें अन्तर्मुहूर्त्त बाद उत्पन्न होने वाला जीव
अभिविधि—वह मर्यादा जिसमें विभाजक सीमा रेखा भी साथ आ जाती है
अभ्याख्यान—दोषारोपण करना
अभ्युपगम वेदना—स्वीकृत वेदना, लुंचन, तपस्या आदि करने से होने वाली वेदना
अमायी—अकषायी
अयोगीकेवली—मन, वचन और काया की प्रवृत्ति का निरोध करने वाला केवली
अरति परिसह—संयम के प्रति होने वाली वितृष्णा से विचलित नहीं होना
अरा (आरा)—काल चक्र का एक विभाग
अरिहंत (अरहंत, अर्हत)—सर्वातिशय सम्पन्न, धर्मतीर्थ के प्रवर्तक
अरिहंत-चैत्य—छद्मस्थ तीर्थंकर
अरूपी—अमूर्त तत्व जिसमें वर्ण, रस, गन्ध स्पर्श न हो
अर्थदण्ड—प्रयोजनवश की जाने वाली हिंसा
अर्थागम—तीर्थंकरों की मुक्त वाणी
अलेशी—चौदहवें गुणस्थानवर्ती जीव और मुक्त जीव
अलोक—आकाश का वह भाग जिसमें केवल आकाश ही होता है
अवगाहणा—शरीर-परिमाण
अवग्रह—इन्द्रिय और मन के द्वारा होने वाला सामान्य ज्ञान
अवग्रह—आज्ञा
अवधि (ज्ञान)—अवधानं अवधिः—चैतसिक एकाग्रता से प्राप्य, मूर्त्त पदार्थों को साक्षात् करने वाला अतीन्द्रिय ज्ञान
अवधि दर्शन—मानसिक एकाग्रता से प्राप्य, मूर्त्त पदार्थों को साक्षात् करने वाला अतीन्द्रिय दर्शन
अवसर्पिणी काल—काल चक्र का एक विभाग, जो क्रमशः हीयमान होता है
अविग्रहगति—ऋजुगति, एक भव से दूसरे भव में जाते समय एक ही समय लगे, वह गति
अविग्रहगतिया—अविग्रहगति से जाने वाले जीव
अविरति—आन्तरिक तृष्णा, प्रत्याख्यान का अभाव
अविरति सम्यक् दृष्टि—चतुर्थ गुणस्थान में होने वाली दृष्टि तथा चतुर्थ गुणस्थान का अधिकारी व्यक्ति
अव्यवहार राशि—निगोद के जीव, जो निगोद को छोड़ दूसरी गति में कभी उत्पन्न न हुए हों
अव्रती—व्रत या प्रत्याख्यान से सर्वथा रहित व्यक्ति
अशुभ जोग—मन, वचन और शरीर की असत्प्रवृत्ति
अशुभ लेश्या—आत्मा के अशुभ परिणाम
अशुभ लेसी—अशुभ परिणामों वाला व्यक्ति
अशून्यकाल—सातों नरकभूमियों में वर्तमान में जितने जीव हैं उनमें न कोई निकले और न कोई नया उत्पन्न हो, अर्थात् वहां जितने जीव हैं उतने ही बने रहें, वह काल उन नारक जीवों की अपेक्षा अशून्यकाल है
असंजती—संयम रहित
असंवुडो—असंवृत, जिसके आश्रव द्वार अवरुद्ध नहीं हुए हैं
असंसार—मुक्त जीव
असण्णिभूत—अपर्याप्त
असन्नि—मनरहित जीव
असन्निभूत—मिथ्यात्वी
असाता वेदनी—कष्ट की अनुभूति कराने वाला कर्म
असासत—अशाश्वत, अस्थिर
असूझतो—मुनि के लिए अकल्पनीय पदार्थ
असेलेसी—शैलेशी-चतुर्दश गुणस्थान की अप्राप्ति
अस्तिकाय—प्रदेशों का समूह
अस्थितकल्पिक—मध्यवर्ती तीर्थंकरों के शिष्य, जिनके लिए पर्युषणाकल्प आदि छह कल्प ऐच्छिक होते हैं
अहिकरणिया (अहिगरणि)—शस्त्र के निमित्त से होने वाला कर्मबन्ध
अहिगरणि—पाश-बन्धन का निर्माण करने से होने वाला कर्मबन्ध
आउली—विस्तार
आगम—जैन शास्त्र
आगार—छूट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगासत्थिकाय—आश्रय देने वाला तत्त्व
आचार—आचरण
आजीवक—गोशालक मतानुयायी
आतापना—सूर्य के सामने खड़ा होकर, बैठकर या लेटकर ताप लेना
आत्मांगुल—जिस समय जो मनुष्य हों, उनके अंगुल का प्रमाण
आत्मारंभा—अपने द्वारा अपनी हिंसा करने वाला
आदानभण्ड निक्षेपणा—पांच समितियों में चौथी समिति
आदेय—ग्राह्य
आधाकर्मी—मुनि के निमित्त बनाया हुआ भोजन, मकान आदि
आनुपूर्वी—अनुक्रम
आबाधा—कर्म बन्धन के बाद एक निश्चित समय तक उसके उदय का अभाव
आभियोगिक—निम्न श्रेणी के देव
आभोग—उपयोग, जागरूकता
आयंबिल—एक प्रकार का तप, जिसमें एक बार एक ही अन्न का भोजन किया जाता है
आयाम—लम्बाई
आयु—आयुष्य
आयुक्षय—मनुष्य आदि की पर्याय के निमित्तभूत आयुष्य कर्म के पुद्गलों का निर्जरण
आयोग—अधिक ब्याज पर धन देना
आरंभिया—हिंसा से होने वाला कर्मबन्ध
आराधक—मोक्ष का साधक
आर्जव—ऋजुता
आर्त्तध्यान—प्रिय के वियोग और अप्रिय के संयोग में होने वाला अशुभ ध्यान
आवलिका—सूक्ष्म काल परिमाण
आवलिकाबद्ध—पंक्तिबद्ध
आवश्यक—सामायिकादि छह आवश्यक, प्रतिक्रमण
आवीचीमरण—प्रतिक्षण होने वाला आयुष्य का क्षय
आश्रव (द्वार)—कर्म ग्रहण करने वाले आत्म परिणाम
आहारक शरीर—चतुर्दश पूर्वी मुनि केवलज्ञानी के पास जाने के लिए जिस शरीर का निर्माण करता है वह शरीर
आहारक समुद्घात—आहारक लब्धि का प्रयोग
आहार पर्याप्ति (पर्याप्त)—जन्म के प्रथम समय में निष्पन्न पौद्गलिक द्रव्यों के ग्रहण, परिणमन और उत्सर्ग की शक्ति जिसे ओज आहार कहा जाता है
आहारीक (लब्धि)—शरीर विशेष के निर्माण की शक्ति

इंगित मरण—वह अनशन, जिसमें दूसरे व्यक्ति के द्वारा शरीर का परिकर्म नहीं करवाया जाता
इरियावहि—वीतराग के होनेवाला द्विसामयिक कर्मबन्ध

ईति—उपद्रव
ईर्या (समिति)—संयमी की संयम पूर्वक होने वाली गति
ईषत्प्राग्भारा—सिद्धशिला नामक मुक्त जीवों का आवास स्थान
ईहा—संशयोपरान्त होने वाला निर्णयोन्मुखी ज्ञान

उच्छेद अंगुल (उत्सेधांगुल)—पांचवा आरा आधा बीत जाने पर जो मनुष्य होंगे, उनके अंगुल का प्रमाण
उट्ठाण—उठना
उत्तरगुण—तपस्या आदि अनुष्ठान
उत्तर वैक्रिय—वैक्रिय लब्धि के द्वारा निर्मित शरीर
उत्पाद—उत्पन्न होना
उत्सर्ग—सामान्य विधान
उदय (उदयभाव)—कर्मों के अनुभव की अवस्था
उदीरणा (उदीरित)—भविष्य में उदय में आने वाले कर्मों को अपवर्तनकरण के द्वारा समय से पहले उदय में ले आना
उद्वर्तन करण—जीव का वह प्रयत्न, जिससे कर्मों की स्थिति और रस में वृद्धि होती है
उपओग—चेतना का व्यापार
उपक्रमिकी वेदना—किसी निमित्त या कर्मों के उदय से होने वाली वेदना
उपधि—मुनि के उपकरण
उपवास—एक दिन के लिए आहार-परिहार
उपशमचरण—मोहकर्म के उपशम से प्राप्त होने वाला चारित्र
उपशम भाव—मोह कर्म के वेदन का अभाव
उपसम श्रेणी—आठवें गुणस्थान से आगे आरोहण करने के लिए ली जाने वाली एक श्रेणी, जिसमें मोहकर्म का उपशमन होता है
उपशम सम्यक्त्व—दर्शन मोह कर्म के उपशम से प्राप्त होने वाला सम्यक्त्व
उपशांत मोह—ग्यारहवें गुणस्थान का मुनि, जिसका, मोह-कर्म सर्वथा उपशान्त हो गया हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपादेय—ग्रहण करने योग्य
उपाध्याय—शासन व्यवस्था के सात पदों में एक पद, द्वादशांगी का प्रवाचक
उप्पन्नपक्खस्स—उत्पाद पर्याय की अपेक्षा से
उभयारम्भा—स्व और पर दोनों के लिए हिंसा करने वाला
उवसग्ग—उपसर्ग, साधना मार्ग में देव, मनुष्य आदि द्वारा दिए जाने वाले कष्ट

ऊणी—न्यून, कम
ऊणोदरी—आहार, उपकरण, कषाय आदि की अल्पता

ऋजुजड़—प्रथम तीर्थंकर के समय होने वाले मनुष्य जो ऋजु और अविकसित होते हैं
ऋजुप्रज्ञावंत—मध्यवर्ती बाबीस तीर्थंकरों के समय होने वाले मनुष्य जो सरल और बुद्धिमान होते हैं
ऋजुसूत्रनय—केवल वर्तमान को ग्रहण करने वाला अभिमत

एकभविक—जीव को अगले जन्म में जिस गति में उत्पन्न होना है उससे पहले भव में उस अपेक्षा से वह एकभविक कहलाता है
एकांत बाल—अज्ञानी, मिथ्यात्वी
एवंभूत—जिस समय जो तत्त्व जैसा होता है, उसे उसी रूप में स्वीकृत करने वाला अभिमत
एषणा—शुद्ध आहार की गवेषणा
एषणीक—मुनि के लिए कल्पनीय

ओघिक—सर्वसाधारण
ओज आहार—जन्म के प्रथम समय में लिया जाने वाला आहार

औदारिक—स्थूल पुद्गलों से निष्पन्न तिर्यञ्च और मनुष्य का शरीर

कंखपओसे—प्रथम शतक के तीसरे उद्देशक का नाम, जिसमें अन्य मत की वांछा का विवेचन है
कंखामोहणी—मोहनीय कर्म की एक प्रकृति, जिसके उदय से अन्य मत की अयथार्थ बातें भी अच्छे रूप में दिखाई देती हैं
कंदर्पिक—कुतूहलकारी
कडाइ स्थविर—कृतयोगी, तपस्वियों की प्रत्युपेक्षणा आदि सेवाकार्य में नियुक्त मुनि
करण—उत्तरगुण
करण—जीव का विशेष प्रयत्न
कर्म (कम्म)—आत्मा की अच्छी या बुरी प्रवृत्ति द्वारा आकृष्ट पुद्गल समूह
कर्मदलिक—कर्म वर्गणा
कर्म-प्रकृति—कर्म परमाणुओं की स्वभाव-संरचना
कलुस समावन्न—जिसकी बुद्धि का विपर्यय हो गया हो
कल्प—आचार की मर्यादा
कल्पातीत—आत्मानुशासित, जो सब प्रकार के कल्प—बाह्य मर्यादाओं से मुक्त हैं
कवल आहार—ग्रास रूप में किया जाने वाला आहार, यह मनुष्य और तिर्यञ्च के होता है
कषाय—रागद्वेष से रंजित परिणाम
कषाय-कुशील—निर्ग्रन्थ के पांच भेदों में एक, जिसका आचार कषाय से कुत्सित होता है
कषाय-समुद्घात—कषाय संवलित आत्म प्रदेशों को शरीर से बाहर निकालना
काइया—शरीर की प्रवृत्ति से होने वाला कर्म बन्ध
काउस्सग्ग—शरीर की सार-सम्भाल छोड़ना
कापोत—अशुभ लेश्या का एक प्रकार
काय गुप्त—शरीर का संवरण करने वाला
काय भवस्थ—माता के गर्भ में स्थित अपने ही शरीर में उत्पन्न जीव
काय समित—शरीर की सम्यक् प्रवृत्ति करने वाला
कार्मण (शरीर)—कर्म शरीर, सूक्ष्म शरीर
काल—समय
किब्विसिय—अवर्णवादी
कुडय—बड़प्पन
कुत्रिकापण—तीन पृथ्वियों—स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और पाताल लोक की सभी वस्तुएं जहां उपलब्ध हों, वह दूकान
कृष्ण लेश्या—अशुभ लेश्या का एक प्रकार
केवल ज्ञान—मूर्त-अमूर्त्त सब पदार्थों का साक्षात् कराने वाला अतीन्द्रिय ज्ञान
केवल दर्शन—मूर्त्त अमूर्त्त सब पदार्थों का साक्षात् कराने वाला अतीन्द्रिय दर्शन
केवली (केवल ज्ञानी)—सर्वज्ञ
केवली समुद्घात—केवली के वेदनीय और आयुष्य कर्म के समीकरण के लिए होने वाला समुद्घात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया—कर्मबन्धन की की निमित्तभूत प्रवृत्ति

क्षमा—हर परिस्थिति को सहने की क्षमता
क्षयोपशम—कर्मों के विलय से होने वाली आत्मा की उज्ज्वलता या हलकापन
क्षयोपशम भाव—कर्मों के विलय से होने वाली आत्मा की अवस्था
क्षयोपशम सम्यक्त्व—मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त होने वाला सम्यक्त्व
क्षायिक चारित्र—मोहनीय कर्म के सर्वथा विलय से प्राप्त होने वाला चारित्र
क्षीण मोह—वीतराग
क्षेत्र—आकाश
क्षेम—प्राप्त की सुरक्षा

गणधर—तीर्थंकरों के प्रधान शिष्य
गणपति—आचार्य
गणितानुयोग—गणित की व्याख्या करने वाला आगम चन्द्र-प्रज्ञप्ति आदि
गति—एक जन्म-स्थिति से दूसरी जन्म-स्थिति को प्राप्त करना
गिलाण—रुग्ण
गीतार्थ—बहुश्रुत
गुणठाण—आत्मा की क्रमिक विशुद्धि की भूमिका
गुणरत्न संवत्सर—एक प्रकार का विशिष्ट तप
गुत्तिदिय—इन्द्रियों पर संवरण करने वाला
गुप्ति—मन, वचन और काया का संवरण
गुरुलघु—हल्का और भारी—इन दोनों धर्मों से युक्त पुद्गल का एक परिणमन
गोचरी—सामुदानिक भिक्षाचर्या
गोत्र—जीव को ऊंची या नीची दृष्टि से देखे जाने में हेतुभूत कर्म पुद्गल
ग्रैवेयक—वैमानिक देव, जो लोकपुरुष की ग्रीवा के स्थान में रहते हैं

चउट्ठाणवडिया—गुणों की न्यूनाधिकता के आधार पर चार स्थानकों में विभाजन। वे चार स्थानक हैं—संख्यात भाग, असंख्यात भाग, संख्यात गुण और असंख्यात गुण हीन या अधिक
चउदसपुव्वी—चौदह पूर्वों का ज्ञाता
चउरंस—चतुष्कोण
चउरिंद्री—चार इन्द्रिय वाले जीव
चक्रवर्ती—छः खण्डों का सम्राट
चक्खुइंद्री—आंख
चक्षु दर्शन—आंख द्वारा होने वाला सामान्य अवबोध
चरण—मूल गुण, चारित्र
चरणकरणानुयोग—संयम के मूल और उत्तर गुणों की व्याख्या करने वाले आगम आचारांग आदि
चरमशरीरी—उसी भव में मुक्त होने वाला जीव
चरित्त धर्म—आचरण-प्रधान धर्म
चरित्र (चारित्र)—आचरण
चरिम—जिसके जन्म-मरण की परम्परा का अन्त निश्चित हो
चारित्त सामायिक—सामायिक का एक भेद
चारित्र मोहनीय—चारित्र को विकृत बनाने वाला या उसका निरोध करने वाला मोहकर्म
चारित्रावरणी—चारित्रमोहनीय
चैत्य—उद्यान
चोथ-भक्त—उपवास
च्यार जाम—चार महाव्रत

छट्ठाणवडिया—गुणों की न्यूनाधिकता के आधार पर एक वस्तु या व्यक्ति का दूसरे वस्तु या व्यक्ति से छह स्थानकों में विभाजन। वे छह स्थानक हैं—संख्यात भाग, असंख्यात भाग, अनंतभाग, संख्यात गुण, असंख्यातगुण और अनंत-गुण हीन या अधिक
छठभक्त—दो दिन का उपवास
छद्म—चार घाती कर्मों का उदय
छद्मस्थ—अपूर्णज्ञानी, असर्वज्ञ
छद्मस्थ-तीर्थंकर—केवलज्ञान की साधना करने वाले अर्हत्
छेदोपस्थापनी—चारित्र का एक प्रकार, पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति—इस विभागात्मक रूप में स्वीकार किया जाने वाला संयम

जघन—जघन्य
जयणा—संयम के प्रति जागरूकता
जाझी—अधिक
जाणक शरीर—ज्ञाता का शरीर
जिन—अर्हत्, सर्वज्ञ
जिनकल्प—अर्हत् के समान आचार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनकल्पिक--विशेष साधना के लिए संघ से अलग रहकर साधना करने वाले मुनि

जीवठाण—गुणस्थान, आत्मा की क्रमिक विशुद्धि की भूमिका

जीवास्तिकाय (जीवास्ति)—जीव

जुगंतर—बैल के कंधों पर रखे जाने वाले जुए जितना या शरीर प्रमाण भूभाग

जुगलिया—यौगलिक युग के मनुष्य, जो युगल रूप में उत्पन्न होते हैं

जोग (योग)—अप्राप्त की प्राप्ति

जोग—मन, वचन और शरीर की प्रवृत्ति

ज्योतिषी—देवों की एक जाति

झूसर—जुआ, जो बैल के कन्धों पर रखा जाता है

ठियकल्प, ठियकल्पी } —देखें स्थितकल्पिक

णवरं (नवरं)—भिन्नता-सूचक अव्यय

तदुभयागम—सूत्र-आगम और अर्थ-आगम का समन्वित रूप

तप—कर्म शरीर को तपाने वाला अनुष्ठान

तावतीसग—इन्द्र के गुरु स्थानीय या मित्र स्थानीय देव

तिरिक्ख (तिर्यञ्च)—पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वृक्ष, जल व निगोद आदि के जीव, ये एक इन्द्रिय वाले जीवों से लेकर पांच इंद्रिय वाले जीवों तक होते हैं

तीर्थ—प्रवचन, साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध धर्मसंघ

तीर्थंकर—अर्हत्, धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले

तीर्थान्तरीय—अन्यतीर्थिक

तेइंद्री—तीन इन्द्रिय वाले जीव

तेउकाय—अग्नि के जीव

तेजसशरीर—तेजोमय शरीर, जो पाचन और कांति में सहायक है

तेजुलब्धि—तेजोलेश्या

तेजोलेश्या—तपोविशेष से उपलब्ध अनुग्रह और निग्रह में सक्षम तेजोमय शक्ति

त्रंस—त्रिकोण

त्रस—सोद्देश्य गमन करने की क्षमता रखने वाले जीव

त्रिकरण—करना, करवाना और अनुमोदन करना अथवा मन, वचन और काया

थीणद्धी—दर्शनावरणीय कर्म के प्रबल उदय से आने वाली सघन निद्रा, जिसमें व्यक्ति किसी के साथ लड़ाई कर, उसे मारकर पुनः सो जाता है, पर उसे यह सब ज्ञात नहीं होता

थोव—सात उच्छ्वास जितना कालमान

दंडक—जहां प्राणी अपने कृत कर्मों का दंड भोगते हैं, वे नरक आदि चौबीस स्थानों में विभक्त हैं

दर्शन—सामान्य अवबोध

दर्शन प्रतिमा—श्रावक की ग्यारह भूमिकाओं में से पहली का नाम दर्शन प्रतिमा है

दर्शन मोहनीय—दृष्टि को विपरीत करने वाला मोह कर्म

दर्शनावरणीय (कर्म)—दर्शन—सामान्य अवबोध में बाधा पहुंचाने वाला कर्म

दशम भक्त—चार दिन का उपवास

दात—एक बार में अविच्छिन्न रूप से प्राप्त होने वाला भोजन या पानी

दुर्लभ बोध—जिस जीव को सम्यक्त्व की प्राप्ति बहुत मुश्किल से हो

दुवालस भक्त—पांच दिन का उपवास

देश—वस्तु का काल्पनिक अंश

देशव्रती—श्रावक

देशसंयती—श्रावक

देसूण—कुछ कम

द्रव्य—मूल वस्तु

द्रव्यनय—नैगम, संग्रह, व्यवहार और ऋजुसूत्र नय

द्रव्य निक्षेप—जो पर्याय अतीत हो गई या भविष्य में होगी उस अपेक्षा से वर्तमान में उसका उस पर्याय के द्वारा कथन करना अथवा अनुपयुक्त अवस्था की क्रिया

द्रव्य मंगल—लौकिक मंगल, जैसे—मंगल दीप जलाना

द्रव्य श्रुत—पुस्तकारूढ़ शास्त्र आदि

द्रव्य हिंसा—साधना के प्रति पूर्ण जागरूक संयमी द्वारा अप्रत्याशित रूप से होने वाला प्राणवध

द्रव्यानुयोग—तत्त्ववाद का निरूपण करने वाले आगम भगवती आदि

द्रव्यार्थिक नय—नैगम, संग्रह और व्यवहार नय

द्रव्यास्तिकाय—वह द्रव्य, जिसके प्रदेशों का प्रचय होता है, तिर्यक् सामान्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्येन्द्रिय—इन्द्रियों की बाह्य और भीतरी संरचना तथा उनकी पौद्गलिक क्षमता
द्वादशांग—आयारो आदि जैन आगम

धर्म—आत्मशुद्धि का साधन
धर्मकथानुयोग—कथाओं के माध्यम से धर्म की व्याख्या करने वाले आगम ज्ञाताधर्मकथा आदि
धर्मास्तिकाय—गति सहायक तत्त्व
धारणा—निर्णयात्मक ज्ञान का स्थिरीकरण
धूम—साधु के भोजन का एक दोष, खाद्य की निन्दा करते हुए भोजन करना

नय—अनन्त धर्मात्मक वस्तु के किसी एक अंश का सापेक्ष ग्रहण करने वाला अभिमत
नरक—चार गतियों में एक गति, जहां नारक जीव रहते हैं
नाणत्त—विविधता
नाम—चारों गतियों में भांति-भांति की अवस्थाओं को प्राप्त करने में हेतुभूत कर्मपुद्गल
नाम निक्षेप—किसी भी व्यक्ति या पदार्थ का गुण निरपेक्ष नामकरण
निकाचन—कर्मों का प्रगाढ़ बंधन
निकाचित—निधत्त— घनीभूत किए हुए कर्म पुद्गलों को और अधिक सघन करना
निगमन वचन—उपसंहार विशेष
निगोद—अनन्तकायिक वनस्पति जीव
निज्जर—आत्म-प्रदेशों से बंधे हुए कर्मों को आत्मा से दूर करना
निदान (नियाणा)—पौद्गलिक सुख की आकांक्षा से साधना के फलादान रूप में किया जाने वाला संकल्प
निधत्त— बिखरे हुए कर्म पुद्गलों को घनीभूत करना
नियंठो—निर्ग्रन्थ, मुनि
नियमा—निश्चित रूप से
निरतिचार—दोष रहित
निरवद्य—पाप-रहित
निर्ग्रंथ-प्रवचन—अर्हतों की वाणी
निर्ग्रन्थ—वीतराग
निर्जरा—तपस्या और उससे होने वाली आत्मा की आंशिक उज्ज्वलता
निश्चय नय—तात्त्विक अर्थ का कथन करने वाला अभिमत
निहारिम—उपाश्रय या ऐसे ही किसी स्थान में अनशन करना जहां से शव को बाहर निकालना पड़े
नूम—माया
नेगम—भेद और अभेद दोनों को ग्रहण करने वाला अभिमत
नेरइय—नरक के जीव
नोइंदिय—मन

पओग (पओगसा)—प्रयत्नजन्य
पंचक—पांच क्रूर ग्रहों की संज्ञा
पंचजाम—पांच महाव्रत
पंडित—संयमी
पंडितपणु—साधुत्व
पंडित मरण—ज्ञानी या संयमी का समाधिपूर्ण मरण
पंडितवीर्य—संयमी पुरुषों की शक्ति
पक्ष—पन्द्रह दिन का समय
पछेवड़ी—प्रच्छादन-पट्टी, साधुओं का उत्तरीय
पडवादिक—प्रतिपदा (एकम) आदि
पडिकमण—अतिचारों की आलोचना के लिए किया जाने वाला अनुष्ठान
पडिमाधारी श्रावक—ग्यारह उपासक प्रतिमाओं को वहन करने वाला श्रावक
पडिलेहण—वस्त्र-पात्र आदि को शास्त्रोक्त विधि से देखना
पडिसेवी—दोष का सेवन करने वाला
पद्मलेश्या—शुभलेश्या का एक प्रकार
परउत्थिक—परतीर्थिक, अन्य मतावलम्बी
पर-परिवाद—दूसरों की निंदा
परम अवधि—चरम कोटि का अवधि ज्ञान
परमाणु—पुद्गल की सर्व सूक्ष्म इकाई
परमेष्ठि—अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और मुनि—ये पंच परमेष्ठि कहलाते हैं
परहत्थपारिनावणिया—दूसरे के हाथ से स्वयं या दूसरे को कष्ट पहुंचाना
परारंभा—दूसरे की हिंसा करने वाला
परिग्रह—पदार्थ-संग्रह, पदार्थ के प्रति होने वाला ममत्व
परिचारणा—संभोग
परिठावणिया समिति—साधुओं की मल विसर्जन की क्रिया
परिणामिय भाव—काल-परिणमन से होने वाली जीव-अजीव आदि की अवस्था
परितावणिया (परितापना)—जीव को बांधकर परितापना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देने से होने वाला कर्मबंध
परित्तकाय—एक से लेकर असंख्य जीवों का आश्रय
परित्त संसार—भव-भ्रमण को सीमित कर देना
परित्ती—सीमित
परिषह—साधना में सहज रूप से प्राप्त होने वाली अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियां
परिहार-विशुद्ध—विशिष्ट तपस्या प्रधान चारित्र की आराधना करने वाले मुनि
पर्याप्त—जिस जन्म में जितनी पर्याप्तियां प्राप्त करनी हों, उन्हें प्राप्त करने वाला जीव
पर्याप्ति—जन्म के प्रारम्भ में प्राप्त की जाने वाली पौद्गलिक शक्ति
पर्याय—पदार्थों की विविध अवस्थाएं
पर्यायास्तिक नय—ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़, एवंभूत ये चार नय
पल्य (पल्योपम)—उपमा के द्वारा निर्धारित कालमान
पहुलो—चौड़ा
पाउसिया—द्वेष भावना—दुष्ट अध्यवसायों से होने वाला कर्मबंध
पाओवगमन—अनशन का एक प्रकार, जिसमें शरीर की सार-संभाल का सर्वथा परिहार होता है
पाखण्ड परिचय—साध्य से प्रतिकूल-दिशागामी व्यक्तियों से संपर्क
पाणाइवाय—प्राणातिपात—प्राण-वियोजन
पाथड़ा—नरकभूमियों के मध्यवर्ती प्रस्तर, जहां नारक जीवों का आवास होता है
पाथा—प्रस्थक, एक पाव पदार्थ मापने का पात्र
पाप—हिंसा, असत्य आदि असत्प्रवृत्ति या उसके द्वारा होने वाला बंधन
पारणा—तपस्या का समापन
पिंड-विशुद्धि—भिक्षाचर्या की विशुद्धि
पुण्य—शुभ कर्म पुद्गल
पुद्गलास्तिकाय—मूर्त पदार्थ
पुरुष वेद—पुरुष की स्त्री के प्रति अभिलाषा
पुलाक—संयम को असार करने वाला निर्ग्रन्थ
पूर्व—दृष्टिवाद अंग के चौथे विभाग में रहने वाला विशाल ज्ञान, चौदह पूर्व
पूर्व तप—सराग तप
पूर्वधर—पूर्वों का ज्ञान धारण करने वाला मुनि
पूर्व संयम—सराग संयम
पूर्वानुपूर्वी—प्रारम्भ में होने वाला क्रम
पृथक् (प्रत्येक)—दो से नौ तक की संख्या
पृथ्वीकाय—मिट्टी के जीव
पेज्ज बंध—राग का बंधन
पैशुन्य—चुगली
पोसह (पोसा)—पौषध, श्रावक का ग्यारहवां व्रत
पोहरसी—काल का एक मान—प्रमाण
प्रक्षेप—कवल आहार का एक प्रकार
प्रचला—वह निद्रा, जो खड़े रहने पर भी आती है
प्रतिमाकल्पिक—अभिग्रह विशेष धारण करने वाला मुनि
प्रत्यक्ष प्रमाण—किसी माध्यम के बिना होने वाला ज्ञान
प्रत्येक बुद्ध—किसी निमित्त विशेष से प्रतिबोध पाने वाला
प्रदेश (परदेश)—पदार्थ से सम्बद्ध परमाणु जितना सूक्ष्म विभाग
प्रदेश कर्म—आत्म-प्रदेशों में जिनका वेदन निश्चित है
प्रदेश बंध—आत्मा का कर्मों के साथ एकीभाव
प्रमत्त (गुणठाण)—छट्ठा गुणस्थान, जहां पूर्ण संयम होने पर भी प्रमाद रहता है
प्रमत्त (संजती)—छट्ठे गुणस्थान का मुनि
प्रमाण—यथार्थ ज्ञान
प्रमाणांगुल—भगवान् ऋषभ, भरत आदि के अंगुल का प्रमाण
प्रमाद—जागरूकता का अभाव
प्रयोग—सामान्य ऋण के रूप में धन देना
प्राण—पर्याप्ति की अपेक्षा रखने वाली जीवनी शक्ति

फासु (प्रासुक)—अभिलषणीय, अचित्त

बद्धायु—जीव को अगले भव में जिस गति में उत्पन्न होना है, उसका आयुष्य बांध लेने पर वह बद्धायु कहलाता है
बन्ध—कर्म पुद्गलों का आत्मा के साथ सम्बन्ध
बलिकर्म—स्नान-काल में होने वाली एक विशेष क्रिया
बहुश्रुत—जघन्यतः नौवें पूर्व की तृतीय वस्तु को तथा उत्कृष्टतः असम्पूर्ण दस पूर्वों को जानने वाला मुनि
बादर—स्थूल
बाल—असंयमी
बाल पंडित—संयमासंयमी, श्रावक
बालपंडित वीर्य—श्रावक का वीर्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बालपणुं—मिथ्यात्व
बालमरण—असंयमी का मरण
बाल वीर्य—असंयमी का वीर्य
बुद्धबोधित—तीर्थंकरों द्वारा बोधि प्राप्त करने वाला
बेइन्द्री—दो इन्द्रिय वाले जीव

भजना—वैकल्पिक रूप से
भत्तपच्चखान—आहार परित्याग
भवक्षय—वर्तमान भव का सर्वथा विनाश
भवधारिणी—देव, नरक आदि चार गतियों में प्राप्त होने वाला सहज शरीर
भवनपति—असुर आदि अधोलोक में रहने वाले देव
भवसिद्धिय—मोक्षगमन योग्य भव्य जीव
भविक-शरीर—भविष्य में ज्ञाता होगा, पर वह वर्तमान में विवक्षित तत्त्व को नहीं जानता है उसका शरीर
भव्य—मोक्षगामी जीव
भाजन—पात्र
भाव—अवस्था
भाव नय—पर्यायार्थिक नय—शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत-नय ये तीन नय
भाव मंगल—लोकोत्तर मंगल, नमस्कार महामंत्र आदि
भाव लेश्या—अध्यवसाय विशेष
भावश्रुत—शास्त्र आदि के द्वारा होने वाला ज्ञान
भाव हिंसा—आत्मा की प्रमाद और कषाय युक्त प्रवृत्ति
भावितात्मा—तपस्या और संयम से आत्मा को भावित करने वाला मुनि
भावेन्द्रिय—इन्द्रियों की उपलब्धि और उनका व्यापार
भाषा समित—बोलने में विवेक रखने वाला मुनि
भासक—बोलने वाला
भिक्खू पडिमा—साधु द्वारा स्वीकृत प्रतिज्ञा विशेष
भेद-समावन्न—मति भंग, किंकर्त्तव्यविमूढ़

मडाई-निर्ग्रन्थ—अचित्त भोजी, याचित भोजी
मति-अज्ञान—मिथ्यादृष्टि का इन्द्रिय और मन के द्वारा होने वाला ज्ञान
मति-ज्ञान—सम्यक्-दृष्टि का इन्द्रिय और मन के द्वारा होने वाला ज्ञान
मन जोगी—मन की प्रवृत्ति करने वाला
मनपज्जव—संज्ञी जीवों के मानसिक भावों को जानने वाला अतीन्द्रिय ज्ञान
मनपर्यवज्ञानी—मनःपर्यव ज्ञान प्राप्त करने वाला मुनि
मन-समित—मन का सम्यक् प्रयोग करने वाला मुनि
मनोगुप्त—मन को गुप्त करने वाला मुनि
मरणांतिकी (समुद्घात)—मृत्यु के समय होने वाला समुद्घात
महाव्रत—हिंसा, असत्य आदि का सम्पूर्ण परित्याग
माया—मायाकषाय के निमित्त से लगने वाला कर्म
माया मोसा—माया युक्त मृषा
मायी—कषाय युक्त
मार्दव—कोमलता
मासखमण—एक मास का निरन्तर उपवास
मासद्ध—पन्द्रह दिन का समय
मिच्छा दंसण सल्य—अठारहवां पाप
मिच्छादिट्ठ—मिथ्यात्वी
मिच्छामि दुक्कडं—प्रायश्चित्त का एक प्रकार
मिथ्यात्व (न)—दृष्टिकोण का विपर्यास
मिथ्यादर्शन—दृष्टि का मिथ्यात्व, विपरीत दृष्टिकोण
मिथ्यादर्शन (क्रिया)—मिथ्यात्व के निमित्त से होने वाला बन्धन
मिथ्यादर्शन सल्ल—अठारहवां पाप
मिश्रकाल—सात नरक भूमियों में से एक जीव वहां से निकलकर पुनः वहां उत्पन्न होता है तब तक पूर्ववर्ती अधिकांश जीव वहां से निकल जाते हैं पर कुछ बच जाते हैं वह काल मिश्रकाल है
मिश्र दृष्टि—सम्यक्मिथ्यादृष्टि
मुक्ति—सम्पूर्ण कर्मों के क्षय से होने वाली आत्मा की अवस्था
मुखवस्त्रिका—मुख्य वस्त्र
मुहूर्त्त—४८ मिनिट का कालमान
मूल गुण—साधना के मूलभूत गुण, पांच महाव्रत
मोक्ष—सम्पूर्ण कर्मों का क्षय होने पर आत्मा का अपने स्वरूप में अवस्थान
मोहनीय—आत्मा में मूढ़ता पैदा करने वाला कर्म

यथालंदकल्पिक—हाथ की रेखा सूखे उतने समय भी प्रमाद नहीं करने वाले मुनि

रति-अरति—असंयम में अनुराग और संयम से वितृष्णा
रसघात—तीव्र रस से बंधे हुए कर्मों को मन्द रस वाले बना देना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेश्या—मनोवृत्ति, पुद्गल द्रव्य के सहयोग से होने वाला जीव का संक्लिष्ट तथा असंक्लिष्ट विचार
लोच—जैन मुनि के आचार का एक अंग, हाथों से केश उखाड़ना
वकुश—संयम में अतिचार के धब्बे लगाने वाला निर्ग्रन्थ
वक्रजड़—अन्तिम तीर्थंकर के समय होने वाले व्यक्ति, जो मायावी और अविकसित होते हैं
वच जोगी—वचन का प्रयोग करने वाला
वचन गुप्त—वाणी का संयम करने वाला
वचन-समित—वाणी की सम्यक् प्रवृत्ति करने वाला
वज्रऋषभ नाराच संघयण—सर्वाधिक सुदृढ़ अस्थियों की संरचना
वट्ट—गोल
वर्गणा—सजातीय पुद्गल-समूह
वाउकाय—वायु के जीव
विउसग्ग—शरीर के प्रति निस्पृहता, शरीर की प्रवृत्ति का परित्याग
विगम—विनाश
विगयपक्खस्स—विनाश की अपेक्षा से
विग्रह-गति—एक भव से दूसरे भव में जाते समय होने वाली वह वक्र गति जिसमें दो, तीन या चार समय लगता है
विग्रह-गतिया—विग्रह गति से जाने वाले जीव
वितिगिच्छा—लक्ष्य-सिद्धि में सन्देह करना
विपाक—कर्मों का फल
विभंग अनाण—मिथ्यात्व अवस्था में होने वाला अतीन्द्रिय ज्ञान
वियट्टभोइ—निरन्तर आहार करने वाला
विराधक—स्वीकृत आचार का भंग करने वाला
वीतराग—राग-द्वेष से सर्वथा मुक्त (चेतना) आत्मा
वीर्य—शक्ति
वीर्य-अंतराय—वीर्य का अवरोधक कर्म
वीर्य लब्धि—वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से होने वाली शक्ति
वेद—पुरुष को स्त्री के प्रति, स्त्री को पुरुष के प्रति और नपुंसक की दोनों के प्रति होने वाली अभिलाषा
वेदनीय कर्म—सुख-दुख के वेदन में हेतुभूत कर्म पुद्गल
वेदनी-समुद्घात—वेदना-जनित तीव्र व्याकुलता से होने वाला समुद्घात
वैक्रिय-लब्धि—विक्रिया—विविध रूप निर्माण की शक्ति
वैक्रिय-शरीर—देव और नारक भव में सहज प्राप्त होने वाला शरीर
वैक्रिय-समुद्घात—वैक्रिय लब्धि का प्रयोग
वैमानिक—ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न होने वाले देव
व्यंतर—भूत, पिशाच, यक्ष आदि निम्न श्रेणी के देव
व्यवहार नय—लोक प्रसिद्ध अर्थ का संवादी अभिमत
व्रत (प्रतिमा)—श्रावक की दूसरी प्रतिमा

शंका—लक्ष्य और उसकी पूर्ति के साधनों में संदेह
शब्दनय—शब्दग्राही अभिमत
शरीर—जो सुख-दुख की अनुभूति का साधन है
शरीर पर्याय (पर्याप्ति)—शरीर का निर्माण
शुक्ल ध्यान—आत्मा की समाधि अवस्था, निर्विकल्प समाधि की स्थिति
शुक्ल पक्षी—अर्ध पुद्गल परावर्तन काल की निश्चित सीमा में मुक्त होने वाला जीव
शुभ लेश्या—शुभ अध्यवसाय विशेष
शुभ लेसी—शुभ लेश्या वाला जीव
शून्यकाल—सातों नरक भूमियों में से एक जीव वहां से निकलकर पुनः वहां उत्पन्न होता है तब तक पूर्ववर्ती सब जीव वहां से निकल जाते हैं—एक भी जीव शेष नहीं रहता वह काल शून्यकाल है

श्रद्धा—घनीभूत इच्छा
श्रमणोपासक—श्रमणों की उपासना करने वाला
श्रावक—अणुव्रतों का पालन करने वाला गृहस्थ
श्रुतकेवली—चतुर्दश पूर्वधर मुनि
श्रुत ज्ञान—शास्त्र आदि के माध्यम से होने वाला ज्ञान
श्रुत देवत—श्रुत ज्ञान के अधिष्ठित देव
श्रुतधर्म—आचारांगादि श्रुत की आराधना
श्रुति-अज्ञान—मिथ्यात्वी का श्रुतज्ञान

सइंदिय—इन्द्रिय सहित
संक्रमण (संकम)—कर्म प्रकृतियों का परस्पर मेल होना
संग्रह (नय)—वस्तु का अभेदपरक निरूपण करने वाला अभिमत
संघयण—अस्थियों की संरचना
संचय—धान्य आदि अधिक समय टिकने वाले खाद्य पदार्थों का संग्रह
संजतासंजती—श्रावक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संजती (संयती)—मुनि
संज्ञा—आसक्ति विशेष
संपराय—सकषायी जीवों के होने वाला वेदनीय कर्म का बन्ध
संप्रदाय—परम्परा
संलेखणा—अनशन का पूर्वाभ्यास
संवर—कर्म निरोध करने वाले आत्म परिणाम
संवेग—मुमुक्षा
संस्थान—(संठाण)—आकार
सकरणवीर्य—क्रियात्मक शक्ति
सकषाइ—राग-द्वेष युक्त जीव
सचित्त—जीवसहित
सचित्त द्रव्य—जीव सहित पदार्थ
सजोगी—मन, वचन और शरीर की प्रवृत्ति करने वाला जीव
सज्झाय—स्वाध्याय, मर्यादापूर्वक अध्ययन
सण्णि—समनस्क,सम्यक्त्वी
सण्णिभूत—पर्याप्त
सन्निधि—घी आदि अधिक समय न टिकने वाले खाद्य पदार्थों का संग्रह
सप्पडिकम्म—सपरिकर्म, वह अनुष्ठान जिसमें शरीर की सार-संभाल की जाती है
समचउरंससंठाण (समचतुरस्र संस्थान)—ऐसा संस्थान जिसके चारों कोण सम हों
समदृष्टि—सम्यक्त्वी
समभिरूढ़—पर्यायवाची शब्दों में निरुक्त के भेद से अर्थभेद का स्वीकार करने वाले नय का अभिमत
समवसरण—तीर्थंकरों का प्रवचन मंडप
समाचारी—संघीय जीवन की विशेष चर्या
समामिथ्या (मिच्छा) दृष्टि—श्रावक
समुच्छिन्नक्रिय—शुक्ल ध्यान का एक प्रकार
समुदाणिक (सामुदानिक) भिक्षा—ऊंच-नीच के भेदभाव बिना अनेक घरों में की जाने वाली भिक्षा
समुद्घात—तीव्र वेदना आदि में एक रस होने के कारण आत्म प्रदेशों में होने वाला एक प्रकार का विस्फोट
समुच्छिम—जन्म का एक प्रकार, गर्भ और उपपात के बिना एक विशेष पर्यावरण के कारण होने वाला जन्म
समुच्छिम विकलेंद्री—दो, तीन और चार इन्द्रिय वाले जीव सम्यक् दर्शन—सही दृष्टिकोण
सराग-तप—छद्मस्थ का तप
सराग संजती—छद्मस्थ मुनि
सराग संजम—रागयुक्त संयम
सरागी—रागयुक्त चेतना वाला व्यक्ति, कषायवान्
सर्वज्ञ—केवली
सर्वविरत—तीन करण तीन योग से सावद्य योग का प्रत्याख्यान
सलेसी—तेरहवें गुणस्थान तक के जीव
सहत्थपारितावणिया—अपने हाथ से स्वयं को या दूसरे को कष्ट पहुंचाना
सहसंबुद्ध—देखें स्वयंबुद्ध
सहित—प्रयत्नशील
सागर—उपमा के द्वारा निर्धारित कालमान
सागार (उपयोग)—ज्ञान
सागारोवउत्त—जिसकी ज्ञान चेतना जागृत हो
साठभक्त—तीस दिन का तप
सातवेदनी—सुख की अनुभूति देने वाला कर्म
सातिचार—सदोष
सामानिक—इन्द्र के समान ऋद्धि वाले देव
सामायिक—आवश्यक सूत्र का एक विभाग
सामायिक चारित्र—सब प्रकार की सपाप प्रवृत्तियों का परित्याग
सामायिक प्रतिमा—समता और व्रताराधना का विशेष प्रयोग
सावज्ज—पापसहित
सास्वादन—उपशम सम्यक्त्व से गिरते समय मिथ्यात्व का स्पर्श करने से पहले अन्तरालवर्ती सम्यक्त्व
साहरण—गर्भस्थ जीव का स्थानान्तरण
सिद्ध—मुक्त जीव, जिसके सब प्रयोजन सिद्ध हो गये हों
सुभ जोग—मन, वचन और शरीर की सत्प्रवृत्ति
सुलभबोधि—जिस जीव को सम्यक्त्व सुलभ हो
सुसम दुस्समा—अवसर्पिणी काल का तीसरा आरा
सूक्ष्मसम्पराय—दसवें गुणस्थान का चारित्र
सूझतो—मुनि के लिए कल्पनीय
सूत्रागम—गणधरों द्वारा सूत्र रूप में ग्रथित आगम
सेज्या—मकान
स्कन्ध—अखण्ड वस्तु या परमाणुओं का एकीभाव
स्त्रीवेद—पुरुष के प्रति स्त्री की अभिलाषा
स्थविर—संयम में स्थिर करने वाले मुनि। ये कई प्रकार के होते हैं—प्रव्रज्या स्थविर, श्रुत स्थविर, जाति स्थविर आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थविरकल्प—संघबद्ध साधना करने वाले मुनियों का आचार
स्थविरकल्पिक—संघबद्ध साधना करने वाले मुनि
स्थावर—सलक्ष्य गमनागमन नहीं कर सकने वाला प्राणी समूह
स्थितकल्पिक—प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों के शिष्य. जिनके लिए आचेलक्य आदि दसों कल्प अनिवार्य होते हैं (देखें ठाणं पृ० ७०२)
स्थितिघात—कर्मों की स्थिति का अल्पीकरण
स्थितिबंध—कर्मों का आत्मा के साथ बंधे रहने का काल-मान
स्नातक—केवल ज्ञान प्राप्त करने वाला निर्ग्रन्थ
स्नेह—सूक्ष्म अप्काय
स्नेहकाय—स्निग्धता
स्याद्वाद—अनन्त धर्मात्मक वस्तु के सापेक्ष प्रतिपादन की पद्धति
स्वयंबुद्ध—किसी निमित्त या उपदेश के बिना स्वयं बोधि प्राप्त करने वाला
ह्रस—अर्स, ववासीर
हुंडक—सबसे निम्न कोटि का संस्थान
हेय—छोड़ने योग्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेष नामानुक्रम

व्यक्ति नाम

अइमुत्ता ७४
अग्निभूति ३१३, ३१६-३२०
अजिय २८७
अणंत २८७
अभय कुमार २५८
अभय देव २०५, ४१५
अभिनंदन २८७
अम्मड २५६
अर २५८, २८७
अरिष्टनेमि २८०

आणंद २५७, २६३, २८१
आणंदरक्खित २७३
आदीश्वर २००
आयातचिलाती २७०

इन्द्रभूति (ती) ३७, ४१, २०३, २७४

उदक २७८, २८१, २८४, २८८
उदाई राजा २८०
उसभ (ऋषभ) १८-२०, २३, ४२, २००, २८७, २९३

ऋषभदत्त २८२
ऋषिराय (ऋषराय) ५, ३७, ४२, ६७, ७७, ८२, ९५, ९७, १००, १०२, १०५, ११०, ११९, १२३, १२५, १४१, १४४, १४७, १५१, १५८, १५५, १६३, १६५, १७२, १७५, १८०, १८२, १८७, १९४, २०३, २०७, २०९, २१७, २२२, २२५, २३२, २४२, २५२, २५५, २६४, २६८, २७६, २९६, ३०४, ३१२, ३१६, ३२०, ३२४, ३२८, ३३०, ३३३, ३३५, ३३७, ३४१, ३४५, ३४७, ३५२, ३५५, ३५६, ३५९, ३६२, ३६४, ३७३, ३८१, ३८४, ३८८, ३९४, ४०१, ४०९, ४२१

कपिल ३१
कामदेव २८०
कालासवेसी पुत्र (काला) १७७-१८०
कालिक पुत्र २७३
कासव २७३
कुंथु २५८, २८७
कुमदत्त-पुत्र ३२३, ३४१
कृष्ण २५८, २८०
केसी श्रमण २७२
कोणिक २७०

खंधक १६५, १८९, १९४-१९७, २०१, २०३-२०७, २०९, २१०, २१७, २२०-२२२, २२४-२२८, २३०, २३२-२३६, २३८, २४०-२४२, २८०

गजसुखमाल २९३
गद्दमालि १९५, २०४
गोतम (गौतम, गोयम) ६, २२, ३८-४५, ४७, ५०, ५१, ५५, ५८, ५९, ६१-६४, ६७-६९, ७५, ७७-७९, ८२-८४, ८६-९०, ९२, ९५, ९७-१०१, १०३, १०५-१०८, ११०, ११९, १२०, १२२-१२७, १३५, १३८, १३९, १४२-१४४, १४७, १४९, १५०, १५२, १५४-१५८, १६१, १६४-१७२, १७५, १७६, १८०, १८२, १८४, १८५, १८७, १८९, १९०, १९२, १९४, १९९, २०३-२०७, २४१, २४२, २४५, २४८, २४९, २५४, २५५, २७४-२७८, २८०, २८१, २८३, २८४, २८७, २८८, २९३, २९६, २९९, ३०५, ३०८, ३१०, ३१३-३१८, ३२०, ३२२-३२५, ३२९, ३३७, ३४०, ३४२, ३४५, ३४६, ३५५-३५७, ३६१, ३७२-३७४, ३८१, ३८२, ३८४, ३८५, ३८७-३९०, ३९३-३९५, ४०२, ४०४, ४०९, ४१२, ४१५, ४१७, ४२०
गोशालक (गोसाला) १००, २८१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्र प्रभ २८७
चेलणा २५, ३६

जंबू ६, २३, २४, २२८, २८०
जमाली ४८, २६६
जयंति २८०
जयघोषमुनि २८५
जय-जश (जय) ५, ३७, ४२, ५५, ६७-६६, ७७, ८२, ६५, ६७, १००, १०२, १०५, ११०, ११६, ११६, १२३, १२५, १४१, १४४, १४७, १५१, १५४, १५५, १६३, १६५, १७२, १७५, १८०, १८२, १८७, १६४, २०३, २०७, २०६, २१७, २२२, २२५, २३२, २४२, २५२, २५५, २६४, २६८, २७६, २६६, ३०४, ३१२, ३१६, ३२०, ३२४, ३२८, ३३०, ३३३, ३३५, ३३७, ३४१, ३४५, ३४७, ३५२, ३५५, ३५६, ३५६, ३६२, ३६४, ३७३, ३८१, ३८४, ३८८, ३६४, ४०१, ४०६, ४२१

तामली ३२६, ३२६-३३४, ३४६
तीसक ३२१, ३२२, ३४१

थावच्चापुत्र २६०

देवानंदा २६६, २८०, २८२
दोलतरामजी २०७
द्रोपदी (द्रुपद सुता) २५८, २७०

धम्म २८७
धर्मघोष ७४
धर्मसी (सीह) १६, १०७, ११०, ११८, १२१, १२२, १४६, १४८, १६३, २६८, २७०, ३४८, ३५६, ३६४, ३६७, ३७०
धारणी २५८

नंदण २८०
नमि २८७
नागश्री ७४
नाभेय १६
नारद २५८
नृप (नृपति इन्दु) ३, ५५,
नेमि २८७

पंडु २५८
पार्श्व (पार्श्वजिन, पार्श्वनाथ, पास) ११३, ११७, २६४, २६६, २७१, २७५, २७६, २८०, २८७, २६०
पार्श्व चंदसूरि १६०
पिंगल १६६, १६७, २०६, २१०
पुष्पदंत २८७
पूरण गाथापति ३४६, ३४७
पेढ़ाल पुत्र २८१, २८४, २८८
प्रदेशिनृप २७०
बाहुबल २६३

ब्राह्मी २०, २६३

भरत २४८, २५४, २५८, २६३, ३५०, ३५४
भारीमाल ३, ५, ३७, ४२, ५५, ६७, ७७, ८२, ६५, ६७, १००, १०२, १०५, ११०, ११६, १२३, १२५, १४१, १४४, १४७, १५१, १५४, १५५, १६३, १६५, १७२, १७५, १८०, १८२, १८७, १६४, २०३, २०७, २०६, २१७, २२२, २२५, २३२, २४२, २५२, २५५, २६४, २६८, २७६, २६६, ३०४, ३१२, ३१६, ३२०, ३२४, ३२८, ३३०, ३३३, ३३५, ३३७, ३४१, ३४५, ३४७, ३५२, ३५५, ३५६, ३५६, ३६२, ३६४, ३७३, ३८१, ३८४, ३८८, ३६४, ४०१, ४०६, ४२१
भिक्षू (भीखु) ३, ५, ३७, ४२, ५५, ६७, ७७, ८२, ६५, ६७, १००, १०२, १०५, ११०, ११६, १२३, १२५, १४१, १४४, १४७, १५१, १५४, १५५, १६३, १६५, १७२, १७५, १८०, १८२, १८७, १६४, २०३, २०७, २०६, २१७, २२२, २२५, २३२, २४२, २५२, २५५, २६४, २६८, २७६, २६६, ३०४, ३१२, ३१६, ३२०, ३२४, ३२८, ३३०, ३३३, ३३५, ३३७, ३४१, ३४५, ३४७, ३५२, ३५५, ३५६, ३५६, ३६२, ३६४, ३७३, ३८१, ३८४, ३८८, ३६४, ४०१, ४०६, ४२१
भृगूपुत्र २१६

मंडिपुत्र (मंडियपुत्र) ३६२-३६५, ३६८-३७२
मरुदेवी माता २६३
मल्लि ११३, ११५, २६६, २८७
महावीर (वीर) ५, ६, २३-२६, ३०, ३१, ३३, ३५-३८, ४२, ४३, ४५, ५०, ५५, ५६, ६०, ६७, ६८, ७७, ७८, ८०, ८४, ६५, ६८, १०६, १०८, ११७, १२४, १४४,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४५, १४७, १५०, १५१, १५५, १६५, १६६, १७०, १७२, १७५, १८०, १९४-१९६, १९९, २००, २०२, २०३, २०५-२१०, २१७, २२०, २२२, २२३, २२५, २२७-२२९, २३६-२४२, २५५, २७४, २७५, २८०, २८२, २९०, ३१३, ३१६-३१८, ३२२, ३२४, ३२५, ३३७, ३४२, ३४६, ३५०, ३५६, ३५७, ३६०, ३६२, ३६९, ३७२, ४१७
मागध १९६, १९७, २०६, २१०
मुणिसुव्वय २८७
मृगा पुत्र (पूत) २१६, ३४०
मृगावती २८०
मेघकुमार २७९
मेहिल २७३
मोगर ३९१
मोरिज पुत्र (मौर्यपुत्र) ३२६, ३२९, ३३१, ३३३

रहनेम ७४
राजऋषि २८३
राजीमती ७४
रेवती २९१
रोह १४५-१४७, २८०

वद्धमाण (वर्धमान) २९, ३०, ३७, ८३, १९६, १९८, २३९, २८७, ३१३
वर्णनाग नत्तुओ २९९
वायुभूति ३१६-३१९, ३२२, ३२४
वासुदेव ८४, ३९२
वासुपुज्ज २८७
विजयघोष मुनि २८५
विमल २८७
विशाला १९६
शिव ऋषिराज ३९१
शीलांकाचार्य २६२, २६३, २८४, २८६
श्रेणिक २५, ३६, ७६

संख २८०
संति २८७
संभव २८७
सकडालपुत्र २८१
सनतकुमार (चक्रवर्ती) २९३, ३४०, ३६५
सर्वानुभूति २२०, २८१
ससि २८७
सीयल २८७
सीहो ७४
सुंदरी २९३
सुखदेव २९०
सुदर्शणसेठ २८०
सुधर्म (सुधर्मा, सुधर्मा स्वामी) ५, ६, २३, २४, ४७, २२८, २८०
सुनक्षत्र २२०
सुपास २८७
सुप्पभ २८७
सुबाहु ३४०
सुभद्रा २६८
सुमति २८७
सुविध २८७
सेज्जंस २८७
सोमल २९०

हेमविमल सूरि २६१

नगर नाम

अयोध्या २४८
आमलकप्पा २८२

एरवत २०

कयंगला १९४, १९५, १९८-२००, २०२, २०३, २२७
कोसंबी २८०

गोल-देश ३७८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चम्पा २५
चुचु (देश) ३४४

जंबूद्वीप २६६, ३०२, ३०५, ३११, ३१२, ३१५, ३१६, ३१८-३२०, ३२२-३२४, ३२६, ३३१, ३४६, ३५०, ३५४, ३७३, ३८५, ३६५, ३६६, ३६८, ४०४, ४०६, ४१७

ढंकण ३४४

तामलिप्ती ३२६-३२८, ३३०-३३२, ३३४
तुंगिया २५५, २५७, २५६, २६३, २६४, २६७, २७१, २७३, २७५, २७७, २८३

पल्हव (देश) ३४४
पुक्खरार्द्ध (देश) ३०५
पुलिंद ३४४

बबर (देश) ३४४
बिभेल सन्निवेश ३४६

भरतक्षेत्र १६, २०, १४६, ३२६, ३३१, ३३४, ३४६

मगध (मागध) ४६, ५१, १६६
महाविदेह ११३, २४२, ३४१
मोया नगरी ३१३३ '२४

राजगृह २१, २४, २५, ३५, ३६, ८३, १८६, १६४, २३६, २५५, २७४, २७५, २८०, २६४, २६५, ३१३, ३२४, ३४२, ३६२, ३८३, ३८६, ३६०, ३६३, ३६५, ४०६, ४१४, ४१७

लाडणूं १८७

वाणारसी नगरी ३८६, ३६०, ३६३
वाणिया ग्राम २८०

सबर (देश) ३४४
सावत्थी १६५-१६८, २००, २०१, २०३, २०४, २०६, २१०, २८०
सुंसुमारपुर ३४७, ३५०, ३५५
सुजानगढ़ (सुजान) ८२, १०५

ग्रन्थ नाम

अंतगड २५८, २८०
अणुत्तरोववाइ २८०
अनुयोगदुवार (द्वार) १६, २१५, २७६, २८६, ३६१

आचारांग (रंग) ४, २३, २६, ७६, ११६, १५६, १६०, २७६, २८६-२६१
आचारांग चूर्णि २६३
आचारांग टब्बा १६०, २६१
आचारांग वृत्ति १५६, २६०, २६१, २६३
आवश्यक निर्युक्ति १६०, २६३

उत्तराध्ययन (ध्ययन) २३, २८, ७२, १६०, १७५, २१६, २७८, २८३, २८५-२८७, २६०, ३४१
उपांग-वृत्ति २५६
उपासगदसा (दशा) २८०, २८१, २६०

उववाई (उवाई) २५, ३४, ७६, २२१, २५५, २५६, २८२, २६०, २६३
उववाई-वृत्ति २२३, २५६

ऋषि मंडल २६३

कर्मग्रंथ १४०

चंदपण्णत्ति (न्न) ४

जंबूद्वीपपण्णत्ती २५८,२७०
जीवाभिगम ५, २४४, २६८, २६६, ३०३, ३०५, ३७३, ४१४, ४१५

ज्ञाता (छट्ठा अंग) ४, २३, २४, ११३, २५८, २६८,-२७०, २७६, २८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ठाणांग (ठाणं) ७४, ७६, १६१, १६२, २७८, २७६, २८७-२८६, २६३, ३०४, ३६५, ४१२, ४१३
ठाणांग टब्बा २८७
ठाणांग टीका २६३

दशवैकालिक २२, ७५, १५८
दशाश्रुतखंध २२८, २३०, २७८
दीपिका (हर्ष कुशलकृत) २६१

नंदी ११३
निरियावलिया (निरावलिया) २७७, २८०
निशीथ (नशीथ) ७२, ७३,
निशीथ चूर्णि १६०, २६१-२६३

पन्नवणा ५६, ६३, ७१-७३, ८६, ६५, ६८, ११३, १२०, १८७, १६०, २४३, २४६-२४८, २६३, २६७, २६६, ३०४, ४००, ४११, ४१८, ४२०
पन्नवणा वृत्ति ७२, ४२०,
पुष्फिया उपंग २६०, ३४०

बृहत्कल्प २२, ११६, २६२
बृहत्कल्प चूर्णि १६०, २६२
बृहत्कल्प वृत्ति १६०, २६२

भगवइ जोड़ ३
भगवती [ई] (पंचमांग) ३, ४, ७, २१, ४७, ७१, ७३, ७४, ११५, ११६, १५६, १६१, १६३, २१३, २५८, २६६, २८०-२८२, २८४, २८७, २८६-२६१, २६३, ३१२, ३४१, ४१३
भगवती-यंत्र (धर्मसी) १६३, २६०
भगवती वृत्ति ७२, १५६, २६२, २८४, ४१६

राय प्रश्नेणी (द्वितीय उपंग) २७०, २७८, २८२, २८८, २६०, ३२४, ३३२, ३६४
राय प्रश्नेणी वृत्ति १५८, १६६, २५६, २६०

ववहार वृत्ति (व्यवहार) १६०, २६१, २६२
विन्हिदसा २८०
विपाक ३४०
विवाह पण्णत्ति (व्याख्याप्रज्ञप्ति) ३, ५-७, २०, २१, २४, २८४

समवायांग २०, ११३, २६३
सूयगडो (सूत्रकृतांग) ४, १५६, १६१, २५८, २६३, २७७-२७६, २८१, २८३, २८४, २८६, २८८, २६०
सूयगडो टब्बा २८३
सूयगडो-टीका (शीलांकाचार्य कृत) २८३, २८४, २८८
सूयगडो-दीपिका (दीपका) २६१, २६३, २८५
सूयगडो-वृत्ति २६३

हुंडी (लुंका की) १६३, २६०
हेमी नाम माला २८७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुद्धि-पत्रक

प्रस्तावना

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
२४	टूंकडा	ढूंकडा
२६	शत्रु योग	शुभयोग
२७	पूर्व विरति	पूर्ण विरति

भगवती-जोड़

पृ०	गाथा	अशुद्ध	शुद्ध
२१	१७६ वृ०	प्रतिपादयितम्	प्रतिपादयितुम्
३३	२८५ वा०-वृ०	(वृ०-प० ४)	(वृ०-प० ६)
३७	३१० वा०	पावाणां	पावाणं
३७	२ वृ०	संड्य	संघ
३८	ध्रुपद	तहती को	तहतीको
५३	१३०	तेक हिवाय	ते कहिवाय
५५	१६७ वृ०	विषयश्चछेदः	विषयच्छेदः
६५	१३३ पा०	की सत्ताए	कीसत्ताए
६८	६ पा०	जीव	जीवा
७८	१४ वृ०	(वृ०-प० ३४, ४५)	(वृ०-प० ३४, ३५)
७८	१६ वृ०	सप्तकान्वर्तत्तित्वात्	सप्तकान्तर्वर्त्तित्वात्
८४	२१ वृ०	दंडगाकद्वयम्	दंडकद्वयम्
१०६	११	परिण माय	परिणमाय
१२०	१ वृ०	तस्यव	तस्यैव
१३१	६३	माणोवउत्त	माणोवउत्ते
१३१	७६	मायोवउत्त	मायोवउत्ते
१३२	८०	लाभोवउत्ते	लोभोवउत्ते
१३६	१२४	प्रसंए	प्रसंग
१४०	१२६ वृ०	वेउविए	वेउव्विए
२०७		श० १	श० २
२१६	५४	जब रजानी	जबर जानी
२२६	६	गोपव	गोपवं
२३४	१६ वृ०	यथेतिः	यथेति
२४४	११ पा०	धूमप्पभा	धूमप्पभा
२५१	४६ वृ०	द्रष्टृणां	द्रष्टृणां
२७२	६१ वृ०	तद्वयवदान	तद्व्यवदान
२८६	४८ वा०	अभ्याख्यन	अभ्याख्यान
३३८	१२	अखिया	आखिया
३४१	५७ पा०	छट्ठट्ठमासो	छट्ठट्ठममासो
३७७		कंदर	कंद
३९६	१७ पा०	बहुभज्जदेसभाए	बहुमज्जदेसभाए
४०२	१३ वृ०	परस्पर	परस्पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org